4200

भगवती-जोड़

(खण्ड-७)

श्रीमज्जयाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगमों के मुख्य दो विभाग हैं- अंग और अंग बाह्य। अंग बारह थे। आज केवल ग्यारह अंग ही उपलब्ध होते हैं। उनमें पांचवां अंग है- भगवती। इसका दूसरा नाम व्याख्या-प्रज्ञप्ति है। इसमें अनेक प्रश्नों के व्याकरण हैं। जीव-विज्ञान, परमाणु-विज्ञान, सृष्टि-विधान, रहस्यवाद, अध्यात्म - विद्या, वनस्पति- विज्ञान आदि विद्याओं का यह आकर-ग्रन्थ है। उपलब्ध आगमों में यह सबसे बड़ा है। इसका ग्रन्थमान १६००० अनुष्टुप् श्लोक प्रमाण माना जाता है। नवांगी टीकाकार अभयदेव सूरी ने इस पर टीका लिखी। उसका ग्रन्थमान अठारह हजार श्लोक प्रमाण है।

भगवती सूत्र की सबसे बड़ी व्याख्या है- यह 'भगवती जोड़'। इस की भाषा है राजस्थानी। यह पद्यात्मक व्याख्या है, इसलिए इसे 'जोड़' की संज्ञा दी गई है।

इस ग्रन्थ में सर्व प्रथम जयाचार्य द्वारा प्रस्तुत जोड़ के पद्य और ठीक उनके सामने उन पद्यों के आधार-स्थल दिये गये हैं। जयाचार्य ने मूल के अनुवाद के साथ-साथ अपनी ओर से स्वतंत्र समीक्षा भी की है।

*

आवरण पृष्ठ पर मुद्रित हस्त-लिखित पत्र ग्रन्थ की ऐतिहासिक पाण्डुलिपि के नमूने हैं। इनकी लेखिका हैं— तेरापंथ धर्मसंघ की विदुषी साध्वी गुलाब, जो आशु- लेखन की कला में सिद्धहस्त थीं। जयाचार्य भगवती-जोड़ की रचना करते हुए पद्यों का सृजन कर बोलते जाते और महासती गुलाब अविकल रूप से उन्हें कलम की नोक से कागज पर उतारती जातीं। उस प्रथम ऐतिहासिक प्रति के ये पत्र प्रज्ञा, कला और ग्रहण-शीलता की समन्विति के जीवन्त साक्ष्य हैं। मुद्रण का आधार यही प्रति है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भगवती जोड़

(शतक २५-४१)

श्रीमज्जयाचार्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जय वाङ्मय : ग्रन्थ १५

भगवती-जोड़

खण्ड ७

(शतक २५-४१)

प्रवाचक
आचार्य तुलसी

प्रधान सम्पादक
आचार्य महाप्रज्ञ

सम्पादन
साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा

प्रकाशक
जैन विश्व भारती
लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :

मंत्री

जैन विश्व भारती

लाडनूं-३४१३०६ (राज०)

© जैन विश्व भारती, लाडनूं

प्रथम संस्करण :

मूल्य : **४०० रुपये**

मुद्रक :

मित्र परिषद् कलकत्ता के आर्थिक सौजन्य से स्थापित

जैन विश्व भारती प्रेस, लाडनूं (राजस्थान)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

"भगवई" अंग आगम साहित्य में सबसे विशाल ग्रन्थ है। विषयों की दृष्टि से यह एक महान् उदधि है। श्री मज्जाचार्य ने इस ग्रन्थ का राजस्थानी भाषा में गीतिकाबद्ध पद्यानुवाद किया। यह राजस्थानी भाषा का सबसे बड़ा ग्रन्थ माना गया है। इसमें मूल के साथ टीका ग्रन्थों का भी अनुवाद है और वार्तिक के रूप में अपने मन्तव्यों को बड़ी स्पष्टता के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें विभिन्न लय ग्रथित ५०१ ढालें तथा कुछ अन्तर ढालें हैं। ४१ ढालें केवल दोहों में है। ग्रन्थ में ३२९ रागनियां प्रयुक्त है।

इसमें ४९९३ दोहे, २२२५४ गाथायें, ६५५२ सोरठे, ४३१ छन्द, १८४८ प्राकृत संस्कृत पद्य तथा ७४४९ पद्य-परिमाण, ११९० गीतिकाएं, ९३२९ पद्य-परिमाण, ४०४ यंत्रचित्र आदि हैं। इसका अनुष्टुप् पद्य-परिमाण ग्रन्थाग्र ६०९०६ है।

"भगवती जोड़" का प्रथम खण्ड सन् १९८१ में प्रकाशित हुआ था। उसका द्वितीय खण्ड सन् १९८६ में प्रकाशित हुआ, तृतीय खण्ड सन् १९९० में, चतुर्थ खण्ड सन् १९९४ में, पंचम खण्ड सन् १९९५ में तथा षष्टम् खण्ड सन् १९९६ में प्रकाशित हुआ। अब उसी ग्रन्थ का सप्तम खण्ड प्रकाशित कर पाठकों के हाथ में सौंपते हुए अति हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्रथम खण्ड में उक्त ग्रन्थ के चार शतक समाहित हैं। द्वितीय खण्ड में पांचवें से लेकर आठवें शतक, तृतीय खण्ड में नौवें से लेकर ग्यारहवें तक, चतुर्थ खण्ड में बारहवें से पन्द्रहवें तक चार शतक एवं एक परिशिष्ट "गौशाला की चौपाई" संग्रहीत है। पांचवें खण्ड में सोलहवें से तेइसवें शतक तक की सामग्री है। छठे खंड में केवल चौबीसवां शतक एवं परिशिष्ट में वही शतक यंत्रों के रूप में संग्रहीत है। अब उसी ग्रन्थ के इस सातवें खंड में २५वें शतक से ४१वें शतक तक की सामग्री है।

प्रस्तुत खण्ड के प्रकाशन के साथ ही भगवती जोड़ का सात खण्डों में प्रकाशन कार्य एक तरह से पूर्ण हो जाता है लेकिन आचार्यवर के निर्देशानुसार इस श्रृंखला में एक खण्ड और तैयार किए जाने की योजना है। उस खण्ड में अनेक परिशिष्टों के साथ भगवती जोड़ का समीक्षात्मक अध्ययन भी रहेगा।

इस ग्रन्थ का कार्य स्वर्गीय गणाधिपति गुरुदेव श्री तुलसी के तत्वावधान में हुआ है और महाश्रमणी साध्वीप्रमुखा कनकप्रभाजी ने उसका पूरा-पूरा हाथ बंटाया है। उनका श्रम इस ग्रन्थ के प्रत्यक पृष्ठ पर अनुभूत होता है।

जैन विश्व भारती, लाडनूं
२४ सितम्बर, १९९७

ताराचन्द रामपुरिया
मंत्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

जैन आगमों में आकार में सबसे बड़ा और प्रकार में तत्त्वविद्या और दर्शन का विशाल ग्रन्थ है भगवती। भगवती सूत्र का मूल नाम विआहपण्णत्ती—व्याख्याप्रज्ञप्ति रहा है। इसके वैशिष्टय को सूचित करने के लिए विशेषण के रूप में इसके साथ भगवती शब्द प्रयुक्त हुआ। ऐसा प्रयोग समवायांग [८४।११] में उपलब्ध है। कालान्तर में विआहपण्णत्ती शब्द का प्रयोग कम हुआ और भगवती शब्द अधिक प्रचलित हो गया। यह द्वादशांगी में पांचवां अंग है। इसमें महावीर-वाणी का संकलन है। वर्तमान में उपलब्ध आगमों का आधार पांचवें गणधर आर्य सुधर्मा द्वारा संकलित द्वादशांगी को माना जाता है। भगवती के आकार के बारे में अनेक परम्पराएं हैं। ये परम्पराएं विभिन्न कालखण्डों में प्रचलित हुई, इस दृष्टि से भगवती का निश्चित ग्रन्थमान बताना कठिन है। संक्षिप्त और बिस्तृत पाठ तथा प्राचीन एवं अर्वाचीन आदर्शों के कारण यह अन्तर रहा है। इसे सापेक्ष दृष्टि से ही समझा जा सकता है।

भगवती सूत्र के व्याख्या ग्रन्थों में निर्युक्ति, चूर्णि और वृत्ति का उल्लेख मिलता है। वर्तमान में इसकी कोई निर्युक्ति उपलब्ध नहीं है। चूर्णि मिलती है, पर वह मुद्रित नहीं है। इसके वृत्तिकार अभयदेव सूरि हैं। उन्होंने अपनी वृत्ति में मूल टीका और चूर्णिकार का अनेक बार उल्लेख किया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अभयदेव सूरि के सामने कोई दूसरी टीका थी, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है। चूर्णि और वृत्ति के बाद भगवती पर कोई विशद व्याख्या लिखी गई है तो वह है राजस्थानी पद्यों में उसका भाष्य। 'भगवती जोड़' के नाम से प्रसिद्ध उस भाष्य के रचनाकार हैं तेरापन्थ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जयाचार्य। जयाचार्य ने अपने भाष्य में वृत्ति का खुलकर उपयोग किया है। वृत्ति के साथ उन्होंने अन्य आगमों, ग्रन्थों तथा धर्मसी के यन्त्र का भी यत्र तत्र उपयोग किया है। अनेक स्थलों पर उन्होंने अपनी ओर से ग्रन्थ की विस्तृत समीक्षाएं की हैं और कुछ सन्दर्भों में वृत्तिकार के अभिमत की आलोचना भी की है। कुल मिलाकर यह स्वीकार किया जा सकता है कि 'भगवती जोड़' में जयाचार्य के ज्ञान और अनुभवों की प्रौढता, स्वाध्यायी मनोवृत्ति, विलक्षण स्मृति और मौलिक सूझबूझ का पूरा उपयोग हुआ है। इस ग्रन्थ को राजस्थानी वाङ्मय का अद्वितीय ग्रन्थ माना जा सकता है।

जयाचार्य के परिनिर्वाण की शताब्दी को निमित्त बनाकर जय-साहित्य के प्रकाशन की योजना बनी। उस योजना के तहत वि. स. २०३८ [ईस्वी सन् १९८१] में 'भगवती जोड़' का प्रथम खण्ड प्रकाशित होकर आया। प्रस्तुत ग्रन्थ जोड़ का सातवां या अन्तिम खण्ड है। प्रथम छह खण्डों में भगवती के चौबीस शतकों की जोड़ प्रकाशित हुई। सातवें खण्ड में अवशेष २५ से ४१ तक कुल १७ शतकों का समावेश है। इनमें कुछ शतक बड़े हैं तो कुछ शतक बहुत छोटे हैं। कुछ शतकों में अन्तर शतक भी हैं। कई शतकों एवं अन्तर शतकों का वर्णन अति संक्षिप्त है। इन शतकों में कुछ शतकों की विषयवस्तु साधना और तत्त्वज्ञान दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है, वहां कुछ शतक गणितीय आंकड़ों की भाषा में निबद्ध हैं। प्रत्येक शतक की विषय वस्तु का सारसंक्षेप यहां दिया जा रहा है।

भगवती के २५वें शतक में बारह उद्देशक हैं। लेश्या, द्रव्य, संस्थान, कृतयुग्म आदि, पर्यव, निर्ग्रन्थ, श्रमण, ओघ, भव्य, अभव्य, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि—इन बारह उद्देशकों की व्याख्या ४३३ से ४६८ तक ३६ ढालों में गुम्फित की गई है।

इस शतक की जोड़ में कहीं अत्यन्त संक्षिप्त विवरण दिया गया है तो कुछ विषयों को पूरे विस्तार के साथ विवेचित किया गया है। उनमें छठे और सातवें उद्देशक की विषय वस्तु विस्तृत होने पर भी रोचक और उपयोगी है। छह प्रकार के निर्ग्रन्थों और ांच प्रकार के श्रमणों—संयतों का वर्णन सहज रूप में बहुत हृदयग्राही है। तात्त्विक विवेचन को भी इतनी आकर्षक प्रस्तुति दी गई है कि पाठक की जिज्ञासा बढती रहती है। ढाल संख्या ४४४ से ४५२ तक नौ ढालों में निर्ग्रन्थ का विवेचन है। ढाल संख्या ४५३ से ४६० तक आठ ढालों में श्रमणों का विवेचन है। निर्ग्रन्थ और श्रमण के लिए लोकभाषा में नियंठा और संजया शब्द अधिक प्रचलित हैं। इसका कारण है छठे और सातवें उद्देशकों की विषय वस्तु के आधार पर दो स्वतन्त्र थोकड़ों का निर्माण। नियंठा और संजया नाम से प्रसिद्ध इन थोकड़ों को अनेक साधु-साध्वियां और श्रावक-श्राविकाएं कंठस्थ करते रहे हैं। जयाचार्य ने 'भगवती जोड़' की रचना करने से बहुत पहले नियंठा और संजया की जोड़ें लिखी थीं। संभवत: उस समय उनके सामने समग्र भगवती की जोड़ लिखने का लक्ष्य नहीं था। अन्य आगमों की जोड़ रचते-रचते भगवती जैसे विशालकाय आगम पर ध्यान केन्द्रित हुआ हो। उस समय तक जोड़ की रचना शैली काफी परिष्कृत हो चुकी थी। शैलीगत द्विरूपता से बचने के लिए उन्होंने नियंठा और संजया वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकरण को भी छोड़ा नहीं। इसी कारण उक्त प्रकरणों की दोहरी जोड़ें हो गईं। भगवती से सम्बन्धित होने के कारण पूर्व रचित जोड़ को प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट में दिया गया है।

निर्ग्रन्थों और श्रमणों के प्रकारों का विवेचन होने के बाद ४६१ से ४६७ तक सात ढालों में प्रतिसेवना, आलोचना के दोष, आलोचक एवं आलोचनादायक की अर्हता, सामाचारी, प्रायश्चित्त और बारह प्रकार के तप का वर्णन है। ४६८ वीं ढाल में नैरयिक आदि २४ दण्डकों तथा भवसिद्धिक, अभवसिद्धिक, सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के पुनर्भव सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण के साथ २५वें शतक का सातवां उद्देशक पूरा होता है।

भगवती का २६ वां शतक बन्धी शतक के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत शतक में जीव के पापकर्म-बन्ध की चर्चा अतीत, वर्तमान और भविष्य काल के आधार पर की गई है। इस चर्चा को लेश्या, पाक्षिक, दृष्टि, अज्ञान, ज्ञान, संज्ञा, वेद, कषाय, उपयोग और योग के सन्दर्भ में विस्तार के साथ प्रस्तुति दी गई है। यह विवरण ४६९वीं ढाल में आ जाता है। ४७० ढाल में २४ दण्डकों के बन्ध-अबन्ध की संक्षिप्त चर्चा को यन्त्रों के द्वारा विस्तार से समझाया गया है। ४७१ और ४७२ वीं ढाल में भी इसी प्रसंग को अन्य संदर्भों में चर्चित किया गया है।

भगवती के २७ वें शतक में केवल दो सूत्र हैं और २८ वें शतक में आठ सूत्र हैं। जयाचार्य ने इन दोनों शतकों का गुम्फन एक ढाल में कर दिया। मुद्रण की सुविधा के लिए इसका सम्पादन करते समय इस ढाल को दो भागों में बांट दिया। ढाल ४७३ (क) में २७ वें शतक की १७ गाथाएं हैं और ढाल ४७३ (ख) में २८वें शतक की ५८ गाथाएं हैं। दोनों शतकों को एक साथ रखकर ढाल की संख्या एक भी रखी जा सकती थी, जैसा कि आगे के कुछ शतकों में किया गया है। इसका २९वां शतक ढाल संख्या ४७४ में गुम्फित है। इन तीनों शतकों में भी पापकर्म से सम्बन्धित विवेचन है।

भगवती के तीसवें शतक में क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी - इन चार समवसरणों को २४ दंडकों के सन्दर्भ में व्याख्यात किया गया है। ११ उद्देशकों में संदृब्ध इस शतक की जोड़ छह ढालों में है। समुच्चय जीव और २४ दंडकों में निरूपित समवसरणों को यन्त्रों के द्वारा और अधिक स्पष्टता से आलेखित किया गया है। जोड़ और यन्त्रों को तुलनात्मक दृष्टि से पढने पर शतक की विषयवस्तु अच्छी तरह समझ में आ जाती है।

भगवती के ३१वें एक ३२वें शतक में चार प्रकार के क्षुल्लक युग्म— कृतयुग्म, त्र्योज, द्वापर युग्म और कलियोग का वर्णन है। ३१वें शतक को २८ उद्देशक हैं, पर इनका वर्णन इतना संक्षिप्त है कि इन्हें मात्र दो ढालों में समेट लिया गया। दो उद्देशकों वाला ३२वां शतक १७ गाथाओं की एक छोटी-सी ढाल में सिमटा हुआ है। इन दोनों शतकों में एक प्रकार से गणित के आधार पर युग्मों का निर्धारण किया गया है। ३३वें शतक में एकेन्द्रिय जीवों का अनेक विवक्षाओं के साथ वर्णन है। इस शतक में अवान्तर शतकों की भी व्यवस्था है।

३४वें शतक में एकेन्द्रिय जीवों की विग्रहगति के सन्दर्भ में प्रश्न उपस्थित कर उनकी सात प्रकार की विग्रह गति बताई गई है—ऋजुआयत, एगओवंका, दुहओवंका, एगओ खहा, दुहओ खहा, चक्रवाल और अर्ध चक्रवाल। रेखांकन के द्वारा उक्त सातों प्रकार की विग्रहगति को स्पष्टता से समझाया गया है। १२ अवान्तर शतकों वाला प्रस्तुत शतक ६ ढालों में पूरा होता है। इसमें एकेन्द्रिय जीवों का अनेक दृष्टियों से विवेचन किया गया है।

३५वें से ४०वें शतक तक छह शतकों में महायुग्मों के सन्दर्भ में एकेन्द्रिय से लेकर सन्नी पंचेन्द्रिय तक के जीवों का वर्णन है। प्रथम पांच शतकों में प्रत्येक शतक में बारह-बारह अवान्तर शतक हैं। छठे शतक में २१ अवान्तर शतक हैं। कुल मिलाकर अवान्तर शतकों की संख्या ८१ होती है। ढाल संख्या ४९१ और ४९२ में ३५वां शतक है। ३६वां शतक ४९३ वीं ढाल में समाहित है। ३५ से ४० तक चार शतकों की जोड़ ४९४ और ४९५ वीं ढाल में है।

भगवती का ४१वां शतक पूर्ववर्ती शतकों की विषयवस्तु से ही सम्बन्धित है। इसमें क्षुल्लक युग्म और महायुग्म के स्थान पर राशियुग्म की विवक्षा की गई है। राशियुग्म कृतयुग्मज आदि के सन्दर्भ में २४ दंडकों के उपपात आदि की प्ररूपणा की गई है। ढाल संख्या ४९६ से ४९८ तक तीन ढालों में प्रस्तुत शतक के १९६ उद्देशकों की विषय वस्तु को संदृब्ध किया गया है। ढाल संख्या ४९९ का सम्बन्ध भी इसी शतक से है, फिर भी उसे समग्र ग्रन्थ का उपसंहार माना जा सकता है।

'भगवती जोड़' की ५००वीं ढाल में भगवती सूत्र का स्वरूप वर्णित है। यह वर्णन जिस सूत्र पाठ के आधार पर किया है, वह किसी शतक का हिस्सा नहीं है। ४१वें शतक की सम्पूर्ति के बाद दिए गए परिशिष्ट पाठ में सूत्र संख्या नहीं है। इस विलक्षणता के आधार पर एक निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आगमों की विभिन्न वाचनाओं के समय आवश्यकता समझकर भगवती के स्वरूप का निर्धारण किया गया है। यह कार्य कब हुआ ? और किसने किया ? अन्वेषण का विषय है। इसी प्रकार आगमपुरुष की परिकल्पना में जयाचार्य ने जो वार्तिक लिखा है, वह और संघस्तुति का प्रसंग भी उत्तरकालीन प्रतीत होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'भगवती जोड़' में ५०१ ढालें हैं। इसकी आखिरी ढाल में पुस्तक के लिपिकार का नमस्कार, भगवती की उद्देशनविधि—कितने विभागों में वाचना दी गई, और भगवती के शतकों तथा उद्देशकों का संख्यांकन है। पाठकों की सुविधा के लिए शतकों और उद्देशकों की संख्या ग्रन्थ के अन्त में यन्त्र के द्वारा भी दिखा दी गई है। जयाचार्य ने प्रस्तुत ग्रन्थ के अन्तिम मंगल के रूप में अपने पूर्वाचार्यों की स्मृति की है। वि. सं. १९१९ में 'भगवती जोड़' की रचना प्रारम्भ की गई। इसका समापन वि. स. १९२४ में पोष शुक्ला दसमी के दिन रविवार को हुआ। उस समय जयाचार्य का प्रवास बीदासर में था। वहां २१ साधुओं और ९० साध्वियों की उपस्थिति थी। संघ में सब साधु-साध्वियों की संख्या २३२ थी। उनमें ६७ साधु थे और १६५ साध्वियां थीं।

'भगवती जोड़' की ५०१ ढालों की सम्पन्नता के बाद १३ दोहे हैं। उनमें जोड़-रचना के आधारभूत ग्रन्थों का निर्देश है, रचना में किए गए संक्षेप-विस्तार के हेतुओं का उल्लेख है और रचनाकार की अनाग्रही मनोवृत्ति का निदर्शन है। भगवती जैसे दुर्बोध्य और विशाल आगम की जोड़ (अनुवाद, भाष्य) करना जयाचार्य की असाधारण मेधा का स्वयभू साक्ष्य है। उन्होंने जितनी सूक्ष्मता से आगम-समुद्र में अवगाहन किया वह उनकी लक्ष्यबद्धता और एकाग्रता का सूचक है। तिस पर भी पाठकों को अपने ग्रन्थ में संशोधन करने का अधिकार देना उनकी अनिर्वचनीय उदारता की अभिव्यक्ति है। उन्होंने लिखा है—

बलि कोइक पंडित प्रबल ह्वै, आगम देख उदार।
जे विरुद्ध वचन ह्वै सूत्र थी, ते काढै दीजो बार ॥९॥

जयाचार्य की अनाग्रही मनोवृत्ति, सत्यनिष्ठा, पापभीरुता और जिनवाणी के प्रति गहरे समर्पण के बारे में अलग से कुछ लिखने की अपेक्षा नहीं है। भगवती-जोड़ के अन्तिम चार दोहों को एक वातायन मान लिया जाए तो उसमें से झांकती हुई निर्मलता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। प्रस्तुत ग्रन्थ का वह आखिरी वातायन इस प्रकार खुलता है—

विण उपयोग विरुद्ध वच, जे आयो हुवै अजाण।
अहो त्रिलोकी नाथजी ! तसु म्हारै नहिं ताण ॥१०॥
म्हैं तो म्हारी बुद्धि थकी, आख्यो छै शुद्ध जाण।
श्रद्धा न्याय सिद्धान्त नां, दाख्या शुद्ध पिछाण ॥११॥
पिण छद्मस्थपणां थकी, कहियै बारंबार।
प्रभू सिकारै अर्थ प्रति, तेहिज छै तंत सार ॥१२।
अणमिलतो जु आयो हुवै, मिश्र आयो ह्वै कोय।
शंका सहित आयो हुवै, मिच्छामि दुक्कडं मोय ॥१३॥

वि. सं. १९२४ में रची गई 'भगवती जोड़' के प्रकाशन का कार्य वि. सं. २०५४ में पूरा हो रहा है। इस जोड़ की रचना में केवल पांच वर्षों का समय लगा और इसके सम्पादन में पन्द्रह वर्ष लग गए। इस आधार पर आंका जा सकता है कि श्रीमज्जयाचार्य की रचनाधर्मिता कितनी प्रखर थी। जयाचार्य को अपने इस सृजन को रूपायित करने में 'महासती गुलाब' का योग मिला। जयाचार्य रचना कर बोलते जाते और गुलाबसती लिखती रहतीं। इतिहास स्वयं को दोहराता है। तेरापन्थ के नौवें अधिशास्ता आचार्यश्री तुलसी ने 'भगवती जोड़' के संपादन का संकल्प किया और मुझे उनके चरणों में बैठकर काम करने का मौका मिला। मेरे इस काम में सर्वात्मना समर्पित भाव से संभागी रही साध्वी जिनप्रभाजी। सम्पादन के प्रारंभ से लेकर उसके अन्तिम पड़ाव तक उन्होंने जिस निष्ठा, श्रमशीलता और जागरूकता से काम किया है, वह मेरे लिए प्रमोद भावना का विषय है। जोड़ की रचना की अपेक्षा सम्पादन में अधिक समय लगने के कुछ कारण हैं। उनमें सबसे बड़ा कारण था—आचार्यश्री के पास काम करने के लिए समय की सीमा।

परमाराध्य आचार्यश्री के सान्निध्य में बैठकर सम्पादन करने का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि काम में विशेष अवरोध नहीं आया। विषयगत और भाषागत समस्याओं के साथ एक बडी समस्या थी रागों की। आचार्यवर के लिए प्रस्तुत ग्रंथ की विषयवस्तु जितनी सुबोध थी, भाषा भी उतनी ही आत्मसात् थी। रागों का जहां तक प्रश्न है, उनके अधिकृत ज्ञाता एकमात्र वे ही थे। इसलिए हमारी छोटी-बड़ी हर समस्या सहज रूप में समाहित होती गई। उनकी जागृत प्रज्ञा और संचित अनुभवों का लाभ भी हमें मिलता रहा। यदि जोड़ के सम्पादन में आचार्यवर का सतत सान्निध्य और उत्साहवर्धक प्रोत्साहन नहीं रहता तो इसमें कितना समय लगता, अनुमान लगाना भी कठिन हो रहा है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी का मार्गदर्शन इस यात्रा के हर मोड़ पर दीपक बनकर हमारा पथ प्रशस्त करता रहा है। पूज्यवरों के प्रेरणा पाथेय से निरन्तर गतिशील रहकर हमने अपनी एक मंजिल प्राप्त कर ली, यह हमारे लिए सन्तोष की बात है। 'भगवती जोड़' का समग्र रूप से सात खण्डों में प्रकाशन होने के बाद भी हमारा काम पूरा नहीं हुआ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यवर के निर्देशानुसार इस शृंखला में एक खण्ड और तैयार किया जाएगा। उस खण्ड में अनेक परिशिष्टों के साथ जोड़ का समीक्षात्मक अध्ययन भी रहेगा।

जोड़ के मुद्रण में राजस्थानी, संस्कृत और प्राकृत—इन तीनों भाषाओं को कंपोज करना काफी जटिल काम था। जैन विश्व भारती प्रेस के कंपोज कर्मियों ने पूरी निष्ठा के साथ काम किया, इस कारण 'भगवती जोड़' का मुद्रण समीचीन रूप में हो सका। अन्यथा प्रकाशन कार्य और अधिक विलम्बित हो जाता।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सम्पादन यात्रा में साध्वी जिनप्रभाजी अभिन्न रूप से साथ रही ही हैं। मुनि हीरालालजी, साध्वी स्वर्णरेखाजी और साध्वी स्वस्तिकाश्रीजी की संभागिता ने भी यात्रापथ को सुगम बनाया है। जोड़ में प्रयुक्त ग्रन्थों के सन्दर्भ-स्थल खोजने का काम मुनि हीरालालजी ने किया। इस क्षेत्र में उन्होंने अपनी जो पहचान बनाई है, वह उनकी अध्यवसायिता का फलित है। साध्वी स्वर्णरेखाजी ने जोड़ के समानान्तर रखे गए मूलपाठ और वृत्तिवाले भाग की शुद्ध प्रतिलिपि तैयार की और साध्वी स्वस्तिकाश्रीजी ने साध्वी जिनप्रभाजी के साथ प्रूफ निरीक्षण में श्रम किया। सहभागिता और श्रमशीलता हमारी संस्कृति के हिस्से हैं। हम जब तक इनसे जुड़कर रहेंगे, हमारे जीवन से संस्कृति का पल्लवन होता रहेगा। यही हमें अभीष्ट है। पूज्यवरों का आशीर्वाद और अनुग्रह हमें वांछित मंजिल की दिशा में आगे बढ़ाएगा, ऐसा विश्वास है।

१५ अगस्त, १९९७
गंगाशहर

साध्वी प्रमुखा कनकप्रभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषयानुक्रम

विषय	पृष्ठ
लेश्या पद	३
संसारी जीव के चौदह प्रकार	५
दंडकों में समयोगी विषमयोगी	७
योग के प्रकार	९
योग में अल्पबहुत्व	१०
द्रव्य के प्रकार	११
जीव के अजीव-परिभोग	११
चौबीस दण्डकों के अजीव-परिभोग	१२
लोक में अनन्त द्रव्यों का अवगाह	१३
पुद्गल-चयादि	१४
पुद्गल-ग्रहण	१४
संस्थान के प्रकार	१७
संस्थानों का अल्पबहुत्व द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ की अपेक्षा	१८
रत्नप्रभा आदि संदर्भ में संस्थान	२०
वृत्त संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश	२२
त्र्यस्र संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश	२४
चतुरस्र संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश	२६
आयत संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश	२७
परिमंडल संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश	२९
घन परिमंडल	३०
संस्थानों के कृतयुग्म आदि	३०
श्रेणी-परिमाण	३६
अनुश्रेणी विश्रेणी गति	४३
आवास नारक और देवों के	४४
गणिपिटक	४५
पांच गति का अल्पबहुत्व	४९
अष्ट गति का अल्पबहुत्व	४९
इन्द्रियों के सन्दर्भ में अल्पबहुत्व	५०
काय के संदर्भ में अल्पबहुत्व	५०
जीव यावत पर्यव का अल्पबहुत्व	५०
आयुष्य कर्म के बंधक-अबंधक आदि जीवों का अल्पबहुत्व	५३
युग्म के प्रकार	५३
चौबीस दण्डक और सिद्धों के युग्म	५३
षट् द्रव्यों के युग्म	५४
षट् द्रव्यों का अल्पबहुत्व	५५
षट् द्रव्यों का लोक में अवगाहन कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में	५६
रत्नप्रभा यावत ईषत्प्राग्भारा का अवगाहन कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	५७
जीव आदि छब्बीस पदों की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	५७
जीव आदि छब्बीस पदों की क्षेत्र सम्बन्धी पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	५९
जीव आदि छब्बीस पदों की पृच्छा कृतयुग्म आदि समय-स्थिति के संदर्भ में	६०
जीव आदि छब्बीस पदों की वर्णादि सम्बन्धी पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	६२
जीव आदि छब्बीस पदों की बारह उपयोग सम्बन्धी पृच्छा कृतायुग्म आदि के सन्दर्भ में	६३
शरीर पद	६५
जीवों की सकम्पता निष्कम्पता	६५
पुद्गल पद	६७
पुद्गल का अल्पबहुत्व द्रव्यार्थ की अपेक्षा से	६८
पुद्गल का अल्पबहुत्व प्रदेशार्थ की अपेक्षा से	६९
पुद्गल का अल्पबहुत्व क्षेत्र की अपेक्षा	६९
पुद्गल का अल्पबहुत्व काल की अपेक्षा	७०
पुद्गल का अल्पबहुत्व भाव की अपेक्षा	७०
पुद्गल का अल्पबहुत्व	७१
एक प्रदेशावगाही यावत असंख्य प्रदेशावगाही पुद्गल का अल्पबहुत्व	७२
एक समयस्थिति यावत असंख्यसमयस्थितिक पुद्गल का अल्पबहुत्व	७३
वर्ण, गंध, रस स्पर्श की अपेक्षा से पुद्गल का अल्पबहुत्व	७४
पुद्गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	७५
क्षेत्र की अपेक्षा से पुद्गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	७९
काल की अपेक्षा से पुद्गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	८१
भाव की अपेक्षा से पुद्गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में	८१
पुद्गल का सार्ध-अनर्ध पद	८२
पुद्गल की सकम्पता-निष्कम्पता	८४
सकम्प-निष्कम्प पुद्गलों का अल्पबहुत्व	८६
देश कम्पता, सर्वकम्पता, निष्कम्पता	८८
पुद्गल की सकम्पता निष्कम्पता काल की अपेक्षा	८९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सकम्प निष्कम्प पुद्गल का अन्तर ९०
सकम्प निष्कम्प पुद्गल का अल्पबहुत्व ९१
अस्तिकाय के मध्यप्रदेश ९४
पर्यव पद ९५
काल पद ९६
निगोद पद १०१
नाम (भाव) पद १०२
निर्ग्रंथ के प्रकार १०३
पुलाक निर्ग्रंथ के प्रकार १०३
बकुश निर्ग्रंथ के प्रकार १०४
कुशील निर्ग्रन्थ के प्रकार १०५
निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ के प्रकार १०६
स्नातक निर्ग्रन्थ के प्रकार १०७
निर्ग्रन्थ में वेद १०८
निर्ग्रन्थ में राग ११०
निर्ग्रन्थ में कल्प १११
निर्ग्रन्थ में चारित्र ११२
निर्ग्रन्थ में प्रतिसेवना ११३
कषायकुशील की अप्रतिसेवकता ११६
निर्ग्रन्थ में ज्ञान ११७
निर्ग्रन्थ तीर्थ में या अतीर्थ में ? ११८
निर्ग्रन्थ में लिंग ११९
निर्ग्रन्थ में शरीर ११९
निर्ग्रन्थ किस क्षेत्र में ? १२०
निर्ग्रन्थ किस काल में ? १२१
निर्ग्रन्थ की गति १२५
निर्ग्रन्थ के संयम-स्थान १२७
निर्ग्रन्थ से संयम स्थान का अल्पबहुत्व १२८
निर्ग्रन्थ में निकर्ष-चारित्र के पर्यव १२८
पुलाक का पुलाक के साथ सन्निकर्ष १२८
पुलाक का अन्य निर्ग्रन्थों के साथ सन्निकर्ष १३१
बकुश का पुलाक के साथ सन्निकर्ष १३२
बकुश का बकुश के साथ सन्निकर्ष १३२
बकुश का शेष अन्य निर्ग्रन्थों के साथ सन्निकर्ष १३२
निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ के साथ पुलाक यावत कषायकुशील का सन्निकर्ष १३२
निर्ग्रन्थ का निर्ग्रन्थ और स्नातक के साथ सन्निकर्ष १३३
स्नातक का पुलाक आदि निर्ग्रन्थों के साथ सन्निकर्ष १३३
स्नातक का स्नातक के साथ सन्निकर्ष १३३
निर्ग्रन्थों के चारित्र-पर्यवों का अल्पबहुत्व १३३
निर्ग्रन्थों में योग १३४
निर्ग्रन्थ में उपयोग १३४
निर्ग्रन्थ में कषाय १३४
निर्ग्रन्थों में लेश्या १३५
निर्ग्रन्थों में परिणाम १३७
निर्ग्रन्थों में कर्म प्रकृति का बन्ध १४०
निर्ग्रन्थों में कर्मप्रकृति का वेदन १४१
निर्ग्रन्थों में कर्मप्रकृति की उदीरणा १४१
निर्ग्रन्थों में उपसंपद्हान १४३
निर्ग्रन्थों में संज्ञा १४४
निर्ग्रन्थों में आहारक अनाहारक १४६
निर्ग्रन्थों में भव १४६
निर्ग्रन्थों के आकर्ष-चारित्र की प्राप्ति १४७
निर्ग्रन्थों का काल १४९
निर्ग्रन्थों में अन्तर १५१
निर्ग्रन्थों में समुद्घात १५२
निर्ग्रन्थों का क्षेत्र १५३
निर्ग्रन्थों द्वारा लोक की स्पर्शना १५४
निर्ग्रन्थ किस भाव में ? १५४
निर्ग्रन्थों का परिमाण १५४
निर्ग्रन्थों में अल्पबहुत्व १५६
संयत के प्रकार १५८
संयतों का स्वरूप १६०
संयत में वेद १६१
संयत में राग १६२
संयत में कल्प १६२
संयत में निर्ग्रन्थ १६२
संयत में प्रतिसेवना १६३
संयत में ज्ञान १६७
संयत में श्रुत की अर्हता १६७
संयत तीर्थ में या अतीर्थ में ? १६८
संयत में लिंग १६९
संयत में शरीर १६९
संयत किस क्षेत्र में ? १७०
संयत किस काल में ? १७०
संयत की गति १७२
संयत के संयम-स्थान १७४
संयमस्थानों का अल्पबहुत्व १७५
संयत के निकर्ष-चारित्रपर्यव १७६
संयतों के चारित्र-पर्यवों का अल्पबहुत्व १७७
संयत में योग १७८
संयत में उपयोग १७८
संयत में कषाय १७९
संयत में लेश्या १७९
संयत में परिणाम १८०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयत के कर्मप्रकृति का बन्ध	१८३
संयत के कर्मप्रकृति का वेदन	१८३
संयत के कर्मप्रकृति की उदीरणा	१८४
संयत के उपसंपद्हान	१८४
संयत में संज्ञा	१८६
संयत आहारक या अनाहारक	१८६
संयत के भव	१८७
संयत के आकर्ष-चारित्र की प्राप्ति	१८७
संयत का काल	१९०
संयत का अन्तर	१९४
संयत में समुद्घात	१९७
संयत का क्षेत्र	१९८
संयत द्वारा लोक की स्पर्शना	१९८
संयत किस भाव में	१९८
संयत का परिमाण	१९९
संयत का अल्पबहुत्व	२०१
प्रतिसेवना पद	२०२
आलोचना के दोष	२०६
आलोचक की अर्हता	२०७
आलोचनादायक की अर्हता	२०८
सामाचारी पद	२१०
प्रायश्चित्त पद	२११
तप पद	२१३
बाह्य तप के प्रकार	२१३
अनशन	२१३
अवमोदरिका	२१४
भिक्षाचर्या	२१६
रस परित्याग	२१७
कायक्लेश	२१७
प्रतिसंलीनता	२१७
आभ्यन्तर तप के प्रकार	२२०
प्रायश्चित्त	२२०
विनय के प्रकार	२२०
ज्ञान विनय	२२०
दर्शन विनय	२२१
चारित्र विनय	२२३
मन विनय	२२३
वचन विनय	२२४
काय विनय	२२५
लोकोपचार विनय	२२७
वैयावृत्य	२२८
स्वाध्याय	२२८
ध्यान के प्रकार	२२९
आर्त्तध्यान	२२९
रौद्रध्यान	२३०
धर्म ध्यान	२३१
धर्म ध्यान के लक्षण	२३१
धर्म ध्यान के आलम्बन	२३२
धर्म ध्यान की अनुप्रेक्षा	२३२
शुक्ल ध्यान	२३२
शुक्ल ध्यान के लक्षण	२३४
शुक्ल ध्यान के आलम्बन	२३४
शुक्ल ध्यान की अनुप्रेक्षा	२३५
व्युत्सर्ग	२३६
नैरयिक आदि के पुनर्भव	२३७
भवसिद्धिक का पुनर्भव	२४०
अभवसिद्धिक का पुनर्भव	२४०
सम्यक्दृष्टि का पुनर्भव	२४०
मिथ्यादृष्टि का पुनर्भव	२४०
सम्बन्ध योजना	२४५
विषयवस्तु	२४५
पाप-कर्म बन्ध-अबन्ध पद	२४५
लेश्या द्वार	२४६
पाक्षिक द्वार	२४७
दृष्टि द्वार	२४८
ज्ञान द्वार	२४८
अज्ञान द्वार	२४९
संज्ञोपयुक्त द्वार	२४९
वेद द्वार	२४९
कषाय द्वार	२५०
योग द्वार	२५०
उपयोग द्वार	२५०
चौबीस दण्डकों के बन्ध-अबन्ध	२५१
समुच्चय जीव में पाप कर्म बंध-अबंध	२५३
नारकी में ३५ बोल	२५४
आठ कर्मों के सन्दर्भ में बन्ध-अबन्ध	२५६
अनन्तरोपपन्नक: बन्ध-अबन्ध	२६७
परम्परोपपन्नक: बन्ध-अबन्ध	२६९
अनन्तरावगाढ: बन्ध-अबन्ध	२७०
परम्परावगाढ: बन्ध-अबन्ध	२७१
अनन्तराहारक: बन्ध-अबन्ध	२७१
परम्पराहारक: बन्ध-अबन्ध	२७१
अनन्तरपर्याप्तक: बन्ध-अबन्ध	२७२
परम्परपर्याप्तक: बन्ध-अबन्ध	२७२
चरम: बन्ध-अबन्ध	२७२

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अचरम: बन्ध-अबन्ध २७३
अचरम के संदर्भ में आठ कर्म: बन्ध-अबन्ध २७४
पापकर्म: करण-अकरण पद २७९
पापकर्म: समर्जन-समाचरण पद २८३
पापकर्म: प्रारम्भ और अन्त २९१
समवसरण पद २९९
जीव की क्रियावादिता आदि ३००
दंडकों में क्रियावादिता आदि ३०१
समवसरणगत जीवों का आयुष्यबन्ध ३११
समीक्षा अशुभलेश्या में आयुबन्ध की ३१२
समवसरणगत २४ दंडकों का आयुबन्ध ३१६
समवसरणगत जीवों का भव्यत्व-अभव्यत्व ३२०
समवसरणगत २४ दंडकों में भव्यत्व-अभव्यत्व ३२२
अनन्तरोपपन्न २४ दंडकों में क्रियावादिता आदि ३२३
परम्परोपपन्न २४ दंडकों में क्रियावादिता आदि ३२४
क्षुल्लक युग्म के प्रकार ३२९
क्षुल्लक युग्म नैरयिकों का उपपात ३३०
क्षुल्लक युग्म कृष्णलेश्यी नैरयिकों का उपपात ३३३
क्षुल्लक युग्म नीललेश्यी नैरयिकों का उपपात ३३४
क्षुल्लक युग्म कापोतलेश्यी नैरयिकों का उपपात ३३५
क्षुल्लक युग्म भवसिद्धिक आदि नैरयिकों का उपपात ३३५
क्षुल्लकयुग्म नैरयिकों का उद्वर्तन ३४१
एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार ३४५
एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति ३४६
अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार ३४७
अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति ३४८
परम्परोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार ३४८
परम्परोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों की कर्मप्रकृति ३४९
अनन्तरावगाढ आदि एकेन्द्रिय जीवों की कर्म प्रकृति ३४९
कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार ३५०
कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति ३५०
अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति ३५१
परम्परोपपन्न कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति ३५१
नीललेश्यी एकेन्द्रिय के कर्म प्रकृति ३५२
कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति ३५२
भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के प्रकार ३५२
भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति ३५२
कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक के प्रकार ३५३
कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति ३५३
अनंतरोपपन्न कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्म प्रकृति ३५३
नीललेश्यी आदि भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्म प्रकृति ३५४
एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति (क) ३५९
एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति (ख) ३६६
लोक के चरमान्त की अपेक्षा से एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति ३७२
एकेन्द्रिय जीवों के स्थान ३७६
एकेन्द्रिय जीवों के कर्मप्रकृति का बन्ध और वेदन ३७७
एकेन्द्रिय में उपपात ३७८
एकेन्द्रिय में समुद्घात ३७८
एकेन्द्रिय जीवों के कर्म बन्ध का अल्पबहुत्व ३७८
अनंतरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार, स्थान आदि ३८२
परंपरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार, स्थान आदि ३८५
कृष्णलेश्यी आदि एकेन्द्रिय के प्रकार, स्थान आदि ३८७
महायुग्म के प्रकार ३९३
एकेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा (क) ४०२
एकेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा (ख) ४०८
द्वीन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४१९
त्रीन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४२५
चतुरिन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४२५
असन्नी पंचेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४२६
सन्नी पंचेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४२७
कृष्णलेश्यी आदि सन्नीपंचेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४३१
राशियुग्म के प्रकार ४४१
राशियुग्मकृतयुग्मज २४ दण्डकों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४४१
राशियुग्म त्र्योज राशिवाले २४ दण्डकों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४४५
राशियुग्म-द्वापरयुग्म राशिवाले २४ दंडकों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४४५
राशियुग्म-कल्योज राशि वाले २४ दंडकों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४४६
कृष्णलेश्यी आदि राशियुग्म-कृतयुग्मज २४ दंडकों में उपपात आदि की प्ररूपणा ४४६
भवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मज २४ दंडकों में ४४९
अभवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मज २४ दंडकों में ४५०
सम्यक् दृष्टि राशियुग्म कृतयुग्म २४ दंडकों में ४५१
मिथ्यादृष्टि राशियुग्म कृतयुग्मज २४ दंडकों में ४५१
कृष्णपाक्षिक राशियुग्म कृतयुग्मज २४ दंडकों में ४५१
अर्हत्-वाणी की अपूर्वता ४५२
भगवती सूत्र का स्वरूप ४५४
आगम पुरुष की परिकल्पना ४५५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संघ की स्तुति ४५६
पुस्तक लिपिकार का नमस्कार ४५७
भगवती की उद्देश विधि ४५७
भगवती सूत्र के शतक और उद्देशक ४५८
जोड़ समापन मंगल ४५९
प्रयुक्त स्रोत निर्देश ४६०
शतक-उद्देशक यंत्र ४६१
परिशिष्ट
नियंठा नीं जोड़ ४६५
संजया नीं जोड़ ४७३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचविंशति शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचविंशति शतक

ढाल : ४३३

दूहा

१. कह्यो शतक चउवीसमों, अर्थ थकी अवधार।
अथ पणवीसम शतक नों, आरंभियै अधिकार।।

२. इम अभिसंबंध तेह तणुं, पूर्व शतक विषेह।
उत्पातादिक द्वार करि, जीव चिंतव्या जेह।।

३. फुन तेहिज जीवादि नां, लेश्यादिक जे भाव।
इह पणवीसम शतक में, चिंतवियै वच साव।।

४. ए संबंध करि एहनां, वर द्वादश उद्देश।
उद्देशक संग्रह तणी, गाथा प्रथम कहेश।।

१. व्याख्यातं चतुर्विंशतितमशतम्, अथ पञ्चविंशतितम-मारभ्यते, (वृ. प. ८५२)

२. तस्य चैवमभिसम्बन्धः—प्राक्तनशते जीवा उत्पादादि-द्वारैश्चिन्तिता (वृ. प. ८५२)

३. इह तु तेषामेव लेश्यादयो भावाश्चिन्त्यन्ते (वृ. प. ८५२)

४ इत्येवंसम्बन्धस्यास्योद्देशकसङ्ग्रहगाथेयम्— (वृ. प. ८५२)

लेश्या पद

५. प्रथम उदेशक नैं विषे, कह्या अर्थ लेस्सादि।
लेश उद्देशक नाम ए, ते माटै संवादि।।

५. १. लेसा य
'लेसा य' त्ति प्रथमोद्देशके लेश्यादयोऽर्था वाच्या इति लेश्योद्देशक एवायमुच्यते १ (वृ. प. ८५२)

६. सर्व विषे इम भाविवुं, द्वितीय द्रव्य विचार।
संस्थानादिक अर्थ जे, तृतीय उद्देश मझार।।

६. २. दव्व ३. संठाण
'दव्व' त्ति द्वितीये द्रव्याणि वाच्यानि २ 'संठाण' त्ति तृतीये संस्थानादयोऽर्थाः ३ (वृ. प. ८५२)

७. कृतयुग्मादि अर्थ जे, तुर्य उदेश मझार।
पंचमुद्देशक नैं विषे, वर पर्याय विचार।।

७. ४. जुम्म ५. पज्जव
'जुम्म' त्ति चतुर्थे कृतयुग्मादयोऽर्थाः ४ 'पज्जव' त्ति पञ्चमे पर्यवाः ५ (वृ. प. ८५२)

८. षष्ठमुद्देशक नैं विषे, पुलाक प्रमुख निर्ग्रंथ।
सप्तम सामायिक प्रमुख, संयत पंच सुपंथ।।

८. ६. नियंठ ७. समणा य।
'नियंठ' त्ति षष्ठे पुलाकादिका निर्ग्रन्थाः ६ 'समणा य' त्ति सप्तमे सामायिकादिसंयतादयोऽर्थाः ७ (वृ. प. ८५२)

९. नारकादि जिम ऊपजै, ओघे भव्य इतरादि।
विशेषण करि रहित जे, अष्टमुद्देश संवादि।।

९. ८. ओहे
'ओहे त्ति' अष्टमे नारकादयो यथोत्पद्यन्ते तथा वाच्यं, कथम् ? ओघे—सामान्ये वर्त्तमाना भव्याभव्यादिविशेषणैरविशेषिता इत्यर्थः ८ (वृ. प. ८५२)

१०. भव्य भावे जे वर्त्तता, भव्य विशेषण जेह।
नारकादि जिम ऊपजै, तिम कहिवुं नवमेह।।

१०,११. ९,१०. भवियाभविए,
'भविए' त्ति नवमे भव्यविशेषणा नारकादयो यथोत्पद्यन्ते तथा वाच्यम् ९ 'अभविए' त्ति दशमेऽभव्यत्वे वर्त्तमाना अभव्यविशेषणा इत्यर्थः १० (वृ. प. ५८२)

११. अभव्य भावे वर्त्तता, अभव्य कहियै ताय।
तेह विशेषण करि अर्थ, दशम उद्देशे आय।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. एकादशमुद्देशके, सम्यग्दृष्टिज सोय।
तेह विशेषण करि जिके, कहिवा अर्थ सुजोय।।

१२. ११. सम्मा
'सम्म' त्ति एकादशे सम्यग्दृष्टिविशेषणाः ११।
(वृ. प. ८५२)

१३. मिथ्यात्वे वर्त्तमान जे, मिथ्यादृष्टि कहाय।
तेह विशेषण करि अर्थ, द्वादशमें फुन आय।।

१३. १२. मिच्छे य
'मिच्छे य' त्ति द्वादशे मिथ्यात्वे वर्त्तमाना मिथ्यादृष्टिविशेषणा इत्यर्थः १२ (वृ. प. ८५२)

१४. पणवीसम शत नें विषे, बार उदेशक अर्थ।
प्रथम उद्देशक नों हिवै, कहियै आदि तदर्थ।।

१४. उद्देसा संग्रहणीगाथा
'उद्देस' त्ति एवमिह शते द्वादशोद्देशका भवन्तीति। तत्र प्रथमोद्देशको व्याख्यायते, (वृ. प. ८५२)

१५. तिण काले नें तिण समय, नगर राजगृह ताम।
यावत गौतम इम वदै, श्री जिन प्रति शिर नाम।।

१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव एवं वयासी—

*प्रभुजी वागरै अमृत वाणी।
प्रभुजी रा शीष गोयम गुणखाणी।। (ध्रुपदं)

१६. हे भगवंतजी! केतली जी, लेश्या परूपी स्वाम?
जिन कहै षट लेश्या कही जी, कृष्ण प्रथम नों नाम।
गुणीजन! कृष्ण प्रथम नों नाम।।

१६. कति णं भंते! लेस्साओ पण्णत्ताओ?
गोयमा! छल्लेसाओ पण्णत्ताओ, तं जहा— कण्हलेसा

१७. प्रथम शतक में जिम कह्यो जी, द्वितीय उद्देशक मांहि।
तिमहिज कहिवूं छै इहां जी, लेश विभागज ताहि।।
गुणीजन! लेश विभागज ताहि।।

१७. जहा पढमसए बितिए उद्देसए तहेव लेस्साविभागो।

१८. अल्पाबहुत्व पिण तेहनीं जी, ते इहविध कहिवाय।
प्रभु! जीव सलेशी कृष्णादि नीं जी, इत्यादि अल्पबहुत्वाय।।

१८. अप्पाबहुगं च
'अप्पाबहुयं च' त्ति तच्चैवम्—'एएसि णं भंते! जीवाणं सलेस्साणं कण्हलेस्साण' मित्यादि,
(वृ. प. ८५२)

१९. किहां लग कहिवुं तिको जी, जाव चतुर्विध देव।
अल्पबहुत्व तेहनीं जिका जी, ते कहिवी स्वयमेव।।

१९. जाव चउव्विहाणं देवाणं
अथ कियद्दूरं तद्वाच्यमित्याह—'जाव चउव्विहाणं देवाण' मित्यादि, (वृ. प. ८५२)

२०. भवणपति नें व्यंतरा जी, ज्योतिषी नें वैमानीय।
ए च्यारूंइ देव नीं जी, अल्पबहुत्व कथनीय।।

२०. तच्चैवम्—'एएसि णं भंते! भवणवासीणं वाणमंतराणं जोइसियाणं वेमाणियाणं देवाण य
(वृ. प. ८५२)

२१. फुन चिहुं विध देवी तणीं जी, मिश्र तणीं पिण जोय।
अल्पबहुत्व कहिवी इहां जी, वर जिन वच अवलोय।।

२१. चउव्विहाणं देवीणं मीसगं अप्पाबहुगंति।
(श. २५।१)

वा०—प्रथम शतक में ए बात आवी। तेहनों पुनरुच्चारण किम? इम प्रश्नोत्तर करता टीकाकार कहै छै—

वा.—अथ प्रथमशते उक्तमप्यासां स्वरूपं कस्मात्पुनरप्युच्यते? उच्यते प्रस्तावान्तरायातत्वात्,
(वृ. प. ८५२)

दूहा

२२. अल्पबहुत्व प्रकरण कह्यु, लेश्या तणोंज एह।
ते संसारिक नां जोग्य नुं, अल्पबहुत्व हिव लेह।।

२२. इह संसारसमापन्नजीवानां योगाल्पबहुत्वं वक्तव्यमिति तत्प्रस्तावाल्लेश्याल्पबहुत्वप्रकरणमुक्तं,
(वृ. प. ८५२)

*** लय : पंथीड़ो बोलै अमृतवाणी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संसारी जीव के चौदह प्रकार

२३. *जीव संसार-समापन्ना जी, कतिविध हे भगवान ?
जिन कहै चवद भेदे कह्या जी, सांभल तूं धर कान ।।

२३. कतिविहा णं भंते ! संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चोद्दसविहा संसारसमावन्नगा जीवा पण्णत्ता, तं जहा—

२४. सूक्ष्म अपर्याप्ता कह्या जी, सूक्ष्म पर्याप्त ताम ।
बादर अपजत्तगा वलि जी, बादर पजत्तगा आम ।।

वा० —सूक्ष्म अपर्याप्तो किणनैं कहियै—सूक्ष्म नाम कर्म नां उदय थकी अनैं अपर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी सूक्ष्म अपर्याप्त कहियै[1] । इम हिज सूक्ष्म नाम कर्म नां उदय थकी अनैं पर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी सूक्ष्म पर्याप्त कहियै[2] । बादर नाम कर्म नां उदय थकी अनैं अपर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी बादर अपर्याप्त कहियै[3] । बादर नाम कर्म नां उदय थकी अनैं पर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी बादर पर्याप्त कहियै[4] । ए च्यारूंइ जीव रा भेद पृथ्वी आदि एकेंद्रिय नां जाणवा ।

२४. १. सुहुमा अप्पज्जत्तगा २. सुहुमा पज्जत्तगा
३. बादरा अप्पज्जत्तगा ४. बादरा पज्जत्तगा

वा.—'सुहुम' त्ति सूक्ष्मनामकर्मोदयात् 'अपज्जत्तग' त्ति अपर्याप्तका अपर्याप्तकनामकर्मोदयात्, एवमितरे तद्विपरीतत्वात् 'बायर' त्ति बादरनामकर्मोदयात्, एते च चत्वारोऽपि जीवभेदाः पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां,
(वृ. प. ८५३)

२५. बेइंदिय अपजत्तगा वलि जी, बेइंदियाज पर्याप्त ।
एवं तेइंदिया जीव छै जी, इम चउरिंदिया प्राप्त ।।

वा०—बेंइंद्री नाम कर्म नां उदय थकी अनैं अपर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी बेइंद्रिय अपर्याप्त कहियै[5] । बेइंद्रिय नामकर्म नां उदय थकी अनैं पर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी बेइंद्रिय पर्याप्त कहियै ।[6] तेइन्द्रिय नाम कर्म नां उदय थकी अनैं अपर्याप्त नामकर्म नां उदय थकी तेइन्द्रिय अपर्याप्त कहियै[7] । तेइन्द्रिय नाम कर्म नां उदय थकी अनैं पर्याप्त नाम कर्म नां उदय थकी तेइन्द्रिय पर्याप्त कहियै[8] । चउरिंद्रिय नामकर्म नां उदय थकी अनैं अपर्याप्त नामकर्म नां उदय थकी चउरिंद्रिय अपर्याप्त कहियै[9] । चउरिंद्री नाम कर्म नां उदय थकी अनैं पर्याप्त नामकर्म नां उदय थकी चउरिंद्रिय पर्याप्त कहियै[10] ।

२५. ५. बेइंदिया अप्पज्जत्तगा ६. बेइंदिया पज्जत्तगा ७. तेइंदिया अप्पज्जत्तगा ८. तेइंदिया पज्जत्तगा ९. चउरिंदिया अप्पज्जत्तगा १०. चउरिंदिया पज्जत्तगा।

वा.—'जघन्नुक्कोसगस्स जोगस्स' त्ति जघन्यो—निकृष्टः काञ्चिद्व्यक्तिमाश्रित्य स एव च व्यक्त्यन्तरापेक्षयोत्कर्षः—उत्कृष्टो जघन्योत्कर्षः तस्य योगस्य — वीर्यान्तरायक्षयोपशमादिसमुत्थकायादिपरिस्पन्दस्य एतस्य च योगस्य चतुर्दशजीवस्थानसम्बन्धाज्जघन्योत्कर्षभेदाच्चाष्टाविंशतिविधस्याल्प-बहुत्वादि जीवस्थानकविशेषाद्भवति, (वृ. प. ८५३)

२६. असन्नी पंचिंद्रिय अपज्जत्ता जी, असन्नी पंचेंद्री पर्याप्त ।
सन्नी पंचिंद्रिय अपजत्तगा जी, सन्नी पं. पजत्तगा प्राप्त ।।

२६. ११. असण्णिपंचिंदिया अप्पज्जत्तगा १२. असण्णिपंचिंदिया पज्जत्तगा १३. सण्णिपंचिंदिया अप्पज्जत्तगा १४. सण्णिपंचिंदिया पज्जत्तगा ।
(श. २५।२)

२७. हे प्रभु ! ए चवदश विधा जी, जीव संसारिक पेख ।
जघन्योत्कृष्टज जोग नां जी, कुण-कुण जाव विशेख ।।

२७. एतेसि णं भंते ! चोद्दसविहाणं संसारसमावण्णगाणं जीवाणं जहण्णुक्कोसगस्स जोगस्स कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?

वा०—जघन्य ते थोड़ुं अनैं उत्कृष्ट ते घणूं तेहनैं जघन्योत्कृष्ट कहियै । हिवैं जोग किण नैं कहियै ? वीर्य अन्तराय नां क्षयोपशम थकी तथा क्षायक थकी ऊपनी वीर्य शक्ति ते कायादि परिस्पन्द—चंचलता लक्षण ते जोग कहियै । ते जघन्य तथा उत्कृष्ट भेद थी चवदै जीव रा भेद संघाते जोड़्यां २८ प्रकारे अल्प-बहुत्वादिक जीव-स्थानक विशेष थकी ह्वै, ते कहै छै—जघन्य तथा उत्कृष्ट जोग ते कुण-कुण थकी थोड़ा हुवै तथा घणां हुवै तथा तुल्य हुवै तथा विशेष अधिक हुवै ? इम प्रश्न पूछ्ये—

२८. जिन कहै थोड़ा सर्व थी जी, सूक्ष्म एकेंद्रिय तास ।
अपर्याप्तो छै तेहनों जी, जघन्य जोग सुविमास ।।

२८. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए

---

*लय : पंथीड़ो बोलै अमृतवाणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—सूक्ष्म पृथ्व्यादिक नां शरीर नां सूक्ष्मपणां थकी तेहनैं पिण अपर्याप्तपणैं करी असंपूर्णपणां थकी तिहां पिण जघन्य नैं वांछितपणां थकी सर्व आगल कहिस्यै जे जोग तेह थकी थोड़ो, ते माटै सर्व थी थोड़ो जघन्य जोग हुवै ।

ते जघन्य जोग वलि विग्रह गति नैं विषे कार्मण नैं औदारिक पुद्गल ग्रहण प्रथम समय वर्त्तता हुवै तिवार पछै वलि समय वृद्धि करिकै मध्यम योग हुवै । ज्यां लगे सर्वोत्कृष्ट योग न हुवै त्यां लगै मध्यम जोग कहियै ।

वा.—तत्र 'सव्वत्थोवे' इत्यादि सूक्ष्मस्य पृथिव्यादेः सूक्ष्मत्वात् शरीरस्य तस्याप्यपर्याप्तकत्वेनासम्पूर्णत्वात् तत्रापि जघन्यस्य विवक्षितत्वात् सर्वेभ्यो वक्ष्यमाणेभ्यो योगेभ्यः सकाशात्स्तोकः—सर्वस्तोको भवति जघन्यो योगः,

स पुनर्वैग्रहिककार्म्मणऔदारिकपुद्गलग्रहणप्रथमसमयवर्ती, तदनन्तरं च समयवृद्धयाऽजघन्योत्कृष्टो यावत्सर्वोत्कृष्टो न भवति, (वृ. प. ८५३)

२९. तेहथी बादर एकेंद्रिय तणों जी, अपजत्त नों जघन्य जोग ।
असंख्यातगुणो आखियो जी, बादरपणां थी प्रयोग ।।

२९. २. बादरस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

३०. तेहथी बेइंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों जोय ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो होय ।।

३०. ३. बेंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

३१. तेहथी तेइंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों पेख ।
जघन्य जोग छै जेहनुं जी, ते असंख्यातगुणो लेख ।।

३१. ४. एवं तेइंदियस्स

३२. तेहथी चउरिंदिय तणों जी, अपर्याप्ता नों जेह ।
जघन्य जोग कहियै अछै जी, असंख्यातगुणो तेह ।।

३२. ५. एवं चउरिंदियस्स

३३. तेहथी असन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों विचार ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो धार ।

३३. ६. असण्णिस्स पंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

३४. तेहथी सन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों उवेख ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो देख ।।

३४. ७. सण्णिस्स पंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

३५. तेहथी सूक्ष्म एकेंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों प्रमाण ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो जाण ।।

३५. ८. सुहुमस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

३६. तेहथी बादर एकेंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों प्रचार ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो धार ।।

३६. ९. बादरस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

३७. तेहथी सूक्ष्म एकेंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों आम ।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, असंख्यातगुणो ताम ।।

३७. १०. सुहुमस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

३८. तेहथी बादर एकेंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों जोय ।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो सोय ।।

३८. ११. बादरस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

३९. तेहथी सूक्ष्म एकेंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों पेख ।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो देख ।।

३९. १२. सुहुमस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

४०. तेहथी बादर एकेंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों पाय ।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंखगुणो अधिकाय ।।

४०. १३. बादरस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

४१. तेह थकी बेइंद्री तणों जी, पर्याप्ता नों ताय ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंखगुणो अधिकाय ।।

४१. १४. बेंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

४२. तेहथी तेइंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों विमास ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो तास ।।

४२. १५. एवं तेंदियस्स,

४३. तेहथी चउरिन्दिय जीव नों जी, पर्याप्ता नों विचार ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंखगुणो अवधार ।।

४४. तेहथी असन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों कहाय ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो पाय ।।

४५. तेहथी सन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों पेख ।
जघन्य जोग छै जेहनों जी, ते असंखगुणा सुविशेख ।।

४३-४५. एवं जाव १८. सण्णिपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. तेहथी बेइंद्रिय जीव नों जी, अपर्याप्ता नों आम।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो ताम ।।
४७. तेहथी तेइंद्रिय जीव नों जी, अपर्याप्ता नों तेह।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो लेह ।।
४८. तेहथी चउरिंद्रिय जीव नों जी, अपर्याप्ता नों एम।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो तेम ।।
४९. तेहथी असन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों जाण।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो पहिछाण ।।
५०. तेहथी सन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, अपर्याप्ता नों जोय।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो सोय ।।
५१. तेहथी बेइंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों पिछाण।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो जाण ।।
५२. तेहथी तेइंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों पेख।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो लेख ।।
५३. तेहथी चउरिंदिय तणों जी, पर्याप्ता नों जाण।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो माण ।।
५४. तेहथी असन्नी पंचिंद्रिय तणो जी, पर्याप्ता नों पाय।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो ताय ।।
५५. तेहथी सन्नी पंचिंद्रिय तणों जी, पर्याप्ता नों विरंच।
उत्कृष्ट जोग छै जेहनों जी, ते असंख्यातगुणो संच ।।

वा—इहां यद्यपि तेइंदिय पर्याप्ता नों उत्कृष्ट काय जोग अपेक्षया पर्याप्ता बेइंद्रिय नों वलि सन्नी असन्नी पंचिंद्रिय नों उत्कृष्ट काय जोग संख्यातगुणो हुवै, तेहनी काया संख्यात जोजन प्रमाण छै ते भणी। तथा पिण जोग नों चंचल वीर्य नों विवक्षितपणां थकी ते योग नां क्षयोपशम विशेषपणां थकी असंख्यात गुणपणां प्रतै विरुद्ध न थायै।

अल्पकाय नैं अल्प स्पंद ते अल्प वीर्य नों चंचलपणों हीज हुवै। अनैं महाकाय नैं महास्पंद हीज हुवै, एहवूं नियम नथी। तेहनां विपर्यय नां देखवा थी। जिम हाथी नों शरीर मोटो नैं सिंह नों शरीर छोटो, पिण शक्ति हाथी थकी सिंघ नीं अधिक प्रगट दीसै छै।

दूहा

५६. जोग तणां अधिकार थी, जोग तणोंज विचार।
कहियै छै ते सांभलो, जिन वच महा जयकार ।।

२४ दंडकों में समयोगी विषमयोगी

५७. *हे भगवंत ! बे नेरइया जी, प्रथम समय उत्पन्न।
नारक क्षेत्र विषे रह्या जी, धुर समय प्राप्ततया जन्न ।।

सोरठा

५८. ते बिहुं नीं उत्पत्त, विग्रह गति करिकै थई।
अथवा दोनूं तत्थ, सम गति करिकै ऊपनां ।।

* लय : पंथीड़ो बोलै अमृत वाणी

४६. १९. बेंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

४७. २०. एवं तेंदियस्स वि,

४८-५०. एवं जाव २३. सण्णिपंचिंदियस्स अपज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

५१. २४. बेंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

५२. २५. एवं तेइंदियस्स वि,

५३-५५. एवं जाव २८. सण्णिपंचिंदियस्स पज्जत्तगस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे। (श. २५।३)

वा.—इह च यद्यपि पर्याप्तकत्रीन्द्रियोत्कृष्टकायापेक्षया पर्याप्तकानां द्वीन्द्रियाणां सञ्ज्ञिनामसञ्ज्ञिनां च पञ्चेन्द्रियाणामुत्कृष्टः कायः सङ्ख्यातगुणो भवति सङ्ख्यातयोजनप्रमाणत्वात् तथाऽपीह योगस्य परिस्पन्दस्य विवक्षितत्वात् तस्य च क्षयोपशमविशेषसामर्थ्याद् यथोक्तमसङ्ख्यातगुणत्वं न विरुध्यते,

न ह्यल्पकायस्याल्प एव स्पन्दो भवति महाकायस्य वा महानेव, व्यत्ययेनापि तस्य दर्शनादिति,
(वृ. प. ८५३,८५४)

५६. योगाधिकारादेवेदमाह— (वृ. प. ८५४)

५७. दो भंते ! नेरइया पढमसमयोववन्नगा

५८. उपपत्तिश्चेह नरकक्षेत्रप्राप्तिः सा च द्वयोरपि विग्रहेण ऋजुगतया वा (वृ. प. ८५४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. तथा एक अवलोय, विग्रह गति करि ऊपनों।
दूजो नारक जोय, ऋजु गति करि प्राप्तज थयो ।।

५९. एकस्य वा विग्रहेणान्यस्य ऋजुगत्येति, (वृ. प. ८५४)

६०. *स्यूं समयोगी जेह छै जी, योग सरीखो जास ?
कै विषम योगी अछै जी, विषम योगज तास ?

६०. किं समजोगी ? विसमजोगी ?

६१. जिन कहै समयोगी कदा जी, विषम योगी कदा थाय।
किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यु जी ? हिव जिन भाखै न्याय ।।

६१. गोयमा ! सिय समजोगी, सिय विसमजोगी। (श. २५।४)
से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सिय समजोगी, सिय विसमजोगी ?

६२. आहारक ऋजुगति ऊपनों जी, ते नारक नीं अपेक्षाय।
जिको अनाहारक विग्रह गति करी जी, ऊपनों नरक रै मांय ।।

६२. गोयमा ! आहारयाओ वा से अणाहारए,

६३. तथा अनाहारक विग्रह गति करी जी, ऊपनां तसु अपेक्षाय।
आहारक ते ऋजु गति करी जी, ऊपनों नरक रै मांय ।।

६३. अणाहारयाओ वा से आहारए

६४. कदाचित ते हीण छै जी, कदा तुल्य कहिवाय।
कदाचित ते अधिक छै जी, वृत्ति विषे तसु न्याय ।।

६४. सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए।

सोरठा

६५. कदा हीन इम होय, जे नारक ऋजु गति करी।
आहारक थकोज सोय, नरक क्षेत्र जइ ऊपनों ।।

६५. 'सिय हीणे' त्ति यो नारको विग्रहाभावेनागत्याहारक एवोत्पन्नो: (वृ. प. ८५४)

६६. एह निरंतर ताय, आहारकपणां थकी तिको।
उपचित पुष्टज थाय, ते नारक तणीं अपेक्षया ।।

६६. असौ निरन्तराहारकत्वादुपचित एव, तदपेक्षया च (वृ. प. ८५४)

६७. विग्रह गति करि जेह, अनाहारक थइ ऊपनों।
हीन कहीजियै एह, तास न्याय हिव सांभलो।

६७. यो विग्रहगत्याऽनाहारको भूत्वोत्पन्नोऽसौ हीनः (वृ. प. ८५४)

६८. अनाहारक पूर्वेह, अनुपचितपणां थकी।
हीन योग इम लेह, हुवै विषम योगी तदा ।।

६८. पूर्वमनाहारकत्वेनानुपचितत्वाद्धीनयोगत्वेन च विषमयोगी स्यादिति भावः, (वृ. प. ८५४)

६९. कदाचित तुल्य होय, जे बिहुं समान समय करी।
विग्रह गति करि जोय, अनाहारक थइ ऊपनां ।।

६९. 'सिय तुल्ले' त्ति यौ समानसमयया विग्रहगत्याऽनाहारकौ भूत्वोत्पन्नौ (वृ. प. ८५४)

७०. तथा समान समयेह, बिहुं नारक ऋजु गति करी।
ऊपनां नरक विषेह, समयोगी ते पिण हुवै ।।

७१. नारक एक विचार, बीजा तणीं अपेक्षया।
तुल्यपणैं अवधार, समयोगी कहियै तसु ।।

७०,७१. ऋजुगत्या वाऽऽगत्योत्पन्नौ तयोरेक इतरापेक्षया तुल्यः समयोगी भवतीति भावः, (वृ. प. ८५४)

७२. जे ऋजुगति करि जाण, आहारक हीज समुपनों।
ते अधिक योगी पहिछाण, केहनीं अपेक्षया तिको ।।

७३. विग्रह गति करि ताय, अनाहारक थइ ऊपनों।
ते हीन योगी कहिवाय, तेहनीं अपेक्षया अधिक ।।

७२,७३. 'अब्भहिए' त्ति यो विग्रहाभावेनाहारक एवागतोऽसौ विग्रहगत्यनाहारकापेक्षयोपचिततरत्वेनाभ्यधिको विषमयोगीति भावः, (वृ. प. ८५४)

वा०—सिय हीणे—कदाचित हीन ते किम ? जिम नारक विग्रह गति नैं अभावे करी आवी नैं आहारकपणैं ऊपनों ते निरंतर आहारकपणां थकी पुष्टहीज छै। तेहनां अधिक योगी नीं अपेक्षाये करी जे विग्रह गति करी अनाहारक थई नैं आवी ऊपनों, ते हीन स्यां माटै ? पूर्वे अनाहारकपणैं करी अनुपचितपणां थकी एतलैं अनाहारकपणां थकी दुर्बल जाणवो। पुष्ट नहीं, ते माटै हीन प्रयोगपणैं करी विषमयोगी हुवै इति भावः।

वा.—इह च 'आहारयाओ वा से अणाहारए' इत्यनेन हीनतायाः 'अणाहारयाओ वा आहारए' इत्यनेन चाभ्यधिकताया निबन्धनमुक्तं, तुल्यतानिबन्धनं तु समान धर्मतालक्षणं प्रसिद्धत्वान्नोक्तमिति, (वृ. प. ८५४)

*** लय : पंथीड़ो बोलै अमृत वाणी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिय तुल्लेति—ते बिहुं नारक समान समय नैं विषे विग्रह गति करी अनाहारक थई ऊपनां ते समयोगी। अथवा समान समय नैं विषे बिहुं नारक ऋजु गति करी ऊपनां ते पिण समयोगी। एक नारक बीजा नीं अपेक्षाय तुल्य माटै समजोगी हुवै।

जे विग्रह गति नैं अभावे करी आहारक ईज ऋजुगति करिकै हीज आवी ऊपनों ते अधिक योगी छै, ते केहनीं अपेक्षाय अधिक योगी ते कहै छै—जे विग्रह गति अनाहारक थई आवी ऊपनों ते हीण जोगी छै, तेहनीं अपेक्षाय पुष्ट तिण करी अधिको एतलै विषम योगी।

इहां—आहारयाओ वा से अणाहारए—आहारक ऋजु गति करी नारकि ऊपनों ते नेरइया नीं अपेक्षा, से कहितां तिको, अणाहारए कहितां अनाहरक विग्रह गति करी नरके ऊपनों ते नेरइयो हीन योगी एणे पाठे करी हीनता नों निबन्धन कह्यो।

अथवा अणाहारयाओ वा से आहारए—अणाहारयाओ कहितां अनाहारक विग्रह गति करी नरके ऊपनों ते नारकी नीं अपेक्षा, आहारए—आहारक ऋजुगति करी नरके ऊपनों ते अधिक योगी कहियै। एणे पाठे करी अधिकता नों निबंधन कह्यो। तुल्यता नों निबंधन किम नथी कह्यो? उत्तर—समान धर्मता लक्षण हीज तुल्यता नों निबंधन छै। ते प्रसिद्ध होवा थी इहां नथी कह्यो।

७४. जो हीन हुवै तो गोयमजी! असख्यात भाग हीन।
तथा संख्यात भाग हीण छै जी, ए जिन वचन सुचीन॥

७५. तथा संखेज गुण हीण छै जी, असंख्यात गुण हीन।
हिवै अधिक हुवै जिको जी, आगल तेह कथीन॥

७६. असंख्यात भाग अधिक छै जी, संख भाग अधिक थाय।
संख्यात गुण फुन अधिक छै जी, असंख गुणा अधिकाय॥

७७. तिण अर्थे जावत कदा जी, समयोगी आख्यात।
कदा विषम योगी हुवै जी, इम जाव वैमानिक थात॥

दूहा

७८. जोग तणां अधिकार थी, एहिज अपर कहाय।
पूछै गोयम गणहरू, जोग प्रश्न हित ल्याय॥

योग के प्रकार

७९. *कतिविध हे प्रभु! जोग छै जी? जिन कहै पनर प्रकार।
प्रथम सत्यमन जोग छै जी, असत्यमन योग धार॥

८०. मिश्रमन योग तीसरो जी, असत्यामृषा मन जोग।
ए च्यारूं जोग मन तणां जी, हिवै चिहुं वचन प्रयोग॥

८१. सत्य वचन योग पंचमो जी, असत्य वचन योग धार।
सत्यामृषा जोग मिश्र छै जी, असत्यामृषा ववहार॥

८२. योग सप्त काया तणां जी, ओदारिक तनु काय जोग।
मिश्र ओदारिक नों वलि जी, वैक्रिय काय प्रयोग॥

*लय: पंथीड़ो बोलै अमृत वाणी

७४. जइ हीणे असंखेज्जइभागहीणे वा, संखेज्जइभागहीणे वा,

७५. संखेज्जगुणहीणे वा, असंखेज्जगुणहीणे वा।

७६. अह अब्भहिए असंखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जगुणमब्भहिए वा, असंखेज्जगुणमब्भहिए वा।

७७. से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—सिय समजोगी, सिय विसमजोगी। एवं जाव वेमाणियाणं।
(श. २५।५)

७८. योगाधिकारादेवेदमपरमाह— (वृ. प. ८५४)

७९. कतिविहे णं भंते! जोए पण्णत्ते?
गोयमा! पण्णरसविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा—
१. सच्चमणजोए २. मोसमणजोए

८०. ३. सच्चामोसमणजोए ४. असच्चामोसमणजोए

८१. ५. सच्चवइजोए ६. मोसवइजोए ७. सच्चामोसवइजोए ८. असच्चामोसवइजोए

८२. ९. ओरालियसरीरकायजोए १०. ओरालियमीसासरीरकायजोए ११. वेउव्वियसरीरकायजोए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. मिश्रवैक्रिय नों बलि जी, आहारक काय प्रयोग।
आहारक मिश्रज चवदमों जी, कार्मण तनुकाय जोग ।।

योग में अल्पबहुत्व

८४. ए प्रभु ! पनरै योग नैं जी, जघन्य उत्कृष्ट पिछान।
कुण-कुण थी जावत कह्या जी, विशेषाधिक कंपमान ?

८५. जिन कहै थोड़ो सर्व थी जी, कार्मण तनु नों मंद।
जघन्य जोग कहियै अछै जी, ए धुर भेद कथिंद ।।

८६. तेहथी ओदारिक मिश्र नों जी, जघन्य जोग अवलोय।
असंख्यातगुणो आखियो जी, वारू जिन वच जोय ।।

८७. तेह थकी चंचलपणों जी, वैक्रिय मिश्र नों जेह।
जघन्य जोग कहियै अछै जी, असंख्यातगुणो एह ।।

८८. तेहथी ओदारिक तनु तणों जी, जघन्य जोग पहिछान।
असंख्यातगुणो आखियो जी, परिस्पंद ते कंपमान ।।

८९. तेहथी वैक्रिय शरीर नों जी, जघन्य जोग अवलोय।
असंख्यातगुणो आखियै जी, ए जिन वचन सुजोय ।।

९०. तेहथी कार्मण तनु तणों जी, उत्कृष्ट योग विख्यात।
असंख्यातगुणो आखियै जी, इम भाखै जगनाथ ।।

९१. तेहथी आहारिक मिश्र नों जी, जघन्य जोग ते जोय।
असंख्यातगुणो आखियो जी, ए जिन वच अवलोय ।।

९२. तेहथी आहारक मिश्र नों जी, उत्कृष्ट योग पिछाण।
असंख्यातगुणो आखियै जी, ए षष्ठम गुणठाण ।।

९३. तेहथी ओदारिक मिश्र नों जी, वैक्रिय मिश्र नों जोय।
उत्कृष्ट योग बिहुं तुला जी, असंख्यातगुणा होय ।।

९४. तेह थकी असत्यामृषा जी, मन योग नों मान।
जघन्य जोग कहियै अछै जी, असंख्यातगुणो जान ।।

९५. तेहथी आहारक तनु तणों जी, जघन्य जोग छै जेह।
असंख्यातगुणो आखियै जी, वारू जिन वच एह ।।

९६. तेहथी त्रिविध मनोयोग नों जी, वचन योग फुन च्यार।
जघन्य योग ए सातूं तुला जी, असंख्यातगुणा धार ।।

९७. तेहथी आहारक तनु तणों जी, उत्कृष्ट योग अमंद।
असंख्यातगुणो आखियै जी, इम भाखै जिनचंद ।।

९८. तेहथी ओदारिक वैक्रिय जी, चिउं मन चिउं वच जोग।
ए उत्कृष्ट दसूं तुला जी, असंखगुणा सुप्रयोग ।।

९९. सेवं भंते ! स्वाम जी, सेवं भंते ! स्वाम।
पणवीसम शत अर्थ थी जी, प्रथम उद्देशक पाम ।।

१००. ढाल च्यार सौ तेतीसमीं जी, श्रीजिन वचन रसाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी जी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

पंचविंशतितमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।२५।१।।

८३. १२. वेउव्वियमीसासरीरकायजोए १३. आहारगसरीरकायजोए १४. आहारगमीसासरीरकायजोए १५. कम्मासरीरकायजोए। (श. २५।६)

८४. एयस्स णं भंते ! पण्णरसविहस्स जहण्णुक्कोसगस्स जोगस्स कयरे कयरेहिंतो जाव (सं.पा.) विसेसाहिया वा ?

८५. गोयमा ! १. सव्वत्थोवे कम्मासरीरस्स जहण्णए जोए

८६. २. ओरालियमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

८७. ३. वेउव्वियमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

८८. ४. ओरालियसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

८९. ५. वेउव्वियसरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

९०. ६. कम्मासरीरस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

९१. ७. आहारगमीसगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

९२. ८. तस्स चेव उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

९३. ९,१०. ओरालियमीसगस्स, वेउव्वियमीसगस्स य—एएसि णं उक्कोसए जोए दोण्हवि तुल्ले असंखेज्जगुणे

९४. ११. असच्चामोसमणजोगस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

९५. १२. आहारासरीरस्स जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

९६. १३-१९. तिविहस्स मणजोगस्स चउव्विहस्स वइजोगस्स—एएसि णं सत्तण्ह वि तुल्ले जहण्णए जोए असंखेज्जगुणे

९७. २०. आहारासरीरस्स उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे

९८. २१-३०. ओरालियसरीरस्स, वेउव्वियसरीरस्स, चउव्विहस्स य मणजोगस्स, चउव्विहस्स य वइजोगस्स—एएसि णं दसण्ह वि तुल्ले उक्कोसए जोए असंखेज्जगुणे। (श. २५।७)

९९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. २५।८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४३४

दूहा

१. पूर्व उद्देशक नैं विषे, जीव द्रव्य नां जाण।
लेश्या प्रमुख तणों जिके, आख्या प्रभु परिमाण॥
२. द्वितीय उद्देश विषे वलि, द्रव्य प्रकार पिछाण।
तसु परिमाण कहीजियै, संबंध ए धुर आण॥

द्रव्य के प्रकार

३. कतिविध द्रव्य कह्या प्रभु! जिन कहै दोय प्रकार।
जीव द्रव्य धुर आखियो, अजीव द्रव्य विचार॥
४. कतिविध अजीव द्रव्य प्रभु! जिन कहै द्विविध कहीव।
रूपी अजीव द्रव्य फुन, द्रव्य अरूपी अजीव॥
५. इम इण आलावे करी, जिम पन्नवण नां पेख।
पवर पंचमा पद विषे, अजीव पजवा देख।
६. यावत ते तिण अर्थ करि, गौतम! कहियै एम।
पज्जवा संख असंख नहीं, पज्जवा अनंत तेम॥

*जय जय वाण जिणंद री रे॥ (ध्रुपदं)

७. हे प्रभुजी! जीव द्रव्य ते रे, स्यूं संख्याता कहिवाय?
कै असख्याता जीव द्रव्य छै रे, कै अनंता जिनराय?
८. जिन भाखै संख्याता नहीं रे, असंख्याता पिण नांय।
जीव द्रव्य अनंता अछै रे, प्रभु! किण अर्थे कहिवाय?
९. जिन कहै असंख्याता नेरइया रे, जाव असंख वाउकाय।
वनस्पतिकायिक जीवड़ा रे, तेह अनंत कहिवाय॥
१०. असंख्याता छै बेइंदिया रे, इम जाव वैमानिक अंत।
अनंता सिद्ध सुख आतमी रे, तिण अर्थे जाव अनंत॥

दूहा

११. द्रव्य तणां अधिकार थी, द्रव्य तणोंज विचार।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दै जगतार॥

जीव के अजीव-परिभोग

१२. हे प्रभुजी! जीव द्रव्य नै रे, द्रव्य अजीव छै जेह।
सर्वथा भोगपणैं तिके रे, शीघ्र उतावला आवेह॥

*लय : कामणगारो छै कूकड़ो

---

१. प्रथमोद्देशके जीवद्रव्याणां लेश्यादीनां परिमाणमुक्तं, (वृ० प० ८५५)

२. द्वितीये तु द्रव्यप्रकाराणां तदुच्यते इत्येवंसम्बद्धस्यास्येमादिसूत्रम्— (वृ० प० ८५५)

३. कतिविहा णं भंते! दव्वा पण्णत्ता?
गोयमा! दुविहा दव्वा पण्णत्ता, तं जहा—जीवदव्वा य, अजीवदव्वा य। (श० २५।९)

४ अजीवदव्वा णं भंते! कतिविहा पण्णत्ता?
गोयमा! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—रूविअजीवदव्वा य, अरूविअजीवदव्वा य। (श० २५।१०)

५ एवं एएणं अभिलावेणं जहा अजीवपज्जवा (पाटि०)
'जहाअजीवपज्जव' त्ति यथा प्रज्ञापनाया विशेषाभिधाने पञ्चमे पदे जीवपर्यवाः पठितास्तथेहाजीवद्रव्यसूत्राण्यध्येयानि, (वृ० प०.८५५)

६ जाव से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—ते णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता। (श० २५।१४)

७ जीवदव्वा णं भंते! किं संखेज्जा? असंखेज्जा? अणंता?

८ गोयमा! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता। (श० २५।१५)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—जीवदव्वा णं नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता?

९ गोयमा! असंखेज्जा नेरइया जाव असंखेज्जा वाउक्काइया, अणंता वणस्सइकाइया,

१० असंखेज्जा बेंदिया, एवं जाव वेमाणिया, अणंता सिद्धा। से तेणट्ठेणं जाव अणंता। (श० २५।१६)

११. द्रव्याधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ८५६)

१२. जीवदव्वाणं भंते! अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति? अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. जिन भाखै जीव द्रव्य नैं रे, अजीव द्रव्य छै जेह।
सर्वथा भोगपणैं तिके रे, शीघ्र थकी आवेह ।।
१४. पिण जे द्रव्य अजीव नैं रे, जीव द्रव्य छै जेह।
सर्वथा भोगपणैं तिके रे, शीघ्र थी नहीं आवेह ।।
१५. किण अर्थे भगवंतजी ! रे, इहविध कहियै छै ताय।
यावत भोग आवै नहीं रे ? उत्तर दे जिनराय ।।
१६. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे, जीव द्रव्य छै तेह।
अजीव द्रव्य प्रतै ग्रहै रे, ग्रहण करी फुन जेह ।।
१७. ओदारिक तनु प्रति तिके रे, वैक्रिय प्रति अवलोय।
आहारक तेजस तनु प्रतै रे, फुन कार्मण प्रति सोय ।।
१८. पांचूंई इंद्रिय प्रतै रे, योग तीनूं प्रति ताम।
आणापाणुपणां प्रति रे, निपजावै जीव आम ।।
१९. तिण अर्थे जावत कह्यं रे, शीघ्रपणैं नांवै ताय।
अजीव आवै भोग जीव रै रे, अजीव रै जीव न आय ।।

वा०—इहां जीव द्रव्य परिभोजक छै। परिभोजक ते भोगवणवाला छै। तेहनैं सचेतनपणैं करी पुद्गल द्रव्य प्रतै ग्रहण करै, ते ग्राहकपणां थकी। अनैं अजीव द्रव्य ते परिभोग्य छै। परिभोग्य ते भोगविवा योग्य छै। अचेतनपणां थकी ग्रहिवा योग्यपणां थकी। ते माटै जीव द्रव्य नैं अजीव द्रव्य परिभोगपणैं आवै, पिण अजीव द्रव्य परिभोगपणैं नहीं आवै।

१३. गोयमा ? जीवदव्वाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति,

१४. नो अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति। (श० २५।१७)

१५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ— जाव (सं० पा०) हव्वमागच्छंति ?

१६ गोयमा ! जीवदव्वा णं अजीवदव्वे परियादियंति, परियादिइत्ता

१७. ओरालियं वेउव्वियं आहारगं तेयगं कम्मगं,

१८. सोइंदियं जाव फासिंदियं, मणजोगं वइजोगं कायजोगं, आणापाणुत्तं च निव्वत्तयंति।

१९. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—जीवदव्वाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाणं जीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति। (श० २५।१८)

वा०—जीवदव्वाणं भंते ! अजीवदव्वे' त्यादि, इह जीवद्रव्याणि परिभोजकानि सचेतनत्वेन ग्राहकत्वात् इतराणि तु परिभोग्यान्यचेतनतया ग्राह्यत्वादिति। (वृ० प० ८५६)

चौबीस दण्डकों के अजीव परिभोग

२०. नेरइया रै भगवंत जी ! रे, अजीव द्रव्य सुप्रयोग।
शीघ्र परिभोग आवै अछै रे, कै अजीव रै भोग ?

२१. जिन भाखै नेरइया तणैं रे, अजीव द्रव्य जे ताय।
परिभोग शीघ्र आवै अछै रे, अजीव रै नेरइया नहिं आय ।।

२२. किण अर्थे तब ? जिन कहै रे, नेरइया अजीव द्रव्य ग्रहंत।
अजीव द्रव्य ग्रही करी रे, वैक्रिय तेजस कम्मग मंत ।।

२३. श्रोत्रेंदिय जाव आणापाणु रे, तेह प्रतै निपजावंत।
तिण अर्थे करि गोयमा ! रे, कहियै एम उदंत ।।

२४. एवं जाव वैमाणिया रे, नवरं तनु इंद्रिय जोग।
जेह दंडक विषे छै तिके रे, जाण लेवा सुप्रयोग ।।

२०. नेरइयाणं भंते ! अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति ? अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छति ?

२१. गोयमा ! नेरइयाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति। (श० २५।१९)

२२. से केणट्ठेणं ?
गोयमा ! नेरइया अजीवदव्वे परियादियंति, परियादिइत्ता वेउव्विय-तेयग-कम्मगं,

२३. सोइंदियं जाव फासिंदियं, आणापाणुत्तं च निव्वत्तयंति। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—नेरइयाणं अजीवदव्वा परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति, नो अजीवदव्वाणं नेरइया परिभोगत्ताए हव्वमागच्छंति।

२४. एवं जाव वेमाणिया, नवरं—सरीरइंदियजोगा भाणियव्वा जस्स जे अत्थि। (श० २५।२०)

दूहा

२५. द्रव्य तणां अधिकार थी, द्रव्य तणोंज विचार।
पूछै गोयम गणहरू, जिन उत्तर दै सार ।।

२५. द्रव्याधिकारादेवेदमाह— (वृ० प० ८५६)

***लय : कामणगारो छै कूकड़ो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लोक में अनन्त द्रव्यों का अवगाह

२६. *हे प्रभु ! तेह निश्चै करी रे,असंख प्रदेशिक लोक मांय।
द्रव्य अनंता आकाश नें रे, भरिवूं धारिवूं थाय ?

सोरठा

२७. इहां पृच्छक अभिप्राय, असंख प्रदेशिक लोक नां ।
आकाशे किम थाय, रहिवूं अनंत द्रव्य नुं ।।

२८. *जिन कहै हंता गोयमा ! रे, असंख प्रदेशिक लोक मांय।
जाव भरिवूं धारिवूं हुवै रे, निसुणो तेहनुं न्याय ।।

सोरठा

२९. ते लोकाकाश विषेह, तेह अनंता द्रव्य नुं ।
रहिवूं आख्यूं जेह, ते जिन नुं अभिप्राय ए ।।
३०. जिम प्रतिनियत तास, ओरा नां आकाश में ।
दीपक प्रभा प्रकाश, पुद्गल प्रतिपूर्णे अपि ।।
३१. अपर-अपर फुन जोय, दीपकप्रभा तणां जिके ।
पुद्गल तिष्ठै सोय, प्रत्यक्ष ही अवलोकियै ।।
३२. तिण प्रकार विधिहीज, जे पुद्गल परिणाम नां ।
समर्थपणां थकीज, असंख प्रदेशिक लोक में ।।
३३. तेहिज-तेहिज ताम, प्रदेश विषे जे द्रव्य नुं ।
तथाविध परिणाम बस करिनें रहिवा थकी ।।
३४. अनंत नों पिण सोय, रहिवुं छै ते द्रव्य नुं ।
इण न्याये करि जोय, विरुद्ध नहीं ए वचन में ।।

वा०—अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं ? हंता गोयमा !—इहां गोतम पूछचो—असंख्यात प्रदेशात्मक लोक में जीव, परमाणु आदिक अनंता द्रव्य आकासे भइयव्वाइं—आकाश नैं भरिवो हुवै, आकाश नैं धारिवो हुवै ? आगासे इहां सप्तमीं विभक्ति छै, ते छठी विभक्ति नां अर्थ नै विषे छै । वले ए प्रश्न काकु पाठ पूछचो । काकु पाठ किणनैं कहियै ? वक्रोक्ति नैं कहियै , इहां वक्रोक्ति इम छै—इहां पृच्छक नों ए अभिप्राय—असंख्यात प्रदेशात्मक लोकाकाश नैं विषे अनंता द्रव्य नों रहिवो किम हुवै ? ए वक्रोक्ति प्रश्न । उत्तर—हां गोतम ! असंख्यात प्रदेशात्मक लोकाकाश नैं विषे अनंता द्रव्य नों अवस्थान छै, इसो कह्यु, ते उत्तर देणहार नों ए अभिप्राय—जिम प्रतिनियत अपवरक आकाश नैं विषे दीवा नीं प्रभा नां पुद्गल परिपूर्ण छतां पिण अपर-अपर प्रदीप प्रभा नां पुद्गल रहै, तथाविध पुद्गल परिणाम समर्थपणां थकीज । इम असंख्यात लोक छै, ते पिण तेहिज-तेहिज प्रदेश नैं विषे द्रव्य नां तथाविध परिणाम वसे करी अवस्थान थकी अनंता द्रव्य नों पिण अवस्थान छै, पिण विरोध नथी ।[1]

असंख्यात लोक नैं विषे अनंत द्रव्य नों अवस्थान कह्यो, तेह एकेक प्रदेश नैं विषे चयउपचयादिवंत हुवै । एतला माटै कहै छै—

२६. से नूणं भंते ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं ?
'आगासे भइयव्वाइं' ति····'भक्तव्यानि' भर्त्तव्यानि धारणीयानीत्यर्थः, (वृ. प. ८५६)

२७. पृच्छतोऽयमभिप्रायः—कथमसंख्यातप्रदेशात्मके लोकाकाशेऽनन्तानां द्रव्याणामवस्थानं ? (वृ. प. ८५६)

२८. हंता गोयमा ! असंखेज्जे लोए अणंताइं दव्वाइं आगासे भइयव्वाइं । (श. २५।२१)

२९. 'हंता' इत्यादिना तत्र तेषामनन्तानामप्यवस्थानमावेदितम्, आवेदयतश्चायमभिप्रायः—(वृ. प. ८५६)

३०,३१. यथा प्रतिनियतेऽपवरकाकाशे प्रदीपप्रभापुद्गलपरिपूर्णेऽप्यपरापरप्रदीपप्रभापुद्गला अवतिष्ठन्ते (वृ. प. ८५६)

३२. तथाविधपुद्गलपरिणामसामर्थ्यात् एवमसङ्ख्यातेऽपि लोके (वृ. प. ८५६)

३३,३४. तेष्वेव तेष्वेव प्रदेशेषु द्रव्याणां तथाविधपरिणामवशेनावस्थानादनन्तानामपि तेषामवस्थानमविरुद्धमिति । (वृ. प. ८५६)

वा०—असङ्ख्यातलोकेऽनन्तद्रव्याणामवस्थानमुक्तं, तच्चैकैकस्मिन् प्रदेशे तेषां चयापचयादिमद्भवतीत्यत आह— (वृ. प ८५६)

*** लय : कामणगारो छै कूकड़ो**

१. टीका के जिस पाठ को आधार मानकर वार्तिका लिखी गई है, वह २९ से ३४ तक की गाथाओं के सामने उद्धृत है । इसलिए यहां उसे नहीं लिया गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल-चयादि

३५. *हे भगवंत ! जे लोक नां रे, एक आकाश प्रदेश ।
तेह विषे कति दिशि थकी रे, पुद्गल आय चिणेस ?

३५. लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपदेसे कतिदिसिं पोग्गला चिज्जंति ?
'कतिदिसिं पोग्गला चिज्जंति' त्ति कतिभ्यो दिग्भ्य आगत्यैकत्राकाशप्रदेशे चीयन्ते लीयन्ते (वृ. प. ८५६)

३६. जिन कहै निर्व्याघाते करी रे, षट दिशि नों पहिछाण ।
पुद्गल आवी चिणाय छै रे, लोक नों मध्य इह जाण ।।

३६. गोयमा ! निव्वाघाएणं छद्दिसिं,

३७. व्याघात आश्रयी नैं कदा रे, त्रिहुं दिशि नां चिणैं आय ।
कदा चिहुं दिशि नां आवी चिणैं रे,
कदा पंच दिशि नां चिणाय ।

३७. वाघाय पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं । (श. २५।२२)

३८. हे भगवंतजी ! लोक नां रे, इक नभ प्रदेश विषेय ।
केतली दिशे पुद्गल ह्वै जुदा रे ? एवं चेय कहेय ।।

३८. लोगस्स णं भंते ! एगम्मि आगासपदेसे कतिदिसिं पोग्गला छिज्जंति ? एवं चेव ।
'छिज्जंति' त्ति व्यतिरिक्ता भवन्ति । (वृ. प. ८५६)

३९. इमहिज उपचय ह्वै वृद्धि रे, पुद्गल खंध रूप सोय ।
अन्य पुद्गल नां मिलाप थी रे, उपचित वृद्धज होय ।।

३९. एवं उवचिज्जंति,
'उवचिज्जंति' त्ति स्कन्धरूपाः पुद्गलाः पुद्गलान्तरसम्पर्कादुपचिता भवन्ति । (वृ. प. ८५६,८५७)

४०. इमहिज अपचय आखियै रे, खंध रूप हिज एह ।
तास प्रदेश छूटवै करी रे, हीण हुवै खंध जेह ।।

४०. एवं अवचिज्जंति । (श. २५।२३)
'अवचिज्जंति' त्ति स्कन्धरूपा एव प्रदेशविचटनेनापचीयन्ते । (वृ. प. ८५७)

दूहा

४१. द्रव्य तणां अधिकार थी, आगल पिण अवलोय ।
प्रश्नोत्तर छै द्रव्य नों, सांभलजो सहु कोय ।।

४१. द्रव्याधिकारादेवेदमाह— (वृ. प. ८५७)

पुद्गल-ग्रहण

४२. *हे प्रभु ! जीव जे द्रव्य नैं रे, ओदारिक शरीरपणेह ।
तिण करि ग्रहण करी तिके रे,
स्यूं स्थित ग्रहै कै अस्थित लेह ?

४२. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं ओरालियसरीरत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ ? अट्ठियाइं गेण्हइ ?

सोरठा

४३. जीव प्रदेशज जेह, अवगाह्यो छै खेत्र नैं ।
भितर रह्या ग्रहेह, स्थित पुद्गल कहियै तसु ।।

४३. 'ठियाइं' ति स्थितानि — किं जीवप्रदेशावगाढक्षेत्रस्याभ्यन्तरवर्तीनि (वृ. प. ८५७)

४४. जीव प्रदेश कहेह, अवगाह्या जे खेत्र नैं ।
तास अनंतर जेह, अस्थित पुद्गल ते कह्या ।।

४४. अस्थितानि च—तदनन्तरवर्तीनि (वृ. प. ८५७)

४५. ते फुन ओदारीक, तनु परिणाम विशेष थी ।
आकृष्य ग्रहै सधीक, स्थित अस्थित पुद्गल प्रतै ।।

४५. तानि पुनरौदारिकशरीरपरिणामविशेषादाकृष्य गृह्णाति, (वृ. प. ८५७)

४६. अन्य कहै इह रीत, स्थित जिके कंपै नहीं ।
तेह थकी विपरीत, कंपै ते अस्थित अछै ।।

४६. अन्ये त्वाहुः —स्थितानि तानि यानि नैजन्ते तद्विपरीतानि त्वस्थितानि, (वृ. प. ८५७)

४७. *जिन कहै स्थित पिण द्रव्य नैं रे, ग्रहण करै छै ताय ।
अस्थित द्रव्य पिण ग्रहै वलि रे, बुद्धिवंत मेलै तसु न्याय ।।

४७. गोयमा ! ठियाइं पि गेण्हइ, अट्ठियाइं पि गेण्हइ । (श. २५।२४)

४८. ते प्रभु ! स्यूं ग्रहै द्रव्य थी रे, कै खेत्र थी ग्रहण करेह ।
काल थकी ग्रहै छै तिके रे, भाव थकी ग्रहै जेह ?

४८. ताइं भंते ! किं दव्वओ गेण्हइ ? खेत्तओ गेण्हइ ? कालओ गेण्हइ ? भावओ गेण्हइ ?

---

* लय : कामणगारो छै कूकड़ो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. जिन कहै द्रव्य थकी ग्रहै रे, खेत्र थकी पिण ग्रहेह ।
ग्रहण करै वलि काल थी रे, भाव थी ग्रहण करेह ।।
५०. द्रव्य थी अनंत प्रदेशिया रे, द्रव्य प्रतैज ग्रहेह ।
खेत्र थी असंख प्रदेश जे रे, अवगाह्या प्रति लेह ।।
५१. इम जिम पन्नवणा सूत्र नां रे, पद अठवीसम पेख ।
प्रथम आहारक उद्देशक विषे रे, आख्यो तिमज उवेख ।।
५२. यावत निर्व्याघाते करी रे, षट दिशि नां द्रव्य ग्रहेह ।
व्याघात आश्रयी नें कदा रे, त्रिहुं दिशि नां द्रव्य लेह ।।
५३. कदाचित चिहुं दिशि तणां रे, ग्रहण करै द्रव्य जेह ।
कदाचित पंच दिशि तणां रे, द्रव्य प्रतै जु ग्रहेह ।।
५४. जीव प्रभुजी ! जे द्रव्य नें रे, वैक्रिय शरीरपणेह ।
ग्रहण करै ते स्यूं स्थित ग्रहै रे, कै अस्थित ग्रहण करेह ?
५५. एवं चेव कहीजियै रे, नवरं नियमा कहेह ।
छ दिशि नां पुद्गल ग्रहै रे, इम आहारक तनुपणेह ।।

सोरठा

५६. वैक्रिय नें आख्यात, षट दिशि ना पुद्गल ग्रहै ।
बहुलपणें ते थात, वैक्रिय पंचिंद्रिय विषे ।।

५७. ते त्रस नाड़ी मांहि, षट दिशि अलोके करी ।
नहीं बींटी छै ताहि, तिण सूं षट दिशि नों कह्यो ।।

५८. ते फुन वायूकाय, छै त्रस नाड़ी बाहिरे ।
पिण वैक्रिय शरीर पाय, नहि वंछयो ! अप्रधान थी ।।

५९. अथवा फुन लोकंत, निष्कुटे वाउकाय नें ।
वैक्रिय तनु नवि हुंत, वृत्ति विषे बे अर्थ इम ।।
६०. * जीव प्रभु ! जे बहु द्रव्य नें रे, तेजस शरीरपणेह ।
ग्रहण करै इत्यादि पूछियां रे, श्री जिन उत्तर देह ।।
६१. ठिआइं द्रव्य प्रतै ग्रहै रे, अठियाइं ते ग्रहै नांय ।
शेष ओदारिक शरीर नें रे, आख्यो जिम कहिवाय ।।

सोरठा

६२. तेजस सूत्रे ताह, ठिआइं ग्रहै इम कह्यो ।
जीव खेत्र अवगाह, भ्यंतरभूत प्रतैज ग्रहै ।।
६३. अस्थित न ग्रहै ताम, न ग्रहै तदनंतरर्वात्ति ।
तसु खांचण परिणाम, तेह तणांज अभाव थी ।।
६४. अथवा स्थित स्थिर ताहि, ग्रहण करै ते द्रव्य प्रति ।
अस्थिर ग्रहैज नांहि, तथाविध स्वभाव थी ।।

---

४९. गोयमा ! दव्वओ वि गेण्हइ, खेत्तओ वि गेण्हइ, कालओ वि गेण्हइ, भावओ वि गेण्हइ ।

५०. ताइं दव्वओ अणंतपदेसियाइं दव्वाइं, खेत्तओ असंखेज्जपदेसोगाढाइं—

५१. एवं जहा पण्णवणाए पढमे आहारुद्देसए (२८।५-१९)

५२. जाव निव्वाघाएणं छद्दिसिं, वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं,

५३. सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं । (श. २५।२५)

५४. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं वेउव्वियसरीरत्ताए गेण्हइ ताइं किं ठियाइं गेण्हइ ? अट्ठियाइं गेण्हइ ?

५५. एवं चेव, नवरं—नियमं छद्दिसिं । एवं आहारगसरीरत्ताए वि । (श. २५।२६)

५६. वैक्रियशरीराधिकारे—'नियमं छद्दिसिं' ति यदुक्तं तत्रायमभिप्रायः—वैक्रियशरीरी पञ्चेन्द्रिय एव प्रायो भवति । (वृ. प. ९५७)

५७. स च त्रसनाड्या मध्ये एव तत्र च षण्णामपि दिशामनावृतत्वमलोकेन विवक्षितलोकदेशस्येत्यत उच्यते—'नियमं छद्दिसिं' ति, (वृ. प. ८५७)

५८. यच्च वायुकायिकानां त्रसनाड्या बहिरपि वैक्रियशरीरं भवति तदिह न विवक्षितं अप्रधानत्वात्तस्य, (वृ. प. ८५७)

५९. तथाविधलोकान्तनिष्कुटे वा वैक्रियशरीरी वायुर्न संभवतीति । (वृ. प. ८५७)

६०. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं तेयगसरीरत्ताए गेण्हइ—पुच्छा ।

६१. गोयमा ! ठियाइं गेण्हइ, नो अट्ठियाइं गेण्हइ । सेसं जहा ओरालियसरीरस्स ।

६२. तैजससूत्रे—'ठियाइं गेण्हइ' त्ति जीवावगाहक्षेत्राभ्यन्तरीभूतान्येव गृह्णाति । (वृ. प. ८५७)

६३. 'नो अठियाइं गिण्हइ' त्ति न तदनन्तरवर्तीनि गृह्णाति, तस्याकर्षपरिणामाभावात् । (वृ. प. ८५७)

६४. अथवा स्थितानि—स्थिराणि गृह्णाति नो अस्थितानि—अस्थिराणि तथाविधस्वभावत्वात् (वृ. प. ८५७)

---

* लय : कामणगारो छै कूकड़ो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६५. * कार्मण शरीरपणें ग्रहै रे, एवं चेव कहिवाय।
ठियाइं द्रव्य प्रतै ग्रहै रे, अठियाइं ग्रहै नांय।।

६६. एवं यावत जाणवुं रे, भाव थी पिण ग्रहै तेह।
स्यूं एकप्रदेशिक प्रति ग्रहै रे, कै बेप्रदेशिक प्रति ग्रहेह ?

६७. इम जिम पन्नवणा सूत्र नां रे, एकादशम संगीत।
भाषा पद नें विषे कह्यो रे, तिम कहिवो वर रीत।।

६८. जाव अनुक्रम प्रति ग्रहै रे, पिण अनानुपूर्वी ग्रहै नांय।
अनुक्रम उलंघी ग्रहै नहीं रे, एतला लगै कहिवो ताय।।

६९. ते प्रभु ! कति दिशि नां ग्रहै रे ? जिन कहै निर्व्याघातेह।
जिम ओदारिक तनु विषे रे, आख्युं तिम कहिवुं एह।।

७०. जीव प्रभु ! जे बहु द्रव्य प्रति रे, ग्रहै श्रोतेंद्रियपणेह ?
जिम कह्यो वैक्रिय तनु विषे रे, कहिवुं तिमहिज एह।

सोरठा

७१. जिम वैक्रिय तनु ख्यात, स्थितास्थितज द्रव्य ग्रहै।
निश्चै षट दिशि थात, तिमहिज श्रोतेंद्रियपणें।।

७२. त्रस नाड़ी रैं मांहि, श्रोतेंद्रिय द्रव्य ग्रहण छै।
पिण चिहुं पंच दिशि नांहि, व्याघातपणां नां अभाव थी।।

७३. * एव जावत जाणवुं रे, ग्रहै जिब्भिदियपणेह।
स्थितास्थित द्रव्य नें ग्रहै रे, निश्चै छह दिशि तणां लेह।।

७४. फर्शेंद्रिपणें जे ग्रहै रे, ओदारिक जिम ख्यात।
तेम इहां कहिवो सही रे, श्री जिन वचन सुजात।।

वा०—इहां कह्यो—फासेंदियपणें जे द्रव्य प्रतै ग्रहै ते जिम ओदारिक शरीर नें कह्यु, तिम कहिवुं। तेहनुं ए अर्थ—फासेंद्रियपणें ओदारिक नी परै द्रव्य ग्रहण करै जिम ओदारिक शरीर स्थित अस्थित द्रव्य प्रतै निर्व्याघाते षट दिशि नां, व्याघाते कदा त्रिण, चिउं, पंच, दिशि नां द्रव्य ग्रहै। तिमहिज फासेंदियपणें लोकांते एकेंद्रिय में फर्शेंद्रिय छै ते माटै।

७५. मनयोगपणें जे ग्रहै रे, जिम कार्मण तनु कहेह।
नवरं निश्चै छह दिशि नां ग्रहै रे, इम वच योगपणेह।।

वा०—मनोयोगपणें करी तिण प्रकार करिकै द्रव्य प्रति ग्रहण करै। जिम कार्मण नें स्थित द्रव्य नों ईज ग्रहण हुवै, अस्थित नों न हुवै। तिम मनोजोग नों पिण जाणवुं। केवल ते कार्मण नैं विषे व्याघात करिकै इत्यादिक कह्युं। अनै इहां निश्चै थकी छह दिशि नों कहिवो। नाड़ी मध्यईज मनोद्रव्य ग्रहण भाव थकी त्रस नाड़ी बाहिर मनोद्रव्य ग्राही नथी। इमज वचन जोग जाणवुं।

---

*लय : कामणगारो छै कूकड़ो

६५. कम्मगसरीरे एवं चेव।

६६. एवं जाव भावओ वि गेण्हइ। (श. २५।२७)
जाइं दव्वाइं दव्वओ गेण्हइ ताइं किं एगपदेसियाइं गेण्हइ ? दुपदेसियाइं गेण्हइ ?

६७. एवं जहा भासापदे (११।४८-६८)
'जहा भासापदे' त्ति यथा प्रज्ञापनाया एकादशे पदे तथा वाच्यं, (वृ. प. ८५७)

६८. जाव आणुपुव्विं गेण्हइ, नो अणाणुपुव्विं गेण्हइ। (श. २५।२८)

६९. ताइं भंते ! कतिदिसिं गेण्हइ ?
गोयमा ! निव्वाघाएणं जहा ओरालियस्स। (श. २५।२९)

७०. जीवे णं भंते ! जाइं दव्वाइं सोइंदियत्ताए गेण्हइ ?
जहा वेउव्वियसरीरं। (वृ. प. ८५७)

७१. 'जहा वेउव्वियसरीरं' ति यथा वैक्रियशरीरद्रव्यग्रहणं स्थितास्थितद्रव्यविषयं षड्दिक्कं च एवमिदमपि, (वृ. प. ८५७)

७२. श्रोत्रेन्द्रियद्रव्यग्रहणं हि नाडीमध्य एव तत्र च 'सिय तिदिसिं' मित्यादि नास्ति व्याघाताभावादिति। (वृ. प. ८५८)

७३. एवं जाव जिब्भिंदियत्ताए।

७४. फासिंदियत्ताए जहा ओरालियसरीरं।

वा०—'फासिंदियत्ताए जहा ओरालियसरीरं' ति, अयमर्थः—स्पर्शनेन्द्रियतया तथा द्रव्याणि गृह्णाति यथौदारिकशरीरं स्थितास्थितानि षड्दिगागतप्रभृतीनि चेति भावः, (वृ. प. ८५८)

७५. मणजोगत्ताए जहा कम्मगसरीरं, नवरं—नियमं छद्दिसिं। एवं वइजोगत्ताए वि।

वा०—'मणजोगत्ताए जहा कम्मगसरीरं नवरं नियमं छद्दिसिं' ति मनोयोगतया तथा द्रव्याणि गृह्णाति यथा कार्म्मणं, स्थितान्येव गृह्णातीति भावः, केवलं तत्र व्याघातेनेत्याद्युक्तं इह तु नियमात् षड्दिशीत्येवं वाच्यं, नाडीमध्य एव मनोद्रव्यग्रहणभावात्, अत्रसानां हि तन्नास्तीति, 'एवं वइजोगत्ताएवि' त्ति मनोद्रव्यवद्वाग्द्रव्याणि गृह्णातीत्यर्थः, (वृ. प. ८५८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. काय जोगपणें जे ग्रहै रे, जेम ओदारिक ख्यात।
स्थित अस्थित द्रव्य नैं ग्रहै रे, व्याघात नें निर्व्याघात।।

७६. कायजोगत्ताए जहा ओरालियसरीरस्स। (श. २५।३०)

७७. उश्वासनिश्वासपणें ग्रहै रे, ओदारिक जिम मंत।
जाव कदा पंच दिशि तणां रे, सेवं भंते! सेवं भंत!

७७. जीवे णं भंते! जाइं दव्वाइं आणापाणुत्ताए गेण्हइ? जहेव ओरालियसरीरत्ताए जाव सिय पंचदिसिं। (श. २५।३१)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श.२५।३२)

७८. केयक चउवीस दंडके रे, ए पद चउदम पभणंत।
जेहमें जेह पावै अछै रे, कह्यं तेह उदंत।।

वा०—केइ एक चउवीस दण्डके एह पदे कहै तिहां पंच शरीर, पंचेंद्रिय, तीन योग, आनप्राण—ए सगलाई चवदै पद हुवै। तिवारै ए आश्रयी नैं चवदै दण्डक हुवै। जेहनैं जेह छै, तेह कहै छै।

वा०—'केइ' इत्यादि तत्र पञ्च शरीराणि पञ्चेन्द्रियाणि त्रयो मनोयोगादयः आनप्राणं चेति सर्वाणि चतुर्दश पदानि तत एतदाश्रिताश्चतुर्दशैव दण्डका भवन्तीति। (वृ. प. ८५८)

७९. द्वितीय उदेश पणवीस नों रे, च्यारसौ चोतीसमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे, 'जय-जश' मंगलमाल।।

पंचविंशतितमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।२५।२।।

ढाल : ४३५

दूहा

१. द्वितीय उद्देशक नैं विषे, द्रव्य कह्या छै सोय।
तेहनें विषे वलि कह्या, पुद्गल द्रव्यज जोय।।

१. द्वितीयोद्देशके द्रव्याण्युक्तानि, तेषु च पुद्गला उक्ताः (वृ. प. ८५८)

२. बहुलपणें संस्थानवंत, हुवै तिके अवधार।
ते माटै संस्थान हिव, पुद्गल नों आकार।।

२. ते च प्रायः संस्थानवन्तो भवन्तीत्यतस्तृतीये संस्थानान्युच्यन्ते, (वृ. प. ८५८)

संस्थान के प्रकार

३. प्रभु! संस्थानज केतला, खध तणां आकार?
जिन भाखै संठाण षट, धुर परिमंडल धार।।

३. कति णं भंते! संठाणा पण्णत्ता?
गोयमा! छ संठाणा पण्णत्ता, तं जहा—परिमंडले, संस्थानानि—स्कन्धाकाराः। (वृ. प. ८५८)

४. वृत्त लाडु आकार वलि, त्र्यंस सिंघाड़ाकार।
चोकोवत चउंरस फुन, आयत दंडाकार।।

४ वट्टे, तंसे, चउरंसे, आयते,

५. अनित्थंस्थ षष्ठम कह्यूं, ए पांचूं थी न्यार।
परिमंडल प्रमुखज थकी, ए व्यतिरित्त विचार।।

५. अणित्थंथे। (श. २५।३३)

वा०—इत्थं कहितां एणे प्रकार परिमंडलादिके करी रहै ते इत्थंस्थ कहियै। नहीं इत्थंस्थ ते अनित्थंस्थ कहियै, परिमण्डलादिव्यतिरिक्त इत्यर्थः।

वा०—'अणित्थंथे' त्ति इत्थम्—अनेन प्रकारेण परिमण्डलादिना तिष्ठतीति इत्थंस्थं न इत्थंस्थमनित्थंस्थं परिमण्डलादिव्यतिरिक्तमित्यर्थः, (वृ. प. ८५८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संस्थानों का अल्पबहुत्व द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ की अपेक्षा से

६. *परिमंडल संठाणवंत प्रभु ! दव्वट्ठयाए जाणी जी ।
द्रव्य रूप जे अर्थ प्रति आश्रयी,
कितला कह्या पिछाणी जी ? कांइ ।।

षट संठाण तणोंज व्रतंतो, सांभलजो घर खंतो जी ।। (ध्रुपदं)

७. ते द्रव्यार्थपणैं करिनैं स्यूं, संख्याता छै सोयो जी ?
कै परिमंडल असंख्यात छै, तथा अनंता होयो जी? कांइ ।।

८. श्री जिन भाखै नहिं संख्याता, असंख्यात नहि कोई जी ।
परिमंडल संठाण अनंता, प्रश्न वट्ट हिव जोई जी, कांइ ।।

९. हे प्रभुजी ! संठाण वट्ट जे, एवं चेव कहायो जी ।
एवं जावत अणित्थंस्थ कहियै, द्रव्य थकी ए पायो जी, कांइ ।।

१०. प्रदेशअर्थपणैं पिण इमहिज, उभय थकी पिण एमो जी ।
तेह द्रव्यार्थ अनैं प्रदेशज-अर्थपणैं करि तेमो जी, कांइ ।।

११. हे प्रभुजी ! परिमंडल नैं वट्ट, त्र्यंस अनैं चउरंसो जी ।
आयत नैं अणित्थंस्थ तणुं जे, अल्पबहुत्व नों संचोजी, कांइ ।।

१२. द्रव्य-अर्थ प्रदेश-अर्थ करि, उभय अर्थ भावेहो जी ।
कुण-कुण थकी अल्प बहु तुल्य छै,
विशेष अधिक कहेहो जी ? कांइ ।।

१३. श्री जिन कहै सर्व थी थोड़ा, परिमंडल संठाणो जी ।
द्रव्य अर्थ करिनैं ए आख्या, वारू रीत पिछाणो जी, कांइ।।

१४. वट्ट संठाण द्रव्यार्थपणैं करि, संखगुणां अवलोई जी ।
चउरंसा द्रव्यार्थपणैं, संख्यातगुणां छै सोई जी, कांइ ।।

१५. तंस संठाण द्रव्यार्थपणैं करि, संखगुणां छै ताही जी ।
आयत पिण द्रव्यार्थपणैं, संख्यातगुणां कहिवाई जी, कांइ ।।

१६. अणित्थंस्थं संठाणज छठो, द्रव्यार्थपणैं करि जेहो जी ।
तेह थकी असंख्यातगुणो छै, हिव तसु न्याय सुणेहो जी, कांइ।।

वा० —सर्व थी थोड़ा परिमंडल संठाण द्रव्यार्थपणैं करि ते किम —इहां जेह संस्थान जे संस्थान नीं अपेक्षाये बहुतर प्रदेशावगाढ हुवैं, तेह संस्थान तेहनीं अपेक्षाये थोड़ा कहियैं, तथाविध स्वभावपणां थकी । तिहां परिमंडल संस्थान जघन्य थकी पिण बीस प्रदेशावगाढ थकी बहुतर प्रदेशावगाही हुवै ते माटै सर्व स्तोक । अनैं वृत्त, चउरंस, त्र्यंस, आयत —ए च्यार संस्थान अनुक्रमे पंच, च्यार, तीन, दोय प्रदेशावगाही जघन्य थकी हुवै तिहां वृत्त संस्थान नां जघन्य थकी पिण पंच प्रदेशावगाही हुवै । इम चउरंस च्यार प्रदेशावगाही, त्र्यंस तीन प्रदेशावगाही, आयत दोय प्रदेशावगाही जघन्य थकी पिण हुवै ते माटै अल्प प्रदेशावगाही ते माटै सर्व थकी परिमंडल नैं बहुतर प्रदेशावगाहीपणां थकी परिमंडल संस्थान सर्व थी थोड़ा १ । तेहथी अनुक्रमे घणां संख्यातगुणा ते कहै छै — तेहथी वृत्त संस्थान द्रव्यपणैं संख्यातगुणा २ । तेहथी चउरंस संस्थान द्रव्यार्थिक-

* लय : सर्वार्थसिद्ध रै चंद्रवै कांइ

६. परिमंडला णं भंते ! संठाणा दव्वट्ठयाए किं
'परिमंडला णं भंते ! संठाण' त्ति परिमंडलसंस्थानवन्ति भदन्त ! द्रव्याणीत्यर्थः 'दव्वट्ठयाए' त्ति द्रव्यरूपमर्थमाश्रित्येत्यर्थः । (वृ. प. ८५८)

७. संखेज्जा ? असंखेज्जा ? अणंता ?

८. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।
(श. २५।३४)

९. वट्टा णं भंते ! संठाणा ? एवं चेव । एवं जाव अणित्थंथा ।

१०. एवं पएसट्ठयाए वि । एवं दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए वि ।
(श. २५।३५)

'पएसट्ठयाए' त्ति प्रदेशरूपमर्थमाश्रित्येत्यर्थः 'दव्वट्ठ-पएसट्ठाए' त्ति तदुभयमाश्रित्येत्यर्थः (वृ. प. ८५८)

११. एएसि णं भंते ! परिमंडल-वट्ट-तंस-चउरंस-आयत-अणित्थंथाणं संठाणाणं

१२. दव्वट्ठयाए पएसट्ठयाए दव्वट्ठ-पएसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

१३. गोयमा ! सव्वत्थोवा परिमंडलसंठाणा दव्वट्ठयाए,

१४. वट्टा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, चउरंसा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

१५. तंसा संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, आयता संठाणा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

१६. अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।

वा० —'सव्वत्थोवा परिमंडलसंठाणे' ति इह यानि संस्थानानि यत्संस्थानापेक्षया बहुतरप्रदेशावगाहीनि तानि तदपेक्षया स्तोकानि तथाविधस्वभावत्वात्, तत्र च परिमण्डलसंस्थानं जघन्यतोऽपि विंशतिप्रदेशावगाहाद्बहुतरप्रदेशावगाहि । वृत्तचतुरस्रत्र्यस्रायतानि तु क्रमेण जघन्यतः पञ्चचतुस्त्रिद्विप्रदेशावगाहित्वादल्पप्रदेशावगाहीन्यतः सर्वेभ्यो बहुतरप्रदेशावगाहित्वात्परिमण्डलस्य परिमण्डलसंस्थानानि सर्वेभ्यः सकाशात्स्तोकानि । तेभ्यश्च क्रमेणान्येषामल्पाल्पतरप्रदेशावगाहित्वात्क्रमेण बहुतरत्वमिति सङ्ख्येयगुणानि तान्युक्तानि,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पणैं संख्यातगुणा ३। तेहथी त्र्यंस संस्थान द्रव्यार्थपणैं करी संख्यातगुणा ४। तेहथी आयत संस्थान द्रव्यार्थपणैं करी संख्यातगुणा जाणवा ५।

तेहथी अणित्थंस्थ द्रव्यार्थपणैं करी असंख्यातगुणां ते किम ? उत्तर —परिमंडलादिक नां द्वयादिक संयोगे करि अणित्थंस्थ संस्थान नीं निष्पत्ति हुवै। तिणे कारणे परिमंडलादिक थी अणित्थंस्थ संस्थानवंत अति ही घणां हुवै, इम करीनैं असंख्यातगुणां कह्या।

'अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुण' त्ति अनित्थंस्थसंस्थानवंति हि परिमण्डलादीनां द्वयादिसंयोगनिष्पन्नत्वेन तेभ्योऽतिबहूनीतिकृत्वाऽसंख्यात गुणानि पूर्वेभ्य उक्तानि, (वृ. प. ८५९)

१७. प्रदेशार्थ करी सहु थी थोड़ा, परिमंडल संठाणो जी।
वट्ट संठाण प्रदेश थकी, संख्यातगुणां पहिछाणो जी, कांइ।।
१८. जिम द्रव्यार्थपणैं करि आख्या, प्रदेश थी पिण तेमो जी।
यावत अणित्थंत्था प्रदेश थी, असंखगुणां छै एमो जी, कांइ।।
१९. द्रव्य अर्थ प्रदेश अर्थ ए, उभय आश्रयी ताह्यो जी।
सर्व थकी थोड़ा परिमंडल, द्रव्य अर्थ करि पायो जी, कांइ।।
२०. तेहिज द्रव्यार्थपणैं गम भणवो, जाव अणित्थंत्थ जाणी जी।
द्रव्य अर्थ भावे करि नें ते, असंखगुणां पहिछाणी जी, कांइ।।
२१. द्रव्य अर्थ करि अणित्थंत्थ थी, परिमंडल संठाणो जी।
प्रदेश अर्थपणैं करि नें ते, असंखगुणां ए जाणो जी, कांइ।।
२२. वट्ट संठाण प्रदेश आश्रयी, असंख्यातगुणां[1] होई जी।
तेहिज प्रदेश अर्थ करीनैं, आलावो अवलोई जी, कांइ।।
२३. जावत अणित्थंत्थ संठाणज, प्रदेश आश्रयीपणेहो जी।
असंख्यातगुणां जे आख्या, पूर्वली परि लेहो जी, कांइ।।

१७. पएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा पएसट्ठयाए, वट्टा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
१८. जहा दव्वट्ठयाए तहा पएसट्ठयाए वि जाव अणित्थंथा संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।
१९. दव्वट्ठपएसट्ठयाए—सव्वत्थोवा परिमंडला संठाणा दव्वट्ठयाए,
२०. सो चेव दव्वट्ठयाए गमओ भाणियव्वो जाव अणित्थंथा संठाणा दव्वट्ठया असंखेज्जगुणा,
२१. अणित्थंथेहिंतो संठाणेहिंतो दव्वट्ठयाए परिमंडला संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा,
२२. वट्टा संठाणा पएसट्ठयाए संखेज्जगुणा, सो चेव पएसट्ठयाए गमओ भाणियव्वो
२३. जाव अणित्थंथा संठाणा पएसट्ठयाए असंखेज्जगुणा। (श. २५।३६)

वा० —प्रथम द्रव्य आश्रयी अल्पबहुत्व कही। दूजी प्रदेश आश्रयी अल्पबहुत्व कही। तीजी द्रव्य-प्रदेश आश्रयी अल्पबहुत्व कही।

सोरठा

२४. सामान्य थी आख्यात, ए संस्थान परूपणा।
विशेष थी हिव आत, रत्नप्रभादि अपेक्षया।।

२४. कृता सामान्यतः संस्थानप्ररूपणा, अथ रत्नप्रभाद्यपेक्षया तां चिकीर्षुः पूर्वोक्तमेवार्थं प्रस्तावनार्थमाह— (वृ. प. ८५९)

---

१. इहां द्रव्यार्थपणैं जे अनित्थंत्थ संठाण छै तेह थकी परिमंडल संठाण प्रदेश थकी असंख्यातगुणां, तेह थकी वट्ट संठाण प्रदेशार्थपणैं करी असंख्यातगुणां कह्या ते किम हुवै ? जे पूर्वे प्रदेश नीं अल्पाबहुत्व नैं विषे प्रदेशार्थपणैं परिमंडल थकी वट्टसंठाण प्रदेश थी संख्यातगुणां कह्या छै। ते माटै इहां पिण परिमंडल प्रदेशार्थपणैं छै तेह थकी वट्ट संठाण प्रदेश थकी संख्यातगुणां जोईयै। ते भणी ए अकार नुं संशय छै। ते अनेरी परत देखी निर्णय करियै। कारण केई पड़तां में असंख नों अकार छै। अनैं केई पड़तां में अकार नथी। केवल संख्यात गुणाईज छै।

अथवा प्रदेश नीं अल्पबहुत्व पूर्वे कही तेहनैं विषे परिमंडल नां प्रदेश थी वट्ट नां प्रदेश संख्यातगुणां कह्या। तिहां प्राकृत नां सूत्र स्यूं अकार को लोप थयो हुवै तो असंख्यातगुणां वट्ट नां प्रदेश थावै। इम हुवै तो द्रव्य प्रदेश नीं भेली अल्पबहुत्व नैं विषे परिमंडल नां प्रदेश थकी वट्ट नां प्रदेश असंख्यातगुणां ते इम हिज जोइयै। बलि एहनों न्याय बहुश्रुत कहै ते सत्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. *प्रभु ! संठाण परूप्या केता ? श्री जिन भाखै पंचो जी।
परिमंडल यावत आयत लग, वलि शिष्य पूछै संचो जी, कांइ ।।

२५. कति णं भंते ! संठाणा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंच संठाणा पण्णत्ता, तं जहा —परिमंडले
जाव आयते। (श. २५।३७)

सोरठा

२६. अणित्थंत्थ संठाण, संयोगे करि नीपनों।
ते नहिं वंछ्यो जाण, तिण सूं पंच कह्या इहां ।।

२६. इह षष्ठसंथानस्य तदन्यसंयोगनिष्पन्नत्वेना-
विवक्षणात् पञ्चेत्युक्तम्। (वृ. प. ८५९)

२७. *परिमंडल संठाण प्रभुजी ! स्यूं संख्याता होयो जी।
अथवा असंख्यात ते कहियै, तथा अनंता जोयो जी ? कांइ ।।

२७. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा ?
असंखेज्जा ? अणंता ?

२८. श्री जिन भाखै नहिं संख्याता, असंख्यात पिण नाहीं जी।
परिमंडल संठाण अनंता, तिके लोक रै मांही जी, कांइ।

२८. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।
(श. २५।३८)

२९. वट्ट संठाण प्रभु ! संख्याता, एवं चेव कहायो जी।
इम यावत आयत लग कहिवो, वलि शिष्य प्रश्न सुहायो जी, कांइ ।।

२९. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा ? एवं चेव।
एवं जाव आयता। (श. २५।३९)

३०. हे प्रभु ! रत्नप्रभा पृथ्वी में, परिमंडल संठाणो जी।
स्यूं संख्याता कै असंख्याता, तथा अनंता जाणो जी ? कांइ ।।

३०. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए परिमंडला
संठाणा किं संखेज्जा ? असंखेज्जा ? अणंता ?

३१. श्री जिन भाखै नहिं संख्याता, असंख्यात नहिं जेहो जी।
परिमंडल संठाण अनंता, रत्नप्रभा नें विषेहो जी, कांइ ।।

३१. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता।
(श. २५।४०)

३२. वट्ट संठाण प्रभु ! संख्याता, कै असंख्यात कहिवाई जी ?
एवं चेव पूर्ववत इमहिज, यावत आयत तांई जी, कांइ ।।

३२. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं संखेज्जा ? एवं चेव।
एवं जाव आयता। (श. २५।४१)

३३. सक्करप्रभा नें विषे प्रभुजी ! परिमंडल संठाणो जी।
एवं चेव जाव आयत लग, इम जाव सप्तमी जाणो जी, कांइ ।।

३३. सक्करप्पभाए णं भंते ! पुढवीए परिमंडला
संठाणा ? एवं चेव। एवं जाव आयता। एवं जाव
अहेसत्तमाए। (श. २५।४२)

३४. सौधर्म कल्प विषे प्रभुजी ! परिमंडल संठाणो जी ?
एवं चेव यावत अच्युत इम, रत्नप्रभा जिम जाणो जी, कांइ ।।

३४. सोहम्मे णं भंते ! कप्पे परिमंडला संठाणा ? एवं
जाव अच्चुए। (श. २५।४३)

३५. परिमंडल ग्रैवेयक विषे प्रभु ! एवं चेव कहेहो जी।
एम अणुत्तर वैमाण में पिण, सिद्धशिला में लेहो जी, कांइ ।।

३५. गेवेज्जविमाणे णं भंते ! परिमंडला संठाणा ? एवं
चेव। एवं अणुत्तरविमाणेसु वि। एवं ईसिपब्भाराए
वि। (श. २५।४४)

सोरठा

३६. अन्य प्रकार करेह, वलि संस्थान परूपणा।
कीजै छै हिव जेह, चित्त लगाई सांभलो ।।

३६. अथ प्रकारान्तरेण तान्याह— (वृ. प. ८५९)

३७. *जे आकाशज देश विषे प्रभु ! वर्त्तै परिमंडल एको जी।
जव नों मध्य भाग छै जेहनों, जव आकार विशेखो जी, कांइ ।।

३७. जत्थ णं भंते ! एगे परिमंडले संठाणे जवमज्झे

३८. तत्र तिहां जव मध्य विषे जे, इक परिमंडल विषेहो जी।
अन्य परिमंडल स्यूं संख्याता, कै असंख अनंत कहेहो जी ? कांइ ।।

३८. तत्थ परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा ? असंखेज्जा ?
अणंता ?

वा०—'जत्थ' इत्यादि सर्व पिण लोक परिमंडल संस्थान द्रव्य करिकै निरंतर व्याप्त छै। तिहां कल्पना करिकै जिके-जिके तुल्य प्रदेश नां अवगाहणहार अनैं जेहनां तुल्य प्रदेश तुल्य वर्णादि पर्याय एहवा परिमंडल संस्थानवंत द्रव्य ते पंक्तिए स्थापिए। इम एक-एक जाति नां एकेक पंक्तिए स्थापतां छतां अल्पबहुपणां नां भाव थकी जवाकार परिमंडल संस्थान नों समुदाय हुवै। तिहां

वा.—'जत्थ ण' मित्यादि, किल सर्वोऽप्ययं लोकः परिमण्डलसस्थानद्रव्यैर्निरन्तरं व्याप्तस्तत्र च कल्पनया यानि यानि तुल्यप्रदेशावगाहीनि तुल्यप्रदेशानि तुल्यवर्णादिपर्यवाणि च परिमण्डलसंस्थानवन्ति द्रव्याणि तानि तान्येकपंक्त्यां स्थाप्यन्ते, एकमेकैक-

*लय : सर्वार्थसिद्ध रै चन्द्रवै जी कांइ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य प्रदेश नां द्रव्य नैं स्वभावे करी पिण थोड़पणां थकी घुरली पंक्ति नान्ही हुवै। तिवार पछै शेष पंक्ति नैं घणांपणां थकी अनुक्रमे एकेक थकी मोटी हुवै। तिवार पछै वलि अनेरी पंक्ति नै थोड़ा थोड़ापणां थकी अनुक्रमे एकेक थकी छोटी हुवै। इम जां लगे उत्कृष्ट प्रदेश नां द्रव्य नैं अति अल्पपणैं करी अति नान्ही हुवै छेहली पंक्ति। इण परे सरीखे परिमंडल नै द्रव्ये करी जव आकार क्षेत्र प्रतै निपजाविये। इणहीज आश्रयी नैं कहियै—

'जत्थ' कहितां जिण-जिण आकाश देश कै विषे एगं कहितां एक, परिमंडले कहितां परिमंडल संस्थान वर्त्तै इसो जाणियै। जे आकाश देश नै विषे एक परिमंडल संठाण वर्त्तै छै, जव नीं परै मध्य ते मध्यभाग छै जेहनों विस्तीर्ण नां सरीखापणां थकी ते जवमध्य जव आकार कहियै। ते जवमध्य नै विषे जव आकार परिमंडल संठाण नीपना। तेह थकी अनेरा परिमंडल संठाण स्यूं संख्याता छै? असंख्याता छै? कै अनंता छै? इति प्रश्न।

जातीयेष्वेकैकपंक्त्यामौत्तराधर्येण निक्षिप्यमाणेष्वल्पबहुत्वभावाद् यवाकारः परिमण्डलसंस्थानसमुदायो भवति, तत्र किल जघन्यप्रदेशिकद्रव्याणां वस्तुस्वभावेन स्तोकत्वादाद्या पंक्तिर्ह्रस्वा ततः शेषाणां क्रमेण बहुबहुतरत्वाद्दीर्घदीर्घतरा ततः परेषां क्रमेणाल्पतरत्वात् ह्रस्वह्रस्वतरैव यावदुत्कृष्टप्रदेशानामल्पतमत्वेन ह्रस्वतमेत्येवं तुल्यैस्तदन्यैश्च परिमण्डलद्रव्यैर्यवाकारं क्षेत्रं निष्पाद्यत इति, इदमेवाश्रित्योच्यते—

'जत्थ' त्ति यत्र देशे 'एगे' त्ति एकं 'परिमंडले' त्ति परिमण्डलं संस्थानं वर्त्तत इति गम्यते,
'जवमज्झे' त्ति यवस्येव मध्यं मध्यभागो यस्य विपुलत्वसाधर्म्यात्तद् यवमध्यं यवाकारमित्यर्थः, तत्र यवमध्ये परिमंडलसंस्थानानि—यवाकारनिर्वर्त्तकपरिमण्डलसंस्थानव्यतिरिक्तानि किं संख्यातानि? इत्यादिप्रश्नः, (वृ. प. ८५९, ८६०)

३९. श्री जिन भाखै नहिं संख्याता, असंख्यात पिण नांहीं जी।
परिमंडल त्यां कह्या अनंता, न्याय धरो दिल मांही जी, कांइ॥

३९. गोयमा! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता। (श. २५।४५)

वा०—जव नै आकार नीपना है संठाण तेह थकी अनेरा जव नैं आकार नीपना नहीं ते संठाण अनंतगुणां अधिका छै, ते मार्टै अनेरा संस्थान अनता कह्या। अनै जिहां जव नैं आकार नीपना नहीं तेहनी अपेक्षया करिकै जव नै आकार नीपना ते अनंतगुण हीन छै, ते मार्टै जे आकाश देश नै विषे जवमध्य एक परिमंडल संठाण नैं विषे तेह थकी अनेरा परिमंडल अनंता छै।

वा.—यवाकारनिर्वर्त्तकेभ्यस्तेषामनन्तगुणत्वात् तदपेक्षया च यवाकारनिष्पादकानामनन्तगुणहीनत्वादिति। (वृ. प. ८६०)

४०. वट्ट संठाण प्रभु! संख्याता, तथा असंख्याता कहियै जी?
एवं चेव यावत आयत लग, इणहिज रीते लहियै जी, कांइ॥

४०. वट्टा णं भंते! संठाणा किं संखेज्जा? एवं चेव।
एवं जाव आयता। (श. २५।४६)

४१. जिहां इक वट्ट संठाण प्रभुजी!
जवमध्य विषेज ताह्यो जी।
तिहां परिमंडल स्यूं संख्याता? एवं चेव कहायो जी, कांइ॥

४१. जत्थ णं भंते! एगे वट्टे संठाणे जवमज्झे तत्थ परिमंडला संठाणा? एवं चेव।

४२. इम जावत आयत लग कहियै, इणहिज रीते वरिवा जी।
एक-एक संठाण संघाते, पांचूंई उच्चरिवा जी, कांइ॥

४२. वट्टा संठाणा एवं चेव। एवं जाव आयता। एवं एक्केक्केणं संठाणेणं पंच वि चारेयव्वा जाव आयतेण। (श. २५।४७)

वा०—हिवै पूर्वोक्तईज संस्थान परूपणा प्रतै रत्नप्रभादिक भेदे कहै छै—

वा.—पूर्वोक्तामेव संस्थानप्ररूपणां रत्नप्रभादिभेदेनाह— (वृ. प. ८६०)

४३. जिहां प्रभुजी! रत्नप्रभा ए, पृथ्वी विषे कहायो जी।
परिमंडल संठाण एक छै, जव मध्य विषेज ताह्यो जी, कांइ॥

४३. जत्थ णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे परिमंडले संठाणे जवमज्झे

४४. परिमंडल संठाण तिहां स्यूं, संख असंख अनंता जी?
जिन कहै संख असंख नहीं छै, तिहां अनंत कथिता जी, कांइ॥

४४. तत्थ णं परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा—पुच्छा।
गोयमा! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता। (श. २५।४८)

४५. इहां वट्ट संठाण प्रभु! स्यूं, संख्याता छै ताह्यो जी?
एवं चेव जाव आयत लग, इणहिज विध कहिवायो जी, कांइ॥

४५. वट्टा णं भंते! संठाणा किं संखेज्जा? एवं चेव।
एवं जाव आयता। (श. २५।४९)

४६. जिहां प्रभु! ए रत्नप्रभा पृथ्वी नैं विषे पिछाणी जी।
एक वट्ट संठाण विषे जे, जवमध्य विषेज जाणी जी, कांइ॥

४६. जत्थ णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए एगे वट्टे संठाणे जवमज्झे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. परिमंडल संठाण तिहां स्यूं, संख्यातादिक होई जी ?
जिन कहै संख असंख नहीं छै, अनंत तिहां अवलोई जी ।।
४८. त्यां वट्ट संठाण अनंता इमहिज, एवं जावत जाणी जी ।
आयत लगैज कहिवो विध सूं, पूर्ववत पहिछाणी जी ।।
४९. तिम वलि इक-इक संठाण संघाते, पंच-पंच उच्चरिवा जी ।
जिमज हेठला जाव आयत लग, विध पूर्वली वरिवा जी ।।
५०. एवं यावत अधोसप्तमी, कल्प विषे पिण एमो जी ।
यावत ईषत-प्रागभार पृथ्वी लग कहिवो तेमो जी ।।
५१. पणवीसम नों तृतीय देश ए, चिहुं सौ पैंतीसमी ढालो जी ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो जी ।।

४७. तत्थ णं परिमंडला संठाणा किं संखेज्जा—पुच्छा ।
गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता ।
४८. वट्टा संठाणा एवं चेव । एवं जाव आयता ।
४९. एवं पुणरवि एक्केक्केणं संठाणेणं पंच वि चारेयव्वा जहेव हेट्ठिल्ला जाव आयतेणं ।
५०. एवं जाव अहेसत्तमाए । एवं कप्पेसु वि जाव ईसीपब्भाराए पुढवीए । (श. २५।५०)

ढाल : ४३६

दूहा

१. अथ संठाण तणांज जे, प्रदेश शिष्य पूछेह ।
फुन आकाश प्रदेश नैं, अवगाही रहै तेह ।।

१. अथ संस्थानान्येव प्रदेशतोऽवगाहतश्च निरूपयन्नाह— (वृ. प. ८६०)

वृत्त संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश

२. हे प्रभु ! वट्ट संठाण ते, किता प्रदेशिक होय ?
किता प्रदेश प्रतै वलि, अवगाही रह्यं सोय ?

२. वट्टे णं भंते ! संठाणे कतिपदेसिए कतिपदेसोगाढे पण्णत्ते ?

वा—अथ पूर्वे आदि नैं विषे परिमंडल कह्यं । वलि इहां किण कारण थकी ते परिमंडल तजिवैं करी वृत्त आदि अनुक्रम करिकैं निरूपण करियै ? तेहनों उत्तर—वृत्त आदि च्यार संठाण एक-एक सम संख्या विषम संख्या प्रदेश नां सरीखापणां थकी तेहनैं पूर्वं कहियैं अनैं परिमंडल नैं एहनां अभाव थकी पछै विचारियै । तथा सूत्र नीं विचित्र गति ते माटै जाणवी ।

वा.—'वट्टे ण' मित्यादि अथ परिमण्डलं पूर्वमादावुक्तं इह तु कस्मात्तत्यागेन वृत्तादिना क्रमेण तानि निरूप्यन्ते ? उच्यते, वृत्तादीनि चत्वार्यपि प्रत्येकं समसंख्यविषमसंख्यप्रदेशान्यतस्तत्साधर्म्यात्तेषां पूर्वमुपन्यासः परिमण्डलस्य पुनरेतदभावात्पश्चाद् विचित्रत्वाद्वा सूत्रगतेरिति, (वृ. प. ८६१)

३. जिन कहै वट्ट संठाण ते, दाख्या दोय प्रकार ।
घनवृत्त सम सहु दिश थकी, मोदकवत अवधार ।।

३. गोयमा ! वट्टे संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणवट्टे य,
'घणवट्टे' त्ति सर्वतः समं घनवृत्तं मोदकवत् (वृ. प. ८६१)

४. प्रतरवृत्त दूजो कह्यो, बाहल्य जाडपणेह ।
हीण हुवै ते जाणवो, शशि-मंडल जिम एह ।।

४. पतरवट्टे य ।
'पयरवट्टे' त्ति बाहल्यतो हीनं तदेव प्रतरवृत्तं मण्डकवत्,[1] (वृ. प. ८६१)

५. प्रतरवृत्त ते द्विविधे, ओज प्रदेशिक धार ।
विषम संख्य प्रदेश करि, नीपनों तेह विचार ।।

५. तत्थ णं जे से पतरवट्टे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओयपदेसिए य,
'ओयपएसिए' त्ति विषमसंख्यप्रदेशनिष्पन्नं । (वृ. प. ८६१)

---

१. जोड़ में 'शशिमंडल जिम' रखा गया है । संभव है जयाचार्य को प्राप्त वृत्ति में शशिमंडलवत् पाठ था ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. युग्म प्रदेशिक प्रतरवृत, ते सम संख्य प्रदेश।
तिण करिके जे नीपनों, द्वितीय भेद छै एष।।

६. जुम्मपदेसिए य।
'जुम्मपएसिए' त्ति समसंख्यप्रदेशनिष्पन्नं,
(वृ. प. ८६१)

वा०—हिवै प्रतरवृत्त नां ओज युग्म दोय भेद ओलखावै छै—

७. तिहां ओज प्रदेशिक प्रतरवृत्त, तेह जघन्य थी ताह।
पंच प्रदेशिक जाणवुं, पंच प्रदेश ओगाह।।

वा०—पंच परमाणु खंध ते आकाश नां पंच प्रदेश ऊपर रह्या।

७. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं पंचपदेसिए पंचपदेसोगाढे,

वा.—इत्थं पञ्चप्रदेशावगाढं पञ्चाणुकात्मकमित्यर्थः, (वृ. प. ८६१)

ओज प्रदेश प्रतरवट्ट नीं स्थापना

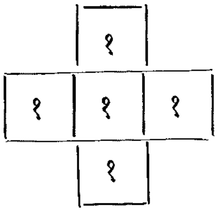

८. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशिका, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, ओज प्रतरवृत एस।।

८. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।
उत्कर्षेणानन्तप्रदेशिकमसंख्येयप्रदेशावगाढं लोकस्याप्यसंख्येयप्रदेशात्मकत्वात्, (वृ. प. ८६१)

९. युग्म प्रदेशिक जे तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
बार प्रदेशिक जाणवुं, बार प्रदेश ओगाह।।

९. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं बारसपदेसिए बारसपदेसोगाढे,

युग्म प्रदेश प्रतरवट्ट १२ प्रदेश नीं स्थापना

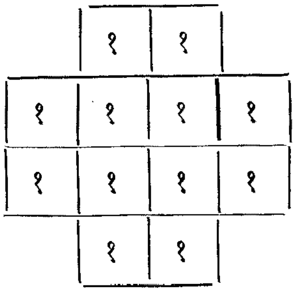

१०. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिका, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, युग्म प्रतरवृत एस।।

वा०—ए प्रतरवृत रा ओज युग्म दोय भेद कह्या। हिवै घनवृत्त नां ओज युग्म दोय भेद ओलखावियै छै।

१०. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

११. तिहां जेह घनवृत्त ते, दोय प्रकारे ख्यात।
ओज प्रदेशिक घनवृत्त, युग्म प्रदेशिक थात।।

११. तत्थ णं जे से घणवट्टे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
ओयपदेसिए य, जुम्मपदेसिए य।

१२. तिहां ओज प्रदेशिक घनवृत्त, जघन्य थकी कहिवाह।
सप्त प्रदेशिक जाणवुं, सप्त प्रदेश अवगाह।।

१२. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं सत्तपदेसिए सत्तपदेसोगाढे पण्णत्ते,

ओज प्रदेश घनवट्ट ७ प्रदेश नीं स्थापना

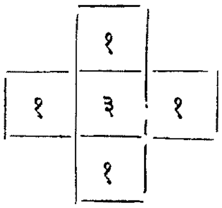

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा —एवं ५ प्रदेश, एक ऊपर अनै एक हेठै एवं ७ प्रदेश नों ओज प्रदेश घनवट्ट ।

वा.—अस्य मध्यपरमाणोरुपर्येकः स्थापितोऽधश्चैक इत्येवं सप्तप्रदेशिकं घनवृत्तं भवतीति,
(वृ. प. ८६१)

१३. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिक, ते आकाश प्रदेश ।
असंख्यात अवगाढ छै, ओज वृत्त घन एस ।।
१४. तिहां युग्मप्रदेशिक घनवट्ट, जघन्य थकी कहिवाह ।
ते बत्तीस प्रदेशक, नभ बत्तीस ओगाह ।।

१३. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे पण्णत्ते ।
१४. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं बत्तीसपदेसिए बत्तीसपदेसोगाढे पण्णत्ते,

युग्म प्रदेश घनवट्ट ३२ प्रदेश नीं स्थापना

	२	२	
२	४	४	२
२	४	४	२
	२	२	

वा०—एवं ते ऊपरि १२ प्रदेश एवं २४ । च्यार मध्य ऊपरि अनैं च्यार हेठै एवं ३२ ।

वा.—अस्य चोपरीदृश एव प्रतरः स्थाप्यस्ततः सर्वे चतुर्विंशतिस्ततः प्रतरद्वयस्य मध्याणूनां चतुर्णामुपर्यन्ये चत्वारोऽधश्चेत्येवं द्वात्रिंशदिति ।
(वृ. प. ८६१)

१५. उत्कृष्ट अनत प्रदेशिक, ते आकाश प्रदेश ।
असंख्यात अवगाढ छै, युग्म वृत्त घन एस ।।

१५. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे पण्णत्ते ।
(श. २५।५१)

त्र्यस्र संस्थान के प्रदेश और आकाश प्रदेश

संठाण भेदज सांभलो ।। (ध्रुपदं)

१६. हे प्रभु ! त्र्यंस संठाण ते, किता प्रदेश नों एह ।
किता आकाश प्रदेश नों, अवगाहक जेह ?
१७. जिन कहै त्र्यंस संठाण ते, कह्यो दोय प्रकार ।
धुर घन-त्र्यंस अनैं वलि, प्रतर-त्र्यंस विचार ।।
हिवै प्रतरत्र्यंस ओज अनैं युग्म बे भेदे करि ओलखावियै छै —
१८. तिहां जे प्रतरतंस ते, दोय प्रकार अवगम ।
विषम प्रदेशिक ओज छै, युग्म प्रदेशिक सम ।।
१९. तिहां ओज प्रदेशिक त्र्यंस ते, जघन्य थकी कहिवाह ।
तीन प्रदेशिक जाणवुं, तीन प्रदेश ओगाह ।।

१६. तंसे णं भंते ! संठाणे कतिपदेसिए कतिपदेसोगाढे पण्णत्ते ?
१७. गोयमा ! तंसे णं संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणतंसे य, पतरतंसे य ।
१८. तत्थ णं जे से पतरतंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओयपदेसिए य, जुम्मपदेसिए य ।
१९. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं तिपदेसिए तिपदेसोगाढे पण्णत्ते,

ओज प्रदेश प्रतरत्र्यंस ३ प्रदेश नीं स्थापना

१	१
१	

२०. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिकः, ते आकाश प्रदेश ।
असंख्यात अवगाढ छै, ओज प्रतर-त्र्यंस एस ।।

२०. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे पण्णत्ते ।

*लय : सीता दे रे ओलंभड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. तिहां युग्मप्रदेशिक त्र्यंस ते, जघन्य थकी कहिवाह।
षट प्रदेशिक जाणवुं, षट प्रदेश ओगाह ।।

२१. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं छप्पदेसिए छप्पदेसोगाढे पण्णत्ते,

युग्म प्रदेश प्रतरत्र्यंस ६ प्रदेश नीं स्थापना

१	१	१
१	१	
१		

२२. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशिको, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, युग्म प्रतर-त्र्यंस एस ।।

२२. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे पण्णत्ते।

हिवै घनत्र्यंस ओज अनैं युग्म बिहु भेदे करी ओलखावियै छै—

२३. तिहां घन त्र्यंस से बिहुं भेदे कह्यो, ओज विषम प्रदेश।
युग्मप्रदेशिक सम छै, कहियै न्याय अशेष ।।

२३. तत्थ णं जे से घणतंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओयपदेसिए य जुम्मपदेसिए य।

हिवै ओज त्र्यंस कहै छै—

२४. ओज प्रदेशिक विषम ते, जघन्य थकी कहिवाह।
खंध पैंतीस प्रदेश नों, नभ पैंतीस ओगाह ।।

२४. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं पणतीस-पदेसिए पणतीसपदेसोगाढे,

ओज प्रदेश घनत्र्यंस ३५ प्रदेश नीं स्थापना

५	४	३	२	१
	४	३	२	१
		३	२	१
			२	१
				१

वा०—ए पनर प्रदेश, ते ऊपरि १० प्रदेश, ते ऊपरि ६ प्रदेश, ते उपरि ३ प्रदेश, ते ऊपरि १ प्रदेश—एवं सर्व ३५ प्रदेश।

वा.—अस्य पञ्चदशप्रदेशिकस्य प्रतरस्योपरि दशप्रदेशिकः एतस्याप्युपरि षट्प्रदेशिकः एतस्याप्युपरि त्रिप्रदेशिकः प्रतरः एतस्याप्युपर्येकः प्रदेशो दीयते इत्येवं पञ्चत्रिंशत्प्रदेशा इति।
(वृ. प. ८६१)

२५. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशियो, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, ओज त्र्यंस कह्यो एस ।।

२५. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

२६. तिहां युग्मप्रदेशिक त्र्यंस ते, जघन्य थकी कहिवाह।
चिहुं प्रदेशिक खंध ए, च्यार प्रदेश ओगाह ।।

२६. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं चउप्पदेसिए चउप्पदेसोगाढे पण्णत्ते,

युग्म प्रदेश घनत्र्यंस ४ प्रदेश नीं स्थापना

२	१
१	

ए ३, ते ऊपरि १ प्रदेश—एवं ४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. उष्कृष्ट अनंत प्रदेशियो, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, त्र्यंस युग्म घन एस ।।

२७. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।
(श. २५।५२)

चतुरस्र संस्थान के प्रदेश और आकाश-प्रदेश

हिवै चउरंस नां ओज युग्म बे भेद कहै छै—

२८. प्रभु ! चउरंस संठाण ते, किता प्रदेश नों पेख।
किता आकाश प्रदेश नैं, अवगाह्यो विशेख ?

२८. चउरंसे णं भंते ! संठाणे कतिपदेसिए—पुच्छा।

२९. श्रीजिन भाखै चउरंस ते, द्विविध वट्ट जिम भेद।
घन अनैं प्रतर बलि, ज्यूं करिवा संवेद ।।

२९. गोयमा ! चउरंसे संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
घणचउरंसे य, पतरचउरंसे य।

हिवै चउरंस प्रतर ओज प्रदेश कहै छै—

३०. जाव ओज-प्रदेशिक तिहां, ते जघन्य थकी कहिवाह।
नवप्रदेशिक खंध ते, नव प्रदेश ओगाह ।।

३०. जाव (सं. पा.) तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से
जहण्णेणं नवपदेसिए नवपदेसोगाढे,

ओज प्रदेश प्रतर चतुरस्र नव प्रदेश नीं स्थापना

१	१	१
१	१	१
१	१	१

३१. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशियो, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, ओज प्रतर कह्यो एस ।।

३१. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे
पण्णत्ते।

हिवै प्रतरयुग्म प्रदेशिक कहै छै—

३२. युग्मप्रदेशिक जे तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
च्यारप्रदेशिक खंध ए, च्यार प्रदेश ओगाह ।।

३२. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं चउपदेसिए
चउपदेसोगाढे पण्णत्ते,

युग्म प्रदेश प्रतर ४ प्रदेश नीं स्थापना

१	१
१	१

३३. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशियो, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, युग्म प्रतर कह्यो एस ।।

३३. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

हिवै घन चउरंस कहै छै—

३४. तिहां घन चउरंस अछै तिको, बे भेद अवगम।
ओज विषम प्रदेशिके, युग्म प्रदेशक सम ।।

३४. तत्थ णं जे से घणचउरंसे से दुविहे पण्णत्ते, तं
जहा—ओयपदेसिए य, जुम्मपदेसिए य।

हिवै चउरंस ओज प्रदेशिक कहै छै—

३५. घन चउरंस ओज प्रदेशिको, जघन्य थकी कहिवाह।
सत्तावीस प्रदेश नों, सप्तबीस अवगाह ।।

३५. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं सत्तावीसइ-
पदेसिए सत्तावीसइपदेसोगाढे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओज प्रदेश घन चउरंस २७ प्रदेश नीं स्थापना

३	३	३
३	३	३
३	३	३

एवं ते ऊपरि ९ अनैं हेठै ९ एवं २७।

वा.—एवमेतस्य नवप्रदेशिकप्रतरस्योपर्यन्यदपि प्रतरद्वयं स्थाप्यत इत्येवं सप्तविंशतिप्रदेशिकं चतुरस्रं भवतीति, (वृ. प. ८६१,८६२)

३६. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशियो, आकाश ते प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, घन ओज छै एस।।

३६. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

३७. घन चउरंस युग्मप्रदेशिको, जघन्य थकी कहिवाह।
अष्टप्रदेशिक खंध ए, अष्ट प्रदेश ओगाह।।

३७. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं अट्ठपदेसिए अट्ठपदेसोगाढे पण्णत्ते,

युग्म प्रदेश घन ८ प्रदेश नीं स्थापना

२	२
२	२

एवं ते ऊपरि ४ एवं ८ प्रदेश।

३८. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिको, ते आकाश नां अंश।
असंख्यात अवगाढ छै, ए घन युग्म चउरंस।।

३८. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।
(श. २५।५३)

आयत संस्थान के प्रदेश ओर आकाश प्रदेश

३९. आयत संठाण हे प्रभु ! किता प्रदेश नों एह।
किता आकाश प्रदेश नैं, अवगाह करेह ?

३९. आयते णं भंते ! संठाणे कतिपदेसिए कतिपदेसोगाढे पण्णत्ते ?

४०. जिन कहै आयत त्रिण विधे, सेढि आयत जाण।
प्रतर आयत दूसरो, घन आयत माण।।

४०. गोयमा ! आयते णं संठाणे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—सेढिआयते, पतरायते, घणायते।

सोरठा

४१. श्रेणि रूप प्रदेश, श्रेणि बंध कहियै तसु।
आयत दीर्घ कहेस, सेढि आयत भेद धुर।।

४१. 'सेढिआयए' त्ति श्रेण्यायतं—प्रदेशश्रेणीरूपं
(वृ. प. ८६२)

४२. विखंभ श्रेणि बे आदि, बाहल्यपणों नें अधिक तसु।
द्वितीय भेद संवादि, प्रतर आयत ए जाणवूं।।

४२. 'प्रतरायतं' कृतविष्कम्भश्रेणीद्वयादिरूपं
(वृ. प. ८६२)

४३. बाहल्य विखंभ सहीत, अनेक श्रेणि रूप जे।
आयत घन संगीत, तृतीय भेद आयत तणों।।

४३. 'घनायतं' बाहल्यविष्कम्भोपेतमनेकश्रेणीरूपं,
(वृ. प. ८६२)

हिवै सेढि आयत नां भेद कहै छै—

४४. सेढि आयत प्रथम ते, बिहुं भेदे अवगम।
ओज प्रदेशिक विषम ते, युग्म प्रदेशिक सम।

४४. तत्थ णं जे से सेढिआयते से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओयपदेसिए य, जुम्मपदेसिए य।

हिवै ओज प्रदेशिक सेढि आयत कहै छै—

४५. ओज प्रदेशी सेढि तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
तीनप्रदेशिक खंध ए, तीन प्रदेश ओगाह।।

४५. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं तिपदेसिए तिपदेसोगाढे,

* लय : सीता दै रे ओलंभड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रेणी आयत ३ प्रदेश नीं स्थापना

१	१	१

४६. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशिको, जे आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, सेढि ओज है एस।।

४६. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

हिवै युग्मप्रदेशिक सेढि आयत कहै छै—

४७. युग्मप्रदेशिक श्रेणि ते, जघन्य थकी कहिवाह।
दोयप्रदेशिक खंध ए, दोय प्रदेश ओगाह।।

४७. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं दुपदेसिए दुपदेसोगाढे,

युग्म प्रदेश श्रेणी आयत २ प्रदेश नीं ते स्थापना

१	१

४८. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिको, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, सेढि युग्म विशेष।।

४८. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

४९. प्रतर आयत भेद दूसरो, बे भेदे अवगम।
ओज प्रदेशिक विषम ते, युग्म प्रदेशिक सम।।

४९. तत्थ णं जे से पतरायते से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—ओयपदेसिए य, जुम्मपदेसिए य।

हिवै ओज प्रदेशिक प्रतर आयत कहै छै—

५०. ओज प्रदेश प्रतर तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
पनर प्रदेशिक खंध ए, पनर प्रदेश ओगाह।।

५०. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं पण्णरस-पदेसिए पण्णरसपदेसोगाढे,

ओज प्रदेश प्रतर आयत १५ प्रदेश नीं स्थापना

१	१	१	१	१
१	१	१	१	१
१	१	१	१	१

५१. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिको, ते आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, ओज प्रतर कह्यु एस।।

५१. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

हिवै युग्म प्रदेश प्रतर आयत कहै छै—

५२. युग्म प्रदेश प्रतर तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
षट प्रदेशिक खंध ए, षट प्रदेश ओगाह।।

५२. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं छप्पदेसिए छप्पदेसोगाढे,

युग्म प्रदेश प्रतर आयत ६ प्रदेश नीं स्थापना

१	१	१
१	१	१

५३. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिको, जे आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, युग्म प्रतर छै एस।।

५३. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिवै घन आयत कहै छै—

५४. तिहां घन आयत भेद तीसरो, बिहुं भेदे अवगम।
ओज प्रदेशिक विषम ते, युग्म प्रदेशिक सम।।

५५. ओज प्रदेशिक घन तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
पंच चालीस प्रदेश नों, पैंतालीस ओगाह।।

ओज प्रदेश घन आयत ४५ प्रदेश नीं स्थापना

३	३	३	३	३
३	३	३	३	३
३	३	३	३	३

एवं ते ऊपरी १५ अनै हेठै १५ एवं ४५।

५६. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिको, जे आकाश प्रदेश।
असंख्यात अवगाढ छै, घन ओज छै एस।।

हिवै युग्म प्रदेशिक घन कहै छै—

५७. युग्म प्रदेशिक घन तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
बार प्रदेशिक खंध ए, बार प्रदेश ओगाह।।

युग्म प्रदेश घन आयत १२ प्रदेश नीं स्थापना

२	२	२
२	२	२

एवं, ते ऊपरि ६ प्रदेश एवं १२।

५८. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशिको, ते आकाश प्रदेस।
असंख्यात अवगाढ छै, युग्म घनायत एस।।

परिमंडल संस्थान के प्रदेश और आकाश प्रदेश

५९. परिमंडल संठाण ते, भगवंतजी! ताह।
कितै प्रदेशे नीपनो? किता प्रदेश ओगाह?

६०. जिन कहै परिमंडल तिको, दाख्यो दोय प्रकार।
घन परिमंडल धुर कह्यो, द्वितीय प्रतर विचार।।

६१. प्रतर परिमंडल जे तिहां, जघन्य थकी कहिवाह।
बीस प्रदेशिक खंध ए, बीस प्रदेश ओगाह।।

प्रतर परिमंडल २० प्रदेश नीं स्थापना

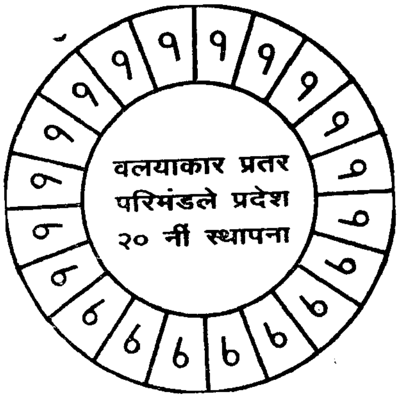

५४. तत्थ णं जे से घणायते से दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
ओयपदेसिए य, जुम्मपदेसिए य।

५५. तत्थ णं जे से ओयपदेसिए से जहण्णेणं पणयालीस-पदेसिए पणयालीसपदेसोगाढे,

५६. उक्कोसेणं 'अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे'।

५७. तत्थ णं जे से जुम्मपदेसिए से जहण्णेणं बारसपदे-सिए बारसपदेसोगाढे,

५८. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे।
(श. २५।५४)

५९. परिमंडले णं भंते! संठाणे कतिपदेसिए—पुच्छा।

६०. गोयमा! परिमंडले णं संठाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—घणपरिमंडले य, पतरपरिमंडले य।

६१. तत्थ णं जे से पतरपरिमंडले से जहण्णेणं वीसइपदे-सिए वीसइपदेसोगाढे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. उत्कृष्ट अनंतप्रदेशिको, जे आकाश प्रदेश ।
असंख्यात अवगाढ छै, एह प्रतर विशेष ।।

६२. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे ।

घन परिमंडल

६३. घन परिमंडल जे तिहां, जघन्य थकी कहिवाह ।
तेह चालीस प्रदेश नों, नभ चालीस ओगाह ।।

६३. तत्थ णं जे से घणपरिमंडले से जहण्णेणं चत्तालीसइ-पदेसिए चत्तालीसइपदेसोगाढे पण्णत्ते,

घन परिमंडल ४० प्रदेश नीं स्थापना

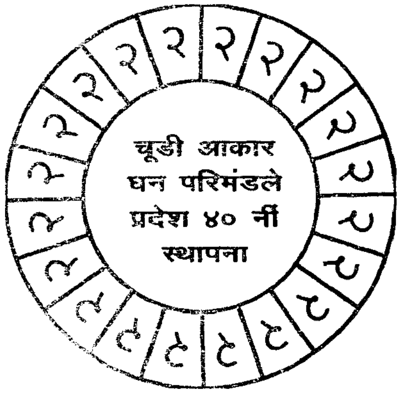

६४. उत्कृष्ट अनंत प्रदेशिको, ते आकाश प्रदेश ।
असंख्यात अवगाढ छै, घन परिमंडल एस ।।

वा०—इहां परिमंडल नां ओज अनैं युग्म ए बे भेद न कह्या ते किण कारण—युग्म रूपपणैं करी एक रूपवान परिमंडल छै पिण ओज रूप नथी । ते माटै ओज अनैं युग्म ए बे भेद परिमंडल नां न किया ।

६४. उक्कोसेणं अणंतपदेसिए असंखेज्जपदेसोगाढे पण्णत्ते । (श. २५।५५)

वा.—इह ओजोयुग्मभेदौ न स्तः, युग्मरूपत्वेनैक-रूपत्वात्परिमण्डलस्येति, (वृ. प. ८६२)

६५. बे सौ तेपन नुं देश ए, चिउं सौ छतीसमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष विशाल ।।

ढाल : ४३७

दूहा

१. अनंतरे जे आखियो, परिमंडल प्रति तेह ।
अथ परिमंडल आदि जे, अन्य प्रकार कहेह ।।

१. अनन्तरं परिमण्डलं प्ररूपितम्, अथ परिमण्डलमेवादौ कृत्वा संस्थानानि प्रकारान्तरेण प्ररूपयन्नाह—
(वृ. प. ८६२)

संस्थानों के कृतयुग्म आदि

२. इक परिमंडल हे प्रभु ! दव्वट्ठयाए जेह ।
द्रव्य अर्थ करिकै तसु, स्यूं कृतयुग्म कहेह ?

२. परिमंडले णं भंते ! संठाणे दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे ?

३. कै तेयोए त्र्योज छै, कै दाबरजुम्म होय ।
कै कलिओगे ह्वै तिको ? ए चिहुं प्रश्नज जोय ।।

३. तेओए ? दावरजुम्मे ? कलिओए ?

४. जिन भाखै कृतयुग्म नहीं, तेओगे नहीं होय ।
द्वापरयुग्म नहीं तिको, कलिओगे ह्वै सोय ।।

४. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेयोए, नो दावरजुम्मे, कलियोए । (श. २५।५६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां एक परिमंडल तैं द्रव्यार्थपणैं करी एकही द्रव्य हुवै । एकत्व चिंता नैं विषे कृतयुग्मादिक द्रव्य नहीं हुवै । एकत्व चिंता ते एक वचनपणां नीं चितवणा नैं विषे एतलै एक परिमंडल नीं विचारणा नैं विषे । कलिओगे कहितां एकईज हुवै । पिण ते एक परिमंडल संठाण नैं द्रव्य आश्रयी कडजुम्मे कहितां च्यार न कहियै । तथा जे एक परिमंडल नैं द्रव्य आश्रयी तेयोगे कहितां तीन पिण न कहियै । तथा ते एक परिमंडल नैं द्रव्य आश्रयी द्वापुरयुग्म कहितां दोय पिण न कहियै । तथा एक परिमंडल नैं द्रव्य आश्रयी कलिओगे कहितां एक कहियै । एतलै एक परिमंडल ते द्रव्य थकी कृतयुग्म च्यार द्रव्य न हुवै । तेयोगे तीन द्रव्य न हुवै, द्वापर युग्म दोय द्रव्य न हुवै । कलिओगे एक द्रव्य हुवै ।

वा.—'परिमंडले' त्यादि, परिमण्डलं द्रव्यार्थतयैकमेव द्रव्यं, न हि परिमण्डलस्यैकस्य 'चतुष्कापहारोऽस्तीत्येकत्वचिन्तायां न कृतयुग्मादिव्यपदेशः किन्तु कल्योजव्यपदेश एव, (वृ. प. ८६३)

५. एक वृत्त संठाण प्रभु ! द्रव्य अर्थ करि ताय ?
एवं चेव कहीजियै, कलिओगे इक थाय ।।
६. एवं यावत जाणवुं, एक आयत लग सोय ।
कृतयुग्मादिक त्रिहुं नहीं, इक कलिओगे होय ।।
७. इक वचने करि द्रव्य थी, कह्या पंच संठाण ।
अथ हिव बहु वचने करी, वर शिष्य प्रश्न पिछाण ।।

५. वट्टे णं भंते ! संठाणे दव्वट्ठयाए ? एवं चेव ।

६. एवं जाव आयते । (श. २५।५७)

८. *बहु वच परिमंडल संस्थान, द्रव्य अर्थ करि हे भगवान !
स्यूं कडजुम्मा कै तेओगा, दाबरजुम्मा कै कलियोगा ?
९. जिन कहै ओघ सामान्य थकीज,
समुच्चय थी इहरीत कहीज ।
कदाचित कडजुम्मा होय, कदाचित तेओगा जोय ।।
१०. कदाचित किण काले जेह, दावरजुम्मा पिण हुवै तेह ।
कलियोगा पिण ह्वै किणवार,
ओघ सामान्य थकी अवधार ।।

८. परिमंडला णं भंते ! संठाणा दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा, तेयोया—पुच्छा ।
९. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा, सिय तेओगा,

१०. सिय दावरजुम्मा, सिय कलियोगा,

वा०—पृथक ते बहुवचन परिमंडल नीं चितवणा नैं विषे जे सर्व परिमंडल संठाण छै ते किण काले च्यार-च्यार अपहरवै करी शेष च्यार रह्या ते कडजुम्मा हुवै । अनैं कदाचित च्यार-च्यार अपहरवै शेष तीन अधिक हुवै ते तेयोगा कहियै । अनैं कदाचित च्यार-च्यार अपहरवै शेष दोय अधिक हुवै ते द्वापरयुग्म कहियै । अनैं कदाचित च्यार-च्यार अपहरवै शेष एक अधिक हुवै ते कलिओगा कहियै ।

वा.—यदा तु पृथक्त्वचिन्ता तदा कदाचिदेतावन्ति तानि परिमण्डलानि भवन्ति यावतां चतुष्कापहारेण निच्छेदता भवति कदाचित्पुनस्त्रीण्यधिकानि भवन्ति कदाचिद् द्वे कदाचिदेकमधिकमित्यत एवाह— (वृ. प. ८६३)

११. विधानादेश करी अवलोय, परिमंडल समुदाय नैं जोय ।
एक-एक नैं कहिवै सोय, कडजुम्मा कहियै नहिं कोय ।।
१२. तेओगा पिण तास न कहियै,
द्वापरजुम्मा पिण नहि लहियै ।
कलियोगा एक-एक पिछाण, एवं यावत आयत जाण ।।

११,१२. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेओगा, नो दावरजुम्मा, कलियोगा । एवं जाव आयता । (श. २५।५८)

'विहाणादेसेणं' ति विधानादेशो यत्समुदितानामप्येकैकस्यादेशनं तेन च कल्योजतैवेति । (वृ. प. ८६३)

वा०—हिवै एकवचन परिमंडलादिक नीं प्रदेश आश्रयी पूछा करै छै—
तिहां परिमंडल सठाण प्रदेशार्थपणैं बीस प्रमुख खेत्र नां प्रदेश नैं विषे जे प्रदेश परिमंडल संस्थान निपजावणहारा रह्या, तेहनीं अपेक्षाए कृतयुग्म इत्यादि प्रश्न—

वा.—अथ प्रदेशार्थचिन्तां कुर्वन्नाह—'परिमंडले ण' मित्यादि, तत्र परिमण्डलं संस्थानं प्रदेशार्थतया विंशत्यादिषु क्षेत्रप्रदेशेषु ये प्रदेशाः परिमण्डलसंस्थाननिष्पादका व्यवस्थितास्तदपेक्षयेत्यर्थः, (वृ. प. ८६३)

* लय : इण पुर कंबल कोई न लेसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. इक परिमंडल हे भगवान ! प्रदेश अर्थ करी पहिछान ।
स्यूं कडजुम्मे प्रमुखज पृच्छा ?
हिव जिन भाखै सुण धर इच्छा ।।

१४. कदाचित कडजुम्म कहाय, कदाचित तेयोगज थाय ।
कदाचित द्वापरजुम्म होय, कदाचित कलियोग सुहोय ।।

वा० —कदाचित कृतयुग्म तेह प्रदेश नैं च्यार-च्यार नैं अपहरवै च्यार शेष रहै तो कृतयुग्म कहियै । इम तीन रहै तो त्र्योज । दोय रहै तो द्वापरयुग्म । एक शेष रहै तो कल्योज ।

१५. एवं यावत आयत एक, प्रदेश आश्रयी चिहुं पद पेख ।
इक वचने करि ए आख्यात,
हिव बहुवचने करि अवदात ।।

वा० —हिवै बहुवचन परिमंडलादिक नीं प्रदेश आश्रयी पूछा करै छै—

१६. बहु वच परिमंडल हे स्वाम !
प्रदेश अर्थपणैं करि ताम ।
स्यूं कडजुम्मा प्रश्न उदार ? उत्तर तास दियै जगतार ।।

१७. ओघ सामान्य समुच्चय धार,
ते आश्रयी कडजुम्मा किवार ।
जाव कदा कलियोगा कहियै,
न्याय विचारी हिवड़ै लहियै ।।

१८. विधान इक-इक द्रव्य नां प्रदेश,
ते आश्रयी कहियै सुविशेष ।
कडजुम्मा पिण ह्वै छै तेह, तेओगा पिण लहियै जेह ।।

१९. द्वापरयुग्मा पिण ते होय, कलिओगा पिण ह्वै छै सोय ।
एवं जाव आयत लग जाण,
प्रदेश आश्रयी बहु वच माण ।।

वा० —हिवै अवगाह प्रदेश ते जे परिमंडलादिक आकाश प्रदेश नैं विषे रह्या ते आकाश प्रदेश निरूपण नैं अर्थे कहै छै—

२०. इक परिमंडल हे जिनराया !
स्यूं कडजुम्म प्रदेश ओगाह्या ।
जाव कल्योज आकाश प्रदेश, अवगाही ते रह्यो विशेष ?

२१. जिन भाखै सांभल सुविशेष, कृतयुग्म आकाश प्रदेश ।
तेहिज अवगाढक हुवै सोय,
त्र्योज प्रदेश ओगाढ न होय ।।

२२. द्वापरयुग्म आकाश प्रदेश, ते पिण अवगाहै नहिं एस ।
गगन प्रदेशि कल्योज कहाय, ते पिण अवगाहै नहिं ताय ।।

वा० — कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै जेह भणी परिमंडल जघन्य थकी बीस प्रदेश अवगाहै, इसो कह्यो । बीस नैं च्यार अपहरतां च्यार शेष रहै ते माटै । कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै इम परिमंडलांतर नैं विषे पिण कहिवो ते माटै, नहीं त्र्योज प्रदेशावगाढ, नहीं द्वापर प्रदेशावगाढ, नहीं कल्योज प्रदेशावगाढ ।

१३. परिमंडले णं भंते ! संठाणे पएसट्ठयाए किं कडजुम्मे —पुच्छा ।
गोयमा !

१४. सिय कडजुम्मे, सिय तेयोगे, सिय दावरजुम्मे, सिय कलियोगे ।

वा.—'सिय कडजुम्मे' त्ति तत्प्रदेशानां, चतुष्कापहारेणापह्रियमाणानां चतुष्पर्यवसितत्वे कृतयुग्मं तत्स्यात्, यदा त्रिपर्यवसानं तत्तदा त्र्योजः, एवं द्वापरं कल्योजश्चेति, (वृ. प. ८६३)

१५. एवं जाव आयते । (श. २५।५९)

१६. परिमंडला भंते ! संठाणा पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मा —पुच्छा ।

१७. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

१८. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि, तेओगा वि,

१९. दावरजुम्मा वि, कलियोगा वि । एवं जाव आयता ।
(श. २५।६०)

वा.—अथावगाहप्रदेशनिरूपणायाह—'परिमंडले' त्यादि, (वृ. प. ८६३)

२०. परिमंडले णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपदेसोगाढे जाव कलियोगपदेसोगाढे ?

२१. गोयमा ! कडजुम्मपदेसोगाढे, नो तेयोगपदेसोगाढे,

२२. नो दावरजुम्मपदेसोगाढे, नो कलियोगपदेसोगाढे ।
(श. २५।६१)

वा.—'कडजुम्मपएसोगाढे' त्ति यस्मात्परिमण्डलं जघन्यतो विंशतिप्रदेशावगाढमुक्तं विंशतेश्च चतुष्कापहारे चतुष्पर्यवसितत्वं भवति एवं परिमण्डलान्तरेऽपीति । (वृ. प. ८६३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. इक वृत्त प्रभु ! संठाण विशेष,
स्यूं कृतयुग्म आकाश प्रदेश-
अवगाही नें रह्यो छै तास ?
इत्यादिक वर प्रश्न विमास ।।

२३. वट्टे णं भंते ! संठाणे किं कडजुम्मपदेसोगाढे—पुच्छा ।

२४. जिन कहै कडजुम्म गगन प्रदेश, कदाचित अवगाहै एस ।
त्र्योज आकाश प्रदेश विचार, तेह प्रतै अवगाहै किवार ।।

२५. द्वापरजुम्म नभ प्रदेश त्यांही, ते अवगाढक ए छै नाहीं ।
कदाचित कल्योज कहाय, गगन प्रदेशे प्रतै अवगाय ।।

२४. गोयमा ! सिय कडजुम्मपदेसोगाढे, सिय तेयोगपदेसोगाढे,

२५. नो दावरजुम्मपदेसोगाढे, सिय कलियोगपदेसोगाढे । (श. २५।६२)

वा०—कदाचित कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै ते किम ? जे प्रतर-वृत्त बारै प्रदेशिक वली जेह घन-वृत्त प्रदेशिक कह्यु, तेहनें च्यार नें अपहार नैं च्यार अवशेष थकी कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै । तथा जेह घन-वृत्त सप्त प्रदेशिक तेहनैं च्यार अपहरतां शेष तीन रहै ते माटै त्र्योज प्रदेशावगाढ हुवै । नो दावरजुम्म पएसोवगाढ—ते द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ नहीं । 'सिय कलियोगपदेसोगाढे' कदाचित प्रतर-वृत्त पंच प्रदेश अवगाह्यो च्यारे भागे अपहरतां एक शेष रहै ते माटै कदाचित कल्योज हुवै ।

वा.—'सिय कडजुम्मपएसोगाढे' त्ति यत्प्रतरवृत्तं द्वादशप्रदेशिकं यच्च घनवृत्तं द्वात्रिंशत्प्रदेशिकमुक्तं तच्चतुष्कापहारे चतुरग्रत्वात्कृतयुग्मप्रदेशावगाढं, 'सिय तेओयपएसोगाढे' त्ति यच्च घनवृत्तं सप्तप्रदेशिकमुक्तं तत्त्र्यग्रत्वात्त्र्योजः-प्रदेशावगाढं 'सिय कलिओयपएसोगाढे' त्ति यत्प्रतरवृत्तं पञ्चप्रदेशिकमुक्तं तदेकाग्रत्वात्कल्योजप्रदेशावगाढमिति । (वृ. प. ८६३)

२६. एक तंस संठाण नीं पृच्छा,
श्री जिन भाखै सुण धर इच्छा ।।
नभ प्रदेश कडजुम्म विचार,
अवगाढक ह्वै छै किणवार ।।

२७. त्र्योज प्रदेश ओगाह किवार,
कदा दावरजुम्म प्रदेश लार ।
पिण कल्योज आकाश प्रदेश, अवगाढक नहि ह्वै छै एस ।।

२६. तंसे णं भंते ! संठाणे—पुच्छा ।
गोयमा ! सिय कडजुम्मपदेसोगाढे,

२७. सिय तेयोगपदेसोगाढे, सिय दावरजुम्मपदेसोगाढे, नो कलियोगपदेसोगाढे । (श. २५।६३)

वा०—जेह घन त्र्यंस चतुप्रदेशिक तेह कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै । सिय तेओग तेह प्रतर त्र्यंस तीन प्रदेशावगाढ तथा घन त्र्यंस पैंतीस प्रदेशावगाढ, तेहनें च्यार अपहरतां शेष तीन रहै ते त्र्योज प्रदेशावगाढ । सिय दावरजुम्म—जेह घन त्र्यंस षटप्रदेशिक कह्यु, तेहनें च्यार अपहरतां शेष दोय रहै ते द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै, पिण कल्योज प्रदेशावगाढ न हुवै ।

वा.—'सिय कडजुम्मपएसोगाढे' त्ति यद् घनत्र्यस्रं चतुष्प्रदेशिकं तत्कृतयुग्मप्रदेशावगाढं' सिय तेओगपएसोगाढे' त्ति यत् प्रतरत्र्यस्रं त्रिप्रदेशावगाढं घनत्र्यस्रं च पञ्चत्रिंशत्प्रदेशावगाढं तत्त्र्यग्रत्वात्त्र्योजः-प्रदेशावगाढं, 'सिय दावरजुम्मपएसोगाढे' त्ति यत्प्रतरत्र्यस्रं षट्प्रदेशिकमुक्तं तद् द्व्यग्रत्वाद् द्वापरप्रदेशावगाढमिति । (वृ. प. ८६३)

२८. एक चउरंस प्रभु ! संठाण ?,
प्रश्न कियां भाखै जगभाण ।
वृत्त संठाण कह्यो छै जेम, चतुर-अंस पिण कहिवो तेम ।।

२८. चउरंसे णं भंते ! संठाणे ? जहा वट्टे तहा चउरंसे वि । (श. २५।६४)

२९. एक आयत नीं पूछा ताह,
कदा कडजुम्म प्रदेश ओगाह ।
जाव कदा कलियोग प्रदेश, ते अवगाढक ह्वै सुविशेष ।।

२९. आयते णं भंते ! पुच्छा ।
गोयमा ! सिय कडजुम्मपदेसोगाढे जाव सिय कलियोगपदेसोगाढे । (श. २५।६५)

वा०—जेह घनायत बार प्रदेशावगाढ कह्यो तेह कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै । इम यावत शब्द थकी कदाचित कल्योज प्रदेशावगाढ कहिवो । तेह इम—जेह श्रेण्यायत त्रिप्रदेशावगाढ ते त्र्योज प्रदेशावगाढ । तथा जेह श्रेण्यायत द्विप्रदेशिक ते द्वापर युग्म प्रदेशावगाढ । तथा जेह घनायत पैंतालीस प्रदेश प्रदेशावगाढ ते कल्योज प्रदेशावगाढ हुवै—ए एकत्वे चितव्या ।

वा.—'सिय कडजुम्मपएसोगाढे' त्ति यद् घनायतं द्वादशप्रदेशिकमुक्तं तत्कृतयुग्मप्रदेशावगाढं यावत्करणात् 'सिय तेओयपएसोगाढे सिय दावरजुम्मपएसोगाढे' त्ति दृश्यं, तत्र च यत् श्रेण्यायतं त्रिप्रदेशावगाढं यच्च प्रतरायतं पञ्चदशप्रदेशिकमुक्तं तत्त्र्यग्रत्वात्त्र्योजः प्रदेशावगाढं, यत्पुनः श्रेण्यायतं द्विप्रदेशिकं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. बहु वच परिमंडल जगनाह !
स्यूं कडजुम्म प्रदेश ओगाह ?
इत्यादिक पूछा पहिछाण, उत्तर भाखै है जगभाण ।।
३१. ओघ सामान्य थकी पिण सोय,
विधान भेद थकी पिण जोय ।
कृतयुग्म नभ अंश ओगाह,
त्र्योज दावरजुम्म कल्योज नांह ।।

वा०— ओघ आश्री ते समुच्चय सामान्य थकी समस्त हीज परिमंडल कहियै तथा विधान आश्री ते भेद थकी एकेक परिमण्डल प्रतै कहियै । ए ओघ आश्री पिण अनैं विधान आश्री पिण कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै । बीस तथा चालीस प्रमुख प्रदेशावगाढपणैं करी तेहनैं कह्या माटै त्र्योज प्रदेशावगाढ नहीं तथा द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ न हुवै तथा कल्योज प्रदेशावगाढ पिण न हुवै ।

३२. बहु वच वृत्त संठाण जिनेश ! स्यूं कडजुम्म आकाश प्रदेश ।
अवगाही नैं रह्या छै तेह ? हिव जिन उत्तर आपै एह ।।
३३. ओघादेश कडजुम्म प्रदेश, अवगाही नैं रह्या सुविशेष ।
त्र्योज द्वापरजुम्म कल्योज ताहि,
नभ प्रदेश अवगाहै नांहि ।।
३४. विधान इक-इक कहिवै ताह,
कडजुम्म प्रदेश पिण ओगाह ।
त्र्योज आकाश प्रदेश सुजोय, ते पिण अवगाढक ए होय ।।
३५. द्वापरयुग्म आकाश प्रदेश, ते अवगाढक नहिं छै एस ।।
कल्योज नभ-प्रदेश पिछाण, तेह तणो ओगाहक जाण ।।

वा० – बहुवचने वृत्त संठाण खंधा ओघादेश करि सामान्य करि विचारतां थकां कृतयुग्म प्रदेश अवगाढा हुवै । सर्व प्रदेशां नैं भेला कीधे छते च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै च्यार अधिक रहै ते माटै कृतयुग्म प्रदेश अवगाढा हुवै । अनैं विधानादेश ते एक-एक वृत्त नां खंध चितवे करि द्वापरयुग्म प्रदेश अवगाढ वर्जी नैं शेष अवगाढा हुवै । जिम पूर्वे कह्या पंच सप्तादिक जघन्य वृत्त भेद नैं विषै च्यार-च्यार अपहरवै अधिक दोय नथी हुवै । इम सर्व वृत्त नैं विषै वस्तु स्वभाव थकी द्वापरयुग्म प्रदेश अवगाढ न हुवै इम ।

३६. बहु वच तंस अहो जिनराया !
स्यूं कडजुम्म प्रदेश ओगाह्या ?
इत्यादिक वर प्रश्न उदारं, श्री जिन उत्तर भाखै सारं ।।
३७. ओघ समुच्चय करि अवलोय,
कडजुम्म नभ अवगाहक होय ।
त्र्योज दावर कलियोग प्रदेश,
अवगाहक नहिं छै त्रिहुं एस ।।

यच्च प्रतरायतं षट्प्रदेशिकं तद् द्वयग्रत्वाद् द्वापरयुग्मप्रदेशावगाढं, 'सिय कलिओयपएसोगाढे' त्ति यद् घनायतं पञ्चचत्वारिंशत्प्रदेशिकं तदेकाग्रत्वात्कल्योजः प्रदेशावगाढमिति । (वृ. प. ८६४)

३०. परिमंडला णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपदेसोगाढा— पुच्छा ।

३१. गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा ।
(श. २५।६६)

वा.—'ओघादेसेण वि' त्ति सामान्यतः समस्तान्यपि परिमण्डलानीत्यर्थः 'विहाणादेसेणवि' त्ति भेदतः एकैकं परिमण्डलमित्यर्थः कृतयुग्मप्रदेशावगाढान्येव विंशतिचत्वारिंशत्प्रभृतिप्रदेशावगाहित्वेनोक्तत्वात्तेषामिति । (वृ.प. ८६४)

३२. वट्टा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपदेसोगाढा— पुच्छा ।

३३. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

३४. विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि, तेयोगपदेसोगाढा वि,

३५. नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, कलियोगपदेसोगाढा वि ।
(श. २५।६७)

वा. —'वट्टा ण' मित्यादि, 'ओघादेसेणं कडजुम्मपएसोगाढे' त्ति वृत्तसंस्थानाः स्कन्धाः सामान्येन चिन्त्यमानाः कृतयुग्मप्रदेशावगाढाः सर्वेषां तत्प्रदेशानां मीलने चतुष्कापहारे तत्स्वभावत्वेन चतुष्पर्यवसितत्वात्, विधानादेशेन पुनर्द्वापरप्रदेशावगाढवर्जाः शेषावगाढा भवन्ति, यथा पूर्वोक्तेषु पञ्चसप्तादिषु जघन्यवृत्तभेदेषु चतुष्कापहारे द्वयावशिष्टता नास्ति एवं सर्वेष्वपि तेषु वस्तुस्वभावत्वाद् (वृ. प. ८६४)

३६. तंसा णं भंते ! संठाणा किं कडजुम्मपदेसोगाढा— पुच्छा ।

३७. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३८. विधान एक-इक आश्री सोय,
कडजुम्म नभ अवगाहक होय।
त्र्योज दावरजुम्म नभ अवगाही,
कल्योज नभ अवगाहक नांहीं[1] ।।

३९. बहुवच चउरंसा संठाण,
जिम बहु वच वृत्त आख्यो जाण।
तिणहिज विध कहिवो छै एह,
ओघ विधान आश्रयी जेह ।।

४०. बहु वच आयत प्रश्न विचार,
जिन कहै ओघ सामान्य थी धार।
कडजुम्म गगन प्रदेश ओगाही,
शेष तीन अवगाहणा नांही ।।

४१. विधान आश्री ए अवलोय,
कडजुम्म नभ अवगाढा होय।
जाव कल्योज प्रदेश ओगाह,
वस्तु स्वभाव थकी कहिवाह ।।

वा०—ए खेत्र थकी एकवचन, बहुवचन करि संस्थान चितव्या। हिवै काल थकी एकवचन, बहुवचन करिकै चितवतो थको कहै छै—

४२. इक परिमंडल हे भगवंत!
स्यूं कडजुम्म समय स्थितिवंत?
त्र्योज द्वापर कल्योज विचार?,
ए त्रिहुं समय स्थितिक अवधार ।।

वा०—हे भगवन! परिमण्डल संस्थान एतलै परिमण्डले संस्थाने करी परिणत खंध केतलो काल रहिस्यै? स्यूं चतुष्क अपहारे करी ते काल नां समय च्यार शेष हुवै अथवा तीन शेष हुवै अथवा दोय शेष हुवै अथवा एक शेष रहै? इति प्रश्न।

४३. जिन कहै ओघ थकी अवधार,
कडजुम्म समय स्थितिक किणवार।
जाव कदाचि समयज स्थित्त,
एवं जाव आयत लग वक्खित्त ।।

४४. बहु वच परिमंडल प्रभु! कथिया,
स्यूं कडजुम्म समय नां स्थितिया।
इत्यादिक पूछचा अवधार, तसु उत्तर देवै जगतार ।।

४५. ओघ सामान्य थकी अवलोय,
कडजुम्म समय स्थितिक कद होय।
जाव कदाचित ते कलियोग,
समय स्थितिका होवै प्रयोग ।।

---

३८. विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि, तेयोगपदेसोगाढा वि, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, कलियोगपदेसोगाढा वि।

३९. चउरंसा जहा वट्टा। (श. २५।६८)

४०. आयता णं भंते! संठाणा—पुच्छा।
गोयमा! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

४१. विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि जाव कलियोगपदेसोगाढा वि। (श. २५।६९)

वा.—एवं तावत्क्षेत्रत एकत्वपृथक्त्वाभ्यां संस्थानानि चिन्तितानि, अथ ताभ्यामेव कालतो भावतश्च तानि चिन्तयन्नाह— (वृ. प. ८६४)

४२. परिमंडले णं भंते! संठाणे किं कडजुम्मसमयठितीए? तेयोगसमयठितीए? दावरजुम्मसमयठितीए? कलियोगसमयठितीए?

वा.—'परिमंडले ण' मित्यादि, अयमर्थः—परिमंडलेन संस्थानेन परिणताः स्कन्धाः कियन्तं कालं तिष्ठति? किं चतुष्कापहारेण तत्कालस्य समयाश्चतुरग्रा भवन्ति त्रिद्वयेकाग्रा वा? (वृ. प. ८६४)

४३. गोयमा! सिय कडजुम्मसमयठितीए जाव सिय कलियोगसमयठितीए। एवं जाव आयते।

४४. परिमंडला णं भंते! संठाणा किं कडजुम्मसमयठितीया—पुच्छा।

४५. गोयमा! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मसमयठितीया जाव सिय कलियोगसमयठितीया, (श. २५।७०)

---

१. प्रस्तुत गाथा के सामने भगवती का जो पाठ उद्धृत किया गया है, उसकी जोड़ के साथ संवादिता नहीं है। मुद्रित और हस्तलिखित अनेक प्रतियों में ऐसा ही पाठ है। किन्तु जयाचार्य द्वारा लिखित 'हेम भगवती' में जो पाठ है, वह इस गाथा का संवादी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. विधान इक-इक आश्रयी छै,
कडजुम्म समय स्थितिका पृच्छै ।
जाव कल्योज समय स्थितिकापी,
एवं जावत आयत व्यापी ।।

४६. विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयठितीया वि जाव कलियोगसमयठितीया वि, एवं जाव आयता । (श. २५।७१)

भाव थकी एकवचन बहुवचन करिकै संठाण —

४७. इक वच परिमंडल भगवान !
काल वर्ण पजवै करि जान ।
स्यूं कडजुम्म जाव कलियोग ?
जिन भाखै सुण धर उपयोग ।।

४७. परिमंडले णं भंते ! संठाणे कालवण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

४८. कदाचित कडजुम्म इत्यादि, इण आलावे करि संवादि ।
जेम समय स्थितिके आख्यात,
तिमहिज कहिवो ए अवदात ।।

४८. गोयमा ! सिय कडजुम्मे । एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ठितीए ।

४९. नील वर्ण पजव पिण एम, पंच वर्ण करि कहिवो तेम ।
दोय खंध करि इम कहिवाय,
पंच रसे करि पिण इम थाय ।।

४९. एवं नीलवण्णपज्जवेहिं । एवं पंचहिं वण्णेहिं, दोहिं गंधेहिं, पंचहिं रसेहिं,

५०. आठ फर्श पिण इमहिज कहिवूं,
जावत लुक्ख फर्श करि लहिवूं ।
ए सगलाई बोल विचार,
समय स्थितिक जिम कहिवूं सार ।।

५०. अट्ठहिं फासेहिं जाव लुक्खफासपज्जवेहिं । (श. २५।७२)

५१. शत पणवीसम तृतीय नुं देश,
चिहुं सौ सैंतीसमी ढाल विशेष ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय,
'जय-जश' संपति हरष सवाय ।।

ढाल : ४३८

श्रेणी-परिमाण

दूहा

१. द्रव्य खेत्रादि अपेक्षया, जे संस्थान परिमाण ।
तेह तणों विस्तार ते, पूर्वे आख्यो जाण ।।
२. हिवै विशेष संस्थान नों, द्रव्यादि अपेक्षाय ।
जे परिमाण निरूपियै, सांभलज्यो चित ल्याय ।।

१,२. द्रव्याद्यपेक्षया संस्थानपरिमाणस्याधिकृतत्वात्संस्थान-विशेषितस्य लोकस्य तथैव परिमाणनिरूपणायाह— (वृ. प. ८६४)

३. श्रेणी प्रभु ! केती कही, द्रव्य अर्थ करि मंत ।
स्यूं संख्याती श्रेणि छै, कै छै असंख अनंत ? ।।

३. सेढीओ णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ ? असंखेज्जाओ ? अणंताओ ?

वा०—सेढि०— श्रेणी शब्दे करी यद्यपि पंक्ति मात्र कहियै, तथापि इहां आकाश प्रदेश पंक्ति ते श्रेणी शब्दे ग्रहिवी । पहिलां तो लोकालोक नीं विवक्षा अणकरिवै एतले सामान्यपणैं आकाश नीं श्रेणी ग्रहिवी १, पछै तेहिज सामान्य आकाश नीं श्रेणी पूर्वापर आयत २, दक्षिण-उत्तर आयत ३, ऊर्ध्व-अध आयत ४,

वा.—'सेढी' त्यादि, श्रेणीशब्देन च यद्यपि पंक्तिमात्रमुच्यते तथाऽपीहाकाशप्रदेशपंक्तयः श्रेणयो ग्राह्याः, तत्र श्रेणयोऽविवक्षितलोकालोकभेद-त्वेन सामान्याः १ तथा ता एव पूर्वापरायताः २

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं लोकसंबंधिनी पिण ४, अलोक संबंधिनी पिण ४ कहिवी। तिहां सामान्य श्रेणी नों प्रश्न कहै छै —

४. जिन कहै संख्याती नहीं, असंख्यात नहिं कोय।
श्रेणि अनंती द्रव्य थी, सामान्य थी ए होय।।

वा०—सामान्य आकाशास्तिकाय नीं श्रेणि नां वंछवा थकी एतलै सामान्य कहिवै लोक-अलोक बिहुं नीं श्रेणि वंछी ते माटै अनंती कहियै।

५. पूर्व पश्चिम हे प्रभु! आयत लांबी श्रेण।
स्यूं संख्याती आदि जे? एवं चेव कहेण।।

६. दक्षिण उत्तर आयत पिण, इमहिज श्रेणि अनंत।
ऊंची नीची आयत पिण, श्रेणि अनंती मंत।।

वा०—इहां च्यार प्रश्नोत्तर कह्या। प्रथम समुच्चय सामान्य थी लोकालोक आकाशास्तिकाय नीं श्रेणि द्रव्य थकी अनंती कही १। सामान्य थकी लोकालोक नीं पूर्व पश्चिमे लांबी श्रेणि द्रव्य थकी अनंती कही २। सामान्य थकी लोकालोक नीं दक्षिण उत्तरे लांबी श्रेणि द्रव्य थकी अनंती कही ३। सामान्य थकी लोकालोक नीं ऊंची नीची लांबी श्रेणि द्रव्य थकी अनंती कही ४। हिवै ए च्यार प्रश्नोत्तर लोकाकाश नीं श्रेणि आश्री द्रव्यार्थपणै करी कहियै छै—

*श्रेणि विस्तार सुणों जन श्रोता!।।(ध्रुपदं)

७. लोकाकाश नीं श्रेणी प्रभुजी! द्रव्य अर्थ करि तेहो जी।
स्यूं संख्याती कै असंख्याती छै, अथवा अनंती एहो जी?

८. श्री जिन भाखै नहिं संख्याती, असंख्याती कहिवायो जी।
वलि द्रव्य थकी श्रेणी नहिं छै अनंती, लोक असंख रै न्यायो जी।।

९. पूर्व पश्चिम लांबी प्रभुजी! लोकाकाश नीं श्रेणो जी।
द्रव्य अर्थ करि स्यूं संख्याती, एवं चेव असंख्याती कहेणी जी।।

१०. इमहिज दक्षिण उत्तर लांबी, ऊंची नीची इम लंबी जी।
असंख्याती श्रेणी द्रव्य थकी छै, ए जिन वाणी अदंभी जी।।

हिवै ए च्यार प्रश्नोत्तर अलोक आश्री द्रव्यार्थिकपणै करि कहियै छै —

११. अलोकाकाश नीं श्रेणि प्रभुजी! द्रव्य अर्थ करि तेही जी।
स्यूं संख्याती कै असंख्याती छै, अथवा अनंती जेही जी?

१२. श्री जिन भाखै नहीं संख्याती, असंख्याती नहिं होई जी।
द्रव्य अर्थ करि श्रेणि अनंती, अनंत अलोक सुजोई जी।।

१३. पूर्व पश्चिम लांबी पिण इम, लांबी दक्षिण उत्तर एमो जी।
इमहिज ऊंची नीची लांबी, श्रेणि अनंती तेमो जी।।

हिवै सामान्य थी ए ४ प्रदेशार्थिकपणै करी कहै छै —

१४. प्रदेश अर्थ करि श्रेणि प्रभुजी! स्यूं संख्याती कहियै जी?
द्रव्य अर्थ करिनें जिम आखी, तिमज प्रदेश थी लहियै जी।।

१५. जाव ऊंची नीची आयत लांबी, प्रश्न च्यारूंइ मांही जी।
श्रेणि अनंती प्रदेश थकी छै, पिण संख असंख न थाई जी।।

*लय: चतुर विचार करी नें देखो।

दक्षिणोत्तरायताः ३ ऊर्द्ध्वाधआयताः ४, एवं लोकसम्बन्धिन्योऽलोकसम्बन्धिन्यश्चेति, तत्र सामान्ये श्रेणीप्रश्ने (वृ. प. ८६५)

४. गोयमा! नो संखेज्जाओ, नो असंखेज्जाओ, अणंताओ। (श. २५।७३)

वा.—'अणंताओ' त्ति सामान्याकाशास्तिकायस्य श्रेणीनां विवक्षितत्वादनन्तास्ताः, (वृ. प. ८६५)

५. पाईणपडीणायताओ णं भंते! सेढीओ दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ? एवं चेव।

६. एवं दाहिणुत्तरायताओ वि। एवं उड्ढमहायताओ वि। (श. २५।७५)

७. लोगागाससेढीओ णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ? असंखेज्जाओ? अणंताओ?

८. गोयमा! नो संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, नो अणंताओ। (श. २५।७५)

९. पाईणपडीणायताओ णं भंते! लोगागाससेढीओ दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ? एवं चेव।

१०. एवं दाहिणुत्तरायताओ वि। एवं उड्ढमहायताओ वि। (श. २५।७६)

११. अलोगागाससेढीओ णं भंते! दव्वट्ठयाए किं संखेज्जाओ? असंखेज्जाओ? अणंताओ?

१२. गोयमा! नो संखेज्जाओ, नो असंखेज्जाओ, अणंताओ।

१३. एवं पाईणपडीणायताओ वि। एवं दाहिणुत्तरायताओ वि। एवं उड्ढमहायताओ वि। (श. २५।७७)

१४. सेढीओ णं भंते! पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ? जहा दव्वट्ठयाए तहा पएसट्ठयाए वि

१५. जाव उड्ढमहायताओ वि। सव्वाओ अणंताओ। (श. २५।७८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिवै ए ४ प्रश्नोत्तर लोकाकाश आश्री प्रदेशअर्थपणैं करि कहियै छै—

१६. लोकाकाश नीं श्रेणी प्रभुजी ! प्रदेश-अर्थपणेहो जी ।
स्यूं संख्याती इत्यादि पूछा ? हिव जिन उत्तर देहो जी ।।

१७. कदाचित संख्याती कहिजै, कदा असंख्याती जाणी जी ।
अनंती नहीं छै प्रदेश आश्रयी, हिव तसु न्याय पिछाणी जी ।।

वा०—इहां प्रदेश आश्री कदाचित संख्याती कही । ते लोक नैं विषे किसी श्रेणी नां संख्याता प्रदेश हुवै, तेहनुं न्याय कहै छै । इहां चूर्णिकार नीं ए व्याख्या—लोक वृत्त थकी नीकल्या अनैं अलोक नैं विषे पैठा एहवा जे दंता, तेहनीं जे श्रेणि ते कांइक श्रेणि दोय प्रदेश नीं हुवै, कांइक श्रेणि तीन प्रदेशादिक नीं पिण संभवै, तिण करिकै ते श्रेणि नां प्रदेश सख्याता लाभै । शेष असंख्याता प्रदेश लाभै इति ।

वलि टीकाकारस्तु साक्षेपपरिहारं चेह प्राह—

परिमंडलं जहन्नं भणियं कडजुम्मवट्टियं लोए ।
तिरियाययसेढीणं संखेज्जपएसिया किह णु ?।।१।।
दो दो दिसासु एक्केक्कओ य विदिसासु एस कडजुम्मे ।
पढमपरिमंडलाओ वुड्ढी किर जाव लोगंतो ।।२।।

इत्याक्षेपः, परिहारस्तु—

अट्ठंसया पसज्जइ एवं लोगस्स न परिमंडलया ।
वट्टालेहेण तओ वुड्ढी कडजुम्मिया जुत्ता ।।३।।
एवं च लोकवृत्तपर्यन्तश्रेणयः संख्यातप्रदेशिका भवन्तीति ।

१८. पूर्व पश्चिम लांबी पिण इमहिज,
इम दक्षिण उत्तर लांबी श्रेणी जी ।
कदा संख्याती कै असंख्याती छै, प्रदेश आश्रयी लेणी जी ।।

१९. ऊंची नीची लांबी नहिं संख्याती, असंख्याती ए श्रेणी जी ।
नहीं अनंती प्रदेश आश्रयी, लोक आकाश कहेनीं णी जी ।।

वा०—इहां कह्यो –ऊंची नीची लांबी श्रेणि प्रदेश आश्रयी संख्याती नथी अनैं अनंती नथी ते असंख्याती छै जे भणी । ते लोक नीं श्रेणि नैं ऊर्ध्वलोकान्त थकी अधोलोकान्त नैं विषे तो अधोलोकान्त थकी ऊर्ध्वलोकान्त नैं विषे प्रतिघात हुवै ते भणी असंख्यात प्रदेशहीज तथा जे अधोलोक नां कूणां थकी नीकली अनैं ब्रह्मलोक नैं तिरछै, बिचलै, छेहड़ै रहै छै तिका श्रेणी पिण संख्यात प्रदेश नीं न लाभै, एहिज सूत्र नां वचन थकी ।

२०. अलोकाकाश नीं श्रेणी प्रभुजी ! प्रदेश आश्रयी पृच्छा जी ।
कदा संख्याती कदा असंख्याती, कदा अनंती इच्छा जी ।।

वा०—अलोकाकाश नीं श्रेणी प्रदेश आश्रयी कदा संख्याती कदा असंख्याती कदा अनंती ते सर्व थकी क्षुल्लक प्रतर तेहमें नजीक जे ऊर्ध्व अधः आयत अधोलोकाकाश नीं श्रेणी नैं आश्रयी जणाय छै । ते आदि नीं श्रेणी संख्यात प्रदेश की, ते उपरंत असंख्यात प्रदेश की, ते उपरंत अनन्त प्रदेश की । अनै तिरछी लांबी अलोक श्रेणी प्रदेश थकी अनंत प्रदेशनींज जाणवी ।

१६. लोगागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए किं संखेज्जाओ—पुच्छा ।

१७. गोयमा ! सिय संखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ, नो अणंताओ ।

वा.—लोगागाससेढीओ णं भंते ! 'पएसट्ठयाए' इत्यादौ 'सिय संखेज्जाओ सिय असंखेज्जाओ' त्ति अस्येयं चूर्णिकारव्याख्या—लोकवृत्तान्निष्क्रान्तस्यालोके प्रविष्टस्य दन्तकस्य याः श्रेणयस्ता द्वित्रादिप्रदेशा अपि संभवन्ति तेन ताः सङ्ख्यातप्रदेशा लभ्यन्ते शेषा असङ्ख्यातप्रदेशा लभ्यन्त इति, (वृ. प. ८६५)

१८. एवं पाईणपडीणायताओ वि । दाहिणुत्तरायताओ वि एवं चेव ।

१९. उड्ढमहायताओ नो संखेज्जाओ, असंखेज्जाओ, नो अणंताओ । (श. २५।७९)

वा.—'उड्ढमहाययाओ' 'नो संखेज्जाओ असंखेज्जाओ' त्ति यतस्तासामुच्छ्रितानामूर्ध्वलोकान्तादधोलोकान्तेऽधोलोकान्तादूर्द्ध्वलोकान्ते प्रतिघातोऽतस्ता असङ्ख्यातप्रदेशा एवेति, या अप्यधोलोककोणतो ब्रह्मलोकतिर्यग्मध्यप्रान्ताद्वोत्तिष्ठन्ते ता अपि न सङ्ख्यातप्रदेशा लभ्यन्ते, अत एव सूत्रवचनादिति । (वृ. प. ८६५)

२०. अलोगागाससेढीओ णं भंते ! पदेसट्ठयाए—पुच्छा ।
गोयमा ! सिय सखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ, सिय अणंताओ । (श. २५।८०)

वा.—'अलोगागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए' इत्यादि, 'सिय संखेज्जाओ सिय असंखेज्जाओ' त्ति यदुक्तं तत्सर्वं क्षुल्लकप्रतरप्रत्यासन्ना ऊर्द्ध्वाधआयता अधोलोकश्रेणीराश्रित्येत्यवसेयं, ता हि आदिमाः सङ्ख्यातप्रदेशास्ततोऽसङ्ख्यातप्रदेशास्ततः परं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. पूर्व पश्चिम लांबी प्रभु ! प्रदश आश्रयी जाणी जी ।
संख्याती कै असंख्याती छै, अथवा अनंती माणी जी ?
२२. श्री जिन भाखै नहिं संख्याती, असंख्याती नहिं थंभी जी ।
अनंती कहियै प्रदेश आश्रयी, इम दक्षिण उत्तर पिण लंबीजी ।।

२३. ऊंची नीची आयत नीं पृच्छा, कदा संख्याती कहियै जी ।
कदा असंख्याती कदा अनंती, प्रदेश आश्रयी लहियै जी ।।

हिवै श्रेणि आदि सहित प्रश्न पूछै छै

२४. श्रेणी प्रभुजी ! स्यूं आदि सहित छै,
कै अंत सहित धुर भंगो जी ।
कै आदि सहित नैं अंत रहित छै,
ए भंग द्वितीय सुचंगो जी ।।
२५. कै आदि रहित नैं अंत सहित छै, तृतीय भंग ए तामो जी ।
कै आदि रहित नैं अंत रहित छै, ए तुर्य भंग छै आमो जी ?
२६. श्री जिन भाखै आदि सहित नैं, अंत सहित भंग नांही जी ।
आदि सहित नैं अंत रहित भंग, ए पिण न लहै क्यांही जी ।।
२७. आदि रहित नैं अंत सहित ए, तृतीय भंग नहिं पावै जी ।
आदि रहित नैं अंत रहित ए, तुर्य भंग इहां थावै जी ।।
२८. एवं जावत ऊंची नीची, आयत श्रेणिज कहियै जी ।
समुच्चय श्रेणी भणी ए आखी,
हिव लोक अलोक नीं लहियै जी ।।
२९. लोकाकाश नीं श्रेणी प्रभु ! स्यूं,
आदि सहित अंत सहीतो जी ?
इत्यादिक चिउं भंग नीं पृच्छा,
हिव जिन भाखै वदीतो जी ।।
३०. आदि सहित नैं अंत सहित छै, प्रथम भंग ए पायो जी ।
शेष तीनूंइ भांगा नहीं छै, ए तो छै पाधरो न्यायो जी ।।

३१. एवं जावत ऊंची नीची, आयत श्रेणी केणी जी ।
लोकाकाश श्रेणि आश्रयी आख्या,
हिव अलोकाकाश नीं श्रेणी जी ।।

वा०—इहां श्रेणि नां विशेष रहितपणां करी प्रश्न पूछचो, पिण लोक नों तथा अलोक नों नाम लेई न पूछचो । ते भणी जिका लोक नैं विषे पिण श्रेणि छै अनैं अलोक नैं विषे पिण श्रेणि छै, तेहनों ग्रहण करिवुं । सर्व लोक अलोक नीं श्रेणि ग्रहण करिवा थकी आदी रहित अनैं अंत रहित एकहीज, ए चउथो भांगो कहियै । अनैं शेष तीन भांगा नथी कहियै ।

३२. अलोकाकाश नीं श्रेणी प्रभुजी !
स्युं आदि सहित अंत सहीतो जी ?
इत्यादि भंग च्यारूं पूछचां, जिन कहै सुण धर प्रीतो जी ।।

त्वनन्तप्रदशाः तिर्यगायतास्त्वलोकश्रेणयः प्रदेशतोऽनन्ता एवेति । (वृ. प. ८६६)

२१. पाईणपडीणायताओ णं भंते ! अलोगागाससेढीओ—पुच्छा ।
२२. गोयमा ! नो संखेज्जाओ, नो असंखेज्जाओ, अणंताओ । एवं दाहिणुत्तरायताओ वि । (श २५।८१)
२३. उड्ढमहायताओ—पुच्छा ।
गोयमा ! सिय संखेज्जाओ, सिय असंखेज्जाओ, सिय अणंताओ । (श. २५।८२)
२४. सेढीओ णं भंते ! किं सादीयाओ सपज्जवसियाओ ? सादीयाओ अपज्जवसियाओ ?

२५. अणादीयाओ सपज्जवसियाओ ? अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ?
२६. गोयमा ! नो सादीयाओ सपज्जवसियाओ, नो सादीयाओ अपज्जवसियाओ,
२७. नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ।
२८. एवं जाव उड्ढमहायताओ । (श. २५।८३)

२९. लोगागाससेढीओ णं भंते ! किं सादीयाओ सपज्जवसियाओ—पुच्छा ।

३०. गोयमा ! सादीयाओ सपज्जवसियाओ, नो सादीयाओ अपज्जवसियाओ, नो अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, नो अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ।
३१. एवं जाव उड्ढमहायताओ । (श. २५।८४)

वा.—'सेढीओ णं भंते ! किं साईयाओ' इत्यादिप्रश्नः, इह च श्रेण्योऽविशेषितत्वाद्या लोकेऽलोके च तासां सर्वासां ग्रहणं, सर्वग्रहणाच्च ता अनादिका अपर्यवसिताश्चेत्येक एव भङ्गकोऽनुमन्यते शेषभङ्गकत्रयस्य तु प्रतिषेधः । (वृ. प. ८६७)
३२. अलोगागाससेढीओ णं भंते ! किं सादीयाओ सपज्जवसियाओ—पुच्छा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. आदि सहित अंत सहित कदाचित,
कदा सादि अनंत कहीतो जी ।
आदि रहित अंत रहित कदाचित,
कदा आदि रहीत अंत रहीतो जी ।।

३३. गोयमा ! सिय सादीयाओ सपज्जवसियाओ, सिय सादीयाओ अपज्जवसियाओ, सिय अणादीयाओ सपज्जवसियाओ, सिय अणादीयाओ अपज्जवसियाओ ।

सोरठा

३४. क्षुलक प्रतर आसन्न, ऊर्ध अधो लांबी जिका ।
श्रेणि आश्रयी जन्न, सादि सअंतज प्रथम भंग ।।

३४. 'सिय साईयाओ सपज्जवसियाओ' त्ति प्रथमो भङ्गकः क्षुल्लकप्रतरप्रत्यासत्तौ ऊर्द्ध्वायतश्रेणीराश्रित्यावसेयः, (वृ. प. ८६७)

३५. लोकांत अवधि थकीज, आरंभी नें सर्व दिशि ।
अलोक मांहि कहीज, आदि सहित अंत रहित फुन ।।

३५. 'सिय साइयाओ अपज्जवसियाओ' त्ति द्वितीयः स च लोकान्तादवधेरारभ्य सर्वतोऽवसेयः, (वृ. प. ८६७)

३६. तृतीय अनादिज संत, ते लोकांतज निकट जे ।
श्रेणि तणों जे अंत, तेहनीं वछा थी हुइं ।।

३६. 'सिय अणाईयाओ सपज्जवसियाओ' त्ति तृतीयः, स च लोकान्तसन्निधौ श्रेणीनामन्तस्य विवक्षणात् । (वृ. प. ८६७)

वा०—पहिली कानी रा अलोक थी लेखवियै तो आदि रहित अनैं लोकांत नैं समीप जे अलोक नीं श्रेणि छै तिहां अलोक नीं श्रेणि नों अंत कहियै । इम आदि रहित अंत सहित तीजो भांगो हुवै ।

३७. कदा अनादि अनंत, लोक तजी नें श्रेणि जे ।
तास अपेक्षा हुंत, तुर्य भंग इहविध कह्यो ।।

३७. 'सिय अणाईयाओ अपज्जवसियाओ' त्ति चतुर्थः, स च लोकं परिहृत्य याः श्रेणयस्तदपेक्षयेति । (वृ. प. ८६७)

३८. *पूर्व पश्चिम आयत नें वलि, दक्षिण उत्तर आयत जी ।
ए बिहुं मांहि एवं चेव कहियै, नवरं विशेष कहावत जी ।।

३८. पाईणपडीणायताओ दाहिणुत्तरायताओ य एवं चेव, नवरं—

३९. सादि सअंत प्रथम भंग न ह्वै, शेष तीन भंग होई जी ।
कदा सादि अंत रहित इत्यादिक,शेष तिमज ए तीनोंई जी।।

३९. नो सादीयाओ सपज्जवसियाओ, सिय सादीयाओ अपज्जवसियाओ । सेसं तं चेव ।

सोरठा

४० अलोक में अवलोय, तिरछी श्रेणी नां तिहां ।
सादिपणैं पिण जोय, अंत सहितपणु नथी ।।
४१. ते माटै अवलोय, प्रथम भंग नहि छैं इहां ।
शेष तीन भंग होय, कहिवा पूर्वली परै ।।

४०,४१. 'नो साईयाओ सपज्जवसियाओ' त्ति अलोके तिर्यक्श्रेणीनां सादित्वेऽपि सपर्यवसितत्वस्याभावान्न प्रथमो भङ्गः, शेषास्तु त्रयः संभवन्त्यत एवाह— (वृ. प. ८६७)

४२. *ऊंची नीची आयत लांबी, जिम कह्यो ओघिक मांह्यो जी ।
तिम हिज भंग च्यारूई भणवा, ए अलोकाकाश कहायो जी ।।

४२. उड्ढमहायताओ जहा ओहियाओ तहेव चउभंगो । (श. २५।८५)

४३. हे भगवंत जी ! सगली श्रेणि, ते द्रव्य-अर्थपणेहो जी ।
स्यूं कडजुम्मा तथा तेओगा, इत्यादि पृच्छा करेहो जी ?

४३. सेढीओ णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्माओ, तेओयाओ—पुच्छा ।

४४. श्री जिन भाखै कडजुम्मा ह्वै, तेओगा नाहिं कहावत जी ।
नहि द्वापरजुम्म नहीं कलियोगा,
इम जाव ऊंची नीची आयत जी ।।

४४. गोयमा ! कडजुम्माओ, नो तेओयाओ, नो दावरजुम्माओ, नो कलियोगाओ । एवं जाव उड्ढमहायताओ ।

सोरठा

४५. कडजुम्माज कहीज, वस्तु स्वभाव थी इहां ।
कहिवो फुन इमहीज, सगला स्थानक नें विषे ।।

४५. 'कडजुम्माओ' त्ति, कथं ? वस्तुस्वभावात्, एवं सर्वा अपि, (वृ. प. ८६७)

*लय : चतुर विचार करी नै देखो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. * लोकाकाश श्रेणि पिण इमहिज,
अलोकाकाश नीं श्रेणी जी ।
ते पिण इणहिज रीते कहिणी, द्रव्य थकी ए लेणी जी ।।
४७. हे भगवंतजी ! सगली श्रेणी, प्रदेशार्थपणें कहावत जी ।
स्यूं कडजुम्मा एवं चेवज, इम जाव ऊंची नीची आयत जी ।।

४८. लोकाकाश नीं श्रेणी प्रभुजी ! प्रदेश अर्थपणेहो जी ।
स्यूं कडजुम्मा इत्यादिक पृच्छा ? हिव जिन उत्तर देहो जी ।।
४९. कदाचित ते ह्वै कडजुम्मा, तेओगा नहिं होई जी ।
कदाचित ह्वै द्वापुरयुग्मा, कलिओगा नहिं कोई जी ।।

वा०— लोकाकाश नीं श्रेणि प्रदेश थकी कदा कडजुम्मा, कदा द्वापुरयुग्मा। तेहनों न्याय इम छै—रुचक अर्थ थकी आरंभी नैं जे पूर्व दिशि अर्द्धलोक अथवा रुचकार्द्ध थकी आरंभी नैं जे दक्षिण दिशि अर्धलोक तेह पश्चिम अर्धलोक करिकै तथा उत्तर अर्धलोक करिकै तुल्य एतला माटै पूर्व पश्चिम श्रेणि वली दक्षिण उत्तर श्रेणि समसंख्य आकाश प्रदेश नीं छै, तेह कांइक श्रेणि कृतयुग्म हुवै, कांइक श्रेणि द्वापुरयुग्म ह्वै, पिण नहीं त्र्योज प्रदेश, नहीं कलियोग प्रदेश, निश्चै तिण प्रकार करिकै असद्भाव स्थापना करिकै ।

दक्षिण पूर्व नां रुचक प्रदेश थकी पूर्व दिशे जे लोकार्द्ध श्रेणि तेहनां प्रदेश सौ १०० मान हुवै । अथवा जे अपर दक्षिण रुचक नां प्रदेश थकी पश्चिम दिशे लोकार्द्ध श्रेणि तेहनां पिण प्रदेश १०० परिमाण हुवै । वलि ते २०० सौ नैं च्यार-च्यार अपहरवै करी पूर्व पश्चिम जे लोक नीं श्रेणि नैं कृतयुग्मपणों हुवै तथा दक्षिण पूर्व नां रुचक प्रदेश थकी दक्षिण दिशे जिको अन्त्य प्रदेश, तेह थकी आरंभी पूर्व दिशे लोकार्द्ध श्रेणि ते ९९ प्रदेश प्रमाण हुवै । वलि जे पश्चिम दक्षिण नां रुचक प्रदेश थकी दक्षिण दिशे जिको अन्त्य प्रदेश, तेह थकी आरंभी नैं पश्चिम दिशे लोकार्द्ध श्रेणि तेह पिण ९९ प्रदेश प्रमाण हुवै । वलि ते बिहुं ९९ भेला कियां च्यार-च्यार अपहरवै करि पूर्व पश्चिम जे लोक नीं श्रेणि नैं द्वापरयुग्मपणों हुवै । इम अनेरी पिण लोक नीं श्रेणि नैं विषे भावना करवी ।

५०. इमहिज पूर्व पश्चिम लांबी, दक्षिण उत्तर लंबी जी ।
ते पिण कडजुम्म द्वापुरजुम्मा, त्र्योज कल्योज नैं थंभी जी ।।
५१. ऊर्द्ध अधो आयत नीं पृच्छा ? जिन कहै कडजुम्म त्यांही जी ।
नहिं तेओगा न द्वापरजुम्मा, कलियोगा पिण नांही जी ।।

वा०—लोक नैं तिरछी लांबी श्रेणि कृतयुग्मा वलि द्वापरयुग्मा हुवै । वलि श्रेणि संख्यात प्रदेश की तथा असंख्याता प्रदेश नीं हुवै । अनै ऊंची, नीची, लांबी श्रेणि कृतयुग्माईज हुवै । वलि ते श्रेणि असंख्यात प्रदेशनींज हुवै ।

५२. अलोकाकाश नीं श्रेणी प्रभुजी ! प्रदेश-अर्थपणेहो जी ।
स्यूं कडजुम्मा इत्यादि पृच्छा ? हिव जिन उत्तर देहो जी ।।
५३. कदाचित कडजुम्मा जावत, कदा कलियोगा कहावत जी ।
इमहिज पूर्व पश्चिम लांबी, इम दक्षिण उत्तर आयत जी ।।

*लय : चतुर विचार करी नैं देखो

४६. लोगागाससेढीओ एवं चेव । एवं अलोगागाससेढीओ वि । (श. २५।८६)

४७. सेढीओ णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्माओ ? एवं चेव । एवं जाव उड्ढमहायताओ । (श. २५।८७)

४८. लोगागाससेढीओ णं भंते ! पदेसट्ठयाए—पुच्छा ।

४९. गोयमा ! सिय कडजुम्माओ, नो तेओयाओ, सिय दावरजुम्माओ, नो कलियोगाओ ।

वा.—'लोगागाससेढीओ णं भंते ! पएसट्ठयाए' इत्यादौ स्यात् कृतयुग्मा अपि स्यात् द्वापरयुग्मा इत्येतदेवं भावनीयं – रुचकार्द्धादारभ्य यत्पूर्वं दक्षिणं वा लोकार्द्धं तदितरेण तुल्यमतः पूर्वापरश्रेणयो दक्षिणोत्तरश्रेणयश्च समसङ्ख्यप्रदेशाः ताश्च काश्चित् कृतयुग्माः काश्चिद् द्वापरयुग्माश्च भवन्ति न पुनस्त्र्योजप्रदेशाः कल्योजप्रदेशा वा, तथाहि— असदभावस्थापनया दक्षिणपूर्वाद् रुचकप्रदेशात्पूर्वतो यल्लोकश्रेण्यर्द्धं तत्प्रदेशशतमानं भवति,

यच्चापरदक्षिणाद्रुचकप्रदेशादपरतो लोकश्रेण्यर्द्धं तदपि प्रदेशशतमान, ततश्च शतद्वयस्य चतुष्कापहारे पूर्वापरायतलोकश्रेण्याः कृतयुग्मता भवति, तथा दक्षिणपूर्वाद्रुचकप्रदेशाद्दक्षिणो योऽन्त्यः प्रदेशस्तत आरभ्य पूर्वतो यल्लोकश्रेण्यर्द्धं तन्नवनवतिप्रदेशमानं, यच्चापरदक्षिणायताद्रुचकप्रदेशाद्दक्षिणो योऽन्त्यः प्रदेशस्तत आरभ्यापरतो लोकश्रेण्यर्द्धं तदपि च नवनवतिप्रदेशमानं, ततश्च द्वयोर्नवनवत्योर्मीलने चतुष्कापहारे च पूर्वापरायतलोकश्रेण्या द्वापरयुग्मता भवति, एवमन्यास्वपि लोकश्रेणीषु भावना कार्या, (वृ. प ८६७)

५०. एवं पाईणपडीणायताओ वि, दाहिणुत्तरायताओ वि। (श. २५।८८)

५१. उड्ढमहायताओ णं भंते ! पदेसट्ठयाए- पुच्छा । गोयमा ! कडजुम्माओ, नो तेयोगाओ, नो दावरजुम्माओ, नो कलियोगाओ । (श. २५।८९)

वा०—तिरियाययाउ कडबायराओ लोगस्ससंखसंखा वा ।
सेढीओ कडजुम्मा उड्ढमहेआययमसंखा ।।
(वृ. प. ८६७)

५२. अलोगागाससेढीओ णं भंते ! पदेसट्ठयाए—पुच्छा ।

५३. गोयमा ! सिय कडजुम्माओ जाव सिय कलियोगाओ । एवं पाईणपडीणायताओ वि । एवं दाहिणुत्तरायताओ वि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा० —अलोकाकाश नीं श्रेणि प्रदेश थकी कदाचित कडजुम्मा ते किम ? जिका क्षुल्लक बे प्रतर नें समीप थकी तिरछी उठी तिका श्रेणि लोक नें फर्श्यां विना रही तिका श्रेणि वस्तु स्वभाव थकी कृतयुग्म हुवै । इम यावत कदाचित कल्योज हुवै । इम पूर्व पश्चिम आयत पिण कहिवो । जाव शब्द कहिवा थकी कदा तेयोगा हुवै, कदा द्वापरयुग्मा हुवै, इम जाणवुं । तेहनें विषे वलि बे क्षुल्लक प्रतर नां हेठला प्रतर थकी तथा ऊपरला प्रतर थकी जिका श्रेणि ऊठी तिका श्रेणि तेओगा हुवै । जे भणी बे क्षुल्लक प्रतर नें हेठै वलि ऊपरै प्रदेश थकी लोक नें वृद्धि थावै करी अनें अलोक नें प्रदेश थकीज हानि नां भाव थकी एक-एक प्रदेश नें अलोक श्रेणि थकी अपगम हुवै, ते भणी तेओगा हुवै । इम तेयोगा नां बिहुं प्रतर थकी अनंतर हेठला ऊपरला बिहुं प्रतर थकी जिका श्रेणि उठी तिका श्रेणि नें द्वापरयुग्मपणों हुवै । अनें ते द्वापरयुग्म नां बिहुं प्रतर थकी अनंतर हेठला ऊपरला बिहुं प्रतर थकी जिका श्रेणि उठी तिका श्रेणि नें कल्योजपणों हुवै । इम वलि तिकाईज श्रेणि जिम संभवै, तिम कहिवी ।

५४. ऊंची नीची लांबी पिण इमहिज, नवरं एतलो विशेखो जी ।
नो कलियोगा शेष तिमहिज छै, हिव तसु न्याय उवेखो जी ।।

वा० — इहां क्षुल्लक प्रतर द्वय प्रमाण करिकै जिका उठी ऊंची लांबी श्रेणि तिका द्वापरयुग्मा कहियै तेह थकी ऊंची अनें वलि नीची एक प्रदेश वृद्धि करिकै कृतयुग्मा कहियै । वलि किहां एक एक प्रदेश नीं वृद्धि करिकै अन्य स्थानके वृद्धि नां अभाव करिकै तेयोगा कहियै, पिण वलि कलियोगा इहां न संभवै, वस्तु सवभाव थकीज । वलि ते भूमि नें विषे तथा पट नें विषे लोक नों आकार करीनें क्यारी नें आकार प्रदेश नीं वृद्धि तेह थकी सर्व जाणवुं ।

सोरठा

५५. अन्य प्रकार करेह, श्रेणी तणी परूपणा ।
हिव कहियै छै जेह, श्रोता चित दे सांभलो ।।

५६. *केतली हे प्रभु ! श्रेणि परूपी ? जिन कहै श्रेणी सातो जी ।
उजुआयता एगओवंका, दुहओवंका विख्यातो जी ।।

५७. एगओखहा दुहओखहा, छठी कही चक्कवाला जी ।
सप्तमी श्रेणी अर्द्धचक्कवाला, जिन वच परम रसाला जी ।।

वा०—श्रेणि ते प्रदेश नीं पंक्ति जीव पुद्गल नां संचरण विशेष । तिहां उजुआयता ते ऋजु तिका वलि आयत ते ऋजुआयता जिणे करी जीवादिक ऊर्द्ध लोकादिक थकी अधोलोकादिक नें विषे ऋजुपणें जावै स्थापना १ ।

एगओवंका ते एक दिशि नें विषे वांकी वक्र गति तेहनें एगोवंका कहियै । जेणे करी जीव पुद्गल पाधरो जइनें वांकी गति करै अनेरी श्रेणि करि जाय ते एगओवंका कहीजै स्थापना २ ।

*लय : चतुर विचार करी नें देखो

वा०—अलोगागाससेढीओ णं भंते ! पएसेत्यादौ 'सिय कडजुम्माओ' त्ति याः क्षुल्लकप्रतर द्वय-सामीप्यात्तिरश्चीनतयोत्थिता याश्च लोकमस्पृशन्त्यः स्थितास्ता वस्तुस्वभावात्कृतयुग्माः, यावत्करणात् 'सिय तेओयाओ सिय दावरजुम्माओ' त्ति दृश्यं, तत्र च याः क्षुल्लकप्रतरद्वयस्याधस्तनादुपरितनाद्वा प्रतरादुत्थितास्तास्त्र्योजाः यतः क्षुल्लकप्रतरद्वयस्याध उपरि च प्रदेशतो लोकस्य वृद्धिभावेनालोकस्य प्रदेशत एव हानिभावादेकैकस्य प्रदेशस्यालोकश्रेणीभ्योऽपगमो भवतीति, एवं तदनन्तराभ्यामुत्थिता द्वापरयुग्माः 'सिय कलिओगाओ' त्ति तदनन्तराभ्यामेवोत्थिताः कल्योजाः, एवं पुनः पुनस्ता एव यथासम्भवं वाच्या इति । (वृ. प. ८६७,८६८)

५४. उड्ढमहायताओ वि एवं चेव, नवरं—नो कलियोगाओ । सेसं तं चेव । (श. २५।९०)

वा०—'उड्ढाययाण' मित्यादि, इह क्षुल्लकप्रतरद्वयमानेन या उत्थिता उर्द्ध्वायतास्ता द्वापरयुग्माः तत ऊर्द्ध्वमधश्चैकैकप्रदेशवृद्धया कृतयुग्माः क्वचिच्चैकप्रदेशवृद्धयाऽन्यत्र वृद्धयभावेन त्र्योजाः कल्योजास्त्विह न संभवन्ति वस्तुस्वभावात्, एतच्च भूमौ लोकमालिख्य केदाराकारप्रदेशवृद्धिमन्तं ततः सर्वं भावनीयमिति । (वृ. प. ८६८)

५५. अथ प्रकारान्तरेण श्रेणीप्ररूपणायाह—
(वृ. प. ८६८)

५६. कति णं भंते ! सेढीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
उज्जुआयता, एगओवंका, दुहओवंका,

५७. एगओखहा, दुहओखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला । (श. २५।९१)

वा०—'कइ ण' मित्यादि, 'श्रेणयः' प्रदेशपंक्तयो जीवपुद्गलसञ्चरणविशेषिताः तत्र 'उज्जुयायत' त्ति ऋजुश्चासावायता चेति ऋज्वायता यया जीवादय ऊर्ध्वलोकादेरधोलोकादौ ऋजुतया यान्तीति,

'एगओ वंक' त्ति 'एकत' एकस्यां दिशि 'वङ्का' वक्रा यया जीवपुद्गला ऋजु गत्वा वक्रं कुर्वन्ति—श्रेण्यन्तरेण यान्तीति, स्थापना चेवम्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुहओवंका ते जेहनैं विषे बे वार वक्र गति करै तिका द्विधा वक्रा ए ऊर्द्ध खेत्र थी आग्नेय दिशा नैं हेठैं खेत्र नैं विषे वायव्य दिशि जाई जे ऊपनैं तेहनैं हुवै। तिम प्रथम समये अग्निकूण थी तिरछो नैऋतिकूण नैं विषे जाय। तिवार पछै बीजे समय तिरछोइज वायव्यकूण नैं विषे जाय। तिवार पछै तीजैं समय नीची वायव्यकूण विषे ईज जाय। इण हेतु थकी तीन समय ए त्रस नाड़ी मध्य अथवा बाहिर हुवै। स्थापना ३।

'दुहओवंक' त्ति यस्यां वारद्वयं वक्रं कुर्वन्ति सा द्विधावक्रा, इयं चोर्ध्वक्षेत्रादाग्नेयदिशोऽधः क्षेत्रे वायव्यदिशि गत्वा य उत्पद्यते तस्य भवति, तथाहि— प्रथमसमये आग्नेय्यास्तिर्यग् नैर्ऋत्यां याति ततस्तिर्यगेव वायव्यां ततोऽधो वायव्यामेवेति, त्रिसमयेयं त्रसनाड्या मध्ये बहिर्वा भवतीति,

Z

एगओखहा जेणे करी जीव तथा पुद्गल त्रसनाड़ी नां वाम पासादिक थकी मांही आवी नीचो जई वलि ते डावा पासादिके ऊपजै ते एके दिसे डावापासादिरूप ख.— लोकनाडी थकी अनेरा आकाश नां हुआ थकी एगओखहा कहियै। ए श्रेणी बे, त्रिण, च्यार वक्रसहित पिण हुवै क्षेत्र विशेषाश्रित थकी। ते माटै जुदी कही। तेहनीं स्थापना ४।

'एगओखह' त्ति यया जीवः पुद्गलो वा नाड्या वामपार्श्वादिस्तां प्रविष्टस्तयैव गत्वा पुनस्तद्वामपार्श्वादावुत्पद्यते सा एकतः खा, एकस्यां दिशि वामादिपार्श्वलक्षणायां खस्य—आकाशस्य लोकनाडीव्यतिरिक्तलक्षणस्य भावादिति, इयं च द्वित्रिचतुर्वक्रोपेताऽपि क्षेत्रविशेषाश्रितेति भेदेनोक्ता, स्थापना चेयम्—

C

दुहओखहा ते नाडी नैं वाम पासादिक थकी नाड़ी में प्रवेश करीनैं तेहिज नाड़ी करिकै जइ नैं एहनैं ईज दक्षिण पासादिक नैं विषे जिण करिकै ऊपजै तिका द्विधाखहा। नाडी बाहिरभूत जे वाम दक्षिण पार्श्व लक्षण दोय आकाश नैं तिणे नाड़ीइं स्पर्श्या ते भणी दुहओखहा कहियै। तेहनीं स्थापना ५।

'दुहओखह' त्ति नाड्या वामपार्श्वादेर्नाडीं प्रविश्य तयैव गत्वाऽस्या एव दक्षिणपार्श्वादौ ययोत्पद्यते सा द्विधाखा, नाडीबहिर्भूतयोर्वामदक्षिणपार्श्वलक्षणयोर्द्वयोराकाशयोस्तया स्पृष्टत्वादिति, स्थापना चेयम्—

S

चक्रवाल ते मंडल नैं आकारे भमी नैं परमाणु द्विप्रदेशिक खंधादिक ऊपजै, तेहनैं चक्रवाल कहियै। तेहनीं स्थापना ए ६।

'चक्कवाल' त्ति चक्रवालं—मण्डलं, ततश्च यया मण्डलेन परिभ्रम्य परमाण्वादिरुत्पद्यते सा चक्रवाला, सा चैवम्—

O

अर्द्ध चक्रवाल तेहनैं आकारे, ते अर्द्ध चक्रवाल। तेहनीं ए स्थापना ७।

'अद्धचक्कवाल' त्ति चक्रवालार्द्धरूपा, सा चैवम्। (वृ. प. ८६८)

◡

सोरठा

५८. पूर्वं श्रेणि संवादि, तेहनांइज अधिकार थी।
जे परमाणु आदि, तसुं गति नींज परूपणा।।

५८. अनन्तरं श्रेणय उक्ताः, अथ ता एवाधिकृत्य परमाण्वादिगतिप्रज्ञापनायाह— (वृ. प. ८६८)

अनुश्रेणी विश्रेणी गति

५९. *बहु वच परमाणु पुद्गल प्रभुजी ! अनुश्रेणि गति प्रवर्ततोजी।
अथवा विश्रेणि गति जे प्रवर्त्तै ? जिन भाखै सुण संतो जी।।
६०. अनुश्रेणि गतिज प्रवर्त्तै परमाणु, विश्रेणि गति वर्त्ते नांही जी।
अनुश्रेणि गति नैं विश्रेणि गति नों, अर्थ धारो हिया मांही जी।।

५९. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! किं अणुसेढिं गती पवत्तति ? विसेढिं गती पवत्तति ?
६०. गोयमा ! अणुसेढिं गती पवत्तति, नो विसेढिं गती पवत्तति। (श. २५।९२)

सोरठा

६१. अनुकूल जे कहिवाय, पूर्वादिक दिश सन्मुखी।
श्रेणि जिहां छै ताय, ते अनुश्रेणी जाणवी।।

६१,६२. 'अणुसेढि' त्ति अनुकूला—पूर्वादिदिगभिमुखा श्रेणिर्यत्र तदनुश्रेणि, तद्यथा भवत्येवं गतिः प्रवर्तते, (वृ. प. ८६८)

*लय : चतुर विचार करी नैं देखो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. अनुश्रेणी जिम होय, तिण रीते गति प्रवर्त।
तेहनें कहियै सोय, अनुश्रेणी गति अर्थ ए।।
६३. विदिशि आश्रिता श्रेण, जेह विषे छै तेहनें।
विश्रेणीज कहेण, क्रिया विशेषण एह पिण।।
६४. जिम विश्रेणी होय, तिमहिज जे गति प्रवर्त्तै।
विश्रेणी गति सोय, परमाणू नीं ए नथी।।
६५. वृत्ति विषे ए ख्यात, अनुश्रेणी विश्रेणि नु।
अर्थ अन्य हिव थात, कहियै छै ते सांभलो।।
६६. अनुकूलपणें सुजोय, सप्त श्रेणि पूर्वे कही।
तिण करि गमनज होय, अनुश्रेणी कहियै तसु।।
६७. विगत श्रेणि सुविचार, जे सातूंई श्रेणि विण।
गमन हुवै ते धार, तास विश्रेणि कहीजियै।।
६८. अनुश्रेणि नु जोय, वलि विश्रेणी शब्द नु।
अर्थ कदा इम होय, ते पिण जाणैं केवली।।
६९. अनुश्रेणि गति होय, परमाणू पुद्गल तणीं।
विश्रेणी नहि कोय, प्रश्न हिवै दुप्रदेशि नु।।
७०. *दोय प्रदेशियो खंध प्रभुजी ! प्रवर्त्तै गति अनुश्रेणी जी।
अथवा विश्रेणी गति प्रवर्त्तै ? जिन कहै इमहिज केणी जी।।
७१. एवं जाव अनंतप्रदेशिक, खंध लगै अवदातो जी।
ते अनुश्रेणी गतिज प्रवर्त्तै, विश्रेणि गति नहि थातो जी।।
७२. नेरइया अनुश्रेणि गति स्यूं प्रवर्त्तै,
कै विश्रेणि गति प्रवर्त्ततो जी ?
एवं चेव पूर्ववत कहिवो, इम जाव वैमानिक हुंतो जी।।

सोरठा

७३. गति अनुश्रेणि विश्रेण, कही नारकादिक तणीं।
तेहनां स्थान कहेण, नरकावासादिक विषे।।
७४. इण संबध थी आत, नरकावासादिक कथन।
पूर्वे पिण आख्यात, परूपणा तेहनींज फुन।।

आवास नारक और देवों के

७५. *रत्नप्रभा पृथ्वी विषे प्रभुजी ! केतला लक्ष कहायो जी ?
नारक नें रहिवा नां आवासा, नरकावासा ए ताह्यो जी।।
७६. इम जाव प्रथम शत पंचमुदेशे, आख्या तिम इहां भणवा जी।
जाव अनुत्तर विमान लगै जे, पूर्व कह्या तिम थुणवा जी।।

सोरठा

७७. ए नरकावासादि द्वादश अंग प्रभाव थी।
जाणैं धर अहलादि, जे छद्मस्थ मनुष्य पिण।।
७८. ते माटै हिव ताय, द्वादश अंग परूपणा।
गोयम प्रश्न सुहाय, उत्तर दे भगवंत तसु।।

---

६३. 'विसेढि' त्ति विरुद्धा विदिगाश्रिता श्रेणी यत्र तद्विश्रेणि, इदमपि क्रियाविशेषणम्। (वृ. प. ८६८)

७०. दुपएसियाणं भंते ! खंधाणं अणुसेढि गती पवत्तति ? विसेढि गती पवत्तति ? एवं चेव।
७१. एवं जाव अणंतपदेसियाणं खंधाणं। (श २५।९३)

७२. नेरइयाणं भंते ! किं अणुसेढि गती पवत्तति ? विसेढि गती पवत्तति ? एवं चेव। एवं जाव वेमाणियाणं। (श. २५।९४)

७३,७४. अनुश्रेणिविश्रेणिगमनं नारकादिजीवानां प्रागुक्तं, तच्च नरकावासादिषु स्थानेषु भवतीतिसम्बन्धात्पूर्वोक्तमपि नरकावासादिकं प्ररूपयन्नाह— (वृ. प. ८६८)

७५. इमीसे णं भंते ! रयणप्पभाए पुढवीए केवतिया निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता ?
७६. गोयमा ! तीसं निरयावाससयसहस्सा पण्णत्ता, एवं जहा पढमसते पंचमुद्देसए (सू. २१२-२१५) जाव अणुत्तरविमाणत्ति। (श. २५।९५)

७७,७८. इदं च नरकावासादिकं छद्मस्थैरपि द्वादशाङ्गप्रभावादवसीयत इति तत्प्ररूपणायाह— (वृ. प. ८६८)

---

*लय : चतुर विचार करी नें देखो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. *हे भगवंत ! जे कितै प्रकारे, गणिपिटक कहिवायो जी ?
प्रवचन पाठक नें गणि कहियै,
तेहनों पिटक पेटी सुखदायो जी ।।

८०. जिन कहै द्वादश अंग अनोपम, ए गणिपिटक आदो जी ।
धुर आचार आदि देई नैं, जावत दृष्टीवादो जी ।।

८१. से किं तं आयारो अथ स्यूं ते आचार ?
अथवा दूजो अर्थ जानो जी ।
से किं तं स्यूं ते वस्तु जे आचार, इम करिवुं व्याख्यानो जी ।।

वा०—'से किं तं आयारो' से कहितां अथ किं कहितां स्यूं तं कहितां ते आयारो कहितां आचार—ए प्रथम अर्थ । अथवा दूजो अर्थ से किं तं—किस्यूं ते वस्तु जे आचार ।

८२. आयारेणं कहितां आचार धुर अंग,
करणभूत करि सारो जी ।
करण अर्थ में विभक्ति तीजी,
तिण शास्त्र करी सुविचारो जी ।।

८३. दूजो अर्थ तथा आयारे कहितां, आचार अंग विषेहो जी ।
इहां विभक्ति सप्तमी कहियै, णं कहितां अलंकारेहो जी ।।

८४. आचार सूत्र धुर अंग करिकै, अथवा धुर अंग विषेहो जी ।
श्रमण निर्ग्रंथ नों आचार प्रमुख इम,
अंग परूपण भणेहो जी ।।

वा०—समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयर····एवं अंगपरूवणा भाणियव्वा 'जहा नंदीए [नंदी सूत्र ८१-१२७] जाव सुत्तत्थो खलु पढमो ।' इहां कह्यो—समणाणं निग्गंथाणं आयारगोयर···इण वचने करिकै यूं जाणवुं—'आयारगोयर-विणयवेणइयसिक्खाभासाअभासाचरणकरणजायामायावित्तीओ आघवेज्जंतित्ति तत्र आयारो कहितां आचार पंच प्रकारे ज्ञान आचार, दर्शण आचार, चारित्र आचार, तप आचार, वीर्य आचार । गोयर कहितां गोचर भिक्षा ग्रहण नीं विधि रूप लक्षण । विणय कहितां ज्ञानादिक विनय सात प्रकारे । वेणइय कहिता विनय नों फल कर्म क्षय रूप । सिक्खा कहितां शिक्षा-ग्रहण, आसेवणा । ग्रहणसिक्खा ते गुरु नों कह्यो वचन ग्रहण करिवुं । आसेवणसिक्खा ते गुरु नों कह्यो पालवुं । तथा ग्रहण शिक्षा ते ज्ञान नुं ग्रहण करिवुं, आसेवन शिक्षा ते महाव्रत नुं पालवुं । अथवा वेणइयत्ति वैनयिको वा विनेय शिष्य तेहनैं शिक्षा वैनयिक शिक्षा अथवा विनेय शिक्षा । भाषा सत्य अनैं व्यवहार, अभाषा ते मृषा अनैं मिश्र । चरण कहितां चारित्र पंच महाव्रतादि । करण कहितां पिंड नीं विशुद्धि प्रमुख । जाया कहितां संजम यात्रा करि । माया कहितां तेहनैं अर्थे आहार नीं मात्रा । वृत्ति—विविध अभिग्रह विशेष करिकै वर्त्तमान । आघविज्जंति कहितां ते कहियै ।

इहां आयरगोयर इत्यादिक नैं विषे जे किहांएक अन्यत्र उपादान ते अन्यतर ग्रहण नैं विषे अन्यतर रह्यो छै जे अर्थ तेहनुं कहिवुं जिम विनय ग्रहण कीधे

*लय : चतुर विचार करी नें देखो

७९. कतिविहे णं भंते ! गणिपिडए पण्णत्ते ?

८०. गोयमा ! दुवालसंगे गणिपिडए पण्णत्ते, तं जहा—आयारो जाव दिट्ठिवाओ । (श. २५।९६)

८१. से किं तं आयारो ?
'से किं तं आयारो' त्ति प्राकृतत्वात् अथ कोऽसावाचारः ? अथवा किं तद्वस्तु यदाचार इत्येवं व्याख्येयम् ? (वृ प. ८६८)

८२. आयारे णं
'आयारेणं' ति आचारेण शास्त्रेण करणभूतेन ।
(वृ. प. ८६८)

८३. अथवा आचारे अधिकरणभूते णमित्यलङ्कारे ।
(वृ. प. ८६८)

वा.—'आयारगोयर' इत्यनेनेदं सूचितम्—'आयारगोयरविणयवेणइयसिक्खाभासाअभासाचरणकरणजायामायावित्तीओ आघवेज्जंति' त्ति, तत्राचारो—ज्ञानाद्यनेकभेदभिन्नः गोचरो—भिक्षाग्रहणविधिलक्षणः विनयो—ज्ञानादिविनयः वैनयिकं—विनयफलं कर्म्मक्षयादि शिक्षा—ग्रहणासेवनाभेदभिन्ना अथवा 'वेणइय' त्ति वैनयिको विनयो वा—शिष्यस्तस्य शिक्षा वैनयिकशिक्षा विनेयशिक्षा वा, भाषा—सत्याऽसत्यामृषा च अभाषा—मृषा सत्यामृषा च, चरणं—व्रतादि, करणं—पिण्डविशुद्धयादि, यात्रा—संयमयात्रा, मात्रा—तदर्थमाहारमात्रा, वृत्ति—विविधैरभिग्रहविशेषैर्वर्त्तनं, आचारश्च गोचरश्चेत्यादिर्द्वन्द्वस्ततश्च ता आख्यायन्ते—अभिधीयन्ते,

इह च यत्र क्वचिदन्यतरोपादानेऽन्यतरगतार्थाभिधानं तत्सर्वं तत्प्राधान्यख्यापनार्थमेवावसेयमिति । 'एवं अंगपरूवणा भाणियव्वा जहा नंदीए'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छते तेहनैं विषे वैनयिक नुं अर्थपणुं रह्योज छै ते सर्व रह्या अर्थ पिण ते प्रधानपणुं जणावा नैं अर्थे ईज इम जाणवुं, इम अंग परूवणा भणवो। जिम नंदी नैं विषे कही, तिम जाणवी। अथ किहां लगैं ए अंग परूपणा नंदी में कही, ते कहिवी 'जाव सुत्तत्थो खलु पढमो' ए गाथा लगैं।

त्ति एवमिति—पूर्वप्रदर्शितप्रकारवता सूत्रेणाचाराद्यङ्गप्ररूपणा भणितव्या यथा नन्द्यां सा च तत एवावधार्या, अथ कियद्दूरमियमङ्गप्ररूपणा नन्द्युक्ता वक्तव्या इत्याह—जाव सुत्तत्थो'

(वृ. प. ८६८, ८६९)

८५. सूत्रार्थ मात्र प्रतिपादन तत्पर, सूत्रार्थ अनुयोग एहो जी।
ए धुर अनुयोग गुरु शिष्य नैं कह्यो,
मोहमति मती थावेहो जी।।
८६. सूत्रस्पर्शिक निर्युक्तिमिश्रज, करिवं अनुयोग बीजे जी।
तीर्थंकरादिक एम भण्युं छै,
हिव तृतीय अनुयोग कहीजे जी।।
८७. निर्विशेष अनुयोग ए तीजो, सूत्र अर्थ निर्युक्ति जी।
सर्व प्रकार करी कहिवा थी, ए विध अनुयोगे उक्ति जी।।
८८. सूत्र तणों जे अर्थ करीनैं, अनुरूप योग करीजै जी।
ते अनुयोग विषे त्रिप्रकार नीं, विधि पूर्वोक्त भणीजै जी।।

वा०—सूत्रार्थमात्र नों प्रतिपादन करणहारो पहलो सूत्रार्थानुयोग कहियै। खलु निश्चयार्थे एतलै गुरु सूत्रार्थ कहितांरूपज पहलो अनुयोग करै, जे भणी विस्तारी नैं कहे तो नवदीक्षित शिष्य नीं मति मुरझाए। बीजो अनुयोग सूत्र-स्पर्शिक-निर्युक्ति-मिश्र करिवो कह्यो तीर्थंकरादिके। तीजो बलि अनुयोग निरवशेष ते सूत्र थकी प्रसक्त एतले बंधाणा अथवा अनुप्रसक्त नहीं बंधाणा अनेरा समस्त अर्थ नों कहिवा थकी निरवशेष अनुयोग कहियै। ए पूर्वोक्त त्रिण प्रकार नीं विधि हुवै। अनुयोग नैं विषे अनुयोग एतले सूत्र नैं अर्थ करिकै अनुकूलपणैं योग करिवो।

वा.—सूत्रार्थमात्रप्रतिपादनपरः सूत्रार्थोऽनुयोग इति गम्यते, खलुशब्दस्त्वेवकारार्थः स चावधारणे इति, एतदुक्तं भवति—गुरुणा सूत्रार्थमात्राभिधानलक्षण एव प्रथमोऽनुयोगः कार्यो, मा भूत् प्राथमिकविनेयानां मतिमोह इति, द्वितीयोऽनुयोगः सूत्रस्पर्शकनिर्युक्तिमिश्रः कार्य इत्येवंभूतो भणितो जिनादिभिः, 'तृतीयश्च' तृतीयः पुनरनुयोगो निरवशेषो निरवशेषस्य प्रसक्तानुप्रसक्तस्यार्थस्य कथनात् 'एषः' अनन्तरोक्तः प्रकारत्रयलक्षणो 'भवति' स्यात् 'विधिः' विधानम् 'अनुयोगे' सूत्रस्यार्थेनानुरूपतया योजनलक्षणे विषयभूते इति गाथार्थः।

(वृ. प. ८६९)

इहां कोई कहै—भगवंते निर्युक्ति कही, तुम्हैं किम नथी मानता? तेहनैं कहियै—सूत्र में कही निर्युक्ति तिका मानवा योग्य छै। जद अनेरा कहै—ए भद्रबाहु नीं कीधी निर्युक्ति किम नथी मानो? तेहनैं कहियै—जे भगवती सूत्र में निर्युक्ति कही छै, ते भगवती सूत्र तीर्थंकर छतां हुंतो अनैं तेहनैं विषे निर्युक्ति कही। ते पिण तीर्थंकर थकां हुंती, ते मानवा जोग्य छै। ए निर्युक्ति कही ते सूत्र नैं विषे ईज रही जणाय छै। समवायंग नैं विषे अंग-परूपणा कही, तिहां एहवो पाठ छै—

आयारस्स णं परित्ता वायणा संखेज्जा अणुओगदारा संखेज्जाओ पडिवत्तीओ संखेज्जा वेढा संखेज्जा सिलोगा संखेज्जाओ निज्जुत्तीओ से णं अंगट्ठयाए पढमे अंगे।

इहां प्रथम अंग नैं विषे संख्याता श्लोक कह्या अनैं संख्याती निर्युक्ति कही। जिम आचारंग नैं विषे श्लोक कह्या तिमहिज ते आचारंग नैं विषेईज निर्युक्ति संभवै। ते समवायंग नीं टीका में तथा टबा में अर्थ कियो, ते लिखियै छै—सूत्र नैं विषे कहिवापणैं करी थाप्या अर्थ नुं योजवुं ते युक्ति, विशेष घटनाइं योजवुं ते निर्युक्ति। ए निर्युक्ति नों अर्थ कियो ते भणी सूत्र नैं अंतरईज निर्युक्ति संभवै।

जिम सूत्र नैं विषे संख्याती वाचना, संख्याता अनुयोगद्वार उपक्रमादिक, संख्याती पडिवत्ती द्रव्यादिक पदार्थ, तेहनुं मतांतरे प्रतिपत्ति, संख्याता वेढा छंद विशेष, संख्याता श्लोक अनुष्टुप छंद। तिम सूत्र नैं विषे संख्याती निर्युक्ति संभवै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनैं जे कोई कहै —निर्युक्ति सूत्र थकी जुदी हुंती तो भगवती में क हीते वीर थकां निर्युक्ति जुदी कहै ते हिवडां रही नथी । अनैं भद्रबाहु नीं कीधी कहै तो भद्रबाहु स्वामी तो पछै थया । तेहनीं कीधी निर्युक्ति तीर्थंकर थकां भगवती में क्यां थी आवी ? ग्रामो नास्ति कुतः सीमा— जे ते वेला भद्रबाहु नथी तो तेहनीं कीधी निर्युक्ति भगवती में किम कही ? इहां तो गोतम प्रतैं भगवान कह्यु जे सूत्रार्थ मात्र प्रथम अनुयोग करिवुं अनैं निर्युक्तिमिश्र बीजो अनुयोग जिनादि कह्यो ते करिवुं । इण लेखे भद्रबाहु पहिलां भगवंत छतां निर्युक्ति हुंती ते सूत्रे कही छै, ते प्रमाण छै ।

जे सूत्रे तो दृष्टिवाद पिण कह्यु छै और अनेक सूत्र नां नाम कह्या छै । पिण जे विच्छेद गया, ते हिवडां नथी । तिमहिज निर्युक्ति प्रभु थकां जो सूत्र थकी जुदी कहै तो ते पिण विच्छेद गई । ते प्रभु थकां री निर्युक्ति जुदी ह्वै तो बतावो ते मानवा जोग्य । जिम आचारंगादिक हिवडां छै ते निर्युक्ति ह्वै तो हिवडां देखाओ । अनैं ए भद्रबाहु स्वामी कीधी निर्युक्ति कहै तेहनैं विषे अनेक विरुद्ध बोल कह्या छै । ते लेखे ए भद्रबाहु री कीधी न संभवै ।

ठाणांग चउथे ठाणे [४।३] सनतकुमार चक्रवर्त्ती नैं अंतक्रिया कीधी कही अनैं आवश्यकनिर्युक्ति (गाथा ४०१] में तथा ठाणांग नीं टीका [वृ. प. १७१] में तीजे देवलोक कहै छै, ए सूत्र विरुद्ध १ ।

उववाई [सू. १८७], भगवती [९।४०] पण्णवणा [२।६७ गा. ६] में कह्यो —पांचसौ धनुष्य उपरंत न सीझै, ते उपरंत युगलियो कहियै । अनैं आवश्यकनिर्युक्ति [गाथा १५६,१६०] में कह्यो —जे मरुदेवी माता नीं अवगाहना सवा पांच सौ धनुष्य नीं सीझी कहै, ए विरुद्ध २ ।

समवायंग [८४।२,३] में कह्यो —ऋषभ, भरत, बाहूबलि, ब्राह्मी, सुंदरी —ए ५ नों सरीखो आउखो ८४ लाख पूर्व नों छै । अनैं आवश्यकनिर्युक्ति मध्ये कह्यो —ऋषभ ९९ पुत्र सहित [एक भरत टाली नैं] अनैं भरत नां ८ पुत्र —एवं १०८ उत्कृष्टी अवगाहनावंत एक समय में सिद्धा, ते गाथा—

उसहो उसहसुया भरहेण विवज्जिया नवनवई ।
भरहस्स अट्ठ सुया सिद्धा एगम्मि समयम्मि ।।

इहां ऋषभ अनैं बाहूबली सरीखा आउखा नां धणी साथे सिद्धा कहै, ए विरुद्ध ३ ।

मल्लिनाथ नैं चारित्र अनैं केवलज्ञान ज्ञाता अधेन ८ में पो. सुदि ११ कह्या [नाया. ८।२२२,२२५] अनैं आवश्यकनिर्युक्ति [गाथा २५०] में मृगसर सुदि ११ कहै, ए विरुद्ध ४ ।

वली आवश्यकनिर्युक्ति में कह्यो - साधु काल करै पंचक में तो पूतला डाभ नां करवा अनैं आज भलो ग्रहस्थ होवै ते पिण ए काम न करै । जे साधु काल करै तो वांस जाची ल्यावी झोली करी एकांते परिठवी आवै — ए बृहत्कल्प [४।२५] सूत्रे कह्यो । आवश्यक नीं निर्युक्ति में कह्यो— साधु काल करै पंचक में तो पूतला डाभ नां करवा कह्या, ते पाठ लिखियै छै —

दोण्णि य दिवड्ढखेत्ते दब्भमया पुत्तला कायव्वा ।
समखेत्तम्मि य एक्को अवड्ढभीइण कायव्वो ।।

इहां दोढ नक्षत्र नैं विषे दोय डाभ नां पूतला करवा । तीस मुहूर्त्ते एक क्षेत्र कहियै अनैं पैंतालीस मुहूर्त्ते दोढ क्षेत्र कहियै । ते उत्तरा फाल्गुनी १, उत्तराषाढा २, उत्तरा भद्रपदा ३, पुनर्वसू ४, रोहिणी ५, विशाखा ६—ए छह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नक्षत्रे पैंतालीस मुहूर्त्तिया नैं विषे दोय डाभ नां पूतला करवा। अनैं सम क्षेत्र तेतीस मुहूर्त्तिया नक्षत्र १५, ते अश्विनी १, कृत्तिका २, मृगसिरा ३, पुष्य ४, मघा ५, पूर्वा फाल्गुनी ६, हस्त ७, चित्रा ८, अनुराधा ९, मूल १०, पूर्वाषाढा ११, श्रवणा १२, धनिष्ठा १३, पूर्वाभद्रपदा १४, रेवती १५—ए पन्नरैं तीस मुहूर्त्तिया सम क्षेत्र नक्षत्र नैं विषे एक डाभ नों पूतलो करवो। अपार्द्धभोगी ते पन्नरैं मुहूर्त्तिया ६ नक्षत्र—शतभिषग १, भरिणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वाति ५, ज्येष्ठा ६—ए अपार्द्ध क्षेत्र छह नक्षत्र नैं विषे अनैं अभीचि विषे एक ही न करणो इति गाथार्थः। ए आवश्यकनिर्युक्ति तेहनीं परिठावणीया समिति नीं वृत्ति मध्ये कह्यो ते विरुद्ध। एहवा वचन चवदैं पूर्वधारी नां न हुवैं। वलि आवश्यकनिर्युक्ति में एहवी गाथा कही—

उज्जेणीए जो जंभगेहि आणक्खिऊण थुयमहिओ।
अखीणमहाणसियं सीहगिरिपसंसिअं वंदे ॥७६६॥
जस्स अणुण्णाए वायगत्तणे दसपुरम्मि नयरम्मि।
देवेहि कया महिमा पयाणुसारिं नमंसामि ॥७६७॥
जो कण्णाइ धणेण य निमंतिओ जुव्वणम्मि गिहवइणा।
नयरम्मि कुसुमनामे तं वइररिसिं नमंसामि ॥७६८॥

जे कन्या करिकैं धन करिकैं निमंत्रियो योवन नैं विषे ग्रहपतिइं कुसम नामे नगर न विषे, ते वयर-ऋषि प्रतैं नमस्कार करूं—

जेणुद्धरिया विज्जा आगासगमा महापरिण्णाओ।
वंदामि अज्जवइरं अपच्छिमो जो सुयहराणं ॥७६९॥

जो ए आवश्यकनिर्युक्ति भद्रबाहु स्वामी चवद पूर्वधर तेहनीं कीधी हुवैं तो ए भद्रबाहु थकी घणां वर्षां पछैं वज्र स्वामी थया छैं। ते वज्र स्वामी नैं नमस्कार ए निर्युक्ति नैं विषे किम करचो? ते भणी ए चवद पूर्वधर भद्रबाहु नीं कीधी कहै ते न मिलैं।

वली तीजो अनुयोग निरवशेष कह्यं, ते सूत्र अर्थ निर्युक्ति सर्व प्रकारे कहिवुं। नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव अथवा नेगमादिक नय करी कहिवी।

इहां केतलाएक कहै—निरवशेष नां अर्थ टीकाकार पिण टीका, चूर्णि, भाष्य नों अर्थ नथी कियो अनैं टबा विषे पिण नथी कियो। टीकाकार निरवशेष नों अर्थ कियो ते लिखियैं छैं—निरवशेष ते प्रसक्त अनुप्रसक्त अर्थ नैं कहिवा थकी। अनैं टबा नैं करणहार निरवशेष नो अर्थ कियो ते लिखियैं छैं—तीजो वलि अनुयोग सूत्र अर्थ निर्युक्ति सर्व प्रकारे ते निरवशेष एहवुं टबा में कह्यं ते भणी सर्व प्रकारे ते नय-निक्षेपादिके करी सूत्रादिक नैं कहै ते निरवशेष संभवैं। ए निरवशेष तीजो अनुयोग भगवती में प्रभु गोतम नैं कह्यो सर्व प्रकारे करिवुं ते वेला तो ए टीका, चूर्णि, भाष्य न हुंता। अनैं नय-निक्षेपादिक सर्व प्रकारे करि ते वेला पिण होइ।

वलि केतला एक कहै—ए टीका अर्थागम छैं, ते सूत्रागम जिम छैं। तेहनों उत्तर—जे शब्द मूल सूत्र मध्ये हुवैं ते पाठ नां शब्द नों अर्थ टीका में फलावियो ते टीका तो प्रमाण, अर्थागम मध्य पिण होइं। पिण मूल पाठ मध्य तो ते वस्तुज नथी, तेहनों टीका में विस्तार कियो ते पाठ सूं नहीं मिलैं, ए अर्थ नां धणी कुण? ते माटैं प्रकीर्ण ग्रंथ, टीका, चूर्णि, भाष्य सिद्धांत थकी मिलैं ते प्रमाण। अनैं जे टीकादिक नों अर्थ विरुद्ध मान्यां छतां सिद्धांत विगटैं ते प्रमाण नथी। सूत्र तो गणधर कृत भगवान थकां रा चाल्या आवैं छैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनैं पन्नवणा आगै मोटी हुंती तेहनी श्यामाचार्य छोटी कीधी हुवै तो कारण नथी। इमहिज नसीत, दशवैकालिक जणाय छै। जे केवली थकां दश पूर्वधारी तथा उपरंत पूर्व नां धरणहार नां कीधा तथा अवधि, मनपज्जवधर, प्रत्येकबुद्ध नों कीधो आगम हुवै तो जो पन्नवणा श्यामाचार्य नीं कीधी हुवै तो श्यामाचार्य तो दश पूर्वधर न हुंता तेवीसमे पाट माटै ऊणा पूर्वधारी हुंता हेमी नाममाला [१।३४] में कह्यु—सुहस्ति थी लेई वज्रस्वामी तांई दश पूर्वधारक। श्यामाचार्य तो वज्रस्वामी पछै मोड़ा थया छै ते भणी दश पूर्वधारी नथी। तेहनों कीधो आगम न हुवै। ते भणी मोटी नीं छोटी कीधी संभवै। अनैं जे केवली थकां दश पूर्वधारी प्रमुख नीं कीधी टीका अर्थागम कहै तो ते टीका हिवडां रही नथी। ए टीका तो पाछलां री कीधी छै। आचारांग, सूयगडांग नीं वृत्ति शीलंकाचार्य कीधी, शष ९ अंग नीं वृत्ति अभयदेव सूरी कीधी। नंदी, पन्नवणा, चंदपण्णत्ती, सूरपण्णती, रायपश्रेणि अनै जीवाभिगम नीं टीका मलयगिरी कीधी। दशवैकालिक नीं टीका हरिभद्रसूरी कीधी। अनुयोगद्वार नीं टीका मलधारी हेमाचार्य कीधी। जे शीलंकाचार्य कृत आचारंग नीं टीका [प. २९२] में द्वितीय श्रुतखंध प्रथम अध्येन प्रथम उदेशे कह्यो—प्राण, बीज, हरी द्रोब, अंकुरादिक सहित वलि नीलण-फूलण सहित आहार वलि सचित आधाकर्मादिक दोष दुष्ट उत्सर्ग थकी न लेणो अनैं अपवाद थकी लेणो। जे दुर्लभ द्रव्य वलि दुर्भिक्ष में वलि ग्लानादिक कारणै गीतार्थ साधु लेवै, एहवुं कह्यु। ए आगम किम हुवै इत्यादिक जे टीका विषे अनेक बातां विरुद्ध छै ते, मानै तो सिद्धांत नीं आसातना थावै ते भणी ए अर्थागम किम हुवै? ते भणी निरवशेष तीजा अनुयोग में ए टीकादिक में अणमिलती वार्त्ता कही, ते सर्व प्रकार मान्य न हुवै। ज्ञान दृष्टि करि विचारी जोयजो।' (ज.स.)

सोरठा

८९. अग परूपण ख्यात, अंग विषे नारक प्रमुख।
परूपियै अवदात, अल्पबहुत्व तेहनों हिवै॥

पांच गति का अल्पबहुत्व

९०. *हे भगवंत! ए नेरइया नैं, जावत सुर सिद्ध सोयो जी।
ए पंच गति नैं समासे करि नैं, अल्पबहुत्व किम होयो जी॥
९१. अल्पबहुत्व जिम पन्नवण सूत्रे, बहु वक्तव्यता पद तीजे जी।
तिहां आखी तिम कहिवी इहां पिण, ते इह रीत भणीजे जी॥

सोरठा

९२. नर नारक नैं देव, सिद्धा तिरि अनुक्रम करि।
थोड़ा असंख भेव, असंख अनंत अनंतगुण॥

अष्ट गति का अल्पबहुत्व

९३. *फुन गति अष्ट संखेप करीनैं, नरक तिर्यंच तिरियंची जी।
मनुष्य मनुष्यणी देव रु देवी, सिद्ध गति अठम वंछी जी॥

*लय: चतुर विचार करी नैं देखो

८९. अनन्तरमङ्गप्ररूपणोक्ता, अङ्गेषु च नारकादयः प्ररूप्यन्त इति तेषामेवाल्पबहुत्वप्रतिपादनायाह—
(वृ. प. ८६९)

९०,९१. एएसि णं भंते! नेरइयाणं जाव देवाणं सिद्धाण य पंचगतिसमासेणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?
गोयमा! अप्पाबहुयं जहा बहुवत्तव्वयाए।
(प. ३।३८९)

'एएसि णं' मित्यादि' 'पंचगइसमासेणं' ति पञ्चगत्यन्तर्भावेन, एषां चाल्पबहुत्वं तथा वाच्यं यथा बहुवक्तव्यतायां—प्रज्ञापनायास्तृतीयपदे इत्यर्थः,
(वृ. प. ८६९)

९२. नरनेरइया देवा सिद्धा तिरिया कमेण इह होंति।
थोवमसंखअसंखा अणंतगुणिया अणंतगुणा॥१॥
(वृ. प. ८६९)

९३-९५. अट्ठगतिसमासप्पाबहुगं च। (श. २५।९८)
'अट्ठगइसमासप्पाबहुयं च' त्ति अष्टगतिसमासेन यदल्पबहुत्वं तदपि यथा बहुवक्तव्यतायां (प. ३।३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९४. अल्पबहुत्व एहनुं इम कहिवूं, मनुष्यणो मव थो थोड़ी जी ।
तेहथी मनुष्य असंख्यातगुणा छै, नारक असंखगुण जोड़ी जी ।।
९५. तेहथी तिर्यंचणी असंख्यातगुणी छै, असंखगुणा सुर संचो जी ।
संखगुणी सुरी अनंतगुणा सिद्ध, अनंतगुणा तिर्यंचो जी ।।

तथा वाच्यम्, अष्टगतयश्चैवं—नरकगतिरतथा[1] तिर्यग्नरामरगतयः स्त्रीपुरुषभेदाद् द्वेधा सिद्धिगतिश्चेत्यष्टो, अल्पबहुत्वं चैवमर्थतः—
नारी नर नेरइया तिरित्थि सुर देवि सिद्ध तिरिया य ।
थोव असंखगुणा चउ, संखगुणा णंतगुण दोन्नि ।।१।।
(वृ. प. ८६९)

इन्द्रियों के सन्दर्भ में अल्पबहुत्व

९६. हे प्रभु ! एह सइंदिया एगिंदिया,
जाव अणिंदिया जाणी जी ।
कवण-कवण थी अल्प बहु तुला,
विशेषाधिक पहिछाणी जी ?

९६. एएसि णं भंते ! सइंदियाणं, एगिंदियाणं जाव अणिंदियाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

९७. जिम बहु वक्तव्यता पद तीजे, सूत्र पन्नवणा मांह्यो जी ।
ए पिण अल्पबहुत्व तिहां आखी,
तिमहिज कहिवो ताह्यो जा ।।

९७. एवं पि जहा बहुवत्तव्वयाए (प. ३।४०) तहेव ओहियं पयं भाणियव्वं,

९८. ते वलि पर्याप्त अपर्याप्त नें,
तिहां भेद करि पिण भाख्यो जी ।
इहां सामान्य थी तेहिज कहिवूं,
तिणसूं आगल इहविध दाख्यो जी ।।

९८. तच्च पर्याप्तकापर्याप्तकभेदेनापि तत्रोक्तं इह तु यत्सामान्यतस्तदेव वाच्यमिति दर्शयितुमाह—
(वृ. प. ८६९)

९९. ओघिक इम भणवुं कह्यु सूत्रे, तास अर्थ अवलोई जी ।
पज्जत अपज्जत भेद बिण कीधे, ए सप्त बोल अवलोई जी ।।
१००. सर्व थकी थोड़ा पंचेंदिया छै, चउरिंद्री अधिक विशेखो जी ।
तेहथी तेइंदिया विसेसाइया, बेइंद्रिय इमहिज पेखो जी ।।
१०१. तेहथी अणिंदिया अनंतगुणा छै, अनंतगुणा एगिंदीया जी ।
तेहथी सइंदिया विसेसाहिया, ओघिक एम उच्चरीया जी ।।

९९-१०१. 'ओहियं पदं भाणियव्वं' ति तच्चैवमर्थतः—
पण चउ ति दुय अणिंदिय एगिंदि सइंदिया कमा हुंति ।
थोवा तिन्नि य अहिया दोणंतगुणा विसेसहिया ।।
(वृ प. ८६९)

वा०—इहां अणिंदिया कह्या ते तेरमो-चवदमो गुणस्थान अनैं सिद्ध लेखवणा, पिण इंद्रिय पर्याय बांध्यां पहिलां अपर्याप्ता अणिंदिया ते इहां न गिण्या।

काय के सन्दर्भ में अल्पबहुत्व

१०२. सकाइयादिक अल्पबहुत्व जे, तिमहिज ओघिक भणवी जी ।
पज्जत्त अपज्जत्त भेद बिण कीधे,
पद तीजे[1] कही तिम थुणवी जी ।।

१०२. सकाइयअप्पाबहुगं तहेव ओहियं भाणियव्वं ।
(श. २५।९९)

१०३. सर्व थी थोड़ा तसकाइया छै, असंखगुणा तेऊकायो जी ।
पृथ्वीकाइया विशेषाधिक छै, अप विशेषाइ ताह्यो जी ।।
१०४. वाऊकाइया विशेषाधिक छै, अनंतगुणा छै अकायो जी ।
तेहथी वनस्पति अनंतगुणा छै, सकाइया विशेसायो जी ।।

१०३,१०४. तस तेउ पुढवि जल वाउकाय अकाय
वणस्सइ सकाया ।
थोव असंखगुणा हिय तिन्नि उ दोणंतगुण अहिया ।।
(वृ. प. ८६९)

जीव यावत पर्यव का अल्पबहुत्व

१०५. हे प्रभुजी ! ए जीव नें पुद्गल,
जाव पज्जव सहु जाणी जी ।
कवण-कवण थी जाव पद तीजे,
भाख्यो तिम पहिछाणी जी ।।

१०५. एएसि णं भंते ! जीवाणं पोग्गलाणं जाव (सं. पा) सव्वपज्जवाण य कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ? जहा बहुवत्तव्वयाए (प. ३।१२४]। (श. २५।१००)

---

१. प. ३।५०।

***लय : चतुर विचार करो नै देखो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां ए भावना—सर्व थी थोड़ा जीव, जे भणी एक-एक जीव अनंतानंत पुद्गले करी बंध्या बहुलपणैं हुवै। वलि पुद्गल जीव करिकै बंध्या अनैं अणबंध्या वलि हुवै। इण कारण थकी पुद्गल थकी जीव थोड़ा।

जीव थकीपुद्गल अनंत गुणा ते किम ? जे तेजसादि शरीर जेणे जीवे ग्रहण कीधो, ते शरीर तिणां जीवां थकी पुद्गल नां परिमाण आश्रयी नैं अनन्तगुणा हुवै। तथा तेजस शरीर थकी प्रदेश आश्रयी नैं कार्मण शरीर अनन्तगुणो हुवै। इम ए तैजस, कार्मण जीव-प्रतिबद्ध अनन्तगुणा हुवै। अनैं जे तैजस, कार्मण जीवां करी मूक्या छै, ते प्रतिबद्ध थकी पिण अनन्तगुणा हुवै। शेष शरीर नीं चिंतवणा तो इहां करीज नहीं। कारण शेष शरीर नां मुकेलगा पिण आप आपनैं स्थाने तैजस कार्मण नैं अनन्तमें भाग हुवै। एतलै तैजसादि थकी अतिही थोड़ा हुवै ते माटै। इम तैजस नां पुदगल पिण जीव थकी अनन्तगुणा तो वलि किसुं कहिवुं कार्मणादि पुद्गल राशि सहित नों।

तथा पनरै प्रकारे प्रयोग-परिणत पुद्गल है ते थोड़ा। तेह थकी मिश्र-परिणत पुद्गल अनंतगुणा। तेह थकी पिण वीससा-परिणत पुद्गल अनंतागुणा। तीन प्रकारईज पुद्गल सगलाईज हुवै। वलि जीव है ते सर्व पिण प्रयोग-परिणत पुद्गल नैं अतिहि थोड़े अनंतमें भाग विषे वर्त्तै, जे भणी इम ते जीवां थकी पुद्गल घणैं अनंतानंत करिकै गुण्या छता नीपना इति।

पुद्गल थकी अनंतगुणा समया इम जे कह्यो ते सम्यक प्रकारे न जाण्यो जाय, ते पुद्गल थकी ते समय नां थोड़ापणां थकी। अनैं थोड़ापणुं ते समय नों मनुष्यक्षेत्रमात्रवर्त्तीपणां थकी वलि पुद्गल नों सकल लोकवर्त्तीपणां थकी इति प्रश्न। एहनों उत्तर कहै छै—समयक्षेत्र नैं विषे जे केयक द्रव्य पर्याय है तेहिज एक-एक द्रव्य पर्याय नैं विषे वर्त्तमान समय वर्त्ते है इम वलि ए वर्त्तमान समय जे भणी समयक्षेत्र द्रव्य पर्याय गुण हुवै ते भणी एक-एक समय नैं विषे अनंता समय हुवै एतलै अढीद्वीप नैं विषे अनंता द्रव्य पर्याय छै। ते अनंता ऊपरैं वर्त्तमान एक समय वर्त्ते ते भणी एक समय नैं अनंता समय कहियै। इम वर्त्तमान समय पिण पुदगल थकी अनंतगुणो हुवै एक द्रव्य नीं पिण पर्याय नां अनंतानंतपणा थकी। इहां वृत्तिकार बहु विस्तारचो छै।

अथ समय थकी द्रव्य विशेषाधिक ते किम ? तेहनो उत्तर कहै छै—जे भणी सर्व समया एक-एक जुदा-जुदा द्रव्य छै शेष जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकायरूप द्रव्य ते समय रूप द्रव्य नैं विषे ईज घाल्या इण कारण थकी न केवल समय थकी समस्त द्रव्य विशेषाधिक हुवै पिण संख्यात गुणादिक नहीं हुवै। समय द्रव्य नीं अपेक्षा करिकै जीवादिक द्रव्य नैं अतिहि अल्पपणां थकी।

इहां प्रेरक कहै—अद्धा समय नैं द्रव्य हीज कहियै, एहवो नियम स्यां माटै ? प्रदेशपणों पिण तेहमें संभव छै, तथाहि—जिम स्कन्ध द्रव्य हुवै, जिम

वा.—इह भावना—यतो जीवाः प्रत्येकमनन्तानन्तैः पुद्गलैर्बद्धाः प्रायो भवन्ति, पुद्गलास्तु जीवैः संबद्धा असंबद्धाश्च भवन्तीत्यतः स्तोकाः पुद्गलेभ्यो जीवाः यदाह—

'जं पोग्गलावबद्धा जीवा पाएण होंति तो थोवा।
जीवेहिं विरहिया अविरहिया
व पुणपोग्गला संति ॥२॥'

जीवेभ्योऽनन्तगुणाः पुद्गलाः, कथं ? यत्तैजसादिशरीरं येन जीवेन परिगृहीतं तत्ततो जीवात्पुद्गलपरिमाणमाश्रित्यानन्तगुणं भवति, तथा तैजसशरीरात्प्रदेशतोऽनन्तगुणं कार्म्मणं, एवं चैते जीवप्रतिबद्धे अनन्तगुणे, जीवविमुक्ते च ते ताभ्यामनन्तगुणे भवतः, शेषशरीरचिन्ता त्विह न कृता, यस्मात्तानि मुक्तान्यपि स्वस्वस्थाने तयोरनन्तभागे वर्त्तन्ते, तदेवमिह तैजसशरीरपुद्गला अपि जीवेभ्योऽनन्तगुणाः किं पुनः कार्म्मणादिपुद्गलराशिसहिताः,

तथा पञ्चदशविधप्रयोगपरिणताः पुद्गलाः स्तोकास्तेभ्यो मिश्रपरिणताः अनन्तगुणास्तेभ्योऽपि विस्रसापरिणता अनन्तगुणास्त्रिविधा एव च पुद्गलाः सर्व एव भवन्ति, जीवाश्च सर्वेऽपि प्रयोगपरिणतपुद्गलानां प्रतनुकेऽनन्तभागे वर्तन्ते, यस्मादेवं तस्माज्जीवेभ्यः सकाशात्पुद्गला बहुभिरनन्तानन्तकैर्गुणिता सिद्धा इति,

ननु पुद्गलेभ्योऽनन्तगुणाः समया इति यदुक्तं तन्न संगतं, तेभ्यस्तेषां स्तोकत्वात्, स्तोकत्वं च मनुष्यक्षेत्रमात्रवर्तित्वात् समयानां पुद्गलानां च सकललोकवर्तित्वादिति, अत्रोच्यते, समयक्षेत्रे ये केचन द्रव्यपर्यायाः सन्ति तेषामेकैकस्मिन् साम्प्रतसमयो वर्त्तते, एवं च साम्प्रतः समयो यस्मात्समयक्षेत्रद्रव्यपर्यव गुणो भवति तस्मादनन्ताः समया एकैकस्मिन् समये भवन्तीति,....एवं च वर्त्तमानोऽपि समयः पुद्गलेभ्योऽनन्तगुणो भवति, एकद्रव्यस्यापि पर्यवाणामनन्तानन्तत्वात्,

अथ समयेभ्यो द्रव्याणि विशेषाधिकानीति, कथम् ?, अत्रोच्यते, यस्मात्सर्वे समयाः प्रत्येकं द्रव्याणि शेषाणि च जीवपुद्गलधर्मास्तिकायादीनि तेष्वेव क्षिप्तानीत्यतः केवलेभ्यः समयेभ्यः सकाशात् समस्तद्रव्याणि विशेषाधिकानि भवन्ति न सङ्ख्यातगुणादीनि, समयद्रव्यापेक्षया जीवादिद्रव्याणामल्पतरत्वादिति,

नन्वद्धासमयानां कस्माद् द्रव्यत्वमेवेष्यते ? समयस्कन्धापेक्षया प्रदेशार्थत्वस्यापि तेषां युज्यमानत्वात्,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलि स्कन्ध नां अवयव ते प्रदेश हुवै, तिमज समय स्कन्धवर्ती समया प्रदेश हुवै अनैं द्रव्य हुवै हिवै एहनों उत्तर कहै छै—परमाणुआं नै परस्पर सापेक्षपणां थकी स्कन्धपणों युक्त छै, पर अद्धा समया नैं परस्पर सापेक्षपणों नहिं जे भणी अद्धा समया प्रत्येकपणां नैं विषे अथवा काल्पनिक स्कन्धपणां नैं विषे पिण वर्तता छता जुई-जुई वृत्तिवालाज हुवै। एतलै ते भेला नहिं थाय तत्स्वभावपणां थकी ते माटै अन्योन्य अपेक्षा रहित हुवै। अन्योन्य अपेक्षा रहितपणां थकी ते वास्तव स्कन्ध नैं निपजावणहारा नहीं, तेह थकी एहमें प्रदेशार्थपणों नहीं।

अथ द्रव्य थकी प्रदेश अनंतगुणा, ए किम ? एहनों उत्तर कहै छै—अद्धा समय द्रव्य थकी आकाश प्रदेश नैं अनंतगुणपणां थकी। इहां प्रेरक कहै—क्षेत्र नां प्रदेश अनैं काल नां समया ए बिहुं नैं अनंतपणे छतै समान कहियै एतलै क्षेत्र नां प्रदेश अनैं काल नां समया ए बिहुं नों अंत नथी इम अनंतपणां थकी बिहुं समान छतै पिण स्यूं कारण आश्रयी नैं आकाश-प्रदेश अनंतगुणा अनैं काल नां समया तेहनैं अनंतमें भागवर्त्ती हैं। हिवै एहनों उत्तर—आदिरहित अंतरहित एक आकाश नीं श्रेणि विषे एक-एक प्रदेश नैं अनुसारि थकी तिरछी लांबी श्रेणि नैं कल्पना करिकै ते श्रेणि थकी पिण एक-एक प्रदेश अनुसार करिकै हीज ऊर्द्ध, अधो, आयत श्रेणि नीं रचना करी आकाश-प्रदेश नों घन निपजावियै अनैं काल समय नीं श्रेणि नैं विषे तेहीज श्रेणी हुवै वली घन नहीं हुवै ते कारण थकी काल नां समया थोड़ा हुवै।

ते प्रदेश थकी पजवा अनंतगुणां एहवी भावना जिण कारण करिकै एक-एक आकाश-प्रदेश रै विषे अनंता-अनंता अगुरुलघु पजवा जाणवा।

तथाहि—यथा स्कन्धो द्रव्यं सिद्धं स्कन्धावयवा अपि यथा प्रदेशाः सिद्धाः एवं समयस्कन्धवर्त्तिनः समया भवन्ति प्रदेशाश्च द्रव्यं चेति, अत्रोच्यते, परमाणूनामन्योऽन्यसव्यपेक्षत्वेन स्कन्धत्वं युक्तं, अद्धासमयानां पुनरन्योऽन्यापेक्षिता नास्ति, यतः कालसमयाः प्रत्येकत्वे च काल्पनिकस्कन्धाभावे च वर्त्तमानाः प्रत्येकवृत्तय एव तत्स्वभावत्वात् तस्मात्तेऽन्योऽन्यनिरपेक्षाः अन्योऽन्यनिरपेक्षत्वाच्च न ते वास्तवस्कन्धनिष्पादकास्ततश्च नैषां प्रदेशार्थतेति,

अथ द्रव्येभ्यः प्रदेशा अनन्तगुणा इत्येतत्कथम् ?, उच्यते, अद्धासमयद्रव्येभ्य आकाशप्रदेशानामनन्तगुणत्वात्, ननु क्षेत्रप्रदेशानां कालसमयानां च समानेऽप्यनन्तत्वे किं कारणमाश्रित्याकाशप्रदेशा अनन्तगुणाः कालसमयाश्च तदनन्तभागवर्त्तिनः ? इति, उच्यते, एकस्यामनाद्यपर्यवसितायामाकाशप्रदेशश्रेण्यामेकैकप्रदेशानुसारतस्तिर्यगायतश्रेणीनां कल्पनेन ताभ्योऽपि चैकैकप्रदेशानुसारेणैवोर्द्ध्वाधआयतश्रेणीविरचनेनाकाशप्रदेशघनो निष्पाद्यते, कालसमयश्रेण्यां तु सैव श्रेणी भवति न पुनर्घनस्ततः कालसमयाः स्तोका भवन्तीति,

प्रदेशेभ्योऽनन्तगुणाः पर्याया इति, एतद्भावनार्थं गाथा—

"एत्तो य अणंतगुणा पज्जाया जेण नहपएसम्मि।
एक्केक्कंमि अणंता अगुरुलहू पज्जवा भणिया॥१॥
(वृ. प. ८७०-८७२)

१०६. जीव पुद्गल नैं काल नां समया,
द्रव्य प्रदेश पजवा उदंतो जी।
थोड़ा अनंत अनंतगुणा छै, विसेसाहिया दोय अनंतो जी॥

१०६. 'जीवा पोग्गल समया दव्व पएसा य पज्जवा चेव।
थोवा णंता णंता विसेसअहिया दुवेऽणंता॥
(वृ. प. ८६९,८७०)

आयुष्य कर्म के बंधक-अबंधक आदि जीवों का अल्पबहुत्व

१०७. हे प्रभु ! जीव नैं आयु कर्म नां, बंध अबंधग मांह्यो जी।
कवण-कवण थी अल्प बहु तुला, विशेष अधिक कह्यायो जी॥

१०७. एएसि णं भंते ! जीवाणं, आउयस्स कम्मस्स बंधगाणं अबंधगाणं ?

१०८. जिम बहु वक्तव्यता पद तीजे, आख्यो तेम कहीजे जी।
जाव आयु कर्म तणां अबंधगा, विसेसाहिया लीजे जी॥

१०८. जहा बहुवत्तव्वयाए (प. ३।१७४) जाव आउयस्स कम्मस्स अबंधगा विसेसाहिया। (श. २५।१०१)

१०९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! शत पणवीसम केरो जी।
तृतीय उद्देशक अर्थ थकी ए, आख्यो सखर सुमेरो जी॥

१०९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. २५।१०२)

११०. ढाल च्यारसौ अष्टतीसमीं, आसाढी पूनम आखी जी।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसा',
'जय-जश' संपत्ति राखी जी॥

पंचविंशतितमशते तृतीयोद्देशकार्थः॥२५।३॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४३९

दूहा

१. तृतीय उद्देश विषे कह्या, संठाणादि परिमाण।
वलि परिमाण तणांज हिव, भेद चतुर्थे माण ।।

१. तृतीयोद्देशके संस्थानादीनां परिमाणमुक्तं, चतुर्थे तु परिमाणस्यैव भेदा उच्यन्ते, (वृ. प. ८७३)

युग्म के प्रकार

२. हे प्रभु ! जुम्मा केतला ? जुम्मा कहितां पेख।
संज्ञा शब्द थकीज जे, कहियै राशि विशेख ।।

२. कति णं भंते ! जुम्मा पण्णत्ता ?
'जुम्म' त्ति सञ्ज्ञाशब्दत्वाद्राशिविशेषाः। (वृ. प. ८७३)

३. जिन भाखै सुण गोयमा ! युग्म परूप्या च्यार।
कडजुम्मे जावत वलि, कलियोगे अवधार ।।

३. गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे जाव कलियोगे। (श. २५।१०३)

४. किण अर्थे भगवंत जी ! च्यार युग्म कहिवाय।
धुर कृतयुग्म अनें वलि, जाव कल्योज सुपाय ।।

४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ – चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता — कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

५. इम जिम अष्टादशम शत, तुर्य उदेशे बात।
तिम कहिवुं जावत तिको, तिण अर्थे इम ख्यात ।।

५. एवं जहा अट्ठारसमसते चउत्थे उद्देसए [१८।९०] तहेव जाव से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ। (श. २५।१०४)

चौबीस दण्डक और सिद्धों के युग्म

*सुणो भव प्राणी रे,
वीर जिनेंद्र तणां वचनामृत जाणी रे ।। (ध्रुपदं)

६. नारक हे भगवंत जी ! रे, केतला युग्म प्रयोज ?
जिन कहै च्यार जुम्मा कह्या रे,
कडजुम्मा जाव कल्योज ।।

६. नेरइयाणं भंते ! कति जुम्मा पण्णत्ता ?
गोयमा ! चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे जाव कलियोगे। (श. २५।१०५)

७. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो रे, युग्म नारक नें च्यार।
कडजुम्म प्रमुख ? अर्थ तसु रे, तिमज पूर्ववत धार ।।

७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ – नेरइयाणं चत्तारि जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे ? अट्ठो तहेव।

सोरठा

८. ते इम नारक धार, चिहुं-चिहुं अपहरतां थकां।
छेहड़ै रहैज च्यार, कृतयुग्मा ते नेरइया ।।

८. 'जेणं नेरइया चउक्कएणं अवहारेण २ अवहीरमाणा २ चउपज्जवसिया ते णं नेरइया कडजुम्मे' त्यादि इति। (वृ. प. ८७३)

९. चिहुं अपहरतां जेह, छेहड़ै तीन रहै तसु।
तेओगाज कहेह, द्वापरयुग्म हिवै कहूं ।।

१०. चिहुं अपहरतां सोय, छेहड़ै दोय रहै तिको।
द्वापरयुग्मा जोय, कलियोगा नों अर्थ हिव ।।

११. चिहुं अपहरतां मंत, छेहड़ै एक रहै तसु।
कलियोगा भाखंत, एह अर्थ चिहुं जुम तणों ।।

१२. *इम जावत वायुकाय नें रे, युग्म च्यार पहिछाण।
वनस्पति पूछा कियां रे, भाखै तब जगभाण ।।

१२. एवं जाव वाउकाइयाणं। (श. २५।१०६)
वणस्सइकाइयाणं भंते ! पुच्छा।

१३. वणस्सइकाय हुवै कदा रे, कडजुम्म कदा तेओग।
द्वापरयुग्म हुवै कदा रे, कदा हुवै कलियोग ।।

१३. गोयमा ! वणस्सइकाइया सिय कडजुम्मा, सिय तेयोगा, सिय दावरजुम्मा, सिय कलियोगा। (श. २५।१०७)

---

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. किण अर्थे भगवंत जी ! रे, इम कहियै छै प्रयोग ।
वनस्पतिकायिक कदा रे, जाव हुवै कलियोग ?
१५. जिन कहै उपपात आश्रयी रे, तिण अर्थे तिमहीज ।
ए च्यारूं पद नों हिवै रे, न्याय वृत्ति थी कहीज ।।

१४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—वणस्सइकाइया जाव कलियोगा ?
१५. गोयमा ! उववायं पडुच्च । से तेणट्ठेणं तं चेव ।

सोरठा

१६. यद्यपि वणस्सइकाय, जीव अनंतपणें करी ।
स्वभाव थी कहिवाय, ह्वै कडजुम्माईज ते ।।
१७. तथापि अन्यगतिथीज, एक प्रमुख जे जीव नों ।
उत्पत्ति तिहां कहीज, ते अंगीकार करि रूप चिहुं ।।
१८. पिण ए रूपज च्यार, समकाले तो ह्वै नथी ।
ते माटै अवधार, कदा शब्द चिहुं ठोड़ छै ।।
१९. वनस्पती ते सोय, नीकलवा नें आश्रयी ।
रूप च्यारूइं होय, पिण नहिं वंछचो ते इहां ।।

१६. यद्यपि वनस्पतिकायिका अनन्तत्वेन स्वभावात् कृतयुग्मा एव प्राप्नुवन्ति । (वृ. प. ८७३)
१७,१८. तथाऽपि गत्यन्तरेभ्य एकादिजीवानां तत्रोत्पादमङ्गीकृत्य तेषां चतूरूपत्वमयौगपद्येन भवतीत्युच्यते, (वृ. प. ८७३)
१९. उद्वर्त्तनामप्यङ्गीकृत्य स्यादेतद् केवलं सेह न विवक्षितेति । (वृ. प. ८७३)

२०. *बेइंद्रिया जिम नेरइया रे, जावत कहिवुं एम ।
वैमानिक दंडक लगै रे, सिद्ध वनस्पति जेम ।।

२०. बेंदियाणं जहा नेरइयाणं । एवं जाव वेमाणियाणं । सिद्धाण जहा वणस्सइकाइयाणं । (श. २५।१०८)

सोरठा

२१. अथ कडजुम्मा आदि, तेह राशि करि द्रव्य नीं ।
परूपणा संवादि, करियै छै ते सांभलो ।।

२१. अथ कृतयुग्मादिभिरेव राशिभिर्द्रव्याणां प्ररूपणायेदमाह— (वृ. प. ८७३)

षट् द्रव्यों के युग्म

२२. *कतिविध सहु द्रव्य छै प्रभुजी ?
जिन कहै षटविध जोय ।
धर्मास्तिकाय जावत छठो रे, अद्धा समय अवलोय ।।

वा—कतिविधानि कतिस्वभावानि—कतिविध केतला स्वभावकानि ते किसा ते कवण सर्व द्रव्यानि ? जिन कहै—छह विधा—षट स्वभाव सर्व द्रव्य धर्मास्तिकाय १, अधर्मास्तिकाय २, आकाशास्तिकाय ३, पुद्गलास्तिकाय ४, जीवास्तिकाय ५, अद्धा समय ६—ए षट् द्रव्य जाणवा ।

२२. कतिविहा णं भंते ! सव्वदव्वा पण्णत्ता ?
गोयमा ! छव्विहा सव्वदव्वा पण्णत्ता, तं जहा—धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए जाव अद्धासमए । (श. २५।१०९)
वा.—'कतिविहा णं भंते ! सव्वदव्वा' इत्यादि, तत्र 'कतिविधानि' कतिस्वभावानि कतीत्यर्थः । 'धम्मत्थिकाए ण' मित्यादि । (वृ. प. ८७३)

२३. धर्मास्तिकाय भदंत जी ! रे, दव्वट्ठयाए देख ।
स्यूं कडजुम्म हुवै तथा रे, जाव कल्योज संपेख ?
२४. जिन कहै कडजुम नहीं हुवै रे, तेओगे नहिं होय ।
द्वापरयुग्म हुवै नहीं रे, कलियोगे इक होय ।।

वा०—धर्मास्तिकाय द्रव्य एकपणां थकी चतुष्क अभाव करिकै च्यारूं रूप नथी, धर्मास्तिकाय एकहीज छै ते भणी ।

२३. धम्मत्थिकाए णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे जाव कलियोगे ?
२४. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, कलियोगे ।
वा.—'कलियोगे' त्ति एकत्वाद्धर्म्मास्तिकायस्य चतुष्कापहाराभावेनैकस्यैवावस्थानात् कल्योज एवासाविति, (वृ. प. ८७३)

२५. इम अधर्मास्तिकाय छै रे, इम आगास्थिकाय ।
जीवास्तिकाय नें पूछियां रे, तब भाखै जिनराय ।।

२५. एवं अधम्मत्थिकाए वि । एवं आगासत्थिकाए वि । (श. २५।११०)
जीवत्थिकाए णं भंते !—पुच्छा ।

२६. ते कृतयुग्म हुवै सही रे, तेओगे नहिं होय ।
द्वापरयुग्म पिण नहि हुवै रे, कलियोगे नहिं कोय ।।

२६. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे । (श. २५।१११)

*लय : अनन्त नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२७. जीव द्रव्य अवलोय, अनंत ते अवस्थित थी।
कडजुम्मपणोंज होय, शेष रूप तेहनों नथी।।

२७. जीवद्रव्याणामवस्थितानन्तत्वात्कृतयुग्मतैव, (वृ. प. ८७३,८७४)

२८. *पूछा पुद्गलास्तिकाय नीं रे, जिन भाखै सुप्रयोग।
ते कृतयुग्म हुवै कदा रे, जाव कदा कलियोग।।

वा० — पुद्गलास्तिकाय नैं अनंत भेदपणैं पिण संघातभेद भाजनपणां थकी चतुर्विध कहिवुं। संघात-भेद भाजन किणनैं कहीजैं? संघात कहितां समूह तेहनों, वलि भेद कहितां भिन्नपणां नो भाजनत्वात् कहितां भाजनपणां थकी च्यारूंई रूप हुवै अनैं काल नां समया नैं अतीत, अनागत, अवस्थित अनंतपणैं करिकै कृतयुग्मपणुं हुवै, इण कारण थकीज कहै छै —

२८. पोग्गलत्थिकाए णं भंते! — पुच्छा।
गोयमा! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे।

वा. — पुद्गलास्तिकायस्यानन्तभेदत्वेऽपि सङ्घात-भेदभाजनत्वाच्चातुर्विध्यमध्येयं, अद्धासमयानां त्वतीतानागतानामवस्थितानन्तत्वात्कृतयुग्मत्वमत एवाह— (वृ. प. ८७४)

२९. अद्धा समय नैं आखियै रे, जीवास्तिकाय जेम।
श्री जिन वचन प्रमाण थी रे, श्रद्धवुं ए धर प्रेम।।

२९ अद्धासमए जहा जीवत्थिकाए। (श. २५।११२)

दूहा

३०. ए द्रव्यार्थपणैं कह्या, प्रदेश-अर्थपणेह।
हिव कहियै षट द्रव्य नैं, सांभलजो गुणगेह।।

३०. उक्ता द्रव्यार्थता, अथ प्रदेशार्थता तेषामेवोच्यते— (वृ. प. ८७४)

३१. *धर्मास्तिकाय भदंत जी! रे, प्रदेश-अर्थपणेह।
स्यूं कृतयुग्म हुवै तिके रे? इत्यादि प्रश्न करेह।।

३१. धम्मत्थिकाए णं भंते! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मे— पुच्छा।

३२. जिन भाखै कडजुम्म हुवै रे, तेयोगे नहिं होय।
द्वापरयुग्म हुवै नहीं रे, कलियोगे नहिं कोय।।

३२. गोयमा! कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे।

३३. एवं यावत जाणवुं रे, अद्धा समय लगेह।
प्रदेश अर्थ अवस्थितपणैं रे, असंख अनंत कहेह।।

३३. एवं जाव अद्धासमए। (श. २५।११३)

सोरठा

३४. प्रदेश-अर्थपणेह, अवस्थित छै ते भणी।
कडजुम्मेज कहेह, शेष तेयोग प्रमुख नथी।।

वा. — प्रदेश-अर्थपणैं करि, अवस्थित असंख्यात प्रदेशिकपणां थकी, बलि अवस्थित अनंतप्रदेशपणां थकी।

३४. 'धम्मत्थी' त्यादि, सर्वाण्यपि द्रव्याणि कृतयुग्मानि प्रदेशार्थतया। (वृ. प. ८७४)

वा. — अवस्थितासङ्ख्यातप्रदेशत्वादवस्थितानन्तप्रदेशत्वाच्चेति। (वृ. प. ८७४)

षट् द्रव्यों का अल्पबहुत्व

३५. *ए प्रभु! काय धर्मास्ति रे, फुन अधर्मास्तिकाय।
जावत अद्धा समय नैं रे, दव्वट्ठयाए ताय।।

३५. एएसि णं भंते! धम्मत्थिकाय-अधम्मत्थिकाय जाव अद्धासमयाणं दव्वट्ठयाए?

३६. अल्पबहुत्व हिव एहनां रे, जिम पन्नवण अवलोय।
बहु वक्तव्य तीजे पदे रे, आख्यो तिम सहु जोय।।

३६. एएसि णं अप्पाबहुगं जहा बहुवत्तव्वयाए (प. ३।११४-१२२) तहेव निरवसेसं। (श. २५।११४)

सोरठा

३७. धर्माधर्म आकाश, द्रव्य थकी तीनूं तुला।
एक-एक द्रव्य तास, अल्प अन्य द्रव्य पेक्षया।।

३७. धर्मास्तिकायादयस्त्रयो द्रव्यार्थतया तुल्या एकैकद्रव्यरूपत्वात्, तदन्यापेक्षया चाल्पे, (वृ. प. ८७४)

३८. ए त्रिहुं द्रव्य थी ताहि, अनंतगुण है जीव द्रव्य।
सर्व लोक रै मांहि, जीव अनंतपणां थकी।।

३८. जीवास्तिकायस्ततोऽनन्तगुणो जीवद्रव्याणामनन्तत्वात्, (वृ. प. ८७४)

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. जीव द्रव्य थी जाण, पुद्गल द्रव्य अनंत गुण ।
पुद्गल द्रव्य थी माण, अनंतगुणा अद्धा समय ।।
४०. प्रदेश अर्थपणेह, धर्माधर्म प्रदेश तुल्य ।
असंख प्रदेशिक बेह, थोड़ा अन्य अपेक्षया ।।
४१. जंतु पुद्गल जाण, अद्धा समय आकाश नां ।
अनुक्रम करि पहिछाण, प्रदेश अनंतगुणा कह्या ।।

षट् द्रव्यों का लोक में अवगाहन कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

वा०—अथ द्रव्यनींज क्षेत्र अपेक्षया कृतयुग्मादि करिकै परूपणा कहै छै—

४२. *धर्मास्तिकाय भदंत जी ! रे, स्यूं अवगाढ छै एह ।
कै अवगाही रह्यं नहीं रे ? एह प्रश्न पूछेह ।।
४३. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे, ए धर्मास्तिकाय ।
अवगाही नें रह्यं अछै रे, पिण अनवगाढ न कहाय ।।
४४. जो अवगाही रह्यं अछै रे, तो स्यूं प्रदेश संख्यात ।
असंख अनंत प्रदेश नें रे, अवगाही नैं रहात ?
४५. जिन कहै संख प्रदेश नें रे, अवगाही रह्यं नांह ।
असंख प्रदेश अवगाढ छै रे, नहीं अनंत प्रदेश अवगाह ।।

सोरठा

४६. लोकाकाश प्रदेश, असंख्यात छै तेह विषे ।
रह्यं धर्म द्रव्य एस, असंख प्रदेश ओगाढ इम ।।

४७. *जो असंख प्रदेश ओगाढ छै रे, तो स्यूं आकाश प्रदेश ।
कडजुम्म प्रति अवगाढ छै रे ? इत्यादि प्रश्न अशेष ।।
४८. जिन भाखै कृतयुग्म ही रे, प्रदेश प्रति ओगाहि ।
त्र्योज द्वापर कलियोग ही रे, प्रदेश ओगाहै नांहि ।।

सोरठा

४९. लोक तणें अवस्थित्त, असंख प्रदेशपणें करी ।
कडजुम्मपणों कथित्त, चिहुं अपहरवै चिहुं रहै ।।
५०. फुन धर्मास्तिकाय, लोकाकाश प्रदेश नें ।
प्रमाणपणेंज पाय, तिणसूं कडजुम्म ईज ह्वै ।।
५१. तेयोगा नहिं होय, द्वापरयुग्म वलि नहीं ।
कलियोगा नहिं कोय, इक कृतयुग्मपणोंज ह्वै ।।
५२. *इम अधर्मास्तिकाय नें रे, इम आगास्तिकाय ।
जीव पुद्गलास्तिकाय नें रे, अद्धा समय इम थाय ।।

वा०—जिम धर्मास्ति तिम अधर्मास्ति कहिणी लोक-ओगाहपणां थकी । इम सर्व अस्तिकाय कहिणी, तेहनें लोक-ओगाहपणां थकी । नवरं आकाशास्तिकाय नें अवस्थित अनंत प्रदेशपणां थकी वलि आत्मा अवगाहीपणां थकी कृतयुग्म प्रदेश अवगाढपणों हुवै । अनें अद्धा समय नें अवस्थित असंख्यात प्रदेशा-

*लय : अनंत नाम जिन चववमा रे

३९. एवं पुद्गलास्तिकायाद्धासमयाः, (वृ. प. ८७४)

४०. प्रदेशार्थचिन्तायां त्वाद्यौ प्रत्येकमसङ्ख्येयप्रदेशत्वेन तुल्यौ तदन्येभ्यः स्तोकौ च, (वृ. प. ८७४)
४१. जीवपुद्गलाद्धासमयाकाशास्तिकायास्तु क्रमेणानन्तगुणा इत्यादि । (वृ. प. ८७४)

वा.—अथ द्रव्याण्येव क्षेत्रापेक्षया कृतयुग्मादिभिः प्ररूपयन्नाह— (वृ. प. ८७४)
४२. धम्मत्थिकाए णं भंते ! किं ओगाढे ? अणोगाढे ?

४३. गोयमा ! ओगाढे, नो अणोगाढे । (श. २५।११५)

४४. जइ ओगाढे किं संखेज्जपदेसोगाढे ? असंखेज्जपदेसोगाढे ? अणंतपदेसोगाढे ?
४५. गोयमा ! नो संखेज्जपदेसोगाढे, असंखेज्जपदेसोगाढे, नो अणंतपदेसोगाढे । (श. २५।११६)

४६. 'असंखेज्जपएसोगाढे' त्ति असङ्ख्यातेषु लोकाकाशप्रदेशेष्ववगाढोऽसौ लोकाकाशप्रमाणत्वात्तस्येति, (वृ. प. ८७४)
४७. जइ असंखेज्जपदेसोगाढे किं कडजुम्मपदेसोगाढे— पुच्छा ।
४८. गोयमा ! कडजुम्मपदेसोगाढे, नो तेयोगपदेसोगाढे, नो दावरजुम्मपदेसोगाढे, नो कलियोगपदेसोगाढे ।

४९. 'कडजुम्मपएसोगाढे' त्ति लोकस्यावस्थितासङ्ख्येयप्रदेशत्वेन कृतयुग्मप्रदेशता, (वृ. प. ८७४)
५०,५१. लोकप्रमाणत्वेन च धर्मास्तिकायस्यापि कृतयुग्मतैव, (वृ. प. ८७४)

५२. एवं अधम्मत्थिकाए वि । एवं आगासत्थिकाए वि । जीवत्थिकाए, पोग्गलत्थिकाए अद्धासमए एवं चेव । (श. २५।११७)

वा.—एवं सर्वास्तिकायानां लोकावगाहित्वात्तेषां नवरमाकाशास्तिकायस्यावस्थितानन्तप्रदेशत्वादात्मावगाहित्वाच्च कृतयुग्मप्रदेशावगाढताऽद्धासमयस्य चावस्थितासङ्ख्येयप्रदेशात्मकमनुष्यक्षेत्रावगाहित्वादिति । अथावगाहप्रस्तावादिदमाह— (वृ. प. ८७४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्मकज मनुष्य क्षेत्र अवगाहपणां थकी कृतयुग्म ईज कहियैं। शेष तीन रूप न हुवै। अथ अवगाह प्रस्ताव थी ए कहै छै—

रत्नप्रभा यावत ईषत्प्राग्भारा का अवगाहन कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

५३. ए रत्नप्रभा पृथ्वी प्रभु ! रे, स्यूं अवगाढ कहाय ?
अथवा अवगाढक नहीं रे ? इत्यादि प्रश्न पूछाय ।।

५४. जिम धर्मास्तिकाय नें रे, आख्यो तिमज कहेह।
एवं जाव नीचै कही रे, सप्तमी पृथ्वी लगेह ।।

५५. सौधर्म हीज इम वली रे, जाव सिद्धशिला लग चीन।
कडजुम्म प्रदेश ओगाढ छै रे, शेष नहीं छै तीन ।।

५३. इमा णं भंते ! रयणप्पभा पुढवी किं ओगाढा ? अणोगाढा ?

५४. जहेव धम्मत्थिकाए। एवं जाव अहेसत्तमा।

५५. सोहम्मे एवं चेव। एवं जाव ईसिपब्भारा पुढवी। (श. २५।११८)

जीव आदि छब्बीस पदों की पृच्छा कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

सोरठा

५६. कृतयुग्मादि करेह, जीवादिक षटवीस पद।
इक बहु वच कर तेह, जेह निरूपण करत हिव ।।

५७. *इक वच जीव भदंत जी ! रे, दव्वट्ठयाए जाण।
स्यूं कृतयुग्म कहीजियै रे ? इत्यादि प्रश्न पिछाण ।।

५८. जिन कहै कडजुम्मे नहीं रे, वलि नहि ह्वै तेओग।
द्वापुरयुग्म नहीं वली रे, एक जीव कलियोग ।।

५६. अथ कृतयुग्मादिभिरेव जीवादीनि षड्विंशतिपदान्ये-कत्वपृथक्त्वाभ्यां निरूपयन्नाह— (वृ. प. ८७४)

५७. जीवे णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे—पुच्छा।

५८. गोयमा ! नो कडजुम्मे, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मे, कलियोगे।

सोरठा

५९. द्रव्य थकी इक जीव, एक ईज द्रव्य ते भणी।
कलियोगेज कहीव, शेष रूप तीनूं नथी ।।

६०. *एवं एकज नेरइयो रे, इम जावत सिद्ध एक।
इक वचने ए आखिया रे, हिव बहुवचने देख ।।

६१. बहु वच जीवा भदंत जी ! रे, दव्वट्ठयाए सोय।
स्यूं कडजुम्मा छै तिके रे ? इत्यादि प्रश्न सुजोय ।।

६२. जिन भाखै ओघ आश्रयी रे, कडजुम्माईज होय।
नो तेओगा नो द्वापरा रे, कलियोगा नहिं कोय ।।

५९. 'जीवे ण' मित्यादि, द्रव्यार्थतयैको जीवः एकमेव द्रव्यं तस्मात्कल्योजो न शेषाः। (वृ. प. ८७४)

६०. एवं नेरइए वि। एवं जाव सिद्धे। (श. २५।११९)

६१. जीवा णं भंते ! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा—पुच्छा।

६२. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा,

सोरठा

६३. ओघ सामान्य करेह, अनंत जीव अवस्थित थी।
कृतयुग्माज कहेह, शेष तेओगादिक नहीं ।।

६४. *विधान देश करी वलि रे, कडजुम्मा नहिं कोय।
नो तेयोग नो दाबरा रे, बहु कलियोगा होय ।।

६३. 'जीवा ण' मित्यादि, जीवा अवस्थितानन्तत्वादोघा-देशेन—सामान्यतः कृतयुग्माः, (वृ. प. ८७४)

६४. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावर-जुम्मा, कलियोगा। (श. २५।१२०)

सोरठा

६५. विधान भेद प्रकार, इक-इक जीव गिण्यां थकां।
बहु कलियोगा धार, स्वरूप नां इक भाव थी ।।

वा०—विधान कहियैं भेद-प्रकार, तेणे करी। एतलै बहु जीव तेहनें भेद ते भिन्न जूजुआ गिणवै करी कलियोगाज छै ते स्वरूप नां एकपणां थकी, जीवा

६५. 'विहाणादेसेणं' त्ति भेदप्रकारेणैकैकश इत्यर्थः कल्योजा एकत्वात्तत्स्वरूपस्य। (वृ. प. ८७४)

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवस्थित अनंतपणां थकी ।

६६. *नेरइया हे भगवंतजी ! रे, दव्वट्ठयाए जेह ।
स्यूं कडजुम्मा छै तिके रे ? बहु वच प्रश्न पूछेह ।।

६७. जिन भाखै ओघ आश्रयी रे, कदा कडजुम्मा होय ।
जाव कदाचित ह्वै तिके रे, कलियोगा अवलोय ।।

६६. नेरइया णं भंते ! दव्वट्ठयाए—पुच्छा ।

६७. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

सोरठा

६८. ओघ सामान्य थकीज, सगलाईज गिणतां थकां ।
कदाच तास कहीज, कडजुम्मा ह्वै नेरइया ।।

६९. च्यार-च्यार अपहार, करिवै शेष रहै चिहुं ।
ते कडजुम्मा धार, इम यावत कलियोग लग ।।

६८,६९. 'ओघादेसेणं' ति सर्व एव परिगण्यमाना: 'सिय कडजुम्म' त्ति कदाचिच्चतुष्कापहारेण चतुरग्रा भवन्ति, (वृ. प. ८७४,८७५)

७०. *विधानादेश करी वली रे, कडजुम्मा नहिं कोय ।
नो तेओगा नो द्वापरा रे, कलियोगाईज होय ।।

वा०—विधान ते भेद-प्रकार, एक-एक गिण्यां थकां स्वरूपे करी एकपणैं थकी कलियोगाज होय ।

७०. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलियोगा ।

७१. एवं जाव सिद्धा कह्या रे, बहु वच प्रश्न संपेख ।
पद षटवीसज आखिया रे, द्रव्य थकी ए देख ।।

हिवै प्रदेशार्थपणैं करी छब्बीस पद एकवचन बहुवचन करी कहै छै—

७१. एवं जाव सिद्धा । (श. २५।१२१)

७२. इक वच जीव भदंत जी ! रे, प्रदेश अर्थपणेह ।
स्यूं कृतयुग्म कहीजियै रे ? इत्यादि प्रश्न भणेह ।।

७३. जिन कहै प्रदेश जीव नां रे, ते आश्रयी संपेख ।
कडजुम्मेज कहीजियै रे, नहीं रूप त्रिहुं शेख ।।

७२. जीवे णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मे—पुच्छा ।

७३ गोयमा ! जीवपदेसे पडुच्च कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे ।

सोरठा

७४. एक जीव नां जाण, प्रदेश असंखपणां थकी ।
अवस्थित थी माण, चिहुं अपहरतां शेष चिहुं ।।

७४. 'जीवपएसे पडुच्च कडजुम्म' त्ति असङ्ख्यातत्वादवस्थितत्वाच्च जीवप्रदेशानां चतुरग्र एव जीव: प्रदेशत: (वृ. प. ८७५)

७५. *शरीर नां प्रदेश आश्रयी रे, कदाच कडजुम्म तेम ।
जाव कदा कलियोग छै रे, जाव वैमानिक एम ।।

वा० - एक जीव नुं जे शरीर तेहनां प्रदेश आश्रयी नैं कदाचित कृतयुग्म जाव कदाचित कलियोग कह्यं । ते ओदारिकादिक शरीर प्रदेश नैं अनंतपणैं छतै पिण संयोग वियोग धर्म थकी समकाले चतुरविधपणों न हुवै । ते माटै कदाचित कृतयुग्म जावत कल्योज । इम जाव वैमानिक लगै ।

७५. सरीरपदेसे पडुच्च सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे । एवं जाव वेमाणिए । (श. २५।१२२)

वा.—'सरीरपएसे पडुच्चे' त्यादि, औदारिकादिशरीरप्रदेशानामनन्तत्वेऽपि संयोगवियोगधर्म्मत्वादयुगपच्चतुर्विधता स्यात् । (वृ. प. ८७५)

७६. एक सिद्ध भगवंतजी ! रे, प्रदेश आश्रयी तेह ।
स्यूं कृतयुग्म कहीजियै रे, जाव कल्योज कहेह ?

७७. जिन भाखै कडजुम्म हुवै रे, शेष रूप नहिं तीन ।
असंख प्रदेशपणां थकी रे, अवस्थित थी चीन ।।

७८. बहु वच जीवा भदंत जी ! रे, प्रदेश आश्रयी तेह ।
स्यूं कडजुम्मा कहीजियै रे ? इत्यादि प्रश्न पूछेह ।।

७६. सिद्धे णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मे—पुच्छा ।

७७. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे । (श. २५।१२३)

७८. जीवा णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मा—पुच्छा ।

***लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७९. जिन भाखै बहु जीव नां रे, प्रदेश आश्रयी तेह ।
ओघ सामान्य थकी वली रे, विधान थी पिण जेह ।।

८०. बिहुं भेदे करिनैं तिके रे, कडजुम्म कहिवाय ।
नो तेयोगा नो द्वापरा रे, कलियोगा नहिं पाय ।।

वा०—सामान्य थकी पिण विधान भेद-प्रकारे करी ते बिहुं भेदे करी कृतयुग्म हुवै समस्त जीव नां प्रदेश नैं अनंतपणां थकी, तथा अवस्थितपणां थकी। तथा एक-एक जीव नां प्रदेश नैं असंख्यातपणां थकी च्यार शेषईज हुवै ते माटै नहीं त्र्योज, नहीं द्वापरयुग्म, नहीं कल्योज ।

८१. शरीर नां प्रदेश आश्रयी रे, ओघ सामान्य थी जोग ।
कदाचित कडजुम्मा हुवै रे, जाव कदा कलियोग ।।

वा०—शरीर प्रदेश प्रतै आश्रयी नैं सामान्य थकी सर्व जीव नां शरीर प्रदेश नैं समकाले चतुरविधपणैं छतै पिण तेहनैं संघात भेदभावे करी अनवस्थितपणां थकी कदाचित कृतयुग्म जावत कदाचित कलियोगा हुवै ।

८२. विधानादेश करी वली रे, कडजुम्मा पिण होय ।
जाव कल्योगा पिण हुवै रे, भेद प्रकारे जोय ।।

वा०—विधानादेशे करी एक-एक जीव-शरीर नां प्रदेश गणना नैं विषे प्रदेश नों चातुरविधपणों हुवै जे भणी कोइएक जीव-शरीर नैं कृतयुग्मपणों हुवै, कोइएक जीव-शरीर नैं त्र्योज प्रदेशपणों हुवै, कोइएक जीव-शरीर नैं द्वापुरयुग्म प्रदेशपणों हुवै, कोइएक जीव-शरीर नैं कल्योज प्रदेशपणों हुवै । अवगाहना नां इम विचित्रपणां थकी समकाले च्यारूं बोल हुवै ।

८३. नेरइया पिण इमहीज छै रे, एवं यावत जान ।
कहिवुं छै वैमानिका रे, बहु वच प्रश्ने मान ।।

८४. बहु वच सिद्ध भदंत जी ! रे, स्यूं कडजुम्मा होय ?
इत्यादि प्रश्न पूछ्यां छते रे, हिव जिन उत्तर जोय ।।

८५. ओघ सामान्य थकी वली रे, विधान थी पिण चीन ।
कडजुम्माज हुवै तिके रे, शेष नहीं पद तीन ।।

जीव आदि छब्बीस पदों की क्षेत्र सम्बन्धी पृच्छा कृतयुग्मादि के सन्दर्भ में

८६. इक वच जीव भदंतजी ! रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश ?
अवगाह इत्यादि पूछियां रे, उत्तर देवै जिनेश ।।

८७. कदा कृतयुग्म प्रदेश नैं रे, अवगाहै छै ताह ।
जाव कल्योग प्रदेश नैं रे, कदाचित अवगाह ।।

सोरठा

८८. तनु ओदारिक आद, तसु विचित्र अवगाह थकी ।
कदा कडजुम्म नभ वाद, जाव कदा कलियोग नभ ।।

८९. *एवं जावत जाणवुं रे, इक वच सिद्ध लगेह ।
अथ बहुवचने आखियै रे, ए षटवीस पदेह ।।

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

७९. गोयमा ! जीवपदेसे पडुच्च ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि

८०. कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा ।

वा.—'ओघादेसेणवि विहाणादेसेणवि कडजुम्म' त्ति समस्तजीवानां प्रदेशा अनन्तत्वादवस्थितत्वाच्च एकैकस्य जीवस्य प्रदेशा असङ्ख्यातत्वादवस्थितत्वाच्च चतुरग्रा एव, (वृ. प. ८७५)

८१. सरीरपदेसे पडुच्च ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

वा.—शरीरप्रदेशापेक्षया त्वोघादेशेन सर्वजीवशरीरप्रदेशानामयुगपच्चातुर्विध्यमनन्तत्वेऽपि तेषां सङ्घातभेदभावेनानवस्थितत्वात्, (वृ. प. ८७५)

८२. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि ।

वा.—'विहाणादेसेणं कडजुम्मावी' त्यादि, विधानादेशेनैकैकजीवशरीरस्य प्रदेशगणनायां युगपच्चातुर्विध्यं भवति, यतः कस्यापि जीवशरीरस्य कृतयुग्मप्रदेशता कस्यापि त्र्योजप्रदेशतेत्येवमादीति । (वृ. प. ८७५)

८३. एवं नेरइया वि । एवं जाव वेमाणिया । (श. २५।१२४)

८४. सिद्धा णं भंते — पुच्छा ।
गोयमा !

८५. ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा । (श. २५।१२५)

८६. जीवे णं भंते ! किं कडजुम्मपदेसोगाढे—पुच्छा ।

८७. गोयमा ! सिय कडजुम्मपदेसोगाढे जाव सिय कलियोगपदेसोगाढे ।

८८. औदारिकादिशरीराणां विचित्रावगाहनत्वाच्चतुरग्रादित्वमस्तीत्यत एवाह—'सिय कडजुम्मे' त्यादि । (वृ. प. ८७५)

८९. एवं जाव सिद्धे । (श. २५।१२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९०. बहुवच जीवा भदंत जी ! रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश ।
ओगाढा हुवै छै तिके रे ? इत्यादि प्रश्न पूछेश ।।

९१. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, कडजुम्म प्रदेश ओगाह ।
नो तेओगा नो द्वापरा रे, कलियोगा नहिं पाय ।।

वा०- सामान्य प्रकारे करी कृतयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै समस्त जीवे अवगाढ प्रदेश नैं असंख्यातपणां थकी तथा अवस्थितपणां थकी च्यार शेषहीज हुवै ते माटै नहीं त्र्योज, नहीं द्वापर, नहीं कलियोग ।

९२. विधानादेश करी वली रे, कडजुम्म प्रदेश ओगाह ।
जाव कल्योज प्रदेश नैं रे, ओगाढा पिण थाह ।।

वा०—विधानादेशे करी तेहनीं अवगाहना विचित्रपणां थकी च्यारेइ भेद हुवै, तेहिज कहै छै—कृतयुग्म प्रदेशावगाढ पिण हुवै इम यावत कल्योज प्रदेशावगाढ पिण हुवै ।

९३. बहुवचने प्रभु ! नेरइया रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश ।
ओगाढा कहियै तसु रे, इत्यादि प्रश्न पूछेश ?

९४. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे,
कदा कडजुम्म प्रदेश ओगाहि ।
जाव कल्योग प्रदेश नैं रे, कदा ओगावै ताहि ।।

वा०—सामान्यपणैं विचित्र परिणामपणैं करी विचित्र शरीर प्रमाणे करी, विचित्र अवगाह प्रदेश प्रमाणपणैं करी, समकाल नहीं च्यारेइ । कदाचित कृतयुग्म प्रदेशावगाढ इम यावत कल्योज प्रदेशावगाढ पिण हुवै ।

९५. विधानादेश करी वली रे, कडजुम्म प्रदेश ओगाहि ।
जाव कल्योग प्रदेश नैं रे, अवगाहै छै ताहि ।।

वा०—विधान थकी युगपत समकाले च्यारूंइ हुवै ते माटै कृतयुग्मादिक प्रदेशावगाढ पिण हुवै ।

९६. इम एगिंदिय वर्ज नैं रे, जाव वेमाणिया माण ।
सिद्धा अनैं एगिंदिया रे, बहु वच जीव ज्यूं जाण ।।

सोरठा

९७. सिद्धा एगिंदियाज, जिम जीवा तिम जाणवा ।
ओघ सामान्य समाज, कृतयुग्माज ओगाढ ह्वै ।।

९८. विधान थी सुविचार, युगपत चतुर्विधा अपि ।
पूर्ववत अवधार, युक्ति उभय नीं जाणवी ।।

जीव आदि छब्बीस पदों की पृच्छा कृतयुग्म आदि समय-स्थिति के सन्दर्भ में

९९. *इक वच जीव भदंत जी ! रे,
स्यूं कडजुम्म समय स्थितिवंत ?
इत्यादि प्रश्न पूछचे छते रे, श्री जिन उत्तर तंत ।।

९०. जीवा णं भंते ! किं कडजुम्मपदेसोगाढा—पुच्छा ।

९१. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

वा.—समस्तजीवैरवगाढानां प्रदेशानामसङ्ख्यातत्वादवस्थितत्वाच्चतुरग्रता एवेत्योघादेशेन कृतयुग्मप्रदेशावगाढा:, (वृ. प. ८७५)

९२. विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि जाव कलियोगपदेसोगाढा वि । (श. २५।१२७)

वा.—विधानादेशतस्तु विचित्रत्वादवगाहनाया युगपच्चतुर्विधास्ते, (वृ. प. ८७५)

९३. नेरइयाणं—पुच्छा ।

९४. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मपदेसोगाढा जाव सिय कलियोगपदेसोगाढा,

वा.—नारका: पुनरोघतो विचित्रपरिणामत्वेन विचित्रशरीरप्रमाणत्वेन विचित्रावगाहप्रदेशप्रमाणत्वादयौगपद्येन चतुर्विधा अपि, (वृ. प. ८७५)

९५. विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि जाव कलियोगपदेसोगाढा वि ।

वा.—विधानतस्तु विचित्रावगाहनत्वादेकदाऽपि चतुर्विधास्ते भवन्ति, (वृ. प. ८७५)

९६. एवं 'एगिंदिय-सिद्धवज्जा सव्वे वि' । सिद्धा एगिंदिया य जहा जीवा । (श० २५।१२८)

९७. सिद्धा एकेन्द्रियाश्च यथा जीवास्तथा वाच्या इत्यर्थः, ते चौघतः कृतयुग्मा एव । (वृ. प. ८७५)

९८. विधानतस्तु युगपच्चतुर्विधा अपि, युक्तिस्तूभयत्रापि प्राग्वत् । (वृ. प. ८७५)

९९. जीवे णं भंते ! कडजुम्मसमयट्ठितीए—पुच्छा । गोयमा !

***लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१००. कडजुम्म समय स्थितिक तिको रे,
शेष रूप नहिं तीन ।
न्याय कहूं छूं तेहनों रे, सुणजो चित लहलीन ।।

१००. कडजुम्मसमयट्ठितीए, नो तेयोगसमयट्ठितीए, नो दावरजुम्मसमयट्ठितीए, नो कलियोगसमयट्ठितीए। (श. २५।१२९)

सोरठा

१०१. भूत अनागत मांहि, वर्त्तमान अद्धा विषे ।
जीवईज छै ताहि, ते माटै इम जाणवुं ।।
१०२. सर्व काल नें हेर, अनंत समयात्मकपणां थकी ।
अवस्थित थी फेर, कडजुम्म समय स्थितिक कह्युं ।।

वा० — कृतयुग्म समय स्थितिक हुवै जे माटै अतीत, अनागत, वर्त्तमान काल नें विषे जीव छै ते माटै सर्व काल नें अनंत समयात्मकपणां थकी शेष तीन नहीं, तेहिज कहै छै—नहीं त्र्योज, नहीं द्वापुरयुग्म, नहीं कल्योग समय स्थितिक ।

१०१,१०२. तत्रातीतानागतवर्त्तमानकालेषु जीवोऽस्तीति सर्वाद्धाया अनन्तसमयात्मकत्वादवस्थितत्वाच्चासौ कृतयुग्मसमयस्थितिक एव, (वृ. प. ८७५,८७६)

१०३. *इक वच स्यूं प्रभु ! नेरइयो रे,
कडजुम्म समय स्थितिवंत ?
इत्यादि प्रश्न पूछयां थकां रे, तब भाखै भगवंत ।।

१०३. नेरइए णं भंते !—पुच्छा ।
गोयमा !

१०४. कडजुम्म समय स्थितिक कदा रे, जाव कदा कलियोग ।
एवं जाव वेमानिया रे, सिद्ध जीव जिम जोग ।।

१०४. सिय कडजुम्मसमयट्ठितीए जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीए। एवं जाव वेमाणिए। सिद्धे जहा जीवे। (श. २५।१३०)

सोरठा

१०५. नारक आदि संपेख, विचित्र समय स्थितिक थकी ।
कदा च्यार रहै शेष, इम कदा तीन बे इक रहै ।।

१०५. नारकादिस्तु विचित्रसमयस्थिकत्वात्कदाचिच्चतुरग्रः कदाचिदन्यत्रितयवर्त्तीति । (वृ. प. ८७६)

१०६. *स्यूं प्रभु ! बहु वच जीवड़ा रे,
कडजुम्म समय स्थितिवंत ?
इत्यादि प्रश्न पूछिया रे, श्री गोतम गुणवंत ।।

१०६. जीवा णं भंते ! पुच्छा ।

१०७. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, विधान थी पिण चीन ।
कृतयुग्म समय स्थितिका रे, शेष रूप नहिं तीन ।।

१०७. गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मसमयट्ठितीया, नो तेयोगसमयट्ठितीया, नो दावरजुम्मसमयट्ठितीया, नो कलियोगसमयट्ठितीया। (श २५।१३१)

सोरठा

१०८. बहु वच जीवा जाण, ओघ विधान थकी वली ।
च्यार शेष पहिछाण, समय स्थितिकाईज ह्वै ।।
१०९. अनादि अनंतपणेह, अनंत समय स्थितिक थकी ।
जीवां नें करि लेह, नहीं त्र्योज समयादि स्थिति ।।

१०८. बहुत्वे जीवा ओघतो विधानतश्च चतुरग्रसमयस्थितिका एव (वृ. प. ८७६)
१०९. अनाद्यनन्तत्वेनानन्तसमयस्थितिकत्वात्तेषां, (वृ. प. ८७६)

११०. *बहु वच नारक पूछियां रे,
ओघ सामान्य थी जोग ।
कदा कडजुम्म समय स्थितिका रे,
जाव कदा कलियोग ।।

११०. नेरइयाणं — पुच्छा ।
गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मसमयट्ठितीया जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीया वि ।

सोरठा

१११. नारक आदि विचार, विचित्र समय स्थितिक थकी ।
ते सर्व नारक नीं धार, स्थिति समय मिलवा विषे ।।

१११. नारकादयः पुनर्विचित्रसमयस्थितिकाः, तेषां च सर्वेषां स्थितिसमयमीलने (वृ. प. ८७६)

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११२. चिहुं-चिहुं अपहारेह, ओघ सामान्य थकी वली ।
कदाचित हुवै तेह, कडजुम्म समयस्थितिका ।।

११३. कदा समयस्थिति त्र्योज, कदाचि द्वापर समयस्थिति ।
समयस्थितिक कल्योज, कदाचित ह्वै नेरइया ।।

११२,११३. चतुष्कापहारे चौघादेशेन स्यात् कृतयुग्म-समयस्थितिका इत्यादि, (वृ. प. ८७६)

११४. *विधान भेद करी वली रे, समयस्थिति कडजुम्म ।
जाव कल्योग समय तणी रे, स्थितिक पिण अवगम्म ।।

११४. विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयट्ठितीया वि जाव कलियोगसमयट्ठितीया वि ।

सोरठा

११५. विधान भेद करेह, गिणवै इक-इक नारका ।
चतुर्विधा पिण लेह, युगपत समकाले तिके ।।

११५ विधानतस्तु युगपच्चतुर्विधा अपि । (वृ. प. ८७६)

११६. *एवं जावत जाणवुं रे, बहु वच वैमानीक ।
बहु वच जीव तणी परै रे, सिद्धा सखर सधीक ।।

११६. एवं जाव वेमाणिया ।
सिद्धा जहा जीवा । (श. २५।१३२)

सोरठा

११७. अथ आगल अधिकार, भाव थकी जीवादि नों ।
तिमहिज प्रश्न उदार, इक वच बहुवचने करी ।।

११७. अथ भावतो जीवादि तथैव प्ररूप्यते— (वृ. प. ८७६)

जीव आदि छब्बीस पदों की वर्णादि सम्बन्धी पृच्छा कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

११८. *इक वच जीव भदंत जी ! रे, कृष्ण वर्ण पर्याय ।
तिण करि स्यूं कडजुम्म छै रे? इत्यादि प्रश्न सुहाय ।।

११८. जीवे णं भंते ! कालावण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मे —पुच्छा ।

११९. जिन कहै जीव प्रदेश नें रे, आश्रयी नें अवलोय ।
कडजुम्म नांहि कहीजियै रे, जाव कल्योज न कोय ।।

११९. गोयमा ! जीवपदेसे पडुच्च नो कडजुम्मे जाव नो कलियोगे ।

सोरठा

१२०. जीव तणां प्रदेश, अमूर्त्तिपणां थकी तिके ।
कृष्णादि सुविशेष, वर्ण तणां पजवा नथी ।।

१२१. कडजुम्मादि रूप, क्यारूंइ कहियै नथी ।
जीव प्रदेश तद्रूप, वर्णादिके रहित छै ।।

१२०,१२१. 'जीवपएसे पडुच्च णो कडजुम्म' त्ति अमूर्त्तत्वाज्जीवप्रदेशानां न कालादिवर्णपर्यवानाश्रित्य कृतयुग्मादिव्यपदेशोऽस्ति, (वृ. प. ८७६)

१२२. *शरीर प्रदेश आश्रयी रे, कदा कडजुम्मे होय ।
जाव कल्योज हुवै कदा रे, इम जाव वैमानिक जोय ।।

१२२. सरीरपदेसे पडुच्च सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे । एवं जाव वेमाणिए ।

सोरठा

१२३. शरीर वर्ण पेक्षाय, अनुक्रम चउविध पिण हुवै ।
ते माटै कहिवाय, कदाचि कृतयुग्मादि चिहुं ।।

१२३. शरीरवर्णापेक्षया तु क्रमेण चतुर्विधोऽपि स्याद् अत एवाह — (वृ. प. ८७६)

१२४. *सिद्ध प्रते नहिं पूछवा रे, सिद्ध वर्णादि रहीत ।
इक वचने ए आखिया रे, अथ बहुवचने वदीत ।।

१२४. सिद्धो ण चेव पुच्छिज्जति । (श. २५।१३३)

१२५. बहु वच जीव भदंत जी ! रे, कृष्ण वर्ण पर्याय ।
स्यूं कडजुम्मा ? पूछा कियां रे, हिव भाखै जिनराय ।।

१२५. जीवा णं भंते ! कालावण्णपज्जवेहिं—पुच्छा ।
गोयमा !

१२६. जीव प्रदेश नें आश्रयी रे, ओघ विधान थी सोय ।
कडजुम्मा न कहीजियै रे, जाव कल्योज न होय ।।

१२६. जीवपदेसे पडुच्च ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि नो कडजुम्मा जाव नो कलियोगा ।

---

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२७. शरीर प्रदेश नें आश्रयी रे, ओघ सामान्य थी जोग।
कदाचि कडजुम्मा हुवै रे, जाव कदा कलियोग।।

१२८. विधान भेद करी वली रे, कडजुम्मा पिण होय।
जाव कल्योगा पिण हुवै रे, इम जाव वेमाणिया जोय।।

१२९. इम नील वर्ण पजवे अपि रे, भणिवुं दंडक तास।
इक वच बहु वचने करी रे, इम यावत लुक्ख फास।।

१२७. सरीरपदेसे पडुच्च ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

१२८. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि। एवं जाव वेमाणिया।

१२९. एवं नीलावण्णपज्जवेहिं दंडओ भाणियव्वो एगत्त-पुहत्तेणं। एवं जाव लुक्खफासपज्जवेहिं। (श. २५।१३४)

जीव आदि छब्बीस पदों की बारह उपयोग सम्बन्धी पृच्छा कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

१३०. इक वचने हे भदंत जी ! रे, आभिनिबोधि संवादि।
ज्ञान तणें पजवे करी रे, स्यूं कडजुम्मे आदि?

१३१. जिन कहै कडजुम्मे कदा रे, जाव कदा कलियोग।
इम एगिंदिय वर्ज नें रे, जाव वैमानिक जोग।।

१३०. जीवे णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे—पुच्छा।

१३१. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे।

दूहा

१३२. आभिनिबोधिक ज्ञान नें, आवरण क्षयोपशम।
भेदे करी विशेष जे, बहु प्रकार अवगम।।

१३३. निर्विभाग पलिच्छेद जे, जिण पर्याय नां ताय।
दूजो भाग हुवै नथी, ते मतिज्ञान पर्याय।।

१३४. तेहनें अनंतपणें वलि, क्षयोपशम नें ताम।
विचित्रपणें करी वली, अनवस्थित परिणाम।।

१३५. तेहथी अयुगपदपणें, जीव च्यार त्रिण दोय।
एक शेष ह्वै इम कह्यूं, पिण समकाल न कोय।।

१३६. *एकेंद्रिय वर्जी करी रे, इम दंडक उगणीस।
एकेंद्रिय में ज्ञान नहीं रे, तिणसुं वर्जी ईस।।

१३७. बहु वच जीव भदंत जी ! रे, आभिनिबोधिक ज्ञान।
तेहनें पर्याये करी रे, स्यूं कडजुम्मादि जान?

१३८. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, कदाचित कडजुम्म।
जाव कल्योज ह्वै कदा रे, न्याय पूर्ववत गम्म।।

१३२. आभिनिबोधिकज्ञानस्यावरणक्षयोपशमभेदेन ये विशेषाः (वृ. प. ८७६)

१३३. तस्यैव च ये निर्विभागपलिच्छेदास्ते आभिनि-बोधिकज्ञानपर्यवास्तैः, (वृ. प. ८७६)

२३४. तेषां चानन्तत्वेऽपि क्षयोपशमस्य विचित्रत्वेनान-वस्थितपरिणामत्वाद् (वृ. प. ८७६)

१३५. अयौगपद्येन जीवश्चतुरग्रादिः स्यात् (वृ. प. ८७६)

१३६. एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिए। (श. २५।१३५)

१३७. जीवा णं भंते ! आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं—पुच्छा।

१३८. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

सोरठा

१३९. समस्त नों मतिज्ञान, तसु पजवा भेला करी।
चिहुं अपहारे जान, अयुगपत कडजुम्म प्रमुख।।

१४०. ओघ थकी ते होय, क्षयोपशम नें विचित्र थी।
तसु पजवा नों जोय, अनवस्थित भावे करी।।

१४१. *विधानादेश करी वली रे, कडजुम्मा पिण होय।
जाव कल्योगा पिण हुवै रे, समकाले चिहुं जोय।।

१३९. 'जीवा ण' मित्यादि, बहुत्वे समस्तानामाभिनि-बोधिकज्ञानपर्यवाणां मीलने चतुष्कापहारे चायुगपच्चतुरग्रादित्वम् (वृ. प. ८७६)

१४०. ओघतः स्याद्विचित्रत्वेन क्षयोपशमस्य तत्पर्याया-मनवस्थितत्वात् (वृ. प. ८७६,८७७)

१४१. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि।

सोरठा

१४२. विधान थी एकादि, च्यारूं पिण तसु भेद ह्वै।
ते माटै संवादि, सम काले च्यारूं कह्या।।

१४२. विधानतस्त्वेकदैव चत्वारोऽपि तद्भेदाः स्युरिति, (वृ. प. ८७७)

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४३. *इम एकेंद्रिय वर्जे नैं रे, जाव वेमानिया अंत।
इमहिज जे श्रुत ज्ञान नां रे, पजवे करी पिण हुंत।।

१४४. अवधिज्ञान पजवे करी रे, इमहिज कहिवो सोय।
नवरं विकलेंद्रिय मझे रे, अवधिज्ञान नहिं होय।।

१४५. मनपज्जव पिण इमज छै रे, नवरं विशेषज एह।
जीव तथा मनुष्य में हुवै रे, शेष दंडक नहीं लेह।।

१४६. इक वच जीव भदंत जी ! रे, केवलज्ञान नां जाण।
पर्याये करि कडजुम्म हुवै रे? इत्यादि प्रश्न पिछाण।।

१४७. जिन भाखै कडजुम्म हुवै रे, शेष नहीं छै तीन।
इमहिज मनुष्य संघात ही रे, एवं सिद्ध पिण चीन।।

सोरठा

१४८. केवलज्ञान पर्याय, जीव मनुष्य नैं सिद्ध विषे।
च्यार शेष रहै ताय, तिणसूं कडजुम्मईज ह्वै।।

१४९. अनंत पज्जव थी ताय, वलि अवस्थित भाव थी।
एहनां पिण पर्याय, अविभाग पलिच्छेद फुन।।

१५०. केवल तणों कहीज, तरतम भेद विशेष नहीं।
इकविधपणों लहीज, तिणसूं कडजुम्म ईज इक।।

१५१. *बहु वच जीव भदंत जी रे, केवलज्ञान तणांह।
पज्जव करी कडजुम्म हुवै रे, इत्यादि पूछा आह।।

१५२. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे,
विधान थी पिण चीन।
कडजुम्माज हुवै तिके रे, शेष रूप नहिं तीन।।

१५३. मणुसा पिण इमहिज हुवै रे, सिद्धा पिण इम होय।
केवल पज्जवे करी रे, बहु वच मणु सिद्ध जोय।।

१५४. एक वच जीव भदंत जी ! रे, मति अज्ञान नां न्हाल।
पज्जव करी कडजुम्म हुवै रे, इत्यादि प्रश्न विशाल?

१५५. आभिनिबोधिक ज्ञान नां रे,
पज्जव करी जिम ख्यात।
तिमहिज बे दंडक इहां रे, इक बहुवचने थात।।

१५६. इम श्रुत अज्ञान पज्जव करी रे, एम विभंग पर्याय।
चक्षु अचक्षु अवधि वली रे, दर्शन पज्जव इम थाय।।

१५७. नवरं इतरो विशेष छै रे, जेहनैं जे छै ताम।
तेहनें तेह कहीजियै रे, जिन वच परम आराम।।

१५८. केवलदर्शन पजवे करी रे, जिम केवल वर नाण।
पर्याये करि आखियो रे, तिमहिज कहिवुं पिछाण।।

१५९. देश दोयसौ चोपन तणों रे,
चिउंसौ गुणचालीसमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे,
'जय-जश' हरष विशाल।।

*लय : अनंत नाम जिन चवदमा रे

१४३. एवं एगिंदियवज्जं जाव वेमाणिया। एवं सुयनाण-पज्जवेहि वि।

१४४. ओहिनाणपज्जवेहि वि एवं चेव, नवरं—विगलिंदियाणं नत्थि ओहिनाणं।

१४५. मणपज्जवनाणं पि एवं चेव, नवरं—जीवाणं मणुस्साण य, सेसाणं नत्थि। (श. २५।१३६)

१४६. जीवे णं भंते ! केवलनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे—पुच्छा।

१४७. गोयमा ! कडजुम्मे, नो तेयोगे नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे। एवं मणुस्से वि। एवं सिद्धे वि।
(श. २५।१३७)

१४८. केवलज्ञानपर्यवपक्षे च सर्वत्र चतुरग्रत्वमेव वाच्यं,
(वृ. प. ८७७)

१४९,१५०. तस्यानन्तपर्यायत्वादवस्थितत्वाच्च, एतस्य च पर्याया अविभागपलिच्छेदरूपा एवावसेया न तु तद्विशेषा एकविधत्वात्तस्येति। (वृ. प. ८७७)

१५१. जीवा णं भंते ! केवलनाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मा—पुच्छा।

१५२. गोयमा ! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा।

१५३. एवं मणुस्सा वि। एवं सिद्धा वि।
(श. २५।१३८)

१५४. जीवे णं भंते ! मइअण्णाणपज्जवेहिं किं कडजुम्मे?

१५५. जहा आभिणिबोहियनाणपज्जवेहिं तहेव दो दंडगा।
'दो दंडग' त्ति एकत्वबहुत्वकृतौ द्वौ दण्डकावीति।
(वृ. प. ८७७)

१५६. एवं सुयअण्णाणपज्जवेहि वि। एवं विभंगनाण-पज्जवेहि वि। चक्खुदंसण-अचक्खुदंसण-ओहिदंसण-पज्जवेहि वि एवं चेव,

१५७. नवरं—जस्स जं अत्थि तं भाणियव्वं।

१५८. केवलदंसणपज्जवेहिं जहा केवलनाणपज्जवेहिं।
(श. २५।१३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४४०

दूहा

१. शरीर प्रदेश आश्रयी, पूर्वे कह्यं विचार।
तनु प्रस्ताव थकी हिवै, शरीर नुं अधिकार ।।

१. पूर्वं 'सरीरपएसे पडुच्चे' त्युक्तमिति शरीरप्रस्तावाच्छरीराणि प्ररूपयन्नाह— (वृ. प. ८७७)

शरीर पद

२. हे प्रभु ! शरीर केतला ? जिन कहै शरीर पंच ।
धुर ओदारिक जाणवुं, जाव कार्मण संच ।।

२. कति णं भंते ! सरीरगा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंच सरीरगा पण्णत्ता, तं जहा—
ओरालिए जाव कम्मए ।

३. एम पन्नवणा सूत्र नों, शरीर पद संपेख ।
निरवशेष भणवो सहु, द्वादशमो पद देख ।।

३. एत्थ सरीरगपदं निरवसेसं भाणियव्वं जहा पण्णवणाए (पद १२)। (श. २५।१४०)

४. शरीरवंत हुवै वलि, चल स्वभाव जे जीव ।
जीवां नें चलत्वादि हिव, सामान्येन कहीव ।।

४. शरीरवन्तश्च जीवाश्चलस्वभावा भवन्तीति सामान्येन जीवानां चलत्वादि पृच्छन्नाह— (वृ. प. ८७७)

जीवों की सकम्पता निष्कम्पता

*प्रवर प्रश्नोत्तर सांभलो ।। (ध्रुपदं)

५. हे प्रभुजी ! जीवा किसूं, सेया ते कंपै छै सोय कै ?
अथवा निरेया अकंप छै ?
जिन भाखै दोनूंइ होय कै ।।

५. जीवा णं भंते ! किं सेया ? निरेया ?
गोयमा ! जीवा सेया वि, निरेया वि । (श. २५।१४१)
'सेय' त्ति सहैजेन चलनेन सैजाः 'निरेय' त्ति निश्चलनाः। (वृ. प. ८७७)

६. किण अर्थे भगवंत जी !
इम कहियै छै जे बहु जीव कै ।
सेया कंपै पिण अछै,
निश्चल पिण बहु जीव अतीव कै ?

६. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—जीवा सेया वि, निरेया वि ?

७. जिन भाखै सुण गोयमा !
जीवा दोय प्रकार सुजोय कै ।
संसार-समावन्नगा वली,
असंसार-समापन्न सोय कै ।।

७. गोयमा ! जीवा दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—'संसारसमावण्णगा य असंसारसमावण्णगा य ।

८. असंसार-समापन्नगा सिद्धा,
ते सिद्ध दोय प्रकार संपेख कै ।
प्रथम समय नां अनंतर,
द्वितीयादि समय परंपर देख कै ।।

८. तत्थ णं जे ते असंसारसमावण्णगा ते णं सिद्धा । सिद्धा णं दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अणंतरसिद्धा य, परंपरसिद्धा य ।

९. तिहां सिद्ध परंपर छै तिके,
थया सिद्ध थयां नै समय बे आदि कै ।
तेह निरेजा अकंप छै,
वर्त्तमान अनागत अचल सवादि कै ।।

९. तत्थ णं जे ते परंपरसिद्धा ते णं निरेया ।
परम्परसिद्धास्तु सिद्धत्वस्य द्वयादिसमयवृत्तयः, (वृ. प. ८७७)

१०. सिद्ध अनंतर छै तिके,
थयो सिद्ध थयां नें समयो एक कै ।
ए प्रथम समय नां ऊपनां,
सेया सकंप तिके सुविशेष कै ।।

१०. तत्थ णं जे ते अणंतरसिद्धा ते णं सेया । (श. २५।१४२)
ये सिद्धत्वस्य प्रथमसमये वर्त्तन्ते, ते च सैजाः, (वृ. प. ८७७)

---

*लय : हूं बलिहारी जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

११. गमन समय नों जाण, फुन सिद्ध प्राप्ति समय तणों ।
एकपणां थी माण, तिणसूं सकंप धुर समय ।।

१२. *तेह सिद्ध भगवंतजी ! स्यूं देश थकी कंपै छै ताम कै ?
कै सर्वथी कंपै अछै ? तसु उत्तर देवै जिन स्वाम कै ।।

१३ देश थकी कंपै नहीं, सर्व थकी कंपेज कहेय कै ।
सर्वात्म करि सिद्ध विषे,
गमन थकी सिद्ध न सर्वेय कै ।।

१४. संसार-समापन्नगा तिके,
दोय प्रकारे दाख्यां ताम कै ।
सेलेशी प्रतिपन्नका, असेलेशी-पडिवन्नगा आम कै ।।

सोरठा

१५. रूंध्या योग तमाम, सेलेशी गुण[1] चवदमें ।
योग न रूंध्या आम, असेलेशी कहियै तिके ।।

१६. *सेलेशी-प्रतिपन्नका, तेह निरेजा निश्चल होय कै ।
असेलेशी-पडिवन्नगा, सेया तेह सकंपक होय कै ।।

१७. ते प्रभु ! कंपै देश थी, अथवा सर्व थको कंपेह कै ?
जिन कहै कंपै देश थी, सर्व थकी पिण कंपै जेह कै ।।

सोरठा

१८. गति इलिका करेह, उत्पत्ति स्थानक नैं विषे ।
जातो थकोज जेह, देश थकी कंपै जिको ।।

१९. पूर्व शरीर मांय, देश रह्यो छै तेहनी ।
वंछा कर कहिवाय, निश्चल देश ग्रह्यं तसु ।।

२०. गेंदुक गति करि जाय, सर्व थकी कंपै तिको ।
सर्वात्म करि ताय, गमन प्रवृत्तपणां थकी ।।

२१. *तिण अर्थे इम आखियै, जाव निरेजा निश्चल जेह कै ।
जीवा सकंप अकंप है, तेहनों न्याय कह्यो छै एह कै ।।

२२. नेरइया हे भगवंत जी ! देश थकी स्यूं ते कंपाय कै ।
अथवा कंपै सर्व थी ? जिन भाखै दोनूं कहाय कै ।।

२३. किण अर्थे दोनूं प्रभु ? जिन कहै नारक दोय प्रकार कै ।
विग्रहगति-समापन्नका, वलि अविग्रह-गतिका धार कै ।।

२४. तिहां विग्रहगति-समापन्न ते, सर्व थकी कंपै छै तेह कै ।
सर्व आत्म करिनैं जिको, उत्पत्ति स्थानक जातो जेह कै ।।

---

११. सिद्धिगमनसमयस्य सिद्धत्वप्राप्तिसमयस्य चैकत्वादिति, (वृ. प. ८७७)

१२. ते णं भंते ! किं देसेया ? सव्वेया ?
गोयमा ! 'देसेय' त्ति देशैजाः - देशतश्चलाः 'सव्वेय' त्ति सर्वैजाः—सर्वतश्चलाः। (वृ. प. ८७७)
नो देसेया, सव्वेया ।

१३. 'नो देसेया सव्वेय' त्ति सिद्धानां सर्वात्मना सिद्धौ गमनात्सर्वैजत्वमेव, (वृ. प. ८७७)

१४. तत्थ णं जे ते संसारसमावण्णगा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सेलेसिपडिवण्णगा य, असेलेसिपडिवण्णगा य।

१६. तत्थ णं जे ते सेलेसिपडिवण्णगा ते णं निरेया, तत्थ णं जे ते असेलेसीपडिवण्णगा ते णं सेया ।
(श. २५।१४३)

१७. ते णं भंते ! किं देसेया ? सव्वेया ?
गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि ।

१८,१९. इलिकागत्या उत्पत्तिस्थानं गच्छंतो देशैजाः प्राक्तनशरीरस्थस्य देशस्य विवक्षया निश्चलत्वात्, (वृ. प. ८७७)

२०. गेन्दुकगत्या तु गच्छन्तः सर्वैजाः, सर्वात्मना तेषां गमनप्रवृत्तत्वादिति । (वृ. प. ८७७)

२१. से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ - जीवा सेया वि, निरेया वि । (श. २५।१४४)

२२. नेरइया णं भंते ! किं देसेया ? सव्वेया ?
गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि । (श. २५।१४५)

२३. से केणट्ठेणं जाव सव्वेया वि ?
गोयमा ! नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—विग्गहगतिसमावण्णगा य, अविग्गहगतिसमावण्णगा य ।

२४. तत्थ णं जे ते विग्गहगतिसमावण्णगा ते णं सव्वेया,

---

*लय : हूं बलिहारी जादवां

१. गुणस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२५. जेह मरी नें ताय, विग्रह गति करिनें जिकै ।
उत्पत्ति स्थानक जाय, विग्रहगति-समापन्न ते ।।

२५. 'विग्गहग[illegible]समावन्नग' त्ति विग्रहगतिसमापन्नका ये मृत्वा विग्रहगत्योत्पत्तिस्थानं गच्छन्ति ।
(वृ. प. ८७७)

२६. *तिहां अविग्रहगति-समापन्नका, ते तो देश थकी कंपाय कै ।
तास न्याय कह्यो वृत्ति में, सांभलजो भवियण चित ल्याय कै ।।

२६. तत्थ णं जे ते अविग्गहगतिसमावण्णगा ते णं देसेया ।

सोरठा

२७. विग्रह गति नहिं होय, अविग्रहगतिका तिके ।
ऋजुगतिका ते जोय, अवस्थितिका पिण वली ।।

२७. 'अविग्गहगईसमावन्नग' त्ति अविग्रहतिसमापन्नका:—विग्रहगतिनिषेधादृजुगतिका अवस्थिताश्च,
(वृ. प. ८७७)

२८. तिहां विग्रह-गति समापन्न, गेंदुक गति करिकै गमन ।
एम करीनें जन्न, सर्व थकी कंपमान ते ।।

२८. तत्र विग्रहगतिसमापन्ना गेन्दुकगत्या गच्छन्तीति-कृत्वा सर्वैजा:, (वृ. प. ८७७)

२९. अविग्रह गति समापन्न, अवस्थितिका हीज जे ।
वंछया इहां सुजन्न, एहवूं संभावियै अछै ।।

२९. अविग्रहगतिसमापन्नकास्त्ववस्थिता एवेह विवक्षिता इति संभाव्यते, (वृ. प. ८७७)

३०. फुन रह्या जे देह, मारणांतिक समुद्घात करि ।
देश इलिका गति करेह, फर्श उत्पत्ति क्षेत्र प्रति ।।

३१. देश एज ते ख्यात, अथवा स्वक्षेत्रे रह्या ।
हस्त आदि कंपात, देश एज कहियै तसु ।।

३०,३१. ते च देहस्था एव मारणान्तिकसमुद्घातात् देशेनेलिकागत्योत्पत्तिक्षेत्रं स्पृशन्तीति देशैजा: स्वक्षेत्रावस्थिता वा हस्तादिदेशानामेजनादिति ।
(वृ. प. ८७७,८७८)

३२. *तिण अर्थे इम आखियै, जावत सव्वेया पिण एह कै ।
एवं जाव वेमाणिया, देश सर्व थी कंपै जेह कै ।।

३२. से तेणट्ठेणं जाव सव्वेया वि । एवं जाव वेमाणिया ।
(श. २५।१४६)

सोरठा

३३. नारक प्रमुख जीव, वक्तव्यता तेहनीं कही ।
आगल हिवै कहीव, अजीव नीं जे वार्त्ता ।।

३३. उक्ता जीववक्तव्यता अथाजीववक्तव्यतामाह—
(वृ. प. ८७८)

पुद्गल पद

३४. *परमाणुपुद्गल प्रभु ! स्यूं संख्याता कै असंख्यात कै ?
अथवा अनंता छै तिके ? कृपा करी भाखो जगनाथ ! कै ।।

३४ परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं संखेज्जा ? असंखेज्जा ? अणंता ?

३५. जिन कहै संख्याता नहीं, असंख्याता नहिं छै मुनिंद कै ।
परमाणु अनंताज छै, इम जाव अनंतप्रदेशिक खंध कै ।।

३५. गोयमा ! नो संखेज्जा, नो असंखेज्जा, अणंता । एवं जाव अणंतपदेसिया खंधा । (श. २५।१४७)

३६. एक आकाश प्रदेश नैं, अवगाह्या पुद्गल भगवंत ! कै ।
स्यूं संख असंख अनंत छै ? इमहिज निश्चै कहिवो संत कै ।।

३६. एगपदेसोगाढा णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा ? असंखेज्जा ? अणंता ? एवं चेव ।

३७. एवं जावत जाणवुं, असंखेज आकाश प्रदेश कै ।
अवगाह्या पुद्गल तिके, अनंत कहीजै छै निसंदेह कै ।।

३७. एवं जाव असंखेज्जपदेसोगाढा । (श २५।१४८)

३८. एक समय स्थितिका प्रभु ! पुद्गल स्यूं संख्याता समाज कै ?
एवं चेव कहीजियै, इम जाव असंख समय स्थितिकाज कै ।।

३८. एगसमयट्ठितीया णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा ? एवं चेव । एवं जाव असंखेज्जसमयट्ठितीया ।
(श. २५।१४९)

३९. इक गुण काला हे प्रभु ! पुद्गल स्यूं संख्याता न्हाल कै ?
इमहिज तास कहीजियै, एवं जाव अनंतगुण काल कै ।।

३९. एगगुणकालगा णं भंते ! पोग्गला किं संखेज्जा ? एवं चेव । एवं जाव अणंतगुणकालगा ।

---

*लय : हूं बलिहारी जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. इम अवशेषज जाणवा, वर्ण गंध रस नें वलि फास कै।
जाव अनंतगुण लुक्ख लगै, सर्व अनंता कहिवा तास कै ।।

४०. एवं अवसेसा वि वण्णगंधरसफासा नेयव्वा जाव अणंतगुणलुक्ख त्ति। (श २५।१५०)

पुद्गल का अल्पबहुत्व द्रव्यार्थ की अपेक्षा से

४१. प्रभु ! ए परमाणुपुद्गल तणैं, दुप्रदेशिया खंध नें ताय कै।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, बहुला ? तब भाखै जिनराय कै ।।
४२. दोय प्रदेशिक खंध थकी, परमाणुपुद्गल पहिछाण कै।
दव्वट्ठयाए बहुत छै, तास न्याय सुणजो सुविहाण कै ।।

४१. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं दुपदेसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया ?
४२. गोयमा ! दुपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया। (श. २५।१५१)

सोरठा

४३. सूक्ष्मपणां थकीज, वलि ते एकपणां थकी।
बहु परमाणु कहीज, दोय प्रदेशिक खंध थी ।।
४४. पूर्वे भाख्यो न्याय, तेह वडेरां नों कहिण।
अन्य आचार्य ताय, वस्तु स्वभाव थकी कहै ।।
४५. इम आगल पिण न्याय, पूर्व बहु उत्तर अल्प।
जिहां कह्यो छै ताय, तिहां न्याय ए जाणवुं ।।

४३,४४. तत्र बहुवक्तव्यतायां द्व्यणुकेभ्यः परमाणवो बहवः सूक्ष्मत्वादेकत्वाच्च द्विप्रदेशकास्त्वणुभ्यः स्तोकाः स्थूलत्वादिति वृद्धाः वस्तुस्वभावादिति चान्ये, (वृ. प. ८७९)
४५. एवमुत्तरत्रापि पूर्वे-पूर्वे बहवस्तदुत्तरे तु स्तोकाः। (वृ. प. ८७९)

वा०—इहां तीजा पद में पूर्वे बहु अनैं उत्तर अल्प इम कह्यो तेहनों अर्थ कहै छै—इहां पूर्वे कह्यो दुप्रदेशिक खंध थी परमाणु घणां ते परमाणु पूर्व पद छै ते माटै घणां छै। अनैं दुप्रदेशिक खंध आगलो पद छै तेहनैं उत्तर पद कहियै ते माटै ए थोड़ा छै। इमहिज आगल कहिवो ते कहै छै—

४६. *ए प्रभु ! खंध दुप्रदेशिया, तीन प्रदेशिक खंध नें तेह कै।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, बहुला ? तब जिन उत्तर देह कै ।।
४७. तीन प्रदेशिक खंध थकी, दोय प्रदेशिक खंध सुजोय कै।
द्रव्य थकी ते बहुत छै, एवं इण गमे करि आगल जोय कै ।।

४६. एएसि णं भंते ! दुपदेसियाणं तिपदेसियाण य खंधाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया ?
४७. गोयमा ! तिपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो दुपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया। एवं एएणं गमएणं

वा०—इहां कह्यो त्रिप्रदेशिक खंध थकी दुप्रदेशिक खंध घणां दुप्रदेशिक तो त्रिप्रदेशिकखंध नीं अपेक्षाय प्रथम पद छै ते माटै। त्रिप्रदेशिक खंध थकी दुप्रदेशिक खंध घणां छै। अनैं दुप्रदेशिक खंध नीं अपेक्षाय त्रिप्रदेशिक खंध आगलो पद छै ते माटै दुप्रदेशिक खंध थी त्रिप्रदेशि खंध थोड़ा छै। इम चिहुं प्रदेशिक खंध थी त्रिण प्रदेशिक घणां छै। अनैं त्रिण प्रदेशिक खंध थकी च्यार प्रदेशिक खंध थोड़ा छै।

४८. जावत दश प्रदेशिया, खंध थकी कहियै अवलोय कै।
नव प्रदेशिया खंध ते, द्रव्य अर्थ करि बहुला होय कै ।।
४९. हे प्रभु ! दश प्रदेशिका, संख प्रदेशिक खंध फुन ताम कै।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, बहुला ? तब भाखै जिन स्वाम कै ।।
५०. जिन कहै दश प्रदेशिका, खंध थकी अधिका कहिबाय कै।
संख प्रदेशिया खंध ते, दव्वट्ठयाए बहुला पाय कै ।।

४८. जाव दसपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो नवपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया। (श. २५।१५२)
४९. एएसि णं भंते ! दसपदेसियाणं—पुच्छा।
५०. गोयमा ! दसपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो संखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया। (श. २५।१५३)

सोरठा

५१. दश प्रदेशिक थीज, संख प्रदेशिक खंध घणां।
स्थानक बहुत्व थकीज, अदल न्याय अवलोकियै ।।

५१ दशप्रदेशिकेभ्यः पुनः सङ्ख्यातप्रदेशिका बहवः, सङ्ख्यातस्थानानां बहुत्वात्, (वृ. प. ८७९)

---

*लय : हूं बलिहारी जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५२. *संख प्रदेशिक खंध प्रभु ! असंख प्रदेशिक खंध फुन जेह कै ।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, पुद्‌गल बहुला कहियै तेह कै ?

५३. जिन कहै संख प्रदेशिया, खंध थकी अधिका अवलोय कै ।
असंख प्रदेशिया खंध ते, दव्वट्ठयाए बहुला जोय कै ।।

५४. हे प्रभु ! असंख प्रदेशिया, अनंत प्रदेशिया खंध फुन ख्यात कै ।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, थोड़ा अथवा बहु जगनाथ कै ?

५५. जिन कहै अनंत प्रदेशिया, खंध थकी अधिका पहिछाण कै ।
असंख प्रदेशिक खंध ते, दव्वट्ठयाए बहुला जाण कै ।।

सोरठा

५६. अनंतप्रदेशिक थीज, असंख प्रदेशिक खंध घणां ।
तथाविध सलहीज, ए सूक्ष्म परिणाम थी ।।

पुद्‌गल का अल्पबहुत्व प्रदेशार्थ की अपेक्षा से

५७. *परमाणुपुद्‌गल प्रभु ! दोय प्रदेशिया खंध नें ताय कै ।
प्रदेश-अर्थपणें करी, कुण-कुण थी बहुला कहाय कै ?

५८. जिन कहै परमाणु थकी, दोय प्रदेशिया खंध छै तेह कै ।
प्रदेश-अर्थपणें घणां, तास न्याय सुणजो गुणगेह कै ।।

सोरठा

५९. द्रव्यपणें जिम संध, परमाणुया ह्वै एक सौ ।
दोय प्रदेशिक खंध, द्रव्य थकी ते साठ ह्वै ।।

६०. प्रदेश-अर्थपणेह, शत मात्रज परमाणुया ।
दोय प्रदेशिक जेह, इकसौ बीस प्रदेश थी ।।

६१. आगल पिण अवलोय, करवी इमहिज भावना ।
ए दृष्टांत सुजोय, वृत्ति थकी आख्यो इहां ।।

६२. *इम इण आलावे करी, जावत नव प्रदेशिक थीज कै ।
दश प्रदेशिक खंध घणां, प्रदेश-अर्थपणेंज कहीज कै ।।

६३. इम सगलैइ पूछवो, दश प्रदेशिक खंध थी सोय कै ।
खंध संख्यात प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणें बहु जोय कै ।।

६४. संख्यात प्रदेशिया खंध थकी, असंख्यात प्रदेशिया खंध कै ।
प्रदेश-अर्थपणें घणां, पूर्वली परै न्याय सुसंध कै ।।

६५. एहनें हे भगवंतजी ! असंख्यात प्रदेशिक खंध कै ।
तेह तणीं पूछा कियां, उत्तर तास दियै जिनचंद कै ।।

६६. अनंत प्रदेशिक खंध थकी, असंख्यात प्रदेशिक खंध कै ।
प्रदेश-अर्थपणें घणां, ते बहु द्रव्यपणां थी एह प्रबंध कै ।।

पुद्‌गल का अल्पबहुत्व क्षेत्र की अपेक्षा से

६७. प्रभु ! एक प्रदेश ओगाहिया, दोय प्रदेश ओगाह्या जेह कै ।
पुद्‌गल नें जे द्रव्य थी, कुण-कुण थी विसेसाहिया तेह कै ?

*लय : हूं बलिहारी जादवां

५२. एएसि णं भंते ! संखेज्जपदेसियाणं —पुच्छा ।

५३. गोयमा ! संखेज्जपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्ज-पदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया । (श. २५।१५४)

५४. एएसि णं भंते ! असंखेज्जपदेसियाणं — पुच्छा ।

५५. गोयमा ! अणंतपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्ज-पदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए बहुया । (प. २५।१५५)

५६. अनन्तप्रदेशिकेभ्यस्तु असङ्ख्यातप्रदेशिका एव बहवस्तथाविधसूक्ष्मपरिणामात् । (वृ. प. ८७९)

५७. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं दुपदेसियाण य खंधाणं पदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो बहुया ?

५८. गोयमा ! परमाणुपोग्गलेहिंतो दुपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए बहुया ।

५९. यथा किल द्रव्यत्वेन परिमाणतः शतं परमाणवः द्विप्रदेशास्तु षष्टिः, (वृ. प. ८७९)

६०. प्रदेशार्थतायां परमाणवः शतमात्रा एव द्व्यणुकास्तु विंशत्युत्तरं शतमित्येवं ते बहव इति, (वृ. प. ८७९)

६१. एवं भावना उत्तरत्रापि कार्या । (वृ. प. ८७९)

६२. एवं एएणं गमएणं जाव नवपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो दसपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए बहुया ।

६३. एवं सव्वत्थ पुच्छियव्वं । दसपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो संखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए बहुया ।

६४. संखेज्जपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए बहुया । (श. २५।१५६)

६५. एएसि णं भंते ! असंखेज्जपदेसियाणं — पुच्छा ।
गोयमा !

६६. अणंतपदेसिएहिंतो खंधेहिंतो असंखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए बहुया । (श. २५।१५७)

६७. एएसि णं भंते ! एगपदेसोगाढाणं दुपदेसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

६८. जिन कहै दोय प्रदेश नैं, ओगाह्या थी एक प्रदेश कै।
अवगाह्या पुद्गल तिके, द्रव्य थकी विसेसाहिया कहेस कै ।।

सोरठा

६९. इक प्रदेश अवगाह, परमाणु नैं आदि दे।
अनंत प्रदेशिक ताह, हुवै अनंता ए सहु ।।
७०. बे प्रदेश अवगाह, दोय प्रदेशिक खंध नैं।
आदि देइनैं ताह, अनंत प्रदेशिक अनंत खंध ।।
७१. विसेसाहिया ताहि, तेह थकी अधिकाज ते।
पिण दुगुणादिक नांहि, ए अर्थ विसेसाहिया तणों ।।

७२. *इम इण आलावे करी, तीन प्रदेश ओगाह्या थी पेख कै।
दोय प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल द्रव्य थी अधिक विशेख कै ।।
७३. इम जावत दश प्रदेश नैं, ओगाह्या पुद्गल थी पेख कै।
नव प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल द्रव्य थी अधिक विशेख कै ।।
७४. हे प्रभु ! दश प्रदेश नीं, पूछा कीधां गोयम शीस कै।
संख प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल थी मोंढै सुजगीस कै ।।
७५. जिन कहै दश प्रदेश नैं, ओगाह्या पुद्गल थी माण कै।
संख प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल द्रव्य थकी बहु जाण कै ।।
७६. संख्यात नभ प्रदेश नैं, अवगाह्या पुद्गल थी सोय कै।
असंख प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल द्रव्य थकी बहु जोय कै ।।
७७. पूछा सगलै स्थानके, भणवी सूत्रे आख्यो एम कै।
प्रदेश-अर्थपणैं हिवै, गोयम प्रश्न करै धर प्रेम कै ।।
७८. प्रभु ! एक प्रदेश ओगाढ नैं, दोय प्रदेश ओगाढा जेह कै।
पुद्गल नैंज प्रदेश थी, कुण-कुण थी विसेसाहिया तेह कै ?
७९. जिन कहै एक प्रदेश नैं, ओगाह्या पुद्गल थी पेख कै।
दोय प्रदेश ओगाहिया, प्रदेश थी विसेसाहिया देख कै ।।
८०. इम जावत नव प्रदेश नैं, अवगाह्या पुद्गल थी पेख कै।
दश प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल प्रदेश थी अधिक विशेख कै ।।
८१. दश आकाश प्रदेश नैं, अवगाह्या पुद्गल थी जोय कै।
संख प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल प्रदेश थकी बहु होय कै ।।
८२. संख्यात नभ प्रदेश नैं, अवगाह्या पुद्गल थी ताय कै।
असंख प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल प्रदेश थकी बहु थाय कै ।।

पुद्गल का अल्पबहुत्व काल की अपेक्षा से

८३. प्रभु ! एक समय स्थितिका अनैं, दोय समय स्थितिका छै जेह कै।
पुद्गल नैं द्रव्यार्थपणैं, इत्यादिक प्रश्नोत्तर तेह कै ।।
८४. जिम अवगाहणा नैं विषे, वक्तव्यता आखी तिण रीत कै।
स्थिति विषे पिण जाणवी, काल अपेक्षा पुद्गल रीत कै ।।

पुद्गल का अल्पबहुत्व भाव की अपेक्षा से

८५. इक गुण काला नैं प्रभु ! बे गुण कृष्ण पोग्गल नैं पेख कै।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, विसेसाहिया अधिक विशेख कै ?

*लय : हूं बलिहारी जादवां

६८. गोयमा ! दुपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया।

६९. तत्रैकप्रदेशावगाढाः परमाण्वादयोऽनन्तप्रदेशिकस्कन्धान्ता भवन्ति, (वृ. प. ८७९)
७०. द्विप्रदेशावगाढास्तु द्व्यणुकादयोऽनन्ताणुकान्ताः, (वृ. प. ८७९)
७१. 'विसेसाहिय' त्ति समधिकाः न तु द्विगुणादय इति। (वृ. प. ८७९)

७२. एवं एएणं गमएणं तिपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया
७३. जाव दसपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो नवपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया।

७५. दसपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया।
७६. संखेज्जपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया।
७७. पुच्छा सव्वत्थ भाणियव्वा। (श. २५।१५८)

७८. एएसि णं भंते ! एगपदेसोगाढाणं दुपदेसोगाढाण य पोग्गलाणं पदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया?
७९. गोयमा ! एगपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुपदेसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए विसेसाहिया।
८०. एवं जाव नवपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो दसपदेसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए विसेसाहिया।
८१. दसपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए बहुया।
८२. संखेज्जपदेसोगाढेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए बहुया। (श. २५।१५९)

८३. एएसि णं भंते ! एगसमयट्ठितीयाणं दुसमयट्ठितीयाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए ?
८४ जहा ओगाहणाए वत्तव्वया एवं ठितीए वि। (श. २५।१६०)

८५. एएसि णं भंते ! एगगुणकालगाणं दुगुणकालगाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८६. जिम परमाणु प्रमुख तणीं, वक्तव्यता कही तिणहिज रीत कै ।
कहिवी वक्तव्यता सहु, सर्व वर्ण गंध रस संगीत कै ।।

८७. इक गुण कर्कश नैं प्रभु ! बे गुण कर्कश नैं फुन पेख कै ।
दव्वट्ठयाए कुण-कुण थकी, जाव विशेष अधिक वा देख कै ?

८८. जिन कहै इक गुण कक्खड थी, बे गुण कर्कश पुद्गल पेख कै ।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, विसेसाहिया अधिक विशेख कै ।।
८९. एवं जावत जाणवूं, नव गुण कक्खड पोग्गल थी लेख कै ।
दश गुण कर्कश पोग्गला, दव्वट्ठयाए अधिक विशेख कै ।।

९०. दशगुण कक्खड पोग्गल थकी, संख्यातगुण कक्खडा सुविचार कै ।
द्रव्य थकी ते पोग्गला, बहुया पाठ अर्थ बहु धार कै ।।
९१. संख्यात गुण कर्कश थकी, असंख्यातगुण कक्खडा आम कै ।
दव्वट्ठयाए पुद्गल घणां, बहुया पाठ कह्यो छै स्वाम कै ।।
९२. असंख गुण कर्कश थकी, अनंत गुण कर्कश अवलोय कै ।।
द्रव्य थकी पुद्गल घणां, बुद्धिवंत न्याय विचारी जोय कै ।।
९३. प्रदेश-अर्थपणैं करी, इमहिज कहिवो छै अवलोय कै ।
सगलैइ भणवी पृच्छा, सूत्रे इहविध भाख्यो सोय कै ।।
९४. एवं मृदु गुरु नैं लघु, कर्कश जिम कहिवा ए तीन कै ।
शीत उष्ण निद्ध नैं लुक्खा, ए चिहुं वर्ण तणी परि चीन कै।।

वा०—वर्णादिक भाव विशेषित पुद्गल चिंता नैं विषे कर्कशादिक च्यार फर्श विशेषित पुद्गल नैं विषे पूर्व पूर्व थकी उत्तरोत्तर तथाविध स्वभावपणां थी द्रव्यार्थपणैं करी घणां कह्या । अनैं शीत, उष्ण, निद्ध, लुक्ख फर्श विशेषित नैं विषे कृष्णादिक वर्ण विशेषित नीं परे उत्तर थकी पूर्व घणां दश गुण तांई । अनैं दश गुण थकी संख्यात गुण घणां । अनैं संख्यात गुण थकी अनंत गुण घणां । अनैं वली अनंत गुण थकी पिण असंख्यात गुण घणां ।

एहिज शीत आदि च्यार फर्श जूजूआ नाम लेइ कहियै छै बे गुण शीत पुद्गल थकी एक गुण शीत पुद्गल घणां । अनैं त्रिण गुण शीत थकी बे गुण शीत घणां । इम जावत दश गुण शीत थकी नव गुण शीत घणां । अनैं दश गुण शीत थकी संख्यात गुण शीत घणां । अनैं संख्यात गुण शीत थकी असंख्यात गुण शीत पुद्गल घणां । अनैं वलि अनंतगुण शीत पुद्गल थकी पिण असंख्यात गुण शीत पुद्गल घणां । इमहिज उष्ण निद्ध लुक्ख जाणवा ।

पुद्गल का अल्पबहुत्व

९५. ए परमाणुपुद्गल तणैं, संख प्रदेशिक नैं पिण होय कै ।
असंख प्रदेशिक नैं वली, अनंत प्रदेशिक नैं अवलोय कै ।।

९६. द्रव्य थकी नैं प्रदेश थी, द्रव्य प्रदेश थकी वलि देख कै ।
कुण-कुण थी जावत कह्या, विसेसाहिया वा संपेख कै ?

**९७. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, द्रव्य थी अनंत प्रदेशिक खंध कै ।
तेहथी परमाणुपोग्गला, द्रव्य थी अनंतगुणा सुप्रबंध कै ।।**

८६. एएसि णं जहा परमाणुपोग्गलादीणं तहेव वत्तव्वया निरवसेसा । एवं सव्वेसि वण्ण-गंध-रसाणं ।
(श. २५।१६१)

८७. एएसि णं भंते ! एगगुणकक्खडाणं दुगुणकक्खडाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो विसेसाहिया ?

८८. गोयमा ! एगगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो दुगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया ।

८९. एवं जाव नवगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो दसगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए विसेसाहिया ।

९०. दसगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया ।

९१. संखेज्जगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया ।

९२. असंखेज्जगुणकक्खडेहिंतो पोग्गलेहिंतो अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए बहुया ।

९३. एवं पदेसट्ठयाए वि । सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा ।

९४. जहा कक्खडा एवं मउय-गरुय-लहुया वि । सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वण्णा । (श. २५।१६२)

वा.—वर्णादिभावविशेषितपुद्गलचिन्तायां तु कर्कशादिस्पर्शचतुष्टयविशेषितपुद्गलेषु पूर्वेभ्यः पूर्वेभ्य उत्तरोत्तरास्तथाविधस्वभावत्वाद्द्रव्यार्थतया बहवो वाच्याः, शीतोष्णस्निग्धरूक्षलक्षणस्पर्शविशेषितेषु पुनः कालादिवर्णविशेषिता इवोत्तरेभ्यः पूर्वे दशगुणान् यावद्बहवो वाच्याः, ततो दशगुणेभ्यः सङ्ख्येयगुणास्तेभ्योऽनन्तगुणा अनन्तगुणेभ्यश्चासङ्ख्येयगुणा बहव इति, एतदेवाह—'एगगुणकक्खडेहिंतो' इत्यादि ।
(वृ. प. ८७९)

९५. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं, संखेज्जपदेसियाणं, असंखेज्जपदेसियाणं, अणंतपदेसियाण य खंधाणं

९६. दव्वट्ठयाए, पदेसट्ठयाए, दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

९७. गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए, परमाणुपोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८. तेहथी संख्यात प्रदेशिया, द्रव्य थी संखगुणा सुविचार कै ।
तेहथी असंख प्रदेशिया, द्रव्य थी असंखगुणा अवधार कै ।
९९. अनंत प्रदेशिया खंध ते, सर्व थी थोड़ा प्रदेशपणेह कै ।
तेहथी परमाणु पोग्गला. अप्रदेशट्ठयाए अनंतगुणा लेह कै ।।

वा०—इहा प्रदेश अर्थपणां नां अधिकार विषे पिण जे अप्रदेशार्थपणें करी इम कह्यो ते परमाणु नैं अप्रदेशपणां थकी जाणवूं ।

१००. तेहथी संख्यात प्रदेशिया, संखगुणा प्रदेश थी सोय कै ।
तेहथी असंख प्रदेशिया, असंखगुणाज प्रदेश थी होय कै ।।
१०१. अनंतप्रदेशिया खंध ते, सर्व थी थोड़ा द्रव्यार्थपणेह कै ।
तेहिज अनंतप्रदेशिया, अनंतगुणाज प्रदेश थी जेह कै ।।
१०२. तेहथी परमाणुपोग्गला, द्रव्य अर्थ भावे करि जाण कै ।
फुन अप्रदेश थकी तिके, अनंतगुणा ए श्री जिन वाण कै ।।

वा०—परमाणु पुद्गल द्रव्यार्थ अप्रदेशार्थपणें अनंतगुणा परमाणुआ द्रव्य विवक्षाये द्रव्य रूप अर्थ अनें प्रदेश विवक्षाये अविद्यमान प्रदेश अर्थ—इम करीनें द्रव्यार्थ अप्रदेशार्थ ते कहियै ।

१०३. तेहथी संख्यात प्रदेशिया, द्रव्य थी संखगुणा कहिवाय कै ।
तेहिज संख्यात प्रदेशिया, संखगुणा प्रदेश थी थाय कै ।।
१०४. तेहथी असंख प्रदेशिया, द्रव्य थी असंखगुणा अवलोय कै ।
तेहिज असंख प्रदेशिया, असंखगुणा प्रदेश थी जोय कै ।।

एक प्रदेशावगाही यावत असंख्य प्रदेशावगाही पुद्गल का अल्पबहुत्व

१०५. प्रभु ! एक प्रदेश ओगाहिया, संखप्रदेश अवगाह्या सोय कै ।
असंख प्रदेश ओगाहिया, पुद्गल द्रव्य थकी अवलोय कै ।।

१०६. प्रदेश अर्थपणैं वली, द्रव्य अनें प्रदेश थी फेर कै ।
कुण-कुण थी जावत कह्या, विसेसाहिया अधिका हेर कै ?
१०७. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, एक प्रदेश ओगाह्या जेह कै ।
दव्वट्ठयाए पोग्गला तेहनों न्याय सुणो चित देह कै ।।

वा०—सर्व थी थोड़ा एक प्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थपणें—इहां क्षेत्र नां अधिकार थकी क्षेत्रनांज प्रधानपणां थकी परमाणु द्विप्रदेशिक खंधादिक अनंत-प्रदेशिक खंध पिण विशिष्ट एक क्षेत्र प्रदेश अवगाढा आधार आधेय नां अभेद उपचार थकी एकपणें करी कहियैं । एक आकाश प्रदेश तो आधार अनें तेहनें विषे परमाणुआदिक अनंत प्रदेशिया खंध रह्या ते आधेय । ए बिहुं नां अभेद उपचार थकी एकपणें करी कहियै तिवारै सर्व थी थोड़ा एकपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए—एतलै लोकाकाश-प्रदेश प्रमाणे ईज हुवै ते कहै छै—जे भणी एहवो आकाश-प्रदेश कोई नथी जे एक प्रदेश अवगाहवाने परिणामे परिणम्या परमाण्वादिक नैं अवकाश देवानैं परिणाम करी परिणम्यो नथी । ते माटै एक प्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्याश्रयी लोकाकाश प्रदेश प्रमाणे हीज कह्या ।

१०८. तेहथी आकाश तणां जिके, संखप्रदेश ओगाह्या तेह कै ।
दव्वट्ठयाए पोग्गला, संखगुणा कहियै छै जेह कै ।।

९८. संखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।
९९. पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए, परमाणुपोग्गला अपदेसट्ठयाए अणंतगुणा,

वा.—इह प्रदेशार्थताऽधिकारेऽपि यदप्रदेशार्थतयेत्युक्तं तत्परमाणूनामप्रदेशत्वात्, (वृ. प. ८८०)

१००. संखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जपदेसिया खंधा पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।
१०१. दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए, ते चेव पदेसट्ठयाए अणंतगुणा,
१०२. परमाणुपोग्गला दव्वट्ठपदेसट्ठयाए अणंतगुणा,

वा.—'परमाणुपोग्गला दव्वट्ठअपएसट्ठयाए' त्ति परमाणवो द्रव्यविवक्षायां द्रव्यरूपाः अर्थाः प्रदेशविवक्षायां चाविद्यमानप्रदेशार्था इतिकृत्वा द्रव्यार्थाप्रदेशार्थास्ते उच्यन्ते । (वृ. प. ८८०)

१०३. संखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा,
१०४. असंखेज्जपदेसिया खंधा दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा । (श. २५।१६३)

१०५. एएसि णं भंते ! एगपदेसोगाढाणं, सखेज्जपदेसोगाढाणं, असंखेज्जपदेसोगाढाण य पोग्गलाणं दव्वट्ठयाए,
१०६. पदेसट्ठयाए, दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?
१०७. गोयमा ! सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए,

वा०—सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए' त्ति इह क्षेत्राधिकारात्क्षेत्रस्यैव प्राधान्यात्परमाणुद्व्यणुकाद्यनन्ताणुकस्कन्धा अपि विशिष्टैकक्षेत्रप्रदेशावगाढा आधाराधेययोरभेदोपचारादेकत्वेन व्यपदिश्यन्ते ततश्च 'सव्वत्थोवा एगपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए' त्ति, लोकाकाशप्रदेशपरिमाणा एवेत्यर्थः, तथाहि—न स कश्चिदेवंभूत आकाशप्रदेशोऽस्ति य एकप्रदेशावगाहपरिणामपरिणतानां परमाण्वादीनामवकाशदानपरिणामेन न परिणत इति, (वृ. प. ८८०)

१०८. संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां पिण क्षेत्रनांज प्रधानपणां थकी तथाविध खंध नैं आधार जे खेत्र प्रदेश ते आकाश प्रदेश तेहनी अपेक्षयाईज भावना करवी नवरमसंमोहेन सुखप्रतिपत्त्यर्थमुदाहरणं दर्श्यते— जहा किल पंच ते सव्वलोगपएसा एते य पत्तेयचिताए पंचेव, संजोगओ पुण एतेसु चेव अणेगे संजोगा लभ्भंति इमा य एएसि ठवणा एतेषां च संपूर्णाऽसंपूर्णाऽन्यग्रहणान्यमोक्षणद्वारेणाऽध्येयवशादनेके संयोगभेदा भावनीयाः ।

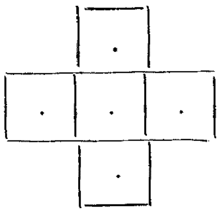

वा०—अत्रापि क्षेत्रस्यैव प्राधान्यात्तथाविधस्कन्धाधारक्षेत्रप्रदेशापेक्षयैव भावना कार्या, नवरमसमोहेन सुखप्रतिपत्त्यर्थमुदाहरणं दर्श्यते—'जहा किल पंच ते सव्वलोगपएसा, एते य पत्तेयचिताए पचेव, संजोगओ पुण एतेसु चेव अणेगे संजोगा लब्भंति' इमा एएसिं ठवणा एतेषां च सम्पूर्णासम्पूर्णान्यग्रहणान्यमोक्षणद्वारेणाऽध्येयवशादनेके संयोगभेदा भावनीयाः, (वृ. प. ८८०,८८१)

१०९. तेहथी आकाश तणां जिके, असंखप्रदेश ओगाह्या ताम कै ।
दव्वट्ठयाए पोग्गला, असंख्यातगुण आख्या आम कै ।।

वा०—तेहथी असंख्यात प्रदेशावगाढ पुद्गल द्रव्यार्थपणैं असंख्यातगुणा । भाव नां इमहीज । अवगाह क्षेत्र नैं असंखेज्ज प्रदेशात्मकपणां थकी असंख्यातगुणा इति ।

१०९. असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।

वा०—'असंखेज्जपएसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुण' त्ति भावनैवमेव असङ्ख्येयप्रदेशात्मकत्वादवगाहक्षेत्रस्यासङ्ख्येयगुणा इत्ययमस्य भावार्थ इति । (वृ. प ८८१)

११०. सर्व थकी थोड़ा अछै, एक आकाश प्रदेश नैं विषे पेख कै ।
ओगाह्या पुद्गल तिके, प्रदेश-अर्थपणैं ए लेख कै ।।

११०. पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला अपदेसट्ठयाए,

१११. तेहथी संख्यात प्रदेश जे, ओगाह्या पुद्गल पहिछाण कै ।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, संखगुणा वर न्याय विनाण कै ।।

१११. संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा,

११२. तेहथी असंख प्रदेश जे, ओगाह्या पुद्गल अवधार कै ।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा न्याय विचार कै ।।

११२. असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।

११३. सर्व थी थोड़ा पोग्गला, एक प्रदेश ओगाढ प्रमाण कै ।
द्रव्य थी नैं रु प्रदेश थी, क्षेत्र अल्प थी थोड़ा जाण कै ।

११३. दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए सव्वत्थोवा एगपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठ-अपदेसट्ठयाए,

११४. तेहथी संखप्रदेश ओगाहिया,
द्रव्य थी संखगुणा अवधार कै ।।
तेहथी तेहिज प्रदेश थी, संखगुणा वर न्याय विचार कै ।

११४. संखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए सखेज्जगुणा ।

११५. तेहथी असंख प्रदेश ओगाहिया,
द्रव्य थी असंखगुणा अधिकाय कै ।।
तेहथी तेहिज प्रदेश थी, असंख्यातगुणा कहियै ताय कै ।।

११५. असंखेज्जपदेसोगाढा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा । (श. २५।१६४)

एक समयस्थितिक यावत असंख्यसमयस्थितिक पुद्गल का अल्पबहुत्व

११६. एक समय स्थितिका प्रभु !
संख समय स्थितिका नैं जाण कै ।
असंख समय स्थितिका जिके,
पुद्गल नैं अल्पबहुत्व पिछाण कै ?

११६. एएसि णं भंते ! एगसमयट्ठितीयाणं संखेज्जसमयट्ठितीयाणं, असखेज्जसमयट्ठितीयाण य पोग्गलाणं ?

११७. जिम अवगाहन विषे कह्यं,
कहिवुं स्थिति विषे पिण तेम कै ।
अल्पबहुत्व पिछाणियै,
हिवै भाव थकी सुणजो धर प्रेम कै ।।

११७. जहा ओगाहणाए तहा ठितीए वि भाणियव्वं अप्पाबहुगं । (श. २५।१६५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ण, गन्ध, रस स्पर्श की अपेक्षा से पुद्गल का अल्पबहुत्व

११८. इक गुण काला हे प्रभु ! पुद्गल संखगुणा फुन काल कै ।
असंख्यातगुण कृष्ण वलि, अनंतगुण फुन कृष्ण निहाल कै ।।

११९. द्रव्य थकी नैं प्रदेश थी, द्रव्य प्रदेश उभय नीं तेम कै ।
कह्यो अल्पबहुत्व परमाणुओ,
अल्पबहुत्व एहनों पिण एम कै ।।

१२०. इम शेष वर्ण गंध रस तणों, अल्पबहुत्व तीनूं अवधार कै ।
कृष्ण वर्ण नों आखियो, तिमहिज कहिवो सर्व विचार कै ।।

१२१. इक गुण कर्कश नैं प्रभु ! संखेजगुण कक्खड नैं सोय कै ।
असंख्यातगुण कक्खड नैं, अनंतगुण कर्कश नैं जोय कै ।।

१२२. द्रव्य थकी नैं प्रदेश थी, द्रव्य प्रदेश उभय थी देख कै ।
कुण-कुण थी जावत कह्या, विसेसाहिया वा सुविशेष कै ?

१२३. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, दव्वट्ठयाए द्रव्यार्थपणेह कै ।
इक गुण कक्खडा पोग्गला, वारू न्याय विचारी लेह कै ।।

१२४. तेहथी संखगुण कक्खडा, द्रव्य थी संखगुणाज समाज कै ।
तेहथी असंखगुण कक्खडा, दव्वट्ठयाए असंखगुणाज कै ।।

१२५. तेहथी अनंतगुण कक्खडा, पुद्गल द्रव्य थकी पहिछाण कै ।
तेह द्रव्यार्थपणें करी, अनंतगुणा आख्या जगभाण कै ।।

१२६. प्रदेश-अर्थपणें करी, एवं चेव कह्यो जगतार कै ।
णवरं इतरो विशेष छै,
सांभलजो भवियण ! धर प्यार कै ।।

१२७. संख्यातगुण कक्खडा तिके, प्रदेश-अर्थपणैं करि जेह कै ।
असंख्यातगुणा जाणवा, शेष तिमज कहिवुं सहु तेह कै ।।

१२८. सर्व थी थोड़ा पोग्गला, इक गुण कक्खडा जे कहिवाय कै ।
द्रव्य थकी नैं प्रदेश थी, वारू ए जिन वच वर न्याय कै ।।

१२९. तेहथी संखेज्जगुण कक्खडा, द्रव्य थकी संख्यातगुणाज कै ।
तेहथी तेहिज प्रदेश थी, संखगुणा आख्या जिनराज कै ।।

१३०. तेहथी असंखगुण कक्खडा, असंख्यातगुणा द्रव्य थकीज कै ।
तेहथी तेहिज प्रदेश थी, असंख्यातगुणा तास कहीज कै ।।

१३१. तेहथी अनंतगुण कक्खडा, दव्वट्ठयाए अनंतगुणा होय कै ।
तेहथी तेहिज प्रदेश थी, अनंतगुणा कहियै अवलोय कै ।।

१३२. एवं मृदु गुरु नैं लघु, अल्पबहुत्व तीनूं नीं ताय कै ।
शीत उष्ण निद्ध लुक्ष तणों,
वर्ण नों आख्युं तिम कहिवाय कै ।।

१३३. पणवीसम तुर्य देश ए, च्यारसौ नैं चालीसमीं ढाल कै ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' आनंद हरष विशाल कै ।।

११८. एएसि णं भंते ! एगगुणकालगाणं, संखेज्जगुण-कालगाणं, असंखेज्जगुणकालगाणं, अणंतगुणकालगाण य पोग्गलाणं

११९. दव्वट्ठयाए, पदेसट्ठयाए, दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसहिया वा ? एएसिं जहा परमाणुपोग्गलाणं अप्पाबहुगं तहा एएसि पि अप्पाबहुगं ।

१२०. एवं सेसाण वि वण्ण-गंध-रसाणं । (श. २५।१६६)

१२१. एएसि णं भंते ! एगगुणकक्खडाणं, संखेज्जगुण-कक्खडाणं, असंखेज्जगुणकक्खडाणं, अणंतगुणकक्ख-डाण य पोग्गलाणं

१२२. दव्वट्ठयाए, पदेसट्ठयाए, दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

१२३. गोयमा ! सव्वथोवा एगगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए,

१२४. संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठया असंखेज्जगुणा,

१२५. अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा ।

१२६. पदेसट्ठयाए एवं चेव, नवरं—

१२७. संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला पदेसट्ठयाए असंखेज्ज-गुणा । सेसं तं चेव ।

१२८. दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा एगगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठ-पदेसट्ठयाए ।

१२९. संखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा ।

१३०. असंखेज्जगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए असंखेज्ज-गुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा ।

१३१. अणंतगुणकक्खडा पोग्गला दव्वट्ठयाए अणंतगुणा, ते चेव पदेसट्ठयाए अणंतगुणा ।

१३२. एवं मउय-गरुय-लहुयाण वि अप्पाबहुयं । सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खाणं तहा वण्णाणं तहेव ।
(श. २५।१६७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४४१

दूहा

१. कृतयुग्मादिक करि हिवै, पुद्गल प्रतैज पेख।
परूपणा करतो छतो पूछै प्रश्न विशेख।।

१. पुद्गलानेव कृतयुग्मादिभिर्निरूपयन्नाह—
(वृ. प. ८८१)

पुद्गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

२. इक वच परमाणु प्रभु! दव्वट्ठयाए योग।
स्यूं कडजुम्म कै त्र्योज ह्वै, द्वापुरजुम्म कलियोग?

२ परमाणुपोग्गले णं भंते! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मे? तेयोए? दावरजुम्मे? कलियोगे?

३. जिन भाखै कडजुम्म नहीं, फुन नहिं ह्वै तेयोग।
द्वापरयुग्म हुवै नहीं, हुवै एक कलियोग।।

३. गोयमा! नो कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, कलियोगे।

४. एवं यावत जाणवुं, अनंतप्रदेशिक खंध।
इक वचने ए आखियो, हिव बहु वचन प्रबंध।।

४. एवं जाव अणंतपदेसिए खंधे। (श. २५।१६८)

५. बहु वच परमाणू प्रभु! जे द्रव्य-अर्थपणेह।
स्यूं कडजुम्मादिक हुवै? हिव जिन उत्तर देह।।

५. परमाणुपोग्गला णं भंते! दव्वट्ठयाए किं कडजुम्मा—पुच्छा। गोयमा!

६. ओघ सामान्य थकी कदा, कडजुम्मा ते होय।
यावत कलियोगा कदा, इम भजनाये जोय।।

६. ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

वा०—अनंता परमाणुं छै तो पिण ते परमाणुं नैं संघाते ते मिलवा थी, अनैं भेद ते जुदो थावा थी अनवस्थित स्वरूप थी, ते माटै कदा कृतयुग्मा हुवै जाव कदा कलियोगा हुवै।

वा०—'परमाणु' इत्यादि, परमाणुपुद्गला ओघादेशतः कृतयुग्मादयो भजनया भवन्ति अनन्तत्वेऽपि तेषां सङ्घातभेदतोऽनवस्थितस्वरूपत्वात्, विधानतस्त्वेकैकशः कल्योजा एवेति।
(वृ. प. ८८२)

७. विधान भेद करि वली, कडजुम्मा नहिं कोय।
नहीं त्र्योज द्वापर नहीं, इक कलियोगा होय।।

७, विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलियोगा।

८. एवं यावत जाणवुं, अनंतप्रदेशिक खंध।
बहुवचने ए आखिया, द्रव्य थकीज प्रबंध।।

८. एवं जाव अणंतपदेसिया खंधा। (श. २५। १६९)

*गोयमजी पूछै प्रश्न प्रकार
जिनेश्वर उत्तर अधिक उदार।।(ध्रुपदं)

९. इक वच परमाणुं प्रभु! रे, प्रदेश-अर्थपणेह।
स्यूं कृतयुग्म हुवै तिको? इत्यादिक पूछेह।।

९. परमाणुपोग्गले णं भंते! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मे—पुच्छा।

१०. जिन कहै कडजुम्मे नहीं रे, नहिं कहियै तेओग।
द्वापरयुग्म नहीं तिको, हुवै एक कलियोग।।

१०. गोयमा! नो कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, कलियोगे। (श. २५।१७०)

११. दोय प्रदेशिक खंध नीं रे, इक वच प्रश्नज कीन।
जिन कहै द्वापरयुग्म ह्वै, शेष नहीं छै तीन।।

११. दुपदेसिय—पुच्छा।
गोयमा! नो कडजुम्मे, नो तेयोगे, दावरजुम्मे, नो कलियोगे। (श. ३५।१७१)

१२. तीन प्रदेशिक खंध नीं रे, पूछा इकवचनेह।
जिन भाखै तेओग ह्वै, शेष तीन नहीं तेह।।

१२. तिपदेसिए—पुच्छा
गोयमा! नो कडजुम्मे, तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे। (श. २५।१७२)

१३. च्यार प्रदेशिक खंध नीं रे, पूछा इक वच पेख।
जिन भाखै कृतयुग्म ह्वै, नहीं ह्वै त्रिण पद शेख।।

१३. चउप्पदेसिए—पुच्छा।
गोयमा! कडजुम्मे, नो तेयोगे, नो दावरजुम्मे, नो कलियोगे।

***लय : सुण बाई सुबटी कहै ए कोई इचरज बात**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. पंच प्रदेशिक खंध नीं रे, पूछा इक वच जोग।
जिम परमाणू नें कह्यं, तिम ह्वै इक कलियोग।।

सोरठा

१५. चिहुं अपहरवै जेह, बाकी एक रहै इहां।
ते माटैज कहेह, कलियोगे इक पद हुवै।।

१६. *इक वचने छह् प्रदेशियो रे, दोय प्रदेशिक जेम।
इक वच सप्त प्रदेशियो, तीन प्रदेशिक तेम।।

सोरठा

१७. चिहुं अपहरवै सोय, षट प्रदेशिक नैं विषे।
शेष रहै छै दोय, तिणसूं द्वापरयुग्म ए।।

१८. चिहुं अपहरवै चीन, सप्त प्रदेशिक नैं विषे।
शेष रहै छै तीन, तिणसूं तेओगे कह्यो।।

१९. *इक वच अष्ट प्रदेशिको रे, च्यार प्रदेशिक जेम।
इक वच नव प्रदेशियो, परमाणुपुद्गल तेम।।

२०. इक वच दश प्रदेशियो रे, दोय प्रदेशिक जेम।
द्वापरयुग्म हुवै तिको, त्रिण पद शेष न तेम।।

२१. इक वच संख प्रदेशियो रे, तेहनों प्रश्न प्रयोग।
जिन भाखै कडजुम्म कदा, जाव कदा कलियोग।।

सोरठा

२२. संख प्रदेशिक खंध, विचित्र संखपणां थकी।
भजना एहज प्रबंध, कदा कडजुम्मादिक हुवै।।

२३. *एवं असंख प्रदेशियो रे, अनंत प्रदेशिक एम।
ए पिण विचित्रपणां थकी, भजनाए चिहुं तेम।।

२४. बहु वच परमाणु प्रभु ! रे, प्रदेश-अर्थपणेह।
स्यूं कडजुम्मा ह्वै तिके ? इत्यादिक पूछेह।।

२५. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, कदा बहु कडजुम्म।
यावत कलियोगा कदा, न्याय पूर्ववत गम्म।।

२६. विधान ते भेदे करी रे, कडजुम्मा नहिं होय।
नहीं त्र्योज द्वापर नहीं, कलियोगा इक होय।।

२७. बहु वच दोय प्रदेशिका रे, तास प्रश्न अवलोय।
जिन भाखै सुण गोयमा ! ओघ सामान्य थी जोय।।

२८. कडजुम्मा ह्वै ते कदा रे, तेओगा नहिं होय।
द्वापरयुग्मा ह्वै कदा, कलियोगा नहिं सोय।।

सोरठा

२९. दोय प्रदेशिक खंध, जेह अनंता लोक में।
ते सहु मेल प्रबंध, तास प्रदेशपणें करी।।

*लय : सुण बाई सुवटी कहै ए कोई इचरज बात

१४. पंचपदेसिए जहा परमाणुपोग्गले।

१५. 'पंचपएसिए जहा परमाणुपोग्गल' त्ति एकाग्रत्वात् कल्योज इत्यर्थः। (वृ. प. ८८२)

१६. छप्पदेसिए जहा दुप्पदेसिए। सत्तपदेसिए जहा तिपदेसिए।

१७,१८. 'छप्पएसिए जहा दुप्पएसिए' त्ति द्वचग्रत्वाद्द्वापरयुग्म इत्यर्थः, एवमन्यदपि। (वृ. प, ८२२)

१९. अट्ठपदेसिए जहा चउप्पदेसिए। नवपदेसिए जहा परमाणुपोग्गले।

२०. दसपदेसिए जहा दुप्पदेसिए। (श. २५।१७३)

२१. संखेज्जपदेसिए णं भंते ! पोग्गले—पुच्छा।
गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे।

२२. 'संखेज्जपएसिए ण' मित्यादि, संख्यातप्रदेशिकस्य विचित्रसंख्यत्वाद्भजनया चातुर्विध्यमिति। (वृ. प. ८८२)

२३. एवं असंखेज्जपदेसिए वि, अणंतपदेसिए वि। (श. २५।१७४)

२४. परमाणुपोग्गला णं भंते ! पदेसट्ठयाए किं कडजुम्मा —पुच्छा।

२५. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

२६. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, कलियोगा। (श. २५।१७५)

२७. दुप्पदेसिया णं—पुच्छा।
गोयमा ! ओघादेसेणं

२८. सिय कडजुम्मा, नो तेयोगा, सिय दावरजुम्मा, नो कलियोगा,

२९-३१. 'दुप्पएसिया ण' मित्यादि, द्विप्रदेशिका यदा समसंख्या भवन्ति तदा प्रदेशतः कृतयुग्माः, यदा तु विषमसंख्यास्तदा द्वापरयुग्माः, (वृ. प. ८८२,८८३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. सम संख्या जद होय, कडजुम्माज ह्वै तदा।
सहु प्रदेश नें जोय, चिहुं अपहरवै शेष चिहुं ।।
३१. विषम संख्या जद होय, द्वापरयुग्मा ह्वै तदा।
सहु प्रदेश नें सोय, चिहुं अपहरवै शेष बे ।।

वा० – लोक नैं विषे द्विप्रदेशिका खंध अनंता छै। ते सहु एकठा कीजै ते खंध सम संख्याते बेकी हुवै। तेहनां प्रदेश नैं चिहुं-चिहुं अपहरतां शेष च्यार प्रदेश रहै। तिण काले कडजुम्मा हुवै तिणसूं कदाचि कडजुम्म कह्या। अनैं सहु द्विप्रदेशिका खंध एकठा कीधां ते खंध विषम संख्या ते एकी हुवै तेहनां प्रदेश नैं चिहुं-चिहुं अपहरतां शेष दोय प्रदेश रहै, तिण काले द्वापरजुम्मा हुवै। एतलै शेष दोय खंध रहै तेहनां च्यार प्रदेश शेष रह्या माटै कडजुम्मा कह्या। अनैं शेष एक खंध रहै तेहनां दोय प्रदेश शेष रह्या माटै द्वापुरयुग्मा कह्या।

३२. *विधान ते भेदे करी रे, इक-इक गिणवै रे सोय।
द्वापरयुग्माईज ह्वै, त्रिण पद शेष न होय।।

वा०—जे द्विप्रदेशिक खंध एक-एक चिंतवतां थकां दोय प्रदेशपणां थकी प्रदेश-अर्थपणैं करी द्वापरयुग्मा हुवै शेष तीन नों निषेध करिवो।

३२. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, नो तेयोगा, दावरजुम्मा नो कलियोगा। (श. २५।१७६)

वा.—'विहाणादेसेण' मित्यादि, ये द्विप्रदेशिकास्ते प्रदेशार्थतया एकैकशश्चिन्त्यमाना द्विप्रशत्वादेव द्वापरयुग्मा भवन्ति। (वृ. प. ८८३)

३३. त्रिण प्रदेशिया नीं पृच्छा रे, जिन कहै ओघ प्रयोग।
कदाचि कडजुम्मा हुवै, जाव कदा कलियोग।।

३३. तिपदेसिया णं— पुच्छा।
गोयमा! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

सोरठा

३४. तीन प्रदेशिक खंध, सर्व प्रतै करि एकठा।
तास प्रदेश प्रबंध, चिहुं नें अपहरवै करी ।।
३५. कदा च्यार रहै शेख, कदाचित त्रिण शेष रहै।
कदा शेष बे देख, कदाचि शेष प्रदेश इक ।।
३६. भजना करि इम होय, अनवस्थित संख्या थकी।
पिण च्यारूं पद जोय, समकाले नहिं ह्वै कदा ।।

३४-३६. 'तिप्पएसिया ण' मित्यादि, समस्तत्रिप्रदेशिक-मीलने तत्प्रदेशानां च चतुष्कापहारे चतुरग्रादित्वं भजनया स्यादनवस्थितसंख्यत्वात्तेषां, (वृ. प. ८८३)

वा०—जिम च्यार त्रिप्रदेशिका खंध एकठा कीधै तेहनां बारै प्रदेश, ते चिहुं अपहरवै शेष च्यार रहै ए कडजुम्मा कहियै। अनैं पंच त्रिप्रदेशिका खंध एकठा कीधै तेहनां पनरै प्रदेश, ते चिहुं अपहरवै शेष तीन रहै ए तेओगा कहियै। अनैं छह त्रिप्रदेशिका खंध एकठा कीधै तेहनां अठारह प्रदेश ते चिहुं अपहरवै शेष रहै दो, ए द्वापरयुग्मा कहियै। अनैं सप्त त्रिप्रदेशिका खंध एकठा कीधै तेहनां इक्कीस प्रदेश ते चिहुं चिहुं अपहरवै शेष एक रहे, ए कलियोग कहियै।

वा.—यथा चतुर्णां तेषां मीलने द्वादश प्रदेशास्ते च चतुरग्राः पञ्चानां त्र्योजाः षण्णां द्वापरयुग्माः सप्तानां कल्योजा इति, (वृ. प. ८८३)

३७. *विधान ते भेदे करी रे, इक-इक गिणवै सोय।
तेओगाज हुवै तिके, त्रिण पद शेष न होय।।

वा०—विधानादेश ते एक-एक गिणवै करी तेओगाईज, त्रिप्रदेशिक खंधपणां थकी।

३७. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मा, तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा। (श. २५।१७७)

वा.— विधानादेशेन च त्र्योजा एव त्र्यणुकत्वात्स्कन्धानामिति। (वृ. प. ८८३)

३८. चिहुं प्रदेशिया खंध तणी रे, बहुवच पूछा कीध
जिन कहै ओघ सामान्य थी, विधान थी पिण लीध।
३९. कडजुम्माज हुवै तिके रे, शेष तीन पद नांहि।
अपहरवैज प्रदेश नें, शेष च्यार रहै ताहि ।।

३८. चउप्पदेसिया णं— पुच्छा।
गोयमा! ओघादेसेण वि विहाणादेसेण वि
३९. कडजुम्मा, नो तेयोगा, नो दावरजुम्मा, नो कलियोगा।
'चउप्पएसिया ण' मित्यादि, चतुष्प्रदेशिकानामोघतो विधानतश्च प्रदेशाश्चतुरग्रा एव। (वृ. प. ८८३)

*लय : सुण बाई सुवटी कहै ए कोई इचरज बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. बहु वच पंच प्रदेशिका रे, प्रदेश आश्रयी पेख।
जिम परमाणु-पोग्गला, कहिवो तिमज अशेख।।

४०. पंचपदेसिया जहा परमाणुपोग्गला।

सोरठा

४१. ओघ सामान्य थकीज, भजना करि चिहुं पद हुवै।
इक-इक विधान थीज, कलियोगाज हुवै तिके।।

४१. 'पंचपएसिया जहा परमाणुपोग्गल' त्ति सामान्यतः स्यात्कृतयुग्मादयः प्रत्येकं चैकाग्रा एवेत्यर्थः। (वृ. प. ८८३)

४२. *बहु वच षटप्रदेशिका रे, प्रदेश थी पहिछाण।
दाख्या जिम दुप्रदेशिया, तिणहिज रीते जाण।।

४२. छप्पदेसिया जहा दुप्पदेसिया।

सोरठा

४३. ओघ सामान्य करेह, भजनाइं चिहुं पद हुवै।
इक-इक भेद गिणेह, तो द्वापरयुग्माज ह्वै।।

४३. 'छप्पएसिया जहा दुप्पएसिय' त्ति ओघतः स्यात् कृतयुग्मद्वापरयुग्माः, विधानतस्तु द्वापरयुग्मा इत्यर्थः, (वृ. प. ८८३)

४४. *बहु वच सप्त प्रदेशिया रे, प्रदेश-अर्थपणेह।
जिम त्रिण प्रदेशिका कह्या, तिमहिज कहिवा एह।।

४४. सत्तपदेसिया जहा तिपदेसिया।

सोरठा

४५. ओघ सामान्ये सोय, चिहुं पद भजनाइं हुवै।
विधान इक-इक जोय, तो तेओगा ईज ह्वै।।

४६. *बहु वच अष्ट प्रदेशिया रे, प्रदेश-अर्थपणेह।
जिम जे च्यार प्रदेशिया, दाख्या तिमज कहेह।।

४६. अट्ठपदेसिया जहा चउपदेसिया।

सोरठा

४७. ओघ सामान्य थकीज, विधान थी पिण ते वली।
कडजुम्माज कहीज, शेष प्रदेशज चिहुं रहै।।

४८. *प्रदेश-अर्थपणें करी रे, नव प्रदेशिक खंध।
जिम परमाणुपोग्गला, कहिवुं तिमज प्रबध।।

४८. नवपदेसिया जहा परमाणुपोग्गला।

सोरठा

४९. सामान्ये सुविचार, भजनाइं चिहुं पद हुवै।
विधान थी अवधार, कलियोगाज हुवै तिके।।

५०. *बहु वच दश प्रदेशिया रे, प्रदेश-अर्थपणेह।
जिम द्विप्रदेशिका कह्या, तिमहिज कहिवा एह।।

५०. दसपदेसिया जहा दुपदेसिया। (श. २५।१७८)

सोरठा

५१. ओघ सामान्य जेह, बिहुं पद भजनाइं हुवै।
विधान इक-इक लेह, तो द्वापरजुम्माज ह्वै।।

५२. *संख प्रदेशिका नीं पृच्छा रे? श्री जिन भाखै ओघ।
कदाचि कडजुम्मा हुवै, जाव कदा कलियोग।।

५२. संखेज्जपदेसिया णं—पुच्छा।
गोयमा! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

५३. विधान ते भेदे करी रे, कडजुम्मा पिण एह।
जाव कल्योगा पिण हुवै, प्रदेश-अर्थपणेह।।

५३. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि।

*लय : सुण बाई सुवटी कहै ए कोई इचरज बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. एवं असख प्रदेशिया रे, अनंत प्रदेशिया एम ।
बहु वचने ए आखिया, प्रदेश थी धर प्रेम ।।

५४. एवं असंखेज्जपदेसिया वि, अणंतपदेसिया वि । (श. २५।१७९)

क्षेत्र की अपेक्षा से पुद्गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में

५५. इक वच परमाणु प्रभु ! रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश ।
अवगाही नें ते रह्यो ? इत्यादिक पूछेस ।।
५६. जिन कहै धुर पद त्रिहुं नहीं रे, इक कलियोग प्रदेश ।
अवगाही नें जे रह्यं, एकपणां थी एस ।।

५५. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं कडजुम्मपदेसोगाढे—पुच्छा ।
५६. गोयमा ! नो कडजुम्मपदेसोगाढे, नो तेयोगपदेसोगाढे नो दावरजुम्मपदेसोगाढे, कलियोगपदेसोगाढे । (श. २५।१८०)

५७. इक वच द्विप्रदेशिक पृच्छा रे ? जिन कहै कडजुम्म ताह ।
प्रदेश अवगाहै नहीं, त्र्योज नहीं अवगाह ।।
५८. द्वापरयुग्म प्रदेश नें रे, कदाचित अवगाह ।
कदा कल्योज प्रदेश पिण, अवगाहै छै ताह ।।

५७. दुपदेसिए णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो कडजुम्मपदेसोगाढे, नो तेयोगपदेसोगाढे,
५८. सिय दावरजुम्मपदेसोगाढे, सिय कलियोगपदेसोगाढे । (श. २५।१८१)

सोरठा

५९. द्विप्रदेशिको खंध, बे नभ प्रदेश में रह्या ।
तब द्वापरजुम्म खंध, प्रदेश प्रति अवगाढ हुवै ।।
६०. द्विप्रदेशिक खंध, इक नभ प्रदेश में रह्या ।
तब कलियोगज संध, प्रदेश प्रति अवगाढ ह्वै ।।
६१. ए परिणाम विशेख, तेह थकीज हुवै अछै ।
अन्यत्र पिण इम देख, न्याय विचारी लीजियै ।।

५९-६१ द्विप्रदेशिकस्तु द्वापरयुग्मप्रदेशावगाढो वा कल्योजः प्रदेशावगाढो वा स्यात् परिणामविशेषात्, एवमन्यदपि सूत्रं नेयम् । (वृ. प. ८८३)

६२. *इक वच तीन प्रदेशिको रे, प्रश्न कियो फुन ताह ।
जिन भाखै कृतयुग्म नभ, प्रदेश नहिं अवगाह ।।
६३. कदा तेयोग प्रदेश नें रे, कदा द्वापरजुम्म जेह ।
कदा कल्योज आकाश नां, प्रदेश अवगाहेह ।।

६२. तिपदेसिए णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो कडजुम्मपदेसोगाढे,
६३. सिय तेयोगपदेसोगाढे सिय दावरजुम्मपदेसोगाढे, सिय कलियोगपदेसोगाढे । (श. २५।१८२)

सोरठा

६४. तीन प्रदेशिक खंध, त्रिण नभ प्रदेश में रह्या ।
तब तेओग प्रबंध, प्रदेश प्रति अवागाढ ह्वै ।।
६५. तीन प्रदेशिक खंध, बे नभ प्रदेश में रह्या ।
तब द्वापुरजुम्म संध, प्रदेश प्रति अवगाढ ह्वै ।।
६६. तीन प्रदेशिक खंध, इक नभ प्रदेश में रह्या ।
तब कलियोगज संध, प्रदेश प्रति अवगाढ ह्वै ।।

६७. *इक वच च्यार प्रदेशिको रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश ।
अवगाढक ह्वै छै जिको ? इत्यादिक पूछेस ।।
६८. जिन भाखै कडजुम्म कदा रे, प्रदेश ओगाढेह ।
जाव कदा कलियोग लग, प्रदेश अवगाहेह ।।

६७. चउप्पदेसिए णं—पुच्छा ।
६८. गोयमा ! सिय कडजुम्मपदेसोगाढे जाव सिय कलियोगपदेसोगाढे ।

सोरठा

६९. च्यार प्रदेशिक खंध, चिहुं नभ प्रदेश में रह्या ।
तब कडजुम्म प्रबंध, नभ प्रदेश अवगाढ ह्वै ।।

*लय : सुण बाई सुवटी कहै ए कोई इचरज बात

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. त्रिण बे इक नभ मांहि, चिहुं प्रदेशिको खंध रह्या।
त्र्योज द्वापरजुम्म ताहि, कलि प्रदेश अवगाढ ह्वै ।।

७१. *एवं जावत जाणवुं रे, अनंत प्रदेशिक खंध।
इक वचने ए आखियो, हिवै बहुवचन प्रबंध ।।

७२. बहु वच प्रभु ! परमाणुआ रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश।
अवगाढक ह्वै छै तिके ? इत्यादिक पूछेस ।।

७३. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, कडजुम्म गगन प्रदेश।
अवगाढक ह्वै छै तिके, नहीं ह्वै त्रिण पद शेष ।।

सोरठा

७४. ओघ थकी परमाणु, सकल लोक व्यापक थकी।
सकल लोक नूं जाणु, प्रदेश असंखपणां थकी ।।

७५. अवस्थित थी फेर, नभ प्रदेश सहु लोक नां।
चिहुं अपहरवै हेर, च्यार ईज रहै शेष तसु ।।

७६. *विधान ते भेदे करी रे, धुर त्रिण पद नहिं होय।
इक कलियोग प्रदेश नें, अवगाढा ह्वै सोय ।।

वा०—विधान ते भेद थकी एक-एक प्रदेश गिणवा थकी कलियोग प्रदेश अवगाढा हुवै सर्व नें एक-एक प्रदेश अवगाढपणां थकी।

७७. बहु वचने दुप्रदेशिया रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश।
अवगाढा ह्वै छै तिके ? इत्यादिक पूछेस ।।

७८. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, नभ कडजुम्म प्रदेश।
अवगाढाज ह्वै तिके, शेष तीन न कहेस ।।

वा०—द्विप्रदेशिक खंध द्विप्रदेश अवगाढा वलि सामान्य थकी च्यार ईज शेष रहै, पूर्वे कही ते युक्ति थकी।

७९. विधान ते भेदे करी रे, जे कडजुम्म प्रदेश।
अवगाढा नहिं ह्वै तिके, त्र्योज ओगाढ न लेश ।।

८०. द्वापरयुग्म प्रदेश नें रे, अवगाढा पिण होय।
फुन कलियोग प्रदेश नें, अवगाढा पिण जोय ।।

वा०—जे द्विप्रदेशिक खंध दोय आकाश प्रदेश में रह्या ते आकाशास्तिकाय नां द्वापरयुग्मा हुवै अनें द्विप्रदेशिक खंध एक आकाश प्रदेश में रह्या ते कल्योजा हुवै।

८१. बहु वच तीन प्रदेशियो रे, स्यूं कडजुम्म प्रदेश।
अवगाढा ह्वै छै तिके ? इत्यादिक पूछेस ।।

८२. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे,
कडजुम्म नभ अवगाह।
नहीं त्र्योज द्वापर नहीं, कलि अवगाहै नांह ।।

८३. विधान भेद करी तिके रे, इक-इक गिणवै जेह।
कडजुम्म गगन प्रदेश नें, अवगाहै नहिं तेह ।।

---

७१. एवं जाव अणंतपदेसिए। (श. २५।१८३)

७२. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं कडजुम्मपदेसोगाढा—पुच्छा।

७३. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

७४,७५. तत्रौघतः परमाणवः कृतयुग्मप्रदेशावगाढा एव भवन्ति सकललोकव्यापकत्वात्तेषां, सकललोकप्रदेशानां चासङ्ख्यातत्वादवस्थितत्वाच्च चतुरग्रतेति,
(वृ. ८८३)

७६. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, कलियोगपदेसोगाढा।
(श. २५।१८४)

वा०—विधानतस्तु कल्योजः प्रदेशावगाढाः सर्वेषामेकैकप्रदेशावगाढत्वादिति, (वृ. प. ८८)

७७. दुप्पदेसिया णं—पुच्छा।

७८. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

वा०—द्विप्रदेशावगाढास्तु सामान्यतश्चतुरग्रा एवोक्तयुक्तितः, (वृ. प. ८८३)

७९ विहाणादेसेण नो कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा,

८०. दावरजुम्मपदेसोगाढा वि, कलियोगपदेसोगाढा वि।
(श. २५।१८५)

वा०—विधानतस्तु द्विप्रदेशिकाः, ये द्विप्रदेशावगाढास्ते द्वापरयुग्माः ये त्वेकप्रदेशावगाढास्ते कल्योजाः। (वृ. प. ८८३)

८१. तिप्पदेसिया णं—पुच्छा।

८२. गोयमा ! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

८३. विहाणादेसेणं नो कडजुम्मपदेसोगाढा,

***लय : सुण बाई सुवटी कहै ए कोई इचरज बात**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८४. त्र्योज प्रदेश अवगाढका रे, द्वापरजुम्म अवगाह।
फुन कलियोग प्रदेश नैं, अवगाढा कहिवाह।।

वा०—जे त्रिप्रदेशिक खंध तीन आकाश प्रदेश में रह्या ते तेयोग प्रदेश अवगाढ हुवै। अनैं दोय आकाश प्रदेश में रह्या ते द्वापरयुग्म प्रदेशावगाढ हुवै। अनैं एक आकाश प्रदेश में रह्या ते कलियोग प्रदेशावगाढ हुवै।

८४. तेयोगपदेसोगाढा वि, दावरजुम्मपदेसोगाढा वि कलियोगपदेसोगाढा वि। (श. २५।१८६)

८५. चिहुं प्रदेशिया नीं पृच्छा रे, जिन कहै ओघ थी सोय।
कडजुम्म नभ अवगाहका, त्रिण पद शेष न होय।।

८५. चउप्पदेसिया णं—पुच्छा।
गोयमा! ओघादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा, नो तेयोगपदेसोगाढा, नो दावरजुम्मपदेसोगाढा, नो कलियोगपदेसोगाढा,

८६. विधान भेद करी वलि रे, कडजुम्म नभ अवगाह।
जाव कल्योज प्रदेश नैं, अवगाढा कहिवाह।।

वा०—जे च्यार प्रदेशिक खंध च्यार आकाश प्रदेश में रह्या ते कडजुम्म प्रदेश अवगाढ हुवै। अनैं तीन आकाश प्रदेश में रह्या ते तेयोग प्रदेश अवगाढ हुवै। अनैं दोय आकाश प्रदेश में रह्या ते द्वापरयुग्म प्रदेश अवगाढ हुवै। अनैं एक आकाश प्रदेश में रह्या ते कल्योज प्रदेश अवगाढ हुवै।

८६. विहाणादेसेणं कडजुम्मपदेसोगाढा वि जाव कलियोगपदेसोगाढा वि।

८७. इम यावत बहु वच करी रे, अनंत प्रदेशिया खंध।
चिहुं प्रदेशिया नीं परै, कहिवो सर्व संबंध।।

८७. एवं जाव अणंतपदेसिया। (श. २५।१८७)

काल की अपेक्षा से पुद्‌गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के संदर्भ में

८८. प्रभु! इक वच परमाणुओ रे,
कडजुम्म समय नीं जाण।
स्थितिवंत ह्वै छै तिको? प्रश्न इत्यादि पिछाण।।

८८. परमाणुपोग्गले णं भंते! किं कडजुम्मसमयट्ठितीए—पुच्छा।

८९. जिन कहै कडजुम्म समय नीं रे,
कदा स्थितिवंत होय।
जाव कदा कलि समय नां, स्थितिक ते अवलोय।।

८९. गोयमा! सिय कडजुम्मसमयट्ठितीए जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीए।

९०. एवं जावत जाणवो रे, अनंत प्रदेशिक खंध।
इक वचने ए आखिया, हिव बहु वचन प्रबंध।।

९०. एवं जाव अणतपदेसिए। (श. २५।१८८)

९१. बहु वच प्रभु! परमाणुआ रे, कीधी पूछा तास।।
जिन भाखै सुण गोयमा! ओघ सामान्य जास।

९१. परमाणुपोग्गला णं भंते! किं कडजुम्म—पुच्छा।
गोयमा! ओघादेसेणं

९२. कडजुम्म समय स्थितिका कदा रे,
जाव कदा कलियोग।
समय स्थितिका ते हुवै, भजनाइं चिहुं जोग।।

९२. सिय कडजुम्मसमयट्ठितीया जाव सिय कलियोगसमयट्ठितीया,

९३. विधान थी कृतयुग्म जे रे, समय स्थितिकापि होय।
जाव कलि समय स्थितिका, सम काले चिहुं जोय।।

९३. विहाणादेसेणं कडजुम्मसमयट्ठितीया वि जाव कलियोगसमयट्ठितीया वि।

९४. एवं जावत बहु वचे रे, अनंत प्रदेशिया खंध।
काल थकी ए आखिया, भाव थकी हिव संध।।

९४. एवं जाव अणंतपदेसिया। (श. २५।१८९)

भाव की अपेक्षा से पुद्‌गल की पृच्छा कृतयुग्म आदि के सन्दर्भ में

९५. प्रभु! इक वच स्यूं परमाणुओ रे, कृष्ण वर्ण पर्याय।
स्यूं कडजुम्म तेओग है? इत्यादिक पूछाय।।

९५. परमाणुपोग्गले णं भंते! कालावण्णपज्जवेहिं किं कडजुम्मे? तेयोगे?

९६. वक्तव्यता जिम स्थितिक नैं रे, वर्ण विषे पिण एम।
सहु गंध विषे पिण इमज छै, रस विषे पिण तेम।।

९६. जहा ठितीय वत्तव्वया एवं वण्णेसु वि सव्वेसु। गंधेसु वि एवं चेव। रसेसु वि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. जाव मधुर रस पंचमो रे, तठा लगै कहिवाय।
स्थितिक नैं जिम आखियो, इमहिज कहिवो ताय।।
९८. अनंत प्रदेशिक खंध प्रभु ! रे, इक वचने करि एह।
कक्खड फर्श पजवे करी, स्यूं कडजुम्म पूछेह ?
९९. जिन भाखै कडजुम्म कदा रे, जाव कदा कलियोग।
भजनाइं चिहुं पद हुवै, देखो दे उपयोग।।
१००. अनंत प्रदेशिया खंध प्रभु ! रे, बहुवचने करि एह।
कक्खड फाश पजवे करी, स्यूं कडजुम्म पूछेह ?
१०१. जिन कहै ओघ सामान्य थी रे, जाव कदा कडजुम्म।
जाव कलियोगा कदा, चिहुं भजनाइं गम्म।।
१०२. विधान भेद करी वलि रे, कडजुम्मा पिण होय।
जावत कलियोगा अपि, समकाले चिहुं जोय।।
१०३. एवं मृदु गुरु नैं लघु रे, इक वच बहु वच तेम।
अनंत प्रदेशिक खंध नैं, भणवा कक्खडा जेम।।

वा०—इहां कर्कशादि स्पर्श अधिकारे अनंत प्रदेशिक खंध नों ईज ग्रहण ते बादर अनंत प्रदेशिक नैं ईज कर्कशादि स्पर्श च्यार हुवै पिण परमाणु आदि में नथी। तिणसूं अनंत प्रदेशिया नों ईज ग्रहण कीधो, इम वृत्तिकार कह्यं ु।

१०४. शीत उष्ण निद्ध नैं लुक्खा रे, जेम वर्ण आख्यात।
कहिवा तिणहिज रीत सूं, परमाणवादि जात।।

वा०—इहां शीत उष्ण निद्ध लुक्ख नां पर्यव अधिकार नैं विषे परमाणु आदि पिण कहिवा।

१०५. *पणवीसम तुर्य देश नीं रे, चिहुं सौ नैं इकताल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष विशाल।।

९७. जाव महुरो रसो त्ति। (श. २५।१९०)

९८. अणंतपदेसिए णं भंते ! खंधे कक्खडफासपज्जवेहिं किं कडजुम्मे—पुच्छा।

९९. गोयमा ! सिय कडजुम्मे जाव सिय कलियोगे। (श. २५।१९१)

१००. अणंतपदेसिया णं भंते ! खंधा कक्खडफासपज्जवेहिं किं कडजुम्मा—पुच्छा।

१०१. गोयमा ! ओघादेसेणं सिय कडजुम्मा जाव सिय कलियोगा,

१०२. विहाणादेसेणं कडजुम्मा वि जाव कलियोगा वि।

१०३. एवं मउय-गरुय-लहुया वि भाणियव्वा।

वा०—इह कर्कशादिस्पर्शाधिकारे यदनन्तप्रदेशिकस्यैव स्कन्धस्य ग्रहणं तत्तस्यैव बादरस्य कर्कशादि स्पर्शचतुष्टयं भवति न तु परमाण्वादेरित्यभिप्रायेणेति, (वृ. प ८८३)

१०४. सीय-उसिण-निद्ध-लुक्खा जहा वण्णा। (श. २५।१९२)

वा०—'सीओसिणनिद्धलुक्खा जहा वन्न' त्ति एतत्पर्यवाधिकारे परमाण्वादयोऽपि वाच्या इति भावः। (वृ. प. ८८३)

ढाल : ४४२

पुद्गल का सार्ध-अनर्ध पद

दूहा

१. पुद्गल नां अधिकार थी, पुद्गल प्रश्न अमंद।
पूछै गोयम गणहरू, उत्तर दै जिनचंद।।
२. प्रभु ! परमाणुपोग्गला, स्यूं छै अर्द्ध सहीत ?
अथवा अर्द्ध रहीत छै ? वारू प्रश्न वदीत।।
३. जिन भाखै सुण गोयमा ! अर्द्ध सहित नहिं एह।
अर्द्ध रहित परमाणुओ, अनर्द्ध तास कहेह।।

१. पुद्गलाधिकारादिदमाह— (वृ. प. ८८३)

२. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सड्ढे ? अणड्ढे ?

३. गोयमा ! नो सड्ढे, अणड्ढे। (श. २५।१९३)

लय : सुण बाई सुवटी कहै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. दोय प्रदेशिक नीं पृच्छा, भाखै वीर वदीत।
ए तो अर्द्ध सहीत छै, पिण नहिं अर्द्ध रहीत ।।

वा० — द्विप्रदेशिक खंध नां इक-इक परमाणु हुवै ते माटै अर्द्ध सहित छै, पिण अर्द्ध रहित नहीं।

५. तीन प्रदेशिक नीं पृच्छा, परमाणु जिम ख्यात।
नहिं छै अर्द्ध सहीत ए, अर्द्ध रहित ए थात ।।

वा० — तीन प्रदेशियो खंध दोढ-दोढ न हुवै ते माटै ए अर्द्ध सहित नहीं, अर्द्ध रहित एह छै।

६. च्यार प्रदेशिक खंध ते, दोय प्रदेशिक जेम।
पंच प्रदेशिक खंध ते, तीन प्रदेशिक तेम ।।

७. षट प्रदेशिको खंध ते, जिम द्विप्रदेश ख्यात।
सप्त प्रदेशिक खंध ते, त्रिप्रदेश जिम थात ।।

८. अष्ट प्रदेशिक खंध ते, द्विप्रदेश जिम जान।
नव प्रदेशिको खंध जे, त्रिप्रदेश जिम मान ।।

९. दश प्रदेशिको खंध फुन, द्विप्रदेश जिम जोय।
न्याय कहूं ए सहु तणों, सांभलजो सहु कोय ।।

वा० — इहां ए च्यार प्रदेशिक खंध, षट प्रदेशिक, अष्ट प्रदेशिक, दश प्रदेशिक खंध सम संख्या छै। सम संख्या ते बेकी छै। तेहनां अर्द्ध बे भाग हुवै एतलै बे भाग बरोबर तुल्य एक सरिखा हुवै। ते माटै ए अर्द्ध सहित छै, पिण अर्द्ध रहित नथी। अनै पंच प्रदेशिक, सप्त प्रदेशिक, नव प्रदेशिक खंध ए अर्द्ध रहित छै, ए विषम संख्या छै। विषम संख्या ते एकी छै। तेहनां अर्द्ध बे भाग न हुवै। एतलै बे भाग बरोबर तुल्य एक सरिखा न हुवै। ते माटै ए अर्द्ध सहित नहीं, अर्द्ध रहित छै।

१०. संख प्रदेशिक खंध प्रभु! पूछचां उत्तर सार।
कदाचि अर्द्ध सहित ह्वै, अर्द्ध रहित किणवार ।।

वा० — जे संख्यात प्रदेशिक खंध सम संख्या हुवै तिवारै अर्द्ध सहित अनै विषम संख्या हुवै तिवारै अर्द्ध रहित।

११. असंख्यात प्रदेशिको, इणहिज विध कहिवाय।
एवं अनंत प्रदेशिको, सहु इकवचने आय ।।

१२. प्रभु! परमाणुपोग्गला, ए बहु वच संगीत।
ए स्यूं अर्द्ध सहित छै? कै छै अर्द्ध रहीत?

१३. जिन कहै अर्द्ध सहित ह्वै, अथवा अर्द्ध रहीत।
एवं जावत जाणवुं, अनंतप्रदेशिक रीत ।।

वा० — जिवारै घणां परमाणुआ सम संख्या हुवै तिवारै अर्द्ध सहित अनै जिवारै विषम संख्या हुवै तिवारै अर्द्ध रहित। संघात ते पुद्गल नों मिलवो अनै भेद ते जुदो थायवो। तेहनां अनवस्थित स्वरूपपणां थकी इम जावत बहु वचने अनंतप्रदेशिका खंध जाणवा।

पुद्गल नां अधिकार थकी वलि एहिज कहै छै —

४. दुपदेसिए णं—पुच्छा।
गोयमा! सड्ढे, नो अणड्ढे।

५. तिपदेसिए जहा परमाणुपोग्गले।

६. चउपदेसिए जहा दुपदेसिए। पंचपदेसिए जहा तिपदेसिए।

७. छप्पदेसिए जहा दुपदेसिए। सत्तपदेसिए जहा तिपदेसिए।

८. अट्ठपदेसिए जहा दुपदेसिए। नवपदेसिए जहा तिपदेसिए।

९. दसपदेसिए जहा दुपदेसिए। (श. २५।१९४)

१०. संखेज्जपदेसिए णं भंते! खंधे—पुच्छा।
गोयमा! सिय सड्ढे, सिय अणड्ढे।

वा० — 'सिय सड्ढे सिय अणड्ढे' त्ति यः समसङ्ख्यप्रदेशात्मकः स्कन्धः स सार्द्धः इतरस्त्वनर्द्ध इति। (वृ. प ८८३)

११. एवं असंखेज्जपदेसिए वि। एवं अणंतपदेसिए वि। (श. २५।१९५)

१२. परमाणुपोग्गला णं भंते! किं सड्ढा? अणड्ढा?

१३. गोयमा! सड्ढा वा, अणड्ढा वा। एवं जाव अणंतपदेसिया। (श. २५।१९६)

वा० — यदा बहवोऽणवः समसङ्ख्या भवन्ति तदा सार्द्धाः यदा तु विषमसङ्ख्यास्तदाऽनर्द्धाः, सङ्घातभेदाभ्यामनवस्थितरूपत्वात्तेषामिति।
पुद्गलाधिकारादेवेदमुच्यते— (वृ. प. ८८३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल की सकम्पता-निष्कम्पता

*भाव सुणो पुद्गल तणां ।। (ध्रुपदं)

१४. परमाणु इक वच प्रभु ! चलित सहित स्यूं तेह ।
तथा निरेज अकंप छै ? हिव जिन उत्तर देह ।।

१५. सैज सकंपक छै कदा, कदा अकंपक संध ।
एवं जावत इक वचे, अनंत प्रदेशिक खंध ।।

१६. प्रभु ! परमाणुपोग्गला, स्यूं ते सेया होय ?
तथा निरेया अकंप छै ? बहु वच प्रश्न ए जोय ।।

१७. जिन कहै सेया सचलित अपि, अचलित पिण बहु संध ।
एवं जावत बहु वचे, अनंत प्रदेशिया खंध ।।

१८. इक वचने परमाणुओ, सेज सकंपक न्हाल ।
काल थकी भगवंत जी ! रहै केतलो काल ?

१९. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय लग माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।

२०. इक वचने परमाणुओ, निरेज अचलित न्हाल ।
काल थकी भगवंत जी ! रहै केतलो काल ?

२१. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय लग तेम ।
उत्कृष्ट काल असंख ही, जाव अनंत प्रदेशिक एम ।।

२२. प्रभु ! परमाणुपोग्गला, सचलितपणैं बहु न्हाल ।
कितो काल रहै काल थी ? जिन भाखै सदा काल ।।

वा०—सदा काले घणां परमाणुआ सेज सकंप **छै** । तीनूं काले पिण एहवुं कोई समय नथी जे समय नैं विषे परमाणुआ सर्वहीज न चलै । एतलै तीनूं काले जे समय पूछै ते समय नैं विषे घणां परमाणुआ चलितपणां सहित लाभै ईज ।

२३. प्रभु ! बहु वच परमाणुआ, निरेज अचलित न्हाल ।
कितो काल रहै काल थी ? जिन भाखै सदा काल ।।

वा०—भावना पूर्ववत तीनूं काले जे समय पूछै ते समय घणां परमाणुआ अचलित लाभै । तीनूं काल में जे समय पूछै ते समय परमाणुआ सकंप पिण घणां लाधै अनैं अकंप पिण घणां लाधै । ते भणी इम कह्यो घणां परमाणुआ सकंप पिण सदा काल अनैं अकंप पिण सदा काल ।

२४. एवं जावत जाणवा, अनंत प्रदेशिया खंध ।
बहुवचने करी आखिया, न्याय पूर्ववत संध ।।

२५. परमाणु नैं हे प्रभु ! सेज सकंप नैं जेह ।
कितो काल अंतर हुवै ? इक वच प्रश्नज एह ।।

वा०—इक वचने परमाणु सकंपपणैं **छै** ते अकंप थई वली केतलै काले कंपै ? इति प्रश्न ।

---

१४. परमाणुपोग्गले णं भंते ! किं सेए ? निरेए ?
गोयमा !

१५. सिय सेए, सिय निरेए । एव जाव अणंतपदेसिए ।
(श. २५।१९७)

१६. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं सेया ? निरेया ?

१७. गोयमा ! सेया वि, निरेया वि । एवं जाव अणंतपदेसिया । (श. २५।१९८)

१८. परमाणुपोग्गले णं भंते ! सेए कालओ केवच्चिरं होइ ?

१९. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं । (श. २५।१९९)

२०. परमाणुपोग्गले णं भंते ! निरेए कालओ केवच्चिरं होइ ?

२१. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । एवं जाव अणंतपदेसिए ।
(श २५।२००)

२२. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सेया कालओ केवच्चिरं होंति ?
गोयमा ! सव्वद्धं । (श. २५।२०१)

वा०—'सव्वद्धं' ति सर्व्वाद्धां—सर्वकालं परमाणवः सैजाः सन्ति, नहि कश्चित् स समयोऽस्ति कालत्रयेऽपि यत्र परमाणवः सर्वे एव न चलन्तीत्यर्थः ।
(वृ. प. ८८६)

२३. परमाणुपोग्गला णं भंते ! निरेया कालओ केवच्चिरं होंति ?
गोयमा ! सव्वद्धं ।

वा०—एवं निरेजा अपि सर्व्वाद्धामिति ।
(वृ. प. ८८६)

२४ एवं जाव अणंतपदेसिया । (श. २५।२०२)

२५. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! सेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?

***लय : वेग पधारो महिल थी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. जिन भाखै स्व स्थान नैं, अंतर आश्रयी इष्ट।
जघन्य थकी इक समय छै, काल असंख उत्कृष्ट ।।

वा०—स्व स्थान ते आपणे स्थाने परमाणु परमाणु नैं भावईज तेहनैं विषे वर्त्तता थका नैं जे अंतर चलन नैं व्यवधान निश्चलत्व भवन लक्षण ते स्व स्थान अंतर कहियै। ते आश्रयी नैं जघन्य एक समय उत्कृष्ट असंख्यातो काल। एतलै चलित परमाणु छै ते अचलित थई ते अचलितपणैं एक समय रही वली चलित हुवै, ते जघन्य एक समय अंतर निश्चलपणों जघन्य काल लक्षण जाणवुं। अनैं चलित परमाणु छै ते अचलित थई ते अचलितपणैं असंख्यातो काल रहीनैं फेर कंपै—ए उत्कृष्ट असंख्याता काल नों अंतर इहां निश्चलपणों उत्कृष्ट काल लक्षण।

२६. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं।

वा.—'सट्ठाणंतरं पडुच्च' त्ति स्वस्थानं—परमाणोः परमाणुभाव एव तत्र वर्त्तमानस्य यदन्तरं—चलनस्य व्यवधानं निश्चलत्वभवनलक्षणं तत्स्वस्थानान्तरं तत्प्रतीत्य 'जहन्नेणं एक्कं समयं' ति निश्चलताजघन्यकाललक्षणं 'उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं' ति निश्चलताया एवोत्कृष्टकाललक्षणं, तत्र जघन्यतोऽन्तरं परमाणुरेकं समयं चलनादुपरम्य पुनश्चलतीत्येवं, उत्कर्षतश्च स एवासङ्ख्येयं कालं क्वचित्स्थिरो भूत्वा पुनश्चलतीत्येवं दृश्यमिति,
(वृ. प. ८८६)

२७. पर स्थानक नैं आश्रयी, जघन्य समय इक जाण।
उत्कृष्ट काल असंख ही, तास न्याय इम माण ।।

वा०—परमाणु जे पर स्थाने बे प्रदेशिकादिक नैं विषे अंतरभूत नैं अंतर चलन नैं व्यवधान ते पर स्थान अंतर। ते आश्रयी जघन्य एक समय, उत्कृष्टो असंख्यातो काल। ते परमाणुपुद्गल भमतो द्विप्रदेशिकादिक खंध मांहै प्रवेश करी नैं जघन्य थकी ते खंध संघाते एक समय अचलित रही नैं वली चलै—परमाणु हुवै। ए जघन्य एक समय खंध नैं विषे एक समय अकंपपणैं रह्यो ते जघन्य काल। अनैं वलि उत्कृष्ट असंख्यातो काल ते जे परमाणु द्वि प्रदेशिकादिक खंध मांहै पैसी नैं ते संघाते असंख्यातो काल अचलित रही नैं वली भ्रमण करै—परमाणु हुवै। ए खंध नैं विषे निश्चलपणैं असंख्यातो काल रह्यो ते उत्कृष्ट अंतर।

२७. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। (श. २५।२०३)

वा.—'परट्ठाणंतरं पडुच्च' त्ति परमाणोर्यत्परस्थाने—द्व्यणुकादावन्तर्भूतस्यान्तरं—चलनव्यवधानं तत्परस्थानान्तरं तत्प्रतीत्येति 'जहन्नेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं' ति, परमाणुपुद्गलो हि भ्रमन् द्विप्रदेशादिकं स्कन्धमनुप्रविश्य जघन्यतस्तेन सहैकं समयं स्थित्वा पुनर्भ्राम्यति।
(वृ. प. ८८६)

२८. जे परमाणु निरेज नै, अंतर केतलो काल ?
अचलित नैं कितो अंतरो ? दाखै ताम दयाल ।।
२९. स्व स्थान अंतर आश्रयी, जघन्य समय इक माग।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।

वा०—निरेज परमाणु स्व स्थान अंतर आश्रयी जघन्य एक समय ते परमाणु परमाणुभाव नैं विषे ईज वर्त्ततो पिण द्विप्रदेशियादिक नैं विषे मिल्यो नथी। ए परमाणु निश्चल छतो चलित थई एक समय चलितपणैं रही वलि निश्चल हुवै, स्थिर हुवै ए जघन्य थकी एक समय अनैं उत्कृष्ट आवलिका नों असंख्यातमों भाग। ते निश्चल छतो परमाणु चलित हुवै ते आवलिका नों असंख्यातमों भाग तांई चलितपणैं रही वलि निश्चल हुवै, ए उत्कृष्ट काल।

२८. निरेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?
गोयमा !
२९. सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं।

वा.—'निरेयस्से' त्यादि, निश्चलः सन् जघन्यतः समयमेकं परिभ्रम्य पुनर्निश्चलस्तिष्ठति, उत्कर्षतस्तु निश्चलः सन्नावलिकाया असंख्येयं भागं चलनोत्कृष्टकालरूपं परिभ्रम्य पुनर्निश्चल एव भवतीति स्वस्थानान्तरमुक्तं, (वृ. प. ८८६,८८७)

३०. पर स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक जोय।
उत्कृष्ट काल असंख ही, न्याय पूर्ववत होय ।।

वा० पर स्थानांतर आश्रयी जघन्य एक समय ते निश्चल छतो ते स्थानक थकी चलित द्विप्रदेशादिक स्कंध नैं विषे एक समय रही वली निश्चलईज रहै परमाणुपणैं। उत्कृष्ट असंख्याता काल नों अंतर ते निश्चल छतो परमाणु ते स्थानक थकी द्विप्रदेशादिक खंध नैं विषे असंख्यातो काल रही जुदो थई परमाणुपणैं वली निश्चल रहै, इम असंख्यातो काल जाणवो।

३०. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं। (श. २५।२०४)

वा.—परस्थानान्तरं तु निश्चल सन् ततः स्वस्थानाच्चलितो जघन्यतो द्विप्रदेशादौ स्कन्धे एकं समयं स्थित्वा पुनर्निश्चल एव तिष्ठति, उत्कर्षतस्त्वसङ्ख्येयं कालं तेन सह स्थित्वा पृथग् भूत्वा पुनस्तिष्ठति। (वृ. प. ८८७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. दोय प्रदेशिक खंध प्रभु ! सेज सकंप नों जाण ।
प्रश्न गोयम पूछचे छते, उत्तर दै जगभाण ।।
३२. स्व स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक पेख ।
उत्कृष्ट काल असंख ही, न्याय पूर्ववत लेख ।।
३३. पर स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक थाय ।
उत्कृष्ट काल अनंत ही, सांभलजो तसु न्याय ।।

वा०—जे द्विप्रदेशिक खंध चलित छतो जुदो थयो तिवारै पछै ते अनंता पुद्गल संघाते काल भेद करिकै संबंध करतो छतो अनंतकाल करिकै वली तेहिज परमाणुआ साथै मिल्यो संबंध करी वलि चलै । द्विप्रदेशिक खंध चलित नों अंतर जघन्य एक समय चलित छतो त्रिप्रदेशादिक खंध नैं विषे अचलितपणैं एक समय रही वलि तेहिज द्विप्रदेशियो खंध चलितपणैं हुवै अनैं उत्कृष्ट अनंत काल ।

३४. दोय प्रदेशिक खंध ते, अचल निरेज नुं आम ।
किता काल नो अंतरो ? उत्तर देवै स्वाम ।।
३५. स्व स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।
३६. पर स्थानांतर आश्रयी, समयो एक जघन्य ।
उत्कृष्ट काल अनंत ही, न्याय पूर्ववत जन्य ।।
३७. एवं जावत जाणवुं, अनंत प्रदेशिक खंध ।
इक वचने ए आखिया, हिव बहु वचन प्रबंध ।।
३८. प्रभु ! परमाणुपोग्गला, घणां सकंप नों ताहि ।
कितो काल अंतर हुवै ? जिन कहै अंतर नांहि ।।

वा०—सर्व काले चलित घणां लाधै ते माटै सकंप नों अंतर नथी ।

३९. फुन परमाणुपोग्गला, घणां अकंप नों ताहि ।
कितो काल अंतर हुवै ? जिन कहै अंतर नांहि ।।

वा०—सर्व काले निश्चल घणां लाधै ते माटै निरेज नों अंतर नथी ।

४०. एवं जावत जाणवा, अनंत प्रदेशिया खंध ।
ए बहुवचने आखिया, न्याय पूर्ववत संध ।।

सकम्प-निष्कम्प पद्गलों का अल्पबहुत्व

४१. प्रभु ! परमाणु ए पोग्गला, चलित अचल नैं ताय ।
ते कुण-कुण जावत वली, विसेसाहिया कहाय ?

४२. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, चलित परमाणुआ तेम ।
अचलित असंखगुणा हुवै, जाव असंख प्रदेशिका एम ।।

वा०—सेजा थकी निरेजा असंख्यातगुणा ते चलित क्रिया थकी स्थिति क्रिया नां उत्सर्गपणां थकी । उत्सर्ग ते कायिकपणां थी बहुलपणां थी घणांपणों छै ।

४३. ए प्रभु ! अनंत प्रदेशिया, चलिता अचलिता आम ।
ते कुण-कुण थी जावत कह्या, विसेसाहिया ताम ?

३१. दुपदेसियस्स णं भंते ! खंधस्स सेयस्स—पुच्छा ।
गोयमा !
३२. सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।
३३. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं । (श. २५।२५०)

वा.—'उक्कोसेणं अणंतं कालं' ति, कथम् ? द्विप्रदेशिकः संश्चलितस्ततोऽनन्तैः पुद्गलैः सह कालभेदेन सम्बन्धं कुर्वन्ननन्तेन कालेन पुनस्तेनैव परमाणुना सह सम्बन्धं प्रतिपद्य पुनश्चलतीत्येवमिति । (वृ. प. ८८७)

३४. निरेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?
गोयमा !
३५. सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।
३६. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं ।
३७. एवं जाव अणंतपदेसियस्स । (श. २५।२०६)

३८. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! सेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ ?
गोयमा ! नत्थि अंतरं । (श. २५।२०७)

३९. निरेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ ?
गोयमा ! नत्थि अंतरं ।

४०. एवं जाव अणंतपदेसियाणं खंधाणं । (श. २५।२०८)

४१. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं सेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?
४२. गोयमा ! सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सेया, निरेया असंखेज्जगुणा । एवं जाव असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं । (श. २५।२०९)

वा०—'निरेया असंखेज्जगुण' त्ति स्थितिक्रियाया औत्सर्गिकत्वाद्बहुत्वमिति, (वृ. प. ८८७)

४३. एएसि णं भंते ! अणंतपदेसियाणं खंधाणं सेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, खंध अनंत प्रदेशिया ताह।
निरेजा अचलित कह्या, तेहथी सेजा अनंत गुणाह।।

वा० — सर्व थी थोड़ा अनंत प्रदेशिया खंध निरेजा, तेहथी सेजा अनंतगुणा ते वस्तु नां स्वभाव थकी।

हिवै द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ-उभयार्थ निरूपण करतो कहै छै—

४५. प्रभु ! परमाणुपोग्गला, संख प्रदेशिया खंध।
असंख प्रदेशिया खंध वलि, अनंत प्रदेशिया संध।।

४६. तेहिज चलिता सकंप नैं, अचलिता नैं जेह।
दव्वट्ठयाए नैं वलि, प्रदेश-अर्थपणेह।।

४७. द्रव्य अनैं प्रदेश ते, उभय अर्थपणैं लेख।
कुण-कुण थी जावत कह्या, विसेसाहिया देख ?

४८. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, अनंत प्रदेशिया खंध।
अचल अकंप अछै तिके, द्रव्य-अर्थ करि संध।।

४९. तेहथी अनंत प्रदेशिका, चलित सकंप छै तेह।
दव्वट्ठयाए ते द्रव्य थी, अनंतगुणाज कहेह।।

५०. तेहथी परमाणुपोग्गला, चलित संकप छै ताय।
दव्वट्ठयाए ते द्रव्य थी, अनंतगुणा कहिवाय।।

५१. तेहथी संख प्रदेशिया, चलित सकंपज जाण।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, असंख्यातगुणा माण।।

५२. तेहथी असंख प्रदेशिया, चलित सकंपज खंध।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, असंख्यातगुणा संध।।

५३. तेहथी परमाणुपोग्गला, अचल अकंपज सोय।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, असंख्यातगुणा होय।।

५४. तेहथी संख प्रदेशिका, खंधा अचल निरेज।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, संखगुणाज कहेज।।

५५. तेहथी असंख प्रदेशिया, खंधा अचल निरेय।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, असंख्यातगुणा ज्ञेय।।

वा०—हिवै प्रदेश थकी सेजपणां निरेजपणां करिकै अष्ट पद नुं अल्पबहुत्व—

५६. प्रदेश-अर्थपणैं करी, एवं चेव सुजोय।
णवरं परमाणुपोग्गला, अपदेसट्ठयाए होय।।

५७. तेहथी संख्यात प्रदेशिया, खंधा अचल निरेज।
प्रदेशट्ठयाए असंखगुण, शेष तिमज कहेज।।

वा०—परमाणु प्रदेश-अर्थपणां नां स्थानक नैं विषे अप्रदेश-अर्थपणैं करि इम कहिवुं—परमाणु अप्रदेशपणां थकी तथा द्रव्य-अर्थपणां नैं सूत्र नैं विषे संख्यात प्रदेशिका अचलिता निरेजा छै तिके अचल परमाणु थकी संख्यातगुणा कह्या। अनैं प्रदेश-अर्थपणां नां सूत्र नैं विषे ते निरेज परमाणु थकी निरेज संख्यात प्रदेशिका असंख्यातगुणा कह्या। तेहनों न्याय—जे भणी निरेज परमाणु थकी द्रव्यार्थपणैं करि निरेज संख्यात प्रदेशिका संख्यातगुण हुवै। वली तेहनैं

४४. गोयमा ! सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा निरेया, सेया अणंतगुणा। (श. २५।२१०)

वा.—अनन्तप्रदेशिकेषु सैजा अनन्तगुणाः वस्तुस्वभावात् एतदेव द्रव्यार्थप्रदेशार्थोभयार्थैर्निरूपयन्नाह— (वृ. प. ८८७)

४५. एएसि णं भंते ! परमाणुपोग्गलाणं, संखेज्जपदेसियाणं, असंखेज्जपदेसियाणं अणंतपदेसियाण य खंधाणं

४६. सेयाणं निरेयाण य दव्वट्ठयाए, पदेसट्ठयाए,

४७. दव्वट्ठपदेसट्ठयाए कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?

४८. गोयमा ! १. सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए

४९. २. अणंतपदेसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा

५०. ३ परमाणुपोग्गला सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा

५१. ४. संखेज्जपदेसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

५२. ५. असंखेज्जपदेसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

५३. ६. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

५४. ७. संखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा

५५. ८. असंखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

वा.—तत्र द्रव्यार्थतायां सैजत्वनिरेजत्वाभ्यामष्टौ पदानि, (वृ. प. ८८७)

५६. पदेसट्ठयाए एवं चेव, नवरं—परमाणुपोग्गला अपदेसट्ठयाए भाणियव्वा।

५७. संखेज्जपदेसिया खंधा निरेया पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।
सेसं तं चेव।

वा.—परमाणुपदे प्रदेशार्थतायाः स्थानेऽप्रदेशार्थतयेति वाच्यं, अप्रदेशार्थत्वात्परमाणूनां, तथा द्रव्यार्थतासूत्रे सङ्ख्यातप्रदेशिका निरेजा निरेजपरमाणुभ्यः सङ्ख्यातगुणा उक्ताः प्रदेशार्थतासूत्रे तु ते तेभ्योऽसङ्ख्येयगुणा वाच्याः, यतो निरेजपरमाणुभ्यो द्रव्यार्थतया निरेजसङ्ख्यातप्रदेशिकाः संख्यातगुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मध्य घणां उत्कृष्ट संख्यातक प्रमाण प्रदेशपणां थकी निरेज परमाणु थकी ते प्रदेश थी असंख्यातगुणा हुवै। उत्कृष्ट संख्यातक नैं ऊपरि एक प्रदेश प्रक्षेपे छते पिण असंख्यातक नां भाव थकी।

भवन्ति, तेषु च मध्ये बहूनामुत्कृष्टसंख्यातकप्रमाण-प्रदेशत्वान्निरेजपरमाणुभ्यस्ते प्रदेशतोऽसंख्येयगुणा भवन्ति, उत्कृष्टसङ्ख्यातकस्योपर्येकप्रदेशप्रक्षेपेऽप्य-सङ्ख्यातकस्य भावादिति।

हिवै द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थपणैं करि चवदै बोल कहै छै — परमाणु नैं विषे सेज पक्ष नैं विषे निरेज पक्ष नैं विषे द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ ते एक करिवै करी चवदै बोल हुवै।

अथ परमाण्वादीनेव सैजत्वादिना निरूपयन्नाह—
(वृ. प. ८८७)

५८. सर्व थकी थोड़ा कह्या, अनंत प्रदेशिया खंध।
अचल अकंप निरेज ते, दव्वट्ठयाए संध।।
५९. तेहिज अनंत प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणेह।
अनंतागुणा ए आखिया, वारू न्याय सुलेह।।
६०. तेहथी अनंत प्रदेशिका, खंधा चलिता सेज।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, अनंतगुणाज कहेज।।
६१. तेहिज अनंत प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणेह।
अनंतगुणा ए आखिया, पूर्व बोल थी एह।।
६२. तेहथी परमाणुपोग्गला, चलित सकंपज सेज।
द्रव्य थकी अप्रदेश थी, अनंतगुणाज कहेज।।
६३. तेहथी संख प्रदेशिया, खंध सकंप छै जेह।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, असंख्यातगुणा तेह।।
६४. तेहिज संख प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणेह।
असंख्यातगुणा आखिया, सेज सकंप छै एह।।
६५. तेहथी असंख प्रदेशिया, सेज सकंपज खंध।
दव्वट्ठयाए द्रव्य थी, असंख्यातगुणां संध।।
६६. तेहिज असंख प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणेह।
असंख्यातगुणां आखिया, सेज सकंप छै एह।।
६७. तेहथी परमाणुपोग्गला, अचल अकंप निरेय।
द्रव्य थकी अप्रदेश थी, असंख्यातगुणा ज्ञेय।।
६८. तेहथी संख प्रदेशिया, खंधा अचलित तोल।
दव्वट्ठयाए संखगुणा, एकादशमों बोल।।
६९. तेहिज संख प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणेह।
असंख्यातगुणा आखिया, अचलित कहियै एह।।
७०. तेहथी असंख प्रदेशिया, खंधा अचलित जोय।
दव्वट्ठयाए असंखगुणा, बोल तेरमों होय।।
७१. तेहिज असंख प्रदेशिया, प्रदेश-अर्थपणेह।
असंख्यातगुणा आखिया, एह अकंप कहेह।।

५८. १. सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए
५९. २. ते चेव पदेसट्ठयाए अणंतगुणा
६०. ३. अणंतपदेसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा
६१. ४. ते चेव पदेसट्ठयाए अणंतगुणा
६२. ५. परमाणुपोग्गला सेया दव्वट्ठ-अपदेसट्ठयाए अणंतगुणा
६३. ६. संखेज्जपदेसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा
६४. ७. ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा
६५. ८. असंखेज्जपदेसिया खंधा सेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा
६६. ९. ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा
६७. १०. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठ-अपदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा
६८. ११. संखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा
६९. १२. ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा
७०. १३. असंखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा
७१ १४. ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा।
(श. २५।२११)

देश कम्पता, सर्वकम्पता, निष्कम्पता

वा० — अथ परमाणु आदि प्रतै ईज सेजपणादिक करिकै निरूपण करतो प्रथम एकवचन करी कहै छै —

७२. परमाणुपुद्गल प्रभु! स्यूं देशे कंपाय?
कै कंपै छै सर्व ही, कै निरेज कंपै नांय?
७३. जिन कहै देश कंपै नहीं, कदा सर्व कंपाय।
कदा निरेज कंपै नहीं, प्रवर विचारो न्याय।।

७२. परमाणुपोग्गले णं भंते! किं देसेए? सव्वेए? निरेए?
७३. गोयमा! नो देसेए, सिय सव्वेए, सिय निरेए।
(श. २५।२१२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. द्विप्रदेशिक खंध पृच्छा, कदा देश कंपेह ।
सर्वे पिण कंपै तदा, कदा न कंपै तेह ।।
७५. एवं जावत जाणवुं, अनंत प्रदेशिक खंध ।
इकवचने ए आखियो, हिवै बहुवचन प्रबंध ।।
७६. प्रभु ! परमाणुपोग्गला, स्यूं बहुवच देस कंपाय ।
कै बहु वच सर्व कंपै अछै, कै बहुवच कंपै नांय ?
७७. जिन कहै देश कंपै नहीं, बहु वच सर्व कंपाय ।
वलि अचल पिण छै घणां, समकाले बिहुं थाय ।।

वा०—इहां घणां परमाणुआ सर्व थकी कंपै छै तिके पिण घणां, अनैं निरेजा नहीं कंपै तिके पिण घणां छै।

७८. दोय प्रदेशिया नीं पृच्छा, देसे पिण कंपाय ।
सर्वे पिण कंपै घणां, अचल बहु पिण थाय ।।
७९. एवं जावत जाणवा, अनंत प्रदेशिया खंध ।
बहुवचने ए आखिया, सखरी रीत संबंध ।।

पुद्गल की सकम्पता निष्कम्पता काल की अपेक्षा से

८०. इक वच परमाणु तिको, सर्वे कंपतो सोय ।
काल थकी भगवंत जी ! काल केतलो होय ?
८१. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय लग माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।
८२. अचलित काल कितो रहै ? जिन भाखै वच श्रिष्ठ ।
जघन्य एक समयो रहै, असंख काल उत्कृष्ट ।।

८३. इक वच दोय प्रदेशियो, देस कंपतो तेह ।
काल थकी भगवंतजी ! कितो काल रहै जेह ?
८४. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय लग माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।
८५. इक वच दोय प्रदेशियो, सर्व कंपतो सोय ।
काल थकी भगवंत जी ! कितो काल रहै जोय ?
८६. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय लग माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।
८७. इक वच दोय प्रदेशियो, अचल अकंप निरेय ।
काल थकी भगवंत जी ! कितो काल रहेय ?
८८. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय अवधार ।
उत्कृष्ट काल असंख ही, निरेज काल विचार ।।
८९. एवं जावत जाणवुं, अनंत प्रदेशिक खंध ।
इक वचने ए आखियो, हिव बहुवचने संध ।।
९०. बहु वच प्रभु ! परमाणुआ, चलित सर्व थी न्हाल ।
कितो काल रहै काल थी ? जिन भाखै सर्व काल ।।

९१. अचलित जे परमाणुआ, कितो काल रहै तेह ?
उत्तर श्री जिनवर दियै, सर्व काल रहै जेह ।।

७४. दुपदेसिए णं भंते ! खंधे—पुच्छा ।
गोयमा ! सिय देसेए, सिय सव्वेए, सिय निरेए ।
७५. एव जाव अणंतपदेसिए । (श. २५।२१३)

७६. परमाणुपोग्गला णं भंते ! किं देसेया ? सव्वेया ? निरेया ?
७७. गोयमा ! नो देसेया, सव्वेया वि, निरेया वि । (श. २५।२१४)

७८. दुपदेसिया णं भंते ! खंधा—पुच्छा ।
गोयमा ! देसेया वि, सव्वेया वि, निरेया वि ।
७९. एवं जाव अणंतपदेसिया । (श. २५।२१५)

८०. परमाणुपोग्गले णं भंते ! सव्वेए कालओ केवच्चिरं होइ ?
८१. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं । (श. २५।२१६)
८२. निरेए कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्ज कालं । (श. २५।२१७)
८३. दुपदेसिए णं भंते ! खंधे देसेए कालओ केवच्चिरं होइ ?
८४. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं । (श. २५।२१८)
८५. सव्वेए कालओ केवच्चिरं होइ ?
८६. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं । (श. २५।२१९)
८७. निरेए कालओ केवच्चिरं होइ ?
८८. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।
८९. एवं जाव अणंतपदेसिए । (श. २५।२२०)
९०. परमाणुपोग्गला णं भंते ! सव्वेया कालओ केवच्चिरं होंति ?
गोयमा ! सव्वद्धं । (श. २५।२२१)
९१. निरेया कालओ केवच्चिरं होंति ? सव्वद्धं । (श. २५।२२२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. बहु वच प्रभु ! दुप्रदेशिया, देसे कंपता न्हाल ।
किती काल रहै काल थी ? जिन भाखै सर्व काल ।।
९३. बहु वच प्रभु ! दुप्रदेशिया, सर्वे कंपता न्हाल ।
किती काल रहै काल थी ? जिन भाखै सर्व काल ।।
९४. बहु वच प्रभु ! दुप्रदेशिया, निरेज अचलित न्हाल।
किती काल रहै काल थी ? जिन भाखै सर्व काल ।।
९५. एवं जावत जाणवा, अनंत प्रदेशिया खंध ।
बहु वचने ए आखिया, स्थिति सेजादि संबंध ।।

सकम्प निष्कम्प पुद्‌गल का अन्तर

९६. इक वच परमाणु प्रभु ! सर्व चलित नें सोय ।
काल थकी किता काल नों, अंतर तेहनों होय ?
९७. जिन भाखै स्वस्थान नां, अंतर आश्रयी इष्ट ।
जघन्य थकी इक समय नों, असंख काल उत्कृष्ट ।।
९८. पर स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक जाण ।
उत्कृष्ट थी इमहीज ते, काल असंख पिछाण ।।
९९. इकवचने परमाणुओ, निरेज छै तसु न्हाल ।
किती काल नों अंतरो ? दाखै ताम दयाल ।।
१००. स्वस्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।
१०१. पर स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक जास ।
उत्कृष्ट काल असंख ही, अंतर भाख्यो तास ।।
१०२. प्रभु ! इक वच दोय प्रदेशिको, देश चलित नें देख ।
कितरो काल अंतर हुवै ? हिव जिन उत्तर पेख ।।
१०३. स्व स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक जाण ।
उत्कृष्ट काल असंख नों, अंतर तास पिछाण ।।
१०४. पर स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक धार ।
उत्कृष्ट काल अनंत ही, न्याय पूर्ववत सार ।।
१०५. सर्व चलित नों अंतरो, काल केतलो माण ?
एवं चेवज आखियो, देश एज जिम जाण ।।
१०६. दोय प्रदेशिक अचल नें, अंतरो कितरो काल ?
ए पिण इक वचने करी, तास उत्तर इम न्हाल ।।
१०७. स्व स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक माग ।
उत्कृष्ट आवलिका तणों, असंख्यातमों भाग ।।
१०८. पर स्थानांतर आश्रयी, जघन्य समय इक तेम ।
उत्कृष्ट काल अनंत ही, जाव अनंत प्रदेशिक एम ।।
१०९. बहु वच परमाणु तणें, सर्व चलित नें ताहि ।
किती काल प्रभु ! अंतरो ? जिन कहै अंतर नांहि ।।
११०. बहुवचने परमाणुआ, निरेज नोंज कहाय ।
किती काल अंतर हुवै ? जिन कहै अंतर नांय ।।

९२. दुप्पदेसिया णं भंते ! खंधा देसेया कालओ केवच्चिरं होंति ? सव्वद्धं । (श. २५।२२३)
९३. सव्वेया कालओ केवच्चिरं होंति ? सव्वद्धं । (श. २५।२४४)
९४. निरेया कालओ केवच्चिरं होंति ? सव्वद्धं ।
९५ एवं जाव अणंतपदेसिया । (श. २५।२२५)
९६. परमाणुपोग्गलस्स णं भंते ! सव्वेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?
९७. गोयमा ! सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।
९८. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एवं चेव । (श. २५।२२६)
९९. निरेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?
१००. सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।
१०१. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं । (श. २५।२१६)
१०२. दुपदेसियस्स णं भंते ! खंधस्स देसेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?
१०३. सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं असंखेज्जं कालं ।
१०४. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं । (श. २५।२२८)
१०५. सव्वेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ? एवं चेव जहा देसेयस्स । (श. २५।२२९)
१०६. निरेयस्स केवतियं कालं अंतरं होइ ?
१०७. सट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं आवलियाए असंखेज्जइभागं ।
१०८. परट्ठाणंतरं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अणंतं कालं । एवं जाव अणंतपदेसियस्स । (श. २५।२३०)
१०९. परमाणुपोग्गलाणं भंते ! सव्वेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ ? नत्थि अंतरं । (श. २५।२३१)
११०. निरेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ ? नत्थि अंतरं । (श. २५।२३२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा० —तीनूं काल नैं विषे जे समय पूछै ते समय **सैज परमाणु** पिण घणां अनैं निरेज परमाणु पिण घणां। किणहि काले जे एकला **सैज सकंप छै** इम न हुवै। तथा एकला निरेज अकंप छै इम पिण न हुवै। ते माटै बिहुं नों अंतर नथी।

१११. बहुवच दोय प्रदेशिया, देश चलित नैं ताहि।
किता काल अन्तर हुवै? जिन कहै अंतर नांहि।।

१११. दुपदेसियाणं भंते! खंधाणं देसेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ? नत्थि अंतरं। (श. २५।२३३)

११२. सर्व चलित अंतर कितो? जिन कहै अंतर नांय।
एवं जावत बहु वचे, अनंत प्रदेशिया पाय।।

११२. सव्वेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ? नत्थि अंतरं। (श. २५।२३४)
निरेयाणं केवतियं कालं अंतरं होइ? नत्थि अंतरं।
एवं जाव अणंतपदेसियाणं। (श. २५।२३५)

सकम्प निष्कम्प पुद्गल का अल्पबहुत्व

११३. सर्व चलित परमाणु नैं, तथा अचल नैं ताम।
कुण-कुण ते जावत हुवै, विसेसाहिया वा स्वाम?

११३. एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं सव्वेयाणं निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा?

११४. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, सर्व चलित परमाणु।
अचलित असंखगुणा कह्या, द्रव्य थकी ए जाणु।।

११४. गोयमा! सव्वत्थोवा परमाणुपोग्गला सव्वेया, निरेया असंखेज्जगुणा। (श. २५। २३६)

वा० द्रव्य चिताये परमाणु पद नैं सर्व चलितपणों अचलितपणों ए बे पदहीज हुवै ते कह्या। हिवै संखेज्जप्रदेशिक खंध असंख्यातप्रदेशिक खंध अनंतप्रदेशिक खंध—ए तीन पद छै तेहमें एक-एक पद नैं विषे तीन-तीन भेद करिवा—देश चलित, सर्व चलित, अचलित—ए तीन विशेषणपणां थकी तीनूंइ हुवै ते कहै छै—

११५. प्रभु! दोय प्रदेशिया खंध नैं, देश एज सर्व एय।
निरेज नैं कुण-कुण तिके, जाव विसेसाहिया ज्ञेय?

११५. एएसि णं भंते! दुपदेसियाणं खंधाणं देसेयाणं, सव्वेयाणं, निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) वेसेसाहिया वा?

११६. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, दोय प्रदेशिया खंध।
सर्व एज सर्व चलित ते, वारू जिन वच संध।।

११६. गोयमा! सव्वत्थोवा दुपदेसिया खंधा सव्वेया,

११७. तेह थकी देश चलित ते, असंखेजगुणा थात।
तेह थकी अचलित तिके, असंख्यातगुणा ख्यात।।

११७. देसेया असंखेज्जगुणा निरेया असंखेज्जगुणा।

११८. एवं जावत जाणवा, असंख प्रदेशिक खंध।
दोय प्रदेशिया नों परैं, पूर्व रीत प्रबंध।।

११८. एवं जाव असंखेज्जपदेसियाणं खंधाणं। (श. २५।२३७)

११९. ए प्रभु! अनंत प्रदेशिया, देश एज सर्व एय।
निरेज नैं कुण-कुण थकी, जाव विसेसाहिया ज्ञेय?

११९. एएसि णं भंते! अणंतपदेसियाणं खंधाणं देसेयाणं, सव्वेयाणं, निरेयाण य कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा?

१२०. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, अनंत प्रदेशिया खंध।
सर्व एज सर्व चलित ते, ए जिन वचन सुसंध।।

१२०. गोयमा! सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा सव्वेया,

१२१. तेह थकी अचलित जिके, अनंतगुणा है सोय।
तेह थकी देश चलित ते, अनंतगुणा अवलोय।।

१२१. निरेया अणंतगुणा, देसेया अणंतगुणा। (श. २५।२३८)

१२२. प्रभु! परमाणुपोग्गला, संख प्रदेशिया फेर।
असंख प्रदेशिया खंध वली, अनंत प्रदेशिका हेर।।

१२२. एएसि णं भंते! परमाणुपोग्गलाणं, संखेज्जपदेसियाणं, असंखेज्जपदेसियाणं अणंतपदेसियाण य खंधाणं

१२३. देश चलित सर्व चलित नैं, अचलित नैं फुन जोय।
द्रव्य थकी नैं प्रदेश थी, उभय थकी अवलोय।।

१२३ देसेयाणं, सव्वेयाणं, निरेयाणं दव्वट्ठयाए, पदेसट्ठयाए, दव्वट्ठपदेसट्ठयाए

१२४. कवण-कवण थी जाव ही, विसेसाहिया वा ताम।
अल्प बहुत्व त्रिहुं विध करी? पूछै गोतम स्वाम।।

१२४. कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा? बहुया वा? तुल्ला वा? विसेसाहिया वा?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां द्रव्यार्थ चिंताए एतलै द्रव्य थकी ११ पद नों अल्पबहुत्व कहै छै—परमाणु नैं सर्वएजपणों, निरेजपणों ए बे पद हुवै पिण देश एजपणों न हुवै। अनैं संख्यात प्रदेशिया खंध नैं देशएज, सर्वएज, निरेज ए तीन पद हुवै। अनैं असंख्यात प्रदेशिया खंध नैं पिण ए तीन पद हुवै। अनंत प्रदेशिया खंध नैं पिण ए तीन पद हुवै। एवं सगला ११ पद हुवै ते कहै छै—

वा०—इह सर्वेषामल्पबहुत्वाधिकारे द्रव्यार्थचिन्तायां परमाणुपदस्य सर्वैजत्वनिरेजत्वविशेषणात् संख्येयादीनां तु त्रयाणां प्रत्येकं देशैजसर्वैजनिरेजत्वैविशेषणादेकादश पदानि भवन्ति। (वृ. प. ८८७)

१२५. जिन कहै थोड़ा सर्व थी, अनंत प्रदेशिया खंध।
सर्व एज सर्व चलित ए, द्रव्य अर्थ करि संध।।

१२५. गोयमा! १. सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए

१२६. तेहथी अनंत प्रदेशिया, निरेज अचलित तेह।
दव्वट्ठयाए अनंतगुणा, द्वितीय बोल ए लेह।।

१२६. २. अणंतपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा

१२७. तेहथी अनंत प्रदेशिया, देश चलित ते देशेय।
दव्वट्ठयाए अनंतगुणा, तृतीय बोल ए ज्ञेय।।

१२७. ३. अणंतपदेसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा

१२८. तेहथी असंखप्रदेशिया, सर्व चलित जे सोय।
दव्वट्ठयाए अनंतगुणा, तुर्य बोल ए होय।।

१२८. ४. असंखेज्जपदेसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए अणंतगुणा

१२९. तेहथी संखप्रदेशिया, सर्व चलित सुविचार।
दव्वट्ठयाए असंखगुणा, बोल पंचमो धार।।

१२९. ५. संखेज्जपदेसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

१३०. तेहथी परमाणुपोग्गला, सर्व चलित जे होय।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंखगुणा अवलोय।।

१३०. ६. परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

१३१. तेहथी संख प्रदेशिया, देश चलित जे देख।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा लेख।।

१३१. ६. संखेज्जपदेसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

१३२. तेहथी असंख प्रदेशिया, देश चलित छै जेह।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा तेह।।

१३२. ८. असंखेज्जपदेसिया खंधा देसेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

१३३. तेहथी परमाणुपोग्गला, अचलित जेह निरेय।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा ज्ञेय।।

१३३. ९. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

१३४. तेहथी संख प्रदेशिया, निरेज अचलित न्हाल।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, संख्यातगुणा भाल।।

१३४. १०. संखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए संखेज्जगुणा

१३५. तेहथी असंख प्रदेशिया, अचलित जेह निरेज।
दव्वट्ठयाए असंखगुणा, ग्यारम पद उचरेज।।

१३५. ११. असंखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा।

१३६. सर्व थकी थोड़ा कह्या, अनंत प्रदेशिया जाण।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, श्री जिन वचन प्रमाण।।

१३६. पदेसट्ठयाए—सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया।

१३७. द्रव्य थकी जिम आखिया, प्रदेश थी इम पेख।
भणवा पद ग्यारै भला, नवरं इतरो विशेख।।

१३७. एवं पदेसट्ठयाए वि, नवरं—

१३८. जे परमाणुपोग्गला, अप्रदेशार्थपणेह।
भणिवा ए इण रीत सूं, पूर्वली परि लेह।।

१३८. परमाणुपोग्गला अपदेसट्ठयाए भाणियव्वा।

१३९. संख्यात प्रदेशिया खंध वलि, निरेज अचलित ताय।
प्रदेसट्ठयाए असंखगुणा, शेष तिमज कहिवाय।।

१३९. संखेज्जपदेसिया खंधा निरेया पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा। सेसं तं चेव।

वा०—जे द्रव्यार्थपणां नैं विषे संख्यात प्रदेशिया खंध निरेज-अचलित संख्यातगुणा ए द्रव्य नीं अल्पबहुत्व नैं विषे दशमों बोल कह्यो छै। अनैं इहां प्रदेश-अर्थपणां नैं विषे संख्यात प्रदेशिक खंध निरेज-अचलित असंख्यातगुणा प्रदेश थी कहिवा नैं परमाणुपुद्गल नैं अप्रदेश-अर्थपणैं कहिवो। ए दोय बोल में फेर। शेष द्रव्य थकी इग्यारै बोलां करी अल्पबहुत्व पूर्वे कही तिम प्रदेश थी पिण कहिवी।

वा०—एवं प्रदेशार्थतायामपि, उभयार्थतायां चैतान्येव विशतिः, सर्वैजपक्षे निरेजपक्षे च परमाणुषु द्रव्यार्थप्रदेशार्थपदयोर्द्रव्यार्थाप्रदेशार्थतेत्येवमेकीकरणेनाभिलापादिति। (वृ. प. ८८७)

हिवै द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थपणैं करी बीस पद सर्वएज पक्ष नैं विषे तथा निरेज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पक्ष नैं विषे ते कहै छै इहां कोइ पूछै जे द्रव्य थकी इग्यारे पद पूर्वे कह्या अनैं प्रदेश थी पिण ११ पद पूर्वे कह्या। इहां उभयार्थपणैं करी बाईस पद हुवै ते बीस पद किम कह्या ? तेहनों उत्तर-जे परमाणु नैं विषे वलि निरेज नैं विषे द्रव्यार्थ-प्रदेशार्थ —सेज नों द्रव्यार्थ-अप्रदेशार्थ इम एक करिवै करी बीस पद हुवै ते कहै छै—

१४०. सर्व थकी थोड़ा कह्या, अनंत प्रदेशिया खंध।
सर्व एज सर्व चलित ते, दव्वट्ठुयाए संध।।
१४१. तेहिज अनंत प्रदेशिया, सर्व चलित जे जाण।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, अनंतगुणा पहिछाण।।
१४२. तेहथी अनंत प्रदेशिया, अचलित जेह निरेज।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, अनंतगुणाज कहेज।।
१४३. तेहिज अनंत प्रदेशिया, निरेज अचलित न्हाल।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, अनंतगुणा ए भाल।।
१४४. तेहथी अनंत प्रदेशिया, देश चलित ते देख।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, अनंतगुणा सुविशेख।।
१४५. तेहिज अनंत प्रदेशिया, देश चलित जे दृष्ट।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, अनंतगुणा ए इष्ट।।
१४६. तेहथी असंख प्रदेशिया, सर्वचलित सुविचार।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, अनंतगुणा अवधार।।
१४७. तेहिज अनंत प्रदेशिया, सर्वचलित संपेख।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा लेख।।
१४८. तेहथी संख प्रदेशिया, सर्व चलित जे सोय।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा होय।।
१४९. तेहिज संख प्रदेशिया, सर्व चलित जे खंध।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, संख्यातगुणा[1] संध।।
१५०. तेहथी परमाणुपोग्गला, सर्व चलित संजात।
द्रव्य थकी अप्रदेश थी, असंख्यातगुणा आत।।
१५१. तेहथी संख प्रदेशिया, देश चलित दाखंत।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंखगुणा आखंत।।
१५२. तेहिज संख प्रदेशिया, देश चलित जे देशेज।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, संखगुणाज[2] कहेज।।
१५३. तेहथी असंख प्रदेशिया, देश चलित देसेय।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा ज्ञेय।।
१५४. तेहिज असंख प्रदेशिया, देश चलित जे देख।
प्रदेश-अर्थपणैं करी, असंख्यातगुणा लेख।।
१५५. तेहथी परमाणुपोग्गला, अचलित जे अवधार।
द्रव्य थकी अप्रदेश थी, असंखगुणा अधिकार।।
१५६. तेहथी संख प्रदेशिया, अचलित जेह निहाल।
ते द्रव्य-अर्थपणैं करी, संखगुणा ते भाल।।

१. अंगसुत्ताणि भाग २ में प्रस्तुत सन्दर्भ में असंख्यातगुणा पाठ है। वहां संख्यात-गुणा को पाठान्तर में लिया गया है।

२. अंगसुत्ताणि भाग २ में यहां 'असंखेज्जगुणा' पाठ है, किसी पाठान्तर का संकेत नहीं है।

१४०. १. सव्वत्थोवा अणंतपदेसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठुयाए

१४१. २. ते चेव पदेसट्ठुयाए अणंतगुणा

१४२. ३. अणंतपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठुयाए अणंतगुणा

१४३. ४. ते चेव पदेसट्ठुयाए अणंतगुणा

१४४. ५. अणंतपदेसिया खंधा देसेया दव्वट्ठुयाए अणंतगुणा

१४५. ६. ते चेव पदेसट्ठुयाए अणंतगुणा

१४६. ७. असंखेज्जपदेसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठुयाए अणंतगुणा

१४७. ८. ते चेव पदेसट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१४८. ९. संखेज्जपदेसिया खंधा सव्वेया दव्वट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१४९. १०. ते चेव पदेसट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५०. ११. परमाणुपोग्गला सव्वेया दव्वट्ठ-अपदेसट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५१. १२. संखेज्जपदेसिया खंधा देसेया दव्वट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५२. १३. ते चेव पदेसट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५३. १४. असंखेज्जपदेसिया खंधा देसेया दव्वट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५४ १५. ते चेव पदेसट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५५. १६. परमाणुपोग्गला निरेया दव्वट्ठ-अपदेसट्ठुयाए असंखेज्जगुणा

१५६. १७. संखेज्जपदेसिया खंधा निरेया दव्वट्ठुयाए संखेज्जगुणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५७. तेहिज संख प्रदेशिया, अचलित जेह पिछाण।
प्रदेश-अर्थपणें करी, संखगुणा ते जाण।।
१५८. तेहथी असंख प्रदेशिया, अचलित ते अवलोय।
द्रव्य-अर्थपणें करी, असंख्यातगुणा होय।।
१५९. तेहिज असंख प्रदेशिया, अचलित जे आख्यात।
प्रदेश-अर्थपणें करी, असंख्यातगुणा थात।।

१५७. १८. ते चेव पदेसट्ठयाए संखेज्जगुणा

१५८. १९. असंखेज्जपदेसिया निरेया दव्वट्ठयाए असंखेज्जगुणा

१५९. ६. ते चेव पदेसट्ठयाए असंखेज्जगुणा। (श. २५।२३९)

सोरठा

१६०. प्रदेश थी कहि ताय, अस्तिकाय पुद्गल प्रतै।
अथ अन्य अस्तिकाय, प्रदेश थी कहियै अछै।।

१६०. अनन्तरं पुद्गलास्तिकायः प्रदेशतश्चिन्तितः अथान्यानप्यस्तिकायान् प्रदेशत एव चिन्तयन्नाह— (वृ. प. ८८७)

अस्तिकाय के मध्यप्रदेश

१६१. *प्रभु! धर्मास्ति नां किता, मध्यप्रदेश कहेस?
श्री जिन भाखै तेहनां, छै अठ मध्य प्रदेश।।

१६१. कति णं भंते! धम्मत्थिकायस्स मज्झपदेसा पण्णत्ता?
गोयमा! अट्ठ धम्मत्थिकायस्स मज्झपदेसा पण्णत्ता। (श. २५।२४०)

सोरठा

१६२. धर्मास्ति नां इष्ट, अठ मध्यप्रदेश छै तिके।
रुचक प्रदेशज अष्ट, ते अवगाहक चूर्णि इम।।
१६३. वृत्तिकार संवादि, यद्यपि लोक प्रमाण करी।
धर्मास्तिकायादि, मध्य रत्नप्रभा तले।।
१६४. रत्न सक्कर रै बीच, अवकाशांतर नें विषे।
ह्वै तसु मध्य समीच, पिण रुचक विषे ते ह्वै नथी।।
१६५. तथापि दिशि नों जेह, ऊपजवो वलि विदिशि नों।
हुवै रुचक थी तेह, ते कारण इम जाणियै।।
१६६. धर्मास्तिकायादि, तास मध्ये वंछयो तिहां।
चूर्णि विषे संवादि, आख्यो एम संभावियै।।

१६२. 'अट्ठे धम्मत्थिकायस्स मज्झपएस' त्ति, एते च रुचकप्रदेशाष्टकावगाहिनोऽवसेया इति चूर्णिकारः। (वृ. प. ८८७)

१६३.१६४. इह च यद्यपि लोकप्रमाणत्वेन धर्मास्तिकायादेर्मध्यं रत्नप्रभावकाशान्तर एव भवति न रुचके (वृ. प. ७८७)

१६५,१६६. तथाऽपि दिशामनुदिशां च तत्प्रभवत्वाद्धर्मास्तिकायादि मध्यं तत्र विवक्षितमिति संभाव्यते, (वृ. प. ८८७)

१६७. *प्रभु! अधर्मास्तिकाय नां, कितरा मध्य प्रदेश?
एवं चेव अहीजियै, जिन वच अमल अशेष।।

१६७. कति णं भंते! अधम्मत्थिकायस्स मज्झपदेसा पण्णत्ता?
एवं चेव। (श. २५।२४१)

१६८. प्रभु! आगासत्थिकाय नां, मध्य प्रदेश कति ख्यात?
इम गोयम पूछ्यै छते, अष्ट कहै जगनाथ।।

१६८. कति णं भंते! आगासत्थिकायस्स मज्झपदेसा पण्णत्ता?
एवं चेव। (श. २५।२४२)

१६९. प्रभु! जीवास्तिकाय नां, कितरा मध्य प्रदेश?
जिन कहै आठ परूपिया, मध्य प्रदेश विशेष।।

१६९. कति णं भंते! जीवत्थिकायस्स मज्झपदेसा पण्णत्ता?
गोयमा! अट्ठ जीवत्थिकायस्स मज्झपदेसा पण्णत्ता। (श. २५।२४३)

सोरठा

१७०. इक-इक जीव तणांज, अठ-अठ मध्य प्रदेश छै।
निज-निज अवगाहनाज, तेहनें मध्य भागेज छै।।

१७०. 'जीवत्थिकायस्स' त्ति प्रत्येकं जीवानामित्यर्थः, ते च सर्वस्यामवगाहनायां मध्यभाग एव भवन्तीति मध्यप्रदेशा उच्यन्ते, (वृ. प. ८८७)

१७१. *ए प्रभु! जीवास्ति तणां, जे मध्य अष्ट प्रदेश।
किता आकाश प्रदेश नैं, अवगाह्या सुविशेष?

१७१. एए णं भंते! अट्ठ जीवत्थिकायस्स मज्झपदेसा कतिसु आगासपदेसेसु ओगाहंति?

*लय: वेग पधारो महिल थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७२. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक आकाश प्रदेश ।
तेह विषे जे जीव नां, आठूं मध्य रहेस ।।

सोरठा

१७३. ते जीव प्रदेश तणांज, संकोच विकास धर्म थी ।
इक नभ विषे समाज, अठ मध्य जीव प्रदेश ह्वै ।।

१७४. *अथवा बे ऊपर तथा, तिण ऊपर रहै तेह ।
तथा च्यार ऊपर रहै, फुन पंच ऊपर जेह ।।

१७५. अथवा षट ऊपर रहै, उत्कृष्ट अष्ट विषेह ।
पिण सप्त विषे निश्चै नहीं, वस्तु स्वभाव थी एह ।।

१७६. सेवं भंते ! स्वामजी, पणवीसम शत पेख ।
तंत तुर्य उद्देश नां, आख्या भाव अशेख ।।

१७७. च्यारसौ नैं बंयालीसमीं, आखी ढाल रसाल ।
भिक्षु भारिमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष विशाल ।।

पंचविंशतितमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।२५।४।।

१७२. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कंसि वा

१७३. 'जहन्नेणं एक्कंसि वे' त्यादि सङ्कोचविकाशधर्मत्वा-त्तेषाम् (वृ. प. ८८७)

१७४. दोहिं वा तीहिं वा चउहिं वा पंचहिं वा

१७५. छहिं वा, उक्कोसेणं अट्ठसु, नो चेव णं सत्तसु ।
(श. २५।२४४)
'नो चेव णं सत्तसु वि' त्ति वस्तुस्वभावादति ।
(वृ. प. ८८७)

१७६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २५।२४५)

ढाल : ४४३

दूहा

१. तुर्य उद्देशक नैं विषे, पुद्गल आदि आख्यात ।
पजवा तास अनंत है, ते पंचम अवदात ।।

पर्यव पद

२. कतिविध प्रभु ! पजवा कह्या ?
जिन कहै दोय प्रकार ।
जीव तणां पजवा वलि, अजीव नां अवधार ।।

वा.—पज्जव कहितां पर्यव । ते गुण धर्म अनैं विशेष ए सहु पर्यायवाची इम भगवती वृत्तौ । जीव पज्जव ते जीव नों धर्म । इम अजीव पज्जवा पिण ।

३. जेम पन्नवणा सूत्र नों, पंचम पर्यव पद ।
तेह सर्व भणवो इहां, हिव जिन वचन सुहद ।।

१. चतुर्थोद्देशके पुद्गलास्तिकायादयो निरूपितास्ते च प्रत्येकमनन्तपर्यवा इति पञ्चमे पर्यवाः प्ररूप्यन्ते
(वृ. प. ८८७)

२. कतिविहा णं भंते ! पज्जवा पण्णत्ता ?
गोयमा! दुविहा पज्जवा पण्णत्ता, तं जहा—जीव-पज्जवा य, अजीवपज्जवा य ।

वा.—'पज्जव' त्ति पर्यवा गुणा धर्म्मा विशेषा इति पर्यायाः, 'जीवपज्जवा य' त्ति जीवधर्म्मा एव-मजीवपर्यवा अपि, (वृ. प. ८८९)

३. पज्जवपदं निरवसेसं भाणियव्वं जहा पण्णवणाए ।
(श. २५।२४६)
'जहा पन्नवणाए' त्ति पर्यवपदं च—विशेषपदं प्रज्ञा-पनायां पञ्चमं, (वृ. प. ८८९)

*लय : वेग पधारो महिल थी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—पंचमा पद [५।२] नैं विषे कह्यं ते इम—जीवपज्जवा णं भंते ! कि संखेज्जा अणंता ? गोयमा ! नो संखेज्जा नो असंखेज्जा अणंता इत्यादि । द्रव्य करिकै द्रव्य थकी जीव एक द्रव्य, अनैं क्षेत्र थकी ते जीव द्रव्य असंख्यात प्रदेशावगाढ, एक-एक जीव नैं असंख्यात प्रदेश अवगाढपणां थकी । अनैं काल थकी आदि अंत रहित । अनैं भाव थकी ज्ञानादिक रूप जीव नां अनन्ता अगुरुलघु पर्याय । अनैं अजीव द्रव्य पिण इमहीज । द्रव्य थकी परमाणु एक द्रव्य, अनैं क्षेत्र थकी एक प्रदेश अवगाढईज । काल जघन्य स्थिति एक समय अनैं मध्यम स्थिति दोय आदि समय अनैं उत्कृष्ट स्थिति संख्याती उत्सर्प्पिणी-अवसर्प्पिणी । अनैं भाव थकी वर्ण, गंधादि रूप अनंती पर्याय । इम द्विप्रदेशिकादिक खंध नैं पिण जाणवो । इति पन्नवणा वृत्तौ ।[1]

तथा उत्तराध्येन अठावीसमें पज्जवा नैं ओलखाया ते कहै छै—

गुणाणमासओ दव्वं एगदव्वसिया गुणा ।
लक्खणं पज्जवाणं तु, उभओ अस्सिया भवे ।।२८।६।।

गुण रूपादिक नों आश्रय—आधार द्रव्य छै । एतलै जेहनैं विषे गुण उपजै, उपजी नै रहै अनै विलय हुवै, तेहनैं द्रव्य कहियै, ए प्रथम पद नों अर्थ कह्यो ।

एगदव्वस्सिआ गुणा—एक द्रव्य नैं विषे आश्रिता कहितां रह्या गुण रूपादिक एतलै द्रव्य नैं विषे गुण रह्या—ए दूजा पद नों अर्थ । लक्खणं पज्जवाणं तु—पर्याय नां लक्षण ते आगल कहियै छै—तु शब्द विशेषण नैं अर्थे । उभओ अस्सिया भवे—द्रव्य अनैं गुण ए बिहुं नैं विषे रह्या हुवै । उत्तराध्ययन की तेरमी गाथाए कह्यं—

एगत्तं च पुहत्तं च संखा संठाणमेव च ।
संजोगा य विभागा य, पज्जवाणं तु लक्खणं ।।२८।१३

हिवै पर्याय नो लक्षण कहियै छै—एगत्तं—एकपणुं भिन्न परमाणूआदिक नैं विषे पिण जे एक ए घटादिक इम एहवी प्रतीति नों हेतु च शब्द नों अर्थ, उत्तर ते आगलो पद तेहनीं अपेक्षाय छै । तेहनैं समुच्चय कहियै । पुहत्तं च ए एह थकी जे जुओ, ते पृथकपणुं । च समुच्चय । संखा—संख्या एक बे त्रिण इत्यादि । संठाणं—संस्थान परिमंडलादिक आकार । एव ते पूर्णे, च समुच्चय, संजोगा य ए आंगुलियादि मिल्या होवै ते संजोग, अनैं विभागा य तेहिज जूआपणुं थावुं ते विभाग । च शब्द थी नवा पुराणादिकपणुं ग्रहिवुं । पज्जवाणं—ए पर्याय नुं लक्खणं—असाधारण लक्षण जाणिवो । तु पूर्णे ।

सोरठा

४. पज्जव विशेष ख्यात, तेह तणां अधिकार थी ।
अथ आगल अवदात, काल विशेष कहीजियै ।।

४. विशेषाधिकारात्कालविशेषसूत्रम्— (वृ. प. ८८९)

काल पद

*जय-जय वाणी जिन तणीं ।। (ध्रुपदं)

५. इक आवलिका नैं विषे प्रभु ! स्यूं समया संख्यात ?
कै असंख्यात समया हुवै, कै समय अनंता थात ?

६. जिन भाखै सुण गोयमा ! नहीं ह्वै समय संख्यात ।
असंख्याता समया हुवै, अनंत समय नहिं थात ।।

५. आवलिया णं भंते ! किं संखेज्जा समया ? असंखेज्जा समया ? अणंता समया ?

६. गोयमा ! नो संखेज्जा समया, असंखेज्जा समया, नो अणंता समया । (श. २५।२४७)

---

१. प्रज्ञापना—वृत्ति में उक्त वार्तिक का संवादी प्रमाण नहीं मिला ।

***लय : खुसामदी दातार नीं**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. इक आणापाणु नैं विषे प्रभु ! स्यूं समया संख्यात ?
एवं चेव अहीजियै, पूर्ववत अवदात ।।

८. एक थोव नैं विषे प्रभु ! पूर्व भाख्यो जेम ।
लव नैं विषे पिण इमज छै, मुहूर्त्त विषे पिण एम ।।

वा.—सात उस्वास-निश्वास नों एक थोव, सात थोव नीं एक लव, ७७ लव नों एक मुहूर्त्त ।

९. इम अहोरात्रि विषे वलि, पक्ष विषे पिण एम ।
मास विषे पिण इमज हि, ऋतु विषे वलि तेम ।।

वा.—तीस मुहूर्त्त नों एक अहोरात्रि, पनरै अहोरात्रि नों एक पक्ष, दोय पक्ष नों एक मास, दोय मास नीं एक ऋतु ।

१०. एवं अयन विषे वलि, वर्ष विषे इम लेह ।
जुग विषे इमहीज ही, इम सौ वर्ष विषेह ।।

वा.—तीन ऋतु नों एक अयन, दोय अयन नों एक वर्ष, पांच वर्ष नों एक जुग, बीस जुग नां सौ वर्ष ।

११. सहस्र वर्ष नैं विषे वलि, लक्ष वर्ष विषेह ।
पूर्व नां अंग नैं विषे, पूर्व विषे इम लेह ।।

वा.—८४ लाख वर्ष नैं एक पूर्व नों अंग कहियै । अनै ८४ लाख वर्ष नैं ८४ लाख गुणा कीजै तेहनै एक पूर्व कहियै । जेहनां वर्ष ७० लाख कोड़ अनै ५६ हजार कोड़ वर्ष हुवै ।

१२. एवं तुटित नां अंग विषे, तुटित विषे इमहीज ।
एवं अडड नां अंग विषे, अडड विषे इम लीज ।।

वा.—पूर्व नैं ८४ लाख गुणा करै तिवारै एक तुटित नों अंग कहियै । तुटित नां अंग नैं ८४ लाख गुणा करै तिवारै एक तुटित कहियै । तुटित नैं ८४ लाख गुणा करै तिवारे एक अडड नों अंग कहियै । अडड नां अंग नैं ८४ लाख गुणा करै तिवारे एक अडड कहियै । इम आगल पिण एक-एक पद नैं विषे ८४ लाख गुणा करिवा ।

१३. एवं अवव नां अंग विषे, अवव विषे इम जाण ।
हूहूक अंग विषे वलि, हूहूक विषे पहिछाण ।।

१४. उत्पल अंग विषे वलि, इम उत्पल विषे ताय ।
एवं पद्म नां अंग विषे, पद्म विषे इम पाय ।।

१५. एवं नलिण नां अंग विषे, इमहिज नलिण विषेह ।
अर्थनिपुरांग नैं विषे, अर्थनिपूरेह ।।

१६. एवं अयुत नां अंग विषे, अयुत विषे पिण एम ।
नयुत नां अंग विषे वलि, नयुत विषे पिण तेम ।।

१७. एवं पयुत नां अंग विषे, पयुत विषे इम होय ।
चूलिका अंग विषे वलि, चूलिका विषे जोय ।।

१८. सीसपहेलिका नां अंग विषे, सीसपहेलिया विषेह ।
पल्योपम नैं विषे वलि, सागरोपम लेह ।।

१९. इम अवसर्प्पिणी नैं विषे, उत्सर्प्पिणी विषेह ।
असंख्याता समय कह्या, सगली ठामेह ।।

७. आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जा० ? एवं चेव ।
(श. २५।२४८)

८. थोवे णं भंते ! किं संखेज्जा० ? एवं चेव । एवं लवे वि, मुहुत्ते वि,

९. एव अहोरत्ते, एवं पक्खे, मासे, उऊ,

१०. अयणे, संवच्छरे, जुगे, वाससए,

११. वाससहस्से, वाससयसहस्से, पुव्वंगे, पुव्वे,

१२. तुडियंगे, तुडिए, अडडंगे, अडडे,

१३. अववंगे, अववे, हूहूयंगे, हूहूए,

१४. उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे,

१५, नलिणंगे, नलिणे, अत्थनिपूरंगे, अत्थनिपूरे,

१६. अउयंगे, अउए, नउयंगे, नउए,

१७. पउयंगे, पउए, चूलियंगे, चूलिए,

१८. सीसपहेलियंगे, सीसपहेलिया, पलिओवमे, सागरोवमे,

१९. ओसप्पिणी । एवं उस्सप्पिणी वि । (श. २५।२४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. इक पुद्गल परावर्त्त नैं विषे, स्यूं समया संख्यात ?
अथवा असंख अनंत ही, समया हुवै नाथ ! ।।
२१. जिन भाखै सुण गोयमा ! नहीं ह्वै संख्यात ।
असंख्याता पिण नहीं ह्वै, समय अनंता थात ।।
२२. एवं अतीत अद्धा विषे, अद्धा अनागत मांय ।
सर्व काल नैं विषे वली, समय अनंता थाय ।।
२३. बहु वच आवलिका नैं विषे प्रभु! स्यूं समय संख्यात ?
असंख्याता समया हुवै, कै समय अनंता थात ?
२४. जिन भाखै सुण गोयमा ! संख्याता नांय ।
असंख्याता समया कदा, कदा अनंता थाय ।।
२५. बहु आणापाणु विषे प्रभु ! स्यूं समया संख्यात ?
इत्यादिक पूछा कियां, एवं चेव कहात ।।
२६. बहु वच थोव विषे पृच्छा, एवं चेव कहेह ।
एवं जाव बहु वच करी, उत्सर्प्पिणी लगेह ।।
२७. बहु पुद्गलपरावर्त्त विषे, स्यूं समया संख्यात ?
इत्यादिक पूछा कियां, भाखै जगनाथ ।।

२८. संख्याता समया नथी, नहीं हुवै असंख्यात ।
समय अनंता हुवै सही, एह समय अवदात ।।
२९. इक वच आणापाणु विषे, आवलिका स्वाम ?
स्यूं संख्याती हुवै अछै, कै असंख अनंती आम ?
३०. जिन भाखै सुण गोयमा ! आवलिका संख्यात ।
असंख आवलिका हुवै नहीं, अनंत आवलिका न थात ।।
३१. इक थोव विषे पिण इमज ही, एवं जावत जाण ।
एक सीसपहेलिया लगै, कहिवो पहिछाण ।।
३२. एक पल्योपम नैं विषे, आवलिका स्वाम ।
स्यूं संख्याती हुवै प्रभु ! कै असंख अनंती पाम ?
३३. जिन कहै संख्याती नहीं, असंख आवलिका थाय ।
अनंत आवलिका हुवै नहीं, एक पल्योपम मांय ।।
३४. एवं एक सागर विषे, अवसर्प्पिणी विषेह ।
इक उत्सर्प्पिणी नैं विषे, इमहीज कहेह ।।
३५. पुद्गलपरावर्त्त इक विषे, पूछचां कहै स्वाम ।
आवलिका संख असंख नहीं, अनंत आवलिका पाम ।।

३६. एवं जावत इक वचे, सर्व अद्धा कहिवाय ।
जाव शब्द में अतीत ही, अनागत फुन आय ।।
३७. बहु वच आणापाणु विषे, आवलिका सोय ।
स्यूं संख्याती हुवै प्रभु ! कै असंख अनंती होय ?
३८. जिन कहै संख्याती कदा, कदा असंख हुवै तेम ।
अनंत आवलिका हुवै कदा, जाव उत्सर्प्पिणी एम ।।

२०. पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जा समया—पुच्छा ।
२१. गोयमा ! नो संखेज्जा समया, नो असंखेज्जा समया, अणंता समया ।
२२. एवं तीयद्धा, अणागयद्धा, सव्वद्धा । (श. २५।२५०)

२३. आवलियाओ णं भंते ! किं संखेज्जा समया—पुच्छा ।
२४. गोयमा ! नो संखेज्जा समया, सिय असंखेज्जा समया, सिय अणंता समया । (श. २५।२५१)
२५. आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जा समया० ? एवं चेव । (श. २५। २५२)
२६. थोवा णं भंते ! किं संखेज्जा समया ? एवं चेव । एवं जाव ओसप्पिणीओ त्ति । (श. २५।२५३)
२७. पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जा समया—पुच्छा ।
गोयमा !
२८. नो संखेज्जा समया, नो असंखेज्जा समया, अणंता समया । (श. २५।२५४)
२९. आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ—पुच्छा ।
३०. गोयमा ! संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, नो अणंताओ आवलियाओ ।
३१. एवं थोवे वि । एवं जाव सीसपहेलिय त्ति । (श. २५।२५५)
३२. पलिओवमे णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ—पुच्छा ।
३३. गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, असंखेज्जाओ आवलियाओ, नो अणंताओ आवलियाओ ।
३४. एवं सागरोवमे वि । एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि । (श २५।२५६)
३५. पोग्गलपरियट्टे—पुच्छा ।
गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ ।
३६ एवं जाव सव्वद्धा । (श. २५।२५७)

३७. आणापाणू णं भंते ! किं संखेज्जाओ आवलियाओ—पुच्छा ।
३८. गोयमा ! सिय संखेज्जाओ आवलियाओ सिय असंखेज्जाओ, सिय अणंताओ ।····एवं जाव उस्सप्पिणीओ । (श. २५।२५८,२५९)

१. काल के विभागों में अवसर्पिणी के बाद उत्सर्पिणी आता है । पुद्गलपरावर्तन इसके आगे है । अंगसुत्ताणि में ओसप्पिणी के बाद पोग्गलपरियट्टा है । पाठ के संक्षेपीकरण में यत्र तत्र ऐसा अन्तर रहा है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. पुद्गलपरावर्त्त बहु विषे, पूछ्यां कहै जिनराय ।
आवलिका संख असंख नहीं, अनंत आवलिका थाय ।।

४०. स्यूं प्रभु ! एक थोव विषे, आणापाणु संख्यात ।
कै असंख आणापाणु हुवै, कै अनंत आणापाणु थात ?

४१. जेम आवलिका नैं विषे, वक्तव्यता कही तेम ।
इमहिज आणापाणु विषे, सहु कहिवी एम ।।

४२. इम इण आलावे करी, जावत फुन ताय ।
एक सीसपहेलिया लगै, वक्तव्यता कहिवाय ।।

४३. स्यूं प्रभु ! एक सागर विषे, पल्योपम संख्यात ?
कै असंख्याती पल्य हुवै, कै अनंत पल्योपम थात ?

४४. जिन कहै एक सागर विषे, पल्योपम संखेह ।
असंख अनंत पल्य नहीं हुवै, इम उत्सर्प्पिणी विषेह ।।

४५. इक पुद्गलपरावर्त्त विषे, स्यूं ह्वै पल्य संख्यात ?
इत्यादिक पूछा कियां, भाखै जगनाथ ।।

४६. संख असंख पल्य नहीं ह्वै, पल्य अनंती होय ।
एवं जावत जाणवो, सर्व काल लग सोय ।।

४७. घणां सागर नैं विषे प्रभु ! स्यूं ह्वै पल्य संख्यात ?
कै असंख अनंती पल्य हुवै ? तब भाखै नाथ ।।

४८. कदा संख्याती पल्य हुवै, कदा असंख्याती थाय ।
अनंत पल्योपम ह्वै कदा, बहु सागर मांय ।।

४९. एवं जावत बहु वचे, अवसर्प्पिणी मांय ।
बहु उत्सर्प्पिणी नैं विषे, पूर्ववत कहिवाय ।।

५०. बहु पुद्गलपरावर्त्त विषे, पूछ्यां कहै जिनराय ।
पल्योपम संख असंख नहीं, अनंत पल्योपम थाय ।।

५१. बहु उत्सर्प्पिणी नैं विषे, स्यूं सागर संख्यात ?
वक्तव्यता जिम पल्य तणीं, तिम सागर नीं थात ।।

५२. प्रभु ! इक पुद्गलपरावर्त्त विषे, स्यूं संख्याती जेह ।
हुवै प्रभु अवसर्पिणी ? इत्यादिक पूछेह ।।

५३. जिन कहै इक पुद्गल विषे, संख असंख न होय ।
अनंत हुवै अवसर्प्पिणी, वारू न्याय सुजोय ।।

५४. बहु पुद्गलपरावर्त्त विषे, अवसर्प्पिणी तेह ।
स्यूं संख्याती हुवै प्रभु ! इत्यादिक पूछेह ।।

५५. जिन कहै संख्याती नहीं, असंख्याती न थाय ।।
अनंत हुवै अवसर्प्पिणी, बहु पुद्गल मांय ।।

५६. इक पुद्गलपरावर्त्त विषे, स्यूं संख्याती होय ।
अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी ? पूछा अवलोय ।।

३९. पोग्गलपरियट्टा णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो संखेज्जाओ आवलियाओ, नो असंखेज्जाओ आवलियाओ, अणंताओ आवलियाओ ।

४०. थोवे णं भंते ! किं संखेज्जाओ आणापाणूओ ? असंखेज्जाओ० ?

४१. जहा आवलियाए वत्तव्वया एवं आणापाणूओ वि निरवसेसा ।

४२. एवं एतेणं गमएणं जाव सीसपहेलिया भाणियव्वा । (श. २५।२६१)

४३. सागरोवमे णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा ?—पुच्छा ।

४४. गोयमा ! संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, नो अणंता पलिओवमा । एवं ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि । (श. २५।२६२)

४५. पोग्गलपरियट्टे णं—पुच्छा ।

४६. गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा । एवं जाव सव्वद्धा । (श. २५।२६३)

४७. सागरोवमा णं भंते ! किं संखेज्जा पलिओवमा—पुच्छा ।
गोयमा !

४८. सिय संखेज्जा पलिओवमा, सिय असंखेज्जा पलिओवमा, सिय अणंता पलिओवमा ।

४९. एवं जाव ओसप्पिणी वि, उस्सप्पिणी वि । (श. २५।२६४)

५०. पोग्गलपरियट्टा णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो संखेज्जा पलिओवमा, नो असंखेज्जा पलिओवमा, अणंता पलिओवमा । (श. २५।२६५)

५१. ओसप्पिणी णं भंते ! किं संखेज्जा सागरोवमा ? जहा पलिओवमस्स वत्तव्वया तहा सागरोवमस्स वि । (श. २५। २६६)

५६. पोग्गलपरियट्टे णं भंते ! किं संखेज्जाओ ओसोप्पिणि-उस्सप्पिणीओ—पुच्छा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. जिन कहै संख असंख नहीं, अनंती हुवै जेह।
एवं जावत जाणवो, सर्व अद्धा लग एह ।।

५७. गोयमा ! नो संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, नो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। एवं जाव सव्वद्धा।
(श. २५।२६७)

५८. बहु पुद्गलपरावर्त्त विषे, स्यूं संख्याती भदंत !
अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी ? पूछै गोयम संत ।।

५८. पोग्गलपरियट्टा णं भंते ! किं संखेज्जाओ ओसप्पिणि- उस्सप्पिणीओ—पुच्छा।

५९. जिन कहै अव-उत्सर्प्पिणी, संख्याती न थाय।
असंख्याती पिण नहीं हुवै, अनंती कहिवाय ।।

५९. गोयमा ! नो संखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ नो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, अणंताओ औसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। (श. २५।२६८)

६०. प्रभु ! अतीत अद्धा विषे, स्यूं संख्याता सोय ?
पुद्गलपरावर्त्त हुवै, कै असंख अनंता जोय ?

६०. तीतद्धा णं भंते ! किं संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा—पुच्छा।

६१. जिन कहै संख्याता नहीं, असंख्याता नांहि।
अनंत पुद्गलपरावर्त्त हुआ, गया काल रै मांहि।

६१. गोयमा ! नो संखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, नो असंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा, अणंता पोग्गलपरियट्टा।

६२. काल अनागत नें विषे, होसी इमज अनंत।
एवं सर्व अद्धा विषे, अनंत पुद्गल हुंत ।।

६२. एवं अणागयद्धा वि। एवं सव्वद्धा वि।
(श. २५।२६९)

६३. काल अनागत ते प्रभु ! स्यूं संख्यातो सोय ?
जेह अतीत अद्धा थकी, कै असंख अनंतो होय ?

६३. अणागयद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ तीतद्धाओ ? असंखेज्जाओ० अणंताओ०

६४. जिन भाखै सुण गोयमा ! काल अनागत सोय।
संख्यातो नहिं छै तिको, गया काल थी जोय ।।

६४. गोयमा ! नो संखेज्जाओ तीतद्धाओ,

६५. असंख्यातो पिण ते नहीं, काल अतीत थी जेह।
वलि अनंतो पिण नहीं, गया काल थी तेह ।।

६५. नो असंखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो अणंताओ तीतद्धाओ।

६६. काल अनागत छै तिको, गया काल थकीज।
एक समय वर्त्तमान जे, अधिकोज कहीज ।।

६६. अणागयद्धा णं तीतद्धाओ समयाहिया,

६७. काल अतीतज छै तिको, काल अनागत थीज।
एक समय ऊणो हुवै, जिन वच सलहीज ।।

६७. तीतद्धा णं अणागयद्धाओ समयूणा।
(श. २५।२७०)

वा०—अनागत काल अतीत काल थकी एक समय अधिक छै, ते किम ? जेह भणी अतीत काल नीं आदि नहीं, अनागत काल नों अंत नथी। ते माटै अनादि अनंतपणैं करी बिहुं सरीखा। ते बिहुं नैं मांहै भगवंत नों प्रश्न—समय वर्त्तै छै तेह अविनष्टपणैं करी अतीत काल मांहै प्रवेश न करै अविनष्टपणां नां साधर्म्य थकी। अनागत काल नैं विषे क्षेपवियै तिवारै समय अधिक अनागत काल हुवै एतला माटैज अतीतकाल अनागत काल थी समय ऊणो हुवै।

वा०—'अणागयद्धा णं तीतद्धाओ समयाहिय' त्ति अनागतकालोऽतीतकालात्समयाधिकः, कथं ? यतोऽतीतानागतौ कालावनादित्वानन्तत्वाभ्यां समानौ, तयोश्च मध्ये भगवतः प्रश्नसमयो वर्त्तते, स चाविनष्टत्वेनातीते न प्रविशति अविनष्टत्वसाधर्म्यादनागते क्षिप्तस्ततः समयातिरिक्ता अनागताद्धा भवति, अत एवाह—अनागतकालादतीतः कालः समयोनो भवतीति, (वृ. प. ८८९)

६८. सर्व काल भगवंत जी ! स्यूं संख्यातो कहेह।
जेह अतीत अद्धा थकी ? इत्यादिक पूछेह ।।

६८. सव्वद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ तीतद्धाओ—पुच्छा।

६९. जिन कहै संख्यातो नहीं, अद्धा अतीत थी जेह।
असंख अनंतो पिण नहीं, गया काल थी तेह ।।

६९. गोयमा ! नो संखेज्जाओ तीतद्धाओ, नो असंखेज्जाओ तीतद्धाओ, न अणंताओ तीतद्धाओ।

७०. सर्व अद्धा सहु काल ते, काल अतीत थी सोय।
दुगुणो समय अधिक वलि, वारू न्याय सुजोय ।।

७०. सव्वद्धा णं तीतद्धाओ सातिरेगदुगुणा,

---

*लय : खुसामदी दातार नीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

७१. काल अतीतज छै तिको, सर्व अद्धा थी पेख ।
अर्द्ध कहीजै तेहनें, ऊणो समयो एक ।।

वा०—सर्व काल अतीत काल थकी साधिक विमणो छै ते किम ? सर्व काल अतीत अनागत काल द्वय रूप छै । ते भाटै अतीत काल थकी एक समय वर्त्तमान तिणे करी अधिक विमणो हुवै । अतीत काल सर्व काल थकी थोड़ो-सो ऊणो अद्ध ऊणपणों ते वर्तमान समय छै तिको ऊणो ।

७२. सर्व काल भगवंत जी ! संख्यातो कहेह ।
जेह अनागत काल थी ? इत्यादिक पूछेह ।।

७३. जिन कहै संख्यातो नहीं, काल अनागत थीज ।
असंख अनंतो पिण नहीं, अनागत थी कहीज ।।

७४. सर्व अद्धा सहु काल ते, काल अनागत थीज ।
दुगुणो[1] तास कहीजियै, समय ऊण लहीज ।।

७५. काल अनागत छै तिको, सर्व काल थकीज ।
अर्द्ध तास कहियै वली, समय अधिक लहीज ।।

सोरठा

७६. उद्देश नें धुर जोय, आख्या छै पर्याय जे ।
कह्या भेद थी सोय, निगोद भेद प्रतै हिवै ।।

निगोद पद

७७. *प्रभु ! निगोदा कतिविधा ?
जिन कहै द्विविध कहीव ।
प्रथम निगोदा शरीर ते, द्वितीय निगोद नां जीव ।।

वा०—अनंतकायिक जीव नां शरीर ते निगोदा कहियै ए प्रथम भेद । साधारण नाम कर्म उदयवर्ती जीव ए द्वितीय भेद ।

७८. प्रभु ! निगोदा कतिविधा ? जिन कहै दोय प्रकार ।
सूक्ष्म निगोदा तथा वली, बादर निगोदा धार ।

७९. जेम जीवाभिगमे कह्यूं, भेद निगोद संवादि ।
भणिवा तिणहिज रीत सूं,
पज्जत्त अपज्जत्त इत्यादि ।।

सोरठा

८०. कह्या निगोदा जोय, तेह जीव पुद्गल तणां ।
परिणाम भेदज होय, हिव परिणामज भेद प्रति ।।

१. दुगुना

लय : खुसामदी दातार नीं

७१. तीतद्धा णं सव्वद्धाओ थोवूणए अद्धे ।
(श. २५।२७१)

वा०—'सव्वद्धा णं तीतद्धाओ सातिरेगदुगुण' त्ति सर्वाद्धा—अतीतानागताद्धाद्वयं, सा चातीताद्धातः सकाशात् सातिरेकद्विगुणा भवति, सातिरेकत्वं च वर्त्तमानसमयेनात एवातीताद्धा सर्वाद्धायाः स्तोकोनमर्द्धं, ऊनत्वं च वर्तमानसमयेनैव, (वृ. प. ८८९)

७२. सव्वद्धा णं भंते ! किं संखेज्जाओ अणागयद्धाओ—पुच्छा ।

७३. गोयमा ! नो संखेज्जाओ अणागयद्धाओ, नो असंखेज्जाओ अणागयद्धाओ, नो अणंताओ अणागयद्धाओ ।

७४. सव्वद्धा णं अणागयद्धाओ थोवूणगदुगुणा ।

७५. अणागयद्धा णं सव्वद्धाओ सातिरेगे अद्धे ।
(श० २५।२७२)

७६. पर्यवा उद्देशकादावुक्तास्ते च भेदा अपि भवन्तीति निगोदभेदान् दर्शयन्नाह— (वृ. प ८८९)

७७. कतिविहा णं भंते ! निओदा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा निओदा पण्णत्ता, तं जहा—निओयगा य, निओयगजीवा य । (श. २५।२७३)

वा०—'निगोदा य' त्ति अनन्तकायिकजीवशरीराणि 'निगोयजीवा य' त्ति साधारणनामकर्मोदयवर्त्तिनो जीवाः । (वृ. प. ८९०)

७८. निओदा णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमनिगोदा य, बायरनिओदा य ।

७९. एवं निओदा भाणियव्वा जहा जीवाभिगमे [५।३८-६०] तहेव निरवसेसं । (श. २५।२७४)
'जहा जीवाभिगमे' त्ति, अनेन दं सूचितं—'सुहुमनिगोदा णं भंते ! कतिविहा पन्नत्ता ? गोयमा ! दुविहा पन्नता, तंजहा—पज्जत्तगा य अपज्जत्तगा य' इत्यादि । (वृ. प. ८९०)

८०. अनन्तरं निगोदा उक्तास्ते च जीवपुद्गलानां परिणामभेदाद् भवन्तीति परिणामभेदान् दर्शयन्नाह— (वृ. प. ८९०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नाम (भाव) पद

८१. *नाम कह्या प्रभु ! कतिविधे ?
जिन कहै षट विध नाम ।
उदयिक जावत जाणवुं, सन्निपातिक ताम ।।

नमनं नाम: परिणामो भाव इति अनर्थान्तरम् ।

८२. अथ स्यूं उदयिक नाम थी ? उदयिक दोय प्रकार ।
उदयिक भेद प्रथम कह्यु, उदय-निष्पन्न अवधार ।।

८३. इम जिम शतरम शतक में, प्रथम उद्देशे माण ।
भाव विस्तार कह्यु तिहां, तिमज इहां पिण जाण ।।

८४. नवरं एह नानापणुं, शेष तिमज कहिवाय ।
जाव सन्निपातिक लगै, सेवं भंते ! ताय ।।

वा०—नवरं ए नानात्व सतरमा शतक नैं विषे भाव आश्रयी ए सूत्र कह्यु । अनैं इहां नाम शब्द ए विशेष ।

८५. शत पणवीसम नैं विषे, पंचमुद्देशक गम्य ।
उगणीसै चउवीस में, श्रावण सुदि पंचम्य ।।
च्यारसौ नैं तयांलीसमीं, आखी ढाल अमंद ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' परमानंद ।।

पंचविंशतितमशते पंचमोद्देशकार्थ: ।।२५।५।।

८१. कतिविहे णं भंते ! नामे पण्णत्ते ?
गोयमा ! छव्विहे नामे पण्णत्ते, तं जहा—ओदइए जाव सण्णिवाइए । (श. २५।२७५)

८२. से किं तं ओदइए नामे ?
ओदइए नामे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—उदए य, उदयनिप्फण्णे य—

८३. एवं जहा सत्तरसमसए पढमे उद्देसए भावो तहेव इह वि,

८४. नवरं—इमं नामनाणत्तं सेसं तहेव जाव सण्णिवाइए । (श. २५।२७६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २५।२७७)

वा०—'नवरं इमं नाणत्तं' ति सप्तदशशते भावमाश्रित्येदं सूत्रमधीतं इह तु नामशब्दमाश्रित्येत्येतावान् विशेष इत्यर्थः । (वृ. प. ८९०)

ढाल ४४४

दूहा

१. पंचमुद्देशक अंत में, नाम भेद आख्यात ।
नाम भेद थी हिव छठे, निर्ग्रंथ भेद कहात ।।

२. परूपणा धुर द्वार ए, वेद राग कल्प धार ।
चारित्र फुन परिसेवणा, ज्ञान तीर्थ लिंग सार ।।

३. सरीर क्षेत्रज काल गति, संजम पज्जव उदार ।
जोग अनैं उपयोग फुन, कषाय लेश विचार ।।

४. फुन परिणामज कर्म-बंध, कर्म प्रतै वेदेह ।
कर्म तणींज उदीरणा, तेवीसम द्वारेह ।।

५. अंगीकार फुन छांडवो, संज्ञा नैं फुन आहार ।
भव वलि इक बहु भव विषे, आवै कितरी वार ।।

१. पञ्चमोद्देशकान्ते नामभेद उक्तो, नामभेदाच्च निर्ग्रन्थभेदा भवन्तीत्यतस्ते षष्ठेऽभिधीयन्ते । (वृ. प. ८९०)

२. १. पण्णवण २. वेद ३. रागे ४. कप्प ५. चरित्त ६. पडिसेवणा ७. नाणे । ८. तित्थे ९. लिंग

३. १०. सरीरे ११. खेत्ते १२. काल १३. गइ १४. संजम १५. निकासे ।।१।। १६,१७. जोगुवओग १८. कसाए १९. लेसा

४. २०. परिणाम २१. बंध २२. वेदे य । २३. कम्मोदीरण

५. २४. उवसंपजहण्ण, २५. सण्णा य आहारे ।।२।। २७. भव २८. आगरिसे

*लय : खुसामदी दातार नी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. कालान्तर समुद्घात फुन, खित्त फर्शणा भाव ।
प्रमाण अल्पबहुत्व ए, निग्गंथाण कहाव ।।

६. २९,३०. कालंतरे य ३१. समुग्घाय ३२. खेत्त ३३. फुसणा य । ३४. भावे ३५. परिमाणे खलु, ३६. अप्पाबहुयं नियंठाणं ।।३।।

निर्ग्रन्थ के प्रकार

७. ए षट-तीसज द्वार करि, निर्ग्रंथ भणी कहेह ।
नगर राजगृह नैं विषे, जावत एम वदेह ।।

७. रायगिहे जाव एवं वयासी—

८. हे भदंत ! निर्ग्रंथ ते, किता परूप्या आप ?
जिन कहै पंच परूपिया, नाम जूजुआ स्थाप ।।

८. कति णं भंते ! नियंठा पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंच नियंठा पण्णत्ता,

९. सर्वविरति प्रतिपन्न जे, तेहनें पिण सुविमास ।
विचित्र चारित्र मोह नीं, क्षयोपशमादि तास ।।
१०. तेहथी भेद जुआ-जुआ, मुनिवर नां सुविधान ।
छठा थी चवदम लगै, कहियै नव गुणस्थान ।।

९,१०. साधवः, एतेषां च प्रतिपन्नसर्वविरतीनामपि विचित्रचारित्रमोहनीयकर्मक्षयोपशमादिकृतो भेदोऽवसेयः, (वृ. प ८९१)

११. जिन कहै पंच निर्ग्रंथ ते, पुलाक बकुश पिछाण ।
कुशील नै निर्ग्रंथ फुन, पंचम स्नातक जाण ।।

११. तं जहा—पुलाए, बउसे, कुसीले, नियंठे, सिणाए । (श. २५।२७८)

वा० पुलाक—निःसार धान्य नों कण पुलाक नीं परैं पुलाक । संजम सार अपेक्षाए तेह संयमवंत थको पिण थोड़ो-सो तेह चारित्र प्रतै असार करतो ते पुलाक १ । बकुस—काबरो ते बकुस इति बकुस । संजम जोग थकी बकुस २ । कुसील—कुत्सित शील चरण जेहनैं ते कुशील ३ । निर्ग्रंथ—नीकल्यो ग्रंथ कहितां मोहनीय कर्म थकी ते निर्ग्रंथ ४ । स्नातक—घातिकर्म लक्षण मल-पटल क्षालन थी स्नातक ५ ।

वा०—तत्र 'पुलाय' त्ति पुलाको—निस्सारो धान्यकणः पुलाकवत्पुलाकः संयमसारापेक्षया, स च संयमवानपि मनाक् तमसारं कुर्वन् पुलाक इत्युच्यते, 'बउसे' त्ति बकुशं—शबलं कर्बुरमित्यनर्थान्तरं, ततश्च बकुशसंयमयोगाद्बकुशः 'कुसीले' त्ति कुत्सितं शीलं—चरणमस्येति कुशीलः 'नियंठे' त्ति निर्गतो ग्रन्थात्—मोहनीयकर्माख्यादिति निर्ग्रन्थः 'सिणाए' त्ति स्नात इव स्नातो घातिकर्म्मलक्षणमलपटलक्षालनादिति । (वृ. प. ८९१)

सोरठा

१२. वृत्तिकार इह रीत, द्विविध पुलाक आखियो ।
लब्धि पुलाक प्रतीत, द्वितीय कह्यु प्रतिसेवना ।।

१२. तत्र पुलाको द्विविधो लब्धिप्रतिसेवाभेदात् (वृ. प. ८९१)

१३. लब्धि-पुलाकज आद, लब्धि विशेषजवन्त जे ।
पामी शक्ति संवाद, लब्धि-पुलाक कहीजियै ।।

१३. तत्र लब्धिपुलाको लब्धिविशेषवान्, (वृ. प. ८९१)

वा०—इहां वृत्तिकार कह्यो—संघादिक नै काजै जिणे लब्धे करी चक्रवर्ती प्रति पिण चूर्ण करै तिणे लब्धि करी युक्त ते लब्धिपुलाक जाणवो ।

अनेरा आचार्य इम कहै—आसेवन थकी जे ज्ञान पुलाक तेहनैं एहवी लब्धि तेहिज लब्धि पुलाक । तेहथी व्यतिरिक्त कोई अनेरो नथी इति भगवती नीं टीका में कह्यु ।

हिवै आसेवना पुलाक आश्रयी प्रथम पन्नवणद्वार कहै छै—

वा०—यदाह—
संघाइयाण कज्जे चुण्णिज्जा चक्कवट्टिमवि जीए ।
तीए लद्धीए जुओ लद्धिपुलाओ मुणेयव्वो ।।१।।
अन्ये त्वाहुः—आसेवनतो यो ज्ञानपुलाकस्तस्येयमीदृशी लब्धिः स एव लब्धिपुलाको न तद्व्यतिरिक्तः कश्चिदपर इति ।
आसेवनापुलाक पुनराश्रित्याह— (वृ. प. ८९१)

पुलाक निर्ग्रंथ के प्रकार

*सुण सुखदाणी, ए तो निर्ग्रंथ भाख्या नाणी ।। (ध्रुपदं)

१४. प्रभु ! केतलै भेदे पुलागं ? तब भाखै जिन महाभागं ।
ओ तो परुप्यो पंच प्रकारो, धुर ज्ञान पुलाक विचारो ।।

१४. पुलाए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणपुलाए,

१५. दर्शण पुलाकज बीजो, फुन चरित्त पुलाकज तीजो ।
तुर्य लिंग पुलाकज तामो, यथासूक्ष्म पुलाक पंचम नामो ।।

१५. दंसणपुलाए, चरित्तपुलाए, लिंगपुलाए, अहासुहुमपुलाए नामं पंचमे । (श० २५।२७९)

*लय : सुण चिरताली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१६. ठाणांग टीका मांहि, पंचम ठाणे अर्थ इम ।
तृतीय उदेशे[1] ताहि, कहियै तिण अनुसार थी ।।

१६. होइ पुलाओ दुविहो लद्धिपुलाओ तहेव इयरो य ।
लद्धिपुलाओ संघाइकज्जे इयरो अ पंचविहो ।।
(स्था. वृ. प. ३२०)

१७. स्खलित मिलितज आदि, अतिचार करिकै तिको ।
ज्ञान आश्रयी वादि, करतुं असार आतम प्रति ।।

१७. तत्र स्खलितमिलितादिभिरतिचारैर्ज्ञानमाश्रित्यात्मानमसारं कुर्वन् ज्ञानपुलाकः ।
(स्था. वृ. प. ३२०)

१८. इणहिज रीत पिछाण, कुदृष्टि संस्तव आदि करि ।
दर्शन आश्रयी जाण, असार करतुं आतम प्रति ।।

१८. एवं कुदृष्टिसंस्तवादिभिर्दर्शनपुलाकः ।
(स्था. वृ. प. ३२०)

१९. मूल उत्तर गुण मांय, प्रतिसेवन ते दोष थी ।
चरण पुलाक कहिवाय, देश विराधक जाणवुं ।।

१९. मूलोत्तरगुणप्रतिसेवनातश्चरणपुलाकः ।
(स्था. वृ. प. ३२०)

२०. जेम कह्यो छै लिंग, अधिक ग्रहण थी वलि तथा ।
कारण विना प्रसंग, अलिंग करवा थी कह्युं ।।

२०. यथोक्तलिंगाधिकग्रहणात् निष्कारणेऽन्यलिंगकरणाद्वा लिंगपुलाकः ।
(स्था. वृ. प. ३२०)

२१. किंचित प्रमाद थीज, अथवा मन करिकै वली ।
अकल्प ग्रहण थकीज, एह यथासूक्ष्म कह्यो ।।

२१. किंचित्प्रमादान्मनसाऽकल्प्यग्रहणाद्वा यथासूक्ष्मपुलाको नाम पंचम इति ।
(स्था. वृ. प. ३२०)

वा०—'अत्र कोई पूछै—सम्यक्त्व असार करै ते दूजो दर्शन पुलाक कह्यो तो समक्त्व विना पुलाक नियंठो चारित्र किम रहै ? तेहनुं उत्तर—ए संपूर्ण सम्यक्त्व नथी गयुं । समदृष्टि नां पज्जवा नीं हाण करै । ते हाण नीं अपेक्षाय सम्यक्त्व असार करै तथा मन में तो सुद्ध श्रद्धै पिण पाखंडी नीं संगति नां वस थकी किणहि वेला वचन द्वार करिकै अधर्म नैं धर्म कहिवे दर्शण पुलाक हुवै, ते पिण ज्ञानी जाणैं ।' [ज० स०]

बकुश निर्ग्रंथ के प्रकार

२२. *हे प्रभु ! बकुश रूपं, ओ तो कतिवध आप परूपं ?
जिन कहै पंच प्रकारो, धुर आभोग बकुश धारो ।।

२२. बउसे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—आभोगबउसे ।

सोरठा

२३. करै विभूषा जेह, शरीर नैं उपकरण नीं ।
जाणंतो सेवेह, एह बकुस आभोग है ।।

२३. 'आभोगबउसे' त्ति आभोगः साधूनामकृत्यमेतच्छरीरोपकरणविभूषणमित्येवं ज्ञानं तत्प्रधानो बकुश आभोगबकुशः ।
(वृ. प. ८९२)

२४. बकुश उभयविध होय, धुर उपकरणज-बकुश है ।
द्वितीय भेद अवलोय, शरीर-बकुस कहीजियै ।।

२४. बकुशो द्विविधो भवत्युपकरणशरीरभेदात् ।
(वृ. प. ८९१)

२५. तत्र वस्त्र पात्रादि, उपधि विभूषा अनुवर्त्ति छै ।
एहवुं शील संवादि, ते उपकरण-बकुश कह्युं ।।

२५. तत्र वस्त्रपात्राद्युपकरणविभूषानुवर्त्तनशील उपकरणबकुशः ।
(वृ. प. ८९१,८९२)

२६. मुख कर चरण नखादि, जे तनु नां अवयव तणीं ।
करै विभूषा बाधि, शरीर-बकुश कह्युं तिको ।।

२६. करचरणनखमुखादिदेहावयवविभूषाऽनुवर्ती शरीरबकुशः ।
(वृ. प. ८९२)

२७. ते इम द्विविध होय, तो पिण पंच प्रकार है ।
आगल कहियै सोय, धुर आभोग बकुश कह्युं ।।

२७. स चायं द्विविधोऽपि पञ्चविधः, तथा चाह—'बउसे ण' मित्यादि ।
(वृ. प. ८९२)

२८. *अणाभोग बकुश फुन बीजो, संबुड बकुश कह्युं तीजो ।
असंबुड बकुश आमो, यथासूक्ष्म बकुश पंचम नामो ।।

२८. अणाभोगबउसे, संवुडबउसे, असंवुडबउसे, अहासुहुमबउसे नामं पंचमे ।
(श. २५।२८०)

---

*लय : सुण चिरताली

१. स्थानांगवृत्ति के पंचम स्थान के द्वितीय उद्देशक में यह बात मिलती है । संभव है जयाचार्य को प्राप्त आदर्श में तृतीय उद्देशक हो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२९. अजाणतो सेवेह, फुन सहसातपणैं करी ।
उत्तर गुण लोपेह, अनाभोग बकुश तिको ।।

३०. छानैं दोष लगाय, संबुड बकुश ते कह्यं ।
सेवै प्रगटज ताय, जेह असंवृत्त बकुश है ।।

३१. किंचित प्रमादवान, अक्षि मलादिक काढतो ।
शोभा अर्थे जान, तेह यथासूक्ष्म बकुश ।।

३२. गाथा वृत्ति रै मांहि, मूल उत्तर गुण नें विषे ।
संवृत बकुश ताहि, दोष लगावै विरुद्ध ते ।।

३३. ठाणांग वृत्ति में ताहि, गाथा में आख्यो इसो ।
मूल उत्तर गुण मांहि, दोष सेवै संबुड बकुश ।।

३४. ए पिण विरुद्ध पिछाण, तास न्याय कहियै अछै ।
आगल एहवुं जाण, प्रतिसेवणा द्वार में ।।

३५. उत्तरगुण रै मांय, बकुश सेवै दोष प्रति ।
मूलगुण न लगाय, एहवुं सूत्रे वचन छै ।।

३६. तिणसूं एह विरुद्ध, भगवती ठाणांग वृत्ति में ।
गाथा तिका असुद्ध, सूत्र देख निर्णय करो ।।

२९. सहसाकारी अनाभोगबकुशः । (स्था. वृ. प. ३२०)

३०. प्रच्छन्नकारी संवृतबकुशः, प्रकटकारी असंवृतबकुशः । (स्था. वृ. प. ३२०)

३१. किंचित्प्रमादी अक्षिमलाद्यपनयन् वा यथासूक्ष्मबकुशो नाम पंचम इति । (स्था. वृ. प. ३२०)

३२. मूलुत्तरेहिं संबुड विवरीअ असंवुडो होइ । (भ. वृ. प. ८९२)

३३. मूलोत्तरगुणेषु संवृतः, विपरीतोऽसंवृतो भवति । (स्था. वृ. प. ३२१)

३४, ३५. बउसे णं—पुच्छा ।
गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा । जइपडिसेवए होज्जा कि मूलगुणपडिसेवए होज्जा ? उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ?
गोयमा ! नो मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुण-पडिसेवए होज्जा । (भ. श. २५.३०९, ३१०)

कुशील निर्ग्रंथ के प्रकार

३७. *प्रभु ! कुशील कितलै प्रकारो ?
जिन भाखै द्विविध धारो ।
धुर पडिसेवणा-कुशीलो, दूजो कषाय-कुशील समीलो ।।

वा०—हिवैं बिहुं नों शब्दार्थ कहै छै—सेवना सम्यग आराधना वली तेहनों प्रतिपक्ष एतलै असम्यक आराधना ते प्रतिसेवणा । ते प्रतिसेवना करिकै कुशील ते प्रतिसेवना-कुशील । कषाय करिकै कुशील ते कषाय-कुशील ।

३८. पडिसेवणा-कुशील भदंतो ! ओ तो कतिविध तास कहंतो ?
जिन कहै पंच प्रकारो, धुर ज्ञान पडिसेवण धारो ।।

३९. दर्शण पडिसेवण बीजो, वली चरित पडिसेवणा तीजो ।
वलि लिंग पडिसेवणा माणी, यथासूक्ष्म पडिसेवणा जाणी ।।

वा०—ज्ञान पडिसेवणा कुशील, दर्शण पडिसेवणा कुशील इत्यादिक सर्व ठिकाणे कुशील कहिवो । ज्ञान नीं प्रतिसेवना ते विराधना तेह थकी कुशील ते ज्ञान प्रतिसेवना कुशील । इम अन्य पिण ।

ज्ञान करिकै उपजीवै ते ज्ञान पडिसेवणा कुशील । दर्शण करिकै उपजीवै ते दर्शण पडिसेवणा कुशील । चारित्र करिकै ऊपजीवै ते चारित्र पडिसेवणा कुशील । लिंग करिकै उपजीवै ते लिंग पडिसेवणा कुशील । संसार नैं विषे ए तपस्वी इम सुणी हरषै ते यथासूक्ष्म पडिसेवणा कुशील ।

एहिज अर्थ सोरठियै दूहै करी कहै छै—

३७. कुसीले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पडिसेवणा-कुसीले य कसायकुसीले य । (श. २५।२८१)
वा०—'पडिसेवणाकुसीले य' त्ति तत्र सेवना—सम्यगाराधना तत्प्रतिपक्षस्तु प्रतिषेवणा तया कुशीलः प्रतिसेवनाकुशीलः 'कसायकुसीले' त्ति कषायैः कुशीलः कषायकुशीलः । (वृ. प. ८९२)

३८. पडिसेवणाकुसीले ण भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणपडि-सेवणाकुसीले ।

३९. दंसणपडिसेवणाकुसीले, चरित्तपडिसेवणाकुसीले, लिंगपडिसेवणाकुसीले अहासुहुमपडिसेवणाकुसीले नामं पंचमे । (श. २५।२८२)
वा०—'नाणपडिसेवणाकुसीले' त्ति ज्ञानस्य प्रतिषेवणया कुशीलो ज्ञानप्रतिषेवणाकुशीलः एवमन्येऽपि ।
उक्तञ्च—
"इह नाणाइकुसीलो उवजीवं होइ नाणपभिईए ।
अहसुहुमो पुण तुस्से एस तवस्सित्तिसंसाए ।।१।।

---

*लय : सुण चिरताली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४०. ज्ञान करीनैं जेह, उपजीवन करतो छतो।
ज्ञान कुशील कहेह, इमहिज दर्शन चरित्त लिंग ।।

४१. ए तपस्वी जग मांय, एम सुणी नैं हरखतो।
यथासूक्ष्म कहिवाय, प्रतिसेवना कुशील ए ।।

४२. लिंग पडिसेवण स्थान, किहांइक दीसै छै इसो।
तप पडिसेवण जान, ठाणांग वृत्ति विषे कह्यु ।।

४३. *कषाय-कुशील भदंतो ! प्रभु ! कितै प्रकारै हुंतो ?
जिन कहै पंच प्रकारो, ज्ञान कषाय कुशील विचारो ।।

४४. दर्शण कषाय कुशील देखायो,
चारित्त कषाय कुशील कहायो।
लिंग कषाय कुशील संमीलो, यथासूक्ष्म कषाय कुशीलो ।।

सोरठा

४५. चिहुं कषाय करी मील, ज्ञान प्रतैज प्रजुंजतो।
ज्ञान कषाय कुशील, इमहिज दर्शण लिंग फुन ।।

४६. सराप देतो सोय, चरित्त कषाय कुशील ते।
यथासूक्ष्म अवलोय, मन करि क्रोधादिक करै ।।

४७. अथवा जे ज्ञानादि, कषाय करी विराधतो।
व्याख्यान भेद करि वादि, आख्यो ज्ञानादिक तणों ।।

४८. भगवती वृत्ति मझार, तेह थकी ए आखियो।
वलि ठाणांग विचार, वृत्ति थकी कहियै अछै ।।

४९. क्रोधादिक करि जाण, जे विद्या विज्ञान प्रति।
प्रजुंजतो पिछाण, ज्ञान कषाय कुशील ते ।।

५०. क्रोधादिक करि ताय, ग्रंथ प्रतैज प्रजुंजतो।
तेह प्रतै कहिवाय, दर्शण कषाय कुशील ते ।।

५१. चरित्त कुशील सराप, लिंग कुशील लिंग फेरवै।
क्रोधादिक मन व्याप, यथासूक्ष्म पंचम कह्यु ।।

निर्ग्रंथ निर्ग्रंथ के प्रकार

५२. *प्रभु ! निर्ग्रंथ कितलै प्रकारो ? जिन भाखै पंच विध सारो।
प्रथम समय निर्ग्रंथो, वलि अपढम समय सुतंतो ।।

५३. चरिम समय निर्ग्रंथज चारु, अचरिम समय निर्ग्रंथ उदारु।
यथासूक्ष्म निर्ग्रंथो, ओ तो पंचम नाम शोभंतो ।।

४०,४१. नाणादी उवजीवइ अहसुहुमो अह इमो मुणेयव्वो।
साइज्जंतो रागं वच्चइ एसो तवच्चरणी ।।
(स्था. वृ. प. ३२०,३२१)

४२. नाणे दंसणचरणे तवे य अहसुहुमए य बोद्धव्वे।
(स्था. वृ. प. ३२०)

४३. कषायकुसीले णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा— नाणकसाय-कुसीले।

४४. दंसणकसायकुसीले, चरित्तकसायकुसीले, लिंगकसाय-कुसीले, अहासुहुमकसायकुसीले नामं पंचमे।
(श. २५।२८३)

४५. 'नाण कसायकुसीले' त्ति ज्ञानमाश्रित्य कषायकुशीलो ज्ञानकषायकुशील;, एवमन्येऽपि।
इह गाथा—"णाणंदंसणलिंगे जो जुंजइ कोहमाणमाईहिं।
सो नाणाइकुसीलो कसायओ होइ विन्नेओ ।।१।।

४६. चरित्तंमि कुसीलो कसायओ जो पयच्छई सावं।
मणसा कोहाईए निसेवयं होई अहसुहुमो ।।२।।
(वृ.प. ८९२)

४७. अहवावि कसाएहिं नाणाईणं विराहओ जो उ।
सो नाणाइकुसीलो णेओ वक्खाणभेएणं ।।३।।
(वृ.प. ८९२)

४९. क्रोधादिना विद्यादिज्ञानं प्रयुञ्जानो ज्ञानकुशील:।
(स्था. वृ. प. ३२०)

५०. दर्शनग्रन्थं प्रयुञ्जानो दर्शनत:।
(स्था वृ. प. ३२०)

५१. शापं ददद् चारित्रत:, कषायैर्लिंगान्तरं कुर्वन् लिंगत:, मनसा कषायान् कुर्वन् यथासूक्ष्म:।
(स्था वृ. प. ३२०)

५२. नियंठे णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा पढमसमय-नियंठे, अपढमसमयनियंठे,

५३. चरिमसमयनियंठे अचरिमसमयनियंठे, अहासुहुम-नियंठे नामं पंचमे। (श. २५।२८४)

---

*लय : सुण चिरताली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

५४. अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण, सर्वकाल निर्ग्रंथ नुं ।
वर ग्यारम गुणठाण, अथवा द्वादशमें गुणे ।।

५५. प्रथम समय वर्त्तमान, पढम समय निर्ग्रंथ जे ।
शेष समय में जान, द्वितीय भेद अपढम समय ।।

५४,५५. 'पढमसमयनियंठे' इत्यादि, उपशान्तमोहाद्धायाः क्षीणमोहच्छद्मस्थाद्धायाश्चान्तर्मुहूर्त्तप्रमाणायाः प्रथमसमये वर्त्तमानः प्रथमसमयनिर्ग्रंथः शेषेष्वप्रथमसमयनिर्ग्रन्थः । (वृ. प. ८९२)

५६. चरिम समय वर्तेह, चरिम समय निर्ग्रंथ जे ।
चरिम समय बिन जेह, अचरिम समय नियंठ ते ।।

५६. एवं निर्ग्रन्थाद्धायाश्चरमसमये चरमसमयनिर्ग्रन्थः शेषेष्वितरः । (वृ. प. ८९२)

५७. यथासूक्ष्म सलहीज, सामान्ये करि पंचमो ।
संज्ञा आगम कीज, पारिभाषिकी ते कही ।।

५७. सामान्येन तु यथासूक्ष्मेति पारिभाषिकी संज्ञा । (वृ. प. ८९२)

वा०—यथासूक्ष्म ए सामान्य करिकै आगम की संज्ञाईज । जे भणी सर्व पुलाकादि भेद नैं विषे पिण पंचमो भेद यथासूक्ष्म इम छै तेह थकी इहां पिण निर्ग्रंथ नां भेद नैं विषे पंचमो भेद यथासूक्ष्म । इम वली ते संज्ञा मात्रईज छै पिण अन्वर्थक नहीं ।

५८. पुलाक प्रमुख मझार, यथासूक्ष्म पंचम कह्यं ।
तेह थकी अवधार, यथासूक्ष्म निर्ग्रंथ पिण ।।

५९. संज्ञा मात्रज एह, पिण नहिं छै अन्वर्थकः ।
टीका तणीज लेह, पर्याय थी ए आखियो ।।

स्नातक निर्ग्रंथ के प्रकार

६०. *प्रभु ! स्नातक कति भेदेहो ? जिन भाखै पंचविध जेहो ।
अच्छवी प्रथम भेद कहियै, तसु अर्थ वृत्ति थी लहियै ।।

६०. सिणाए णं भंते ! कतिविहे पण्णत्ते ?
गोयमा ! पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—अच्छवी,

सोरठा

६१. अच्छवि अव्यथक ताहि, स्नातक तणां स्वरूप नैं ।
जाण्यो जायै नाँहि, एक आचार्य इम कहै ।।

६१. 'अच्छवी' त्ति अव्यथक इत्येके, (वृ. प. ८९२)

हिवै अन्य आचार्य कहै ते कहै छै—

६२. छवि योग थी जेह, शरीर प्रति कहियै छवि ।
तनु योग निरोध करेह, जेहनैं नहीं ते अच्छवि ।।

६२. छवियोगाच्छविः—शरीरं तद्योगनिरोधेन यस्य नास्त्यसावच्छविक इत्यन्ये । (वृ. प. ८९२)

वलि अनेरा आचार्य इम कहै—

६३. खेध सहित व्यापार, तेहनां अस्तिपणां थकी ।
क्षपी तेह अवधार, तत्-निषेध थी अक्षपी ।।

६३. क्षपा—सखेदो व्यापारस्तस्या अस्तित्वात्क्षपी तन्निषेधादक्षपीत्यन्ये । (वृ. प. ८९२)

६४. अथवा घाती च्यार, कर्म खपायां थी पछै ।
तत्क्षपण अभाव विचार, कहियै तेहनैं अक्षपी ।।

६४. घातिचतुष्टयक्षपणानन्तरं वा तत्क्षपणाभावादक्षपीत्युच्यते । (वृ. प. ८९२)

६५. *असबल एकांत विशुद्ध, एहवो चारित्र तसु अविरुद्ध ।
नहिं अतिचार रूप पंको, ए दूजो भेद अवंको ।।

६५. असबले
'अशबलः' एकान्तविशुद्धचरणोऽतिचारपङ्काभावात् (वृ. प. ८९२)

६६. अकर्म अंश कहिवाया, च्यारूं घाति कर्म खपाया ।
भेद कह्यो ए तीजो, हिवै चोथो भेद सुणीजो ।।

६६. अकम्मंसे
'अकर्म्मांशः' विगतघातिकर्म्मा (वृ. प. ८९२)

---

*लय : सुण चिरताली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. शुद्ध केवलज्ञान-दर्शण धारी, ए भेद चउथो सुविचारी ।
अर्हन जिन केवली तीनं, एकार्थ तुर्य भेद सुचीनं ।।

वा०—संसुद्ध केवलज्ञान-दर्शणधारी ए चउथो भेद । अनै अर्हा, जिन, केवली ए तीनूं शब्द एकार्थ स्नातक नां चतुर्थ भेद अभिधायक एतलै चउथा भेद जिमहीज छै ।

६८. अपरिश्रावी वदीतं, ते कर्मबंध करि रहीतं ।
ए जोग निरोध नैं जाणं, पंचम भेद चवदम गुणठाणं ।।

वा०—इहां वृत्तिकार कह्यु—उत्तराध्येन[१] नैं विषे अर्हा जिन केवली ए पंचमो भेद कह्यु पिण अपरिश्रावी कह्यु ज नथी । इहां अवस्था नां भेद करिकै भेद किणही वृत्ति करतां इहां अनै अनेरा ग्रन्थ नैं विषे न कह्यु । तिण प्रकार करिकै ईज अम्हनै इम जणाय छै—शब्द नय नीं अपेक्षा करिकै एहनां भेद जाणवा जोइयै । शक्र पुरंदरादिवत इति ए पन्नवण प्रथम द्वार कह्यु ।

निर्ग्रंथ में वेद

६९. पुलाक प्रभु ! अवलोय, स्यूं सवेदे अवेदे होय ?
जिन कहै सवेदक कहियै, पिण अवेदके नहिं लहियै ।।

सोरठा

७०. पुलाकादि त्रिण जेह, उपशम क्षायक श्रेणि नहीं ।
तिणसूं सवेदकेह, पिण ते अवेदके नथी ।।

७१. *जो सवेदके कहिवाय, तो स्त्री वेदे स्यूं थाय ?
कै पुरुष वेदे पहिछाणी, कै पुरुष नपुंसके जाणी ?

७२. जिन भाखै स्त्री वेदे नांही, हुवै पुरुष वेदके त्यांही ।
वलि पुरुष नपुंसक वेदे, हुवै एह कृत्रिम तनु खेदे ।।

सोरठा

७३. वृत्ति विषे इम वाय, स्त्री नैं पुलाक लब्धि नां ।
अभावथीज कहाय, धुर पुलाक नियंठो नथी ।।

७४. पुरुष छतो अवलोय, जेह नपुंसक वेदको ।
वर्द्धितपणादि होय, पिण स्वरूप थी न नपुंसको ।।

७५. *प्रभु ! बकुस सवेदे स्यूं होय, कै अवेदके अवलोय ?
जिन कहै सवेदके थाय, पिण अवेदके न कहाय ।।

७६. जो सवेदके हुवै सोय, तो स्यूं इत्थी वेदके होय ?
कै पुरुष वेदके पाय, कै पुरुष नपुंसक थाय ?

* लय : सुण चिरताली

१. उत्तराध्ययन में यह प्रसंग नहीं मिला

६७ संसुद्धनाणदंसणधरे अरहा जिणे केवली

वा०—'संशुद्धज्ञानदर्शनधरः' केवलज्ञानदर्शनधारीति चतुर्थः अर्हन् जिनः केवलीत्येकार्थं शब्दत्रयं चतुर्थस्नातकभेदार्थाभिधायकम् (वृ. प. ८९२)

६८. अपरिस्सावी । (श. २५।२८५)
'अपरिश्रावी' परिश्रवति—आश्रवति कर्म्म बध्नातीत्येवंशीलः परिश्रावी तन्निषेधादपरिश्रावी—अबन्धको निरुद्धयोग इत्यर्थः, अयं च पञ्चमः स्नातकभेदः । (वृ. प. ८९२)

वा०—उत्तराध्ययनेषु त्वर्हन् जिनः केवलीत्ययं पञ्चमो भेद उक्तः, अपरिश्रावीति तु नाधीतमेव, इह चावस्थाभेदेन भेदो न केनचिद्वृत्तिकृतेहान्यत्र च ग्रन्थे व्याख्यातस्तत्र चैवं संभावयामः—शब्दनयापेक्षयैतेषां भेदो भावनीयः शक्रपुरन्दरादिवदिति प्रज्ञापनेति गतम् । (वृ. प. ८९२, ८९३)

६९. पुलाए णं भंते ! किं सवेदए होज्जा ? अवेदए होज्जा ?
गोयमा ! सवेदए होज्जा, नो अवेदए होज्जा । (श. २५।२८६)

७०. 'नो अवेयए होज्ज' त्ति पुलाकबकुशप्रतिसेवाकुशीलानामुपशमक्षपकश्रेण्योरभावात् (वृ. प. ८९३)

७१. जइ सवेदए होज्जा किं इत्थिवेदए होज्जा ? पुरिसवेदए होज्जा ? पुरिसनपुंसगवेदए होज्जा ?
गोयमा ! नो इत्थिवेदए होज्जा, पुरिसवेदए होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए होज्जा । (श. २५।२८७)

७३. 'नो इत्थिवेयए' त्ति स्त्रियाः पुलाकलब्धेरभावात् । (वृ. प. ८९३)

७४. 'पुरिसनपुंसगवेयए' त्ति पुरुषः सन् यो नपुंसकवेदको वर्द्धितकत्वादिभावेन भवत्यसौ पुरुषनपुंसकवेदकः न स्वरूपेण नपुंसकवेदक इतियावत् । (वृ. प. ८९३)

७५. बउसे णं भंते ! किं सवेदए होज्जा ? अवेदए होज्जा ?
गोयमा ! सवेदए होज्जा, नो अवेदए होज्जा । (श. २५।२८८)

७६. जइ सवेदए होज्जा किं इत्थिवेदए होज्जा ? पुरिसवेदए होज्जा ? पुरिसनपुंसगवेदए होज्जा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७७. जिन कहै स्त्री वेदके मांय, वली पुरुष वेदके पाय।
फुन पुरुष नपुंसके समील, इमहिज पडिसेवणा कुशील ।।

७८. कषाय-कुशील भदंत ! स्यूं सवेदके पूछंत ?
जिन कहै सवेदक विषेह, तथा अवेदक **में** एह ।।

सोरठा

७९. कषाय-कुशील जेह, छठा सूं दशमा लगै।
हुवै सवेदी तेह, तथा अवेदी ह्वै तिके ।।

८०. *जो वेद रहित में हुंत, तो स्यूं उपशांत-वेदे कथंत ?
क्षीण-वेदे गुण धाम ? इम पूछै गोतम स्वाम ।।

८१. भाखै तब जिनराय, उपशांत-वेदे थाय।
अथवा ह्वै क्षीण-वेदे, तसु समझो न्याय अखेदे ।।

सोरठा

८२. छठे सातमे ठाण, करण अपूर्व अष्टमे।
हुवै सवेदे जाण, वेद मोह नीं उदय थी ।।

८३. नवम सवेदे आदि, वेद मोह उपशमावियां।
तथा खपायां साधि, हुवै अवेदक नवम गुण ।।

८४. उपशम वेदक जाण, तथा क्षीण वेदे इमज ।
हुवै नवम गुणठाण, उपशम-क्षय वेदक दशम ।।

८५. *जो वेद सहित में होय, तो स्यूं स्त्री वेदे ह्वै सोय ?
जिन कहै बकुस जिम एह, हुवै तीनूंइ वेद विषेह ।।

८६. हे भगवंत ! निर्ग्रंथ, स्यूं वेद सहित में हुंत ?
कै वेद रहित में कहियै ? ए गोयम प्रश्न सलहियै ।।

८७. जिन कहै सवेदके नांहि, ओ तो हुवै अवेदक मांहि।
निर्ग्रंथ में बे गुणठाण, ओ तो ग्यारम बारम जाण ।।

८८. जो हुवै अवेदे स्वामी, तो स्यूं उपशांत-वेदे धामी ?
कै क्षीण-वेदे निर्ग्रंथ ? ए गोयम प्रश्न शोभंत ।।

८९. तब भाखै जगनाथ, उपशांत-वेदे ख्यात ।
वली क्षीण-वेदे पिण होय, दोनूं श्रेणि निर्ग्रंथ नै जोय ।।

सोरठा

९०. एकादशमों ठाण, उपशम वेदक ते हुवै।
द्वादशमों पहिछाण, हुवै क्षीण वेदक पवर ।।

९१. *स्नातक हे भगवन्त ! स्यूं वेद सहित में हुंत ?
जिम निर्ग्रंथ नै ख्यात, तिम स्नातक नों अवदात ।।

***लय : सुण चिरताली**

७७. **गोयमा** ! इत्थिवेदए वा होज्जा, पुरिसवेदए वा होज्जा, पुरिसनपुंसगवेदए वा होज्जा। एवं पडिसेवणाकुसीले वि। (श. २५।२८९)

७८. कसायकुसीले णं भंते ! किं सवेदए—पुच्छा।
गोयमा ! सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा।
(श. २५।२९०)

७९. 'कसायकुसीले ण' मित्यादि, 'उवसंतवेदए वा होज्जा खीणवेयए वा होज्ज' त्ति सूक्ष्मसम्परायगुणस्थानकं यावत् कषायकुशीलो भवति।
(वृ. प. ८९३)

८०. जइ अवेदए किं उवसंतवेदए ? खीणवेदए होज्जा ?

८१. गोयमा ! उवसंतवेदए वा होज्जा, खीणवेदए वा होज्जा। (श. २५।२९१)

८२-८४. स च प्रमत्ताप्रमत्तापूर्वकरणेषु सवेदः अनिवृत्तिबादरे तूपशान्तेषु क्षीणेषु वा वेदेष्ववेदः स्यात्।
(वृ. प. ८९३)

८५. जइ सवेदए होज्जा किं इत्थिवेदए—पुच्छा।
गोयमा ! तिसु वि जहा बउसो। (श.२५।२९२)

८६. नियंठे णं भंते ! किं सवेदए—पुच्छा।

८७. गोयमा ! नो सवेदए होज्जा, अवेदए होज्जा।
(श २५।२९३)

८८. जइ अवेदए होज्जा किं उवसंतवेदए—पुच्छा।
गोयमा ! उवसंतवेदए वा होज्जा, खीणवेदए वा होज्जा। (श. २५।२९४)

८९. 'उवसंतवेयए वा होज्जा खीणवेयए वा होज्ज' त्ति श्रेणिद्वये निर्ग्रन्थत्वभावादिति। (वृ. प. ८९३)

९१. सिणाए णं भंते ! किं सवेदए होज्जा० ? जहा नियंठे तहा सिणाए वि।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. नवरं विशेषज यांही, ओ तो उपशांत-वेदे-नांही।
क्षीण-वेदे ए होय, तास न्याय अवलोय।।

वा०—क्षपक श्रेणि नैं विषे ईज नवमैं गुणठाणैं हीज क्षीण-वेदक थयो। पछै दशमैं बारमैं जइ स्नातकपणुं तेरमैं चवदमैं पाम्यूं ते माटै स्नातक क्षीणवेद हुवै, पिण उपशमवेदक नथी २।

९३. पणवीसम छठा नों देशो, च्यारसौ चमालीसमीं एसो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय, सुख 'जय-जश' हरष सवाय।।

९२. नवरं—नो उवसंतवेदए होज्जा, खीणवेदए होज्जा।
(श. २५।२९५)

वा०—'नो उवसंतवेयए होज्जा खीणवेयए होज्ज' त्ति क्षपकश्रेण्यामेव स्नातकत्वभावादिति।
(वृ. प. ८९३)

ढाल : ४४५

निर्ग्रन्थ में राग

दूहा

१. पुलाक हे भगवंत! स्यूं राग-सहित में होय।
तथा वीतरागे हुवै? राग-रहित ते जोय।।

१. पुलाए णं भंते! किं सरागे होज्जा? वीतरागे होज्जा?

सोरठा

२. सराग ते सकषाय, दशमा गुणठाणा लगै।
वीतराग कहिवाय, अकषायी ग्यारम थकी।।

२. 'पुलाए णं भंते! किं सरागे' त्ति सराग—सकषायः।
(वृ. प. ८९४)

दूहा

३. जिन कहै राग सहीत में, हुवै पुलाक समील।
वीतराग में नहीं हुवै, इम जाव कषायकुशील।।

३. गोयमा! सरागे होज्जा, नो वीतरागे होज्जा। एवं जाव कसायकुसीले। (श. २५।२९६)

४. निर्ग्रंथ हे भगवंत! स्यूं, राग-सहित में होय।
कै वीतराग मांहै हुवै? अमल प्रश्न अवलोय।।

४. नियंठे णं भंते! किं सरागे होज्जा—पुच्छा।

५. जिन भाखै सुण गोयमा! एह सरागे नांहि।
हुवै वीतरागेज ए, अकषायी रै मांहि।।

५. गोयमा! नो सरागे होज्जा, वीतरागे होज्जा।
(श. २५।२९७)

६. जो हुवै वीतरागे प्रभु! तो स्यूं उपशांत-कषाय।
वीतराग छै तेह में? ए निर्ग्रंथज ताय।।

६. जइ वीतरागे होज्जा किं उवसंतकसायवीतरागे होज्जा?

७. अथवा क्षीण-कषायि जे, वीतराग छै ताय।
तेह विषेज हुवै अछै? ए निर्ग्रंथ सुहाय।।

७. खीणकसायवीतरागे होज्जा?

८. जिन भाखै सुण गोयमा! जे उपशांत-कषाय।
वीतराग छै तेह में, ए निर्ग्रंथज थाय।।

८. गोयमा! उवसंतकसायवीतरागे वा होज्जा,

९. फुन जे क्षीण-कषाय छै, वीतराग जग मांय।
तेह विषे पिण ह्वै अछै, ए निर्ग्रंथ सुहाय।।

९. खीणकसायवीतरागे वा होज्जा।

१०. इमहिज स्नातक जाणवुं, नवरं विशेष जोय।
उपशम-कषाय में नहीं, क्षीण-कषायी होय।।

१०. सिणाए एवं चेव, नवरं—नो उवसंतकसायवीतरागे होज्जा, खीणकसायवीतरागे होज्जा।
(श. २५।२९८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्ग्रन्थ में कल्प

११. *हे भगवंत ! पुलाक सुजोय,
स्यूं स्थितकल्पे होय रे। निर्ग्रंथ निहालो।
कै अस्थितकल्प विषे अवलोय,
जिन कहै बिहुं कल्पे होय रे। निर्ग्रंथ निहालो ।।

११. पुलाए णं भंते ! किं ठियकप्पे होज्जा ? अट्ठियकप्पे होज्जा ?
गोयमा ! ठियकप्पे वा होज्जा, अट्ठियकप्पे वा होज्जा।

सोरठा

१२. प्रथम चरम जिन संत, स्थितकल्प कहियै तसु।
अस्थितकल्पज हुंत, जिन बावीस विदेह मुनि ।।

वा०—इहां वृत्तिकार कह्यु—प्रथम-पश्चिम तीर्थंकर नां साधु अचेलकादि दस पद नैं विषे स्थित हीज हुवै, तेहनों अवश्य पालन करवा थकी ते स्थितकल्प कहिवाय। तेहमें पुलाक होय। मध्यम तीर्थंकर नां साधु ए कल्प में स्थित अनै अस्थित बेहूं होय, इति अस्थितकल्प कहिवाय। तेहमें पिण पुलाक होय।

वा०—आचेलक्यादिषु दशसु पदेषु प्रथमपश्चिम-तीर्थङ्करसाधवः स्थिता एव अवश्यं तत्पालनादिति तेषां स्थितिकल्पस्तत्र वा पुलाको भवेत्, मध्यमतीर्थङ्करसाधवस्तु तेषु स्थिताश्चास्थिताश्चेत्यस्थितकल्पस्तेषां तत्र वा पुलाको भवेत्, (वृ. प. ८९४)

१३. *एवं जावत स्नातक जाणी, अस्थितकल्पे माणी रे।
अथवा जिनकल्पादि तीन प्रकार,
हिवै तसु प्रश्न उदार रे ।।

१३. एवं जाव सिणाए। (श. २५।२९९)

१४. हे भगवंत ! पुलाक स्यूं एह, स्यूं जिनकल्प विषेह रे ?
कै स्थविरकल्प विषे ते पाय ?
कै कल्पातीत विषे थाय रे ? ।।

१४. पुलाए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा ? थेरकप्पे होज्जा ? कप्पातीते होज्जा ?

१५. प्रभु कहै जिनकल्पे न होय, स्थविरकल्पे हुवै सोय रे।
कल्पातीत विषे हुवै नांहि,
धारो विमल न्याय दिल मांहि रे ।।

१५. गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, थेरकप्पे होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा। (श. २५।३००)

सोरठा

१६. छद्मस्थ जिन आचार, तेह सरीखु कल्प तसु।
ते जिणकल्पे सार, स्थविरकल्प अन्य मुनि तणों ।।
१७. ए बिहुं कल्प थकीज, अन्य विषेज रह्या जिके।
कल्पातीत कहीज, एह शब्द नों अर्थ है ।।

१८. *बकुश पूछचां जिन कहै सोय, जिनकल्पे ते होय रे।
अथवा स्थविरकल्प विषे लहियै,
कल्पातीत विषे नहीं कहियै रे ।।

१८. बउसे णं पुच्छा।
गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा, नो कप्पातीते होज्जा।

१९. पडिसेवणाकुशील इमहिज जाणो, बकुश जेम पिछाणो रे।
जिनकल्पे स्थविरकल्पेह, कल्पातीत विषे न कहेह रे ।।

१९. एवं पडिसेवणाकुसीले वि। (श. २५।३०१)

२०. कषायकुशील तणी हिव पृच्छा,
जिन कहै सुण धर इच्छा रे।
ह्वै जिनकल्प विषे ए वारू,
तथा ह्वै स्थविरकल्पी उदारू रे ।।

२०. कसायकुसीले णं पुच्छा।
गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, थेरकप्पे वा होज्जा,

* लय : समजू नर विरला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. अथवा कल्पातीत विषे होय,
इहां वृत्ति विषे अवलोय रे ।
छद्मस्थ जिन जे कषाय सहीत,
ते कषायकुशील कल्पातीत रे ।।
२२. निर्ग्रंथ पूछयां कहै जिनराय, जिनकल्पे नहीं थाय रे ।
स्थविरकल्पे पिण नहीं निर्ग्रंथ, कल्पातीत विषे हुंत रे ।।

२१. कप्पातीते वा होज्जा । (श. २५।३०२)
कल्पातीते वा कषायकुशीलो भवेत्, कल्पातीतस्य छद्मस्थस्य तीर्थंकरस्य सकषायित्वादिति ।
(वृ. प. ८९४)

२२. नियंठे णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो जिणकप्पे होज्जा, नो थेरकप्पे होज्जा, कप्पातीते होज्जा ।

सोरठा

२३. पंचम ए निर्ग्रंथ, जिनकल्प स्थविरजकल्प नों ।
तास धर्म नहिं हुंत, कल्पातीत विषेज ह्वै ।।

२३ 'नियंठे ण' मित्यादौ 'कप्पातीते होज्ज' त्ति निर्ग्रंथः कल्पातीत एव भवेद् यतस्तस्य जिनकल्पस्थविरकल्पधर्म्मा न सन्तीति । (वृ. प. ८९४)

२४. *स्नातक पिण इमहिज कहिवाय, धुर बिहुं कल्पे नांय रे ।
ए पिण कल्पातीत विषेह, तेरम चवदम गुण गेह रे ।।

२४. एवं सिणाए वि । (श. २५।३०३)

निर्ग्रन्थ में चारित्र

२५. हे भगवंत ! पुलाक स्यूं तेह,
हुवै सामायिक चारित्र विषेह रे ।
कै छेदोपस्थापनिक पावै, कै पडिहारविशुद्ध में थावै रे ?
२६. कै सूक्ष्मसंपराय जे चरित्त, तेह विषे सुकथित्त रे ?
कै यथाख्यात चारित्र विषे जाणी,
पुलाक नियंठो पिछाणी रे ? ।।

२५. पुलाए णं भंते ! किं सामाइयसंजमे होज्जा ? छेओवट्ठावणियसंजमे होज्जा ? परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा ?
२६. सुहुमसंपरागसंजमे होज्जा ? अहक्खायसंजमे होज्जा ?

२७. जिन कहै सामायिक में थाय,
वलि छेदोपस्थापनिक मांय रे ।
पुलाक लब्धि फोड़ै ए दोइ, जद पुलाक नियंठो होइ रे ।।

२७. गोयमा ! सामाइयसंजमे वा होज्जा, छेओवट्ठावणियसंजमे वा होज्जा,

२८. परिहारविशुद्ध विषे नहिं थाय,
सूक्ष्मसंपराय विषे नांय रे ।
यथाख्यात चारित्र विषे न होइ,
पुलाक लब्धि न फोड़ै तीनोंइ रे ।।

२८. नो परिहारविसुद्धियसंजमे होज्जा, नो सुहुमसंपरागसंजमे होज्जा, नो अहक्खायसंजमे होज्जा ।

२९. बकुश नैं पिण कहिवुं एम,
कुशील पडिसेवणा पिण तेम रे ।
ह्वै धुर दोय चारित्र विषे एह,
नहीं ह्वै त्रिण चरित्त विषेह रे ।।

२९. एवं बउसे वि । एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।
(श, २५।३०४)

३०. कषायकुशील पूछयां जिन कहियै,
सामायिक नैं विषे लहियै रे ।
जाव सूक्ष्मसंपराय में थाय,
यथाख्यात चारित्र विषे नांय रे ।।

३०. कसायकुसीले णं - पुच्छा ।
गोयमा ! सामाइयसंजमे वा होज्जा जाव सुहुमसंपरागसंजमे वा होज्जा, नो अहक्खायसंजमे होज्जा ।
(श. २५।३०५)

३१. निर्ग्रंथ पूछयां कहै जिनराय, सामायिक नैं विषे नांय रे ।
जाव सूक्ष्मसंपराय में नांय,
यथाख्यात चारित्र विषे पाय रे ।।

३१. नियंठे णं पुच्छा ।
गोयमा ! नो सामाइयसंजमे होज्जा जाव नो सुहुमसंपरागसंजमे होज्जा, अहक्खायसजमे होज्जा ।
(श. २५।३०६)

वा० इग्यारमें गुणस्थाने उपशम चारित्र छै अनें बारमें गुणस्थाने क्षायिक चारित्र छै ए बिहुं निर्ग्रंथ छै ते यथाख्यातचारित्रिया छै ते माटै निर्ग्रंथ यथाख्यात

***लय : समजू नर विरला**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्र नैं विषे कह्यू अनैं तेरमें चवदमें गुणठाणे पिण यथाख्यात चारित्र छै तेहनैं विषे स्नातक पावै ते हिवै कहै छै –

३२. स्नातक पिण कहिवो छै एम, निर्ग्रंथ नैं कह्यू तेम रे।
चारित्रद्वार पंचम इम सारं, हिवै पडिसेवणा अधिकारं रे।।

निर्ग्रन्थ में प्रतिसेवना

३३. पुलाक प्रभु ! प्रतिसेवणा होय ? दोष लगावै सोय रे।
कै अप्रतिसेवक कहिवाय ? दोष लगावै नांय रे।।

३४. जिन भाखै पडिसेवक होय, दोष लगावै सोय रे।
अप्रतिसेवक नहीं छै एह, दोष रहित न कहेह रे।।

वा० –संजम प्रतिकूल अर्थ नैं संज्वलन कषाय नां उदय थकी सेवक ते प्रतिसेवक एतलै दोष नों सेवणहार संजम विराधक इत्यर्थ।

३५. जो प्रतिसेवक एह पुलाक, सेवै दोष किंपाक रे।
तो स्यूं मूल गुण प्रतिसेवक वेवो ?
कै उत्तरगुण प्रतिसेवी रे ?।।

३६. श्री जिन भाखै मूलगुण मांहि, दोष लगावै ताहि रे।
तथा उत्तरगुण पडिसेवक थावै,
उत्तरगुण में दोष लगावैरे।।

३७. जे मूलगुण प्रतिसेवक थातो, मूलगुण में दोष लगातो रे।
आश्रव पंच हिंसादिक पेख, त्यां मांहिलो सेवै एक रे।।

वा० –मूलगुण प्राणातिपात-विरमणादिक तेहनैं प्रतिकूलपणैं करी सेवक एतलै पंच महाव्रत नों विराधक ते मूल गुण प्रतिसेवक हुवै। जे पंच महाव्रत देश थकी विराधै, तप तथा छेद आवै तेहवो दोष सेव्यां छठो गुणस्थान रहै पिण विराधक साधु कहियै अनैं पंच महाव्रत सर्व थकी विराध्यां नवी दिक्षा आवै तेहवो दोष सेव्यां छठो गुणस्थान फिरै।

३८. उत्तरगुण प्रतिसेवक थातो,
उत्तर गुण मांहे दोष लगातो रे।
दश पच्चक्खाण मांहे कोइ एक, त्याग भांगै सुविशेख रे।।

सोरठा

३९. अनागत अतिक्रंत, कोडीसहिय प्रमुख दश।
जे पच्चक्खाणज तंत, दोष लगावै तेहमें।।

४०. अथवा नवकारसी सार, वली पोरसी आदि दे।
वर पच्चक्खाण उदार, भांगै कोइक तेह प्रति।।

४१. पिंडविशुद्धि आद, उपलक्षण भी तेहमें।
दोष लगाय विराध, संभावियै छै इम वृत्तौ।।

४२. *गोयम प्रश्न बकुश नों कीधो,
दीयै श्री जिन उत्तर सीधो रे।
बकुश प्रतिसेवक थाय, पिण अप्रतिसेवक नांय।।

*लय : समजू नर विरला

३२. एवं सिणाए वि। (श. २५।३०६)

३३. पुलाए णं भंते ! किं पडिसेवए होज्जा ? अपडिसेवए होज्जा ?

३४. गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा। (श. २५।३०७)

वा० –'पडिसेवए' त्ति संयमप्रतिकूलार्थस्य सञ्ज्वलनकषायोदयात्सेवकः प्रतिसेवकः संयम-विराधक इत्यर्थः (वृ. प. ८९४)

३५. जइ पडिसेवए होज्जा किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा ? उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ?

३६. गोयमा ! मूलगुणपडिसेवए वा होज्जा, उत्तरगुण-पडिसेवए वा होज्जा।

३७. मूलगुणे पडिसेवमाणे पंचण्हं आसवाणं अण्णयरं पडिसेवेज्जा,

वा० –'मूलगुणपडिसेवए' त्ति मूलगुणाः— प्राणातिपातविरमणादयस्तेषां प्रातिकूल्येन सेवको मूलगुणप्रतिसेवकः, (वृ. प. ८९४)

३८. उत्तरगुणे परिसेवमाणे दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अण्णयरं पडिसेवेज्जा। (श. २५।३०८)

३९. तत्र दशविधं प्रत्याख्यानं 'अनागतमइक्कंतं कोडी-सहियं' मित्यादिप्राग्व्याख्यातस्वरूपम् (वृ. प. ८९४)

४०. अथवा 'नवकारपोरिसीए' इत्याद्यावश्यकप्रसिद्धम् 'अन्नयरं पडिसेवेज्ज' त्ति एकतरं प्रत्याख्यानं विरा-धयेत्, (वृ. प. ८९४)

४१. उपलक्षणत्वाच्चास्य पिण्डविशुद्धयादिविराधकत्वमपि संभाव्यत इति। (वृ. प. ८९४)

४२. बउसे णं—पुच्छा।
गोयमा ! पडिसेवए होज्जा, नो अपडिसेवए होज्जा। (श. २५।३०९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. जो बकुश ए प्रतिसेवक लहियै,
कांइ दोष सहित तसु कहियै रे ।
स्यूं मूलगुण मांहै दोष लगाय ? कै सेवै उत्तरगुण मांय रे ? ।।
४४. श्री जिन भाखै मूलगुण मांहि, दोष लगावै नांहि रे ।
उत्तरगुण प्रतिसेवक थावै, दोष उत्तरगुण में लगावै रे ।।
४५. उत्तरगुण प्रतिसेवक थातो,
उत्तरगुण मांहे दोष लगातो रे ।
दशविध पच्चक्खाण में कोइ एक, विराधै जे अविवेक रे ।।
४६. प्रतिसेवणा कुशील ए तीजो,
जिम पुलाक कह्यूं तिम लीजो रे ।
मूलगुण नैं उत्तरगुण मांय,
ए पिण दोनूं में दोष लगाय रे ।।
४७. कषायकुशील तणीं हिव पृच्छा,
जिन कहै सुण धर इच्छा रे ।
ए प्रतिसेवक तो नहिं होय, अप्रतिसेवक जोय रे ।।
४८. निर्ग्रंथ पिण इमहिज कहीजै, स्नातक पिण इम लीजै रे ।
एह छठा द्वार रै मांय, कहुं कषायकुशील नों न्याय रे ।।

४३. जइ पडिसेवए होज्जा किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा ? उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ?

४४. गोयमा ! नो मूलगुणपडिसेवए होज्जा, उत्तरगुणपडिसेवए होज्जा ।

४५. उत्तरगुणे पडिसेवमाणे दसविहस्स पच्चक्खाणस्स अण्णयरं पडिसेवेज्जा ।

४६. पडिसेवणाकुसीले जहा पुलाए । (श. २५।३१०)

४७. कसायकुसीले णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा ।

४८. एवं नियंठे वि । एवं सिणाए वि । (श. २५।३११)

सोरठा

कषायकुशील की अप्रतिसेवकता

४९. अप्रतिसेवक ख्यात, कषायकुशील नैं प्रभु !
ए किणविध अवदात, दोष रहित किम आखियो ?
५०. प्रथम द्वार रै मांहि, कषायकुशील पंचविध ।
ज्ञानादिक में ताहि, सेवै दोष कषाय करि ।।
५१. ए चरित्त कषायकुशील, अर्थ कियो वृत्तिकार इम ।
दीयै सराप कुसील, ए पिण दोष प्रत्यक्ष है ।।
५२ मन करि करै क्रोधादि, अहासुहुम नों अर्थ इम ।
वृत्ति विषे संवादि, ए पिण प्रतिसेवकपणुं ।।
५३. वलि षटतीसज द्वार, तेह विषे आगल इसुं ।
कहिसै जिन जगतार, कहियै छै ते सांभलो ।।
५४. लेशद्वार रै मांहि, कषायकुशील नैं विषे ।
षट लेश्या कही ताहि, धुर त्रिहुं लेश असुद्ध छै ।।
५५. शरीर द्वार मझार, कषायकुशील नैं विषे ।
शरीर पंच प्रकार, वैक्रिय आहारक तनु करै ।।
५६. समुद्घात फुन द्वार, तेह विषे इम आखियो ।
कषायकुशील मझार, केवल वर्जी षट कही ।।
५७. तेजु लब्धि फोड़ंत, वैक्रिय आहारक फोड़वै ।
दोष प्रत्यक्ष ए हुंत, पाठ देख निर्णय करो ।।
५८. फुन तीजे शतकेह, तुर्य उद्देशे भगवती ।
वैक्रिय माई करेह, पिण अमाई नहिं करै ।।
५९. विना आलोयां तेह, कह्युं विराधक वीर जिन ।
वैक्रिय दोष लहेह, कषायकुशील नैं विषे ।।

५८. से भंते ! किं माई विकुव्वइ ? (भ. ३।१९०)

५९. माई णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ··· (भ. ३।१९२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. सोलम शतके वाय, प्रथम उद्देशे भगवती ।
आहारक तनु निपजाय, प्रमाद आश्रयो अधिकरण ।।

६१. वलि पन्नवणा माहिं, पद छत्तीसम नैं विषे ।
वैक्रिय तेजू ताहि, समुद्घात आहारक कियां ।।
६२. जघन्य क्रिया ह्वै तीन, उत्कृष्ट पंच क्रिया हुवै ।।
कषायकुशील चीन, पंच क्रिया उत्कृष्ट इम ।।
६३. वली चउवीसम द्वार, तेह विषे इम आखियो ।
कहियै ते विस्तार, चित्त लगाई सांभलो ।।
६४. तजी कषायकुशील, पुलाकपणूंज आदरै ।
बकुशपणूं समील, पडिसेवणा कुशील ह्वै ।।
६५. निर्ग्रंथ में फुन आय, बलि असंजमपणूं आदरै ।
संजमासंजम थाय, ए षट स्थान अंगीकरै ।।
६६. कषायकुशील जेह, अप्रतिसेवक जो हुवै ।
तो संजम तज एह, श्रावकपणूं किम आदरै ।।
६७. साधुपणां नैं भंग, श्रावकपणूंज आदरै ।
प्रत्यक्ष दोष प्रसंग, कषायकुशील नै विषे ।।

वा०— कोइ कहै — निर्ग्रंथ दोष न लगावै ते माटै अप्रतिसेवक कह्यु तिम कषायकुशील पिण अप्रतिसेवक छै ते माटै ए पिण दोष न लगावै । तेहनुं उत्तर — चउवीसम द्वारे कह्यू निर्ग्रंथपणुं तजी स्नातक में आवै, कषायकुशील में आवै अनैं असंजम में आवै । निग्रंन्थ में इग्यारमों बारमों ए बे गुणठाणा पावै । जिवारै बारमा थी तेरमें गुणठाणे जाय तब स्नातकपणुं अंगीकार कियो । अनैं इग्यारमा थी दशमें गुणठाणे आयां कषायकुशीलपणुं अंगीकार कियो अनैं इग्यारमें आउखो पूरो कियां अनुत्तर विमान में ऊपजै जिवारै असंजम प्रति अंगीकार करै ते निर्ग्रंथपणां नै विषे अप्रतिसेवक हुवै । अनैं कषायकुशील छ ठिकाणे आवै तिणमें पुलाकादिक प्रति अंगीकार करै तथा संजमासंजम प्रति आदरै ए साधुपणूं भांगी श्रावक थयुं ते प्रत्यक्ष प्रतिसेवक छै । अथवा निग्रंन्थ में वैक्रिय तेजु आहारक समुद्घात न पावै, असुभ लेश्या पिण नथी अनैं कषायकुशील में केवलवर्जी छ समुद्घात छै तिणमें वैक्रिय तेजु आहारक समुद्घात पिण पावै, कृष्णादिक लेश्या पिण पावै, अनैं नित्य पडिकमणो पिण करै, ते माटै प्रतिसेवक छै इति ।

६८. वलि श्रुत द्वारे जन्न, भणैं कषायकुशील ए ।
जघन्य अष्ट प्रवचन्न, उत्कृष्ट पूर्व चवद प्रति ।।
६९. दृष्टिवाद धर सार, वचन खलायां मुनि भणी ।
हसवो नहीं तिवार, दशवैकालिक अष्टमें ।।

७०. कषायकुशील मांय, ज्ञान दोय त्रिण चिहुं कह्या ।
मनपज्जव इण न्याय, कषायकुशील नैं विषे ।।
७१. धुर त्रिहुं नियंठ मांय, मनपज्जव वर्ज्यो प्रभु ।
कषायकुशीले पाय, ज्ञान द्वार सप्तम विषे ।।

६०. जीवे णं भंते ! आहारं सरीरं निव्वत्तेमाणे किं
अधिकरणी—पुच्छा ।
गोयमा ! अधिकरणी वि, अधिकरणं पि ।
से केणट्ठेणं जाव अधिकरणं पि ?
गोयमा ! पमायं पडुच्च । (भ. श. १६।२३,२४)
६१. (पन्नवणा ३६।७१,७३,७७)

६९. आयारपण्णत्तिधरं दिट्ठिवायमहिज्जगं ।
वइविक्खलियं नच्चा न तं उवहसे मुणी ।।
(दस. ८।४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. चउदश पूर्व धार, चिउं नाणी गोतम गणी।
आनंद घरे तिवार, ते पिण वचन खलाविया ।।
७३. आलोवण त्यां लीध, प्रायश्चित लीधो वली।
देखो पाठ प्रसीध, कषायकुशील तेह विषे ।।
७४. धुर त्रिहुं निर्ग्रंथ मांहि, चउद पूर्व चिहुं ज्ञान नहीं।
आहारक शरीर नांहि, इणहिज उदेशक विषे ।।
७५. चउदश पूर्व धार, चिहुं नाणी पिण उभय टक।
करै पडिकमणो सार, ते पिण दोष तणों सही ।।
७६. चिहुं ज्ञानी रै मांहि, कृष्णादिक षट लेश ह्वै।
सतरम पद में ताहि, तृतीय उदेशे पन्नवणा ।।

७७. इत्यादिक वच जोय, प्रतिसेवक पिण एह छै।
मुनि नों श्रावक होय, तो अधिको स्यूं दोष वलि ।।
७८. अप्रतिसेवक ख्यात, ते दीक्षा लेतो छतो।
कषायकुशीले आत, ते धुर तणीं अपेक्षया ।।
७९. अथवा पुलाक आम, बकुश नें पडिसेवणा।
ए तीनूं तज ताम, आवै कषायकुशील में ।।
८०. तिण वेलां पिण तेह, अपडिसेवक छै तिको।
पुलाकादिक नों जेह, दंड लेइ नें शुद्ध हुवै ।।
८१. पुलाक प्रमुखज तीन, पडिवजतो प्रतिसेवका।
सेवै दोष मलीन, नहीं ह्वै अप्रतिसेवका ।।
८२. कषायकुशील तेम, पडिवजतो ते काल में।
अप्रतिसेवक एम, पिण प्रतिसेवक नहिं तदा ।।
८३. वर मनपज्जव नाण, अप्रमत्त नें ऊपजै।
नंदी सूत्रे जाण, प्रमत्त नें उपजै नथी ।।
८४. पछै छठै गुणठाण, मनपज्जव पावै अछै।
पिण ऊपजतां जाण, अप्रमत्त नैंज कह्यो प्रभु ।।
८५. कषायकुशील तेम, ते पिण पडिवजतां छतां।
अप्रतिसेवक एम, पिण प्रतिसेवक नहीं ह्वै ।।
८६. पछै कषायकुशील, प्रतिसेवक पिण ह्वै तिको।
समुद्घात षट मील, षट लेश्या संज्ञा चिहुं ।।
८७. वैक्रिय आहारक जेह, तेजू लब्धी फोड़वै।
फुन संजम तज तेह, श्रावकपणूंज आदरै ।।
८८. कषायकुशील मांय, जोग चवद पावै वली।
शरीर पांचूं पाय, प्रत्यक्ष ए प्रतिसेवको ।।
८९. पडिवज्जण कालेह, कषायकुशील नियंठो।
अप्रतिसेवक तेह, एहवूं न्याय जणाय छै ।।
९०. अथवा अप्रमत्त जाण, सप्तम थी दशमां लगै।
फुन छट्ठै गुणठाण, अत्यंत विशुद्ध पज्जवधर ।।
९१. अप्रतिसेवक तेह, ते पिण जाणै केवली।
पिण तेजू आदि फोड़ेह, ए तो प्रत्यक्ष दोष है ।।

७२. तए णं से भगवं गोयमे आणंदं समणोवासयं.... णो चेव णं एमहालए। (उवा. १।७७)
७३. तए णं से भगवं गायमे ...... अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ। (उवा. १।८२)

७६ कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे कतिसु नाणेसु होज्जा ? गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा नाणेसु होज्जा ....एवं जाव पम्हलेस्से। सुक्कलेस्से णं भंते !.....
(पण्णवणा १७।११२,११३)

८३. से किं तं मणपज्जवनाणं ?....
गोयमा ! अपमत्तसंजयसम्मदिट्ठि.... [नंदी सू० २३]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९२. स्वप्न यथातथ्य जेह, देखै संबुडो मुनि।
शतक सोलमें एह, छठे उद्देशे भगवती ।।
९३. वृत्तिकार इम ख्यात, अतिहि विशिष्ट संवृत्त।
करिवो ग्रहण सुजात, तिमहिज ए पिण जाणवुं ।।
९४. दीक्षा लेतां ताय, हुवै कषायकुशील तब।
इम पडिवजतां पाय, ते अप्रतिसेवकपणुं ।।
९५. पुलाकादि तज ताम, आवै कषायकुशील में।
अति विशिष्ट परिणाम, अप्रतिसेवक ह्वै तदा ।।
९६. इण न्याये करि जोय, अप्रतिसेवक ए हुवै।
फुन अन्य न्याय कोइ होय, ते पिण जाणै केवली ।।' (ज. स.)
९७. *बेसौ छपन अंक नुं देश न्हाल,
च्यार सौ पैंतालीसमीं ढाल रे।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय पसाय,
'जय-जश' हरष सवाय रे ।।

९२. गोयमा !.... संवुडे सुविणं पासति अहातच्चं पासति। (भगवती श. १६।८१)

ढाल : २४६

दूहा

निर्ग्रन्थ में ज्ञान

१. पुलाक हे प्रभुजी ! हुवै, कितरा ज्ञान विषेह ?
जिन कहै बे वा त्रिण विषे, लेखो तास सुणेह ।।
२. बे ज्ञाने थातो थको, मति श्रुत ज्ञान विषेह।
त्रिण ज्ञाने थातो थको, मति श्रुत अवधे लेह ।।

३. बकुश नें पिण इमज फुन, पडिसेवणाकुशील।
इणहिज रीत कहीजियै, बे त्रिण ज्ञाने मील ।।
४. कषायकुशील नीं पृच्छा, जिन कहै बे ज्ञानेह।
तथा ज्ञान त्रिण नें त्रिषे, वा चिहुं ज्ञान विषेह ।।
५. बे ज्ञाने थातो थको, मति श्रुत ज्ञाने जेह।
त्रिण ज्ञाने थातो थको, मति श्रुत अवधि विषेह ।।

६. अथवा वलि त्रिण ज्ञान जे, आभिनिबोधिक सोय।
श्रुत अरु मनपज्जव विषे, कषायकुशील होय ।।
७. चिहुं ज्ञाने थातो थको, मति श्रुत अवधे सोय।
फुन मनपज्जव नें विषे, कषायकुशील होय ।।
८. कहिवो इम निर्ग्रंथ नें, स्नातक पृच्छा जेह।
जिन भाखै ह्वै गोयमा ! इक केवलज्ञान विषेह ।।

१. पुलाए णं भंते ! कतिसु नाणेसु होज्जा ?
गोयमा ! दोसु वा तिसु वा होज्जा।
२. दोसु होमाणे दोसु आभिणिबोहियनाणसुयनाणेसु होज्जा, तिसु होमाणे तिसु आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा।
३. एवं बउसे वि। एवं पडिसेवणाकुसीले वि।
(श. २५।३३०)
४. कसायकुसीले णं—पुच्छा।
गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा होज्जा।
५. दोसु होमाणे दोसु आभिणिबोहियनाण-सुयनाणेसु होज्जा, तिसु होमाणे तिसु आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाणेसु होज्जा,
६. अहवा तिसु होमाणे आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा,
७. चउसु होमाणे चउसु आभिणिबोहियनाण-सुयनाण-ओहिनाण-मणपज्जवनाणेसु होज्जा।
८. एवं नियंठे वि। (श. २५।३१३)
सिणाए णं—पुच्छा।
गोयमा ! एगम्मि केवलनाणे होज्जा।
(श. २५।३१४)

---

*लय : समजू नर विरला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा० —आभिनिबोधिकादिक ज्ञान ना प्रस्ताव थकी ज्ञान विशेषभूत श्रुत विशेषण करिकै चिंतवतो थको कहै छै।

९. पुलाक हे भगवंत जी ! कितलो भणें सिद्धांत ?
जिन भाखै गुण गोयमा ! सूत्र पठन वृत्तांत ।।
१०. पुलाक जघन्य थकी पढै, नवम पूर्व नों इष्ट ।
तृतीय आचार वत्थू लगै, नव पूर्व उत्कृष्ट ।।
११. बकुश नीं पूछा कियां, जिन कहै जघन्य सुइष्ट ।
प्रवचन माता अष्ट हि, दश पूर्व उत्कृष्ट ।।

वा० —इहां आठ प्रवचन जघन्य थकी भणें, इम कह्यूं। ते आठ प्रवचनमाता रूप सिद्धांत अर्थ थकी भणैं जे तीन आगम नैं अर्थागम कह्युं। ते भणी चारित्र नैं आठ प्रवचनमातृ पालणारूपपणां थकी तेह चारित्रवंत नैं अष्ट प्रवचनमातृ जाणवैं करी अवश्ये भाविवुं चारित्र नैं ज्ञानपूर्वकपणां थकी ते अष्ट प्रवचनमाता नो जाणपणुं अर्थ थकी जाणियो जोइयै। जे ईर्याइं जोय चालवुं, भाषा विचारी निरवद्य बोलवुं इत्यादिक पंच समित तीन गुप्त नुं जाणपणुं ए सावज्ज निरवद्य नीं ओलखणा, ते जघन्य थकी जाणियो जोइये।

पिण जे उत्तराध्येन नैं विषे प्रवचनमातृ नाम २४वां अध्ययन ते गुरूपणां थकी वली अतिहि विशिष्ट श्रुतपणां थकी जघन्य थकी न हुवै। ए श्रुत नों प्रमाण बाहुल्य आश्री जाणवो। जे भणी मासतुषादिक नैं विषे पिण विघटै नहीं।

१२. पडिसेवणाकुशील पिण, बकुश नीं परि इष्ट ।
प्रवचनमाता अष्ट धुर, दश पूर्व उत्कृष्ट ।।
१३. कषायकुशील नीं पृच्छा, धुर अठ प्रवचनमात ।
उत्कृष्ट पूर्व चवद फुन, इम निर्ग्रंथज ख्यात ।।

१४. स्नातक नीं पूछा कियां, जिन उत्तर इम ह ।
श्रुतव्यतिरिक्तज ए हुवै, केवलज्ञानी एह ।।

वा०—आभिनिबोधिकादिज्ञानप्रस्तावात् ज्ञान-विशेषभूतं श्रुतं विशेषेण चिन्तयन्नाह —
(वृ. प. ८९५)

९. पुलाए णं भंते ! केवतियं सुयं अहिज्जेज्जा ?
गोयमा !
१०. जहण्णेणं नवमस्स पुव्वस्स ततियं आयारवत्थुं, उक्कोसेणं नव पुव्वाइं अहिज्जेज्जा। (श. २५।३१५)
११. बउसे —पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ पवयणमायाओ, उक्कोसेणं दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा।

वा.—'जहन्नेणं अट्ठ पवयणमायाओ' त्ति अष्टप्रवचनमातृपालनरूपत्वाच्चारित्रस्य तद्वतोऽष्ट-प्रवचनमातृपरिज्ञानेनावश्यं भाव्यं, ज्ञानपूर्वकत्वाच्चा-रित्रस्य, तत्परिज्ञानं च श्रुतादतोऽष्टप्रवचनमातृ-प्रतिपादनपरं श्रुतं बकुशस्य जघन्यतोऽपि भवतीति, तच्च 'अट्ठण्हं पवयणमाईणं' इत्यस्य यद् विवरणसूत्रं तत्संभाव्यते,

यत्पुनरुत्तराध्ययनेषु प्रवचनमातृनामकमध्ययनं तद्गुरुत्वाद्विशिष्टतरश्रुतत्वाच्च न जघन्यतः संभव-तीति, बाहुल्याश्रयं चेदं श्रुतप्रमाणं तेन न माष-तुषादिना व्यभिचार इति (वृ. प. ८९५)
१२. एवं पडिसेवणाकुसीले वि। (श. २५।३१६)

१३. कसायकुसीले—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ पवयणमायाओ, उक्कोसेणं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा। एवं नियंठे वि।
(श. २५।३१७)
१४. सिणाए—पुच्छा।
गोयमा ! सुयवतिरित्ते होज्जा। (श. २५।३१८)

निर्ग्रन्थ तीर्थ में या अतीर्थ में

*म्हारा देव दिवाकर ज्ञान सुधाधर वीर नैं
जिनिंद मोरा, जुगति गोयम नीं जोड़ हो ।। (ध्रुपदं)
१५. पुलाक हे भगवंत जी !
जिनिंद मोरा, तेह तीर्थ स्यूं होय हो ?
अथवा अतीर्थ ते हुवै ?
जिनिंद मोरा, गोयम प्रश्न सुजोय हो।
१६. श्री जिन भाखै तीर्थ हुवै
मुनिंद मोरा, जेह अतीर्थ न होय हो।
इमहिज बकुश जाणवुं
मुनिंद मोरा, पडिसेवणा इम जोय हो ।।

१५. पुलाए णं भंते ! किं तित्थे होज्जा ? अतित्थे होज्जा ?

१६. गोयमा ! तित्थे होज्जा, नो अतित्थे होज्जा। एवं बउसे वि। एवं पडिसेवणाकुसीले वि।
(श. २५।३१९)

*लय : सींहल नृप कहै चंद नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—सिद्धांत नुं नाम तीर्थ घणं स्थानके कह्यो छै। ते सिद्धांत संघ नं आधार छै ते संघ छतं तीर्थ हुवै।

१७. कषायकुशील तणीं पृच्छा मु०, तब भाखै जिनराय हो।
तीर्थ तेह हुवै अछै मु०, अथवा अतीर्थ सुधाय हो।।

वा०—कषायकुशील नियंठे गोतमादिक साधु हुवै तेहनीं अपेक्षाय करिकै तीर्थ हुवै। अनैं तीर्थ विच्छेद थये छते ते तीर्थंकर थकी अनेरा प्रत्येकबुद्ध पिण हुवै इण हेतु थकी ते प्रत्येक बुद्ध री अपेक्षाय करिकै अतीर्थ हुवै इम कह्युं।

१८. जो अतीर्थ तेह हुवै अछै, जिनिंद मोरा स्यूं तीर्थंकर होय हो।
कै प्रत्येकबुद्ध हुवै अछै? जि०, ए प्रश्न अतीर्थ नुं सोय हो।।

१९. जिन कहै तीर्थंकर हुवै मु०, अथवा ह्वै प्रत्येकबुद्ध हो।
इमहिज निर्गंथ पिण अछै मु०, इमहिज स्नातक शुद्ध हो।।

वा० कषायकुशील नियंठे गोतमादिक साधु हुवै, तिण अपेक्षा करिकै तीर्थ हुवै, छद्मस्थ अवस्था नैं विषे तीर्थंकर कषायकुशील हुवै, तेहनी अपेक्षया अनैं तीर्थ-विच्छेद थये छते तीर्थंकर थकी अनेरा प्रत्येकबुद्ध पिण कषायकुशील हुवै। तिण अपेक्षा करिकै अतीर्थ हुवै, इम कह्युं।

ते लिंग दोय प्रकारे द्रव्य लिंग अनैं भाव लिंग। तिहां भाव लिंग ज्ञान, दर्शण, चारित्र। इहां ज्ञान, दर्शन नैं भाव लिंग कह्या ते चारित्र सहित ज्ञान, दर्शन भाव लिंग जाणवुं। ए ज्ञानादिक स्वलिंग ईज, ज्ञानादिक भाव अरिहंत नां साधु नैं हीज हुवै। द्रव्य लिंग दोय प्रकारे—स्वलिंग अनैं परलिंग। तिहां स्वलिंग रजोहरणादिक अनैं पर लिंग दोय प्रकारे—अन्यतीर्थिक लिंग, ग्रहस्थ लिंग। ते भणी एहिज कहै छै—

वा.—'तित्थे' त्ति सङ्घे सति, (वृ. प. ८९५)

१७. कसायकुसीले—पुच्छा।
गोयमा! तित्थे वा होज्जा, अतित्थे वा होज्जा। (श. २५।३२०)

१८. जइ अतित्थे होज्जा किं तित्थकरे होज्जा? पत्तेयबुद्धे होज्जा?

१९. गोयमा! तित्थकरे वा होज्जा, पत्तेयबुद्धे वा होज्जा। एवं नियंठे वि। एवं सिणाए वि। (श २५।३२१)

वा०—'कसायकुसीले' त्यादि कषायकुशीलश्छद्मस्थावस्थायां तीर्थङ्करोऽपि स्यादतस्तदपेक्षया तीर्थव्यवच्छेदे च तदन्योऽप्यसौ स्यादिति तदन्यापेक्षया च 'अतित्थे वा होज्जे' त्युच्यते, (वृ० प० ८९५)

वा०—लिङ्गद्वारे लिङ्गं द्विधा—द्रव्यभावभेदात्, तत्र च भावलिङ्गं—ज्ञानादि, एतच्च स्वलिङ्गमेव, ज्ञानादिभावस्यार्हतानामेव भावात्, द्रव्यलिङ्गं तु द्वेधा—स्वलिङ्गपरलिङ्गभेदात्, तत्र स्वलिङ्गं—रजोहरणादि, परलिङ्गं च द्विधा—कुतीर्थिकलिङ्गं गृहस्थलिङ्गं चेत्यत आह— (वृ० प० ८९५)

निर्ग्रन्थ में लिंग

२०. पुलाक हे भगवंत जी! जि०, स्यूं स्वलिंगे होय हो?
कै अन्यलिंग विषे हुवै? जि०, कै गृहिलिंगे सोय हो?

२१. जिन कहै द्रव्य लिंग आश्रयी मु०, स्वलिंगे हुवै एह हो।
अथवा अन्यलिंगे हुवै मु०, अथवा गृहिलिंग विषेह हो।।

वा०—त्रिविध लिंग नैं विषे पिण हुवै। चारित्र परिणाम कोइ नैं न हुवै ते माटै द्रव्य लिंगे चारित्र नुं निश्चय नथी। जे कारण थकी स्वलिंग, अन्यलिंग, गृहीलिंग नैं विषे चारित्र परिणाम लाभै ते कारण थकी द्रव्यलिंग आश्रयी पुलाक तीनूं लिंग नैं विषे हुवै।

२२. भाव लिंग नैं आश्रयी मु०, निश्चै स्वलिंगे होय हो।
एवं जावत जाणवुं मु०, स्नातक लग अवलोय हो।।

२०. पुलाए णं भंते! किं सलिंगे होज्जा? अण्णलिंगे होज्जा? गिहिलिंगे होज्जा?

२१. गोयमा! दव्वलिंगं पडुच्च सलिंगे वा होज्जा, अण्णलिंगे वा होज्जा, गिहिलिंगे वा होज्जा।

वा०—त्रिविधलिङ्गेऽपि भवेद् द्रव्यलिङ्गानपेक्षत्वाच्चरणपरिणामस्येति। (वृ० प० ८९५)

२२. भावलिंगं पडुच्च नियमं सलिंगे होज्जा। एवं जाव सिणाए। (श० २५।३२२)

निर्ग्रन्थ में शरीर

२३. प्रभु! पुलाक हुवै कित तनु विषे? मु०,
जिन कहै तीन विषेह हो।
ओदारिक तेजस वली मु०, कार्मण विषे कहेह हो।।

२४. बकुश नीं पूछा कियां मु०, तब भाखै जिनराय हो।
तीन शरीर विषे हुवै मु०, अथवा चिहुं विषे थाय हो।।

२३. पुलाए णं भंते! कतिसु सरीरेसु होज्जा?
गोयमा! तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा। (श० २५।३२३)

२४. बउसे णं भंते!—पुच्छा।
गोयमा! तिसु वा चउसु वा होज्जा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. तीन विषे थातो थको मु०, ओदारिक विषे हुंत हो ।
तेजस नैं कार्मण विषे मु०, हुवै बकुशज संत हो ।।
२६. च्यार विषे थातो थको मु०, ओदारिक वैक्रियेह हो ।
तेजस नैं कार्मण विषे मु०, इम पडिसेवणा लेह हो ।।

२७. कषायकुशील तणी पृच्छा मु०, तीन तनु विषे होय हो ।
अथवा ह्वै च्यार तनु विषे मु०, तथा पंच तनु विषे जोय हो ।।
२८. तीन विषे थातो थको मु०, ओदारिक अवलोय हो ।
तेजस नैं कार्मण विषे मु०, एह त्रिहुं विषे होय हो ।।
२९. च्यार विषेज थातो थको मु०, ओदारिक वैक्रियेह हो ।
तेजस नैं कार्मण विषे मु०, एह चिहुं विषे लेह हो ।।
३०. पांच विषे थातो थको मु०, ओदारिक वैक्रियेह हो ।
आहारिक नैं तेजस विषे मु०, वलि कार्मण नैं विषेह हो ।।
३१. निर्ग्रंथ नैं स्नातक वली मु०, पुलाक जिम कहिवाय हो ।
ओदारिक तेजस वली मु०, कार्मण तनु विषे थाय हो ।।

२५. तिसु होमाणे तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा,
२६. चउसु होमाणे चउसु ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा। एवं पडिसेवणाकुसीले वि । (श २५।३२४)
२७. कसायकुसीले पुच्छा ।
गोयमा ! तिसु वा चउसु वा पंचसु वा होज्जा ।
२८. तिसु होमाणे तिसु ओरालिय-तेया-कम्मएसु होज्जा,
२९. चउसु होमाणे चउसु ओरालिय-वेउव्विय-तेया-कम्मएसु होज्जा,
३०. पंचसु होमाणे पंचसु ओरालिय-वेउव्विय-आहारग-तेया-कम्मएसु होज्जा ।
३१. नियंठो सिणाओ य जहा पुलाओ । (श. २५।३२५)

निर्ग्रन्थ किस क्षेत्र में

३२. पुलाक स्यूं भगवंत जी ! जि०, कर्मभूमि विषे होय हो ?
कै अकर्मभूमि विषे ? जि०, गोयम प्रश्न सुजोय हो ।।
३३. जिन कहै जन्म अनें वली मु०, छता भाव आश्री ताहि हो ।
कर्मभूमि नें विषे हुवै मु०, अकर्मभूमि विषे नांहि हो ।।

वा०—जन्म कहितां ऊपजवा आश्रयी, संतिभावं कहितां छता नों भाव ते आश्रयी नैं पुलाक कर्मभूमि नैं विषे जन्म पामै अनैं कर्मभूमि नैं विषेज विहार करै पिण अकर्मभूमि नैं विषे न ऊपजै । अकर्मभूमि नैं विषे ऊपनां नैं चारित्र नां अभाव थकी तिहां वर्तै पिण नहीं । पुलाक नियंठा वाला नों तिहां जन्म नथी । अनैं छता भाव कहितां तिहां विहार पिण नथी, वर्तै पिण नथी, पुलाक लब्धि नैं विषे वर्त्तमान नैं देवादिके संहरवा नां अभाव थकी ।

३२. पुलाए णं भंते ! किं कम्मभूमीए होज्जा ? अकम्मभूमीए होज्जा ?
३३. गोयमा ! जम्मण-संतिभावं पडुच्च कम्मभूमीए होज्जा, णो अकम्मभूमीए होज्जा । (श. २५।३२६)

वा.—'जम्मणसंतिभावं पडुच्च' त्ति जन्म—उत्पादः सद्भावश्च—विवक्षितक्षेत्रादन्यत्र तत्र वा जातस्य तत्र चरणभावेनास्तित्वमेव ···कर्म्मभूमौ भवेत्, तत्र जायते विहरति च तत्रैवेत्यर्थः, अकर्म्मभूमौ पुनरसौ न जायते तज्जातस्य चारित्राभावात्, न च तत्र वर्त्तते, पुलाकलब्धौ वर्त्तमानस्य देवादिभिः संहर्त्तुमशक्यत्वात् । (वृ. प. ८९५,८९६)

३४. बकुश पूछ्यां जिन कहै मु०, जन्म छता भाव आश्रयी थाय हो ।
कर्मभूमि नें विषे हुवै मु०, अकर्मभूमि विषे नांय हो ।।

वा०—बकुश नों प्रश्न ऊपजवो तथा छता भाव प्रतै आश्रयी नैं कर्मभूमि नैं विषेज हुवै अकर्मभूमि नैं विषे जन्म थकी तथा स्व कृत विहार थकी पिण न हुवै ।

३४. बउसे णं पुच्छा ।
गोयमा ! जम्मण-संतिभावं पडुच्च कम्मभूमीए होज्जा, नो अकम्मभूमीए होज्जा ।

वा०—बकुशसूत्रे 'नो अकम्मभूमीए होज्ज' त्ति अकर्म्मभूमौ बकुशो न जन्मतो भवति स्वकृतविहारतश्च, (वृ. प. ८९६)

३५. तथा साहरणज आश्रयी मु०, कर्मभूमि विषे होय हो ।
अथवा अकर्मभूमि विषे मु०, इम जाव स्नातक अवलोय हो ।।

वा०—तथा संहरणक क्षेत्रांतर थकी बीजा क्षेत्रांतर नैं विषे जो देवादिक उपाड़ी मूकै तो ते आश्रयी नैं पर कृत विहार कर्मभूमि नैं विषे तथा अकर्मभूमि नैं विषे पिण संभवै । इम यावत स्नातक लगै कहिवुं । इहां स्नातक नो साहरण कह्यो ते केवली नों साहरण किम हुवै ? तेहनों उत्तर— जे छठे गुणठाणे छतां साहरण कीधो देवादिके उपाड़ी अनेरे क्षेत्रे मूक्यो तिहां क्षपकश्रेणि चढी केवल पायो इण न्याय स्नातक नों साहरण संभवै ।

३५. साहरणं पडुच्च कम्मभूमीए वा होज्जा, अकम्मभूमीए वा होज्जा । एवं जाव सिणाए । (श. २५।३२७)

वा.—परकृतविहारतस्तु कर्म्मभूम्यामकर्म्मभूम्यां च संभवतीत्येतदेवाह—'साहरणं पडुच्चे' त्यादि, इह च संहरणं—क्षेत्रान्तरात् क्षेत्रान्तरे देवादिभिर्नयनम् । (वृ. प. ८९६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. पुलाक स्यूं भगवंत जी ! जि०, अवसर्पिणी काले थाय हो ?
अथवा उत्सर्पिणी नें विषे ? जि०, तथा अवउत्सर्पिणी नांय हो ?

वा० ओसप्पिणी कहितां आउखो तथा अवगाहना घटता जाइ ते अवसर्पिणी काल कहियै तेहनें विषे हुवै अथवा आउखो अवगाहना वधता जाय ते उत्सर्पिणी तेहनें विषे हुवै ? अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी ए बे काल भरत, एरवत नें विषे हुवै। तथा नहीं अवसर्पिणी काल, नहीं उत्सर्पिणी काल ते महाविदेह हेमंतादि क्षेत्र नें विषे हुवै ? इति प्रश्न।

३७. जिन भाखै सुण गोयमा ! मु०, पुलाक संत निहाल हो।
ह्वै अवसर्पिणी काल में मु०, फुन उत्सर्पिणी काल हो॥
३८. अथवा नहीं अवसर्पिणी मु०, उत्सर्पिणी पिण नांहि हो।
तेह काल नैं विषे हुवै मु०, क्षेत्र महाविदेह मांहि हो॥
३९. जो ह्वै अवसर्पिणी काल में जि०,
तो स्यूं सुषमसुषमा कालेह हो ?
कै सुषमा काल विषे हुवै ? जि०,
कै सुषमदुस्समा नैं विषेह हो ?
४०. कै दुस्समसुषमा काले हुवै ? जि०, कै दु:षमा काले होय हो ?
कै दुस्समदुस्समा काले हुवै जि०, गोयम प्रश्न सुजोय हो॥
४१. जिन भाखै जन्म आश्रयी मु०, सुषमसुषमा काले नांय हो।
ए अवसर्पिणी काल नों मु०, प्रथम अरो कहिवाय हो॥
४२. सुषमा काले पिण नहीं हुवै मु०, द्वितीय अरक विषे नांय हो।
सुषमदुस्समा काले हुवै मु०, ए तृतीय अरक विषे थाय हो॥
४३. दु:षमसुषमा काले हुवै मु०, एह तुर्य विषे हुंत हो।
दुस्समा काले नहीं ह्वै मु०, ए पंचम अरो वृतंत हो॥
४४. दुस्समदुस्समा काले नहीं हुवै मु०, ए छठा अरा में न होय हो।
ए अवसर्पिणी काल में मु०, जन्म आश्रयी जोय हो॥
४५. छता भाव नें आश्रयी मु०, अवसर्पिणी नें विषेह हो।
सुषमसुषमा काले नहिं हुवै मु०, सुषमा काले न कहेह हो॥
४६. सुषमदुस्समा काले हुवै मु०, दुस्समसुषमा काले थाय हो।
दु:षमा काल विषे हुवै मु०, दुस्समदुस्समा विषे नांय हो॥

वा० —अवसर्पिणी नां तीजा चोथा पंचमा अरा नैं विषे छता भाव आश्रयी हुवै। तिहां चउथा अरा नैं विषे जन्म्यो थको पंचमा अरा नैं विषे पुलाक नैं विषे वर्त्तै। ते भणी अवसर्पिणी नैं पंचमें अरे छता भाव आश्रयी पुलाक नियंठो कह्यो, पिण पुलाक नां धणी नुं जन्म पंचमें अरे नथी। अनैं अवसर्पिणी नें तीजे, चउथे अरे पुलाक नां धणी नों जन्म पिण हुवै अनैं छता भाव आश्रयी पिण हुवै।

४७. जो उत्सर्पिणी काले हुवै जि०, तो स्यूं दुस्समादुस्समेह हो ?
कै दु:षमा काले हुवै ? जि०, कै दुस्समसुषमा कालेह हो ?

३६. पुलाए णं भंते ! किं ओसप्पिणिकाले होज्जा ? उस्सप्पिणिकाले होज्जा ? नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले वा होज्जा ?

वा.—त्रिविधः कालोऽवसर्प्पिण्यादिः, तत्राद्यद्वयं भरतैरावतयोस्तृतीयस्तु महाविदेहहेमवतादिषु, (वृ. प. ८९७)

३७. गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा,

३८. नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले वा होज्जा। (श. २५।३२८)

३९. जइ ओसप्पिणिकाले होज्जा किं सुसमसुसमाकाले होज्जा ? सुसमाकाले होज्जा ? सुसमदुस्समाकाले होज्जा ?

४०. दुस्समसुसमाकाले होज्जा ? दुस्समाकाले होज्जा ? दुस्समदुस्समाकाले होज्जा ?

४१. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च नो सुसमसुसमाकाले होज्जा,

४२. नो सुसमाकाले होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा,

४३. दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, नो दुस्समाकाले होज्जा.

४४ नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा।

४५. संतिभावं पडुच्च नो सुसमसुसमाकाले होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा,

४६. सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, दुस्समाकाले वा होज्जा, नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा। (श २५।३२९)

वा० —अवसर्प्पिण्यां सद्भावं प्रतीत्य तृतीयचतुर्थपञ्चमारकेषु भवेत्, तत्र चतुर्थारके जातः सन् पञ्चमेऽपि वर्त्तते, तृतीयचतुर्थारके सद्भावस्तु तज्जन्मपूर्वक इति, (वृ. प. ८९७)

४७. जइ उस्सप्पिणिकाले होज्जा किं दुस्समदुस्समाकाले होज्जा ? दुस्समाकाले होज्जा ? दुस्समसुसमाकाले होज्जा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. कै सुषमदुस्समा काले हुवै ? जि०, कै हुवै सुषमा काल हो ?
कै सुषमसुषमा काले हुवै ? जि०, अनुक्रमे षट न्हाल हो ।।
४९. जिन भाखै जन्म आश्रयी मु०, उत्सर्पिणी में जोय हो ।
दुस्समदुस्समा काले नहीं हुवै मु०,
दुस्समा काले जन्म होय हो ।।
५०. तथा दुस्समसुषमा काले हुवै मु०,
सुषमदुस्समा काले होय हो ।
सुषमा काले हुवै नहीं, सुषमसुषमा नहीं कोय हो ।।
५१ छता भाव प्रति आश्रयी मु०, ते उत्सर्पिणी मांय हो ।
दुषमसुषमा काले नहीं हुवै मु०, दुषमा काले नहीं थाय हो ।।
५२. दुस्समसुषमा काले हुवै मु०, सुषमदुस्समा काले पाय हो ।
सुषमा काल विषे नहीं हुवै मु०, सुषमसुषमा काले नांय हो ।।

सोरठा

५३. उत्सर्पिणी नां जाण, द्वितीय तृतीय फुन तुर्य अर ।
ए त्रिहुं विषे पिछाण, जन्म आश्रयी जिन कह्यो ।।
५४. द्वितीय अरक रै अंत, जन्म थया जे पुरुष नैं ।
तृतीय चरण धारंत, हुवै पुलाक नियंठको ।।
५५. तृतीय तुर्य अरकेह, जन्म अनैं चारित्र पिण ।
अंगीकार करेह, हुवै पुलाकपणुं तदा ।।
५६. छता भाव आश्रित, उत्सर्पिणी अद्धा विषे ।
तीजे तुर्य कथित, चारित्र पुलाक इम हुवै ।।

वा०—उत्सर्पिणी नां बीजा अरा नैं विषे जन्म हुवै, पिण दीक्षा न हुवै । जे भणी तीजा अरा नैं विषे तीन वर्ष साढा आठ मास गये छते प्रथम तीर्थंकर नुं जन्म । ते गृहस्थावास रही दीक्षा लेई केवल उपजायां पछै च्यार तीर्थ थापै । तिवारै बीजा अरा नुं जन्मियो कोई दीक्षा लेइ, पुलाक नियंठो हुई । अनैं तीजा चोथा अरा नैं विषे तो पुलाक नां धणी नुं जन्म पिण हुवै अनैं छता भावपणो पिण हुवै ।

५७.*जो अवसर्पिणी उत्सर्पिणी जि०, ए बेहुं काल जिहां नांय हो ।
ते विदेह तथा युगल क्षेत्र में जि०, त्यां अरक नहीं पलटाय हो ।।
५८. तो सुषमासुषमा सरीखो जिहां जि०, देव उत्तरकुरु जोय हो ।
अवसर्पिणी धुर अरा जिसो जि०, तिहां पुलाक स्यूं होय हो ?

५९. कै सुषमा सदृश्य काल नैं विषे जि०, हरिवर्ष रम्यक खेत्त हो ।
ए द्वितीय अरक सरीखो तिहां जि०, पुलाक हुवै छै तेत्थ हो ?

६०. कै सुषम-दुस्समा सदृश्य नैं विषे जि०,
ए हेम एरणवत खेत्त हो ।
ए तीजा अरक सरीखो तिहां जि०,
पुलाक नियंठ हुवै तेत्थ हो ?

४८. सुसमदुस्समाकाले होज्जा ? सुसमाकाले होज्जा ? सुसमसुसमाकाले होज्जा ?

४९. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा, दुस्समाकाले वा होज्जा,

५०. दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा, नो सुसमसुसमाकाले होज्जा ।

५१. सतिभावं पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा, नो दुस्समाकाले होज्जा,

५२. दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा, नो सुसमसुसमाकाले होज्जा । (श. २५।३३०)

५३. उत्सर्पिण्यां द्वितीयतृतीयचतुर्थेष्वरकेषु जन्मतो भवति, (वृ. प. ८९७)

५४. तत्र द्वितीयस्यान्ते जायते तृतीये तु चरणं प्रतिपद्यते, (वृ. प. ८९७)

५५. तृतीयचतुर्थयोस्तु जायते चरणं प्रतिपद्यत इति, (वृ. प. ८९७)

५६. सद्भावं पुनः तृतीयचतुर्थयोरेव तस्य सत्ता, तयोरेव चरणप्रतिपत्तेरिति, (वृ. प. ८९७)

५७. जइ नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले होज्जा

५८. किं सुसमसुसमापलिभागे होज्जा ?
'सुसमपलिभागे' त्ति सुषमसुषमाया प्रतिभागः—सादृश्यं यत्र काले स तथा, स च देवकुरूत्तरकुरुषु, (वृ. प. ८९७)

५९. सुसमापलिभागे होज्जा ?
एवं सुषमाप्रतिभागो हरिवर्षरम्यकवर्षेषु, (वृ. प. ८९७)

६०. सुसमदुस्समापलिभागे होज्जा ?
सुषमदुष्षमाप्रतिभागो हैमवतैरण्यवतेषु, (वृ. प. ८९७)

---

*लय : सींहल नृप कहै चन्द नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६१. कै दुस्सम-सुषमा सदृश्य नैं विषे जि०, महाविदेह रै मांय हो ।
ए चोथा अरक सरीखो तिहां जि०, एह पुलाकज थाय हो ?
६२. जिन भाखैं जन्म आश्रयी मु०, छता भाव आश्रयी जोय हो ।
सुषमसुषमा सदृश्य नैं विषे जि०, एह पुलाक न होय हो ।।
६३. सुषमा सदृश्य विषे नहीं हुवै मु०, सुषमदुस्समा सदृशेह हो ।
तेह काल नैं विषे वली मु०, एह पुलाक न लेह हो ।।

६१. दुस्समसुसमापलिभागे होज्जा ?
दुष्षमसुषमाप्रतिभागो महाविदेहेषु । (वृ. प. ८९७)
६२. गोयमा ! जम्मण-संतिभावं पडुच्च नो सुसमसुसमापलिभागे होज्जा,
६३. नो सुसमापलिभागे होज्जा, नो सुसमदुस्समापलिभागे होज्जा,

सोरठा

६४. ए त्रिहुं अरक सरीस, मिथुनक अकर्मभूमि खित्त ।
न ह्वै पुलाक जगीस, जन्म छता भाव आश्रयां ।।
६५. साहरण पिण नहि होय, पुलाक लब्धि नैं विषे ।
वर्त्तमान नैं जोय, देवादिक नहि संहरै ।।

वा०—पुलाक लब्धि फोड़वै ते वेला पुलाक लब्धि नैं विषे वर्त्तमान कहियै, ते काले पुलाक नियंठो कहियै । जे माटै जिहां देवादि नैं संहरणे करी पिण नहीं । पुलाक लब्धि नैं विषे वर्तमान नैं ते वेला देवादिक संहरवा नैं असमर्थपणां थकी ।

६६. *दुस्समसुषमा सदृश्य नैं विषे मु०, महाविदेह क्षेत्र मांय हो ।
जन्म छता भाव आश्रयी मु०, तिहां पुलाकज थाय हो ।।

६६. दुस्समसुसमापलिभागे होज्जा । (श. २५।३३१)

वा०—दुस्समसुषमा सरीखो काल महाविदेह क्षेत्र नैं विषे हुवै तिहां जन्म आश्रयी तथा छता भाव आश्रयी नैं पिण हुवै ।

६७. *बकुश तणीं पूछा कियां मु०, तब भाखै जिनराय हो ।
अवसर्पिणी काले तथा मु०, उत्सर्पिणी विषे थाय हो ।।
६८. अथवा अवसर्पिणी नहीं जिहां मु०, उत्सर्पिणी तिहां नांय हो ।
तेह काल नैं विषे वली मु०, बकुश नियंठो थाय हो ।।
६९. जो अवसर्पिणी काले हुवै जि०, तो स्यूं सुषमसुषमा कालेह हो ।
बकुश हुवै भगवंत जी ! जि०, इत्यादि प्रश्न पूछेह हो ।।
७०. जिन भाखै जन्म आश्रयी मु०, छता भाव आश्रयीत हो ।
सुषमसुषमा काले नहीं हुवै मु०, सुषम काले न संगीत हो ।।
७१. सुषमदुस्समा काले हुवै मु०, तथा दुस्समसुषमा काले थाय हो ।
अथवा दुस्समा काले हुवै मु०, दुस्समदुस्समा विषे नांय हो ।।

६७. बउसे णं—पुच्छा ।
गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा,
६८. नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले वा होज्जा । (श. २५।३३२)
६९. जइ ओसप्पिणिकाले होज्जा किं सुसमसुसमाकाले होज्जा —पुच्छा ।
७०. गोयमा ! जम्मण-संतिभावं पडुच्च नो सुसमसुसमाकाले होज्जा, नो सुसमाकाले होज्जा ।
७१. सुसमदुस्समाकाले वा होज्जा, दुस्समसुसमाकाले वा होज्जा, दुस्समाकाले वा होज्जा, नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा ।

७२. देवादि संहरण आश्रयी मु०, अनेरो कोइ इक काल हो ।
अरक सरीखो अद्धा जिहां मु०, तिहां बकुश हुवै न्हाल हो ।।
७३. जो उत्सर्पिणी काले हुवै जि०, तो स्यूं दुस्समदुस्समा काल हो ।
बकुश हुवै भगवंत जी ! जि०, इत्यादि प्रश्न विशाल हो ।।
७४. जिन भाखै जन्म आश्रयी मु०, दुस्समदुस्समा काले नांय हो ।
जेम पुलाक विषे कह्यूं मु०, तिम इहां पिण कहिवाय हो ।।
७५. छता भाव प्रति आश्रयी मु०, दुस्समदुस्समा काले नांय हो ।
इम पुलाक छतै भाव करि कह्यूं मु०, तेम इहां पिण थाय हो ।।

७२. साहरणं पडुच्च अण्णयरे समाकाले होज्जा । (श. २५।३३३)
७३. जइ उस्सप्पिणिकाले होज्जा किं दुस्समदुस्समाकाले होज्जा —पुच्छा ।
७४. गोयमा ! जम्मणं पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा जहेव पुलाए ।
७५. संतिभावं पडुच्च नो दुस्समदुस्समाकाले होज्जा,

*लय : सींहल नृप कहै चंद नै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७६. जाव सुषमसुषमा जिको मु०, उत्सर्पिणी नों एह हो ।
छठै अरक काले नहीं हुवै मु०, बकुश ते छतै भावेह हो ।।
७७. देवादि संहरण आश्रयी मु०, अनेरो कोइ इक काल हो ।
अरक सरीखो अद्धा जिहां मु०, तिहां बकुश हुवै न्हाल हो ।।
७८. जो नहीं तिहां अवसर्पिणी जि०, उत्सर्पिणी पिण नांय हो ।
एहवा काल विषे हुवै ? जि०, तास प्रश्न पूछाय हो ।।
७९. जिन भाखै जन्म आश्रयी मु०,
तथा छता भाव आश्रयी जोय हो ।
सुषमसुषमा सरीखो जिहां मु०, तेह विषे नहीं होय हो ।।
८०. जेम पुलाक विषे कह्यो मु०, कहिवो तिम अवलोय हो ।
जाव दुस्समसुषमा जिसो मु०, तेह विदेह में होय हो ।।
८१. देवादिक संहरण आश्रयी मु०, कोइ एक अरा सरीस हो ।
काल हुवै तेहनें विषे मु०, बकुश हुवै सुजगीस हो ।।
८२. जेम बकुश नें आखियो मु०, पडिसेवणा छै एम हो ।
इमज कषायकुशील नें मु०, कहिवो बकुश जेम हो ।।
८३. निर्ग्रंथ स्नातक ए बिहुं मु०, पुलाक जेम कहिवाय हो ।
णवरं विशेष छै एतलो मु०, भणवो साहरण अधिकाय हो ।।

वा०—निर्ग्रंथ, स्नातक—ए बिहुं पुलाक नीं परै कहिवा । एतलो विशेष ए बिहुं नैं अधिको संहरण जाणवो ते किम ? पुलाक नैं पूर्वोक्त युक्ते करी संहरण नहीं छै पुलाक लब्धि नां वश थकी । अनैं ए बिहुं नैं संहरण नों संभव छै इम करीनैं ते कहिवो । सहरण द्वारे करी जे तेहनों सर्व काल नैं विषे संभव ए बिहुं पहिलां संहरया पछै निर्ग्रंथ स्नातकपणां नीं प्राप्ति कहिवी जे माटै अपगतवेद नैं संहरण नथी ।

७६. एवं संतिभावेण वि जहा पुलाए जाव नो सुसमसुसमाकाले होज्जा,
७७. साहरणं पडुच्च अण्णयरे समाकाले होज्जा ।
(श. २५।३३४)
७८. जइ नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले होज्जा—पुच्छा ।
७९. गोयमा ! जम्मण-संतिभाव पडुच्च नो सुसमसुसमापलिभागे होज्जा ।
८०. जहेव पुलाए जाव दुस्समसुसमापलिभागे होज्जा ।
८१. साहरणं पडुच्च अण्णयरे पलिभागे होज्जा ।
८२. जहा बउसे । एवं पडिसेवणाकुसीले वि । एवं कसायकुसीले वि ।
८३. नियंठो सिणाओ य जहा पुलाओ, नवरं—एतेसिं अब्भहियं साहरणं भाणियव्वं ।

वा०—'नियंठो सिणाओ य जहा पुलाओ' त्ति एतौ पुलाकवद्वक्तव्यौ, विशेषं पुनराह—'नवरं एएसिं अब्भहियं साहरणं भाणियव्वं' ति पुलाकस्य हि पूर्वोक्तयुक्त्या संहरणं नास्ति एतयोश्च तत्संभवतीति कृत्वा तद्वाच्यं, संहरणद्वारेण च यस्तयोः सर्वकालेषु सम्भवोऽसौ पूर्वसंहृतयोर्निर्ग्रन्थस्नातकत्वप्राप्तौ द्रष्टव्यो, यतो नापगतवेदानां संहरणमस्तीति,
(वृ. प. ८९७)

सोरठा

८४. समणी वेद-रहित्त, परिहारविशुद्ध पुलाक फुन ।
चउदपूर्व अपमत्त, नथी संहरै इम वृत्तौ ।।

८४. समणीमवगयवेयं परिहारपुलायमप्पमत्तं च ।
चोद्दसपुव्वि आहारयं च ण य कोइ संहरइ ।
(वृ. प. ८९७)

८५. *शेष तिमज कहिवुं सहु मु०, द्वादशमो काल द्वार हो ।
शत पणवीसम नुं छठो मु०, देश उद्देश नुं सार हो ।।
८६. च्यारसौ नैं छयांलीसमीं मु०, ढाल विशाल रसाल हो ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी मु०, 'जय-जश' मंगलमाल हो ।।

८५. सेसं तं चेव । (श० २५।३३५)

*लय : सींहल नृप कहै चन्द नै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४४७

निर्ग्रन्थ की गति

वा.—गतिद्वार नैं विषे सौधर्मादिक देव गति इंद्रादिक तेहनां भेद तथा आयुष्क पुलाकादिक नैं निरूपण करियै छै—

दूहा

१. पुलाक हे भगवंत जी ! काल करी नैं ताय।
गमन करै किण गति विषे ? जिन कहै सुर गति जाय ।।

*अबै नहीं वीसरूं ।।

अै तो षड निर्ग्रन्थ उदार, अबै....
पूछै श्री गोयम गणधार, अबै....
प्रभु उत्तर दै हितकार, अबै....
ज्यांरा वयण सुधारस सार, अबै...
ज्यांरी करणी रो बलिहार, अबै.... (ध्रुपदं)

२. सुरगति में जातो थको, स्यूं भवणपति में जाय ?
व्यंतर जोतिषी नैं विषे, कै वैमानिक सुर थाय ?

३. जिन कहै भवणपति विषे, व्यंतर ज्योतिष मांय।
पुलाकधर नवि ऊपजै, वैमानिक में जाय ।।

४. ऊपजतो वैमानिके, जघन्य थकी अवधार।
सोहम कल्पे ऊपजै उत्कृष्टो सहसार ।।

वा.—'इहां पुलाक नियंठो काल करै कह्यं, ते पुलाक प्रति तजी अनेरै नियंठै आव्यो थको तत्काल मरै ते आश्रयी पुलाक नुं मरण जणाय छै। जिम निर्ग्रंथ, स्नातक नुं संहरण कह्यं, ते छठै गुणठाणै छतां संहरण कीधु संहर्‌यां पछै निर्ग्रंथ, स्नातकपणुं पाम्या ते निर्ग्रंथ स्नातक नुं संहरण लेखव्यूं। तिम पुलाक नियंठो तजी अन्य नियंठे आवत पाण मरण पामै ते पुलाक नुं मरण लेखव्युं, पिण पुलाक विषे वर्त्ततुं काल न करै, एहवुं संभावियै छै।' (ज० स०)

५. कहिवुं इमहिज बकुश प्रति, णवरं इतरो विशेख।
उत्कृष्ट अच्युत नैं विषे, ऊपजवुं संपेख ।।

६. पडिसेवणाकुशील फुन, बकुश जिम कहिवाय।
जघन्य सौधर्मे ऊपजै, उत्कृष्ट अच्चु जाय ।।

७. तुर्य कषायकुशील जे, पुलाक जिम कहिवाय।
णवरं ए उत्कृष्ट थी, अनुत्तर विमाने जाय ।।

८. निर्ग्रंथ हे भगवंत जी ! इत्यादिक इमहीज।
जावत वैमानिक विषे, ऊपजतोज कहीज ।।

९. जघन्य नहीं उत्कृष्ट नहीं, जघन्योत्कृष्ट न तेह।
ऊपजवुं निर्ग्रंथ नुं, अनुत्तरविमान विषेह ।।

*लय : अबै नहीं बीसरूं

वा०—गतिद्वारे सौधर्मादिका देवगतिरिन्द्रादयस्तद्भेदास्तदायुश्च पुलाकादीनां निरूप्यते—
(वृ. प. ८९७)

१. पुलाए णं भंते ! कालगए समाणे कं गतिं गच्छति ?
गोयमा ! देवगतिं गच्छति। (श. २५।३३६)

२. देवगतिं गच्छमाणे किं भवणवासीसु उववज्जेज्जा ?
वाणमंतरेसु उववज्जेजा ? जोइसिएसु उववज्जेज्जा ?
वेमाणिएसु उववज्जेज्जा ?

३. गोयमा ! नो भवणवासीसु, नो वाणमंतरेसु, नो जोइसिएसु, वेमाणिएसु उववज्जेज्जा।

४. वेमाणिएसु उववज्जमाणे जहण्णेणं सोहम्मे कप्पे, उक्कोसेणं सहस्सारे कप्पे उववज्जेज्जा।

५. बउसे णं एवं चेव, नवरं—उक्कोसेणं अच्चुए कप्पे।

६. पडिसेवणाकुसीले जहा बउसे।

७. कसायकुसीले जहा पुलाए, नवरं उक्कोसेणं अणुत्तरविमाणेसु उववज्जेज्जा।

८. नियंठे णं एवं चेव जाव वेमाणिएसु उववज्जमाणे

९. अजहण्णमणुक्कोसेणं अणुत्तरविमाणेसु उववज्जेज्जा।
(श. २५। ३३७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. स्नातक काल किये छते, किसी गति प्रति जाय ?
जिन भाखै सिद्ध गति प्रतै, जावै कर्म खपाय ।।

११. पुलाक प्रभु ! सुर नैं विषे, ऊपजतो पहिछाण ।
इंद्रपणैं स्यूं ऊपजे ? कै सामानिक जाण ?

१२. तथा त्रायत्रिंसकपणैं, लोकपाल फुन न्हाल ।
पद अहमिंद्रपणैं वली, ऊपजै ते मुनिमाल ?

१३. जिन कहै अविराधक जिको, तेह आश्रयी जोय ।
इंद्रपणैं जे ऊपजै सामानिक पिण होय ।।

१४. वलि त्रायत्रिंशकपणैं, लोकपाल फुन होय ।
पद अहमिंद्रपणैं तसु, ऊपजवुं नहिं कोय ।।

वा.—विराधना ज्ञानादिक नीं कियां पछै आलोई-पडिकमी शुद्ध थयो अनैं पुलाक लब्धि फोड़वी आलोइ शुद्ध थइ तत्काल काल कियो ते अविराधक पुलाक आश्रयी अविराधक छता इत्यर्थः । अविराधक छता काल करी इंद्र, सामानिक, त्रायत्रिंसक, लोकपालपणैं ऊपजै ए आठमा कल्प लगै जाय ते माटैं । अनैं अहमिंद्र तो ग्रैवेयक अनुत्तरविमान नां धणी छै, तिहां ए न जाय ते भणी अहमिंद्रपणैं न ऊपजै ।

१०. सिणाए णं भंते ! कालगए समाणे कं गतिं गच्छइ ?
गोयमा ! सिद्धिगतिं गच्छइ । (श. २५।३३८)

११. पुलाए णं भंते ! देवेसु उववज्जमाणे किं इंदत्ताए उववज्जेज्जा ? सामाणियत्ताए उववज्जेज्जा ?

१२. तावत्तीसाए उववज्जेज्जा ? लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा ? अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ?

१३. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च इंदत्ताए उववज्जेज्जा, सामाणियत्ताए उववज्जेज्जा,

१४. तावत्तीसाए उववज्जेज्जा, लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा, नो अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ।

वा०—'अविराहणं पडुच्च' त्ति अविराधना ज्ञानादीनां अथवा लब्धेरनुपजीवनाऽतस्तां प्रतीत्य अविराधकाः सन्त इत्यर्थः, (वृ. प. ८९८)

१५. विराधना प्रति आश्रयी, भवणपति नैं आद ।
अन्य कोइक सुर नैं विषे, ऊपजवुं संवाद ।।

वा.—भवनपत्यादिक मांहिला कोइ एक देव नैं विषे ऊपजै ए भवनपति व्यंतर ज्योतिषी नैं विषे ऊपजै ते सम्यक्त्व नों पिण विराधक अनैं चारित्र नों पिण विराधक जाणवुं । ते भणी समदृष्टि तिर्यंच, मनुष्य नैं वैमानिक विना और आयु न बंधै ते माटैं । अनैं वैमानिक नों बंध सम्यकरहित अनैं चारित्ररहित नैं पिण हुवै अनैं सम्यक्त्व नों आराधक चारित्रविराधक नैं पिण हुवै ।

१५. विराहणं पडुच्च अण्णयरेसु उववज्जेज्जा ।

वा०—'अन्नयरेसु उववज्जेज्ज' त्ति भवनपत्यादीनामन्यतरेषु देवेषूत्पद्यन्ते, विराधितसंयमानां भवनपत्याद्युत्पादस्योक्तत्वात्, यच्च प्रागुक्तं 'वेमाणिएसु उववज्जेज्ज' त्ति तत्संयमाविराधकत्वमाश्रित्यावसेयम् । (वृ. प. ८९८)

१६. इम बकुश पिण जाणवुं, पडिसेवणाकुशील ।
तास विषे इमहीज ए, कहिवुं अर्थ सुमील ।।

१७. कषायकुशील नीं पृच्छा, अविराधन आश्रित्त ।
इंद्रपणैं वा ऊपजै, जाव अहमिंद्र उपत्त ।।

१८. विराधना प्रति आश्रयी, भवणपत्यादिक जाण ।
कोइ एक सुर नैं विषे, ऊपजै तेह अयाण ।।

१९. निर्ग्रंथ पूछयां जिन कहै, अविराधक पहिछाण ।
इंद्रपणैं नहीं ऊपजै, ए ग्यारम गुणठाण ।।

२०. जावत ते नहिं ऊपजै, लोकपाल भावेह ।
अहमिंद्रपणैंज ऊपजै, निर्ग्रंथ काल करेह ।।

२१. विराधक हेठो पड़ मरी, भवणपत्यादिक मांय ।
कोइ एक में ऊपजै, समक्त्व चरण गमाय ।।

२२. पुलाक प्रभु ! सुरलोक में, ऊपजता नैं आम ।
किता काल नीं स्थित तसु, आप परूपी स्वाम ?

२३. श्री जिन भाखै जघन्य थी, पृथक पल्य अवधार ।
उत्कृष्टी स्थित तेहनीं, आखी उदधि अठार ।।

१६. एवं बउसे वि । एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।
(श. २५।३३९)

१७. कसायकुसीले—पुच्छा ।
गोयमा ! अविराहणं पडुच्च इंदत्ताए वा उववज्जेज्जा जाव अहमिंदत्ताए वा उववज्जेज्जा ।

१८. विराहणं पडुच्च अण्णयरेसु उववज्जेज्जा ।
(श. २५। ३४०)

१९. नियंठे पुच्छा ।
गोयमा ! अविराहणं पडुच्च नो इंदत्ताए उववज्जेज्जा ।

२०. जाव नो लोगपालत्ताए उववज्जेज्जा, अहमिंदत्ताए उववज्जेज्जा ।

२१. विराहणं पडुच्च अण्णयरेसु उववज्जेज्जा ।
(श. २५।३४१)

२२. पुलायस्स णं भंते ! देवलोगेसु उववज्जमाणस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

२३. गोयमा ! जहण्णेणं पलिओवमपुहत्तं, उक्कोसेण अट्ठारस सागरोवमाइं । (श. २५।३४२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. बकुश तणीं पूछा कियां, दाखै तब जगदीस।
जघन्य पल्योपम पृथक नीं, उत्कृष्ट उदधि बावीस।।

२४. बउसस्स—पुच्छा
गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमपुहत्तं, उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमाइं।

२५. पडिसेवणाकुशील पिण, कहिवुं इणहिज इष्ट।
जघन्य पल्योपम पृथक नी, बावीस दधि उत्कृष्ट।।

२५. एवं पडिसेवणाकुसीलस्स वि। (श. २५।३४३)

२६. कषायकुशील पूछियां, जिन भाखै सुण शीस।
जघन्य पल्योपम पृथक नीं, उत्कृष्ट दधि तेतीस।।

२६. कसायकुसीलस्स—पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं पलिओवमपुहत्तं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। (श. २५।३४४)

२७. निर्ग्रंथ पूछचां जिन कहै, अजघन्य अनुत्कृष्ट।
स्थित सागर तेतीस नीं, ए अनुत्तर विमाने इष्ट।।

२७. नियंठस्स—पुच्छा।
गोयमा! अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं। (श. २५।३४५)

२८. बेसौ छप्पन देश ए, चिउं सय ढाल सैंताल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' मंगलमाल।।

ढाल : ४४८

निर्ग्रंथ के संयम-स्थान

दूहा

१. पुलाक नें प्रभु! केतला, संजमस्थानक ख्यात?
जिन कहै असंख परूपिया, संजमस्थान सुजात।।

१. पुलागस्स णं भंते! केवतिया संजमट्ठाणा पण्णत्ता?
गोयमा! असंखेज्जा संजमट्ठाणा पण्णत्ता।

२. संजम ते चारित्र छै, तेहनां स्थान संवेद।
शुद्ध प्रकर्ष अनैं वली, अप्रकर्ष कृत भेद।।

२. संयमः चारित्रं तस्य स्थानानि—शुद्धिप्रकर्षाप्रकर्ष-कृता भेदा संयमस्थानानि, (वृ. प. ८९८)

३. ते चारित्त-स्थान प्रत्येक ही, पज्जवा सहित सुजोय।
सर्व आकाश प्रदेश नें, परिमाणें ते होय।।

३. तानि च प्रत्येकं सर्वाकाशप्रदेशाग्रगुणितसर्वाकाश-प्रदेशपरिमाणपर्यवोपेतानि भवन्ति, (वृ. प. ८९८)

४. संजमस्थान पुलाक नां, असंख्यात अवलोय।
चरित्तमोह क्षयोपशम नां, विचित्रपणां थी होय।।

४. तानि च पुलाकस्यासंख्येयानि भवन्ति, विचित्रत्वा-च्चारित्रमोहनीयक्षयोपशमस्य, (वृ. प. ८९८)

५. जितरा लोक आकाश नां, प्रदेश श्री जिन ख्यात।
तेता पुलाक नां हुवै, चरण-स्थान असंख्यात।।

६. आख्यो ए विस्तार सहु, अर्थ थकी अवधार।
सूत्रे तो समुच्चय कह्यूं, स्थान असंख उदार।।

७. एवं जावत जाणवा, कषायकुसीलनांज।
संयम नां स्थानक कह्या, असंख्यात जिनराज।।

७. एवं जाव कसायकुसीलस्स। (श. २५।३४६)

८. निर्ग्रंथ नां प्रभु! केतला, संजमस्थान प्रधान?
जिन कहै जघन्योत्कृष्ट नहीं, इकहिज संजमस्थान।।

८. नियंठस्स णं भंते! केवतिया संजमट्ठाणा पण्णत्ता?
गोयमा! एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे।

वा०—निर्ग्रंथ नुं एक संजम-स्थानक हुवै ते इग्यारमें गुणस्थान सर्व चारित्र मोहणी नों उपशम प्रथम समय नैं विषे थयुं तथा बारमां गुणठाण नैं प्रथम समय

वा०—निर्ग्रन्थस्यैकं संयमस्थानं भवति, कषायाणा-मुपशमस्य क्षयस्य चाविचित्रत्वेन शुद्धेरेकविधत्वात्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सर्व चारित्र मोहनी नुं क्षय थयुं ते उपशम वा क्षय नैं अविचित्रपणैं करी सर्व निर्गंथ नैं शुद्धि नां एकविधपणां थकी एकहिज जाणवुं। बहु नैं विषे जघन्य उत्कृष्ट हुवैं पिण एक नैं विषे जघन्य, उत्कृष्ट न हुवैं।

एकत्वादेव तदजघन्योत्कृष्टं, बहुष्वेव जघन्योत्कृष्ट-भावसद्भावादिति। (वृ. प. ८९८)

९. स्नातक नैं पिण इह विधे, इक है संजमस्थान।
सर्व मोह नां क्षय थकी, संजमस्थान प्रधान।।

९. एवं सिणायस्स वि। (श. २५।३४७)

निर्ग्रन्थ के संयमस्थान का अल्पबहुत्व

*सोही सयाणा शिव मग साधै,
शिव मग साधै नैं चरण आराधै।।(ध्रुपदं)

१०. हे प्रभु ! एह पुलाक नैं जाण, बकुश पडिसेवणा नां पिछाण।
कषायकुशील नां संजमस्थान, निर्ग्रंथ स्नातक नां फुन जान।।
११. एह छहुं नां संयमस्थान, आपस में मांहोमांहि पिछान।
कवण-कवण थी जाव कहाय, विशेष अधिक हुवै जिनराय !
१२. जिन कहै थोड़ो सर्व थकीज, निर्ग्रंथ स्नातक नों इकहीज।
जघन्य अनैं उत्कृष्ट न तेह, संयमस्थान विशुद्धि इक लेह।।

१०. एतेसि णं भंते ! पुलाग-बउस-पडिसेवणा-कसाय-कुसील-नियंठ-सिणायाणं
११. संजमट्ठाणाणं कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?
१२. गोयमा ! सव्वत्थोवे नियंठस्स सिणायस्स य एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे।
'अजहन्ने' त्यादि, एतच्चैवं शुद्धेरेकविधत्वात् (वृ. प. ८९८)

१३. तेहथी पुलाक नां संजमस्थान, अधिक असंखगुणा सुविधान।
क्षय उपशम नैं विचित्रपणेह, आगल पिण ए न्याय कहेह।।

१३. पुलागस्स णं संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा।
पुलाकादीनां तूक्तक्रमेणासंख्येयगुणानि तानि क्षयोपशमवैचित्र्यादिति। (वृ. प. ८९८)

१४. तेहथी बकुश नां संयमस्थान, असंखगुणा आख्या जगभान।
तेह थकी पडिसेवणा केरा, असंख्यातगुणा कह्या घणेरा।।
१५. तेहथी कषायकुशील तणां फुन,
चारित्रस्थानक भाख्या श्री जिन।
पवर असंखगुणा अधिकाय, द्वार चबदमों ए सुखदाय।।

१४. बउसस्स संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा। पडिसेवणा-कुसीलस्स संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा।
१५. कसायकुसीलस्स संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा। (श. २५।३४८)

वा —तिहां निकर्ष कहितां सन्निकर्ष पुलाकादिक नों परस्पर संयोजन संबंध, तेहनां प्रस्ताव ते अवसर थकी कहै छै—

वा० —तत्र निकर्षः—संनिकर्षः, पुलाकादीनां परस्परेण संयोजनं, तस्य च प्रस्तावनार्थमाह— (वृ. प. ८९८)

निर्ग्रन्थ में निकर्ष—चारित्र के पर्यव

१६. हे भगवंत ! पुलाक नां आख्या, केतला चारित्रपज्जवा भाख्या ?
जिन कहै चारित्त-पज्जवा अनंत, इम यावत स्नातक नां हुंत।।

१६. पुलागस्स णं भंते ! केवतिया चरित्तपज्जवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणंता चरित्तपज्जवा पण्णत्ता। एवं जाव सिणायस्स। (श. २५।३४८)

वा. —चारित्र सर्वविरति रूप परिणाम नां पर्यव कहितां भेद ते चारित्र-पर्यव, तेह बुद्धिकृत अविभाग पलिच्छेद अथवा विषय कृत जाणवा इम यावत स्नातक लगै कहिवूं।

वा० —'चरित्तपज्जव' त्ति चारित्रस्य—सर्व-विरतिरूपपरिणामस्य पर्यवा—भेदाश्चारित्रपर्यवास्ते च बुद्धिकृता अविभागपलिच्छेदा विषयकृता वा। (वृ. प. ९००)

पुलाक का पुलाक के साथ सन्निकर्ष

१७. हे भगवंत ! पुलाक नैं जेह, सजातीया स्थानक नैं एह।
चरित्त-पज्जव स्यूं हीण कै तुल्य, अथवा कहियै अधिक अमूल्य ?

१७. पुलाए णं भंते ! पुलागस्स सट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे ? तुल्ले ? अब्भहिए ?

वा. —पुलाक हे भगवन ! पुलाक नैं सट्ठाण कहितां आपणा सजातीय स्थानक पर्याय नां आश्रय ते स्वस्थान पुलाकादिक नैं पुलाकादिकहीज तेहनों सन्निकर्ष

वा० —'सट्ठाणसन्निगासेणं' ति स्वं—आत्मीयं सजातीयं स्थानं—पर्यवाणामाश्रयः स्वस्थानं—

***लय : सोही सयाणा अवसर साधै**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहितां संयोजन ते स्वस्थान संयोजन, चारित्र पर्याय करी स्यूं हीन विशुद्ध संजमस्थान संबंधिपणें करी विशुद्धतर पर्याय अपेक्षाये अविशुद्धतर पर्याय हीन, तेहनां योग थकी साधु पिण हीन कहियै। तुल्ले ति तुल्यशुद्धिक पर्याय योग थकी ते तुल्य कहियै। अब्भहिएत्ति विशुद्धतर पर्याय योग थकी अभ्यधिक कहियै इति प्रश्न।

पुलाकादिरेव तस्य संनिकर्षः—संयोजनं स्वस्थानसंनिकर्षस्तेन, किं ?—'हीणे' ति विशुद्धसंयमस्थानसम्बन्धित्वेन विशुद्धतरपर्यवापेक्षया अविशुद्धतरसंयमस्थानसम्बन्धित्वेनाविशुद्धतराः पर्यवा हीनास्तद्योगात्साधुरपि हीनः 'तुल्ले' त्ति तुल्यशुद्धिकपर्यवयोगात्तुल्यः 'अब्भहिय' त्ति विशुद्धतरपर्यवयोगादभ्यधिकः,। (वृ. प. ९००)

सोरठा

१८. पुलाक पज्जवा ताय, अन्य पुलाक पर्यव थकी।
स्यूं हीन तुल्य अधिकाय, इम ए प्रश्न सजातीय।।

१९. *श्री जिन भाखै कदाचित हीन, कदाचित ह्वै तुल्य सुचीन।
कदाचित कहियै अधिकाय, पुलाक पुलाक नैं मांहोमांय।।

१९. गोयमा ! सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए।

वा०—सिय हीणेत्ति कहितां कदाचित अशुद्ध संयमस्थानवर्त्तिपणां थकी। सिय तुल्लेत्ति कदाचित एक संजमस्थानवर्त्तिपणां थकी सरीखा तुल्यस्थितिक पर्याय योग थकी तुल्य। सिय अब्भहिएत्ति कदाचित अभ्यधिक ते विशुद्धतर संजमस्थानवर्त्तिपणां थकी।

वा०—'सिय हीणे' त्ति अशुद्धसंयमस्थानवर्त्तित्वात् 'सिय तुल्ले' त्ति एकसंयमस्थानवर्त्तित्वात् सिय अब्भहिए' त्ति विशुद्धतरसंयमस्थानवर्त्तित्वात्, (वृ. प. ९००)

२०. जो हीन तो अनंतभाग छै हीन, असंखभाग वा हीन कथीन।
संख्यातभाग हीन कहिवाय, ए त्रिहुं भाग हीन अपेक्षाय।।
२१. संखेजगुणा वा हीन कहाय, असंख्यातगुण हीन वा थाय।
अथवा जेह अनंतगुण हीन, ए त्रिहुं हीन गुणाज कथीन।।
२२. अथ अधिक जो कहियै ताय, तो अनंतभाग अधिक कहिवाय।
असंखभाग अधिक वा होय, संखेजभाग अधिक वा जोय।।
२३. तथा संख्यातज गुण अधिकाय, असंखगुणा वा अधिक कहाय।
अथवा अनंतगुण अधिक कहीजै,
स्वस्थान आश्रयी एह गुणीजै।।

२० जइ हीणे अणंतभागहीणे वा, असंखेज्जइभागहीणे वा, संखेज्जइभागहीणे वा,
२१. संखेज्जगुणहीणे वा, असंखेज्जगुणहीणे वा, अणंतगुणहीणे वा।
२२. अह अब्भहिए अणंतभागमब्भहिए वा, असंखेज्जइभागमब्भहिए वा, संखेज्जभागमब्भहिए वा,
२३. संखेज्जगुणमब्भहिए वा, असंखेज्जगुणमब्भहिए वा, अणतगुणमब्भहिए वा। (श. २५।३५०)

सोरठा

२४. पुलाक नां पर्याय, अन्य पुलाकज पज्जव थी।
कदा तुल्य वा थाय, हीणाधिक षट स्थान करी।।

वा०—जो हीन हुवै तो अनंतभाग हीन इहां असद्भाव स्थापना थकी पुलाक नां उत्कृष्ट संजम-स्थान पर्यवमान दश सहस्र, तेहनैं सर्व जीव अनंतक शत परिमाणपणैं कलिपत भाग थी हरयां थकी १०० लाधा। द्वितीय प्रतियोगी पुलाक चरण पर्यवाग्र नव सहस्र नव सै अधिक। पूर्वे भाग लाधो शत, ते इहां प्रक्षिप्त कीधां ते १०००० दस सहस्र थया। तिवारे एह पुलाक सर्व जीव अनंत भाग हर्यां लाधो एक सौ, तिणे करी हीन ते माटै अनंत भाग हीन कहियै १।

वा.—'अणंतभागहीणे' त्ति किलासद्भावस्थापनया पुलाकस्योत्कृष्टसंयमस्थानपर्यवाग्रं दश सहस्राणि १००००, तस्य सर्वजीवानन्तकेन शतपरिमाणतया कल्पितेन भागे हृते शतं लब्धं १००, द्वितीयप्रतियोगिपुलाकचरणपर्यवाग्रं नव सहस्राणि नवशताधिकानि ९९००, पूर्वभागलब्धं शतं तत्र प्रक्षिप्तं जातानि दश सहस्राणि, ततोऽसौ सर्वजीवानन्तकभागहारलब्धेन शतेन हीनमित्यनन्तभागहीनः,

असंखेज्जभागहीणे वत्ति। पूर्वोक्त कल्पित पर्याय राशि दश सहस्र नों १०००० लोकाकाश प्रदेश परिमाण असंख्येय, तेहनैं कल्पनाये पचास ५० प्रमाण करियै। तिणे करी ५० भाग हार्या लाधा २०० दोय सय। द्वितीय प्रतियोगी

'असंखेज्जभागहीणे व' त्ति पूर्वोक्तकल्पितपर्यायराशेर्दशसहस्रस्य १०००० लोकाकाशप्रदेशपरिमाणेनासंख्येयकेन कल्पनया पञ्चाशत्प्रमाणेन भागे हृते लब्धं द्विशती, द्वितीयप्रतियोगिपुलाकचरणपर्यवाग्रं नव

*लय : सो ही सयाणां अवसर साधै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुलाक चरण पज्जवाग्र नव सहस्र आठसै ९८०० तिहां। पूर्व भागे लाधा दोय सय, ते प्रक्षिप्त कीधा तिवारै दश सहस्र थया १००००। तिवारै एह लोकाकाश प्रदेश प्रमाण असंख्येय भागहार लाधा दोय सय तिणे हीण एतलै असंख्येयभाग हीन २।

संखेज्जभागहीणे वत्ति पूर्वोक्त कल्पित पर्याय राशि दश सहस्र लगै १०००० उत्कृष्ट संख्येय कल्पनाये दशक परिमाणे करी भाग हरयां लाधा सहस्र १०००। द्वितीय प्रतियोगी पुलाक चरण पर्यवाग्रह नव सहस्र ९०००। पूर्व भागे लाधा सहस्र तिहां प्रक्षेप कीधां दश सहस्र थया। तिवारै एह उत्कृष्ट संख्येयक भागहार लाधै सहस्रे हीन ते माटै संख्येयभाग हीन ३।

संखेज्जगुणहीणे वत्ति। एक पुलाक चरण पर्यवाग्र कल्पनाये दश सहस्र। द्वितीय प्रतियोगि पुलाक चरण पर्यवाग्र सहस्र। तिवारै उत्कृष्ट संख्येय कल्पनाये दशक परिमाण गुणकारे गुण्यो सहस्र ते दश सहस्र हुवै। तेह तिणे उत्कृष्ट संख्येय कल्पनाये दशक परिमाण गुणकारे करी हीन ते अनभ्यस्त इति संख्येयगुण हीन ४।

असंखेज्जगुणहीणे वत्ति एक पुलाक नां चरण पर्यवाग्र कल्पनाये सहस्र दश। द्वितीय प्रतियोगि पुलाक चरण पर्यवाग्र दोय सै। तिवारै लोकाकाश प्रदेश परिमाण असंख्येय ते कल्पनाये पचास परिमाण गुणकारे करी गुण्यां थकां दोयसै राशि तिका दश सहस्र हुवै। तेह तिणे लोकाकाश प्रदेश परिमाणे असंख्येय कल्पनाये करी पचास प्रमाण गुणकारे करो हीन एतलै असंख्येयगुण हीन इति ५।

अनंतगुणहीणे वत्ति एक पुलाक नां चरण पर्यवाग्र कल्पनाये सहस्र दश। अनै द्वितीय प्रतियोगी पुलाक चरण पर्यवाग्र एक शत तिवारै सर्व जीव अनंत कल्पनाये शत परिमाण गुणकारे करी गुण्यां थकां एकसौ राशि तेह दश सहस्र हुवै। तेह तिणे सर्व जीव अनंत कल्पनाये शत परिमाण गुणकारे करी हीन एतला माटै अनंतगुण हीन ६।

अह अब्भहिएत्ति इम अभ्यधिक षट स्थानक शब्दार्थ पिण इणेहिज भाग अपहार गुणकारे करी बखाणवो ते देखाड़ै छै—एक पुलाक नैं कल्पनाये दश सहस्र चरण पर्यायमान, तेह थकी अनेरा नैं नव सहस्र नव शत अधिक। तिवारै बीजा नीं अपेक्षाये पहिलो अनंतभाग अधिको जाणवो।१। तथा जेहनैं नव सहस्र आठसै अधिक पर्यवमान छै तेहथी पहिलो असंख्येयभाग अधिक २। तथा जेहनैं नव सहस्र चरण पर्यवाग्र तेहथी पहिलो संख्येय भाग अधिक ३। तथा जेहनैं चरण पर्यवाग्र नव सहस्रमान तेहनीं अपेक्षाये पहिलो संख्येय गुणाधिक ४। तथा जेहनैं चरण पर्यवाग्र तेहनीं अपेक्षाये पहिलो संख्येय गुण अधिक ५। तथा जेहनैं चरण पर्यवाग्र शत अपेक्षाये पहिलो अनंतगुण अधिक।

सहस्राण्यष्टौ च शतानि ९८००, पूर्वभागलब्धा च द्विशती तत्र प्रक्षिप्ता, जातानि दश सहस्राणि, ततोऽसौ लोकाकाशप्रदेशपरिमाणासंख्येयकभागहार-लब्धेन शतद्वयेन हीन इत्यसंख्येयभागहीनः,

'संखेज्जभागहीणे व' त्ति पूर्वोक्तकल्पितपर्याय-राशेर्दशसहस्रस्य १०००० उत्कृष्टसंख्येयकेन कल्पनया दशकपरिमाणेन भागे हृते लब्धं सहस्रं, द्वितीयप्रतियोगिपुलाकचरणपर्यवाग्रं नव सहस्राणि ९००० पूर्वभागलब्धं च सहस्रं तत्र प्रक्षिप्तं जातानि दश सहस्राणि, ततोऽसावुत्कृष्टसंख्येयकभागहार-लब्धेन सहस्रेण हीनः,

'संखेज्जगुणहीणे व' त्ति किलैकस्य पुलाकस्य चरणपर्यवाग्रं कल्पनया सहस्रदशकं द्वितीयप्रतियोगि-पुलाकचरणपर्यवाग्रं च सहस्रं, ततश्चोत्कृष्टसंख्येयकेन कल्पनया दशकपरिमाणेन गुणकारेण गुणितः साहस्रो राशिर्जायते दश सहस्राणि, स च तेनोत्कृष्टसंख्येय-केन कल्पनया दशकपरिमाणेन गुणकारेण हीनः—अनभ्यस्त इति संख्येयगुणहीनः,

'असंखेज्जगुणहीणे व' त्ति किलैकस्य पुलाकस्य चरणपर्यवाग्रं कल्पनया सहस्रदशकं द्वितीयप्रतियोगि-पुलाकचरणपर्यवाग्रं च द्विशती, ततश्च लोकाकाश-प्रदेशपरिमाणेनासंख्येयकेन कल्पनया पञ्चाशत्परि-माणेन गुणकारेण गुणितो द्विशतिको राशिर्जायते दश सहस्राणि, स च तेन लोकाकाशप्रदेशपरिमाणा-संख्येयकेन कल्पनया पञ्चाशत्प्रमाणेन गुणकारेण हीन इत्यसंख्येयगुणहीन इति,

'अनंतगुणहीणे व' त्ति किलैकस्य पुलाकस्य चरणपर्यवाग्रं कल्पनया सहस्रदशकं द्वितीयप्रतियोगि-पुलाकचरणपर्यवाग्रं च शतं, ततश्च सर्वजीवानन्तकेन कल्पनया शतपरिमाणेन गुणकारेण गुणितः शतिको-राशिर्जायते दश सहस्राणि, स च तेन सर्वजीवानन्त-केन कल्पनया शतपरिमाणेन गुणकारेण हीन इत्यनन्त-गुणहीनः,

एवमभ्यधिकषट्स्थानकशब्दार्थोऽप्येभिरेव भागा-पहारगुणकारैर्व्याख्येयः, तथाहि—एकस्य पुलाकस्य कल्पनया दश सहस्राणि चरणपर्यवमानं तदन्यस्य नवशताधिकानि नव सहस्राणि, ततो द्वितीयापेक्षया प्रथमोऽनन्तभागाभ्यधिकः, तथा यस्य नव सहस्राणि चरणपर्यवाग्रं तस्मात्प्रथमोऽसंख्येयभागाधिकः, तथा यस्य चरणपर्यवाग्रं सहस्रमानं तदपेक्षया प्रथमः संख्येयगुणाधिकः, तथा यस्य चरणपर्यवाग्रं द्विशती तदपेक्षयाऽऽद्योऽसंख्येयगुणाधिकः, तथा यस्य चरण-पर्यवाग्रं शतमानं तदपेक्षयाऽऽद्योऽनन्तगुणाधिक इति।

(वृ. प. ९००,९०१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुलाक का अन्य निर्ग्रन्थों के साथ सन्निकष

२५. *हे भगवंत ! पुलाक छै जेह, बकुश नैंज चरण पज्जवेह ।
इम पर स्थान जोग करि ताय,
स्यूं हीण तुल्य कै अधिक कहाय ?

वा०—पुलाक हे भगवन ! बकुश नैं पर स्थान सन्निकर्ष चारित्र पर्याये करी विजातीय योग प्रतै आश्रयी नैं इत्यर्थः । विजातीय ते पुलाक ते बकुश थकी स्यूं हीन अथवा तुल्य अथवा अभ्यधिक ? इति प्रश्न ।

सोरठा

२६. पुलाक छै ते ताय, बकुश नैं पज्जवे करी ।
स्यूं हीन तुल्य अधिकाय, इम ए प्रश्न विजातीये ।।

२७. *श्री जिन भाखै पुलाकज चीन, बकुश नैं पज्जवे करि हीन ।
तुल्य अधिक पिण तास न कहियै, अनंतगुण ए हीणज रहियै ।।

वा०—हे गोतम ! पुलाक बकुश थकी हीन हुवै तथाविध विशुद्धि नां अभाव थकी, नो तुल्ये कहितां नहीं सरीखा तथा नहीं अधिक । इम प्रतिसेवना कुशील नैं पिण कहिवो ।

२८. प्रतिसेवणा कुशील संघात, पुलाक हीन इमज आख्यात ।
तुल्य अधिक पिण कहियै नांय, हीण अनंतगुण पुलाक थाय ।।

२९. कषायकुशील संघात पुलाग, छट्ठाणवडिए कह्यु महाभाग ।
जेम स्वस्थान पुलाक आख्यात, तेम कषायकुशील संघात ।।

वा०—पुलाक पुलाक नीं अपेक्षाये जिम छट्ठाणवडिया कह्यो तिम पुलाक कषायकुशील नीं अपेक्षाये पिण छट्ठाणवडिया कहिवुं इत्यर्थ । तिहां पुलाक कषायकुशील थी हीन पिण हुवै अविशुद्ध संजमस्थान वृत्तिपणां थकी, अथवा तुल्य समान संजमस्थान वृत्तिपणां थकी । अथवा अधिक हुवै शुद्धतर संजमस्थान वृत्तिपणां थकी । यतः पुलाक नां तथा कषायकुशील नांज सर्व जघन्य संजमस्थान नीचा तिवारै ते बिहुं समकाले असंख्येयके जातां थकां तुल्य अध्यवसायपणां थकी तिवार पछै पुलाक व्यवच्छेद पामै हीन परिणामपणां थकी । पुलाक व्यवच्छेद थयै छतै कषायकुशील हीज असंख्याता संजमस्थान प्रतै जाइ शुभतर परिणाम थकी । तिवार पछै कषायकुशील, प्रतिसेवनाकुशील, बकुश एह समकाले असंख्याता संजमस्थान प्रतै जाइ तिवार पछै बकुश व्यवच्छेद पामै । प्रतिसेवनाकुशील, कषायकुशील बे असंख्याता संजमस्थान प्रतै जातां तिवार पछै प्रतिसेवनाकुशील व्यवच्छेद पामै । तथा कषायकुशील असंख्याता संजमस्थान प्रतै जाय तिवार पछै ते पिण व्यवच्छेद पामै, तिवारै पछै निर्ग्रंथ, स्नातक ए बेहुं एक संजमस्थानक पामै ।

३०. पुलाक निर्ग्रंथ नैं पज्जवे कर, जेम बकुश कर तिमहिज उच्चर ।
स्नातक नैं पज्जवे पिण एम, अनंतगुण हीणो छै तेम ।।

*लय: सोही सयाणां अवसर साधै

२५. पुलाए णं भंते ! बउसस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे ? तुल्ले ? अब्भहिए ?

वा.—'पुलाए णं भंते ! बउसस्से' त्यादि, 'परट्ठाणसन्निगासेणं' ति विजातीययोगमाश्रित्येत्यर्थः, विजातीयश्च पुलाकस्य बकुशादिः, (वृ. प. ९०१)

२७. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे ।

वा.—तत्र पुलाको बकुशाद्धीनस्तथाविधविशुद्ध्यभावात्, (वृ. प. ९०१)

२८. एवं पडिसेवणाकुसीलस्स वि ।

२९. कसायकुसीलेणं समं छट्ठाणवडिए जहेव सट्ठाणे ।

वा.—'कसायकुसीलेणं समं छट्ठाणवडिए जहेव सट्ठाणे' त्ति पुलाकः पुलाकापेक्षया यथाऽभिहितस्तथा कषायकुशीलापेक्षयाऽपि वाच्य इत्यर्थः, तत्र पुलाकः कषायकुशीलाद्धीनो वा स्यात् अविशुद्धसंयमस्थानवृत्तित्वात् तुल्यो वा स्यात् समानसंयमस्थानवृत्तित्वाद् अधिको वा स्यात् शुद्धतरसंयमस्थानवृत्तित्वात् यतः पुलाकस्य कषायकुशीलस्य च सर्वजघन्यानि संयमस्थानान्यधः, ततस्तौ युगपदसंख्येयानि गच्छतस्तुल्याध्यवसानत्वात्, ततः पुलाको व्यवच्छिद्यते हीनपरिणामत्वात्, व्यवच्छिन्ने च पुलाके कषायकुशील एकक एवासंख्येयानि संयमस्थानानि गच्छति शुभतरपरिणामत्वात्, ततः कषायकुशीलप्रतिसेवनाकुशीलबकुशा युगपदसंख्येयानि संयमस्थानानि गच्छन्ति, ततश्च बकुशो व्यवच्छिद्यते, प्रतिसेवनाकुशीलकषायकुशीलावसंख्येयानि संयमस्थानानि गच्छतस्ततश्च प्रतिसेवनाकुशीलो व्यवच्छिद्यते, कषायकुशीलस्त्वसंख्येयानि संयमस्थानानि गच्छति, ततः सोऽपि व्यवच्छिद्यते, ततो निर्ग्रन्थस्नातकावेकं संयमस्थानं प्राप्नुत इति । (वृ. प. ९०१)

३०. नियंठस्स जहा बउसस्स । एवं सिणायस्स वि ।
(श. २५।३५१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—पुलाक निर्ग्रंथ नैं बकुश नीं परै कहिवुं । निर्ग्रंथ थकी पुलाक अनंतगुण हीण इत्यर्थः । इम स्नातक नैं पिण कहिवुं एतलै पुलाक अवशेष संघाते चिंतव्यो । हिवै बकुश चिंतवीयै छै ।

बकुश का पुलाक के साथ सन्निकर्ष

३१. बकुश नियंठो हे प्रभु ! जिनवर,
पुलाक नैं परस्थान जोग कर ।
चारित्त नैं पज्जवे करि ताय, स्यूं हीन तुल्य कै अधिक कहाय ?

३२. श्री जिन भाखै बकुश सुचीन, पुलाक थी तो नहीं छै हीन ।
तुल्य पिण नांहि कहिजै ताय, एह अनंतगुणो अधिकाय ।।

वा०—बकुश पुलाक थकी अनंतगुण अधिकहीज हुवै अति विशुद्ध परिणामपणां थकी ।

बकुश का बकुश के साथ सन्निकर्ष

३३. बकुश हे भगवंतजी ! जेह, अन्य बकुश नैं स्वस्थान जोगेह ।
चारित्त नैं पज्जवे करि पृच्छा, श्री जिन भाखै सुण धर इच्छा ।।

३४. बकुश अनैं बकुश मांहोमांय, कदाचित ते हीन कहाय ।
कदाच तुल्य कदा अधिकाय, जो हीन तो छट्ठाणवडिया थाय ।।

३५. बकुश नियंठो प्रभुजी ! जेह, पडिसेवणा परस्थान जोगेह ।
चरित्त पज्जव करिनैं स्यूं हीन ? छट्ठाणवडिए कहियै सुचीन ।।

बकुश का शेष अन्य निर्ग्रन्थों के साथ सन्निकर्ष

३६. कषायकुशील पिण इम कहविाय, बकुश कषायकुशील मांहोमांय ।
छट्ठाणवडिए कह्यु जगनाथ, कहियै हिव निर्ग्रंथ संघात ।।

३७. बकुश हे भगवंतजी ! जेह निर्ग्रंथ नैं परस्थान जोगेह ।
चरित्त नैं पज्जवे करि पृच्छा,
श्री जिन भाखै सुण धर इच्छा ।।

३८. बकुश निर्ग्रंथ थी हीनज होय, तुल्य नहीं फुन अधिक न कोय ।
एह अनंतगुण हीन कहाय, स्नातक थी पिण इमहिज पाय ।।

३९. पडिसेवणा कुशील भदंत ! एवं चेव कहीजै तंत ।
वक्तव्यताज बकुश नीं भाखी, तिमहिज कहिवी जिन वच साखी ।।

४०. कषायकुशील नैं संजोगे कर, एवं चेव दीयै जिन उत्तर ।
बकुश नीं वक्तव्यता तिम जाण, णवरं पुलाक संघात छट्ठाण ।।

वा०—एतलै कषायकुशील पिण बकुश नीं परै कहिवो एतलो विशेष । पुलाक थकी बकुश अधिकोज हुवै अनैं कषायकुशील तो षटस्थान पतित हुवै ।४।

निर्ग्रन्थ निर्ग्रन्थ के साथ पुलाक यावत कषायकुशील का सन्निकर्ष

४१. निर्ग्रंथ हे भगवंतजी ! जेह, पुलाक नैं परस्थान जोगेह ।
चरित्त नैं पज्जवे करि पृच्छा, तसु उत्तर सुणवा नीं इच्छा ।।

४२. जिन भाखै निर्ग्रंथ सुचीन, एह पुलाक थकी नहिं हीन ।
नहीं छै तुल्य अधिक ए होय, अनंतगुण ए अधिक सुजोय ।।

४३. एवं जावत कहियै एह, कषायकुशील नैं पज्जव करेह ।
निर्ग्रंथ हीण न वली नहिं तुल्य, एह अनंतगुण अधिक अमूल्य ।।

वा. 'नियंठस्स जहा बउसस्स' त्ति पुलाको निर्ग्रंथादनन्तगुणहीन इत्यर्थः । चिन्तितः पुलाकोऽवशेषैः सह, अथ बकुशश्चिन्त्यते— (वृ. प. ९०१)

३१. बउसे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे ? तुल्ले ? अब्भहिए ?

३२. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए अणंतगुणमब्भहिए । (श. २५।३५२)

वा.—बकुशः पुलाकादनन्तगुणाभ्यधिक एव विशुद्धतरपरिणामत्वात्, (वृ. प. ९०१)

३३. बउसे णं भंते ! बउसस्स सट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं— पुच्छा ।
गोयमा !

३४. सिय हीणे, सिय तुल्ले, सिय अब्भहिए। जइ हीणे छट्ठाणवडिए । (श. २५।३५३)

३५. बउसे णं भंते ! पडिसेवणाकुसीलस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे ? छट्ठाणवडिए ।

३६. एवं कसायकुसीलस्स वि । (श. २५।३५४)

३७. बउसे णं भंते ! नियंठस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं — पुच्छा ।
गोयमा !

३८. हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुणहीणे । एवं सिणायस्स वि ।

३९. पडिसेवणाकुसीलस्स एवं चेव बउसवत्तव्वया भाणियव्वा ।

४०. कसायकुसीलस्स एस चेव बउसवत्तव्वया, नवरं— पुलाएण वि समं छट्ठाणवडिए । (श. २५।३५५)

वा.—कषायकुशीलोऽपि बकुशवद्वाच्यः, केवलं पुलाकाद्बकुशोऽभ्यधिक एवोक्तः सकषायस्तु षट्स्थानपतितो वाच्यो हीनादिरित्यर्थः, (वृ. प. ९०१)

४१. नियंठे णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं पुच्छा ।

४२. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए अणंतगुणमब्भहिए ।

४३. एवं जाव कसायकुसीलस्स । (श. २५।३५६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निर्ग्रन्थ का निर्ग्रन्थ और स्नातक के साथ सन्निकर्ष

४४. हे भगवंतजी ! निर्ग्रंथ जेह, निर्ग्रंथ नें स्वस्थान जोगेह ।
चारित्त नें पज्जवे करि ताय,
स्यूं हीण तुल्य कै अधिक कहाय ?

४५. श्री जिन भाखै हीण न कहियै, निर्ग्रंथ निर्ग्रंथ नें तुल्य लहियै ।
वलि परस्पर नहीं अधिकाय, इम स्नातक पजवे करि ताय ।।

४४. नियंठे णं भंते ! नियंठस्स सट्ठाणसण्णिगासेणं---पुच्छा ।

४५. गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए । एवं सिणायस्स वि (सं० पा०) । (श. २५।३५७)

स्नातक का पुलाक आदि निर्ग्रन्थों के साथ सन्निकर्ष

४६. स्नातक हे भगवंतजी ! जेह, पुलाक नें परस्थान जोगेह ।
इम जिम निर्ग्रंथ नीं कही बात,
तिम स्नातक नीं पिण अखियात ।।

४६. सिणाए णं भंते ! पुलागस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं एवं जहा नियंठस्स वत्तव्वया तहा सिणायस्स वि भाणियव्वा । (श. २५।३५९)

स्नातक का स्नातक के साथ सन्निकर्ष

४७. जावत स्नातक हे प्रभु ! जेह, स्नातक नें स्वस्थान जोगेह ।
पूछयां जिन कहै हीण न थाय,
तुल्य अछै पिण नहीं अधिकाय ।।

४७. जाव (सं. पा.) सिणाए णं भंते ! सिणायस्स सट्ठाणसण्णिगासेणं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए । (श २५।३६१)

वा०—अथ पज्जवा नां अधिकार थकी ते चारित्र नां पर्याय नें ईज जघन्यादिक भेद नों पुलाकादिक संबंधि अल्पबहुत्वादि प्ररूपतो छतो कहै छै —

वा.—अथ पर्यवाधिकारात्तेषामेव जघन्यादिभेदानां पुलाकादिसम्बन्धिनामल्पत्वादि प्ररूपयन्नाह— (वृ. प. ९०१)

निर्ग्रन्थों के चारित्र-पर्यवों का अल्पबहुत्व

४८. एह पुलाक नैं हे भगवान ! बकुश अनैं प्रतिसेवणा जान ।
तुर्य कषायकुशीलज ताम, निर्ग्रंथ नैं स्नातक अभिराम ।।

४९. एहनां जघन्य अनैं उत्कृष्ट, चारित्र नां पज्जवा नें इष्ट ।
कुण-कुण थकी जाव कहिवाय, विसेसाहिया अथवा थाय ।।

५०. श्री जिन भाखै पुलाक नां सोय,
कषायकुशील तणां फुन जोय ।
बिहुं नां जघन्य चरित्त पर्याय, तुला सहु थी थोड़ा थाय ।।

५१. तेहथी पुलाक तणां जे ताय, उत्कृष्ट चारित्र नां पर्याय ।
एह अनंतगुणा सलहीजै, निर्मल न्याय विचारी लीजै ।।

५२. तेहथी बकुश पडिसेवणा केरा, जघन्यचरित्त नां पज्जव सुमेरा ।
आपस में तुला आख्यात, अनंतगुणा पूर्व थी थात ।।

५३. तेहथी बकुश तणां उत्कृष्ट, चारित्त पज्जव अनंतगुणा इष्ट ।
तेह थकी पडिसेवणा केरा, उत्कृष्ट पज्जव अनंतगुण मेरा ।।

५४. तेहथी कषायकुशील नां ताय, उत्कृष्ट चारित्र नां पर्याय ।
एह अनंतगुणा आख्यात, दशम गुणस्थानक लग थात ।।

५५. तेह थकी निर्ग्रंथ नां सार, अथवा स्नातक नां सुविचार ।
अजघन्योत्कृष्ट चरित्त पर्याय, तुला अनंतगुणा कहिवाय ।।

४८. एएसि णं भंते ! पुलाग-बउस-पडिसेवणाकुसील-कसायकुसील-नियंठ-सिणायाणं

४९. जहण्णुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ।

५०. गोयमा ! १. पुलागस्स कसायकुसीलस्स य एएसि णं जहण्णगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला सव्वत्थोवा

५१. २. पुलागस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा

५२. ३. बउसस्स पडिसेवणाकुसीलस्स य एएसि णं जहण्णगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा

५३. ४. बउसस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा
५. पडिसेवणाकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा

५४. ६. कसायकुसीलस्स उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा

५५. ७. नियंठस्स सिणायस्स य एतेसि णं अजहण्णमणुक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा । (श. २५।३६२)

५६. बेसौ छपन नुं देश निहाल, च्यारसौ अष्टचालीसमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय,
'जय-जश' आनंद हरष सवाय ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४४९

निर्ग्रन्थ में योग

दूहा

१. प्रभु ! पुलाक सजोगी हुवै, तथा अजोगी होय ?
जिन कहै सजोगी हुवै, अजोगी नहि कोय ।।

१. पुलाए णं भंते ! किं सजोगी होज्जा ? अजोगी होज्जा ?
गोयमा ! सजोगी होज्जा, नो अजोगी होज्जा ।
(श. २५।३६३)

२. जो सजोगी ते हुवै, तो स्यूं मनजोगी होय ?
तथा वचनजोगी हुवै, कै कायजोगी ह्वै सोय ?
३. जिन कहै मनजोगी हुवै, वचनजोगी वा हुंत ।
अथवा कायजोगी हुवै, इम जावत निर्ग्रंथ ।।

२. जइ सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा ? वइजोगी होज्जा ? कायजोगी होज्जा ?
३. गोयमा ! मणजोगी वा होज्जा, वइजोगी वा होज्जा, कायजोगी वा होज्जा । एवं जाव नियंठे ।
(श. २५।३६४)

४. स्नातक नीं पूछा कियां, तब भाखै जिनराय ।
सजोगी ह्वै छै तिको, तथा अजोगी थाय ।।
५. जो ते सजोगी हुवै, स्यूं मनजोगी होय ?
शेष कह्योज पुलाक नैं, तिम कहिवो अवलोय ।।

४. सिणाए णं—पुच्छा ।
गोयमा ! सजोगी वा होज्जा, अजोगी वा होज्जा ।
५. जइ सजोगी होज्जा किं मणजोगी होज्जा—सेसं जहा पुलागस्स । (श. २५।३६५)

निर्ग्रन्थ में उपयोग

*जय-जय ज्ञान जिनेंद्र नों ।। (ध्रुपदं)

६. पुलाक स्यूं भगवंत जो ! ह्वै सागार उपयोगेह लाल रे ?
कै अनाकार उपयोग में ? जिन कहै दोनूं विषेह लाल रे ।

६. पुलाए णं भंते ! किं सागारोवउत्ते होज्जा ? अणागारोवउत्ते होज्जा ?
गोयमा ! सागारोवउत्ते वा होज्जा, अणागारोवउत्ते वा होज्जा ।

७. एवं जावत जाणवो, स्नातक लग सुखदाय लाल रे ।
एह छहूंइ नियंठा, बिहूं उपयोगे पाय लाल रे ।

७. एवं जाव सिणाए । (श. २५।३६६)

निर्ग्रन्थ में कषाय

८. प्रभु ! पुलाक सकषाई हुवै, कै अकषाई होय ? लाल रे ।
जिन कहै सकषायी हुवै, अकषायी नहिं कोय लाल रे ।।

८. पुलाए णं भंते ! सकसायी होज्जा ? अकसायी होज्जा ?
गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा ।
(श. २५।३६७)

वा०—पुलाक नैं कषाय नां क्षय नां तथा उपशम नां अभाव थकी सकषायी हुवै पिण अकषायी न हुवै ।

वा.—'सकसाई होज्ज' त्ति पुलाकस्य कषायाणां क्षयोपशमस्य चाभावात् । (वृ. प. ९०१)

९. जो सकषाइ हुवै प्रभु ! तो किती कषाये होय ? लाल रे ।
जिन कहै च्यार विषे हुवै, क्रोधादिक चिहुं जोय लाल रे ।।

१०. एम बकुश पिण जाणवुं, पडिसेवणा पिण एम लाल रे ।
क्रोध मान माया विषे, लोभ विषे ह्वै तेम लाल रे ।।
११. कषायकुशील तणी पृच्छा, श्रीजिन भाखै सोय लाल रे ।
ए पिण सकषायी हुवै, अकषायी नहीं कोय लाल रे ।।

९. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?
गोयमा ! चउसु कोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा ।
१०. एवं बउसे वि । एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।
(श. २५।३६८)
११. कसायकुसीले णं—पुच्छा ।
गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा ।
(श. २५।३६९)

***लय : कर्म भुगत्यां हीज छूटियै**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. जो प्रभु ! सकषायी हुवै,
तो किती कषाय विषेह लाल रे ।
कषायकुशील हुवै अछै ? भाखो जी गुणगेह लाल रे ।।

१३. जिन कहै च्यार विषे हुवै,
तथा तीन कषाय विषेह लाल रे ।
अथवा दोय विषे हुवै, तथा एक विषे ह्वै जेह ।।

१४. च्यार विषे थातो थको, चिहुं संजलन सुजोय लाल रे ।
क्रोध मान माया वली, लोभ विषे पिण होय लाल रे ।।

१५. तीन विषे थातो थको, तीन ते संजलन मान लाल रे ।
माया लोभ विषे वली, कषायकुशील पिछान लाल रे ।।

वा० संजलण मान, माया, लोभ ए— तीन नैं विषे हुवै तो उपशमश्रेणि तथा क्षपकश्रेणि नैं विषे नवमा गुणठाणा नैं अंतर मध्य संजलण क्रोध उपशम्यां थकां अथवा क्षीण थयां थकां शेष तीन नैं विषे हुवै ।

१६ दोय विषे थातो थको, बे संजलण कषाय लाल रे ।
माया लोभ विषे हुवै, बे धुर उदय न थाय लाल रे ।।

१७. एक विषे थातो थको, लोभ संजलणज एक लाल रे ।
नवम अंत ए बादर हुवै, दशमें सूक्ष्म देख लाल रे ।।

१८. निर्ग्रंथ नीं पूछा कियां, तब भाखै जगनाथ लाल रे ।
ए सकषायी नहि हुवै, अकषायी में थात लाल रे ।।

१९. जो अकषायी विषे हुवै, तो स्यूं उपशांत कषाय ? लाल रे ।
क्षीणकषायी नैं विषे, ए निर्ग्रंथ कहाय ? लाल रे ।।

२०. जिन भाखै सुण गोयमा ! उपशांतकषाय होय लाल रे ।
तथा क्षीणकषायी नैं विषे, निर्ग्रंथ ह्वै छै सोय लाल रे ।।

२१. स्नातक इमहिज जाणवुं, णवरं विशेष जोय लाल रे ।
उपशांतकषाये नहि हुवै, क्षीणकषाये होय लाल रे ।।

निर्ग्रन्थों में लेश्या

२२. प्रभु ! पुलाक सलेसे हुवै, कै अलेस्से होय लाल रे ?
जिन कहै लेश्य सहित ह्वै, अलेशी नहि कोय लाल रे ।।

२३. जो सलेस्स विषे हुवै, हे भगवंतजी ! तेह लाल रे ।
हुवै किती लेश्या विषे ? पुलाक नियंठो जेह लाल रे ।।

२४. जिन कहै तीन विशुद्ध जे, लेस्स विषे ह्वै तेम लाल रे ।
तेजु पद्म शुक्ल विषे, बकुश पडिसेवणा एम लाल रे ।।

२५. कषायकुशील तणीं पृच्छा,
तब भाखै जिनराय लाल रे ।
सलेशी नैं विषे हुवै, अलेशी नहीं थाय लाल रे ।।

१२. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कतिसु कसाएसु होज्जा ?

१३. गोयमा ! चउसु वा तिसु वा दोसु वा एगम्मि वा होज्जा ।

१४. चउसु होमाणे चउसु संजलणकोह-माण-माया-लोभेसु होज्जा,

१५. तिसु होमाणे तिसु संजलणमाण-माया-लोभेसु होज्जा

वा०—उपश्रमश्रेण्यां क्षपकश्रेण्यां वा संज्वलन-क्रोधे उपशान्ते क्षीणे वा शेषेषु त्रिषु (वृ. प. ९०१)

१६. दोसु होमाणे संजलणमाया लोभेसु होज्जा

१७. एगम्मि होमाणे संजलणलोभे होज्जा ।
(श. २५।३७०)

१८. नियंठे णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो सकसायी होज्जा, अकसायी होज्जा ।
(श. २५।३७१)

१९. जइ अकसायी होज्जा किं उवसंतकसायी होज्जा ? खीणकसायी होज्जा ?

२०. गोयमा ! उवसंतकसायी वा होज्जा, खीणकसायी वा होज्जा ।

२१. सिणाए एवं चेव, नवरं—नो उवसंतकसायी होज्जा, खीणकसायी होज्जा । (श. २५।३७२)

२२. पुलाए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा ? अलेस्से होज्जा ?
गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा ।
(श. २५।३७३)

२३. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कतिसु लेस्सासु होज्जा ?

२४. गोयमा ! तिसु विसुद्धलेस्सासु होज्जा, तं जहा—तेउलेस्साए, पम्हलेस्साए, सुक्कलेस्साए । एवं बउसस्स वि । एवं पडिसेवणाकुसीले वि ।
(श. २५।३७४)

२५. कसायकुसीले—पुच्छा ।
गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा ।
(श. २५।३७५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. जो सलेशी नें विषे हुवै,
तो कति लेस्सा विषे एह ? लाल रे।
जिन कहै कृष्ण विषे हुवै, जावत शुक्ल विषेह लाल रे ।।

वा० --'ए पुलाक, बकुश, पडिसेवणा प्रतिसेवक ते तीन भली लेश्या नैं विषे किम हुवै तेहनों उत्तर -- ए दोष रूप कार्य करीनें छेहड़े आलोवणा सन्मुख थया ते वेला नीं अपेक्षाय भली लेश्या संभवै, जिम कषायकुशील अप्रतिसेवक ते दोष न सेवै एहवुं कह्युं ते कषायकुशीलपणुं अंगीकार करै ते आदि नीं अपेक्षाय अप्रतिसेवकपणुं संभवै। तथा मनपर्यायज्ञान अप्रमत्तपणां में ऊपजै इमहिज आदि ए पिण अप्रमत्तपणुं आदि में हुवै ज तिम ए आलोवण सन्मुख थयुं ते अंत नीं अपेक्षाय भली लेश्या जणाय छै। जे पुलाक लब्धि फोड़वै तथा प्रथमद्वार में ज्ञानपुलाक, दर्शणपुलाक आदि कह्यो तथा पडिसेवणा द्वारे मूल प्रतिसेवक उत्तर प्रतिसेवक कह्या, तथा बकुश -- आभोगबकुश अणाभोगबकुश कह्यो। अनैं उत्तरगुण प्रतिसेवक कह्या अनैं पडिसेवणाकुशील नैं आभोगप्रतिसेवणादिक कह्या, अनैं मूलगुल उत्तरगुण में दोष लगावै। वली बकुश पडिसेवणाकुशील में वैक्रिय शरीर कह्यो, वैक्रिय तेजु समुद्घात पिण कही। ए दोष सेवै ते प्रत्यक्ष खोटी लेश्या, खोटा परिणाम, खोटा अध्यवसाय ते भणी आलोवणा सन्मुख हुवै ते वेला नीं अपेक्षाय भली लेश्या संभवै। वलि अनेरो न्याय हुवै तो ते पिण केवली वदै ते सत्य।

वली वृत्तिकार कह्युं-- भाव लेश्या नीं अपेक्षाय प्रशस्त तीन नैं विषे पुलाकादिक तीन नियंठा अवतरै अनैं कषायकुशील छहुं नैं विषे पिण, सकषाय आश्रित्य पूर्व प्रतिपन्न वली अनेरी लेश्या नैं विषे हुवै, इम ए कह्युं एहवुं संभाविये छै एहवुं वृत्ति में कह्युं।

पूर्वप्रतिपण्ण केहनैं कहियै ? एहनुं अर्थ भगवती नीं टीका नीं पर्याय नैं विषे इम लिख्यो—यस्य चारित्रप्रतिपन्नानंतरं कियान्कालो गतः सपूर्वप्रतिपण्णकः एहनों अर्थ—जेहनैं चारित्र लीधां पछै कितोयक काल गयो ते पूर्व प्रतिपन्न कहियै एतलै चारित्र लेवै ते वेला तो भली लेश्या हुवै अनैं लीधां पछै कितोयिक काल गयां अनेरी लेश्या पिण हुवै। इण लेखे साधु में अशुद्ध लेश्या पिण आवै तेहनों प्रायश्चित लेवै। दोष रो प्रायश्चित ते दोष सेवा रा भाव ते खोटी लेश्या जाणवी।' (ज० स०)

२६. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कतिसु लेस्सासु होज्जा ?

गोयमा ! छसु लेस्सासु होज्जा, तं जहा—कण्हलेस्साए जाव सुक्कलेस्साए। (श. २५।३७६)

वा०-- 'तिसु विसुद्धलेसासु' त्ति भावलेश्यापेक्षया प्रशस्तासु तिसृषु पुलाकादयस्त्रयो भवन्ति, कषायकुशीलस्तु षट्स्वपि, सकषायमेव आश्रित्य 'पुव्वपडिवन्नओ पुण अन्नयरीए उ लेसाए' इत्येतदुक्तमिति संभाव्यते, (वृ. प. ९०२)

२७. *निर्ग्रंथ नीं पूछा कियां, श्रीजिन भाखै सोय लाल रे।
लेश्या सहित विषे हुवै, अलेशी नहिं होय लाल रे।

२७. नियंठे णं भंते !—पुच्छा।
गोयमा ! सलेस्से होज्जा, नो अलेस्से होज्जा। (श. २५।३७७)

२८. जो लेश्या सहित विषे हुवै, तो किसी लेश्या विषे होय ? लाल रे।
जिन भाखै सुण गोयमा ! एक शुक्ल लेश्या विषे जोय लाल रे।।

२८. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कतिसु लेस्सासु होज्जा ?
गोयमा ! एक्काए सुक्कलेस्साए होज्जा। (श. २५.३७८)

२९. स्नातक नीं पूछा कियां, तब भाखै जिनराय लाल रे।
सलेशी नैं विषे हुवै, तथा अलेशी मांय लाल रे।।

२९. सिणाए—पुच्छा।
गोयमा ! सलेस्से वा होज्जा, अलेस्से वा होज्जा। (श. २५।३७९)

३०. जो सलेशी नैं विषे हुवै, तो किती लेश्या विषे होय ? लाल रे।
जिन भाखै सुण गोयमा! एक परम शुक्ल विषे जोय लाल रे।।

३०. जइ सलेस्से होज्जा, से णं भंते ! कतिसु लेस्सासु होज्जा ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गोयमा ! एगाए परमसुक्कलेस्साए होज्जा ।
(श. २५।३८०)

सोरठा

३१. शुक्ल ध्यान नें जोय, तृतीय भेद नें अवसरे।
जिका लेश अवलोय, तिका परम शुक्ल कही ।।
३२. स्नातक विनाज ताय, शुक्लहीज ह्वै अन्य विषे।
तेह तणीं अपेक्षाय, परम शुक्ल हुवै तेरमें ।।

३१. शुक्लध्यानतृतीयभेदावसरे या लेश्या सा परमशुक्ला-ऽन्यदा तु शुक्लैव, (वृ. प. ९०२)
३२. साऽपीतरजीवशुक्ललेश्यापेक्षया स्नातकस्य परम-शुक्लेति। (वृ. प. ९०२)

निर्ग्रंथो में परिणाम

३३. *पुलाक स्यूं हे भगवंतजी ! वर्द्धमान परिणामे होय ? लाल रे।
कै हायमान परिणाम हुवै ? कै अवट्ठिया विषे सोय ? लाल रे ।।

३३. पुलाए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ? हायमाणपरिणामे होज्जा ? अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?

सोरठा

३४. शुद्ध परिणाम विषेह, उत्कर्ष चढतै भाव ही।
वर्द्धमान छै एह, जिम दश थी ग्यारा प्रमुख ।।
३५. अपकर्ष जातो ताम, घटते भावे वर्त्ततुं।
हायमान परिणाम, जिम दश थी नव अठ प्रमुख ।।
३६. चढता घटता नांय, स्थिर भावे ते अवस्थित।
यथादृष्टांत कहाय, दश नें अंकज वर्त्ततो ।।

३४. तत्र च वर्द्धमानः—शुद्धेरुत्कर्षं गच्छन् (वृ. प. ९०२)
३५. हीयमानस्त्वपकर्षं गच्छन् (वृ. प. ९०२)
३६. अवस्थितस्तु स्थिर इति, (वृ. प. ९०२)

३७. *जिन भाखै सुण गोयमा ! वर्द्धमान परिणामे होय लाल रे।
हायमान परिणामे हुवै, वलि अवट्ठिया विषे जोय लाल रे ।।
३८. एवं जाव कहीजियै, तुर्य कषायकुशील लाल रे।
वधता घटता हुवै, फुन स्थिर भावे मील लाल रे ।।
३९. निर्ग्रंथ पूछ्यां जिन कहै, वर्द्धमान परिणामे होय लाल रे।
पिण घटते परिणामे नहीं, अवस्थिते पिण जोय लाल रे ।।

३७. गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा, हायमाण-परिणामे वा होज्जा, अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा।
३८. एवं जाव कसायकुसीले। (श. २५।३८१)
३९. नियंठे णं—पुच्छा।
गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे होज्जा, नो हायमाण-परिणामे होज्जा, अवट्ठियपरिणामे वा होज्जा।

सोरठा

४० वर्द्धमान तसु हेर, पिण हायमान परिणाम नहीं।
हानि हुवै ते वेर, कषायकुशील दशम गुण ।।

४०. तत्र निर्ग्रन्थो हीयमानपरिणामो न भवति, तस्य परिणामहानौ कषायकुशीलव्यपदेशात्, (वृ. प. ९०२)

४१. *एवं स्नातक पिण हुवै, वर्द्धमान अवस्थित्त लाल रे।
हानि कारण नां अभाव थी, हायमान नहीं तत्थ लाल रे ।।

४१. एवं सिणाए वि। (श. २५।३८२)
स्नातकस्तु हानिकारणाभावान्न हीयमानपरिणामः स्यादिति। (वृ. प. ९०२)

४२. पुलाक हे भगवंतजी ! काल कितो अवलोय लाल रे।
वर्द्धमान परिणामें हुवै ? गोयम प्रश्न सुजोय लाल रे ।।
४३. श्री जिन भाखै जघन्य थी, एक समय सलहीज लाल रे।
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त ही, एहवा स्वभाव थकीज लाल रे ।।

४२. पुलाए णं भंते ! केवतियं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?
४३. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतो-मुहुत्तं। (श. २५।३८३)

सोरठा

४४. पुलाक नें अवलोय, वर्द्धमान परिणाम जे।
जघन्य समय इक होय, तास न्याय कहियै अछै ।।

४४,४५. तत्र पुलाको वर्द्धमानपरिणामकाले कषाय-विशेषेण बाधिते तस्मिंस्तस्यैकादिकं समयमनुभव-तीत्यत उच्यते जघन्येनैकं समयमिति (वृ. प. ९०२)

***लय : मुगकर्म त्यां हीज छूटियै**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. वर्द्धमान कालेह, कषाय विशेष करि तदा।
बांध्ये छतेज तेह, एकादि समयज अनुभवै ॥

४६. अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट, वर्द्धमान परिणाम नां।
स्वभाव थकीज इष्ट, अंतर्मुहूर्त्त काल तसु ॥

४६. 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं' ति एतत्स्वभावत्वाद्वर्द्धमान-परिणामस्येति। (वृ. प. ९०२)

४७. *केतलो काल हुवै वलि, हायमान तसु इष्ट ? लाल रे।
जिन कहै समय जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट लाल रे ॥

४७. केवतियं कालं हायमाणपरिणामे होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतो-मुहुत्तं। (श. २५।३८४)

४८. केतलो काल हुवै वली, अवस्थित अवदात लाल रे।
जिन कहै समय इक जघन्य थी, उत्कृष्ट समया सात लाल रे ॥

४८. केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं सत्त समया।

सोरठा

४९. पुलाक नैं आख्यात, अवस्थित नों काल जे।
ऊत्कृष्ट समया सात, तसु एहवाज स्वभाव थी।

५०. *एवं जावत जाणवूं, कषायकुशील विषेह लाल रे।
वृत्तिकार तिहां इम कह्यु, सांभलजो गुणगेह लाल रे ॥

५०. एवं जाव कसायकुसीले। (श. २५।३८५)

सोरठा

५१. जिम पुलाक नैं ख्यात, तिमज बकुज पडिसेवणा।
कषायकुशील थात, पुलाकवत ए चिहुं अपि ॥

५१, एवं बकुशप्रतिसेवाकुशीलकषायकुशीलेष्वपि, (वृ. प. ९०२)

५२. नवरं बकुशज आद, जघन्य थकी इक समय थी।
मरण थकी संवाद, जघन्य समय इक वांछियो ॥

५२. नवरं बकुशादीनां जघन्यत एकसमयता मरणादपीष्टा (वृ. प. ९०२)

५३. इम पुलाक नैं नांय, पुलाकपणां विषे तसु।
मरण अभाव कहाय, पुलाकपणैं मरै नहीं ॥

५३. न पुनः पुलाकस्य, पुलाकत्वे मरणाभावात्, (वृ. प. ९०२)

५४. जेह पुलाक संवादि, मृत्यु काल विषे जिको।
कषायकुशील आदि, अंगीकार करनैं मरैं ॥

५४. स हि मरणकाले कषायकुशीलत्वादिना परिणमति, (वृ. प. ९०२)

५५. पुलाक नैं फुन ताय, काल गमन पूर्वे कह्यु।
भूतभाव पेक्षाय, एहवुं आख्युं वृत्ति में ॥

५५. यच्च प्राक् पुलाकस्य कालगमनं तद्भूतभावापेक्षयेति (वृ. प. ९०२)

५६. *प्रभु ! निर्ग्रंथ काल कितो हुवै, वर्द्धमान परिणामेह ? लाल रे।
जिन कहै जघन्योत्कृष्ट थी, अंतर्मुहूर्त्त कहेह लाल रे ॥

५६. नियंठे णं भंते ! केवतियं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतो-मुहुत्तं। (श. २५।३८६)

सोरठा

५७. द्वादशमें गुण जेह, वर्द्धमान परिणाम ह्वै।
अंतर्मुहूर्त्त एह, केवल उत्पत्ति थी प्रथम ॥

५७. निर्ग्रन्थो जघन्येनोत्कर्षेण चान्तर्मुहूर्त्तं वर्द्धमान-परिणामः स्यात्, केवलज्ञानोत्पत्तौ परिणामान्तर-भावात्, (वृ. प. ९०२)

५८. *केतलो काल हुवै वली, अवस्थित विषे इष्ट ? लाल रे।
जिन कहै समय इक जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट लाल रे ॥

५८. केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतो-मुहुत्तं। (श. २५।३८७)

सोरठा

५९. जेह समय निर्ग्रंथ, अवस्थित परिणाम ह्वै।
तेहिज समय मरंत, एक समय इम जघन्य थी ॥

५९. अवस्थितपरिणामः पुनर्निर्ग्रन्थस्य जघन्यत एकं समयं मरणात्स्यादिति। (वृ. प. ९०२,९०३)

***लयः कर्म भुगत्यां हीज छूटियै**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—एकादशम गुणठाणे प्रथम समय नें विषे हीज मरण पाम्यो अवस्थित जघन्य एक समय हुवै अनें ग्यारमें गुणस्थान अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण अवस्थिते परिणामे रहै ते भणी अवस्थित परिणाम उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त हुवै एतलै इग्यारमें गुणठाणे अवस्थित परिणाम हुवै अनें बारमें गुणस्थान वर्द्धमान परिणाम हुवै।

६०. *स्नातक हे भगवंतजी! वर्द्धमान परिणामेह लाल रे।
केतलो काल रहै तिको? भाखोजी गुणगेह लाल रे।

६१. श्रीजिन भाखै जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त होय लाल रे।
उत्कृष्टो पिण ह्वै तसु, अंतर्मुहूर्त्त सोय लाल रे।।

६०. सिणाए णं भंते! केवतियं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा?

६१. गोयमा! जहण्णेण वि अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। (श. २५।३८८)

सोरठा

६२. स्नातक नें वर्द्धमान, चवदम गुणठाणेज ह्वै।
तेह तणों स्थित जान, अंतर्मुहूर्त्तपणां थकी।।

६२. स्नातको जघन्येतराभ्यामन्तर्मुहूर्त्तं वर्द्धमानपरिणामः, (वृ. प. ९०३)

६३. *फुन स्नातक जे केवली, अवस्थित परिणामेह लाल रे।
केतलो काल हुवै तिको? गोयम पूछा एह लाल रे।।

६४. श्री जिन भाखै जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त इष्ट लाल रे।
देसूण पूर्व कोड़ ही, आख्यो छै उत्कृष्ट लाल रे।।

६३. केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा?

६४. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। (श. २५।३८९)

सोरठा

६५. स्नातक तणां सुजन्य, अवस्थित परिणाम जे।
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य, ते किण रीत कहीजियै।।

६६. जे वर केवल पाय, अंतर्मुहूर्त्त अवस्थित।
परिणामे रहि ताय, शेलेसी वर्द्धमान ह्वै।।

६५. अवस्थितपरिणामकालोऽपि जघन्यतस्तस्यान्तर्मुहूर्त्तं, कथम्?, (वृ. प. ९०३)

६६. यः स केवलज्ञानोत्पादानन्तरमन्तर्मुहूर्त्तमवस्थितपरिणामो भूत्वा शैलेशीं प्रतिपद्यते तदपेक्षयेति, (वृ. प. ९०३)

६७. स्नातक नै फुन जोड़, अवस्थित परिणाम जे।
देश ऊण पुव्वकोड़, तास न्याय कहियै हिवै।।

६८. लागां नवमो मास, केवल ज्ञानज ऊपनां।
उत्कृष्ट आऊ तास, कोड़ पूर्व नों जाणवुं।।

६९. ज्यां लग चवदम ठान, प्राप्ति थयो नहिं त्यां लगै।
तेरम गुणे सुजान, अवस्थित परिणाम तसु।।

७०. 'इम साधिक अठ वास, ऊणो पूर्व कोड़ जे।
उत्कृष्टो सुविमास, अवस्थित परिणाम है।।

६७-६९. 'उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी' त्ति पूर्वकोट्यायुषः पुरुषस्य जन्मतो जघन्येन नवसु वर्षेष्वतिगतेषु केवलज्ञानमुत्पद्यते ततोऽसौ तदूनां पूर्वकोटीमवस्थितपरिणामः शैलेशीं यावद्विहरति, शैलेश्यां च वर्द्धमानपरिणामः स्यादित्येवं देशोनामिति। (वृ. प. ९०३)

७१. जघन्य साधिक अठ वास, आयुवंत मनुष्य जे।
मोक्ष कही छै तास, उपंग उववाई नें विषे।।

७२. गर्भ मास इण न्याय, जघन्यायु में आविया।
इमहिज उत्कृष्ट मांय, गर्भ मास पुव्वकोड़ में।।

७३. नवम वर्ष नुं देश, तेह अपेक्षा वर्ष नव।
ए जिन वचन विशेष, साधिक अठ वर्षायु शिव।।'(ज०स०)

७१,७२. जीवा णं भंते! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झंति?
गोयमा! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए उक्कोसेणं पुव्वकोडियाउए सिज्झंति। (ओवाइयं सू० १८८)

७४. *बेसौ छपन नुं देश ए, च्यारसौ गुणपचासमीं ढाल लाल रे।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष विशाल लाल रे।।

***लय : कर्म भुगत्यां हीज छूटियै**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४५०

निर्ग्रंथों में कर्म प्रकृति का बन्ध

दूहा

१. पुलाक प्रभुजी ! केतली, कर्म-प्रकृति बांधंत ?
जिन कहै आयु वर्ज नैं, सप्त कर्म बंध हुंत ।।

१. पुलाए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ बंधति ?
गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधति।
(श. २५।३९०)

सोरठा

२. पुलाक नैं जे ताय, आयुखा नों बंध नहि ।
नसु बंध अध्यवसाय, स्थानक तणां अभाव थी ।।

२. पुलाकस्यायुर्बन्धो नास्ति, तद्‌बन्धाध्यवसायस्थानानां तस्याभावादिति । (वृ. प. ९०३)

दूहा

३. बकुश नीं पूछा कियां, भाखै ताम जिनंद ।
ते बंधक ह्वै सप्तविध, तथा अष्टविध बंध ।।

३. बउसे—पुच्छा ।
गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा ।

सोरठा

४. निज आयु नैं जान, तृतीय भाग आदिक रह्यां ।।
परभव नों पहिछान, बांधै जंतु आउखो ।।
५. धुर बे भाग विषेह, परभवायु बांधै नथी ।
तिणसु एम कहेह, सप्त अष्टविध बंधका ।।

४. त्रिभागाद्यवशेषायुषो हि जीवा आयुर्बध्नन्तीति ।
(वृ. प. ९०३)
५. त्रिभागद्वयादौ तन्न बध्नन्तीतिकृत्वा बकुशादयः सप्तानामष्टानां वा कर्म्मणां बन्धका भवन्तीति,
(वृ. प. ९०३)

दूहा

६. सप्त कर्म प्रति बांधतो, आयु कर्मज टाल ।
सप्त कर्म नीं प्रकृति, बन्ध निरंतर न्हाल ।।
७. अष्ट कर्म प्रतिबांधतो, प्रतिपूर्ण जे अष्ट ।
कर्म प्रकृति बांधै तिको, इम प्रतिसेवन दृष्ट ।।
८. कषायकुशील नीं पृच्छा, जिन कहै सत्तविध बंध ।
अथवा बंधक अष्टविध, अथवा षटविध संध ।।

९. सप्त कर्म प्रति बांधतो, आयु वर्जी सात ।
अष्ट कर्म प्रति बांधतो, प्रतिपूर्ण अठ ख्यात ।।

१०. षटविध कर्मज बांधतो, आयु मोह नीं टाल ।
बांधै षट कर्म प्रकृति प्रति, दशम गुणे ए न्हाल ।।

६. सत्त बंधमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधति,
७. अट्ठ बंधमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधति एवं पडिसेवणाकुसीले वि । (श. २५।३९१)
८. कसायकुसीले—पुच्छा ।
गोयमा ! सत्तविहबंधए वा, अट्ठविहबंधए वा, छव्विहबंधए वा ।
९. सत्त बंधमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधति, अट्ठ बंधमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधति,
१०. छ बंधमाणे आउय-मोहणिज्जवज्जाओ छक्कम्मप्पगडीओ बंधति । (श. २५।३९२)

वा०—जिवारै आउखो न बांधै तिवारै सात बांधै । छठै गुणस्थान आयु अबंधकाले सात कर्म बांधै । अनैं सातमें, आठमें, नवमें गुणठाणे अप्रमत्तपणा थकीज ते सात कर्मप्रकृति बांधै । छठै गुणस्थान आउखा नों बंध प्रारंभ्यो अनैं सातमें गुणठाणे बंध पड़ै पिण सातमें गुणठाणे आयुखा रो बंध प्रारंभै नहीं, एहवुं पिण हुवै इम अन्य ग्रंथे कह्यु छै । अनैं छठे गुणठाणे कषायकुशील आयुखो बांधै ते वेला प्रतिपूर्ण आठूं कर्म बांधै ।

अनैं दशमे गुणठाणे आउखो मोहनी वर्जी छ कर्म बांधै । बादर कषाय नां

वा.—'छव्विहं बंधेमाणा' इत्यादि, कषायकुशीलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभाव थकी मोहनी न बांधै अनैं आयुखा नो अबंध तो अप्रमत्तपणे पूर्वे थयुंज छै ते माटै दशम गुणठाणे छह कर्म प्रकृति बांधै ।

हि सूक्ष्मसम्परायत्वे आयुर्न बध्नाति, अप्रमत्तान्तत्वात्तद्बन्धस्य, मोहनीयं च बादरकषायोदयाभावान्न बध्नातीति शेषाः षडेवेति । (वृ. प. ९०३,९०४)

दूहा

११. निर्ग्रंथ नीं पूछा कियां, एक वेदनी बंध ।
योगनांज सद्भाव थी, ते बंध हेतु संध ।।

११. नियंठे णं—पुच्छा ।
गोयमा ! एगं वेयणिज्जं कम्मं बंधइ ।
(श. २५।३९३)
'एगं वेयणिज्जं' ति निर्ग्रन्थो वेदनीयमेव बध्नाति, बन्धहेतुषु योगानामेव सद्भावात्' (वृ. प. ९०४)

१२. स्नातक नीं पूछा कियां, इकविध बंधक होय ।
तथा अबंधक ह्वै तिको, शेलेसी नैं जोय ।।
१३. इकविध बांधंतो छतो, योग-सहित नैं संध ।
जोग बंध-हेतु थकी, एक वेदनी बंध ।।

१२. सिणाए—पुच्छा ।
गोयमा ! एगविहबंधए वा, अबंधए वा ।
१३. एगं बंधमाणे एगं वेयणिज्जं कम्मं बंधइ ।
(श. २५।३९४)

निर्ग्रन्थों में कर्मप्रकृति का वेदन

*भाव सुणो नियंठा तणां ।। (ध्रुपदं)

१४. पुलाक प्रभु ! किता कर्म नीं, प्रकृति वेदै जेह ? ललना ।
जिन भाखै निश्चै करी, अठ कर्म प्रकृति वेदेह ललना ।।
१५. एवं जावत जाणवुं, कषायकुशील लगेह ललना ।
निश्चै करि अष्ट कर्म नीं, प्रकृति प्रति वेदेह ललना ।।
१६. निर्ग्रन्थ नीं पूछा कियां, भाखै जिन गुणगेह ललना ।
मोहणी नैं वर्जी करी, सात कर्म वेदेह ललना ।।

१४. पुलाए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेइ ?
गोयमा ! नियमं अट्ठ कम्मप्पगडीओ वेदेइ ।
१५. एवं जाव कसायकुसीले । (श. २५।३९५)
१६. नियंठे णं—पुच्छा ।
गोयमा ! मोहणिज्जवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ वेदेइ । (श. २५।३९६)

सोरठा

१७. वर ग्यारम गुणठाण, मोह उपशम थी मोहणी ।
वेदै नहीं ए जाण, सात कर्म वेदै तिको ।।
१८. फुन बारम गुणठाण, मोह क्षायक ते मोहनी ।
वेदै नहीं सुजाण, सात कर्म वेदे तिको ।।

१७,१८. 'मोहणिज्जवज्जाओ' त्ति निर्ग्रन्थो हि मोहनीयं न वेदयति, तस्योपशान्तत्वात् क्षीणत्वाद्वा, (वृ. प. ९०४)

१९. *स्नातक पूछ्यां जिन कहै, वेदनी आयु नाम ललना ।
गोत्र ए च्यारूं कर्म नी, प्रकृति वेदै ताम ललना ।।

१९. सिणाए णं—पुच्छा ।
गोयमा ! वेयणिज्ज-आउय-नाम-गोयाओ चत्तारि कम्मप्पगडीओ वेदेइ । (श. २५।३९७)

निग्रंथों में कर्मप्रकृति की उदीरणा

२०. पुलाक प्रभु ! किता कर्म नीं, प्रकृति उदीरै जेह ? ललना ।
जिन कहै आयु वेदनी, वर्जी षट उदीरेह ललना ।।

२०. पुलाए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ उदीरेति ?
गोयमा ! आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेति । (श. २५।३९८)

सोरठा

२१. आयु वेदनी जेह, कर्म तणीं प्रकृति प्रतै ।
उदीरणा न करेह, पुलाक विषेज वर्त्ततो ।।
२२. तथाविध अध्यवसाय, स्थानक तणां अभाव थी ।
बिहुं कर्म नीं ताय, न करै एह उदीरणा ।।
२३. बिहुं कर्म नीं एह, उदीरणा पहिलां करी ।
पछै पुलाक प्रतेह, जायै पामै छै तिको ।।

२१, २२. पुलाक आयुर्वेदनीयप्रकृतीर्नोदीरयति तथाविधाध्यवसायस्थानाभावात्, (वृ. प. ९०४)

२३. किन्तु पूर्वं ते उदीर्य्य पुलाकतां गच्छति, (वृ. प. ९०४)

*लय : बान कहै जग हूं बड़ो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. इम बकुशादि कहेह, जेह कर्म नीं प्रकृति प्रति ।
उदीरणा न करेह, तसु अध्यवसाय अभाव थी ।।
२५. जे कर्मप्रकृति प्रति तेह, पहिला उदीरणा करी ।
पछै बकुश प्रमुखेह, जायै पामै छै तिको ।।

२४,२५. एवमुत्तरत्रापि यो याः प्रकृतीर्नोदीरयति स ताः पूर्वमुदीर्य बकुशादितां प्राप्नोति, (वृ. प. ९०४)

२६. *बकुश पूछ्यां जिन कहै, उदीरक सप्त प्रकार ललना ।
अथवा उदीरक अठविधा, अथवा षटविध धार ललना ।।

२६. बउसे— पुच्छा ।
गोयमा ! सत्तविहउदीरए वा, अट्ठविहउदीरए वा, छव्विहउदीरए वा ।

२७. सात कर्म नें उदीरतो, वर्जी आयु कर्म ललना ।
सप्त कर्म नीं जे प्रकृति, तास उदीरण धर्म ललना ।।

२७. सत्त उदीरेमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ उदीरेति,

२८. अष्ट कर्म नें उदीरतो, प्रतिपूर्ण पहिछाण ललना ।
अष्ट कर्म नीं प्रकृति प्रतै, जेह उदीरै जाण ललना ।।

२८. अट्ठ उदीरेमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ उदीरेति,

२९. षट कर्म प्रतै उदीरतो, आयु वेदनी टाल ललना ।
षट कर्मनींज प्रकृति प्रतै, उदीरवुं तसु न्हाल ललना ।।

२९. छ उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेति ।

३०. इमहिज ए प्रतिसेवना, उदीरक सप्त प्रकार ललना ।
अथवा उदीरक अठविधा, अथवा षटविध धार ललना ।।

३०. पडिसेवणाकुसीले एवं चेव । (२५।३९९)

३१. कषायकुशील तणीं पृच्छा, भाखै जिन गुणहीर ललना ।
सप्तविध वा अठविधा, षटविध पंच उदीर ललना ।।

३१. कसायकुसीले—पुच्छा !
गोयमा ! सत्तविहउदीरए वा, अट्ठविहउदीरए वा, छव्विहउदीरए वा, पंचविहउदीरए वा ।

३२. सात कर्म नें उदीरतो, आऊ वर्जी जेह ललना ।
सप्त कर्म नीं प्रकृति प्रतै, उदीरणा करै तेह ललना ।।

३२. सत्त उदीरेमाणे आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ उदीरेति,

३३. अष्ट कर्म नें उदीरतो, प्रतिपूर्ण अवलोय ललना ।
आठ कर्म नीं प्रकृति प्रतै, एह उदीरै सोय ललना ।।

३३. अट्ठ उदीरेमाणे पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ उदीरेति,

३४. षट कर्म प्रतै उदीरतो, आयु वेदनी टाल ललना ।
षट कर्म नीं प्रकृति प्रतै, उदीरवूं तसु न्हाल ललना ।।

३४. छ उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेति,

३५. पंच कर्म नें उदीरतो, मोह आयु वेदनी टाल ललना ।
पंच कर्म नीं प्रकृति प्रतै, तास उदीरवूं भाल ललना ।।

३५. पंच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मप्पगडीओ उदीरेति । (श. २५।४००)

३६. निर्ग्रंथ पूछ्यां जिन कहै, उदीरक पंच प्रकार ललना ।
अथवा द्विविध उदीरको, हिव कहियै विस्तार ललना ।।

३६. नियंठे— पुच्छा ।
गोयमा ! पंचविहउदीरए वा, दुविहउदीरए वा ।

३७. पंच कर्म नें उदीरतो, मोह आयु वेदनी टाल ललना ।
पंच कर्म नीं प्रकृति प्रतै, तास उदीरवूं न्हाल ललना ।।

३७. पंच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मप्पगडीओ उदीरेति,

३८. दोय कर्म नें उदीरतो, नाम गोत कहिवाय ललना ।
ए बिहुं नीं प्रकृति प्रति, निर्ग्रंथ उदीरै ताय ललना ।।

३८. दो उदीरेमाणे नामं च गोयं च उदीरेति ।
(श. २५।४०१)

३९. स्नातक नीं पूछा कियां, भाखै श्री जिनराय ललना ।
द्विविध उदीरक छै तिको, अथवा उदीरक नांय ललना ।।

३९. सिणाए—पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहउदीरए वा, अणुदीरए वा ।

४० दोय कर्म नें उदीरतो, नाम गोत्र उदीरेह ललना ।
त्रयोदशम गुणस्थान ए, अनुदीरक अजोगेह ललना ।।

४०. दो उदीरेमाणे नामं च गोयं च उदीरेति ।
(श. २५।४०२)

वा०—स्नातक सजोगी अवस्थाये नाम गोत्रनोंज उदीरक हुवै । आयुखां वेदनी तो पूर्वेज उदीरया छै अनैं अजोग अवस्थाये तो अनुदीरकईज हुवै ।

वा०—स्नातकः सयोग्यवस्थायां तु नामगोत्रयोरेवोदीरकः, आयुर्वेदनीये तु पूर्वोदीर्णे एव, अयोग्यवस्थायां त्वनुदीरक एवेति । (वृ. प, ९०४)

***लय** : **दान कहै जग हूं बड़ो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. पुलाक हे भगवंतजी ! पुलाकपणां प्रति जेह ? ललना ।
छांडतो थको छांडै किसूं, स्यूं अंगीकार करेह ? ललना ।।
४२. श्री जिन भाखै गोयमा ! पुलाकपणां नैं छांडंत ललना ।
कषायकुशील प्रतै तथा, असंजम नैं आदरंत ललना ।

वा० — पुलाक पुलाकपणुं छांडी नैं संजती हुवै तो कषायकुशील हीज हुवै, तेह सरीखा संजमस्थानक नां सद्भाव थकी । इम जेहनैं जेह सरीखा संजमस्थान छै ते तिण भाव प्रतै अंगीकार करै । परं कषायकुशीलादिक छांडी नैं । कषायकुशीलादिक तो आप सरीखा अथवा असरीखा संजम नां स्थानक पिण पामै । जिम कषायकुशील आप सरीखा संयमस्थान छै जेह नैं विषे ते पुलाकादिक नैं पिण अंगीकार करै अथवा आप सरीखा संयमस्थान नहीं जेहनैं विषे तिण निर्ग्रन्थ नैं पिण अंगीकार करै । अनैं निर्ग्रंथ कषायकुशीलपणां प्रतै पामै । अथवा स्नातकपणां प्रतै पामै स्नातक तो सीझै हीज ।

४१. पुलाए णं भंते ! पुलायत्तं जहमाणे किं जहति ? किं उवसंपज्जति ?
४२. गोयमा ! पुलायत्तं जहति । कसायकुसीलं वा अस्संजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।४०३)

वा० — पुलाकः पुलाकत्वं त्यक्त्वा संयतः कषायकुशील एव भवति, तत्सदृशसंयमस्थानसद्भावात्, एवं यस्य यत्सदृशानि संयमस्थानानि सन्ति स तद्भावमुपसम्पद्यते मुक्त्वा कषायकुशीलादीन्, कषायकुशीलो हि विद्यमानस्वसदृशसंयमस्थानकान् पुलाकादिभावानुपसम्पद्यते, अविद्यमानसमानसंयमस्थानकं च निर्ग्रन्थभावं, निर्ग्रन्थस्तु कषायित्वं वा स्नातकत्वं वा याति, स्नातकस्तु सिद्धयत्येवेति । (वृ. प. ९०४)

४३. *बकुश हे भगवंतजी ! बकुशपणां प्रति जेह ललना ।
छांडतो थको छांडै किसुं, स्यूं पडिवजै तेह ? ललना ।।
४४. जिन कहै छांडै बकुशपणो, पडिसेवणा पडिवज्जंत ललना ।
कषायकुशील प्रतै तथा, असंजम प्रति आदरंत ललना ।।
४५. संजमासंजम प्रति वलि, एह करै अंगीकार ललना ।
बकुशपणां प्रति छांडनैं, पडिवजै ए च्यार ललना ।।
४६. पडिसेवणा नीं पूछा कियां, श्री जिन भाखै सार ललना ।
पडिसेवणा नैं तजै तिको,
करै च्यार स्थानक अंगीकार ललना ।।
४७. बकुश वा कषायकुशील नै, तथा असंजम प्रतेह ललना ।
तथा संजमासंजम प्रतै, एक अंगीकार करेह ललना ।
४८. कषायकुशील तणीं पृच्छा, भाखै जिन जगतार ललना ।।
कषायकुशील प्रतै तजै,
करै षट स्थानक अंगीकार ललना ।।
४९. पुलाकपणां प्रति आदरै, अथवा बकुश हुंत ललना ।
पडिसेवणा में आवै वली, अथवा ह्वै निर्ग्रंथ ललना ।।
५०. अथवा हुवै असंजमी, तथा संजमासंजमी होय ललना ।
साधु नों श्रावक हुवै, ए प्रत्यक्ष दोष सुजोय ललना ।।
५१. निर्ग्रंथ पूछयां जिन कहै, निर्ग्रंथपणुं तजेह ललना ।
आवै कषायकुशील में,
तथा स्नातकपणुं पडिवजेह ललना ।।
५२. अथवा असंजम आदरै, एकादशम गुणस्थान ललना ।
आउखो पूरो करी, ऊपजै अनुत्तर विमान ललना ।।

वा० — निर्ग्रंथपणुं छांडी नैं कषायकुशील प्रतै अथवा स्नातक प्रतै अथवा असंजम प्रतै पडिवजै तिहां उपशमनिर्ग्रंथ श्रेणि थकी पड़तो थको सकषाय हुवै अनैं क्षपक हुवै ते स्नातक हुवै अनैं श्रेणि नैं मस्तके मूओ थको एह देवपणैं ऊपनों

*लय : दान कहै जग हूं बड़ो

४३. बउसे णं भंते ! बउसत्तं जहमाणे किं जहति ? किं उवसंपज्जति ?
४४. गोयमा ! बउसत्तं जहति । पडिसेवणाकुसीलं वा कसायकुसीलं वा अस्संजमं वा
४५. संजमासंजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।४०४)
४६. पडिसेवणाकुसीले णं — पुच्छा ।
गोयमा ! पडिसेवणाकुसीलत्तं जहति ।
४७. बउसं वा कसायकुसीलं वा अस्संजमं वा संजमासंजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।४०५)
४८. कसायकुसीले णं — पुच्छा ।
गोयमा ! कसायकुसीलत्तं जहति ।
४९. पुलायं वा बउसं वा पडिसेवणाकुसीलं वा नियंठं वा
५०. अस्संजमं वा संजमासंजमं वा उवसंपज्जति । (श २५।४०६)
५१. णियंठे — पुच्छा ।
गोयमा ! नियंठत्तं जहति । कसायकुसीलं वा सिणायं वा
५२. अस्संजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।४०७)

वा० — निर्ग्रन्थसूत्रे 'कसायकुसीलं वा सिणायं वा' इह भावप्रत्ययलोपात् कषायकुशीलत्वमित्यादि दृश्यं, एवं पूर्वसूत्रेष्वपि, तत्रोपशमनिर्ग्रन्थः श्रेणीतः प्रच्यवमानः सकषायो भवति, श्रेणीमस्तके तु मृतोऽसौ

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

असंजत हुवै पिण संजतासंजत न हुवै, देवपणां नैं विषे ते श्रावकपणां नां अभाव थकी। अनैं श्रेणि थकी पड़ियो उपशमनिर्ग्रंथ संयतासंयती पिण हुवै, पिण तेह नों इहां उल्लेख नहीं। ते किम ? ग्यारमा थी अनन्तर दसमें ज आवै ए माटै।

देवत्वेनोत्पन्नोऽसंयतो भवति नो संयतासंयतो, देवत्वे तदभावात्, यद्यपि च श्रेणीपतितोऽसौ संयतासंयतोऽपि भवति तथाऽपि नासाविहोक्तः, अनन्तरं तदभावादिति। (वृ. प. ९०४,९०५)

५३.*स्नातक पूछचां जिण कहै, स्नातकपणां प्रति छंड ललना।
सिद्ध गति प्रतै अंगीकरै, सुख आत्मिक अखंड ललना।।

५३. सिणाए—पुच्छा।
गोयमा ! सिणायत्तं जहति। सिद्धिगतिं उवसंपज्जति। (श. २५।४०८)

५४. बेसौ छप्पन नों देश ए, च्यारसौ नैं पचासमीं ढाल ललना।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल ललना।।

ढाल : ४५१

निर्ग्रन्थों में संज्ञा

दूहा

१. पुलाक स्यूं प्रभुजो ! हुव, सण्णोवउत्ता मांय ?
कै नोसण्णोवउत्ता विषे ? गोयम प्रश्न सुहाय।।

१. पुलाए णं भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा ? नोसण्णोवउत्ते होज्जा ?

सोरठा

२. इहां संज्ञा कहिवाय, आहारादिक संज्ञा विषे।
जे उपयुक्तज थाय, मोह कर्म नां उदय करि।।
३. किणहि प्रकार करेह, आहारादिक में गृद्ध जे।
भाव आसक्तपणेह, संज्ञोपयुक्त कह्यं तिको।।

२,३. इह सञ्ज्ञा—आहारादिसञ्ज्ञा तत्रोपयुक्तः—कथञ्चिदाहाराद्यभिष्वङ्गवान् सञ्ज्ञोपयुक्तः, (वृ. प. ९०५)

४. फुन आहारक सोय, उपभोगे पिण जेह विषे।
लंपट गृद्ध न होय, नोसण्णोवउत्ता तिके।।

४. नोसञ्ज्ञोपयुक्तस्त्वाहाराद्युपभोगेऽपि तत्रानभिष्वक्तः, (वृ. प. ९०५)

दूहा

५. जिन भाखै सुण गोयमा ! सण्णोवउत्ते नांय।
नोसण्णोवउत्ते हुवै, नहीं संज्ञाध्यवसाय।।

५ गोयमा ! नोसण्णोवउत्ते होज्जा। (श. २५।४०९)

६. बकुश पूछचां जिन कहै, सण्णोवउत्ते होय।
नोसण्णोवउत्ते हुवै, ए बिहुं विषे सुजोय।।

६. बउसे णं भंते !—पुच्छा।
गोयमा ! सण्णोवउत्ते वा होज्जा, नोसण्णोवउत्ते वा होज्जा।

७. प्रतिसेवनाकुशील पिण, कहिवुं बकुश जेम।
कषायकुशील पिण इमज, बकुश भाख्यो तेम।।

७. एवं पडिसेवणाकुसीले वि। एवं कसायकुसीले वि।

वा०—बकुश पडिसेवणाकुशील कषायकुशील किणहि वेला आहारादिक नैं विषे गृद्ध हुवै ते वेला सण्णोवउत्ते हुवै नैं किणहि वेला आहारदिक नैं विषे गृद्ध न हुवै तिवारै नोसण्णोवउत्ते कहियै।

***लय : दान कहै जग हूं बड़ो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

८. निग्रंथ नैं स्नातक वली, पुलाक जेम कहेह।
सण्णोवउत्ते ह्वै नहीं, नोसण्णोवउत्तेह ।।

८. नियंठे सिणाए य जहा पुलाए। (श. २५।४१०)

सोरठा

९. निग्रंथ स्नातक ताहि, पुलाक जेम कह्या प्रभु।
आहारक रै मांहि, गृद्धपणैं न ह्वै तसु ।।
१०. निग्रंथ स्नातक बेह, वीतराग भावे करी।
नोसण्णोवउत्तेह, आख्यो ते तो युक्त है ।।
११. पुलाक राग सहीत, सराग भाव विषे तिको।
गृद्धपणां करि रहीत, किम कही सकियै सर्वथा ।।

१२. बकुश आदि पिण ताय, सराग भावे छै तिके।
नोसण्णोवउत्ता थाय, सराग कारण नहीं इहां ।।
१३. 'सराग भावज होय, दशमा गुणठाणा लगै।
उदय निरंतर जोय, इहां कषाय तणुं अछै ।।
१४. धर्म शुक्ल वर ध्यान, अप्रमत्त गुणठाणा विषे।
उपशम क्षायक जान, श्रेणि विषे पिण वर्त्तता ।।
१५. तिहां पिण सराग भाव, तिणसूं सराग भाव में।
संज्ञा रहितज साव, हुवै तास कारण नथी ।।
१६. फुन कह्यो चूर्णिकार, पुलाक अरु निग्रंथ नैं।
वली स्नातक नैं सार, नोसण्णोवउत्ता कह्या ।।
१७. ज्ञाने करी प्रधान, छै उपयोगजवान ए।
पिण आहारादिक जान, संज्ञा करि उपयुक्त नहीं ।।
१८. बकुश आदि पिण तीन, ज्ञान करी उपयुक्त हुवै।
फुन आहारादिक चीन, संज्ञा करि उपयुक्त ते ।।
१९. तथाविध अवधार, संजमस्थानक भाव थी।
इम कह्यो चूर्णिकार, बुद्धिवंत न्याय मिलाइये ।।' (ज.स.)

९. तत्र पुलाकनिर्ग्रन्थस्नातका नोसञ्ज्ञोपयुक्ता भवन्ति, आहारादिष्वनभिष्वङ्गात्, (वृ. प. ९०५)
१०. ननु निर्ग्रन्थस्नातकावेवं युक्तौ वीतरागत्वात्, (वृ. प. ९०५)
११. न तु पुलाकः सरागत्वात्, नैवं, न हि सरागत्वे निरभिष्वङ्गता सर्वथा नास्तीति वक्तुं शक्यते, (वृ. प. ९०५)
१२. बकुशादीनां सरागत्वेऽपि निःसङ्गताया अपि प्रतिपादितत्वात्, (वृ. प. ९०५)

वा०—'चूर्णिकार कह्यो—पुलाक निग्रंथ स्नातक नो— संज्ञोपयुक्ताज्ञाने करी प्रधान उपयोगवंत छै पिण वली ते आहारादिक संज्ञोपयुक्ता नथी। अनैं बकुशादिक ज्ञानप्रधान उपयोगवंत पिण अनैं आहारादिक संज्ञोपयुक्ता पिण ए बिहुं हुवै तथाविध संजमस्थान नां भाव थकी इति इहां चूर्णिकार रो ए अभिप्राय— पुलाक, निग्रंथ, स्नातक ते ज्ञानप्रधान उपयोगवंत छै पिण आहारादिक संज्ञा नैं विषे उपयोगवंत नहीं। एतलै ज्ञान नां ईज प्रधानपणैं करी उपयोग छै पिण आहारादिक संज्ञा नै उपयोगवंत नहीं, तिणसूं नोसण्णोवउत्ता कह्या। अनैं बकुश, पडिसेवणाकुशील, कषायकुशील ए त्रिहुं जिवारै प्रधानपणैं करी ज्ञान नैं उपयोगे वर्त्तै तिवारै नोसण्णावउत्ता कहीजै अनैं जिवारै प्रधानपणैं करी ज्ञान नैं उपयोगे न वर्त्तै अनैं आहारादिक संज्ञा नैं विषे गृद्धपणां नैं भावे वर्त्तै तिवारै सण्णोवउत्ता कहियै इति।

वा०—चूर्णिकारस्त्वाह—'नोसन्ना नाणसन्न' त्ति, तत्र च पुलाकनिर्ग्रन्थस्नातकाः नोसञ्ज्ञोपयुक्ताः, ज्ञानप्रधानोपयोगवन्तो न पुनराहारादिसञ्ज्ञोपयुक्ताः, बकुशादयस्तूभयथाऽपि, तथाविधसंयमस्थानसद्भावादिति। (वृ. प. ९०५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निग्रंथों में आहारक अनाहारक

*सूरिजन सुणजो निर्ग्रंथ स्वरूप ।। (ध्रुपदं)

२०. पुलाक प्रभुजी ! स्यूं हुवै आहारके ? कै अनाहारके होय ?
श्री जिन भाखै आहारक विषे ह्वै,
अनाहारक में नहीं कोय रे ।।

२१. एवं जाव निर्ग्रंथ नें कहिवुं, हुवै आहारक मांहि ।
पिण अनाहारक नें विषे नहीं पावै, धुर पंच नियंठा ताहि ।।

२०. पुलाए णं भंते ! किं आहारए होज्जा ? अणाहारए होज्जा ?
गोयमा ! आहारए होज्जा, नो अणाहारए होज्जा ।

२१. एवं जाव नियंठे । (श. २५।४११)

गीतक छंद

२२. धुर पंच नें विग्रहगत्यादिक, अनाहारक नां जिके ।
कारण तणांज अभाव थी, मुनि अनाहारक नहीं तिके ।।

२२. पुलाकादेर्निर्ग्रन्थान्तस्य विग्रहगत्यादीनामनाहारकत्वकारणानामभावादाहारकत्वमेव । (वृ. प. ९०५)

२३. *स्नातक पूछ्यां श्री जिन भाखै, आहारक नें विषे होय ।
अथवा अनाहारक नें विषे ह्वै, तास न्याय अवलोय ।।

२३. सिणाए—पुच्छा ।
गोयमा ! आहारए वा होज्जा, अणाहारए वा होज्जा । (श. २५।४१२)

यतनी

२४ केवलीसमुद्घात करेह, तीजै तुर्य पंचम समयेह ।
तथा अजोगीकेवली जोय, ए अनाहारका होय ।।

२४. स्नातकः केवलिसमुद्घाते तृतीयचतुर्थपञ्चमसमयेषु अयोग्यवस्थायां चानाहारकः स्यात्, (वृ. प. ९०५)

२५. तेहथी अन्यत्र केवलनाणी, तसु आहारक कहियै पिछाणी ।
इण न्याय स्नातक जिन ताय,
आहारक अनाहारक बिहुं थाय ।।

२५. ततोऽन्यत्र पुनराहारक इति । (वृ. प. ९०५)

निग्रंथों में भव

२६. *किते भव ग्रहणे ह्वै पुलाक प्रभु ! जिन कहै जघन्य थी एक ।
उत्कृष्टा भव तीन विषे ह्वै, सुर भव बिच संपेख ।।

२६. पुलाए णं भंते ! कति भवग्गहणाइं होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं, उक्कोसेणं तिण्णि । (श. २५।४१३)

सोरठा

२७. पुलाक जघन्य संवादि, इक भव ग्रहण विषे थइ ।
कषायकुशीलत्वादि, अन्य संजतपणुं आदरै ।।

२८. ते अन्य नियंठो सार, तिणज भवे वा अन्य भवे ।
एक तथा बहु वार, पामी नें सिद्ध ह्वै तिको ।।

२९. उत्कृष्ट त्रिण भव मांय, पुलाकपणां प्रतै लहै ।
बीच अमर भव थाय, ए लेखा में नहिं गिण्या ।।

२७,२८. पुलाको जघन्यत एकस्मिन् भवग्रहणे भूत्वा कषायकुशीलत्वादिकं संयतत्वान्तरमेकशोऽनेकशो वा तत्रैव भवे भवान्तरे वाऽवाप्य सिद्ध्यति, (वृ. प. ९०५)

२९. उत्कृष्टतस्तु देवादिभवान्तरितान् त्रीन् भवान् पुलाकत्वमवाप्नोति । (वृ. प. ९०५)

३०. *बकुश पूछ्यां श्री जिन भाखै, जघन्य थकी भव एक ।
उत्कृष्टा भव अष्ट विषे ह्वै, तसु इम न्याय संपेख ।।

३०. बउसे पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं, उक्कोसेणं अट्ठ ।

सोरठा

३१. बकुश जघन्य संवादि, कोइक इक भव में लही ।
कषायकुशीलत्वादि, पामी तिण भव मेंज सिद्ध ।।

३२. कोइक इक भव मांय, बकुशपणां प्रति लही करी ।
भवांतरे कहिवाय, अन्य नियंठो प्राप्य सिद्ध ।।

३१. इह कश्चिदेकत्र भवे बकुशत्वमवाप्य कषायकुशीलत्वादि च सिद्ध्यति, (वृ. प. ९०५)

३२. कश्चित्त्वेकत्रैव बकुशत्वमवाप्य भवान्तरे तदनवाप्यैव सिद्ध्यति (वृ. प. ९०५)

***लय : रे मुनिवर ! जीव दया व्रत पालो**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. उत्कृष्ट अठ भव मांय, बकुशपणां प्रति आदरै।
चरम भवे शिव पाय, बुद्धिवंत न्याय विचारियै ।।
३४. *पडिसेवणा पिण इमहीज कहिवुं, एवं कषायकुशील।
जघन्य थकी इक भव नें विषे ह्वै, उत्कृष्ट अष्ट सुमील ।।
३५. पुलाक जेम निर्ग्रंथ कहीजे, जघन्य थकी भव एक।
उत्कृष्टा भव तीन ग्रहण करि, चरम भवे शिव पेख ।।
३६. स्नातक पूछ्यां श्री जिन भाखै, एकहीज भव होय।
कर्म खपावी नें सिद्ध गति जावै, केवलज्ञानी सोय ।।

३३. 'उक्कोसेणं अट्ठ' त्ति किलाष्टौ भवग्रहणानि उत्कृष्टतया चरणमात्रमवाप्यते, (वृ. प. ९०५)
३४. एवं पडिसेवणाकुसीले वि। एवं कसायकुसीले वि।
३५. नियंठे जहा पुलाए। (श. २५।४१४)
३६. सिणाए—पुच्छा।
गोयमा ! एक्कं। (श. २५।४१५)

निर्ग्रन्थों के आकर्ष—चारित्र की प्राप्ति

३७. पुलाक प्रभुजी ! इक भव मांहै, आवै कितरी वार ?
श्री जिन भाखै जघन्य थकी इक, उत्कृष्टो त्रिण वार ।।

३७. पुलागस्स णं भंते ! एगभवग्गहणीया केवतिया आगरिसा पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं तिण्णि।
(श. २५।४१६)

सोरठा

३८. जघन्य थकी इक वार, पुलाक लब्धि फोड़वै।
तीन वार अवधार, उत्कृष्ट इक भव नें विषे ।।

३९. *बकुश प्रभुजी ! इक भव मांहै, वार किती अवधार ?
जिन कहै जघन्य थकी इक वारज, जेष्ठ पृथक सौ वार ।।

अनुयोगद्वार में कह्यं—

वा०—सम्यक्त्व सामायिक ते तत्वश्रद्धा रूप लक्षण १। श्रुत सामायिक ते जीव अजीवादिक नों जाणवो ए ज्ञान रूप लक्षण २। देशविरति सामायिक ते देश थकी त्याग रूप लक्षण ३। ए त्रिण एक भव में पृथक सहस्र वार आवै अनें सर्व विरति सामायिक पृथक सौ वार आवै।

३९. बउसस्स णं—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं सतग्गसो।

वा०—
तिण्हं सहस्सपुहुत्तं सयपुहुत्तं च होंति विरईए।
एगभवे आगरिसा एवइया होंति णायव्वा ।।
(वृ. प. ९०५)

४०. *पडिसेवणा पिण इमहिज कहिवुं,
इम कषायकुशील विचार।
जघन्य थकी इक वारज आवै, जेष्ठ पृथक सौ वार ।।
४१. निर्ग्रंथ पूछ्यां श्री जिन भाखै, इक भव में सुविचार।
जघन्य थकी इक वारज आवै, उत्कृष्टो बे वार ।।

४०. एवं पडिसेवणाकुसीले वि, कसायकुसीले वि।
(श. २५।४१७)
४१. नियंठस्स णं—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं दोण्णि।
(श. २५।४१८)

गीतक छंद

४२. इक भव विषे निर्ग्रंथ फुन, उत्कृष्ट बे वेला लहै।
द्वय वार उपशम श्रेणि चढ, गुणठाण वर ग्यारम गहै ।।
४३. इम श्रेणि उपशम करण थी, निर्ग्रंथ उपशम नां कह्या।
आकर्ष द्वय इक भव विषे, उत्कृष्ट थी इहविध लह्या ।।

४२,४३. एकत्र भवे वारद्वयमुपशमश्रेणिकरणादुपशमनिर्ग्रन्थत्वस्य द्वावाकर्षाविति। (वृ. प. ९०५)

४४.*स्नातक पूछ्यां श्री जिन भाखै, इक भव में अवधार।
एक बार आवै तसु प्राप्ति, पछै जावै मोक्ष मझार ।।
४५. बहु भव मांहै पुलाक प्रभुजी ! आवै कितरी बार ?
जिन कहै जघन्य आवै बे वारज, उत्कृष्ट सप्त विचार ।।

४४. सिणायस्स णं—पुच्छा।
गोयमा ! एक्को। (श. २५।४१९)
४५. पुलागस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणीया केवतिया आगरिसा पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं सत्त।
(श. २५।४२०)

*लय : रे मुनिवर ! जीव दया व्रत पालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४६. इक भव में इक वार, फुन दूजो आकर्ष ते।
अन्यत्र भवे विचार, इम अनेक भव जघन्य बे।।

४६. एक आकर्ष एकत्र भवे द्वितीयोऽन्यत्रेत्येवमनेकत्र भवे आकर्षौ स्यातां, (वृ. प. ९०५,९०६)

गीतकछंद

४७. उत्कृष्ट थी आकर्ष सप्तज, तास न्याय कहावही।
उत्कृष्ट थीज पुलाक छै ते, तीन भव में आवही।।

४७. 'उक्कोसेणं सत्त' त्ति पुलाकत्वमुत्कर्षतस्त्रिषु भवेषु स्याद् (वृ. प. ९०६)

४८. इक भव विषे उत्कृष्ट थी, ते तीन वार लहै वही।
त्रिण वार लब्धि पुलाक फोड़ै, इक भवे उत्कृष्ट ही।।

४८. एकत्र च तदुत्कर्षतो वारत्रयं भवति। (वृ. प. ९०६)

४९. धुर भव विषे इक वार फुन, बे भव विषे त्रिण-त्रिण लही।
इम प्रमुख विकल्प करि बहु भव, सप्तवारज जेष्ठ ही।।

४९. ततश्च प्रथमभवे एक आकर्षोऽन्यत्र च भवद्वये त्रयस्त्रय इत्यादिभिर्विकल्पैः सप्त ते भवन्तीति। (वृ. प. ९०६)

५०. *बकुश पूछचां श्री जिन भाखै, जघन्य थकी बे वार।
उत्कृष्ट बोहितर सौ वेला, पाठ सहस्सग्गसो सार।।

५०. बउसस्स—पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं सहस्सग्गसो।

सोरठा

५१. बकुशपणुं समील, जघन्य वार द्वय बे भवे।
पछै कषायकुशील, लही श्रेणि चढ शिव गमन।।

गीतकछंद

५२. उत्कृष्ट सप्तज सहस्र बे सौ, तास न्याय कहावही।
इक भव विषे उत्कृष्ट थी जे, वार नव सय आवही।।

५३. उत्कृष्ट भव तसु अष्ट आख्या, एक-एक भवे वही।
आकर्ष नव सय नव सये, इम सप्त सहस्र बे सौ सही।।

वा॰—बकुश नां आठ भव ग्रहण उत्कृष्ट थकी कह्या। तिहां एक भव नैं विषे उत्कृष्ट थकी शत पृथक कह्या। तिहां जिवारै आठ भव ग्रहण नैं विषे उत्कर्ष थकी प्रत्येके नवसै आकर्ष हुवै। तिवारै नवसै नैं आठगुणां करतां ७२०० आकर्ष हुवै।

सम्यक्त्व सामायिक १, श्रुत सामायिक २, देशविरति सामायिक ३—ए त्रिण उत्कृष्ट घणां भव में असंख्याता हजार वार आवै अनैं सर्वविरति पृथक हजार वार आवै।

वा॰—'उक्कोसेणं सहस्सग्गसो' त्ति बकुशस्याष्टौ भवग्रहणानि उत्कर्षत उक्तानि, एकत्र च भवग्रहणे उत्कर्षत आकर्षाणां शतपृथक्त्वमुक्तं, तत्र च यदाऽष्टास्वपि भवग्रहणेषूत्कर्षतो नव प्रत्येकमाकर्ष-शतानि तदा नवानां शतानामष्टाभिर्गुणनात्सप्त-सहस्राणि शतद्वयाधिकानि भवन्तीति। (वृ. प. ९०६)

तिण्ह सहस सहस्समसंखा पुहुत्तं च होइ विरईए।
नाणाभवे आगरिसा एवइया होंति णायव्वा।।
(अनुयोग वृ. प. २४१)

५४. *एवं जाव कषायकुशीलज, बहु भवे जघन्य बे वार।
बार बोहितर सौ उत्कृष्टो, न्याय पूर्ववत सार।।

५४. एवं जाव कसायकुसीलस्स। (श. २५।४२१)

५५. निर्ग्रंथ पूछचां श्री जिन भाखै, जघन्य थकी बे वार।
पंच वार उत्कृष्टो आवै, तास न्याय अवधार।।

५५. नियंठस्स णं—पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं पंच।
(श २५।४२२)

सोरठा

५६. धुर भव उपशम श्रेण, क्षपक श्रेणि द्वितीये भवे।
बहु भव बे वारेण, इम लही शिव पद संचरै।।

*लय : रे मुनिवर ! जीव दया व्रत पालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. उत्कृष्ट वारज पंच, ते किण रीत कहीजियै।
त्रिण भव विषेज संच, निर्ग्रंथपणुं लहै कह्यं ।।
५८. इक भव में बे वार, उपशम श्रेणि लहै वली।
द्वितीय भवे सुविचार, उपशम श्रेणिज वार बे ।।
५९. तृतीय भवे तहतीक, क्षपक श्रेणि गहि सिव लहै।
इम बहु भवे सधीक, वार पंच इम वृत्तौ ।।
६०. *स्नातक पूछयां श्री जिन भाखै, ते बहु भव रै मांय ?
स्नातक बहु भव में नहिं आवै, इक भव मेंज इक वार आय ।।

५७. 'उक्कोसेणं पंच' त्ति निर्ग्रन्थस्योत्कर्षतस्त्रीणि भवग्रहणान्युक्तानि, (वृ. प. ९०६)
५८. एकत्र च भवे द्वावाकर्षावित्येवमेकत्र द्वावन्यत्र च द्वौ (वृ. प. ९०६)
५९. अपरत्र चैकं क्षपकनिर्ग्रन्थत्वाकर्षं कृत्वा सिद्धयतीति कृत्वोच्यते पञ्चेति। (वृ. प. ९०६)
६०. सिणायस्स—पुच्छा।
गोयमा ! नत्थि एक्को वि। (श. २५।४२३)

निर्ग्रन्थों का काल

६१. पुलाक प्रभुजी ! काल थकी जे, किता काल लग होय ?
जिन कहै जघन्य अनैं उत्कृष्टो, अंतर्मुहूर्त्त जोय ।।

६१. पुलाए णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। (श. २५।४२४)

सोरठा

६२. पुलाक काल जघन्न, अंतर्मुहूर्त्त न्याय तसुं।
पुलाकपणुं प्रपन्न, इतरे पुलाक पडिवज्यो ।।
६३. अंतर्मुहूर्त्त काल, परिपूर्तिज थयां बिना।
न मरै न पड़ै न्हाल, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य इम ।।
६४. अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट, एह प्रमाणपणां थकी।
तसु स्वभाव नैं इष्ट, तिणसूं अधिको काल नहीं ।।

६२,६३. 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति पुलाकत्वं प्रतिपन्नोऽन्तर्मुहूर्त्तापरिपूर्त्तौ पुलाको न म्रियते नापि प्रतिपततीतिकृत्वा जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तमित्युच्यते, (वृ. प. ९०६)
६४. उत्कर्षतोऽप्यन्तर्मुहूर्त्तमेतत्प्रमाणत्वादेतत्स्वभावस्येति। (वृ. प. ९०६)

६५. *बकुश पूछयां श्री जिन भाखै, समयो एक जघन्य।
उत्कृष्ट देश ऊण पुव्व कोड़ि, तास न्याय इम जन्य ।।

६५. बउसे—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी।

सोरठा

६६. कषायकुशील आदि, बकुशपणां प्रति पडिवजी।
समय रही संवादि, मरण लह्यां इक समय धुर ।।

६६. 'जहन्नेणमेक्कं समयं' ति बकुशस्य चरणप्रतिपत्त्यनन्तरसमय एव मरणसम्भवादिति, (वृ. प. ९०६)

६७. अठ वर्ष जाझे जोय, तेह चरण लेतो छतो।
कषायकुशील होय, बकुशपणुं पाछै ग्रह्यं ।।
६८. तसु स्थिति पूर्व कोड़, देश ऊण आखी तसु।
बकुशपणूंज जोड़, अंत लगै इम जेष्ठ स्थिति ।।

६७,६८. 'उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडि' त्ति पूर्वकोट्यायुषोऽष्टवर्षान्ते चरणप्रतिपत्ताविति। (वृ. प ९०६)

६९. *पडिसेवणा नैं कषायकुशीलज, इमहिज कहिवुं जोड़।
जघन्य समय इक फुन उत्कृष्टो, देसूण पूर्व कोड़ ।।
७०. निर्ग्रंथ पूछयां श्रीजिन भाखै, जघन्य समय इक जाण।
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अद्धा छै, तास न्याय पहिछाण ।।

६९. एवं पडिसेवाणाकुसीले वि, कसायकुसीले वि। (श. २५।४२५)
७०. नियंठे—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। (श. २५।४२६)

गीतकछंद

७१. गुणठाण ग्यारम समय इक रहि, मरण पाम्यां जाणियै।
इक समय इम निर्ग्रंथ अद्धा, जघन्य थी पहिछाणियै ।।

७१. 'जहन्नेणं एक्कं समयं' ति उपशान्तमोहस्य प्रथमसमयसमनन्तरमेव मरणसम्भवात्, (वृ. प. ९०६)

---

*लय : रे मुनिवर ! जीव दया व्रत पालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. उत्कृष्ट अद्धा अंतर्मुहूर्त्त, आखियो निर्ग्रंथ नुं।
तसु एतलाज प्रमाण थी पिण, एहथी नहीं छै घनुं।।

७३. *स्नातक पूछयां श्री जिन भाखै, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य।
उत्कृष्ट अद्धा देश ऊण जे, पूर्व कोड़ि सुजन्य।।

सोरठा

७४. आऊखा नैं अंत, अंतर्मुहूर्त्त थाकतै।
वर केवल उपजंत, अंतर्मुहूर्त्त जघन्य इम।।

७५. कोड़ पूर्व स्थिति जास, साधिक अठ वर्षे लहै।
केवलज्ञान प्रकाश, देश ऊण पुव्वकोड़ि इम।।

७६. इक वचने करि काल, आख्यो पुलाक प्रमुख नों।
हिव बहुवचने न्हाल, कहियै अद्धा तेहनुं।।

७७. *काल थकी प्रभु! घणां पुलाका, रहै काल केतलो इष्ट?
जघन्य समय इक श्री जिन भाखै, अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट।।

यतनी

७८. कहूं एक समय नों न्याय, जेह एक पुलाक नों ताय।
कह्यं अंतर्मुहूर्त्त काल, तेहनां चरम समय विषे न्हाल।।

७९. पुलाकपणुं अनेरो पामेह, जघन्यपणां नीं वंछा विषेह।
थयो दोनूं पुलाक नों भाव, एक समय विषे इण न्याव।।

८०. प्रथम पुलाक नुं जोय, जे चरम समय अवलोय।
द्वितीय पुलाक नों तेह, ओ तो प्रथम समय कह्यं जेह।।

८१. इम एक समय रै मांय, दोय पुलाक कहिवाय।
प्राकृत भाषा मांय, दोय पिण बहुवचने कहाय।।

सोरठा

८२. अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट, यद्यपि घणां पुलाक नों।
इक काले ते इष्ट, पृथक सहस्र जे पामियै।।

८३. ते अंतर्मुहूर्त्त थकीज, तास काल नों बहुत्व पिण।
अंतर्मुहूर्त्त हीज, तेहिज बहु नीं स्थिति विषे।।

८४. इक पुलाक स्थिति जोय, अंतर्मुहूर्त्त काल जे।
तेहथी महत्तर होय, अंतर्मुहूर्त्त बहु तणुं।।

वा०—इहां घणां पुलाक जघन्य थकी एक समय ते किम? एक पुलाक नों जे अंतर्मुहूर्त्त काल तेहनां अंत समय नैं विषे अनेरै पुलाकपणुं पाम्यो इम जघन्यत्व विवक्षा नैं विषे दोय पुलाक नों एक समय नैं विषे सद्भाव थयो, द्वित्व नैं विषेज जघन्य पृथक हुवै। उत्कृष्ट थकी अंतर्मुहूर्त्त—यद्यपि पुलाक उत्कृष्ट थी एकदा सहस्र पृथक परिमाण पामियै ते अंतर्मुहूर्त्तपणां थकी तेहनां काल नों बहुत्व, तो पिण तेहनैं अंतर्मुहूर्त्त तेहिज ते काल। केवल घणां नीं स्थिति नैं विषे जे अंतर्मुहूर्त्त ते एक पुलाक स्थिति अंतर्मुहूर्त्त थकी महत्तर जाणवुं। एतलै एक पुलाक नां अंतर्मुहूर्त्त काल थकी घणां पुलाक नुं अंतर्मुहूर्त्त मोटो जाणवुं।

७२. 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं' ति निर्ग्रन्थाद्धाया एतत्प्रमाणत्वादिति। (वृ. प. ९०६)

७३. सिणाए—पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। (श. २५।४२७)

७४. 'जहन्नेणं अंतोमुहुत्तं' ति आयुष्कान्तिमेऽन्तर्मुहूर्ते केवलोत्पत्तावन्तर्मुहूर्त्तं जघन्यतः स्नातककालः स्यादिति। (वृ. प. ९०६)

७६. पुलाकादीनामेकत्वेन कालमानमुक्तं अथ पृथक्त्वेनाह— (वृ. प. ९०६)

७७. पुलाया णं भंते! कालओ केवच्चिरं होंति?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। (श. २५।४२८)

वा०—'जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कथम्? एकस्य पुलाकस्य योऽन्तर्मुहूर्त्तकालस्तस्यान्त्यसमयेऽन्यः पुलाकत्वं प्रतिपन्न इत्येवं जघन्यत्वविवक्षायां द्वयोः पुलाकयोरेकत्र समये सद्भावो द्वित्वे च जघन्यं पृथक्त्वं भवतीति। 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं' ति यद्यपि पुलाका उत्कर्षत एकदा सहस्रपृथक्त्वपरिमाणाः प्राप्यन्ते तथाऽप्यन्तर्मुहूर्त्तत्वात्तदद्धाया बहुत्वेऽपि तेषामन्तर्मुहूर्त्तमेव तत्कालः, केवलं बहूनां स्थितौ यदन्तर्मुहूर्त्तं तदेकपुलाकस्थित्यन्तर्मुहूर्त्तान्महत्तरमित्यवसेयं, (वृ. प. ९०६,९०७)

*लय : रे मुनिवर! जीव दया व्रत पालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८५. *घणां बकुश नीं पूछा कीधां, जिन भाखै सर्व काल।
एवं जाव कषायकुशीलज, बहु वचने करि न्हाल ।।

८५. बउसा णं—पुच्छा।
गोयमा! सव्वद्धं। एवं जाव कसायकुसीला।

सोरठा

८६. बकुस आदि संवादि, सर्व काल बहु सासता।
एक-एक बकुशादि, बहुस्थितिक नां भाव थी ।।

८६. बकुशादीनां तु स्थितिकालः सर्वाद्धा, प्रत्येकं तेषां बहुस्थितिकत्वादिति। (वृ. प. ९०७)

८७. *निर्ग्रंथ बहु वच पुलाक नीं परि, समयो एक जघन्य।
उत्कृष्ट अंतर्मूहूर्त्त अद्धा, न्याय पुलाक ज्यूं जन्य ।।

८७. नियंठा जहा पुलागा।

८८. बहु वच स्नातक बकुश तणीं परि, सदा काल ते जोय।
केवलज्ञानी पृथक कोड़ थी, ओछा कदेय न होय ।।

८८. सिणाया जहा बउसा। (श. २५।४२९)

८९. शत पणवीसम देश छठा नुं, च्यारसौ एकावनमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे,
'जय-जश' हरष विशाल ।।

ढाल : ४५२

निर्ग्रन्थों में अन्तर

दूहा

१. पुलाक नैं प्रभु! केतलो, काल अंतरो जेह?
पुलाक थइ कितै अद्धा, फुन पुलाक ह्वै तेह?

१. पुलागस्स णं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?
तत्र पुलाकः पुलाको भूत्वा कियता कालेन पुलाकत्वमापद्यते? (वृ. प. ९०७)

२. श्री जिन भाखै जघन्य थी, अंतर्मुहूर्त्त जेह।
उत्कृष्ट काल अनंत नुं, अंतर इकवचनेह ।।

वा०—जघन्य थकी अंतर्मुहूर्त्त रही नैं वली पुलाक हीज हुवै। उत्कृष्ट थकी वली अनंतै कालपणैं पामै ते काल नों अनंतपणों हीज काल थी नियम करतो कहै छै—

२. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं अणंतं कालं।

वा.—जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तं स्थित्वा पुनः पुलाक एव भवति, उत्कर्षतः पुनरनन्तेन कालेन पुलाकत्वमाप्नोति, कालानन्त्यमेव कालतो नियमयन्नाह— (वृ. प. ९०७)

३. काल थकी अंतर हुवै, अवसर्पिणी अनंत।
उत्सर्पिणी अनंत ही, भाखी श्री भगवंत ।।

३. अणंताओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ कालओ,

४. तेह अनंतो काल फुन, क्षेत्र थकी पहिछाण।
मिणतां छतांज मान थी, सुणियै तेह सुजाण ।।

४. इदमेव क्षेत्रतोऽपि नियमयन्नाह— (वृ. प. ९०७)

५. परावर्त्त-पुद्गल अर्द्ध, देश ऊण अवलोय।
इक यावत निर्ग्रंथ नैं, इक वच अंतर होय ।।

वा०—खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं एवं जाव नियंठस्स—खेत्तओ कहितां क्षेत्र थकी, अवड्ढं कहितां अपगत अर्द्ध ते गयो छै अर्द्ध ते अर्द्ध मात्र, पो० कहितां पुद्गलपरावर्त्त ते अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त पूर्ण पिण हुई ते माटै आगल कहै छै—

५. खेत्तओ अवड्ढं पोग्गलपरियट्टं देसूणं। एवं जाव नियंठस्स। (श. २५।४३०)

वा.—'खेत्तओ' इति, स चानन्तः कालः क्षेत्रतो मीयमानः किंमानः? इत्याह—'अवड्ढ' मित्यादि, 'अपार्द्धम्' अपगतार्द्धमर्द्धमात्रमित्यर्थः, अपार्द्धोऽप्यर्द्धतः

*लय : रे मुनिवर! जीव दया व्रत पालो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसूणं कहितां देश भागे करी ऊणों एतलै देश ऊणों अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त क्षेत्र थकी उत्कृष्ट इक वचने पुलाक नों अंतर हुवै। इम जाव निर्ग्रंथ नुं अंतर जाणवुं।

पुणः स्यादत आह—'देसूण' ति देशेन भागेन न्यूनमिति। (वृ. प. ९०७)

६. स्नातक नीं पूछा कियां, भाखै तब भगवंत।
तेह तणुं अंतर नथी, स्नातक नहीं पडंत।।

६. सिणायस्स—पुच्छा।
गोयमा! नत्थि अंतरं। (श. २५।४३१)
'सिणायस्स नत्थि अंतरं' ति प्रतिपाताभावात्। (वृ. प. ९०७)

दूहा

७. हे प्रभु! घणां पुलाक नों, अंतर कितरो थात?
जिन कहै समय एक धुर, जेष्ठ वर्ष संख्यात।।

७. पुलायाणं भंते! केवतियं कालं अंतरं होइ?
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जाइं वासाइं। (श. २५।४३२)

वा०—बहुवचने पुलाक नों अंतर जघन्य एक समय नों उत्कृष्ट संख्याता वर्ष। पछै तो कोई पुलाक लब्धि फोड़वै हीज। बहुवचने ते घणां जीव आश्रयी।

८. हे प्रभु! बहु बकुश पृच्छा, जिन कहै अंतर नांहि।
एवं यावत जाणवुं, कषायकुशील ताहि।।

८. बउसाणं भंते!—पुच्छा।
गोयमा! नत्थि अंतरं। एवं जाव कसायकुसीलाणं। (श. २५।४३३)

वा०—बकुश, पडिसेवणाकुशील, कषायकुशील सदा शाश्वता घणां लाधै ते माटै एहनों अंतर नथी।

९. प्रश्न घणां निर्ग्रंथ नों, जिन कहै जघन्य विमास।
एक समय नों अंतरो, उत्कृष्टो षट मास।।

९. नियंठाणं—पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेण छम्मासा।

वा०—घणां जीव आश्रयी निर्ग्रंथ नुं अंतर जघन्य एक समय, ते एक समय नों विरह थइ कोइ जीव इग्यारमों तथा बारमों गुणस्थान फर्शे ते माटै जघन्य एक समय, उत्कृष्ट थकी षट मास। ते षट मास तांइ कोइ जीव इग्यारमों तथा बारमों गुणस्थान न फर्शे। अनें छ मास पछै तो अवश्यमेव फर्शेहीज ते माटै उत्कृष्ट छ मास नुं अंतर।

१०. बहुवचने स्नातक तणुं, बकुश जेम कहिवाय।
घणां केवली शाश्वता, तिणसूं अंतर नांय।।

१०. सिणायाणं जहा बउसाणं। (श. २५।४३४)

निर्ग्रन्थों में समुद्घात

*सुणज्यो भव्य प्राणी! नियंठा षट भाख्या नाणी।। (ध्रुपदं)

११. प्रभु! समुद्घात किति पुलाक मांय? जिन कहै तीनज पाय।
प्रथम वेदना नें दूजी कषाय, मारणांतिक फुन थाय।।

११. पुलागस्स णं भंते! कति समुग्घाया पण्णत्ता?
गोयमा! तिण्णि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए, कसायसमुग्घाए, मारणंतियसमुग्घाए। (श. २५।४३५)

सोरठा

१२. पुलाक नें इहां ख्यात, मरण अभावे पिण तसु।
मारणांतिक समुद्घात, आखो तेह विरुद्ध नहीं।।
१३. समुद्घात थी वादि, निवृत्त नें ए आखियो।
कषायकुशील आदि, परिणामे मृत्यु हुवै।।

---

*लय: पुन्यवंतो जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—वेदनासमुद्घात १, कषायसमुद्घात २ चारित्रवंत नैं संज्वलन कषाय उदय संभवे करी कषायसमुद्घात हुवै। इहां पुलाक नैं मरण अभावे पिण मारणांतिक समुद्घात विरुद्ध नहीं। समुद्घात थकी निवृत्त नैं कषायकुशील-त्वादि परिणाम थकां मरण नां भाव थकी। एतलै मारणांतिकसमुद्घात पुलाक में करै, करी नैं पछै निवृत्तै ते वेला कषायकुशीलादिकपणां प्रति पामी नैं मरै तिणसूं पुलाक में ए समुद्घात पावै।

१४. *बकुश पूछचां थी कहै जिन संच, समुद्घात छै पंच।
वेदना जाव तेजस समुद्घात, इम पडिसेवणा अवदात।।

१५. कषायकुशील पूछचां कहै नाथ, पावै षट समुद्घात।
वेदना जावत आहारक जाणी,
लब्धि फोड़चां रो दंड पिछाणी।।

१६. निर्ग्रंथ पूछचां कहै जिनराय, इक पिण पावै नांय।
स्नातक पूछचां कहै जगनाथ, पावै केवल समुद्घात।।

वा.—'कसायसमुग्घाए' त्ति चारित्रवतां सज्वलन-कषायोदयसम्भवेन कषायसमुद्घातो भवतीति, 'मारणंतियसमुग्घाए' त्ति, इह पुलाकस्य मरणाभावेऽपि मारणान्तिकसमुद्घातो न विरुद्धः समुद्घातान्निवृत्तस्य कषायकुशीलत्वादिपरिणामे सति मरणभावात्, (वृ. प. ९०७)

१४. बउसस्स णं भंते! —पुच्छा।
गोयमा! पंच समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणासमुग्घाए जाव तेयासमुग्घाए। एवं पडिसेवणाकुसीले वि। (श. २५।४३६)

१५. कसायकुसीलस्स—पुच्छा।
गोयमा! छ समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेयणा-समुग्घाए जाव आहारसमुग्घाए। (श. २५।४३७)

१६. नियंठस्स णं—पुच्छा।
गोयमा! नत्थि एक्को वि। (श २५।४३८)
सिणायस्स—पुच्छा।
गोयमा! एगे केवलिसमुग्घाए पण्णत्ते।
(श. २५।४३९)

निर्ग्रन्थों का क्षेत्र

१७. पुलाक हे प्रभु! लोक नैं सोय, स्यूं संख्यातमें भाग होय?
कै असंख्यातमें भागे कहेह, पुलाक साधु जेह?
१८. कै घणां संख्याता भाग विषे थाय?
कै बहु असंख्याता भाग मांय?
सर्व लोक में कहीजै संच? प्रश्न पूछचा ए पंच।।
१९. श्री जिन भाखै गोतम! सुणजे, थिर चित्त करिकै थुणजे।
संख्यातमें भागे नहिं कोय, असंख्यातमें भागे होय।।
२०. घणां संख्याता भाग विषे नांहि,
नहीं घणां असंख भाग मांहि।
सर्व लोक नैं विषे नहीं थाय, पुलाक साधु ताय।।

वा०—पुलाक शरीर नैं लोक नां असंख्यात भाग मात्र अवगाहीपणां थकी लोक नैं असंख्यातमें भागहीज कहियै शेष च्यार बोल न हुवै।

२१. एवं जाव निर्ग्रंथ लगेह, स्नातक पूछचां कहेह।
संख्यातमें भाग नहीं होय, असंख्यातमें भाग जोय।।

२२. घणां संख्याता भाग में नांहि, हुवै घणां असंख भाग मांहि।
सर्व लोक नैं विषे तथा ताम, ए बोल तीनूं इहां पाम।।

वा०—स्नातक संख्यातमा भाग नैं विषे न हुवै अनैं घणां संख्याता भाग नैं विषे पिण न हुवै। अनैं लोक नां असंख्यातमा भाग नैं विषे हुवै ते शरीर आश्रयी नैं। शरीर नैं विषे रह्यो वली दंड, कपाट करिवा नां काल नैं विषे लोक नैं

१७. पुलाए णं भंते! लोगस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा? असंखेज्जइभागे होज्जा?
१८. संखेज्जेसु भागेसु होज्जा? असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा? सव्वलोए होज्जा?

१९. गोयमा! नो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा,
२०. नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, नो सव्वलोए होज्जा।

वा.—'असंखेज्जइभागे होज्ज' त्ति पुलाकशरीरस्य लोकासंख्येयभागमात्रावगाहित्वात्। (वृ. प. ९०७)
२१. एवं जाव नियंठे। (श. २५।४४०)
सिणाए णं—पुच्छा।
गोयमा! नो संखेज्जइभागे होज्जा, असंखेज्जइभागे होज्जा,
२२. नो संखेज्जेसु भागेसु होज्जा, असंखेज्जेसु भागेसु होज्जा, सव्वलोए वा होज्जा। (श. २५।४४१)
वा.—'असंखेज्जइभागे होज्ज' त्ति शरीरस्थो दण्ड-कपाटकरणकाले च लोकासंख्येयभागवृत्तिः केवलि-शरीरादीनां तावन्मात्रत्वात् 'असंखेज्जेसु भागेसु

*लय : पुन्यवंतो जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंख्यातमें भागवर्त्ति केवली शरीरादिक नों तेतलो मानपणां थकी असंख्यातमें भाग कह्यं । तथा घणां असंख्याता भाग नें विषे हुवै ते मंथकरण काल नें विषे घणों लोक व्याप्यो हुवै, थोड़ो अव्याप्यो रहै। तिण करिकै कह्यो लोक नैं घणां असंख्याता भाग नें विषे स्नातक वर्त्तै। तथा सर्व लोक नें विषे हुवै ते लोक नें पूर नें सर्वलोक में वर्त्तै।

होज्ज' त्ति मथिकरणकाले बहोर्लोकस्य व्याप्तत्वेन स्तोकस्य चाव्याप्ततयोक्तत्वाल्लोकस्यासंख्येयेषु भागेषु स्नातको वर्त्तते, लोकापूरणे च सर्वलोके वर्त्तत इति। (वृ. प. ९०७,९०८)

निग्रन्थों द्वारा लोक की स्पर्शना

२३. पुलाक लोक नें हे भगवंत ! स्यूं संख्यातमें भाग फर्शंत ?
कै असंख्यातमें भाग फर्शेह? इत्यादिक प्रश्न उत्तर एह ।।

२४. इम जिम अवगाहना कही सोय, भणवी तिमज फर्शना जोय।
क्षेत्र नीं परै फर्शना कहिवी, जाव स्नातक लग लहिवी ।।

वा०—स्पर्शना क्षेत्र नीं परै कहिवी। एतलो विशेष—क्षेत्र ते अवगाह्यो तेतलो हीज अनैं स्पर्शना तो अवगाढ नीं तथा तेहनैं पासैं वर्त्तै तेहनीं पिण हुवै इति विशेष।

२३. पुलाए णं भंते ! लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ ? असंखेज्जइभागं फुसइ ?

२४. एवं जहा ओगाहणा भणिया तहा फुसणा वि भाणियव्वा जाव सिणाए। (श. २५।४४२)

वा.—स्पर्शना क्षेत्रवन्नवरं क्षेत्रं अवगाढमात्रं स्पर्शना त्ववगाढस्य तत्पार्श्ववर्तिनश्चेति विशेषः।
(वृ. प. ९०८)

निग्रन्थ किस भाव में

२५. पुलाक हे भगवंत जी ! सोय, किसा भाव विषे होय।
श्री जिन भाखै क्षयोपशम भावे, पुलाक चरित्त कहावे ।।

२६. एवं जाव कषायकुशील, निर्ग्रंथ पूछयां सुमील।
उपशम भाव विषे अवलोय, तथा क्षायिक भावे होय ।।

२५. पुलाए णं भंते ! कतरम्मि भावे होज्जा ?
गोयमा ! खओवसमिए भावे होज्जा।

२६. एवं जाव कसायकुसीले। (श. २५।४४३)
नियंठे—पुच्छा।
गोयमा ! ओवसमिए वा खइए वा भावे होज्जा।
(श. २५।४४४)

सोरठा

२७. इग्यारम गुणठाण, उपशम चारित्र पाइयै।
ते निर्ग्रंथ पिछाण, उपशम भाव विषे हुवै ।।

२८. फुन बारम गुणठाण, क्षायिक चारित्र ह्वै तिहां।
निर्ग्रंथ तेह पिछाण, क्षायिक भावे चरण तसु ।।

२९.* स्नातक पूछयां कहै जगस्वाम, क्षायिक भावे पाम।
क्षायिक चारित्र तास कहीजै, तेह विषे वर्त्तीजै ।।

२९. सिणाए—पुच्छा।
गोयमा ! खइए भावे होज्जा। (श. २५।४४५)

निग्रंथों का परिमाण

३०. पुलाक हे भगवंत जी ! सोय, एक समय किता होय ?
जिन कहै पड़िवजता थका तेह, ते वर्त्तमान आश्रयी जेह ।।

३१. कदाचित ह्वै कदा नहीं होय, जो हुवै तो इम अवलोय।
जघन्य एक तथा बे तथा तीन, उत्कृष्ट पृथक सौ चीन ।।

३०. पुलाया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया होज्जा ?
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च

३१. सिय अत्थि, सिय नत्थि। जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

सोरठा

३२. पड़िवजता वर्त्तमान, जघन्य एक बे त्रिण हुवै।
उत्कृष्टा पहिछान, हुवै पृथक सौ ते कदा ।।

वा०—वर्त्तमान समय किवारै पुलाकपणां प्रति पड़िवजै किवारै न पड़िवजै। जो पड़िवजै तो जघन्य एक तथा बे तथा त्रिण, उत्कृष्ट पृथक सौ एक समय समकाले पुलाक प्रतै पड़िवजै।

---

*लय : पुण्यवन्तो जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. *पूर्व पड़िवज्या आश्रयी जोय, कदा हुवै कदा नहीं होय।
जो ह्वै तो जघन्य इक बे त्रिण सार, उत्कृष्ट पृथक हजार।।

३३ पुव्वपडिवण्णए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि।
जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा
उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं। (श. २५।४४६)

सोरठा

३४. गया काल नां जेह, पुलाक सहु भेला गिण्यां।
पूर्व-प्रतिपन्न तेह, उत्कृष्ट पृथक सहस्र ह्वै।।

३५. *बकुश हे भगवंतजी ! सोय, एक समय किता होय ?
जिन कहै पड़िवजता थका जान, ए वर्तमान आश्रयी मान।।

३६. कदाच हुवै कदाच न होय, जो हुवै तो इम अवलोय।
जघन्य एक तथा बे तथा तीन, उत्कृष्ट पृथक सौ चीन।।

वा०—वर्तमान समय किवारै बकुशपणां प्रति पड़िवजै किवारै न पड़िवजै। जो पड़िवजै तो जघन्य एक तथा बे तथा त्रिण, उत्कृष्ट पृथक सौ एक समय समकाले बकुश प्रतै पड़िवजै।

३५. बउसा णं भंते ! एगसमएणं—पुच्छा।
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च
३६. सिय अत्थि, सिय नत्थि। जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को
वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं।

३७. पूर्व पड़िवज्या आश्रयी जघन्य, पृथक सौ कोड़ सुमन्य।
उत्कृष्ट पिण ते पृथक सौ कोड़, इम पडिसेवणा जोड़।।

वा०—इहां पूर्व पड़िवज्या ते अतीत काले बकुशपणां प्रति पड़िवज्या ते लेखवियै तो तेहनों विरह नथी। जघन्य पृथक सौ कोड़ हुवै पिण तेहथी ओछा न हुवै। अनैं उत्कृष्ट पिण पृथक सौ कोड़ पामियै। बे, त्रिण मांडी नव नैं पृथक संज्ञा कहियै।

३७. पुव्वपडिवण्णए पडुच्च जहण्णेणं कोडिसयपुहत्तं,
उक्कोसेण वि कोडिसयपुहत्तं। एवं पडिसेवणाकुसीले
वि। (श. २५।४४७)

३८. कषायकुशील तणीं करी पृच्छा, जिन कहै सुण धर इच्छा।
पड़िवजताज थका पहिछान, ए वर्तमान आश्रयो जान।।

३९. कदाच हुवै कदा हुवै नांय, जो हुवै तो इम कहिवाय।
जघन्य एक तथा बे तथा तीन, उत्कृष्ट पृथक सहस्र चीन।।

४०. पूर्वप्रतिपन्न आश्रयी जोड़, जघन्य पृथक सहस्र कोड़।
उत्कृष्ट पृथक सहस्र कोड़ पाय,
हिवै निसुणो तेहनों न्याय।।

३८. कसायकुसीलाणं—पुच्छा।
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च
३९. सिय अत्थि, सिय नत्थि। जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को
वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सहस्सपुहत्तं।
४०. पुव्वपडिवण्णए पडुच्च जहण्णेणं कोडिसहस्सपुहत्तं,
उक्कोसेण वि कोडिसहस्सपुहत्तं। (श. २५।४४८)

वा०—कषायकुशील पूर्वप्रतिपन्न जघन्य थकी कोड़ सहस्र पृथक उत्कृष्ट थकी पिण कोड़ सहस्र पृथक। इहां कोइ एक पूछस्यै—सर्व संजत नैं कोड़िसहस्र पृथक सांभलियै छै। अनैं इहां तो एकहीज कषायकुशील नैं तेह मान कह्यो तिवारै पुलाकादि मान तेहथी अधिक हुवै। इहां विशेष किम नहीं ? इहां उत्तर—कषायकुशील नैं जेह कोड़ सहस्र पृथक कह्यं, तेह दोय सत आदि कोड़ि सहस्र रूप इम कल्पी नैं पुलाक, बकुशादि संख्या तिहां प्रवेश कीजै तिवारै समस्त संजम मान जे कह्यं, तेह थकी अधिक नहीं ते माटै विशेष नहीं।

वा०—ननु सर्वसंयतानां कोटीसहस्रपृथक्त्वं श्रूयते, इह तु केवलानामेव कषायकुशीलानां तदुक्तं ततः पुलाकादिमानानि ततोऽतिरिच्यन्त इति कथं न विरोधः ? उच्यते, कषायकुशीलानां यत् कोटीसहस्रपृथक्त्वं तद्द्वित्रादिकोटीसहस्ररूपं कल्पयित्वा पुलाकबकुशादिसंख्या तत्र प्रवेश्यते ततः समस्तसंयतमानं यदुक्तं तन्नातिरिच्यत इति। (वृ. प. ९०८)

४१. निर्ग्रंथ पूछ्यां कहै जिनराय,
पड़िवजता थका आश्रयी ताय।
कदाच हुवै कदाच न होय, जो हुवै तो इतरा जोय।।

४२. जघन्य एक दोय तीनज इष्ट, एकसौ नैं बासठ उत्कृष्ट।
ते मांहै एकसौ आठ क्षपक नां,
मुनि चउपन श्रेणि उपशम नां।।

४१. नियंठाणं—पुच्छा।
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय
नत्थि। जइ अत्थि
४२. जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं
बावट्ठं सतं—अट्ठसयं खवगाणं, चउप्पन्नं
उवसामगाणं।

*लय : पुण्यवन्तो जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. पूर्वप्रतिपन्न आश्रयी जोय, कदा हुवै कदाच न होय ।
जो ह्वै तो जघन्य इक बे त्रिण जानी,
उत्कृष्ट पृथक सय मानी ।।

४४. स्नातक पूछ्यां कहै जिनदेव,
पड़िवज्जता थका आश्रयी भेव ।
जो कदाच हुवै कदाच न होय, जो ह्वै तो इतरा जोय ।।

४५. जघन्य एक दोय तीन सुवट, उत्कृष्ट एक सौ अठ ।
ए क्षायिक श्रेणि तणां मुनि जाण,
इक समय लहै केवलनाण ।।

४६. पूर्वप्रतिपन्न आश्रयी जोड़, जघन्य थकी पृथक कोड़ ।
होय उत्कृष्टा पिण पृथक कोड़, केवलनाणी जोड़ ।।

४३. पुव्वपडिवण्णए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि ।
जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा,
उक्कोसेणं सयपुहत्तं । (श. २५।४४९)

४४. सिणायाणं—पुच्छा ।
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि, सिय नत्थि । जइ अत्थि

४५. जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं अट्ठसतं ।

४६. पुव्वपडिवण्णए पडुच्च जहण्णेणं कोडिपुहत्तं, उक्कोसेण वि कोडिपुहत्तं । (श. २५।४५०)

निर्ग्रन्थों में अल्पबहुत्व

४७. हे प्रभु ! एह पुलाक नें पेख, बकुश नें फुन लेख ।
प्रतिसेवनाकुशील नें फेर, कषायकुशील सुमेर ।।

४८. निर्ग्रंथ नें स्नातक नें निहाल, कुण-कुण थी सुविशाल ।
अल्प तथा बहु अथवा तुल्य, तथा विशेष अधिक अमूल्य ?

४९. श्री जिन भाखै सर्व थी थोड़ा, निर्ग्रंथ मुनि नां जोड़ा ।
निर्ग्रंथ उत्कृष्ट थी अवलोय, पृथक सत मुनि होय ।।

५०. तेहथी पुलाक संख्यातगुणां छै,
अंतर्मुहूर्त्त में इतरा कह्या छै ।
उत्कृष्ट थकी पृथक हजार, लब्धि फोड़वता धार ।।

५१. तेहथी स्नातक संख्यातगुणां छै, ए केवलज्ञानी थुण्या छै ।
उत्कृष्ट पृथक कोड़ उदार, स्नातक नियंठे सार ।।

५२. बकुश तेहथी संख्यातगुणा छै, ए मुनि इतरा कह्या छै ।
जघन्य उत्कृष्ट पृथक सौ कोड़, ए छठे गुणठाणे जोड़ ।।

५३. तेह थकी प्रतिसेवना ताय, संखेजगुणा कहिवाय ।
प्रतिसेवणाकुशील पिण इष्ट,
पृथक सौ कोड़ जघन्य उत्कृष्ट ।।

४७. एएसि णं भंते ! पुलाग-बउस-पडिसेवणाकुसील-कसायकुसील-

४८. नियंठ-सिणायाण कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? बहुया वा ? तुल्ला वा ? विसेसाहिया वा ?

४९. गोयमा ! सव्वत्थोवा नियंठा,
'सव्वत्थोवा नियंठ' त्ति तेषामुत्कर्षतोऽपि शतपृथक्त्वसङ्ख्यत्वात्, (वृ. प ९०८)

५०. पुलागा संखेज्जगुणा,
'पुलागा संखेज्जगुण' त्ति तेषामुत्कर्षतः सहस्रपृथक्त्वसङ्ख्यत्वात्, (वृ. प. ९०८)

५१. सिणाया संखेज्जगुणा,
'सिणाया संखेज्जगुण' त्ति तेषामुत्कर्षतः कोटीपृथक्त्वमानत्वात्, (वृ. प. ९०८)

५२. बउसा संखेज्जगुणा
'बउसा संखेज्जगुण' त्ति तेषामुत्कर्षतः कोटीशतपृथक्त्वमानत्वात्, (वृ. प. ९०८,९०९)

५३. पडिसेवणाकुसीला संखेज्जगुणा,

सोरठा

५४. कह्यो इहां वृत्तिकार, प्रतिसेवनाकुशील जे ।
उत्कृष्टा अवधार, पृथक शत कोड़ज कह्या ।।

५५. बकुश पिण उत्कृष्ट, पृथक कोड़ शत आखिया ।
ते किम बकुश थी इष्ट, संखगुणा प्रतिसेवना ।।

५६. बकुश नें शत कोड़, पृथकपणुंज आखियो ।
तास मान इम जोड़, बे त्रिण आदिक कोड़ शत ।।

५७. प्रतिसेवना जोड़, पृथक कोड़ शत मान जे ।
जे चिहुं षट शत कोड़, संखगुणा इम वृत्ति में ।।

५४,५५. 'पडिसेवणाकुसीला संखेज्जगुण' त्ति, कथमेतत् तेषामप्युत्कर्षतः कोटीशतपृथक्त्वमानतयोक्तत्वात् ?, (वृ. प. ९०९)

५६,५७. किन्तु बकुशानां यत्कोटीशतपृथक्त्वं तद्द्वित्र्यादिकोटीशतमानं प्रतिसेविनां तु कोटीशतपृथक्त्वं चतुःषट्कोटीशतमानमिति न विरोधः, (वृ. प. ९०४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. *तेहथी कषायकुशील तहतीक, संख्यातगुणा सधीक।
इह नियंठे संत उत्कृष्ट, पृथक सहस्र कोड़ इष्ट।।

५८. कसायकुसीला संखेज्जगुणा। (श. २५।४५१)
कषायिणां तु सङ्ख्यातगुणत्वं व्यक्तमेवोत्कर्षतः कोटी-सहस्रपृथक्त्वमानतया तेषामुक्तत्वादिति।
(वृ. प. ९०९)

धर्मसी कृत प्रथम प्रमाणद्वार ३५ मों। तेहनां मूल भेद ४—वर्तमान समय आश्री जघन्य (१) अनें उत्कृष्टा (२)। पूर्वपडिवज्या आश्री जघन्य (३) अनें उत्कृष्टा (४)। अनें उत्तर भेद तो इम वर्त्तमान समय नां छ ही नियंठा नां जो जीव जघन्य ६ हुवै (१) अनें वर्त्तमान समय नां उत्कृष्ट जीव छही नियंठा नां ११ हजार ९ सौ ७० हुवै (२) अनें पूर्वपडिवज्या आश्री छ ही नियंठा नां जघन्य जीव २ हजार ४ सौ २ कोड़ि पामै (३) अनें पूर्वपडिवज्या आश्री उत्कृष्ट छ ही नियंठा नां जीव हुवै तो नव संहस कोड़ हुवै छै साधुजी। एह तो समुच्चय आश्री कह्या।

हिवै प्रत्येक नियंठा आश्री कहै छै—पुलाक नियंठा मांहै वर्त्तमान नवा प्रव्रज्या पडिवज्या आश्री एक समय मांहै द्रव्य अनें भावे कदाचित हुवै, कदाचित न हुवै। अनें जो हुवै तो जघन्य १,२,३ जीव अनें उत्कृष्टा हुवै तो दोय सय थी लेइ नें नव सय तांइ हुवै ते शत पृथक कहियै। अनें पूर्वपड़िवज्या आश्री किवारे हुवै, किवारे न हुवै। अनें जो हुवै तो जघन्य १,२,३, यावत उत्कृष्टा हुवै तो पृथक सहस्र हुवै—दोय सहस्र थी मांडी नव सहस्र तांइ जावणा।१।

हिवै बकुश नियंठो वर्तमान एक समय नवी द्रव्य अनें भाव प्रव्रज्या पड़िवज्या आश्री तो कदाचि हुवै, कदाचि न हुवै। अनें जो हुवै तो जघन्य १,२,३ जाव उत्कृष्टा हुवै तो दोय सय थी मांडी नें नव सय तांइ हुवै। ते शत पृथक कहियै। अनें पूर्वपड़िवज्या आश्री ते द्वितीयादि समय वाला लेइ यावत देश ऊणां पूर्व कोड़ि नां हुवै तो जघन्य २०० कोड़ि हुवै अनें उत्कृष्टा हुवै तो साढा च्यार सय कोड़ि हुवै। ओछा नें पिण पृथक सय कोड़ कहियै अनें इहां नव सय कोड़ नहीं कहियै।२।

हिवै पडिसेवणाकुशील वर्त्तमान एक समय नां द्रव्ये, भावे अनें प्रव्रज्या नवी पड़िवज्या आश्री कदाचित हुवै, कदाचित न हुवै। अनें जो हुवै तो जघन्य १,२,३ यावत उत्कृष्ट हुवै तो दोय सय थी मांडी नें नव सय तांइ हुवै छै। ते पृथक सय कहियै। अनें पूर्वपड़िवज्या आश्री द्वितीयादि समय वाला लेइ नें यावत देश ऊणां पूर्व कोड़ि नां आउ नां जघन्य २०० कोड़ि हुवै अनें उत्कृष्टा नव सय कोडि हुवै ते पृथक सय कोड़ि कहियै।३।

हिवै कषायकुशील वर्त्तमान एक समय में द्रव्ये, भावे रूप नवी प्रव्रज्या पड़िवजतां थकां तो कदाचित हुवै, कदाचित न हुवै विरह पड़िवा आश्री। जो हुवै जघन्य १,२,३ यावत उत्कृष्टा नव सहस्र हुवै ते पृथक सहस्र कहियै। अनें पूर्वपड़िवज्या आश्री जघन्य २००० कोड़ि एह चारित्र नां धणी अनें उत्कृष्टा हुवै तो इम छै—जे बीजा ५ संजया नां उत्कृष्टा हुवै तो एहनां उत्कृष्टा ७ हजार ६ सौ ४० कोड ९९ लाख ९० हजार अनें १ सौ इम पिण हुवै। अनें बीजा पांच संजया नां जघन्य हुवै तिवारै एहनां उत्कृष्टा ८ हजार ५ सौ ९८ कोड़ हुवै।४।

हिवै निर्ग्रंथ नियंठो वर्त्तमान एक समय नां द्रव्य अनें भाव प्रव्रज्या नवी पडिवज्या आश्री कदाचि हुवै, कदाचि न हुवै। अनें जो हुवै तो जघन्य १,२,३ यावत उत्कृष्ट १६२। इम ५४ जीव उपशम श्रेणि ११ मां गुणठाणा वाला अनें १०८ क्षपक श्रेणि १२ मां गुणठाणा वाला—एवं १६२ जीव हुवै १। अनें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वे प्रव्रज्या पड़िवज्या आश्रयी कदाचि हुवै, कदाचि न हुवै। जो हुवै तो जघन्य १,२,३ यावत उत्कृष्टा ९०० हुवै ते पृथक सय कहियै।५।

स्नातक नियंठो वर्त्तमान एक समय नवी पड़िवज्या आश्री कदाचि हुवै, कदाचि न हुवै। अनैं जो हुवै तो १,२,३ यावत उत्कृष्टा १०८ हुवै। अनैं पूर्वे पड़िवज्या आश्री तो जघन्य दोय कोड़ केवली हुवै ते माटै पृथक कोड़ि कहियै। अनैं उत्कृष्टा तो नव कोड़ि केवली हुवै ते माटै पृथक कोड़ कहियै ते भवस्थ केवली जाणवा।६।

निर्ग्रन्थों का अल्पबहुत्व

तेहनां मूल भेद २ अल्प १ बहु २। तेहनां उत्तर भेद ६। अनैं सर्व साधां नीं वर्त्तमान उत्कृष्टी संख्या तो ९ हजार कोड़ि हुवै छै, एह समुच्चय कह्या। हिवै अल्पाबहुत्व कहै छै — सर्व स्तोक नियंठा नां धणी ते इम — एह नियंठा नां जीव कदाचित उत्कृष्ट हुवै तो ९०० ते माटै थोड़ा ते इम — उपशम श्रेणि जीव २९९ हुवै अनैं क्षपक श्रेणि जीव ५९८ ते माटै पृथक सय तथा ८९७ जीव। तेह थकी पुलाक नियंठा नां धणी संख्यातगुणा ते इम उत्कृष्टा नव सहस्र हुवै ते माटै। तेह थकी स्नातक नां धणी संख्यातगुणा अधिक ते इम जो ए जीव हुवै तो उत्कृष्टा ९ कोड़ि हुवै ते माटै। तेह थकी बकुश नां धणी संख्यातगुणा अधिक ते इम उत्कृष्टा ४॥ साढा च्यार सय कोड़ि हुवै ते माटै। तेह थकी पड़िसेवणा नां धणी संख्यातगुणा ते इम जे उत्कृष्टा हुवै तो ९०० कोड़ि हुवै। तेह थकी कषायकुशील संख्यातगुणा ते इम उत्कृष्टा हुवै तो ७ हजार ६ सय ४० कोड़ि ९९ लाख ९० हजार अनैं एक सौ तथा ८ हजार ५ सय ९८ कोड़ि हुवै ते माटै। सर्व साधां नों धड़ो नव हजार कोड़ि जाणवो।

५९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! स्वाम, शत पणवीसम ताम।
छठा उद्देशा नों अर्थ अनूप, आख्यो सरस स्वरूप॥
६०. च्यारसौ दोय पचासमीं ढाल, सुदि भाद्रव छठ सुविशाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय,
'जय-जश' हरष सवाय॥

५९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श. २५।४५२)

पंचविंशतितमशते षष्ठोद्देशकार्थः॥२५।६॥

ढाल : ४५३

दूहा

१. छठे उदेशे आखियो, संतज तणों स्वरूप।
अथ सप्तम उद्देशके, तेहिज कहूं अनूप॥
२. पन्नवण प्रमुखज द्वार षट, तीस इहां पिण होय।
प्रथम द्वार प्रज्ञापना, कहियै छै अवलोय॥

१. षष्ठोद्देशके संयतानां स्वरूपमुक्तं, सप्तमेऽपि तदेवोच्यते — (वृ. प. ९०९)
२. इहापि प्रज्ञापनादीनि द्वाराणि वाच्यानि, तत्र प्रज्ञापनाद्वारमधिकृत्योक्तम्— (वृ. प. ९०९)

संयत के प्रकार

३. हे प्रभु ! कितरा संजया ? संजम भाख्या सार।
श्री जिन कहै परूपिया, संजम पंच उदार॥

३. कति णं भंते ! संजया पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंच संजया पण्णत्ता, तं जहा—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. धुर सामायिक आखियो, सामायिक जे नाम।
चारित्र विशेष नुं अछै, दीक्षा लेतां पाम।।
५. सामायिक चरणे करी, प्रधान संजत जेह।
ते सामायिक संजती, एम अन्य पिण लेह।।
६. संजत छेदोपस्थापनिक, फुन परिहारविशुद्ध।
वली सूक्ष्मसंपराय है, यथाख्यात संसुद्ध।।

४,५. सामाइयसंजए,
'सामाइयसंजए' त्ति सामायिकं नाम चारित्रविशेष-स्तत्प्रधानस्तेन वा संयतः सामायिकसंयतः, एव-मन्येऽपि, (वृ. प. ९०९)

६. छेदोवट्ठावणियसंजए, परिहारविसुद्धियसंजए, सुहुम-संपरायसंजए, अहक्खायसंजए। (श. २५।४५३)

*सुगुणा! भजलै रे मुनिराज। (ध्रुपदं)

७. सामायिक संजत हे भगवंत! कितलै भेदै ख्यात?
श्री जिन भाखै दोय प्रकारे, कहियै तसुं अवदात।
८. इत्तर थोड़ा काल तणों ए, प्रथम चरम जिन वार।
जावकथिक ते जावजीव रो, विदेह मझिम जिन सार।।

७. सामाइयसंजए णं भंते! कतिविहे पण्णत्ते?
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
८. इत्तरिए य आवकहिए य। (श. २५।४५४)

वा०—इत्वर नैं भावि अन्य ववहारपणैं करी छेदोपस्थापनीय ग्रहण रूपे करी अल्पकालिक सामायिक नैं अस्तिपणां थकी इत्वरिक कहियै। एतलै सामायिक जघन्य सात अहोरात्रि, मज्झिम ४ मास, उत्कृष्ट षट मास तथा ६।। मास ए अल्प काल रहै। पछै छेदोपस्थापनीय रूप अन्य ववहार प्रतै अंगीकार करै ते माटै। जे प्रथम सामायिकपणैं अल्पकाल रह्युं ते इत्वरिक। ए सामायिक नों प्रथम भेद कहियै।

वा.—'इत्तरिए य' त्ति इत्वरस्य—भाविव्यप-देशान्तरत्वेनाल्पकालिकस्य सामायिकस्यास्तित्वादि-त्वरिकः, स चारोपयिष्यमाणमहाव्रतः प्रथमपश्चिम-तीर्थंकरसाधुः,

अनैं यावतकथिक ते बावीस तीर्थंकर नैं वारै तथा महाविदेह क्षेत्र में, सामायिक चारित्र दीक्षा दिन थी मांडी जावजीव लगै रहै। ए सामायिक नों द्वितीय भेद।

'आवकहिए य' त्ति यावत्कथितस्य—भाविव्य-पदेशान्तराभावाद् यावज्जीविकस्य सामायिकस्या-स्तित्वाद्यावत्कथिकः, स च मध्यमजिनमहाविदेह-जिनसम्बन्धी साधुः, (वृ. प. ९०९)

९. छेदोपस्थापनी संजम नीं पूछा, जिन कहै दोय प्रकार।
अतिचार करि सहित भेद धुर, दूजो निरतिचार।।

९. छेदोवट्ठावणियसंजए णं—पुच्छा।
गोयमा! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—सातियारे य निरतियारे य। (श. २५।४५५)

सोरठा

१०. जे अतिचार सहीत, तेहनैं छेदोपस्थापनीय।
आरोपियै सुवदीत, सातिचार छेदोप. ते।।

वा०—सामायिक चारित्रवंत साधु नैं अतिचार लागै छते जे छेदोपस्था-पनीय आरोपियै ते सातिचार छेदोपस्थापनीय कहियै। इहां अतिचार शब्दे मोटो दोष कहियै ते दोष लागां सर्व सामायिक चारित्र जाय तेहनैं छेदोपस्थानीय चारित्र आरोपियै ते सातिचार छेदोपस्थापनीय कहियै। ते चारित्र नां जोग थकी साधु पिण छेदोपस्थापनीयक हुवै।

वा.—'साइयारे य' त्ति सातिचारस्य यदारोप्यते तत्सातिचारमेव छेदोपस्थापनीयं, तद्योगात्साधुरपि सातिचार एव, (वृ. प. ९०९)

११. निरतिचार कहेह, नव शिष्य जिन धुर चरम नों।
दोष रहित पिण जेह, छेदोपस्थापनीय दै तसु।।
१२. तथा पार्श्व तीर्थात, वीर तीर्थ में संक्रमै।
छेदोपस्थापनीय दात, ते पिण निरतिचार है।।

११. एवं निरतिचारच्छेदोपस्थापनीययोगान्निरतिचारः स च शैक्षकस्य (वृ. प. ९०९)
१२. पार्श्वनाथतीर्थान्महावीरतीर्थसङ्क्रान्तौ वा (वृ. प. ९०९)

वा०—नवदीक्षित नैं गुरु प्रथम सर्वसावद्ययोग विरतिरूप सामायिक चारित्रईज ग्रहण करावै। तिवार पछै केतलै काल गयै छतै पंच महाव्रत आरोपण

*लय: सीता आवै रे धर राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप छेदोपस्थापनीय ग्रहण करावै । ते अतिचार अभाव छतै पिण फेर छेदोपस्थापनीय नुं देवूं जे ते निरतिचार ईज छेदोपस्थापनीय कहियै । अनै प्रथम जिन नां तथा चरम जिन नां साधु सामायिक चारित्र नैं विषे तथा छेदोपस्थानीय चारित्र नैं विषे नवी दीक्षा आवै इसो दोष सेव्यां तेहनैं छेदोपस्थापनीयज देवै ते सातिचार छेदोपस्थानीय कहियै । ववहार सूत्र उदेशे १ बोल ३२ असंजम सेवी आवै तेह शिष्य नैं उपस्थान करै, पंच महाव्रत आरोपण करै, ते छेदोपस्थापनीय देवुं इम कह्यु, पिण तिहां सामायिक देवुं नथी कह्यु । ते माटै ए पिण सातिचार छेदोपस्थानीय जणाय छै ।

१३. ए दोनूंइ वेद, प्रथम चरम जिन नां मुनि ।
तेह तणैं संवेद, पिण अन्य मुनि नें ह्वै नथी ।।

१४. *परिहारविशुद्धि संजत पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
निव्विसमाणए निव्विट्ठकाइए, ए बिहुं भेद उदार ।।

गीतक छंद

१५. परिहार तप वर्त्तमान करतो, निव्विसमाण कहीजियै ।
तप करी निकस्यो थयुं पूर्णज, निव्विट्ठकायिक लीजियै ।।

१६. *सूक्ष्मसंपराय नीं पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
संकिलिस्समाण फुन विसुज्झमाणए, उभय भेद अवधार ।।

गीतक छंद

१७. गुणठाण ग्यारम थकी पड़तां, दशम गुणठाणे वही ।
संकिलिस्समाण कहीजियै ते, श्रेणि उपशम पड़त ही ।।

१८. उपशमज अथवा क्षपक श्रेणि, चढत दशम गुणे लही ।
वर विशुद्धमान कहीजियै ते, द्वितीय भेदज ए सही ।।

१९. *यथाख्यात संजत नीं पूछा, जिन कहै दोय प्रकार ।
भेद प्रथम छद्मस्थ द्वितीय फुन, केवलज्ञानी सार ।।

सोरठा

२०. ग्यारम बारम ठाण, चारित्र जे छद्मस्थ नों ।
तेरम चवदम जाण, केवलज्ञानीं नुं कह्यु ।।

संयतों का स्वरूप

२१. *सामायिक चारित्र पड़िवजियै, च्यार महाव्रत जाम ।
श्रमण धर्म त्रिणविधे पालतो, वर्त्तै ए अभिराम ।।

सोरठा

२२. ए गाथा करि ख्यात, संजत यावतकथिक वर ।
इत्वर मुनि अवदात, ते पोतैंज विचारवूं ।।

२३. *प्रथम पर्याय प्रतै छेदी नैं, पंच याम धर्म जेह ।
तेह विषे स्थापै आतम नैं, छेदोपस्थापनीय तेह ।।

*लय : सीता आवै रे धर राग

१३. छेदोपस्थापनीयसाधुश्च प्रथमपश्चिमतीर्थयोरेव भवतीति, (वृ. प. ९०९)

१४. परिहारविसुद्धियसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—निव्विसमाणए य, निव्विट्ठकाइए य । (श. २५।४५६)

१५. 'णिव्विसमाणए य' त्ति परिहारिकतपस्तपस्यन् 'निव्विट्ठकाइए य' त्ति निर्विशमानकानुचरक इत्यर्थः, (वृ. प. ९०९)

१६. सुहुमसंपरायसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—संकिलिस्समाणए य, विसुज्झमाणए य । (श. २५।४५७)

१७. 'संकिलिस्समाणए' त्ति उपशमश्रेणीतः प्रच्यवमानः (वृ. प. ९०९)

१८. 'विसुद्धमाणए य' त्ति उपशमश्रेणीं क्षपकश्रेणीं वा समारोहन्, (वृ. प. ९०९)

१९. अहक्खायसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—छउमत्थे य, केवली य । (श. २५।४५८)

२१. सामाइयम्मि उ कए, चाउज्जामं अणुत्तरं धम्मं ।
तिविहेणं फासयंतो, सामाइयसंजओ स खलु ।।१।।

२३. छेत्तूण उ परियागं, पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
धम्मम्मि पंचजामे, छेदोवट्ठावणो स खलु ।।२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा० — एतलै पूर्व पर्याय नैं छेदी नैं उपस्थापवो व्रत नैं विषे छेदोपस्थापनीय योग थकी साधु पिण छेदोपस्थापनीय। इण गाथाये सातिचार तथा निरतिचार बीजो चारित्र कह्यु ं२।

गीतक छंद

२४. इह द्वितीय गाथा करि चरण वर, सातिचार तथा वली।
वर निरतिचार चरित्र नीं विध,
एहिज गाथा करि भली॥

२५. *तप परिहार विषे सुवर्त्ततो विशुद्ध हीज पंच व्रत।
धर्म अनुत्तर त्रिविध फर्शतो, परिहारविशुद्ध संजत॥

गीतक छंद

२६. पंच याम कहिवै एह चारित्र, प्रथम चरम जिनेंद नें।
तसु तीर्थ नैंज विषे हुवै पिण, अन्य मुनि नें नहि वनें॥

२७. *सूक्ष्म लोभ प्रतै वेदंतो, उभय श्रेणि ए थाय।
यथाख्यात थी किंचित ऊणों, ए सूक्ष्मसंपराय॥

२८. मोह कर्म उपशांत विषे, छद्मस्थ मुनि वर्त्तेह।
वा क्षीण विषे छद्मस्थ केवली, यथाख्यात छै जेह॥

संयत में वेद

२९. सामायिक संजत हे भगवंत ! सवेदके स्यूं होय?
तथा अवेदक विषे हुवै ए? गोयम प्रश्न सुजोय॥

३०. श्री जिन भाखै सवेदके ह्वै, अवेदके पिण हुंत।
नवमै वेद क्षीण वा उपशम, सामायिक नवमंत॥

३१. जो ए हुवै सवेदक में इम, कषायकुशील जेम।
तिमहिज समस्तपणैं करि कहिवुं, छेदोपस्थापनीय एम॥

सोरठा

३२. धुर ए चारित्र दोय, सवेदके त्रिहुं वेदके।
अवेदके अवलोय, उपशम-वेदे क्षीण वा॥

३३. *परिहारविशुद्ध पुलाक तणी परि, अवेदके ए नांहि।
सवेदके ह्वै पुरुष वेद वा, पुरुष नपुंसक मांहि॥

३४. संपराय-सूक्ष्म संजत फुन, यथाख्यात अवलोय।
निर्ग्रंथ जेम अवेदी कहियै, उपशम क्षीणे होय॥

*लय : सीता आवै रे धर रे राग

वा. — 'छेदोवट्ठावणे' त्ति छेदेन — पूर्वपर्यायच्छेदेन उपस्थापनं व्रतेषु यत्र तच्छेदोपस्थानं तद्योगाच्छेदोपस्थापनः, अनया च गाथया सातिचारः इतरश्च द्वितीयसंयत उक्तः। (वृ. प. ९१०)

२५. परिहरइ जो विसुद्धं, तु पंचयामं अणुत्तरं धम्मं।
तिविहेणं फासयंतो, परिहारियसंजओ स खलु॥३॥

२६. पञ्चयाममित्यनेन च प्रथमचरमतीर्थयोरेव तत्सत्तामाह। (वृ. प. ९१०)

२७. लोभाणू वेदेंतो, जो खलु उवसामओ व खवओ वा।
सो सुहुमसंपराओ अहखाया ऊणओ किंचि॥४॥

२८. उवसंते खीणम्मि व,
जो खलु कम्मम्मि मोहणिज्जम्मि।
छउमत्थो व जिणो वा,
अहखाओ संजओ स खलु॥५॥
(श० २५।४५८)

२९. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सवेदए होज्जा? अवेदए होज्जा?

३०. गोयमा ! सवेदए वा होज्जा, अवेदए वा होज्जा। सामायिकसंयतोऽवेदकोऽपि भवेत्, नवमगुणस्थानके हि वेदस्योपशमः क्षयो वा भवति, नवमगुणस्थानकं च यावत्सामायिकसंयतोऽपि व्यपदिश्यते,
(वृ. प. ९११)

३१. जइ सवेदए — एवं जहा कसायकुसीले तहेव निरवसेसं।
एवं छेदोवट्ठावणियसंजए वि।

३२. 'जहा कसायकुसीले' त्ति सामायिकसंयतः सवेदस्त्रिवेदोऽपि स्यात्, अवेदस्तु क्षीणोपशान्तवेद इत्यर्थः।
(वृ. प. ९११)

३३. परिहारविसुद्धियसंजओ जहा पुलाओ।
'परिहारविसुद्धियसंजए जहा पुलागो' त्ति पुरुषवेदो वा पुरुषनपुंसकवेदो वा स्यादित्यर्थः,
(वृ. प. ९११)

३४. सुहुमसंपरायसंजओ अहक्खायसंजओ य जहा नियंठो। (श. २५।४५९)
'जहा नियंठो' त्ति क्षीणोपशान्तवेदत्वेनावेदक इत्यर्थः। (वृ. प. ९११)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सयत में राग

३५. सामायिक प्रभु ! हुवै सरागे, कै वीतराग रै मांहि ?
जिन कहै हुवै सराग विषे ए, वीतराग में नांहि ।।

३६. जाव सूक्ष्मसंपराय लगै इम, यथाख्यात मुनिराय ।
निर्ग्रंथ भणी कह्यो तिम कहिवुं, उपशम क्षीण कषाय ।।

संयत में कल्प

३७. सामायिक संजत हे प्रभुजी ! स्यूं स्थितकल्प विषेह ।
कै ते अस्थितकल्प विषे ह्वै ? भाखो जी गुणगेह ।।

३८. जिन भाखै स्थितकल्प विषे ह्वै, वा अस्थितकल्पेह ।
प्रथम चरम जिन मुनि स्थितकल्पे,
अस्थित अन्य मुनि लेह ।।

३९. छेदोपस्थापनीय संजत पूछा, आखै श्री जिनराय ।
स्थितकल्प नैं विषे हुवै ए, अस्थितकल्पे नांय ।।

गीतकछंद

४०. बावीस जिन मुनि फुन विदेहे, कल्प अस्थित तसु सही ।
छेदोपस्थापनीय चरित्त बीजो, तास तीर्थ विषे नहीं ।।

४१. *इम परिहारविशुद्ध संजत पिण, शेष चरित्त जे दोय ।
सामायिक संजत जिम कहिवा, बिहुं कल्पे ए होय ।।

४२. सामायिक संजत हे प्रभुजी ! स्यूं जिनकल्प विषेह ?
कै ते स्थविरकल्प में ह्वै छै, कै कल्पातीतेह ?

४३. जिन भाखै जिनकल्प विषे ह्वै, कषायकुशील जेम ।
तिमहिज सर्व प्रकारे कहिवुं, त्रिहुं कल्पे ह्वै तेम ।।

४४. छेदोपस्थापनीय फुन परिहारज, बकुश जेम कहिवाय ।
जिनकल्पी फुन स्थविरकल्प ह्वै, कल्पातीते नांय ।।

४५. शेष दोय चारित्र ते कहिवा, जिम आख्यो निर्ग्रंथ ।
धुर बे कल्प विषे ए नहीं ह्वै, कल्पातीत ते हुंत ।।

संयत में निर्ग्रंथ

वा० —पुलाकादि परिणाम नैं चारित्रपणां थकी चारित्रद्वार कहियै ।

४६. सामायिक संजत प्रभुजी ! स्यूं हुवै पुलाक विषेह ?
कै ए बकुश विषे ह्वै यावत स्नातक विषे कहेह ।।

४७. जिन कहै ह्वै पुलाक विषे ए, बकुश विषे वा थाय ।
जाव कषायकुशील विषे ह्वै, निर्ग्रंथ स्नातक नांय ।।

४८. छेदोपस्थापनीय इमहिज कहिवुं, बली पूछै परिहार ।
श्री जिन कहै पुलाक विषे नहीं,
वलि नहिं बकुश मझार ।।

---

*लय : सीता आवै रे धर राग

३५. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सरागे होज्जा ? वीयरागे होज्जा ?
गोयमा ! सरागे होज्जा, नो वीयरागे होज्जा ।

३६. एवं जाव सुहुमसंपरायसंजए । अहक्खायसंजए जहा नियंठे । (श. २५।४६०)

३७. सामाइयसंजए णं भंते ! किं ठियकप्पे होज्जा ? अट्ठियकप्पे होज्जा ?

३८. गोयमा ! ठियकप्पे वा होज्जा, अट्ठियकप्पे वा होज्जा । (श. २५।४६१)

३९. छेदोवट्ठावणियसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! ठियकप्पे होज्जा, नो अट्ठियकप्पे होज्जा ।

४०. 'णो अट्ठियकप्पे' त्ति अस्थितकल्पो हि मध्यमजिन-महाविदेहजिनतीर्थेषु भवति, तत्र च छेदोपस्थापनीयं नास्तीति । (वृ. प. ९११)

४१. एवं परिहारविसुद्धियसंजए वि । सेसा जहा सामाइय-संजए । (श. २५।४६२)

४२. सामाइयसंजए णं भंते ! किं जिणकप्पे होज्जा ? थेरकप्पे होज्जा ? कप्पातीते होज्जा ?

४३. गोयमा ! जिणकप्पे वा होज्जा, जहा कसायकुसीले तहेव निरवसेसं ।

४४. छेदोवट्ठावणिओ परिहारविसुद्धिओ य जहा बउसो ।

४५. सेसा जहा नियंठे । (श. २५।४६३)

वा.—चारित्रद्वारमाश्रित्येदमुक्तम्''''पुलाकादि-परिणामस्य चारित्रत्वात् । (वृ. प. ९११)

४६. सामाइयसंजए णं भंते ! किं पुलाए होज्जा ? बउसे जाव सिणाए होज्जा ?

४७. गोयमा ! पुलाए वा होज्जा, बउसे जाव कसाय-कुसीले वा होज्जा, नो नियंठे होज्जा, नो सिणाए होज्जा ।

४८. एवं छेदोवट्ठावणिए वि । (श. २५।४६४)
परिहारविसुद्धियसंजए णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो पुलाए, नो बउसे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. पडिसेवणा विषे पिण नहीं ह्वै, कषायकुशोले होय।
हुवै नहीं निग्रंथ विषे फुन, स्नातक विषे न कोय।।
५०. एवं सूक्ष्मसंपराय पिण, कषायकुशीले होय।
शेष पंच जे कह्या नियंठा, तेह विषे नहिं कोय।।
५१. यथाख्यात पूछ्यां जिन भाखै, पुलाक में नहिं कोय।
जाव कषायकुशील विषे नहीं, निग्रंथ स्नातक होय।।

४९. नो पडिसेवणाकुसीले होज्जा, कसायकुसीले होज्जा, नो नियंठे होज्जा, नो सिणाए होज्जा।

५०. एवं सुहुमसंपराए वि। (श. २५।४६५)

५१. अहक्खायसंजए—पुच्छा।
गोयमा! नो पुलाए होज्जा जाव नो कसायकुसीले होज्जा, नियंठे वा होज्जा, सिणाए वा होज्जा।
(श. २५।४६६)

संयत में प्रतिसेवना

५२. सामायिक संजत स्यूं प्रभुजी! प्रतिसेवक में होय?
अप्रतिसेवक विषे हुवै ए? गोयम प्रश्न सुजोय।।
५३. जिन भाखै प्रतिसेव विषे ह्वै, फुन ह्वै अप्रतिसेव।
सेवै दोष तथा नहिं सेवै, इम कहियै बिहुं भेव।।
५४. जो प्रतिसेवक विषे हुवै तो, पवर मूलगुण खेम।
तेह विषे ए दोष लगावै, शेष पुलाकज जेम।।

५२. सामाइयसंजए णं भंते! किं पडिसेवए होज्जा? अपडिसेवए होज्जा?

५३. गोयमा! पडिसेवए वा होज्जा, अपडिसेवए वा होज्जा।

५४. जइ पडिसेवए होज्जा—किं मूलगुणपडिसेवए होज्जा, सेसं जहा पुलागस्स।

सोरठा

५५. प्रतिसेवक जो थाय, तो पवर मूलगुण नें विषे।
फुन उत्तरगुण मांय, सेवै दोष बिहुं विषे।।
५६. जेह मूलगुण मांय, दोषण प्रतैज सेवतो।
आश्रव पंच कहाय, तिणमें कोइक सेवतो।।
५७. वलि उत्तरगुण मांय, दोषण प्रतै लगावतो।
दश पच्चक्खाण सुहाय, त्यांमें कोइक भांगतो।।

५८. *जिम सामायिक आख्यो ते विध, छेदोपस्थापनीय जाण।
प्रतिसेवक फुन अप्रतिसेवक, पूर्व रीत पिछाण।।
५९. परिहारविशुद्धिक पूछ्यां जिन कहै, प्रतिसेवके न थात।
अप्रतिसेवक विषे हुवै ए, इम यावत यथाख्यात।।

५८. जहा सामाइयसंजए एवं छेदोवट्ठावणिए वि।
(श. २५।४६७)

५९. परिहारविसुद्धियसंजए—पुच्छा।
गोयमा! नो पडिसेवए होज्जा, अपडिसेवए होज्जा।
एवं जाव अहक्खायसंजए। (श. २५।४६८)

वा०—इहां परिहारविशुद्ध नैं अपडिसेवक कह्यो, ते आदरतां थकां संभवै। जे छेदोपस्थापनीय चारित्र नों धणी ते परिहारविशुद्ध प्रतै अंगीकार करै, ते नित्य पडिकमणो करै। जो दोष न लागै तो नित्य पडिकमणां रो कांइ काम? जे यथाख्यात चारित्र नां धणी पडिकमणो न करै, तेहनैं दोष न लागै ते माटै। तिवारै कोइ कहै—जे परिहारविशुद्ध में तीन भली लेश्या आगल कहिसै ते माटै ए अप्रतिसेवी छै। तेहनुं उत्तर—ए तीन भली लेश्या परिहार-विशुद्ध आदरतां हुवै। ए आदरतां एहवुं किहां कह्यं छै? तेहनुं उत्तर—पन्नवणा प्रथम पद नैं विषे अर्थ में कह्यु छै ते लिखियै छै—से किं तं परिहार-विसुद्धियचरित्तारिया? परिहारविसुद्धियचरित्तारिया य दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—निव्विसमाणपरिहारविसुद्धियचरित्तारिया य निव्विट्ठकाइयपरिहार-विसुद्धियचरित्तारिया य। (पण्ण० १।१२७)

परिहारविसुद्धि चारित्र नों स्वरूप यथादृष्टान्ते करि कहै छै—नव नों गच्छ हुवै। तिहां एक वाचनाचार्य, च्यार निर्विशमान उग्र तपकारी अनैं च्यार तेहनां सेवाकारी—एवं ९।

इह नवको गणः—चत्वारो निर्विशमानकाश्च-त्वारश्चानुचारिणः एकः कल्पस्थितो वाचनाचार्यः। यद्यपि च सर्वेऽपि श्रुतातिशयसम्पन्नाः तथापि कल्प-त्वात् तेषामेकः कश्चित् कल्पस्थितोऽवस्थाप्यते।

*लय : सीता आवै रे धर राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिहां च्यार निर्विशमान ते उन्हाले जघन्य चउथ, मध्यम छठ, उत्कृष्टो अठम करै। सीयाले जघन्य छठ, मध्यम अठम, उत्कृष्टो दशम करै। वरसाले जघन्य अठम, मध्यम दशम, उत्कृष्टो दुवालसम करै। पारणे आंबिल करै। इम छ मास लगै तपस्या करै। छ मास पछै च्यार सेवाकारी हुवै। ते तपस्या करै अनैं तपस्या वाला च्यार सेवाकारी हुवै। अनैं बीजा छ मास पछै वाचनाचार्य हुवै ते तपस्या करै। सात सेवाकारी और एक वाचनाचार्य।

एवं अठारे मासे परिहारविशुद्धि चारित्र पूर्ण हुवै, तिवारै ते नव साधु जिनकल्प आदरै। तथा गच्छ मां आवै। जो गच्छ मां आवै तो तीर्थंकर तथा तीर्थंकर सदृश पासै आवै। बीजा पासै न आवै।

हिवै एह परिहारविशुद्धि चारित्र वीसद्वारे कहै छै—

क्षेत्रद्वारे जन्म अनैं सद्भाव आश्री ए परिहारविशुद्ध चारित्र ते पांच भरत, पांच एरवत मांहिज हुवै पिण महाविदेहे न हुवै। अनैं एहनैं संहरण पिण न हुवै। जिम जिनकल्पी संहरणपणैं सर्वत्र पामियै, तिम ए न हुवै १।

कालद्वारे—जन्म आश्रयी अवसर्पिणी नैं तीजे, चोथे अरके अनैं छता भाव आश्रयी तीजे, चोथे, पांचमें अरके हुवै। उत्सर्पिणी नैं जन्म आश्रयी बीजे, तीजे, चोथे अरके। छता भाव आश्रयी तीजे, चोथे अरके हुवै २।

संजमस्थानद्वारे—सामायिक, छेदोपस्थापनीय चारित्र नां जे जघन्य संजम-स्थान तेहथी असंख्यात लोकाकाश प्रदेश प्रमाण संजम-स्थानक अतिक्रमी नैं ते ऊपर जे संजम-स्थान ते परिहारविशुद्धि चारित्र नां ते पिण असंख्यात लोका-काश प्रदेश प्रमाण छै। ते ऊपर वली असंख्याता सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात चारित्र नां संजमस्थान छै। तिहां पोता नैं संजमस्थानेज वर्त्तता परिहारविशुद्धि चारित्र आदरै, आदरयां पछै पोता नां तथा बीजाइं संयमस्थान हुवै जे भणी ए चारित्र पूर्ण थयै बीजाइं चारित्र हुवै ३।

निर्विशमानकानां चायं परिहारः—

० परिहारियाण उ तवो जहन्नमज्झो तहेव उक्कोसो।
सीउण्हवासकाले भणिओ धीरेहि पत्तेयं ॥१॥
० तत्थ जहन्नो गिम्हे चउत्थ छट्ठं तु होइ मज्झिमओ।
अट्ठममिह उक्कोसो एत्तो सिसिरे पवक्खामि ॥२॥
० सिसिरे उ जहन्नाई छट्ठाई दसम चरिमगो होइ।
वासासु अट्ठमाई बारसपज्जंतगो नेओ ॥३॥
० पारणगे आयामं पंचसु अगहो
दोसुऽभिग्गहो भिक्खे।
कप्पट्ठिया पइदिणं करेंति एमेव आयामं ॥४॥
० एवं छम्मासतवं चरिउं परिहारगा अणुचरंति।
अणुचरगे परिहारियपयट्ठिए जाव छम्मासा ॥५॥
० कप्पट्ठिए वि एव छम्मासतवं करेइ सेसा उ।
अणुपरिहारिगभावं वयंति कप्पट्ठियत्तं च ॥६॥
० एवेसो अट्ठारसमासपमाणो उ वण्णिओ कप्पो।
संखेवओ विसेसो विसेससुत्ताउ नायव्वो ॥७॥
० कप्पसम्मत्तीए तयं जिणकप्पं वा उर्विति गच्छं वा।
पडिवज्जमाणगा पुण जिणस्सगासे पवज्जंति ॥८॥
० तित्थयरसमीवासेवगस्स पासे व नो उ अन्नस्स।
एएसिं जं चरणं परिहारविसुद्धियं तं तु ॥९॥

अथ एते परिहारविशुद्धिकाः कस्मिन् क्षेत्रे काले वा भवंति ? उच्यते, इह क्षेत्रादिनिरूपणार्थं विंशति-द्वाराणि, तद् यथा—

(क्षेत्रद्वारे)—तत्र जन्मतः सद्भावतश्च पंचसु भरतेषु पंचस्वैरावतेषु, न तु महाविदेहेषु, न चैतेषां संहरणमस्ति येन जिनकल्पिक इव संहरणतः सर्वासु कर्मभूमिषु अकर्मभूमिषु वा प्राप्येरन्।

कालद्वारे—अवसर्पिण्यां तृतीये चतुर्थे वाऽरके जन्म, सद्भावः पंचमेऽपि, उत्सर्पिण्यां द्वितीये तृतीये चतुर्थे वा जन्म, सद्भावः पुनः तृतीये चतुर्थे वा।

चारित्रद्वारे—संयमस्थानद्वारेण मार्गणा, तत्र सामायिकस्य छेदोपस्थापनस्य च चारित्रस्य यानि जघन्यानि संयमस्थानानि तानि परस्परं तुल्यानि समान-परिणामत्वात्, ततोऽसंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि संयमस्थानान्यतिक्रम्योर्ध्वं यानि संयमस्थानानि तानि परिहारविशुद्धिकयोग्यानि, तान्यपि च केवलिप्रज्ञया परिभाव्यमानानि असंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणानि, तानि प्रथमद्वितीयचारित्राविरोधीनि, तेष्वपि संभवात्, तत ऊर्ध्वं यानि संख्यातीतानि संयमस्था-नानि तानि सूक्ष्मसंपराययथाख्यातचारित्रयोग्यानि,

तत्र परिहारविशुद्धिककल्पप्रतिपत्तिः स्वकीयेष्वेव संयमस्थानेषु वर्तमानस्य भवति न शेषेषु, यदा त्वतीतनयमधिकृत्य पूर्वप्रतिपन्नो विवक्ष्यते तदा शेषेष्वपि संयमस्थानेषु भवति, परिहारविशुद्धिकल्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थद्वारे—निश्चये तीर्थ प्रवर्त्तेज हुवै तीर्थ प्रवर्त्यां विना तथा तीर्थ विच्छेदे न हुवै । कदाचित हुवै तो जातिस्मरणादिके हुवै ४ ।

पर्यायद्वारे—पर्याय बे भेदे गृहस्थपर्याय अनैं यतिपर्याय—तिहां ग्रहस्थपणां थी लेइ वय जघन्य गुणत्रीस वर्ष, यतिपर्याय जघन्य बीस वर्ष, उत्कृष्टपणैं गुणतीस वर्ष ऊणी पूर्व कोडि वर्ष हुवै ते किम ? इहां ए अर्थ—पूर्व कोटि आउखावते गर्भ समय थी आरंभी नव वर्षे दीक्षा लीधी, तिवारैं पछै बीस वर्ष प्रवर्ज्या पर्याये जघन्य नवमा पूर्व नीं ती जी आचार वत्थु, उत्कृष्ट देश ऊणां दश पूर्व भण्यो । तिवारैं पछै परिहारविशुद्धिक प्रतै पड़िवज्यो ते परिहारविशुद्धि अठारै मास प्रमाण छै । तो पिण तेणे अविछिन्न परिणामे करी परिहारविशुद्धि आजन्म लगै पाल्यो ५ ।

आगमद्वारे—नवुं भणैं नहीं जे भणी ते गृहीत योग नैं आराधवैज कृतकृत्य थावै अनैं पूर्वाधीत तो विस्मृत नां भय थी एकाग्र मने संभारै ६ ।

वेदद्वारे—प्रवृत्ति काले पुरुष वेद तथा पुरुष-नपुंसक वेद थावै, स्त्री वेदे न हुवै ७ ।

कल्पद्वारे—अचेलकादि दश कल्प सहित हुवै ते स्थितकल्पी हुवै पिण अस्थितकल्पी न हुवै ८ ।

लिंग द्वारे—द्रव्य लिंग साधु रै वेषे स्वलिंगी हुवै अनैं भाव लिंग आश्रयी पंच महाव्रत हुवै ९ ।

लेश्याद्वारे—आदरतां तेजू, पद्म, सुक्ल—ए तीन विशुद्धपणैं हुवै अनैं पछै तो कदाचित छह पिण हुवै । पिण माठी लेश्या आवै तो स्तोक काल लगै रहै ते पिण अत्यंत तीव्र परिणामे न हुवै १० ।

ध्यानद्वारे—आदरतां धर्म ध्यानज हुवै अनैं आदर्यां; पछै तो कदाचित आर्त्त, रोद्र पिण हुवै पिण प्राये निरनुबंधज हुवै ११ ।

समाप्त्यनन्तरमन्येष्वपि चारित्रेषु संभवात्, तेष्वपि च वर्तमानस्यातीतनयमपेक्ष्य पूर्वप्रतिपन्नत्वाविरोधात्,

तीर्थद्वारे—परिहारविशुद्धिको नियमतस्तीर्थे प्रवर्तमाने एव सति भवति, न तच्छेदे नानुत्पत्त्यां वा तद्भावे जातिस्मरणादिना,

पर्यायद्वारे—पर्यायो द्विधा—गृहस्थपर्यायो यतिपर्यायश्च, एकैकोऽपि द्विधा—जघन्यत उत्कृष्टतश्च, तत्र गृहस्थपर्यायो जघन्यत एकोनत्रिंशद् वर्षाणि, यतिपर्यायो विंशतिः, द्वावपि च उत्कर्षतो देशोनपूर्वकोटिप्रमाणौ,

आगमद्वारे—अपूर्वमागमं स नाधीते, यस्मात् तं कल्पमधिकृत्य प्रगृहीतोचितयोगाराधनत एव स कृतकृत्यतां भजते, पूर्वाधीतं तु विस्रोतसिकाक्षयनिमित्तं नित्यमेवैकाग्रमनाः सम्यक् प्रायेणानुस्मरति,

वेदद्वारे—प्रवृत्तिकाले वेदतः पुरुषवेदो वा भवेत् नपुंसकवेदो वा, न स्त्रीवेदः स्त्रियः परिहाविशुद्धिकल्पप्रतिपत्त्यसंभवात्,

कल्पद्वारे—स्थितकल्पे एवायं नास्थितकल्पे, "ठियकप्पंमि य नियमा" इति वचनात्, तत्राचेलक्यादिषु दशस्वपि स्थानेषु ये स्थिताः साधवः तत्कल्पः स्थितकल्प उच्यते, ये पुनश्चतुर्षु शय्यातरपिण्डादिष्वस्थितेषु कल्पेषु स्थिताः शेषेषु चाचेलक्यादिषु षट्स्वस्थिताः तत्कल्पोऽस्थितकल्पः,

लिङ्गद्वारे—नियमतो द्विविधेऽपि लिङ्गे भवति, तद्यथा—द्रव्यलिङ्गे भावलिङ्गे च एकेनापि विना विवक्षितकल्पोचितसामाचार्ययोगात् ।

लेश्याद्वारे—तेजः प्रभृतिकासूत्तरासु तिसृषु विशुद्धासु लेश्यासु परिहारविशुद्धिकं कल्पं प्रतिपद्यते । पूर्वप्रतिपन्नः पुनः सर्वास्वपि कथंचिद् भवति तत्रापीतरास्वविशुद्धलेश्यासु नात्यन्तसंक्लिष्टासु वर्तते । तथाभूतासु वर्तमानोऽपि न प्रभूतकालमवतिष्ठते किन्तु स्तोकं, यतः स्ववीर्यवशात् झटित्येव ताभ्यो व्यावर्तते । अथ प्रथमत एव कस्मात् प्रवर्तते ? उच्यते—कर्मवशात्; उक्तञ्च—

लेसासु विसुद्धासु पडिवज्जई तीसु न उण सेसासु ।
पुव्वपडिवन्नओ पुण होज्जा सव्वासु वि कहंचि ॥
नच्चंतसंकिलिट्ठासु थोवं कालं स हंदि इयरासु ।
चित्ता कम्माण गई तहा विवरीयं फलं देइ ॥

ध्यानद्वारे—धर्मध्यानेन प्रवर्धमानेन परिहारविशुद्धिकं, कल्पं प्रतिपद्यते । पूर्वप्रतिपन्नः पुनरार्त्तरौद्रयोरपि भवति, केवलं प्रायेण निरनुबन्धः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आह च—

झाणम्मि वि धम्मेणं पडिवज्जइ सो पवड्ढमाणेणं।
इयरेसु विझाणेसु पुव्वपवन्नो न पडिसिद्धो॥
एवं च झाणजोग उद्दामे तिव्वकम्मपरिणामा।
रोद्दट्टेसु वि भावो इमस्स पायं निरनुबंधो॥

गणनाद्वारे—परिहारविसुद्धिक हे भगवंत ! एक समय केतला हुवै ? इति प्रश्न। प्रतिपद्यमान एतलै पड़िवजता थका आश्रयी नैं कदाचित हुवै, कदाचित न हुवै। जो हुवै तो जघन्य थकी एक अथवा दोय अथवा तीन गण हुवै, उत्कृष्ट थकी शत पृथक हुवै। पूर्वे पडिवज्या आश्रयी नैं कदाचित हुवै, कदाचित न हुवै। जो हुवै तो जघन्य थकी एक अथवा दोय अथवा तीन गण, उत्कृष्ट थकी सहस्र पृथक १२।

गणनाद्वारे— जघन्यतः प्रतिपद्यमानाः सप्तविंशतिः उत्कर्षतः सहस्र, पूर्वप्रतिपन्नकाः पुनर्जघन्यतः शतशः उत्कर्षतः सहस्रशः,

अभिग्रहद्वारे—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावादि अभिग्रह परिहारविशुद्धि चारित्रिया नैं न हुवै। जे भणी एहनों आचार तेहिज आकरो अभिग्रह छै १३।

अभिग्रहद्वारे—अभिग्रहाश्चतुर्विधाः, तद्यथाद्रव्याभिग्रहाः क्षेत्राभिग्रहाः कालाभिग्रहाः भावाभिग्रहाश्च, एते चान्यत्र चर्चिता इति न भूयश्चर्च्यन्ते, तत्र परिहारविशुद्धिकस्यैतेऽभिग्रहा न भवन्ति, यस्मादेतस्य कल्प एव यथोदितरूपोऽभिग्रहो वर्तते,

प्रव्रज्याद्वारे—एह बीजां नैं दीक्षा न देवै उपदेश तो दै १४।

प्रव्रज्याद्वारे—नासावन्यं प्रव्राजयति, कल्पस्थितिरेषेतिकृत्वा,····उपदेशं पुनर्यथाशक्ति प्रयच्छति १४।

मुंडापनद्वारे—एह बीजां नैं मूंडै नहीं १५।

मुण्डापनद्वारेऽपि नासावन्यं मुण्डयति।

प्रायश्चितद्वारे—एहनैं मन थी पिण सूक्ष्म अतिचार लागै तो निश्चय चतुर्थ उपरांत प्रायछित हुवै, जे भणी एह एकाग्रचित्त हुवै। अनैं तेहनैं भंगे मोटो दोष लागै १६।

प्रायश्चित्तविधिद्वारे—मनसाऽपि सूक्ष्ममप्यतिचारमापन्नस्य नियमतश्चतुर्गुरुकं प्रायश्चित्तमस्य, यत एष कल्प एकाग्रताप्रधानः ततस्तद्भङ्गे गुरुतरो दोष इति १६।

आलंबनद्वारे—एहनैं ज्ञानादि आलंबन न हुवै। एह सर्वत्र निरापेक्षी थको विधि सहित गृहीताचारज पालतो थको महात्मा हुवै १७।

कारणद्वारे—तथा कारणं नामालम्बनं तत्पुनःसुपरिशुद्धं ज्ञानादिकं तच्चास्य न विद्यते येन तदाश्रित्यपवादसेविता स्यात्, एष हि सर्वत्र निरपेक्षः क्लिष्टकर्मक्षयनिमित्तं प्रारब्धमेव स्वं कल्पं यथोक्तविधिना समापयन् महात्मा वर्तते,

निःप्रतिकर्मता द्वारे—एह महात्मा शरीर शुश्रूषा सर्वथा न करै, आंख नों मेल पिण परहो न करै, प्राणांत कष्ट पडयां पिण बीजो प्रकार सेवै नहीं १८।

निष्प्रतिकर्मताद्वारे—एष महात्मा निष्प्रतिकर्मशरीरः अक्षिमलादिकमपि कदाचिन्नापनयति, न च प्राणान्तिकेऽपि समापतिते व्यसने द्वितीयं पदं सेवते,

भिक्षाद्वारे—गोचरी अनैं विहार ते एहनैं दिवस नीं तीजी पोरसीइं। बीजा सात पोहर कायोत्सर्ग हुवै, सर्वथा बेसै नहीं। निद्रा पिण अल्प हुवै। कदाचित जंघाबल क्षीण हुवै तो पिण विहार करतो थको तिहांज पोता नों योग राखै पिण बीजे प्रकारे रहै नहीं १९।

भिक्षाद्वारे—भिक्षा विहारक्रमश्च तृतीयस्यां पौरुष्यां भवति शेषासु च पौरुषीषु कायोत्सर्गः निद्राऽपि चास्याल्पा द्रष्टव्या, यदि पुनः कथमपि जङ्घाबलमस्य परिक्षीणं भवति तथाऽप्येषोऽविहरन्नपि महाभागो न द्वितीयपदमापद्यते, किन्तु तत्रैव यथाकल्पमात्मीयं योगं विदधातीति,

बंधद्वारे—एह परिहारविशुद्धिक चारित्रिया बे भेदे हुवै—इत्वरिक अनैं यावत्कथिक। तिहां इत्वरिक ते ए चारित्र पूर्ण थयै थकै गच्छ मां आवसै। अनैं ए चारित्र पूर्ण थयै जिनकल्प आदरसैं तथा परिहारविशुद्धि में जावजीव लगै वर्त्तसै ते यावत्कथिक। तिहां इत्वरिक नैं आकरा उपसर्ग आंतिक वेदना ऊपजै नहीं अनैं यावत्कथिक नैं आकरा उपसर्ग रोगादिक कदाचित हुवै, पिण जे भणी

एते च परिहारविशुद्धिका द्विविधाः, तद्यथा—इत्वरा यावत्कथिकाश्च, तत्र ये कल्पसमाप्त्यनन्तरं तमेव कल्पं गच्छं वा समुपयास्यन्ति ते इत्वराः, ये पुनः कल्पसमाप्त्यनन्तरमव्यवधानेन जिनकल्पं प्रतिपत्स्यन्ते ते यावत्कथिकाः, तत्रेत्वराणां कल्प-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते जिनकल्प आदरसै अनैं जिनकल्पी नैं तो आकरा उपसर्गादिक हुवै ते माटै एह परिहारविशुद्धि चारित्र नुं विवरण कह्यु।

प्रभावाद् देवमनुष्यतैर्यग्योनिकृता उपसर्गाः सद्योघातिन आतङ्का अतीवा विषह्याश्च वेदना न प्रादुष्षन्ति, यावत्कथिकानां संभवेयुरपि, ते हि जिनकल्पं प्रतिपत्स्यमाना जिनकल्पभावमनुविदधति, जिनकल्पिकानां चोपसर्गादयः संभवन्तीति।
(पण्णवणा वृ. प. ६७,६८)

इहां पन्नवणा नीं वृत्ति में तथा टबा में परिहारविशुद्ध चारित्र पड़िवजै आदरै ते वेलां तीन भली लेश्या तथा धर्म ध्यान कह्यो। अनैं पड़िवज्यां पछै किणही वेला कृष्णादिक माठी लेश्या तथा आर्त्त, रोद्र ध्यान पिण आवै। ते पिण थोड़ो काल रहै एहवूं कह्यु, तिण न्याय परिहारविशुद्ध चारित्र नैं अपडिसेवी कह्यो। ते पड़िवज्जे ते वेलां अपड़िसेवीपणों संभवै अथवा बहुलपणां नीं अपेक्षाये अपड़िसेवी हुवै। जे सामायिक छेदोपस्थापनिक चारित्र बहुलपणैं पड़िसेवी पिण हुवै अपड़िसेवी पिण हुवै ते भणी सामायिक, छेदोपस्थापनिक चारित्र प्रतिसेवक अप्रतिसेवक बेहुं कह्या। अनैं परिहारविशुद्ध चारित्र बहुलपणैं अप्रतिसेवक हीज संभवै अनैं बहुलपणैं भली लेश्या हीज संभवै ते माटै परिहारविशुद्ध चारित्र नैं अप्रतिसेवक हीज कह्यो अनैं तीन भली लेश्या हीज कही, एहवूं जणाय छै। वली केवली कहै सो सत्य २०।

संयत में ज्ञान

६०. *सामायिक संजत प्रभु ! कितरा, ज्ञान विषे ह्वै एह ?
जिन कहै दोय विषे वा त्रिण में, अथवा च्यार विषेह ।।

६०. सामाइसंजए णं भंते ! कतिसु नाणेसु होज्जा ?
गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा नाणेसु होज्जा ।

६१. एम कषायकुशील कह्यु जिम, तिणहिज विध कहिवाय।
च्यार ज्ञान नीं भजना भणवी, इम जाव सूक्ष्मसंपराय ।।

६१. एवं जहा कसायकुसीलस्स तहेव चत्तारि नाणाइं भयणाए। एवं जाव सुहुमसंपराए।

६२. यथाख्यात संजत नैं कहिवा, पंच ज्ञान भजनाय।
जेम कह्यु छै ज्ञान उद्देशे, तेम इहां कहिवाय ।।

६२ अहक्खायसंजयस्स पंच नाणाइं भयणाए जहा नाणुद्देसए। (श २५।४६९)

वा.—यथाख्यात चारित्र नां धणी तेरमें चवदमें गुणठाणे। तिहां तो निश्चय एक केवलज्ञान हीज पावै। अनैं यथाख्यात चारित्र नां धणी छद्मस्थ वीतराग इग्यारमें बारमें गुणठाणे। तिहां बे ज्ञान हुवै तो मति १, श्रुत २। तथा ३ ज्ञान हुवै तो मति १, श्रुत २, अवधि ३ तथा मति १ श्रुत २ मनपर्यव ३। अथवा ४ ज्ञान हुवै तो मति १, श्रुत २, अवधि ३, मनपर्यव ४।

वा०—भजना पुनः केवलियथाख्यातचारित्रिणः केवलज्ञानं छद्मस्थवीतरागयथाख्यातचारित्रिणो द्वे वा त्रीणि वा चत्वारि वा ज्ञानानि भवन्तीत्येवंरूपा,
(वृ. प. ९११)

संयत में श्रुत की अर्हता

६३. *सामायिक संजत हे भगवंत ! श्रुत केतलुं पढंत ?
जिन कहै जघन्य थकी अठ प्रवचन माता भणैं सुसंत ।।

६३. सामाइयसंजए णं भंते ! केवतियं सुयं अहिज्जेज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं अट्ठ पवयणमायाओ,

६४. कह्यु कषायकुशील भणी जिम, सामायिक नैं तेम।
उत्कृष्ट पूर्व चवद भणैं ए, छेदोपस्थापनीय एम ।।

६४. जहा कसायकुसीले। एवं छेदोवट्ठावणिए वि।
(श. २५।४७०)

६५. फुन परिहारविशुद्धिज पूछयां, श्री जिन कहै जघन्य।
नवम पूर्व नीं तीजी वत्थु, नाम आचार सुजन्य ।।

६५. परिहारविसुद्धियसंजए—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं नवमस्स पुव्वस्स ततियं आयार-वत्थुं,

---

*लय : सीता आवै रे धर राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. उत्कृष्ट असंपूर्ण दश पूर्व, इतरै इम अवलोय।
देश ऊण दश पूर्व भणैं इम, अधिक भणैं नहिं कोय।।

६६. उक्कोसेणं असंपुण्णाइं दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा।

६७. संपराय-सूक्ष्म नैं कहिवुं, जिम सामायिक इष्ट।।
जघन्य थकी अठ प्रवचन माता, चउद पूर्व उत्कृष्ट।।

६७. सुहुमसंपरायसंजए जहा सामाइयसंजए।
(श. २५।४७१)

६८. यथाख्यात पूछयां जिन भाखै, धुर अठ प्रवचन माय।
उत्कृष्ट पूर्व चवद पढै ए, ए निर्ग्रंथ कहाय।।

६८ अहक्खायसंजए — पुच्छा।
गोयमा! जहण्णेणं अट्ठ पवयणमायाओ, उक्कोसेणं चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जेज्जा,
यथाख्यातसंयतो यदि निर्ग्रन्थस्तदाऽष्टप्रवचनमात्रादि-चतुर्दशपूर्वान्तं श्रुतं। (वृ. प. ९११)

६९. अथवा श्रुतव्यतिरिक्त हुवै जे, स्नातक केवल नाण।
श्रुतातीत कहियै छै तेहनें, तेरम चवदम ठाण।।

६९. सुयवतिरित्ते वा होज्जा। (श. २५।४७२)
यदि तु स्नातकस्तदा श्रुतातीतः। (वृ. प. ९११)

७०. शत पणवीसम सप्तम देशज, चिहुंसौ तेपनमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल।।

ढाल : ४५४

दूहा

संयत तीर्थ में या अतीर्थ में

१. सामायिक संजय प्रभु! तीर्थ विषे स्यूं होय?
कै अतीर्थ विषे हुवै? हिव जिन उत्तर जोय।।

१. सामाइयसंजए णं भंते! किं तित्थे होज्जा? अतित्थे होज्जा?

२. तीर्थ विषे ए ह्वै तथा, जेम कषायकुशील।
हुवै अतीर्थ विषे वली, इम बिहुं विषे सुमील।।

२. गोयमा! तित्थे वा होज्जा, अतित्थे वा होज्जा, जहा कसायकुसीले।

३. अतीर्थ विषे ह्वै छै तिके, प्रत्येकबुद्ध विषेह।
अथवा तीर्थंकर विषे, हुवै सामायिक जेह।।

४. छेदोपस्थापनिक चरित्त जे, वलि परिहारविशुद्ध।
जेम पुलाक तणी परै, कहियै ए अविरुद्ध।।

४. छेदोवट्ठावणिए परिहारविसुद्धिए य जहा पुलाए।

वा.—'छेदोपस्थापनी, परिहारविशुद्धि तीर्थ विषे हुवै, अतीर्थ विषै नहीं ह्वै। जो तीर्थ विषे हुवै तो प्रत्येकबुद्ध कै विषे वा तीर्थंकर नैं विषे हुवै? इम पुलाक नीं पूछा नथी करी, ते माटै पुलाक प्रत्येकबुद्ध तीर्थंकर नैं विषे न संभवै, एहवूं जणाय छै। तिम छेदोपस्थापनिक, परिहारविशुद्धि पिण प्रत्येकबुद्ध तीर्थंकर विषे न संभवै। जद कोइ पूछै—करकंडु चेडा राजा नों दोहीतो ए भणी ज्यारे

*लय : सीता लावै रे धर राग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्येकबुद्ध महावीर स्वामी नैं बारे थया । तेहनैं बारे सामायिक चारित्र तो उत्कृष्ट छ मास रहै, पछै छेदोपस्थापनिक हुवै । ते छेदोपस्थापनिक प्रत्येकबुद्ध नैं विषे जो न संभवै अनैं ए ४ प्रत्येकबुद्ध महावीर स्वामी नैं बारे थया तेहनैं सामायिक चारित्र किम हुवै ? तेहनों उत्तर—ए प्रत्येकबुद्ध सामायिक चारित्र विषे हीज छ मास मांहै मोक्ष गया हुस्यै, ए पिण ज्ञानी जाणैं, तथा प्रत्येकबुद्ध तीर्थंकर नों आचार जुदो हुवै, ते तीर्थंकर नैं सामायिक चारित्र हुवै तिमहिज प्रत्येकबुद्ध नैं सामायिक चारित्र हुवै, ते पिण केवलज्ञानी जाणैं ।' [ज० स०]

५. शेष रह्या बे संजती, वलि सूक्ष्मसंपराय ।
यथाख्यात संजत वलि, सामायिक जिम थाय ।।

वा.—सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात संजत तीर्थ कै विषे हुवै अथवा अतीर्थ कै विषे हुवै ? जे अतीर्थ कै विषे ते प्रत्येकबुद्ध कै विषे ह्वै छै अथवा तीर्थंकर नैं विषे पिण हुवै छै ८ ।

५. सेसा जहा सामाइयसंजए । (श. २५।४७३)

संयत में लिंग

*सरस भाव संजया नां सुणजो ।। (ध्रुपदं)

६. सामायिक संजत ए प्रभुजी ! स्यूं स्वलिंगे होय ।
कै अन्य लिंग विषे ए ह्वै छै ? पुलाक जिम अवलोय ।।

६,७. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सलिंगे होज्जा ? अण्णलिंगे होज्जा । गिहिलिंगे होज्जा ? जहा पुलाए ।

गीतक छंद

७. द्रव्य लिंग आश्रित्य एह सामायिक, स्वलिंगे मुनि वेष हा ।
अथवा हुवै अन्य लिंग विषे फुन, ग्रहस्थ लिंग विषे वही ।।

८. वलि भाव लिंग पडुच्च नियमा, स्वलिंगेज ह्वै सही ।
वर महाव्रत अवितथ्य संजम, भाव लिंग तिको लही ।।

९. * छेदोपस्थापनी इमहिज कहिवुं, त्रिहुं द्रव्य लिंग विषेहो ।
भाव लिंग आश्रयी निश्चै करी, सलिंगेज कहेहो ।।

९. एवं छेदोवट्ठावणिए वि । (श. २५।४७४)

१०. फुन परिहारविशुद्धिज पूछ्यां, भाखै तब जगभाणो ।
द्रव्य लिंग भाव लिंग आश्रयी, एह सलिंगे जाणो ।।

१०. परिहारविसुद्धियसंजए णं भंते ! कि—पुच्छा । गोयमा ! दव्वलिंगं पि भावलिंगं पि पडुच्च सलिंगे होज्जा,

११. वर परिहारविशुद्धि चारित्रियो, अन्य लिंगे नहिं होय ।
गृह लिंगे पिण ए नहिं होवै, अदल न्याय अवलोय ।।

११. नो अण्णलिंगे होज्जा, नो गिहिलिंगे होज्जा ।

१२. शेष बे चारित्र सामायिक जिम, द्रव्य लिंग तीनूंइ थायो ।
भाव लिंग ते चारित्र आश्रयी, सलिंगे सुखदायो ।।

१२. सेसा जहा सामाइयसंजए । (श. २५।४७५)

संयत में शरीर

१३. सामायिक संजत हे प्रभुजी ! किता शरीर विषे होइ ?
जिन कहै त्रिण चिहुं पंच विषे वा, कषायकुशील जिम जोइ ।।

वा.—त्रिण शरीर विषे हुवै ते ओदारिक १, तेजस २, कार्मण ३ विषे हुवै अथवा च्यार शरीर विषे हुवै ते औदारिक १, वैक्रिय २, तेजस ३, कार्मण ४ विषे

१२. सामाइयसंजए णं भंते ! कतिसु सरीरेसु होज्जा ? गोयमा ! तिसु वा चउसु वा पंचसु वा जहा कसाय-कुसीले ।

*लय : पर नारी नों संग न कीजे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुवै। अथवा पंच शरीर विषे ह्वै ते ओदारिक १, वैक्रिय २, आहारिक ३, तैजस ४, कार्मण ५ विषे हुवै।

१४. छेदोपस्थापनिक इमहिज कहिवो, शेष चारित्र त्रिण जाणी।
जेम पुलाक कह्यो तिम कहिवुं, तीन शरीरे माणी।।

१४. एवं छेदोवट्ठावणिए वि। सेसा जहा पुलाए। (श. २५।४७६)

संयत किस क्षेत्र में

१५. सामायिक संजत स्यूं प्रभुजी ! कर्मभूमि विषे थायो ?
कै अकर्मभूमि विषे ए ह्वै छै ? जिन कहै सांभल न्यायो।।

१५. सामाइयसंजए णं भंते ! किं कम्मभूमीए होज्जा ? अकम्मभूमीए होज्जा ?
गोयमा !

१६. जन्म अनें छता भाव आश्रयी, कर्मभूमि विषे होइ।
अकर्मभूमि विषे नहीं ह्वै ए, बकुश जिम अवलोइ।।

१६ जम्मण-संतिभावं पडुच्च जहा बउसे।

सोरठा

१७. साहरण आश्री एह, ह्वै कर्मभूमि विषे वलि।
अकर्मभूमि विषेह, सामायिक संजत हुवै।।

१८. * छेदोपस्थापनीक इमहिज कहियै, पुलाक जेम परिहारो।
जन्म अनें छता भाव आश्रयी, ह्वै कर्मभूमि मझारो।।

१८. एवं छेदोवट्ठावणिए वि। परिहारविसुद्धिए य जहा पुलाए।

१९. शेष बे चारित्त सामायिक जिम, जन्म छतै भाव जोइ।
ह्वै कर्मभूमि, अकर्मभूमि नहीं, साहरण विषे बिहुं होइ।।

१९. सेसा जहा सामाइयसंजए। (श. २५।४७७)

संयत किस काल में

२०. * सामायिक संजत हे प्रभुजी ! ह्वै अवसर्प्पिणी कालो ?
कै उत्सर्प्पिणी काल विषे ह्वै, कै बिहुं नहि तिहां न्हालो ?

२०. सामाइयसंजए णं भंते ! किं ओसप्पिणिकाले होज्जा ? उस्सप्पिणिकाले होज्जा ? नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले होज्जा ?

२१. श्री जिन भाखै सांभल गोयम ! ह्वै अवसर्प्पिणी कालो।
जेम बकुश नें कह्यो तिम कहिवुं, वारू रीत विशालो।।

२१. गोयमा ! ओसप्पिणिकाले जहा बउसे।

सोरठा

२२. ह्वै अवसर्प्पिणी काल, उत्सर्प्पिणी काले हुवै।
बिहुं नहीं तिहां न्हाल, ह्वै सामायिक संजती।।

२३. जो ह्वै अवसर्प्पिणी काल, तो जन्म छता भाव आश्रयी।
तीजै आरै न्हाल, फुन ह्वै चोथै पंचमै।।

२४. साहरण आश्रयी होय, तो कोइक आरा जिसो।
काल जिहां अवलोय, त्यां सामायिक चरित्त ह्वै।।

२५. जो ह्वै उत्सर्प्पिणी काल, तो जन्म ऊपजवा आश्रयी।
दूजै आरै न्हाल, वलि तीजै चउथै हुवै।।

२६. छता भाव आश्रित्त, तृतीय तुर्य आरै हुवै।
शेष विषे न कथित्त, ए सामायिक संजती।।

२७. साहरण आश्रयी होय, तो कोइक आरा जिसो।
काल जिहां ह्वै सोय, ज्यां सामायिक संजती।।

२८. अवउत्सर्प्पिणी नांहि, त्यां सामायिक चरित्त ह्वै।
तो दुषमसुषम सम ताहि, तेह विदेह विषे हुवै।।

* लय: पर नारी नों संग न कीजै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. विदेह सामायिक होय, जो तेहनों साहरण ह्वै ।
तो अरा कोइक सम जोय, तिहां देवादिक मेल दे ।।

३० * छेदोपस्थापनी इमहिज कहिवुं, णवरं जन्म छतै भावे ।
च्यारूं अरा जिसो काल वर्त्तै जिहां, तिण क्षेत्र नहिं थावै ।।

वा. —इम छेदोपस्थापनीक पिण एणे वचने करी बकुश समान काल थकी छेदोपस्थापनिक संजत कह्यो। वलि तिहां बकुश अवसर्पिणी-उत्सर्प्पिणी-व्यतिरिक्त काल नैं विषे जन्म थकी अनैं छता भाव थकी सुषमसुषमा सरीखो देवकुरू, उत्तरकुरू क्षेत्र नैं विषे १। सुषमा सरीखो हरीवास, रम्यकवास क्षेत्र नैं विषे २। सुषमदुषमा सरीखो हेमवत, एरणवत क्षेत्र नैं विषे ३। ए क्षेत्रे अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी काल नहीं, तिहां बकुश नों निषेध कह्यो। दुषमसुषमा सरीखो महाविदेह क्षेत्र इहां पिण अवसर्प्पिणी उत्सर्प्पिणी काल नथी। ते महाविदेह क्षेत्रे बकुश कह्यु छै। अनैं छेदोपस्थापनीक ते महाविदेह क्षेत्र नैं विषे पिण निषेध नैं अर्थे आगल एहवुं कह्यु। नवरं कहितां एतलो विशेष जन्म अनै छता भाव आश्रयी च्यारूं अरा जिसो काल वर्त्तै तिहां पिण नथी।

३०. एवं छेदोवट्ठावणिए वि, नवरं—जम्मण-संतिभावं पडुच्च चउसु वि पलिभागेसु नत्थि,

वा० —'एवं छेओवट्ठावणिएवि' त्ति, अनेन बकुशसमानः कालतश्छेदोपस्थापनीयसंयत उक्तः, तत्र च बकुशस्योत्सर्प्पिण्यवसर्प्पिणीव्यतिरिक्तकाले जन्मतः सद्भावतश्च सुषमसुषमादिप्रतिभागत्रये निषेधोऽभिहितः दुष्षमसुषमाप्रतिभागे च विधिः छेदोपस्थापनीयसंयतस्य तु तत्रापि निषेधार्थमाह— 'नवर' मित्यादि। (वृ. प. ९१३)

३१. साहरण आश्रयी सुषमसुषमादिक, अद्धा जिसो जिहां कालो ।
तेह मांहिलो कोइक क्षेत्रे, द्वितीय चारित्त हुवै न्हालो ।।

३१. साहरणं पडुच्च अण्णयरे पडिभागे होज्जा,

सोरठा

३२. सुषमसुषमा सम खेत्त, देवकुरु उत्तरकुरु ।
सुषमा सदृश्य तेथ, हरिवास रम्यक वली ।।
३३. सुषमादुसम सरीस, हेमवत फुन एरणवत ।
दुषमसुषम सम ईस, क्षेत्र महाविदेह जाणवुं ।।
३४. ए च्यारूंइ मांय, कोइक क्षेत्र विषे तसु ।
मेलै तिहां उठाय, देव प्रमुख कृत संहरण ।।

३५. * शेष विस्तार सामायिक नीं परि, कहिवो सर्व उदंतो ।
चारित्र छेदोपस्थापनीक नों, भाख्यो श्री भगवंतो ।।

३५. सेसं तं चेव। (श. २५।४७८)

३६. चरित्त परिहारविशुद्धि नीं पूछा, भाखै दीनदयालो ।
अवसर्प्पिणी काले पिण होवै, ह्वै उत्सर्प्पिणी कालो ।।

३६. परिहारविसुद्धिए—पुच्छा।
गोयमा ! ओसप्पिणिकाले वा होज्जा, उस्सप्पिणिकाले वा होज्जा,

३७. नोअवसर्प्पिणी नोउत्सर्प्पिणी, महाविदेहादिक मांह्यो ।
तेह क्षेत्र विषे ए नहिं होवै, परिहारविशुद्धि सुहायो ।।

३७. नोओसप्पिणि-नोउस्सप्पिणिकाले नो होज्जा।

३८. जो अवसर्प्पिणी काल विषे ह्वै, पुलाक जिन कहिवायो ।
जो उत्सर्प्पिणी काल विषे ह्वै, ए पिण पुलाक ज्यूं थायो ।।

३८. जइ ओसप्पिणिकाले होज्जा—जहा पुलाओ। उस्सप्पिणिकाले वि जहा पुलाओ।

सोरठा

३९. जन्म आश्रयी जोय, तो अवसर्प्पिणी काल में ।
तीजै आरै होय, वलि चोथै आरै हुवै ।।
४०. छता भाव आश्रित्य, तीजै चोथै पंचमें ।
अन्य अरै न कथित्य, काल अवसर्प्पिणी नैं विषे ।।
४१. जो उत्सर्प्पिणी में होय, तो ए जन्मज आश्रयी ।
दूजै आरै जोय, वलि तीजै चोथै हुवै ।।

* लय : पर नारी नों संग न कीजै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. छता भाव आश्रित्य, तृतीय तुर्य आरै हुवै ।
अन्य आरै न कथित्य, हुवै नहीं साहरण तसु ।।

४३. * सूक्ष्मसंपराय निर्ग्रंथ नीं परि, यथाख्यात पिण एमो ।
ते निर्ग्रंथ प्रतेज विचारी, कहिवुं सगलो तेमो ।।

४३. सुहुमसंपराइओ जहा नियंठो। एवं अहक्खाओ वि।
(श. २५।४७९)

सोरठा

४४. निर्ग्रंथ स्नातक न्हाल, ह्वै अवसर्प्पिणी काल में ।
वलि उत्सर्प्पिणी काल, बिहुं नहीं त्यां पिण हुवै ।।
४५. जो अवसर्प्पिणी काल, तो जन्म आश्रयी जाणवुं ।
तोजै चोथै न्हाल, अन्य अरे जनमें नथी ।।
४६. छता भाव आश्रित्य, तीजै चोथै पंचमें ।
काल विषेज कथित्य, ए अवसर्प्पिणी नें विषे ।।
४७. जो उत्सर्प्पिणी काल, जन्म आश्रयी जे हुवै ।
बीजै तीजै न्हाल, वलि चोथै आरै हुवै ।
४८. छता भाव आश्रित्य, तृतीय तुर्य आरै हुवै ।
अन्य अरै न कथित्य, अद्धा उत्सर्प्पिणी विषे ।।
४९. क्षेत्र महाविदेह मांय, अव-उत्सर्प्पिणी त्यां नथी ।
तिण क्षेत्रे पिण थाय, जन्म छता भाव आश्रयी ।।
५०. साहरण आश्रयी सोय, जिम निर्ग्रंथ तणुं कह्यु ।
तिम एहनों पिण होय, यथाख्यात मूक्यां पछै ।।

५१. * शत पणवीसम देश सप्त नों, चिहुंसौ चउपनमीं ढालो ।
भिक्षु भारोमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष विशालो ।।

ढाल : ४५५

संयत की गति

दूहा

१. संजत सामायिक प्रभु ! काल कियां थी ताय ।
किण गति में जावै तिको ? जिन कहै सुरगति जाय ।।

१. सामाइयसंजए णं भंते ! कालगए समाणे कं गतिं गच्छति ?
गोयमा ! देवगतिं गच्छति । (श. २५।४८०)

२. सुरगति में जातै छतै, भवनपति में जाय ?
कै व्यंतर कै ज्योतिषी, कै वैमानिक थाय ?
३. जिन भाखै नहि ऊपजै, भवनपती रै मांय ।
नहिं ह्वै व्यंतर ज्योतिषी, वैमानिक में जाय ।।
४. कषायकुशील नें कह्यु, तेम इहां पिण इष्ट ।
जघन्य सौधर्मे ऊपजै, सव्वट्ठसिद्ध उत्कृष्ट ।।

२. देवगतिं गच्छमाणे किं भवणवासीसु उववज्जेज्जा ?
वाणमंतरेसु उववज्जेज्जा ?
३,४. गोयमा ! नो भवणवासीसु उववज्जेज्जा—जहा कसायकुसीले ।

५. छेदोपस्थापनी पिण इमज, पुलाक जिम परिहार ।
जघन्य सुधर्मे ऊपजै, उत्कृष्टो सहसार ।।

५. एवं छेदोवट्ठावणिए वि। परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए।

* लय : पर नारी नो संग न कीजे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. संपराय-सूक्ष्म तिको, निर्ग्रंथ जेम कहेह ।
जघन्य नहीं उत्कृष्ट नहीं, वैमान अनुत्तरेह ।।
७. यथाख्यात संजत पृच्छा, यथाख्यात इम थात ।
जाव जघन्य उत्कृष्ट नहीं, अनुत्तरे उपपात ।।

८. कोइ एक सीझै वलि, यावत अंत करेह ।
ए क्षायिक चारित्र धणी, उपशम अनुत्तरेह ।।
*पवर संजया पंच कह्या प्रभु, देव जिनेंद्र दिनिंदा ।
देव जिनेंद्र दिनिंदा, म्हैं वारी जाऊं सेवै सुर नर वृंदा हो ।। [ध्रुपदं]
९. सामायिक संजत हे प्रभुजी ! सुरलोके उपजंतो ।
स्यूं उपजै छै इंद्रपणैं ते ? इत्यादिक पूछंतो ।।
१०. जिन कहै अविराधना आश्रयी, जेम कषायकुशीलं ।
तसु आख्यो तिम पिण ए भणवुं, ज्ञान पयोद सलीलं ।।

६. सुहुमसंपराए जहा नियंठे । (श. २५।४८१)

७. अहक्खाए—पुच्छा ।
गोयमा ! एवं अहक्खायसंजए वि जाव अजहण्ण-मणुक्कोसेणं अणुत्तरविमाणेसु उववज्जेज्जा,
८. अत्थेगतिए सिज्झति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेति । (श. २५।४८२)

९. सामाइयसंजए णं भंते ! देवलोगेसु उववज्जमाणे किं इंदत्ताए उववज्जति—पुच्छा ।
१०. गोयमा ! अविराहणं पडुच्च एवं जहा कसाय-कुसीले ।

सोरठा

११. अविराधक छै जेह, इंद्रपणैं ते ऊपजै ।
जाव अहमिंद्रपणेह, सा.[1] ता.[2] लो.[3] जावत रवै ।।

वा.—इहां कोइ पूछै—आराधक साधु ए पांच पदवी विना अन्य देवतापणैं स्यूं नथी ऊपजै ? तेहनुं उत्तर—आराधक साधु अन्य देवतापणैं पिण ऊपजतो दीसै छै। पदवी पामवा नों नियम नथी संभवै । ठाम-ठाम सूत्र में साधु मर देवता थया तिहां देवपणैं ऊपनां कह्या, पिण पदवी रो नाम घणैं ठिकाणै नथी कह्यो ते माटै । अनैं इहां गोतम स्वामी पंच पदवी नुं हीज प्रश्न पूछ्यो ते माटै पंच पदवी नुं हीज उत्तर दीधूं ।

१२. विराधना आश्रित्त, भवनपत्यादिक कोइक में ।
विराधक एह कथित्त, सम्यक्त्व चारित्र नुं कह्यु ।।

वा०—ए भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी नों आउखो बांधै ते सम्यक्त्व चारित्र बिहुं गमाय नैं तेहनों आउखो बांधी तिहां ऊपजै । जे चारित्र रहित थयुं अनै सम्यक्त्व रहै तेहनैं पिण वैमानिक बिना और गति नों बंधन न पड़ै ते माटै ते बिहुं नों सर्व थकी विराधक ते भवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी में ऊपजै ।

१३. *कहिवुं इम छेदोपस्थापनी, पुलाक जिम परिहारं ।
अविराधक कै वली विराधक, पुलाक जेम प्रकारं ।।

१३. एवं छेदोवट्ठावणिए वि । परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए ।

गीतक छंद

१४. अविराधना आश्रित्य पदवी, इंद्र सामानिक लही ।
फुन तावतीसक लोकपालक, एह पद आश्रित्य ही ।।

सोरठा

१५. पद अहमिंद्र सुहाय, कल्पातीत कहीजियै ।
तेह विषे नहिं जाय, ए परिहारविशुद्धिको ।।

---

१. सामानिक २. त्रायस्त्रिंश ३. लोकपाल
*लय : पूज भीखणजी तुम्हारा दर्शण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतक छंद

१६. फुन विराधक आश्रित्य उपजै भवनपत्यादिक महीं ।
चिहुं जाति में कोइक विषे, सम्यक्त्व चरण वमी सही ।।

१७. *संपराय-सूक्ष्म चारित्रियो, यथाख्यात वलि जाणी ।
ए बिहुं संजत शेष रह्या ते, निर्ग्रंथ जेम पिछाणी ।।

१७, सेसा जहा नियंठे । (श. २५।४८३)

गीतकछंद

१८. अविराधना आश्रित्य इंद्र, सामानिके त्रायस्त्रिशके ।
नहिं ऊपजै फुन लोकपाले, हुवै ए अहमिंदके ।।

१९. फुन विराधक उत्पत्ति भवनपत्यादिक सुर कोइक विषै ।
वर श्रेणि थी पड़ हुवै विराधक मोह कर्म तणैं धकै ।।

२०. *सामायिक संजत हे प्रभुजी ! ऊपजतो सुर लोगे ।
किता काल नीं स्थिति कही तसु, ते सुर नीं शुभ योगे ?

२०. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! देवलोगेसु उववज्ज-माणस्स केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता ?

२१. श्री जिन भाखै जघन्य थकी ते, दोय पल्य नीं स्थित ।
उत्कृष्टी तेतीस उदधि नीं, अविराधक आश्रित ।।

२१. गोयमा ! जहण्णेणं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ।

२२. कहिवुं इम छेदोपस्थापनी, पूछै फुन परिहारं ।
श्री जिन भाखै जघन्य दोय पल्य, उत्कृष्ट उदधि अठारं ।।

२२. एवं छेदोवट्ठावणिए वि । (श. २५।४८४)
परिहारविसुद्धियस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं दो पलिओवमाइं, उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमाइं,

२३. दोय संजती शेष रह्या ते, निर्ग्रंथ जेम निहाली ।
तेह अजघन्य अनुत्कृष्ट स्थित, तेतीस सागर भाली ।।

२३. सेसाणं जहा नियंठस्स । (श. २५।४८५)

संयत के संयम-स्थान

२४. सामायिक नैं प्रभु ! केतला, संजम स्थानक भाख्या ?
श्री जिन भाखै असंख्यात ही, स्थान चरित्र नां दाख्या ।।

२४. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! केवतिया संजमट्ठाणा पण्णत्ता ?
गोयमा ! असंखेज्जा संजमट्ठाणा पण्णत्ता ।

२५. इम यावत परिहारविशुद्ध नां, प्रश्न सूक्ष्मसंपराय ।
संजम-स्थानक असंख्यात है, अंतर्मुहूर्त्त मांय ।।

२५. एवं जाव परिहारविसुद्धियस्स । (श. २५।४८६)
सुहुमसंपरायसंजयस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! असंखेज्जा अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाणा पण्णत्ता । (श. २५।४८७)

सोरठा

२६. अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण, संपराय-सूक्ष्म अद्धा ।
समय-समय प्रति जाण, चरण विशुद्ध विशेष थी ।।

२७. ते माटै असंख्यात, संजम नां स्थानक तसु ।
अंतर्मुहूर्त्ते थात, तिणसूं अंतर्मुहूर्त्तिका ।।

वा०—अंतर्मुहूर्त्त नैं विषे थया ते अंतर्मुहूर्त्तिया निश्चय करिकै अंतर्मुहूर्त्त प्रमाण ते सूक्ष्मसंपराय नों अद्धा । अनैं तेहनैं प्रतिसमय चरण विशुद्ध विशेष भाव थकी असंख्याता ते संजमस्थान हुवै ते माटै असंख्याता अंतर्मुहूर्त्तिया संजमस्थान कह्या ।

वा०—'असंखेज्जा अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाण' त्ति अन्तर्मुहूर्त्ते भवानि आन्तर्मुहूर्त्तिकानि, अन्तर्मुहूर्त्त-प्रमाणा हि तदद्धा, तस्याश्च प्रतिसमयं चरणविशुद्धि-विशेषभावादसङ्ख्येयानि तानि भवन्ति,
(वृ. प. ९१३)

२८. *यथाख्यात संजत नीं पूछा, श्री जिन कहै संपेख ।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट संजम नों स्थानक भाख्यो एक ।।

२८. अहक्खायसंजयस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे पण्णत्ते । (श. २५।४८८)

***लय : पूज भीखणजी तुम्हारा दर्शण**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२९. तेहनां काल विषेह, चारित्र तणों विशुद्ध जे ।
निरविशेष भावेह, तेहथी संजम-स्थान इक ।।

संयमस्थानों का अल्पबहुत्व

३०. हे प्रभुजी ! ए सामायिक नां, छेदोपस्थापनी केरा ।
वलि परिहारविशुद्ध तणां जे, संजमस्थान सुमेरा ।।
३१. संपराय-सूक्ष्म नां स्थानक, यथाख्यात नां जोइ ।
कुण-कुण थकी जाव अथवा जे, विसेसाहिया होइ ?
३२. श्री जिन कहै सर्व थी थोड़ो, यथाख्यात नों जाणी ।
अजघन्य-अनुत्कृष्ट संजम नों, स्थानक एक पिछाणी ।।
३३. तेह थी सूक्ष्मसंपराय नां, संजमस्थानक जाणी ।
अंतर्मूहूर्त्तिया ते आख्या, असंखगुणा पहिछाणी ।।
३४. तेह थकी परिहारविशुद्ध नां, संजम केरा स्थानं ।
असंख्यातगुण अधिका कहियै, पवर रीत पहिछानं ।।
३५. सामायिक छेदोपस्थापनिक, बिहुं नां संजमस्थानं ।
मांहोमां तुला पूर्व थी, असंख्यातगुण मानं ।।

वा०—संजमस्थान अल्पबहुत्व चिंता नैं विषे इहां असद्भाव स्थापनाये समस्त संजमस्थानक इकवीस कल्पीयैं । तिहां ऊपरलो एक ते यथाख्यात नों तेहथी नीचला च्यार ते सूक्ष्मसंपराय नां । तिके तेहथी असंख्यातगुणा देखवा । तेहथी नीचला च्यार परहा छांडवा । वलि आठ अनेरा पारिहारिक । तेह पूर्व थकी असंख्येयगुण देखवा । तिवार पछैं परिहरचा ४ । आठ पूर्वोक्तहीज तेहथी अनेरा ४ । इति इम ते सोले सामायिक छेदोपस्थापनीय संजत नां हुवैं । पूठला थकी एह असंख्यातगुणा इति ।

३६. शत पणवीसम सप्तम देशज, चिहुं सौ पचपन ढालं ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय-प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमालं ।।

२९. यथाख्याते त्वेकमेव, तदद्धायाश्चरणविशुद्धेर्निर्विशेषत्वादिति । (वृ. प. ९१३)

३०. एएसि णं भंते ! सामाइय-छेदोवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिय-

३१. सुहुमसंपराग-अहक्खायसंजयाणं संजमट्ठाणाणं कयरे कयरेहिंतो जाव (सं. पा.) विसेसाहिया वा ?

३२. गोयमा ! सव्वत्थोवे अहक्खायसंजयस्स एगे अजहण्णमणुक्कोसए संजमट्ठाणे,

३३. सुहुमसंपरागसंजयस्स अंतोमुहुत्तिया संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा,

३४. परिहारविसुद्धियसंजयस्स संजमट्ठाणा असंखेज्जगुणा,

३५ सामाइयसंजयस्स छेदोवट्ठावणियसंजयस्स य एएसि णं संजमट्ठाणा दोण्ह वि तुल्ला असंखेज्जगुणा । (श. २५।४८९)

वा०—संयमस्थानाल्पबहुत्वचिन्तायां तु किलासद्भावस्थापनया समस्तानि संयमस्थानान्येकविंशतिः, तत्रैकमुपरितनं यथाख्यातस्य, ततोऽधस्तनानि चत्वारि सूक्ष्मसम्परायस्य, तानि च तस्मादसङ्ख्येयगुणानि दृश्यानि, तेभ्योऽधश्चत्वारि परिहृत्यान्यान्यष्टौ परिहारिकस्य, तानि च पूर्वेभ्योऽसङ्ख्येयगुणानि दृश्यानि, ततः परिहृतानि, यानि चत्वार्यष्टौ च पूर्वोक्तानि तेभ्योऽन्यानि च चत्वारीत्येवं तानि षोडश सामायिकच्छेदोपस्थापनीयसंयतयोः, पूर्वेभ्यश्चैतान्यसङ्ख्यातगुणानीति । (वृ. प. ९१३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४५६

संयत के निकर्ष—चारित्रपर्यव

दूहा

वा.—तिहां निकर्ष कहितां सन्निकर्ष सामायिकादिक नों परस्पर संयोजन संबंध तेहनां प्रस्ताव ते अवसर थकी कहै छै—

१. सामायिक संजत तणां, कितला हे भगवंत !
चारित्त नां पर्याय ते ? जिन कहै कह्या अनंत ।।

१. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! केवइया चरित्तपज्जवा पण्णत्ता ?
गोयमा ! अणंता चरित्तपज्जवा पण्णत्ता ।

२. एवं यावत जाणवा, यथाख्यात अति शुद्ध ।
चारित्र नां पर्याय तसु, कह्या अनंता बुद्ध ।।
*रुड़ै स्वाम प्रकाशै रे, संजत पंच प्रकारे ।। (ध्रुपदं)

२. एवं जाव अहक्खायसंजयस्स । (श. २५।४९०)

३. सामायिक सामायिक नें प्रभु ! स्वस्थान संयोजन ताय ।
चारित्र नां पर्याय करीनें, स्यूं हीण तुल्य अधिकाय ?

३. सामाइयसंजए णं भंते ! सामाइयसंजयस्स सट्ठाण-सण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं किं हीणे ? तुल्ले ? अब्भहिए ?

४. श्री जिन भाखै हीण कदाचित, छट्ठाणवडिया कहियै ।
संख असंख अनंत भाग गुण, हीण अधिक करि लहियै ।।

४. गोयमा ! सिय हीणे—छट्ठाणवडिए । (श. २५।४९१)

५. हे प्रभु ! सामायिक संजत नें, छेदोपस्थापनी नें इच्छा ।
परस्थानक जोगे करिनें ए, चरित्त पज्जव नीं पृच्छा ।।

५. सामाइयसंजए णं भंते ! छेदोवट्ठावणियसंजयस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं—पुच्छा ।

६. श्री जिन भाखै हीण कदाचित, छट्ठाणवडिय कहाय ।
इम परिहारविशुद्ध परस्थानक योगे करि सामाय ।।

६. गोयमा ! सिय हीणे—छट्ठाणवडिए । एवं परि-हारविसुद्धियस्स वि । (श. २५।४९२)

७. हे प्रभु ! सामायिक संजत नें, जे सूक्ष्मसंपराय ।
परस्थानक योगे करिनें ए, चरित्त पज्जव पूछाय ?

७. सामाइयसंजए णं भंते ! सुहुमसंपरागसंजयस्स परट्ठाणसण्णिगासेणं चरित्तपज्जवेहिं—पुच्छा ।

८. श्री जिन भाखै हीण सामायिक,
पिण तुल्य अधिक नवि थात ।
अनंतगुण ते हीण कहीजै, तिणहिज विध यथाख्यात ।।

८. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुण-हीणे ।
एवं अहक्खायसंजयस्स वि ।

वा.—सामायिक सामायिक चारित्र नां पज्जवे करी कदा हीण, कदा तुल्य, कदा अधिक—जो हीण अधिक तो छट्ठाणवडिए कहीजै । अनैं सामायिक चारित्र नां पज्जवा ते छेदोपस्थापनी चारित्र नां पज्जवे करी मींढै तो इमज छट्ठाणवडिए कहीजै । अनैं सामायिक चारित्र नां पज्जवा ते परिहारविशुद्ध चारित्र नां पज्जवे करी मींढै तो इम छट्ठाणवडिए । अनैं सामायिक चारित्र नां पज्जवा ते सूक्ष्म-संपराय चारित्र नां पज्जवा करिकै मींढै तो सूक्ष्मसंपराय चारित्र नैं पज्जवे करी सामायिक चारित्र नां पज्जवा हीण, पिण तुल्य नहीं, अधिक नहीं । हीण तो अनंतगुण । इमज यथाख्यात चारित्र नां पज्जवा थकी सामायिक चारित्र नां पज्जवा अनंतगुण हीण छै, पिण तुल्य अधिक नथी ।

वा०—'सामाइयसंजमे णं भंते ! सामाइय-संजयस्से' त्यादौ 'सिय हीणे' त्ति असङ्ख्यातानि तस्य संयमस्थानानि, तत्र च यदैको हीनशुद्धिकेऽन्य-स्त्वितरत्र वर्त्तते तदैको हीनोऽन्यस्त्वभ्यधिकः, यदा तु समाने संयमस्थाने वर्त्तेते तदा तुल्ये, हीनाधिकत्वें च षट्स्थानपतितत्वं स्यादत एवाह—'छट्ठाणवडिए' त्ति । (वृ. प. ९१३, ९१४)

९. इम छेदोपस्थापनी कहिवुं, धुर त्रिण छट्ठाण थात ।
ऊपरलै बे चरण पज्जवे करी, हीण अनंतगुण ख्यात ।।

९. एवं छेदोवट्ठावणिए वि हेट्ठिल्लेसु तिसु वि समं छट्ठाणवडिए, उवरिल्लेसु दोसु तहेव हीणे ।

वा०—छेदोपस्थापनी चारित्र नां पज्जवा ते सामायिक चारित्र नां पज्जवा थकी छट्ठाणवडिए । छेदोपस्थापनी चारित्र नां पज्जवा अनेरा छेदोपस्थापनीय

*लय : दड़ै चंद निहालै हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चारित्र नां पज्जवा छट्ठाणवडिए । छेदोपस्थापनीय चारित्र नां पज्जवा परिहार-विशुद्ध चारित्र नां पज्जवा थकी छट्ठाणवडिए । अनें छेदोपस्थापनी नां पज्जवा सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात ए बिहुं चारित्र नां पज्जवा थकी अनंतगुण हीण, पिण तुल्य अधिक नथी ।

१०. जिम छेदोपस्थापनीय आख्यो, तिमज परिहार सुचीन ।
धुर त्रिहुं चरित्त पज्जव छट्ठाणज, चरम उभय थी हीन ।।

१०. जहा छेदोवट्ठावणिए तहा परिहारविसुद्धिए वि । (श. २५।४९३)

वा.—परिहारविशुद्ध चारित्र नां पज्जवा ते सामायिक, छेदोपस्थानीय, परिहारविशुद्ध चारित्र नां पज्जवा थकी मींढचां छट्ठाणवडिए अनें सूक्ष्मसंपराय, यथाख्यात चारित्र नां पज्जवा थकी अनंतगुण हीण, पिण तुल्य अधिक नथी ।

११. जेह सूक्ष्मसंपराय संजत ते, हे भगवंत ! कृपाल !
सामायिक परस्थान योगे करि, पृच्छा ए सुविशाल ।।
१२. श्री जिन भाखै हीण नहीं ए, तुल्यपणुं पिण नांय ।
अधिक अछै सूक्ष्मसंपरायज, अनंतगुण अधिकाय ।
१३. इम छेदोपस्थापनीय करिकै, परिहारविशुद्ध करि ताय ।
सूक्ष्मसंपराय हीण तुल्य नांही, अनंतगुण अधिकाय ।।
१४. संपराय-सूक्ष्म स्वस्थाने, हीण कदाचित थाय ।
नो तुल्ले नहिं तुल्य कहीजै, कदाचित अधिकाय ।।
१५. स्वस्थानक करि हीण हुवै जो, तो कहियै अनंतगुण हीण ।
अधिक हुवै तो अनंतगुण अधिकज,
दशमें गुणठाण सुचीन ।।
१६. प्रभु ! सूक्ष्मसंपराय चरित्त नां, पज्जव तणीं जे इच्छा ।
यथाख्यात परस्थान चरित्त नें, पज्जव योग करि पृच्छा ।।
१७. श्री जिन भाखै यथाख्यात थी, हीण सूक्ष्मसंपराय ।
तुल्य अधिक नहिं कहियै एहनै, हीण अनंतगुण थाय ।।

११. सुहुमसंपरागसंजए णं भंते ! सामाइयसंजयस्स परट्ठाण—पुच्छा ।
१२. गोयमा ! नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए—अणंत-गुणमब्भहिए ।
१३. एवं छेदोवट्ठावणिय परिहारविसुद्धिएसु वि समं ।
१४. सट्ठाणे सिय हीणे, नो तुल्ले, सिय अब्भहिए ।
१५. जइ हीणे अणंतगुणहीणे, अह अब्भहिए अणंतगुण-मब्भहिए । (श. २५।४९४)
१६. सुहुमसंपरायसंजयस्स अहक्खायसंजयस्स परट्ठाण—पुच्छा ।
१७. गोयमा ! हीणे, नो तुल्ले, नो अब्भहिए, अणंतगुण-हीणे ।

वा.—सूक्ष्मसंपराय चरित्त नां पज्जवा ते सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्ध चरित्र नां पज्जवा थकी हीण नहीं, तुल्य नहीं, अनंतगुण अधिक छै । अनें यथाख्यात चारित्र नां पज्जवा थकी सूक्ष्मसंपराय चरित्त नां पज्जवा अनंतगुण हीण, पिण तुल्य अधिक नहीं ।

१८. *यथाख्यात चारित्र नां पज्जव, धुर चिहुं चरित्त संघात ।
हीण हुवै नहिं तुल्य हुवै नहीं, अधिक अनंतगुण ख्यात ।।
१९. यथाख्यात चारित्र नां पज्जव, ते यथाख्यात संघात ।
स्वस्थाने नहिं हीण अधिक नहीं, तुल्य इहां आख्यात ।।

१८. अहक्खाए हेट्ठिल्लाणं चउण्ह वि नो हीणे, नो तुल्ले, अब्भहिए—अणंतगुणमब्भहिए ।
१९. सट्ठाणे नो हीणे, तुल्ले, नो अब्भहिए । (श. २५।४९५)

वा.—यथाख्यात चरित्त नां पज्जवा ते सामायिक चारित्र, छेदोपस्थापनी चारित्र, परिहारविशुद्ध चारित्र, सूक्ष्मसंपराय चारित्त नां पज्जवा थकी अनंतगुण अधिक हुवै, पिण हीण तुल्य न हुवै । अनें यथाख्यात चारित्र नां पज्जवा यथाख्यात संघाते तुल्य हुवै, हीण अधिक नथी ।

संयतों के चारित्र-पर्यवों का अल्पबहुत्व

२०. हे प्रभु ! एह सामायिक चारित्त, छेदोपस्थापनी जोय ।
परिहारविशुद्ध सूक्ष्मसंपरायज, यथाख्यात अवलोय ।।

२०. एएसि णं भंते ! सामाइय-छेदोवट्ठावणिय-परिहार-विसुद्धिय-सुहुमसंपराय-अहक्खायसंजयाणं

*लय : रुड़ै चन्द निहालै हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. ए पांचूं चारित्त नां पज्जवा, जघन्य अनें उत्कृष्ट।
कवण-कवण थी जावत कहियै, विशेष अधिक सुइष्ट।।
२२. श्रीजिन भाखै सामायिक चारित्त, छेदोपस्थापनीक जोय।
बिहुं नां जघन्य पज्जव है तुला, सर्व थी थोड़ा होय।।

२३. तेह थकी परिहारविशुद्ध नां, जघन्य चरित्त पर्याय।
तेह अनंतगुणा कहियै छै, अधिक क्षयोपशम ताय।।
२४. तेहिज फुन परिहारविशुद्धज, चारित्र नां सुविशेख।
उत्कृष्टा पज्जवा अधिकेरा, अनंतगुणा संपेख।।
२५. तेह थकी सामायिक नां फुन, छेदोपस्थापनी केरा।
उत्कृष्ट चरित्त पज्जवा है तुला, अनंतगुणा है सुमेरा।।

२६. तेहथी सूक्ष्मसंपराय तणां जे, जघन्य चरित्त पर्याय।
एह अनंतगुणा कहियै छै, इम भाखै जिनराय।।
२७. तेहथी सूक्ष्मसंपराय तणां फुन, चरित्त पज्जव उत्कृष्ट।
अमल अनंतगुणा कहियै छै, वर जिन वचन विशिष्ट।।
२८. तेह थकी यथाख्यात संजत नां, नहिं जघन्य नहीं उत्कृष्ट।
चारित्त पज्जव अनंतगुणा छै, सर्व थकी ए इष्ट।।
२९. शत पणवीसम देश सप्तम नों, चिहुं सौ छपनमीं ढाल।
भिक्खु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल।।

२१. जहण्णुक्कोसगाणं चरित्तपज्जवाणं कयरे कयरेहिंतो जाव (सं० पा०) विसेसाहिया वा?
२२. गोयमा! सामाइयसंजयस्स छेओवट्ठावणियसंजयस्स य एएसि णं जहण्णगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला सव्वत्थोवा,
२३. परिहारविसुद्धियसंजयस्स जहण्णगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,
२४. तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,
२५. सामाइयसंजयस्स छेओवट्ठावणियसंजयस्स य एएसि णं उक्कोसगा चरित्तपज्जवा दोण्ह वि तुल्ला अणंतगुणा,
२६. सुहुमसंपरायसंजयस्स जहण्णगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,
२७. तस्स चेव उक्कोसगा चरित्तपज्जवा अणंतगुणा,
२८. अहक्खायसंजयस्स अजहण्णमणुक्कोसगा चरित्त-पज्जवा अणंतगुणा। (श. २५।४९६)

ढाल : ४५७

संयत में योग

दूहा

१. सामायिक संजत प्रभु! स्यूं सजोगी होय?
अथवा अजोगी हुवै? प्रश्न गोयम सुजोय।।
२. जिन कहै सजोगी हुवै, पुलाक जिम कहिवाय।
एवं जावत जाणवुं, वर सूक्ष्मसंपराय।।
३. यथाख्यात संजत जिको, स्नातक जिम कहिवाय।
सजोगी पिण ते हुवै, अजोगी पिण थाय।।

१. सामाइयसंजए णं भंते! किं सजोगी होज्जा? अजोगी होज्जा?
२. गोयमा! सजोगी जहा पुलाए। एवं जाव सुहुम-संपरायसंजए।
३. अहक्खाए जहा सिणाए। (श. २५।४९७)

संयत में उपयोग

*संजत भाव सुहामणा रे लाल।। (ध्रुपदं)

४. सामायिक संजत प्रभु! रे,
सागारोवउत्ते होय हो? जिनेंद्र देव!
कै अनाकारोवउत्ते हुवै रे लाल?
हिव जिन उत्तर जोय हो।। जिनेंद्र देव!

४. सामाइयसंजए णं भंते! किं सागारोवउत्ते होज्जा? अणागारोवउत्ते होज्जा?
गोयमा!

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. सागारोवउत्ता हुवै रे,
पुलाक जिम संपेख रे । गोयम शीस !
इम यावत यथाख्यात ही रे लाल,
नवरं इतरो विशेख रे ।। गोयम शीस !

५. सागारोवउत्ते जहा पुलाए। एवं जाव अहक्खाए, नवरं—

६. सूक्ष्मसंपराय संजती रे, सागारोवउत्ते होय रे। गो० !
अनागारोवउत्ते नहीं रे लाल,
तथाविध स्वभाव थी जोय रे ।। गो० !

६. सुहुमसंपराए सागारोवउत्ते होज्जा, नो अणागारोवउत्ते होज्जा। (श. २५।४९८)
सूक्ष्मसम्परायः साकारोपयुक्तस्तथास्वभावत्वादिति। (वृ. प. ९१४)

संयत में कषाय

७. प्रभु ! सामायिक सकषाइ विषे रे ?
के अकषाइ मांहि हो ? जिनेंद्र देव !
जिन कहै सकषाइ विषे रे लाल,
अकषाइ में नांहि रे ।। गो० !

७. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सकसायी होज्जा ? अकसायी होज्जा ?
गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा

८. कषायकुशील तणीं परै रे, छेदोपस्थापनी एम रे। गो० !
च्यार कषाय विषे हुवै रे लाल,
त्रिण बे इक विषे तेम रे ।। गो० !

८. जहा कसायकुसीले। एवं छेदोवट्ठावणिए वि।

९. परिहारविशुद्ध संजत तिको रे,
पुलाकवत अवलोय रे। गो० !
हुवै संजल चिहुं नें विषे रे लाल,
अकषायी में न होय रे ।। गो० !

९. परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए। (श. २५।४९९)

१०. पूछा सूक्ष्मसंपराय नीं रे, उत्तर दे जिनराय रे। गो० !
सकषाइ नें विषे हुवै रे लाल,
अकषाइ में नांय रे ।। गो० !

१०. सुहुमसंपरागसंजए—पुच्छा।
गोयमा ! सकसायी होज्जा, नो अकसायी होज्जा। (श. २५।५००)

११. जो सकषाइ नें विषे हुवै रे,
तो किती कषाय में थाय हो ? जि० !
जिन कहै एक संजल तणों रे लाल,
लोभ विषे कहिवाय रे ।। गो० !

११. जइ सकसायी होज्जा, से णं भंते ! कतिसु कसायेसु होज्जा ?
गोयमा ! एगम्मि संजलणलोभे होज्जा।

१२. यथाख्यात संजत तिको रे,
निर्ग्रंथ जिम अवलोय रे। गो० !
सकषाइ में नहीं हुवै रे लाल,
अकषायी में होय रे ।। गो० !

१२. अहक्खायसंजए जहा नियंठे। (श. २५।५०१)

सोरठा

१३. है उपशांत कषाय, गुणठाणे एकादशम।
क्षीणकषायी थाय, बारम तेरम चवदमें ।।

संयत में लेश्या

१४. *प्रभु ! सामायिक सलेशी विषे हुवै रे ?
तथा अलेशी मांय हो ? जि० !
जिन कहै सलेशी विषे हुवै रे लाल,
अलेशी में नहीं थाय रे ।। गो० !

१४. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सलेस्से होज्जा ? अलेस्से होज्जा ?
गोयमा ! सलेस्से होज्जा

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. कषायकुशील तणीं परै, कहवी इहां षट लेश रे । गो०!
इमहिज छेदोपस्थापनी रे लाल,
जिन वच पवर विशेष रे ।। गो० !

१५. जहा कसायकुसीले । एवं छेदोवट्ठावणिए वि ।

१६. परिहारविशुद्ध संजत तिको रे,
पुलाक नीं परै जोय रे । गो० !
तीन विशुद्ध लेश्या विषे रे लाल,
एह हुवै अवलोय रे ।। गो० !

१६. परिहारविसुद्धिए जहा पुलाए ।

वा.—एह बहुलपणैं ए तीन भली लेश्या हुवै अनैं छद्मस्थपणां नां जोग थी किणहिक वेला अशुभ लेश्या पिण आवती दीसै छै । नित्य प्रथम चरम जिन नैं वारै ए हुवै ते पडिकमणो पिण नित्य करै छै पंच महाव्रत सप्रतिक्रमणपणां थकी ।

१७. संपराय सूक्ष्म जिको रे, निर्ग्रंथ नीं परि न्हाल रे । गो० !
सलेशी नैंज विषे हुवै रे लाल,
एक शुक्ललेशी विषे भाल रे ।। गो० !

१७. सुहुमसंपराए जहा नियंठे ।

१८. यथाख्यात संजत जिको रे,
स्नातक जिम अवलोय रे । गो० !
नवरं इतरो विशेष छै रे लाल,
आगल कहियै सोय रे ।। गो० !

१८. अहक्खाए जहा सिणाए, नवर—

१९. जो सलेशी नैं विषे हुवै रे,
तो इक शुक्ललेश्या विषे होय रे । गो० !
तिहां परम शुक्ल कही रे लाल,
इहां शुक्ल कही सोय रे ।। गो० !

१९. जइ सलेस्से होज्जा, एगाए सुक्कलेस्साए होज्जा ।
(श. २५।५०२)

सोरठा

२०. स्नातक नैं इम ख्यात, सलेशी में पिण हुवै ।
अलेशी पिण थात, स्नातक में गुणठाण बे ।।
२१. जो सलेशी होय, तो परम शुक्ललेशी विषे ।
त्यां ए आख्यो सोय, ए तेरम गुणठाण छै ।।
२२. यथाख्यात नैं जाण, निर्ग्रंथ तणीं अपेक्षया ।
निर्विशेषण पिछाण, शुक्ल विषे ह्वै इम कह्यु ।।

२०. यथाख्यातसंयतः स्नातकसमान उक्तः, स्नातकश्च सलेश्यो वा स्यादलेश्यो वा, (वृ. प. ९१४)
२१. यदि सलेश्यस्तदा परमशुक्ललेश्यः स्यादित्येवमुक्तः,
(वृ. प. ९१४)
२२. यथाख्यातसंयतस्य तु निर्ग्रन्थत्वापेक्षया निर्विशेषेणापि शुक्ललेश्या स्याद् (वृ. प. ९१४)

संयत में परिणाम

२३. *सामायिक संजत प्रभु ! रे,
स्यूं वर्द्धमान परिणामें होय हो ? जि० !
कै घटता परिणाम विषे हुवै रे लाल ?
कै अवस्थित विषे जोय हो ? जि० !

२३. सामाइयसंजए णं भंते ! किं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ? हायमाणपरिणामे ? अवट्ठियपरिणामे ?

२४. जिन कहै वर्द्धमाने हुवै रे,
पुलाक जिम अवलोय रे । गो० !
हायमान नैं विषे वलि रे लाल,
अवस्थित विषे जोय रे ।। सुजाण शीस !

२४. गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे जहा पुलाए ।

*लय : धीज करै सीता सती रे लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. एवं जावत जाणवुं रे, चरित्त परिहारविशुद्ध रे। गो० !
तीनूं परिणाम विषे हुवै रे लाल,
श्री जिन वच अविरुद्ध रे ।। सु० !

२५. एवं जाव परिहारविसुद्धिए। (श. २५।५०३)

२६. सूक्ष्मसंपराय पूछयां कहै, वर्द्धमाने पिण होय रे। गो० !
फुन हायमान विषे हुवै रे लाल,
पिण अवस्थिते नहीं कोय रे ।। सु० !

२६. सुहुमसंपराए—पुच्छा ।
गोयमा ! वड्ढमाणपरिणामे वा होज्जा, हायमाण-परिणामे या होज्जा, नो अवट्ठियपरिणामे होज्जा।

गीतकछंद

२७. इह श्रेणि जे चढतो थको, ते वर्द्धमानपणे कह्युं ।
पड़तो थको जे हायमाने, दशम गुणठाणे रह्युं ।।

२७. सूक्ष्मसम्परायसंयतः श्रेणिं समारोहन् वर्द्धमानपरिणामस्ततो भ्रस्यन् हीयमानपरिणामः,
(वृ. प. ९१४)

२८. *निर्ग्रंथ जिम यथाख्यात छै रे,
वर्द्धमाने ह्वै सोय रे। सु० !
घटते परिणाम हुवै नहीं रे लाल,
अवस्थिते पिण होय रे ।। सु० !

२८. अहक्खाए जहा नियंठे। (श. २५।५०४)

सोरठा

२९. हायमान तिण वेर, संपराय-सूक्ष्म हुवै ।
यथाख्यात में हेर, हायमान परिणाम नहिं ।।

३०. *सामायिक संजत प्रभु ! रे,
काल केतलो होय हो ? जि० !
वर्द्धमान परिणाम में रे लाल ?
गोयम प्रश्न सुजोय हो ।। जि० !

३०. सामाइयसंजए णं भंते ! केवइयं कालं वड्ढमाण-परिणामे होज्जा ?

३१. श्री जिन भाखै जघन्य थी रे,
एक समय अवलोय रे। सु० !
जेम पुलाक भणी कह्यो रे लाल,
तिमहिज कहिवो सोय रे ।। सु० !

३१. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं जहा पुलाए।

गीतकछंद

३२. वद्रमान परिणामें जघन्य थी, समय एक बखाणियै ।
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त कहियै, हृदय जिन वच आणियै ।।
३३. फुन हायमाणे जघन्य थी, जे एक समय अहीजियै ।
उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त ए पिण, पवर न्याय लहीजियै ।।
३४. वलि अवस्थिते पिण एक समयो, जघन्य थी जिन आखियै ।
उत्कृष्ट थी जे सप्त समया, आण थी अभिलाखियै ।।

वा.—तीनूं परिणाम जघन्य एक समय कह्या ते किम ? जे एक समय रही मरण पामैं एहवुं जणाय छै।

३५. *एवं जावत जाणवुं रे, पडिहारविशुद्ध लगेह रे। सु० !
स्थित तीनूं परिणाम नीं रे लाल,
सामायिक जिम लेह रे ।। सु० !

३५. एवं जाव परिहारविसुद्धिए। (श. २५।५०५)

---

* लय : धीज करै सीता सती रे लाल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. संपराय-सूक्ष्म प्रभु रे!
वर्द्धमान परिणामेह हो। जि० !
केतला काल लगे हुवै रे लाल ?
प्रश्न गोयम गुणगेह रे ।। गो० !

३६. सुहुमसंपरागसंजए णं भंते! केवतियं कालं वड्ढमाणपरिणामे होज्जा ?

३७. श्रीजिन भाखै गोयमा रे! जघन्य समय इक इष्ट रे। गो० !
स्थित वर्द्धमान परिणाम नीं रे लाल,
अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट रे ।। सु० !

३७. गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं। (श. २५।५०६)

३८. हायमान कितलो अद्धा रे? एवं चेव उदिष्ट रे। सु० !
जघन्य समय एक जाणवुं रे लाल,
अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट रे ।। गो० !

३८. केवतियं कालं हायमाणपरिणामे होज्जा? एवं चेव। (श. २५।५०७)

सोरठा

३९. ए सूक्ष्मसंपराय, वर्द्धमान परिणाम में।
समय रही मृत्यु पाय, जघन्य थकी इक समय इम ।।

३९. 'जहन्नेणं एक्कं समयं' ति सूक्ष्मसम्परायस्य जघन्यतो वर्द्धमानपरिणाम एकं समयं प्रतिपत्तिसमयानन्तरमेव मरणात्, (वृ. प. ९१४)

४०. अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट, ते गुणस्थानक नैंज जे।
इतो प्रमाणज इष्ट, हायमान पिण इह विधै ।।

४०. 'उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं' ति तद्गुणस्थानकस्यै-तावत्प्रमाणत्वात्, एवं तस्य हीयमानपरिणामोऽपि भावनीय इति। (वृ. प. ९१४)

४१. *यथाख्यात चारित्त प्रभु! रे,
काल केतलो जेह हो। जि० !
वर्द्धमान परिणामे हुवै रे लाल,
चढतै परिणामेह हो? जि० !

४१. अहक्खायसंजए णं भंते! केवतियं कालं वड्ढमाण-परिणामे होज्जा ?

४२. श्री जिन भाखै जघन्य थी रे, अंतर्मुहूर्त्त जोय रे। गो० !
उत्कृष्टो पिण तसु अद्धा रे लाल,
अंतर्मुहूर्त्त होय रे ।। गो० !

४२. गोयमा! जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेण वि अंतोमुहुत्तं। (श. २५।५०८)

गीतकछंद

४३. उपजावस्यै ए ज्ञान केवल, यथाख्यात विषे सही।
वर द्वादशम गुणस्थान में ए, वर्द्धमानपणुं लही ।।

४३. यो यथाख्यातसंयतः केवलज्ञानमुत्पादयिष्यति। (वृ. प. ९१४)

४४. अथवाज सेलेशी सुप्रतिपन्न, वर्द्धमान हुवै वही।
इम जघन्य थी उत्कृष्ट थी पिण, काल अंतर्मुहूर्त्त ही ।।

४४. यश्च शैलेशीप्रतिपन्नस्तस्य वर्द्धमानपरिणामो जघन्यत उत्कर्षतश्चान्तर्महुर्त्तं तदूत्तरकालं तद्व्यवच्छेदात्, (वृ. प. ९१४)

४५. *अवस्थित काल केतलो रे ?
जिन कहै समय जघन्य रे। सु० !
उत्कृष्ट पूर्व कोड़ ही रे लाल,
देश ऊण ते जन्य रे ।। सु० !

४५. केवतियं कालं अवट्ठियपरिणामे होज्जा? गोयमा! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। (श. २५।५०९)

सोरठा

४६. उपशम काल तणेह, समय एक रही मरण ह्वै।
जघन्य समय इक जेह, यथाख्यात अवस्थित अद्धा ।।

४६. अवस्थितपरिणामस्तु जघन्येनैकं समयं, उपशमा-द्धायाः प्रथमसमयानन्तरमेव मरणात्, (वृ. प. ९१४)

***लय : धीज करै सीता सती रे लाल**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. उत्कृष्टो जे काल, देश ऊण पुव्वकोड़ हो ।
वर्द्धमान विण न्हाल, अवस्थित उत्कृष्ट अद्ध ।।

४८. *देश बे सौ सतावन तणों रे,
चिहुं सौ सतावनमीं ढाल रे । सु० !
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे लाल,
'जय-जश' हरष विशाल रे ।। सु० ;

ढाल : ४५८

संयत के कर्मप्रकृति का बन्ध

दूहा

१. प्रभु ! सामायिक संजती, किता कर्म नीं जाण ।
प्रकृति ते बांधै अछै ? तब भाखै जगभाण ।।
२. बंधक सप्तविधे तिको, बकुश जेम अवधार ।
अठविध बंधक पिण वली, इम यावत परिहार ।।
३. संपराय-सूक्ष्म पृच्छा ? तब भाखै जिनराय ।
आयु मोहनी वर्ज नैं, षट प्रकृति बंधाय ।।

४. आउखा नों बंध जे, अप्रमत्त अंत लगेह ।
बादर कषाय उदय थी, मोह बंध नवम गुणेह ।।
५. ते माटै षटविध बंधक, ए सूक्ष्मसंपराय ।
आयू नैं वलि मोहनी, बे न बंधै इण न्याय ।।
६. यथाख्यात फुन जाणवुं, स्नातक जिम इक बंध ।
तथा अबंधक पिण हुवै, सेलेशी गुण[1] संध ।।

१. सामाइयसंजए णं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ बंधइ ?
गोयमा !
२. सत्तविहबंधए वा अट्ठविहबंधए वा, एवं जहा बउसे ।
एवं जाव परिहारविसुद्धिए । (श० २५।५१०)
३. सुहुमसंपरागसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! आउय-मोहणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ बंधति ।
४,५. सूक्ष्मसंपरायसंयतो ह्यायुर्न बध्नाति अप्रमत्तान्तत्वात्तद्बन्धस्य, मोहनीयं च बादरकषायोदयाभावान्न बध्नातीति
तद्वर्जाः षट् कर्मप्रकृतीर्बध्नातीति । (वृ. प. ९१५)
६. अहक्खायसंजए जहा सिणाए । (श. २५।५११)

संयत के कर्मप्रकृति का वेदन

७. सामायिक संजत प्रभु ! जिनराया रे,
किती कर्म प्रकृति वेदेह ? शीस सुखदाया रे ।
जिन कहै अष्ट वेदै सही, मुनिराया रे,
निश्चै करीनैं एह, संत सुखदाया रे ।।
८. इम जाव सूक्ष्मसंपराय है, मुनिराया रे,
यथाख्यात सुविचार, संत सुखदाया रे ।
कर्म प्रकृति वेदै सप्त ही, मुनिराया रे,
अथवा वेदै च्यार, संत सुखदाया रे ।।
९. सप्त कर्म प्रति वेदतो मु०, मोहनी वर्जी सात, संत० ।
एकादशम गुणठाण ही मु०,
फुन द्वादशम विख्यात, संत० ।।

७. सामाइयसंजए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेति ?
गोयमा ! नियमं अट्ठ कम्मप्पगडीओ वेदेति ।

८. एवं जाव सुहुमसंपराए । (श. २५।५१२)
अहक्खाए—पुच्छा ।
गोयमा ! सत्तविहवेदए वा, चउव्विहवेदए वा ।

९. यथाख्यातसंयतो निर्ग्रन्थावस्थायां 'मोहवज्ज' त्ति मोहवर्जानां सप्तानां कर्मप्रकृतीनां वेदको, मोहनीयस्योपशान्तत्वात् क्षीणत्वाद्वा । (वृ. प. ९१५)

---

* लय : बाड़ी फूली अति भली

१. गुणस्थान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. च्यार कर्म प्रति वेदतो मुनि०, वेदनी आयू जाण, संत० ।
नाम अनें वलि गोत्र नै मुनि०, तेरमें चवदम ठाण, संत० ।।

१०. चत्तारि वेदेमाणे वेयणिज्जाउय-नामगोयाओ चत्तारि कम्मप्पगडीओ वेदेति । (श. २५।५१३)
स्नातकवस्थायां तु चतसृणामेव, घातिकर्म्मप्रकृतीनां तस्य क्षीणत्वात् । (वृ. प. ९१५)

संयत के कर्म प्रकृति की उदीरणा

११. सामायिक किता कर्म नीं, जिनराया रे,
प्रकृति उदीरै तेह ? स्वाम सुखदाया रे ।
जिन भाखै सतविध तिको मुनि०,
जिम बकुश तिम एह, संत सुखदाया रे ।।

११. सामाइयसंजए णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ उदीरेति ?
गोयमा ! सत्तविहउदीरए वा जहा बउसो ।

गीतकछंद

१२. इम सप्त वा अठ षट तथा जे, कर्म प्रकृति उदीरही ।
विध सप्त कर्म उदीरतो ते, आयु वर्जी सप्त ही ।।
१३. अठ कर्म प्रति उदीरतो, प्रतिपूर्ण अष्ट उदीरना ।
षट कर्म प्रति उदीरतो ते, वेदनी आयू बिना ।।

१४. *एवं जावत जाणवुं मुनि०,
परिहारविशुद्ध सुसंच, संत० ।
सूक्ष्मसंपराय पूछियां मुनि०,
जिन कहै षट वा पंच, संत ।।

१४. एवं जाव परिहारविसुद्धिए । (श. २५।५१४)
सुहुमसंपराए—पुच्छा ।
गोयमा ! छव्विहउदीरए वा, पंचविहउदीरए वा ।

१५. छ कर्म प्रकृति उदीरतो मुनि०, आयू वेदनी टाल, संत० ।
मोह आयू वेदनी वर्ज नें मुनि०,
पंच उदीरतो न्हाल, संत० ।।

१५. छ उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्जवज्जाओ छ कम्मप्पगडीओ उदीरेइ, पंच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ पंच कम्मप्पगडीओ उदीरेइ । (श. २५।५१५)

१६. यथाख्यात नें पूछियां जिन०,
जिन कहै पंचविध ताहि, संत० ।
अथवा उदीरै बे कर्म नें मुनि०,
अथवा उदीरै नांहि, सं० ।।

१६. अहक्खायसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! पंचविहउदीरए वा दुविहउदीरए वा अणुदीरए वा ।

१७. पंच कर्म नें उदीरतो मुनि०, आयू वेदनी मोह, संत० ।
ए तीनूं वर्जी करी मुनि०,
शेष निर्ग्रंथ जिम सोह, संत० ।।

१७. पंच उदीरेमाणे आउय-वेयणिज्ज-मोहणिज्जवज्जाओ ।
सेसं जहा नियंठस्स । (श. २५।५१६)

सोरठा

१८. उदीरतो जे दोय, नाम गोत्र कर्म प्रकृति ।
एह निर्ग्रंथ जिम सोय, सेलेशी अनुदीरका ।।

संयत के उपसंतद्दहान

१९. *प्रभु ! सामायिक संजती जिन०,
तजतो सामायिक भाव, स्वाम० ।
स्यूं छांडै स्यूं आदरै ? जिन०,
भाखै भवदधि नाव, स्वाम० ।।

१९. सामाइयसंजए णं भंते ! सामाइयसंजयत्तं जहमाणे किं जहति ? किं उवसंपज्जति ?

*लय : बाड़ी फूली अति भली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२०. जिन कहै सामायिक तजै मुनि०,
छेदोपस्थापनी सार, संत० ।
वलि सूक्ष्मसंपराय नैं मुनि०, करै तिको अंगीकार, संत० ।।
२१. वलि असंजम आदरै मुनि०, श्रावकपणु आदरंत, संत० ।
ए चिहुं स्थानक पड़िवजै मुनि०, मुनि सामायिकवंत, संत० ।।

वा०—इहां सामायिकपणों तजै अनैं छेदोपस्थापनीय संजतपणां प्रतै पड़िवजै, चतुर्याम धर्म थकी पंचयाम धर्म संक्रमैं पार्श्वनाथ शिष्य नीं परै। अथवा शिष्यक महाव्रत आरोपण नैं विषे १, अथवा सूक्ष्मसंपरायपणों पड़िवजै श्रेणि नां पड़िवजवा थकी २, अथवा असंजम प्रति अंगीकार करै सामायिक में काल करी देवता हुवै ते माटै तथा सामायिक चारित्त भांगी अविरती हुवै ते माटै ३ अथवा सामायिक चारित्र भांगी देशव्रत आदरै ए संजमासंजम में आवै ।

२०,२१. गोयमा ! सामाइयसंजयत्तं जहति । छेदोवट्ठावणियसंजयं वा, सुहुमसंपरागसंजयं वा, असंजमं वा, संजमासंजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।५१७)

वा०—सामायिकसंयतः सामायिकसंयतत्वं त्यजति छेदोपस्थापनीयसंयतत्वं प्रतिपद्यते, चतुर्यामधर्मात्पञ्चयामधर्मसङ्क्रमे पार्श्वनाथशिष्यवत्, शिष्यको वा महाव्रतारोपणे, सूक्ष्मसम्परायसंयतत्वं वा प्रतिपद्यते श्रेणिप्रतिपत्तितः असंयमादिर्वा भवेद्भावप्रतिपातादिति । (वृ. प. ९१५)

२२. छेदोपस्थानीय पूछियां मुनि०, भाखै तब भगवंत, संत० ।
छेदोपस्थापनीक नैं तजै मुनि०, सामायिक आदरंत, संत० ।।
२३. वलि परिहारविशुद्ध नैं मुनि०, सूक्ष्मसंपराय सुसंच, संत० ।
असंजम श्रावकपणां प्रतै मुनि०, पड़िवजै ए पंच, संत० ।।

वा०—छेदोपस्थापनीय संजत नों प्रश्न । उत्तर—छेदोपस्थापनीय संजम प्रतै त्यजै—छांडीनैं सामायिक संजम प्रतै पड़िवजै । ते आदिदेव तीर्थ नां साधु अजितनाथ नां तीर्थ प्रतै पड़िवजता थका १ तथा परिहारविशुद्धिक संजम प्रतै छेदोपस्थापनीयवंत हीज परिहारविशुद्ध संजम नैं योगपणां थकी २, अथवा सूक्ष्मसंपराय संजत प्रतै ३, अथवा असंजम पड़िवजै ४, अथवा संजमासंजम प्रतै पड़िवजै ५।

२२,२३. छेदोवट्ठावणिए—पुच्छा ।
गोयमा ! छेओवट्ठावणियसंजयत्तं जहति । सामाइयसंजयं वा, परिहारविसुद्धियसंजयं वा, सुहुमसंपरागसंजयं वा असंजमं वा, संजमासंजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।५१८)

वा०—तथा छेदोपस्थापनीयसंयतश्छेदोपस्थापनीयसंयतत्वं त्यजन् सामायिकसंयतत्वं प्रतिपद्यते, यथाऽऽदिदेवतीर्थसाधुः अजितस्वामीतीर्थं प्रतिपद्यमानः, परिहारविशुद्धिकसंयतत्वं वा प्रतिपद्यते, छेदोपस्थापनीयवत एव परिहारविशुद्धिसंयमस्य योग्यत्वादिति । (वृ. प. ९१५)

२४. पूछा परिहारविशुद्ध नीं मुनि०, जिन कहै तजै परिहार, संत०।
आदरै छेदपस्थापनी मुनि०, अथवा असंजम धार, संत० ।।

वा० —परिहारविशुद्धिक संजम प्रतै छांडै छेदोपस्थापनीय संजतपणों पड़िवजै गच्छादिक नां आश्रयण थकी १, अथवा असंजमपणों पड़िवजै ते देवपणें ऊपजवा थकी आउखो पूरो करी देवता हुवै ते असंजमी हुवै ते भणी असंजम प्रति पड़िवजै एहवुं कह्यु ।

२४. परिहारविसुद्धिए—पुच्छा ।
गोयमा ! परिहारविसुद्धियसंजयत्तं जहति । छेदोवट्ठावणियसंजयं वा असंजमं वा उवसंपज्जति । (श. २५।५१९)

वा०—तथा परिहारविशुद्धिकसंयतः परिहारविशुद्धिकसंयतत्वं त्यजन् छेदोपस्थापनीयसंयतत्वं प्रतिपद्यते पुनर्गच्छाद्याश्रयणात् असंयमं वा प्रतिपद्यते देवत्वोत्पत्ताविति । (वृ. प. ९१५)

२५. सूक्ष्मसंपराय पूछियां जिनराया रे, भाखै जिन जगतार, संत० ।
तजै सूक्ष्मसंपराय नैं मुनि०, करै सामायिक अंगीकार, संत० ।।
२६. अथवा छेदोपस्थापनी मुनि०, फुन आदरै यथाख्यात, संत० ।
वलि असंजम पड़िवजै मुनि०, ए चिहुं स्थानें आत, संत० ।।

वा०—सूक्ष्मसंपराय संजतपणें श्रेणि नैं पड़वो छांडवो सामायिक संजतपणों पड़िवजै १, अथवा छेदोपस्थापनीय संजमपणां प्रतै पड़िवजै २, अथवा यथाख्यात चारित्रपणों पड़िवजै श्रेणि नैं समारोहणे ३ अथवा असंजमपणों पड़िवजै ते देवपणें ऊपजवा थकी ४ ।

२५,२६. सुहुमसंपराए—पुच्छा ।
गोयमा ! सुहुमसपरायसंजयत्तं जहति । सामाइयसंजयं वा, छेओवट्ठावणियसंजयं वा, अहक्खायसंजयं वा, असंजमं वा उवसंपज्जइ । (श. २५।५२०)

वा०—तथा सूक्ष्मसंपरायसंयतः सूक्ष्मसंपरायसंयतत्वं श्रेणीप्रतिपातेन त्यजन् सामायिकसंयतत्वं प्रतिपद्यते यदि पूर्वं सामायिकसंयतो भवेत् छेदोपस्थापनीयसंयतत्वं वा प्रतिपद्यते यदि पूर्वं छेदोपस्थापनीयसंयतो भवेत्, यथाख्यातसंयतत्वं वा प्रतिपद्यते श्रेणीसमारोहणत इति, (वृ. प. ९१५,९१६)

*लय : बाड़ी फूली अति भली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. यथाख्यात मुनि पूछियो जिन०,
भाखै तब जिनराय, स्वाम० ।
यथाख्यात चारित्र तजै मुनि०, आदरै सूक्ष्मसंपराय, संत० ।।
२८. वलि असंजम प्रति ग्रहै मुनि०,
अथवा सिद्धगति जाय, संत० ।
यथाख्यातपणुं तजि करी मुनि०,
ए त्रिहुं स्थानक पाय, संत० ।।

वा०—यथाख्यात संजमपणों छांडै श्रेणि प्रतै पतन थकी सूक्ष्मसंपराय संजम प्रतै पड़िवजै १, उपशांतमोहपणैं मरण थकी देव उत्पत्ति नैं विषे २, अथवा सिद्ध गति पामैं स्नातकपणां थकी ३ ।

२७. अहक्खायसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! अहक्खायसंजयत्तं जहति । सुहुमसंपरागसंजयं वा,
२८. असंजमं वा, सिद्धिगतिं वा उवसंपज्जइ ।
(श. २५।५२१)

वा०—तथा यथाख्यातसंयतो यथाख्यातसंयतत्वं त्यजन् श्रेणिप्रतिपतनात् सूक्ष्मसंपरायसंयतत्वं प्रतिपद्यते असंयमं वा प्रतिपद्यते, उपशान्तमोहत्वे मरणात् देवोत्पत्तौ, सिद्धिगतिं वोपसम्पद्यते स्नातकत्वे सतीति ।
(वृ. प. ९१६)

संयत में संज्ञा

२९. प्रभु ! सामायिक संजती जिन०,
स्यूं सण्णोवउत्ते होय ? स्वाम० ।
कै नोसण्णोवउत्ते हुवै ? जिन०, पूछै गोयम सोय, स्वाम० ।।
३०. जिन कहै सण्णोवउत्ते हुवै मुनि०, बकुश जेम विचार, संत० ।
नोसण्णोवउत्ते पिण हुवै मुनि०,
इम जाव विशुद्धपरिहार, संत० ।।
३१. संपराय-सूक्ष्म वली मुनि०, यथाख्यात अवलोय, संत० ।
कहियैं पुलाक तणीं परै मुनि०, नोसण्णोवउत्ते होय, संत० ।।

२९. सामाइयसंजए णं भंते ! किं सण्णोवउत्ते होज्जा ? नोसण्णोवउत्ते होज्जा ?

३०. गोयमा ! सण्णोवउत्ते जहा बउसो । एवं जाव परिहारविसुद्धिए ।

३१. सुहुमसंपराए अहक्खाए य जहा पुलाए ।
(श. २५।५२२)

संयत आहारक या अनाहारक

३२. प्रभु ! सामायिक संजती जिन०,
स्यूं आहारक में होय ? स्वाम० ।
कै अनाहारक नैं विषे हुवै ? जिन०,
पुलाक जिम ए जोय, स्वाम० ।।

सोरठा

३३. सामायिक मुनिराय, आहारक नैंज विषे हुवै ।
अनाहारके नांय, छठा थी नवमें गुणे ।।
३४. *एवं जावत जाणवुं मुनि०, वर सूक्ष्मसंपराय, संत० ।
यथाख्यात चारित्र तिको मुनि०,
स्नातक जिम कहिवाय, संत० ।।

३२. सामाइयसंजए णं भंते ! किं आहारए होज्जा ? अणाहारए होज्जा ? जहा पुलाए ।

३४. एवं जाव सुहुमसंपराए । अहक्खायसंजए जहा सिणाए । (श. २५।५२३)

सोरठा

३५. जे केवल समुद्घात, अनाहारके समय त्रिण ।
फुन शैलेसी ख्यात, शेष संजती आहारके ।।
३६. *पणवीसम देश सप्त नुं मुनि०,
चिहुं सौ अठावनमीं ढाल, संत० ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी मुनि०,
'जय-जश' हरष विशाल, संत० ।।

*लय : बाड़ी फूली अति भली····

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४५९

संयत के भव

दूहा

१. सामायिक संजत प्रभु ! कति भव ग्रहणे इष्ट ?
जिन कहै इक भव जघन्य थी, अठ भव ह्वै उत्कृष्ट ।।

२. इमहिज छेदोपस्थापनी, जघन्य एक भव आय ।
भव उत्कृष्टा अष्ट ह्वै, मरण चरण में थाय ।।

३. परिहारविशुद्ध तणीं पृच्छा, जघन्य एक भव आत ।
उत्कृष्टा भव ग्रहण त्रिण, इम यावत यथाख्यात ।।

१. सामाइयसंजए णं भंते ! कति भवग्गहणाइं होज्जा ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं, उक्कोसेणं अट्ठ ।
२. एवं छेदोवट्ठावणिए वि । (श. २५।५२४)

३. परिहारविसुद्धिए—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं, उक्कोसेणं तिण्णि । एवं जाव अहक्खाए । (श. २५।५२५)

संयत के आकर्ष—चारित्र की प्राप्ति

*परम वच आपरा प्रभुजी ।। (ध्रुपदं)

४. सामायिक संजत तणैं साहिब जी,
तेह एक भव मांय हो निसनेही ।
वार किती आवै तिको ? साहिब जी,
बकुश जेम कहिवाय हो ससनेही ।।

४. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! एगभवग्गहणिया केवतिया आगरिसा पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहण्णेणं जहा बउसस्स ।
(श. २५।५२६)

गीतकछंद

५. इक भव विषे इक वार
जघन्यज वार नव सय जेष्ठ ही ।
वर चरित्त सामायिक तणुं
आकर्ष जिन वच श्रेष्ठ ही ।।

६. *छेदोपस्थापनी पूछियां साहिबजी !
जिन कहै इक भव इष्ट हो ससनेही !
एक वार आवै जघन्य थी गोयमजी!
पृथक्त्व बीस उत्कृष्ट हो ससनेही !

६. छेदोवट्ठावणियस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं वीसपुहत्तं ।
(श. २५।५२७)

वा०—इहां पंच, षट आदि नैं पिण पृथक कहियै ते माटै छेदोपस्थापनीय चारित्र उत्कृष्ट छबीसी वार एतलै एकसौ बीस वार जणाय छै—

वा०—'वीसपुहुत्तं' ति छेदोपस्थापनीयस्योत्कर्षतो विंशतिपृथक्त्वं पञ्चषादिविंशतयः आकर्षाणां भवन्ति । (वृ. प. ९१६)

७. परिहारविशुद्ध तणीं पृच्छा साहिबजी !
जिन कहै इक भव सार हो ससनेही ।
एक वार आवै जघन्य थी गोयमजी !
उत्कृष्टो त्रिण वार हो ससनेही ।।

७. परिहारविसुद्धियस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं तिण्णि ।
(श. २५।५२८)

८. संपरायसूक्ष्म पृच्छा साहिबजी !
जिन कहै इक भव इष्ट हो स० !
एक वार ह्वै जघन्य थी गोयमजी !
च्यार वार उत्कृष्ट हो स० !

८. सुहुमसंपरायस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं चत्तारि ।
(श. २५।५२९)

---

*लय : आई छूं बेवा ओलंभड़ा सासूजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतकछंद

९. इक भव विषे जे श्रेणि उपशम, दोय वार संभाव ही।
इक वार में गुणठाण दशमज, चढत उत्तरतां लही।।
१०. इम वार बे जे श्रेणि उपशम, ग्रहण थी पहिछाण ही।
चिहुं वार एह चरित्र चउथो, वृत्तिकार बखाण ही।।

वा०—एक भव नें विषे उपशमश्रेणि दोय नें संभवै करि प्रत्येके संक्लिश्यमान विशुद्धिमान लक्षण सूक्ष्मसंपराय नां दोय नां भाव थकी च्यार वार पड़िवजै।

९,१०. 'उक्कोसेणं चत्तारि' त्ति एकत्र भवे उपशमश्रेणीद्वयसम्भवेन प्रत्येकं सङ्क्लिश्यमान विशुद्धयमानलक्षणसूक्ष्मसम्परायद्वयभावाच्चतस्रः प्रतिपत्तयः सूक्ष्मसम्परायसंयतत्वे भवन्ति, (वृ. प. ९१६)

११. *यथाख्यात नें पूछियां सा० !
जिन कहै इक भव धार हो स० !
एक वार आवै जघन्य थी गो० !
उत्कृष्टो दोय वार हो स० !

११. अहक्खायस्स—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्को, उक्कोसेणं दोण्णि। (श. २५।५३०)

गीतकछंद

१२. इक भव विषे वर श्रेणि उपशम, उभय वार संभावियै।
गुणठाण ग्यारम वार बे, इम वृत्तिकार बखाणियै।।

१२. 'अहक्खाए' इत्यादौ 'उक्कोसेणं दोन्नि' त्ति उपशमश्रेणीद्वयसम्भवादिति। (वृ. प. ९१६)

१३. *प्रभु ! सामायिक चरित ही सा० !
अनेक भव रै मांय हो नि० !
कतिवार आवै तिको ? सा० ! बकुश जिम कहिवाय हो स० !

१३ सामाइयसंजयस्स णं भंते ! नाणाभवग्गहणिया केवतिया आगरिसा पण्णत्ता ?
गोयमा ! जहा बउसे। (श. २५।५३१)

सोरठा

१४. उत्कृष्ट इक भव मांहि, नव सौ वारज आवही।
अठ भव लेखै ताहि, बोहितर सौ वार ही।।

१५. *छेदोपस्थापनी पूछियां सा० !
जिन कहै जघन्य थी दोय हो स० !
उत्कृष्ट नव सय ऊपरै सा० ! सहस्र मांहि अवलोय हो स० !

१५. छेदोवट्ठावणियस्स—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं उवरिं नवण्हं सयाणं अंतो सहस्सस्स।

गीतकछंद

१६. इक भव विषे उत्कृष्ट इक सौ वीस वारज आवियै।
इम अठ भवे अठगुणां कीधां, नव सय साठज भावियै।।

वा०—तेह थकी अनेरै प्रकार करिकै पिण जिम नव सय थी अधिक हुवै तिम कहिवो।

१६. किलैकत्र भवग्रहणे षड्विंशतय आकर्षाणां भवन्ति, ताश्चाष्टाभिर्भवैर्गुणिता नव शतानि षष्टयधिकानि भवन्ति, (वृ. प. ९१६)
वा०—इदं च सम्भवमात्रमाश्रित्य सङ्ख्याविशेषप्रदर्शनमतोऽन्यथाऽपि यथा नव शतान्यधिकानि भवन्ति तथा कार्यम् (वृ. प. ९१६)

१७. *परिहारविशुद्ध बहु भव विषे गो० !
आवै जघन्य थकी दोय वार हो स० !
सप्त वार उत्कृष्ट थी गो० ! पवर न्याय सुविचार हो स० !

१७. परिहारविसुद्धियस्स जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं सत्त।

सोरठा

१८. ते इक भव रै मांय, तीन वार कहिवा थकी।
वलि त्रिण भव में आय, ते माटै तसु भंग इम।।

१८. एकत्र भवे तेषां त्रयाणामुक्तत्वात् भवत्रयस्य च तस्याभिधानाद् (वृ. प. ९१६)

---

*लय : आई छूं देवा ओलम्भड़ा सासूजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतक छद

१९. इक भव विषे परिहारविशुद्धज, वार त्रिण उत्कृष्ट ही ।
भव द्वितीय में बे वार फुन, भव तृतीय वारज बे लही ।।

१९. एकत्र भवे त्रयं द्वितीये द्वयं तृतीये द्वयमित्यादि-विकल्पतः सप्ताकर्षाः परिहारविशुद्धिकस्येति,
(वृ. प. ९१६)

२०. अथवा प्रथम भव वार दोयज,
द्वितीय भव त्रिण वार ही ।
तृतीयेज भव में वार बे फुन, द्वितीय विकल्प ए लही ।।

२१. अथवा प्रथम भव एक वारज,
द्वितीय भव त्रिण वार ही ।
तृतीयेज भव में वार त्रिण फुन, तृतीय विकल्प ए लही ।।

२२. अथवा प्रथम भव तीन वारज, द्वितीय भव इक वार ही ।
फुन तृतीय भव त्रिण वार आवै, तुर्य विकल्प ए लही ।।

२३. अथवा प्रथम भव दोय वारज, द्वितीय भव बे वार ही ।
फुन तृतीय भव त्रिण वार आवै, पंचमो विकल्प लही ।।

२४. अथवा प्रथम भव तीन वारज,
द्वितीय भव त्रिण वार ही ।
फुन तृतीय भव इक वार आवै,
छठो विकल्प ए लही ।।

परिहार विशुद्ध नां विकल्प— ३२२, २३२, १३३, ३१३, २२३, ३३१ ।

२५. इम पवर विकल्प जेह बहुश्रुत कीजियै वर न्याव ही ।
बहु भव विषे परिहार इहविध, सप्त वारज भाव ही ।।

२६. *सखर सूक्ष्मसंपराय जे गो० !
बहु भव में अवधार हो स० !
जघन्य थकी बे वार ही गो० ! उत्कृष्टो नव वार स० !

२६. सुहुमसंपरागस्स जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं नव ।

सोरठा

२७. वर सूक्ष्मसंपराय, इक भव आवै वार चिहुं ।
फुन त्रिण भव में पाय, पूर्वे आख्यो तेहथी ।।

२७. सूक्ष्मसम्परायस्यैकत्र भवे आकर्षचतुष्कस्योक्तत्वाद् भवत्रयस्य च तस्याभिधानात् (वृ. प. ९१६)

गीतकछंद

२८. इक भव विषे चिहुं वार आवै,
द्वितीय पिण चिहुं वार ही ।
तृतीयज भवे इक वार आवै, इम कह्यूं वृत्तिकार ही ।।

२८. एकत्र चत्वारो द्वितीयेऽपि चत्वारस्तृतीये चैक इत्येवं नवेति । (वृ. प. ९१६)

२९. *यथाख्यात संजत भलो गो० !
बहु भव में सुविचार हो स० !
जघन्य थकी बे वार ही गो० !
उत्कृष्टो पंच वार हो स० !

२९. अहक्खायस्स जहण्णेणं दोण्णि, उक्कोसेणं पंच ।
(श. २५।५३२)

सोरठा

३०. यथाख्यात सुखदाय, इक भव आवै वार बे ।
फुन त्रिण भव में आय, पूर्वे आख्यो तेहथी ।।

३०,३१. यथाख्यातसंयतस्यैकत्र भवे द्वावाकर्षौ द्वितीये च द्वावेकत्र चैक इत्येवं पञ्चेति । (वृ. प. ९१६)

*लय : आई छूं देवा ओलम्भड़ा सासूजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गीतकछंद

३१. इक भव विषे बे वार आवै, द्वितीय पिण बे वार ही।
फुन इक भवे इक वार ए,
इहविध कह्यं वृत्तिकार ही ।।

वा० —'इहां सूक्ष्मसंपराय पहिलै, दूजै भवे च्यार-च्यार वार कही अनैं तीजे भवे क्षपकश्रेणि आवै ते माटै एक वार —इम एक विकल्पहीज कह्यं। पिण इम नथी कह्यं प्रथम भवे च्यार वार द्वितीय भवे बे वार, इग्यारमें गुणठाणे जातां आवतां दशमें आवै ते माटै। अनैं तीजे भवे तीन वार, इग्यारमें गुणस्थान जातां आवतां दशमों बे वार आवै। अनैं तेहिज भवे क्षपकश्रेणि चढै तिवारै दशमों आवै—इम एक भव में दोनूं श्रेणि चढै तिवारै ए विकल्प हुवै। पिण वृत्तिकार ए विकल्प नथी कह्यं। वलि परिहारविशुद्धि में एक विकल्प कही नें इत्यादि कह्यं तिम इहां इत्यादि पिण नथी कह्यं ते माटै एक भव में उपशम, क्षपक बे श्रेणि न चढै, एहवुं वृत्तिकार नों पिण अभिप्राय जणाय छै। अनैं पन्नवणा नां टबा में कह्यं—कर्म ग्रंथ नैं अभिप्राये तो एक भव में उपशम-श्रेणि, क्षपकश्रेणि बिहुं आवै अनैं आगम नैं अभिप्राये एक भव में उपशम-श्रेणि आवै तो वलि तिण भव में क्षपकश्रेणि नहीं आवै एहवूं कह्यं।'

(ज. स.)

संयत का काल

३२. *प्रभु ! सामायिक संजमी सा० !
हुवै काल थकी कितो काल हो ? नि० !
श्री जिन भाखै जघन्य थी गो० !
एक समय तसु न्हाल हो स० !

वा० —प्रतिपत्ति समय अनंतरहीज मरण थकी जघन्य थकी एक समय, इम वृत्तिकार कह्यं ते पंडित विचारी जोयजो।

भगवती शतक १२, उदेशा ९, सू. १८० धर्मदेव नीं स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देश ऊण कोड़ि पूर्व कही। तेहनुं अर्थ वृत्तिकार कह्यं जे अंतर्मुहूर्त्त अवशेष आयु छतै चारित्र प्रतै अंगीकार करै तेहनीं अपेक्षाये जघन्य अंतर्मुहूर्त्त जाणवूं। इण न्याय सामायिक चारित्र केतलो काल रहै ? तिहां जघन्य एक समय कह्यं। ते दशमां थी नवमें गुणस्थान आवी एक समय रही मरै ते सामायिक चारित्र जघन्य एक समय काल थकी संभवै। अथवा सामायिक चारित्रवंत प्रथम गुणस्थान आवी तत्खिण शंका मेटी निशंक थई सम्यक्त्व अनै सामायिक चारित्र बिहुं समकाले फरसी एक समय रही मरण पामैं, इण न्याय पिण जघन्य एक समय संभवै।

वलि जीवाभिगम नैं विषे कह्यं—मनुष्य स्त्री काल थकी केतलुं काल रहै ? तेहनुं उत्तर—क्षेत्र आश्रयी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट तीन पल्य पृथक कोड़ पूर्व अधिक। पूर्वे सात भव कोड़ पूर्व नैं आउखैं पाली नैं देवकुरु प्रमुख क्षेत्र मां ३ पल्य नैं आउखैं ऊपजै, तिवारै त्रिण पल्य पूर्व कोड़ि पृथक्त्व अधिक थावै। अनैं धर्मचरण आश्रयी जघन्य एक समय उत्कृष्टो देश ऊण पूर्व कोड़ि। इहां एक समय कह्यं ते पिण संजमी प्रथम गुणस्थान आवी तत्खिण शंका मेटी चारित्र फरसै ते एक समय रही मरण पामै इहां पिण ए न्याय संभवै। वृत्ति में ए न्याय नथी कह्यो।

३२. सामाइयसंजए णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,

वा० —'सामाइय' इत्यादौ सामायिकप्रतिपत्ति-समयसमनन्तरमेव मरणादेकः समयः,

(वृ. प. ९१७)

मणुस्सित्थी णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ? गोयमा ! खेत्तं पडुच्च जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं तिण्णि पलिओवमाइं पुव्वकोडीपुहुत्तमब्भहियाइं। धम्मं चरणं पडुच्च जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं देसूणा पुव्वकोडी। (जीवाजीवाभिगम २।५४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'वलि जीवाभिगम में कह्यु मनुष्य-स्त्री नीं केतला काल नीं स्थिति परूपी ? क्षेत्र आश्रयी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट तीन पल्य पृथक कोड़ पूर्व अधिक न्याय पूर्ववत । अनैं धर्म चरण आश्रयी जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट देश ऊण कोडि पूर्व । इहां पिण स्थिति री पूछा में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त ही । जे धर्मदेव नीं जघन्य अंतर्मुहूर्त्त नीं स्थिति कही ते न्याय इहां पिण संभवै । इहां पूछा में कालओ केवच्चिरं होई ? तिहां तो जघन्य एक समय कह्यू छै अनैं केवइं कालं ठिती पण्णत्ता ? एहवी पूछा में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त कह्यु छै एहनुं न्याय पूर्वे कह्यु तिम संभवै । वलि बहुश्रुत कहै ते सत्य ।' (ज. स.)

३३. उत्कृष्टो देश ऊण जे गो०! नव वर्ष ऊणों न्हाल हो स०!
पूर्व कोड़ कहीजियै गो० !
हिव कहूं न्याय विशाल हो स० !

सोरठा

३४. नवमो लागो तास, देश वर्ष नवमा तणों ।
आख्यो तसु नव वास, देश प्रतै वर्ष संग्रह्यो ।।
३५. सूत्र उववाई मांय, साधिक अठ वर्षायुखो ।
जघन्य थकी कहिवाय, ते सिवपद में संचरै ।।
३६. आयू कहियै आम, गर्भ काल पिण संग्रह्यो ।
ते पामै शिवधाम, प्रत्यक्ष देखो पाठ में ।।
३७. जे साधिक अठ वास, तेहिज नें नव वर्ष प्रभु ।
इहां कह्या छै तास, वर्ष नवम नुं देश ग्रह्यु ।।
३८. उत्कृष्टो पुव्व कोड़, देश ऊण आयू धणी ।
पामै शिव सुख जोड़, ए पिण गर्भ सहीत है ।।

३९. *इमहिज छेदोपस्थापनी गो० !
हिव परिहार कहिवाय हो स० !
जघन्य समय इक जाणवुं गो० !
ए समय रही मृत्यु पाय हो स० !
४०. उत्कृष्टो देश ऊण जे गो० !
ए ऊणों वर्ष गुणतीस हो स० !
पूर्व कोड़ हुवै तिको गो० !
विशुद्धपरिहार जगीस हो स० !

सोरठा

४१. उत्कृष्ट वर्ष गुणतीस, तेह देश कर ऊण जे ।
पूर्व कोड़ जगीस, कह्यु परिहारविशुद्ध अद्ध ।।
४२. कोड़ पूर्व स्थितिवंत, साधिक अष्टज वर्ष नें ।
लियो चरण कर खंत, बीस वर्ष तेहनैं थया ।।
४३. पूर्वाधीत कहीज, ते पिण गुरु आज्ञा थकी ।
तप परिहार वहीज, ऊण वर्ष गुणतीस इम ।।

*लय : आई छूं देवा ओलम्भड़ा सासूजी

३३. उक्कोसेणं देसूणएहिं नवहिं वासेहिं ऊणिया पुव्वकोडी ।

३५. जीवा णं भंते ! सिज्झमाणा कयरम्मि आउए सिज्झंति ?
गोयमा ! जहण्णेणं साइरेगट्ठवासाउए····।
(ओवाइयं सू. १८८)

३६-३८. 'उक्कोसेणं देसूणएहिं नवहिं वासेहिं ऊणिया पुव्वकोडी' त्ति यदुक्तं तद्गर्भसमयादारभ्यावसेयम्, अन्यथा जन्मदिनापेक्षयाऽष्टवर्षोनिकैव सा भवतीति,
(वृ. प. ९१७)

३९. एवं छेदोवट्ठावणिए वि । परिहारविसुद्धिए जहण्णेणं एक्कं समयं,
'परिहारविसुद्धिए जहन्नेणं एक्कं समयं' ति मरणापेक्षमेतत्,
(वृ. प. ९१७)

४०. उक्कोसेणं देसूणएहिं एकूणतीसाए वासेहिं ऊणिया पुव्वकोडी ।

४१-४४. 'उक्कोसेणं देसूणएहिं' ति, अस्यायमर्थः—देशोननववर्षजन्मपर्यायेण केनापि पूर्वकोट्यायुषा प्रव्रज्या प्रतिपन्ना, तस्य च विंशतिवर्षप्रव्रज्यापर्यायस्य दृष्टिवादोऽनुज्ञातस्ततश्चासौ परिहारविशुद्धिकं प्रतिपन्नः, तच्चाष्टादशमासमानमप्यविच्छिन्नतत्परिणामेन तेनाजन्म पालितमित्येवमेकोनत्रिंशद्वर्षोनां पूर्वकोटिं यावत्तस्यादिति, (वृ. प. ९१७,९१८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. छै तसु मास अठार, पिण अविछिन्न परिणाम करि ।
जीवै ज्यां लग सार, ह्वै परिहारविशुद्ध जे ।।

वा०—'इहां कोइ पूछै परिहारविशुद्धिक चारित्र अठारै मास नुं कह्यं। अनैं एक भव में उत्कृष्ट तीन वार पिण आवतुं कह्यं तो ए अठारै मास रै लेखै तो देशूण कोड़ पूर्व तांइ ए चारित्र रहै, तिवारै तीन वार आवा रो नियम रह्यो नथी। अठारै मास रै लेखै घणी वार आयो जोइये, तेहनुं उत्तर—ए परिहार-विशुद्धिक चारित्र छेदोपस्थापनिक में आवी परिहारविशुद्धिकपणुं अंगीकार करै तिवारै तीन बार उत्कृष्ट हुवै। अनैं ए परिहारविशुद्धिक अठार मास पछै छेदोपस्थापनिक में आव्युं नथी अनैं तेणे परिहारविशुद्धिक चारित्र नैं अविछिन्न परिणामेंज देशूणो कोड़ पूर्व तांइ रहै।' (ज. स)

४५. *संपरायसूक्ष्म तिको गो०! निर्ग्रंथ जेम सुदृष्ट हो स० !
समय एक हुवै जघन्य थी गो० !
अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट हो स० !

४५. सुहुमसंपराए जहा नियंठे।

सोरठा

४६. ए दशमें गुणठाण, समय एक रहीनें मुओ।
जघन्य समय इक जाण, उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त अद्ध ।।

४७. *यथाख्यात संजत तिको गो० !
सामायिक जिम जोय हो स० !
समय एक हुवै जघन्य थी गो० !
समय रही मृत्यु होय हो स० !

४७. अहक्खाए जहा सामाइयसंजए। (श. २५।५३३)

४८. उत्कृष्टो देश ऊण जे गो०! पूर्व कोड़ अवलोय हो स० !
नव वर्षे करि ऊण जे गो० !
अष्ट वर्ष जाभो होय हो स० !

ए एक वचन आश्री कह्यो।

हिवै बहुवचन आश्री कहै छै—

४९. बहुवचने सामायिका सा० !
हुवै काल थकी कितो काल हो ? नि० !
जिन कहै सर्व काले हुवै गो० !
विदेह शाश्वता न्हाल हो स० !

४९. सामाइयसंजया णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होंति ?
गोयमा ! सव्वद्धं। (श. २५।५३४)

५०. बहु वच छेदोपस्थापनी सा० !
प्रश्न कियां कहै स्वाम हो स० !
जघन्य थकी रहे एतलो गो० !
वर्ष अढीसौ आम हो स० !

५०. छेदोवट्ठावणियसंजया—पुच्छा।
गोयमा ! जहण्णेणं अड्ढाइज्जाइं वाससयाइं,

गीतकछंद

५१. उत्सर्प्पिणी धुर तीर्थंकर नें, तीर्थ ज्यां लग जाणियै ।
वर द्वितीय एह चरित्त ह्वै ते, विमल न्याय बखाणियै ।।

५२. फुन तास तीर्थ हुवै अछै ए, वर अढीसौ वास ही ।
इह कारणे ए जघन्य अद्धा, कालथीज प्रकाश ही ।।

५१. तत्रोत्सर्प्पिण्यामादितीर्थकरस्य तीर्थं यावच्छेदोप-स्थापनीयं भवतीति, (वृ. प. ९१८)

५२. तीर्थं च तस्य सार्द्धे द्वे वर्षशते भवतीत्यत उक्तं—'अड्ढाइज्जाइं' इत्यादि, (वृ. प. ९१८)

---

*लय : आई छूं देवा ओलम्भड़ा सासूजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. *उत्कृष्टो सागर एतलो गो० ! पचास लक्षज कोड़ हो स०!
अवसर्प्पिणी धुर जिन तणों गो० !
तीर्थ ऋषभवत जोड़ हो स० !

५३. उक्कोसेणं पण्णासं सागरोवमकोडिसयसहस्साइं ।
(श. २५।५३५)
तथाऽवसर्प्पिण्यामादितीर्थकरस्य तीर्थं यावच्छेदोपस्थापनीयं प्रवर्त्तते तच्च पञ्चाशत्सागरोपमकोटीलक्षा इत्यतः 'उक्कोसेणं पन्नास' मित्याद्युक्तमिति ।
(वृ. प. ९१८)

५४. वलि परिहारविशुद्ध नीं सा० !
बहु वच पूछ्यां तास हो नि० !
श्री जिन भाखै जघन्य थी गो० !
देशूणी दोय सौ वास हो स० !

५४. परिहारविसुद्धीयसंजया— पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं देसूणाइं दो वाससयाइं

यतनी

५५. उत्सर्प्पिणी काले तास, वर प्रथम तीर्थंकर पास ।
कोइ सौ वर्ष आयुषवंत, परिहारविशुद्ध पड़िवजंत ।।
५६. वलि तेहनैं समीपे सोय, तसु जीवित अंते जोय ।
ते पिण सौ वर्ष आयुवंत, परिहारविशुद्ध पड़िवजंत ।।
५७. इम बिहुं नों परिहारविशुद्ध, थया दोय सौ वर्ष संसुद्ध ।
तेहथी आगल अद्धा मांय, परिहारविशुद्ध न थाय ।।
५८. देश थकी ऊणों इहां आख्यो, तेहनों न्याय वृत्ति में दाख्यो ।
वर्ष गुणतीस ऊणों तेह, परिहारविशुद्ध पड़िवजेह ।।
५९. इम बीजो पिण परिहार चारित्तियो,
वर्ष गुणतीस ऊणों गिणियो ।
इतरै दोय सौ वर्षां मांय, ऊणा वर्ष अठावन थाय ।।
६०. ए टीकाकार व्याख्यान, वृत्ति विषे कही इम वान ।
चूर्णिकार पिण इमहिज आखैं, पिण इतरो विशेषज भाखैं ।।
६१. अवसर्प्पिणी काल रै मांय, एह चरम जिनेंद्र अपेक्षाय ।
इम जघन्य थकी सुविमास, देश ऊणों दोय सौ वास ।।

५५. उत्सर्प्पिण्यामाद्यस्य जिनस्य समीपे कश्चिद्वर्षशतायुः परिहारविशुद्धिकं प्रतिपन्नः (वृ. प. ९१८)
५६,५७. तस्यान्तिके तज्जीवितान्तेऽन्यो वर्षशतायुरेव ततः परतो न तस्य प्रतिपत्तिरस्तीत्येवं द्वे वर्षशते,
(वृ. प. ९१८)
५८ ५९. तयोश्च प्रत्येकमेकोनत्रिंशति वर्षेषु गतेषु तत्प्रतिपत्तिरित्येवमष्टपञ्चाशता वर्षैर्न्यूने ते इति देशोने इत्युक्तं, (वृ. प. ९१८)
६०,६१. एतच्च टीकाकारव्याख्यानं, चूर्णिकारव्याख्यानमप्येवमेव, किन्त्ववसर्प्पिण्यन्तिमजिनापेक्षमिति विशेषः, (वृ. प. ९१८)

वा०— उत्सर्प्पिणी काले प्रथम तीर्थंकर नैं समीपे कोइ एकसौ वर्ष नां आउखा नों धणी परिहारविशुद्ध पड़िवज्यो वलि तेहनैं समीपै तेहनैं अंतकाले कोइ एक सौ वर्ष नैं आऊखैं परिहारविशुद्धपणों पड़िवज्यो एतलै बे सय वर्ष थया। तेहथी आगै तेह चारित्र नीं प्रतिपत्ति नथी। देश थकी ऊणों ते गुणतीस वर्ष नों ते पड़िवजै इम बीजो पिण। एतलै बे सय मांहि ५८ वर्ष ऊणा कीधा ए टीकाकार नों व्याख्यान। वलि चूर्णिकार व्याख्यान पिण इम ईज करै। एतलो विशेष-अवसर्प्पिणी अंतिम जिन अपेक्षाये कह्यु ।

६२. *उत्कृष्टो अद्धा तसु गो० ! दोय पूर्व कोड़ देख हो स० !
ते पिण देश ऊणों कह्यो गो० !
हिव तसु न्याय उवेख हो स० !

६२. उक्कोसेणं देसूणाओ दो पुव्वकोडीओ ।
(श. २५।५३६)

यतनी

६३. अवसर्प्पिणी काले विमास, वर प्रथम तीर्थंकर पास ।
कोइ कोड़ पूर्व आयुवंत, परिहारविशुद्ध पड़िवजंत ।।

६३. अवसर्प्पिण्यामादितीर्थकरस्यान्तिके पूर्वकोट्यायुः कश्चित्परिहारविशुद्धिकं प्रतिपन्नः (वृ. प. ९१८)

*लय : आई छूं देवा ओलम्भड़ा सासूजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. वलि तेहनैं समीपे सोय, तसु जीवित अंते जोय ।
ते पिण कोड़ पूर्व आयुवंत, परिहारविशुद्ध पड़िवजंत ।।
६५. इम बिहुं नों परिहारविशुद्ध, थया बे पुव्व कोड़ संशुद्ध ।
तेहथी आगल अद्धा मांय, परिहारविशुद्ध न थाय ।।
६६. इहां देश थकी ऊणों ताय, हिव कहियै तेहनों न्याय ।
धुर ऊणों जे गुणतीस वास, पडिहार पड़िवज्यो तास ।।
६७. इम बीजो पिण विशुद्धपरिहार, वर्ष गुणतीस ऊणों सार।
इतरै दोय पूर्व कोड़ मांय, ऊणा वर्ष अठावन थाय ।।
६८. इम उत्कृष्ट थकी सुजोड़, देश ऊण दोय पुव्वकोड़ ।
बहु वचन सिद्धांत मझार, तिणसूं दोय संजत परिहार ।।
६९. *पूछा सूक्ष्मसंपराय नीं सा० !
भाखै जिन वच श्रिष्ठ हो स० !
समय हुवै इक जघन्य थी गो०! अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट हो स०!

वा०—बे आदि सम काले दशम गुणस्थान रा समय रही मरण पामै ए जघन्य थी एक समय अनैं उत्कृष्ट तेहिज अंतर्मुहूर्त्त रहै ते माटै उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त ।

७०. बहु वचने यथाख्यात नैं गो० !
बहु वच सामायिक जेम हो स० !
सदा काल हुवै शाश्वता गो० !
विदेह केवलधर खेम हो स० !
७१. पणवीसम देश सप्त नुं साहिबजी !
चिहुंसौ गुणसठमीं ढाल हो गुणगेही !
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी साहिबजी !
'जय-जश' हरष विशाल हो गुणगेही !

६४. तस्यान्तिके तज्जीवितान्तेऽन्यस्तादृश एव तत्प्रतिपन्न (वृ. प. ९१८)
६५. इत्येवं पूर्वकोटीद्वयं तथैव देशोनं परिहारविशुद्धिकसंयतत्वं स्यादिति । (वृ.प. ९१८)

६९. सुहुमसंपरागसंजया—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं ।

७०. अहक्खायसंजया जहा सामाइयसंजया । (श. २५।५३७)

ढाल ४६०

संयत का अन्तर

दूहा

१. इक वच सामायिक तणों, अंतर कितो भदंत ?
जिन कहै इक वचने करी, पुलाक नों जिम हुंत ।।

२. इम जावत इक वचन करि, यथाख्यात नों मंत ।
अंतर्मुहूर्त्त जघन्य थी, उत्कृष्ट काल अनंत ।।
३. बहु वच सामायिक तणों, अंतर कितो भदंत ?
जिन भाखै अंतर नथी, सदा शाश्वता मंत ।।

१. सामाइयसंजयस्स णं भंते ! केवइयं कालं अंतरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं जहा पुलागस्स ।
२. एवं जाव अहक्खायसंजयस्स । (श. २५।५३८)

३. सामाइयसंजयाणं भंते !—पुच्छा ।
गोयमा ! 'नत्थि अंतरं' । (श. २५।५३९)

* लय : आई छूं देवा ओलम्भड़ा सासूजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४. क्षेत्र महाविदेह नें विषे, जघन्य थकी पिण जोड़ ।
हुवै सामायिकवंत ही, पृथक सहस्रज कोड़ ।।

५. *बहुवचने करि जाणी जी, जिनवरजी जयवंत,
छेदोपस्थापनी माणी जी, जिनवरजी जयवंत ।
तास प्रश्न पहिछाणी जी, जिनवरजी जयवंत,
उत्तर दै वर नाणी जी, जिनवरजी जयवंत ।
जघन्य थकी तसु अंतर इतरो, तेसठ सहस्रज वास ।।
बहुवचने करि जाणी जी, जिनवर जी जयवंत ।।

५. छेदोवट्ठावणियाणं—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं तेवट्ठिं वाससहस्साइं,

सोरठा

६. जघन्य अंतर जास, छेदोपस्थापनी चरित्त नों ।
त्रेसठ सहस्रज वास, तास न्याय कहियै अछै ।।
७. जे अवसर्प्पिणी मंत, पंच भरत पंच एरवत ।
पंचम दुसमा अंत, छेदोपस्थापनी चरित्त ह्वै ।।
८. तठा पछै सुविचार, तेहिज अवसर्प्पिणी तणों ।
वर्ष इकवीस हजार, दुस्सम-दुसमा अर छठो ।।
९. फुन उत्सर्प्पिणी धार, दुष्षम-दुषमा प्रथम अर ।
वर्ष इकवीस हजार, द्वितीय दुस्सम अर एतलो ।।
१०. इम वर्ष त्रेसठ हजार, छेदोपस्थापनी चरित्त नों ।
जघन्य थकी अवधार, अंतर न्यायज आखियो ।।
११. उत्सर्प्पिणी नें आम, तीजे आरे जिन जनम ।
चारित्त केवल पाम, छेदोपस्थापनी ह्वै पछै ।।
१२. ए अधिकेरा वास, अल्पपणां थी ते इहां ।
वंछया नहीं विमास, वर्ष तेसठ सहस्रज कह्या ।।

६. 'जहन्नेणं तेवट्ठिं वाससहस्साइं' ति, कथम् ?
(वृ. प. ९१८)
७. अवसर्प्पिण्यां दुष्षमां यावच्छेदोपस्थापनीयं प्रवर्त्तते
(वृ. प. ९१८)
८-१०. ततस्तस्या एवैकविंशतिवर्षसहस्रमानायामेकान्तदुष्षमायामुत्सर्प्पिण्याश्चैकान्तदुष्षमायां च तत्प्रमाणायामेव तदभावः स्यात् एवं चैकविंशतिवर्षसहस्रमानत्रयेण त्रिषष्टिवर्षसहस्राणामन्तरमिति,
(वृ. प. ९१८)

१३. *छेदोपस्थापनी इष्टो जी गोयमजी गुणवंत,
अंतर तसुं उत्कृष्टो जी । गोयम० ।
भाखै जिन वच श्रिष्ठो जी गोयम०,
सांभलतां अति मिष्टो जी ।। गो० ।।
जे अष्टादश कोड़ाकोड़ज सागर तणोज भास,
छेदोपस्थापनी इष्टो जी ।। गो० ।।

१३. उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ ।
(श. २५।५४०)

सोरठा

१४. उत्कृष्ट अंतर धार, छेदोपस्थापनी चरित्त नों ।
कोड़ाकोड़ अठार-सागर नों तसु न्याय इम ।।
१५. जे उत्सर्प्पिणी मांय, दुसम-सुसम तृतीये अरे ।
जिन तेवीसज थाय, कोड़ाकोड़ दधि ऊण ए ।।
१६. तुर्य सुसम-दुसमार, हुवै जिनेंद्र चउवीसमा ।
तास तीर्थ सुविचार, कहियै छै ते सांभलो ।।
१७. ऋषभ तणों सुविमास, जितरो जिन पर्याय छै ।
तितरो तीर्थ तास, छेदोपस्थापनी त्यां लगै ।।

*लय : माता सुत नें भाखं जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. ते तुर्य सुषम-दुषमार, बे कोड़ाकोड़िज उदधि ।
फुन पंचम सुषमार, सागर कोड़ाकोड़ि त्रिण ।।
१९. छठो सुषम-सुषमार, चिहुं कोड़ाकोड़िज उदधि ।
उत्सर्प्पिणी नां धार, ए दधि कोड़ाकोड़ि नव ।।
२०. इम अवसर्प्पिणी जोड़, प्रथम द्वितीय तृतीय अरे ।
दधि नव कोड़ाकोड़, कहियै छै लेखो तसु ।।
२१. प्रथम सुषम-सुषमार, चिहुं कोड़ाकोड़िज उदधि ।
द्वितीय सुषम अर धार, सागर कोड़ाकोड़ि त्रिण ।।
२२. तृतीय सुषम-दुषमार, बे कोड़ाकोड़िज उदधि ।
अवसर्प्पिणी नां धार, ए दधि कोड़ाकोड़ि नव ।।
२३. तृतीय अरे नैं छेह, ऋषभ जन्म चारित्र फुन ।
केवल प्रथम कहेह, छेदोपस्थापनी चरित्त नहीं ।।
२४. कोड़ाकोड़ अठार-सागर नों ए अंतरो ।
ऊणा इहां विचार, अल्प भणी वंछया नथी ।।

वा.—इहां उत्सर्प्पिणी नों चोथो अरो २ कोड़ाकोड़ि सागर नो, पंचमो अरो ३ कोड़ाकोड़ि सागर नों, छठो अरो ४ कोड़ाकोड़ि सागर नों, ए नव कोड़ा-कोड़ सागर छेदोपस्थापनी चारित्र नथी लेखव्यो, परंतु जे चउथा अरा नैं विषे चउवीसमा तीर्थंकर हुवै तेहनां तीर्थ में छेदोपस्थापनी हुवै । तठा पछै छेदोप-स्थापनी नों विरह । ते भणी चरम तीर्थंकर नां तीर्थ लगै छेदोपस्थापनी चारित्र रहै । ते वर्ष नव कोड़ाकोड़ि सागर में ऊणा हुवै ते वर्ष अल्पपणां थी वंछया नथी ।

अनैं अवसर्प्पिणी नां प्रथम, द्वितीय, तृतीय अरा नां नव कोड़ाकोड़ सागर थया । तेहमें पिण छेदोपस्थापनी चारित्र गिण्यो नथी । परंतु इहां तीजा अरा नैं छेहडै आदि तीर्थंकर नैं तीर्थे छेदोपस्थापनी चारित्र हुवै ते वर्ष पिण नव कोड़ा-कोड़ सागर में घटया । ते पिण अल्पपणां थी ऊणपणों लेखव्यो नथी ।

इम अठारै कोड़ाकोड़ सागर केतला एक वर्ष ऊणां छेदोपस्थापनी चारित्र नों उत्कृष्ट अंतर जाणवूं ।

वा०—'उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ' त्ति किलोत्सर्प्पिण्यां चतुर्विंशतितमजिनतीर्थे छेदोपस्थापनीयं प्रवर्त्तते ततश्च सुषमदुष्षमादिसमात्रये क्रमेण द्वित्रिचतुः-सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणे अतीते अवसर्प्पिण्याश्चैकान्तसुषमादित्रये क्रमेण चतुस्त्रिद्वि-सागरोपमकोटीकोटीप्रमाणे अतीतप्राये प्रथमजिनतीर्थे छेदोपस्थापनीयं प्रवर्त्तत इत्येवं यथोक्तं छेदोपस्था-पनीयस्यान्तरं भवति, यच्चेह किञ्चिन्न पूर्यते यच्च पूर्वसूत्रेऽतिरिच्यते तदल्पत्वान्न विवक्षितमिति,
(वृ. प. ९१८)

२५. *परिहारविशुद्ध सुवासी जी, जिनवर०,
पूछयां वाण प्रकाशी जी, जिनवर० ।
अंतर जघन्य विमासोजी, गोयमजी,
वर्ष सहस्र चउरासी जी, गोयमजी ।
उत्कृष्टो सागर अष्टादश,
कोड़ाकोड़ कहाय ।। परिहार० ।।

२५. परिहारविसुद्धियाणं—पुच्छा ।
गोयमा ! जहण्णेणं चउरासीइं वाससहस्साइं,

गीतकछंद

२६. अवसर्प्पिणी दुषमार पंचम, दुषमदुषमा फुन वही ।
उत्सर्प्पिणी धुर दुषमदुषमा, द्वितीय फुन दुषमा मही ।।
२७. इक-इक अरो इकवीस सहस्रज, वर्ष सहस्र चउरासीइं ।
परिहार अंतर जघन्य थी ए, न्याय जिन वच वासीइं ।।

२६,२७ अवसर्प्पिण्या दुष्षमैकान्तदुष्षमयोरुत्सर्प्पिण्याश्चै-कान्तदुष्षमादुष्षमयोः प्रत्येकमेकविंशतिवर्षसहस्र-प्रमाणत्वेन चतुरशीतिर्वर्षसहस्राणां भवति तत्र च परिहारविशुद्धिक न भवतीतिकृत्वा जघन्यमन्तरं तस्य यथोक्तं स्यात्, (वृ प. ९१८)

वा०—ए अवसर्प्पिणी नां पंचमा अरा नैं विषे वीर निर्वाण पछै चउसठ

वा०—यश्चेहान्तिमजिनानन्तरो दुष्षमायां परिहार-

*लय : माता सुत नैं भाखै जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्षे जंबू मोक्ष गया। तठा पछै केवल पिण विछेद थयो। अनैं परिहारविशुद्ध चारित्र पिण विछेद थयो। ए चउरासी हजार वर्ष मांहि थी ए चउसठ वर्ष ऊणां थया। अनैं उत्सर्प्पिणी नैं विषे तीजा अरा नां तीन वर्ष साढा आठ मास गयां प्रथम तीर्थंकर जन्मस्यै ते तीस वर्ष घर में रहिस्यै। दीक्षा ग्रही बारे वर्ष तेरे पखवाडां छद्मस्थ रही केवल पामस्यै, पछै तेहनैं आदेशे परिहारविशुद्ध चारित्र हुवै तो अटकाव नहीं। ए तीजा अरा नां वर्ष पूर्वे चउसठ वर्ष मांहि थी काढियां लारै अल्पहीज चउरासी हजार वर्ष में ऊणा इम हुवै तो किंचित माटै गिण्या नथी।

विशुद्धिककालो यश्चोत्सर्प्पिण्यास्तृतीयसमायां परिहारविशुद्धिकप्रतिपत्तिकालात्पूर्वः कालो नासौ विवक्षितोऽल्पत्वादिति, (वृ. प. ९१८)

गीतकछंद

२८. उत्कृष्ट कोड़ाकोड़ि अष्टादश उदधि जिन आखियो।
तसु न्याय द्वितीय चरित्रवत, इह द्वार मांहिज दाखियो।।

२८. उक्कोसेणं अट्ठारस सागरोवमकोडाकोडीओ।
छेदोपस्थापनीयोत्कृष्टान्तरवदस्य भावना कार्येति।
(वृ. प. ९१८)

२९. *बहुवच सूक्ष्मसंपरायो जी, जिन०,
निर्ग्रंथ जिम कहिवायो जी, गो०।
जघन्य समय इक पायो जी, गो०,
उत्कृष्ट मास षट थायो जी, गो०।
यथाख्यात सामायिक नीं पर,
बहुवचने ए थाय।। बहुवच सु०।।

२९. सुहुमसंपरायाणं जहा नियंठाणं। अहक्खायाणं जहा सामाइयसंजयाणं। (श. २५।५४१)

वा०—'सिद्ध गमन नुं विरह उत्कृष्ट षट मास नों हुवै ते षट मास तांइ कोई क्षपकश्रेणि न चढै ते माटै सूक्ष्मसंपराय नुं अंतर उत्कृष्ट षट मास नों हुवै। अनैं यथाख्यात बहुवचने केवली सामायिक नीं परै सदा शाश्वता लाभै।' (ज. स)

संयत में समुद्घात

३० *सामायिक नैं स्वामी जी, जिन०,
समुद्घात कति धामी जी? जिन०।
जिन भाखै षट पामी जी, गो०,
कषायकुशील ज्यूं नामी जी, गो०।
छेदोपस्थापनी इमहिज कहिवो,
इक केवल नहिं पाय।। सामायिक०।।

३०. सामाइयसंजयस्स णं भंते! कति समुग्घाया पण्णत्ता?
गोयमा! छ समुग्घाया पण्णत्ता जहा कषाय-कुसीलस्स। एवं छेदोवट्ठावणियस्स वि।

३१. परिहारविशुद्ध नैं ताह्यो जी, गो०,
पुलाक जिम कहिवायो जी, गो०।
धुर समुद्घात त्रिण पायो जी, गो०,
हिव सूक्ष्मसंपरायो जी, गो०।
निर्ग्रंथ नीं परि समुद्घात नहीं,
स्नातक जिम अहक्खाय।। परिहार०।।

३१. परिहारविसुद्धियस्स जहा पुलागस्स। सुहुमसंपरागस्स जहा नियंठस्स। अहक्खायस्स जहा सिणायस्स।
(श. २५।५४२)

सोरठा

३२. यथाख्यात रै मांय, स्नातक नीं परि जाणवुं।
समुद्घात इक पाय, केवल कोइक नैं विषे।।

*लय : माता सुत नैं भाखै जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयत का क्षेत्र

३३. *प्रभु ! सामायिक स्यूं जाणां जी, जिन०,
लोक तणें पहिछाणी जी, जिन० ।
भाग संख्यातमैं माणी जी, जिन०,
कै असंख पृच्छा ठाणी जी ? जिन० ।
जिन कहै नहीं संख्यातमें भागे,
पुलाक[1] जिम अवलोय ।। प्रभु ! सामा० ।।

३३. सामाइयसंजए णं भंते ! लोगस्स किं संखेज्जइभागे होज्जा,
असंखेज्जइभागे—पुच्छा ।
गोयमा ! नो संखेज्जइभागे जहा पुलाए ।

सोरठा

३४. सामायिक धुर माग, लोक तणें ए जाणवुं ।
असंख्यातमें भाग, नथी शेष चिहुं नें विषे ।।

३५. *इम जाव सूक्ष्मसंपरायो जी, गो०,
यथाख्यात हिव आयो जी, गो० ।
स्नातक जिम कहिवायो जी, गो०,
तीन भेद में थायो जी, गो० ।
संख्याता नां बोल अछै बे,
तेह विषे नहीं होय ।। इम० ।।

३५. एवं जाव सुहुमसंपराए । अहक्खायसंजए जहा सिणाए । (श. २५।५४३)

वा०—यथाख्यात लोक नां संख्यातमा भाग नैं विषे न हुवै, घणां संख्याता भाग नैं विषे न हुवै । अनैं लोक नां असंख्यातमा भाग नैं विषे हुवै, घणां असंख्याता भाग नैं विषे हुवै, सर्व लोक नैं विषै हुवै—इम तीन बोल नैं विषे हुवै अनैं दोय बोल नैं विषे न हुवै ।

संयत द्वारा लोक की स्पर्शना

३६. *प्रभु ! सामायिक एहो जी, जिन०,
लोक तणें स्यूं तेहो जी, जिन० ।
संख्यातम भागेहो जी, जिन०,
फर्शै चारित्त जेहो जी, जिन० ।
जिम ह्वै कह्यं बतीसम द्वारे,
कहिवुं तिम फर्शेह ।। प्रभु० !

३६. सामाइयसंजए णं भंते ! लोगस्स किं संखेज्जइभागं फुसइ ? जहेव होज्जा तहेव फुसइ । (श. २५।५४४)

संयत किस भाव में ?

३७. प्रभु ! सामायिक अवलोई जी, जिन०,
किसा भाव में होई जी ? जिन० ।
तब जिन भाखै सोई जी, जिन०,
क्षयोपशम भावे जोई जी, गो० ।
एव जाव सूक्ष्मसंपरायज,
च्यारूं चरण कहेह ।। प्रभु० !

३७. सामाइयसंजए णं भंते ! कयरम्मि भावे होज्जा ? गोयमा ! खओवसमिए भावे होज्जा। एवं जाव सुहुमसंपराए । (श. २५।५४५)

३८. यथाख्यात सुखदायो जी, जिन०,
तास प्रश्न पूछायो जी, जिन० ।
तब भाखै जिनरायो जी, गो०,
उपशम भावे थायो जी, गो० ।
अथवा क्षायक भाव विषे ह्वै,
वारू न्याय विचार ।। यथाख्यात० ।।

३८. अहक्खायसंजए—पुच्छा ।
गोयमा ! उवसमिए वा खइए वा भावे होज्जा ।
(श. २५।५४६)

---

*लय : माता सुत नैं भाखैं जी

१. श० २५।४४०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

३९. वर उपशम चरित उचित्त, उपशम भाव विषे हुवै ।
क्षायिक चरण पवित्त, क्षायिक भावे ते हुवै ।।

संयत का परिमाण

४०. सामायिक सुखदाई जी, जिन०,
एक समय के थाई जी ? जिन० ।
जिन उत्तर वरदाई जी, जिन०,
पड़िवजतां ते थाई जी, गो० ।
जेम कषायकुशील कह्यो तिम,
ए पिण कहिवो सार ।। सामायिक० ।।

४०. सामाइयसंजया णं भंते ! एगसमएणं केवतिया होज्जा ?
गोयमा ! पडिवज्जमाणए य पडुच्च जहा कसाय-कुसीला तहेव निरवसेसं । (श. २५।५४७)

सोरठा

४१. सामायिक अवलोय, पड़िवजतां नें आश्रयी ।
कदाचित ते होय, कदाचित नहि ह्वै तिके ।।
४२. जो ह्वै तो इम जाण, जघन्य एक बे त्रिण हुवै ।
उत्कृष्टा पहिछाण, पृथक्त्व सहस्र ह्वै इक समय ।।
४३. पूर्वप्रतिपन्न जोड़, जघन्य अनैं उत्कृष्ट पिण ।
पृथक सहस्रज कोड़, विदेह क्षेत्र में शाश्वता ।।

४४. *छेदोपस्थापनी भावै जी, जिन०,
पूछयां जिन फुरमावै जी, गो० ।
पड़िवजतांज कहावै जी, गो०.
सिय ह्वै सिय नहिं थावै जी, गो० ।
ह्वै तो जघन्य एक बे त्रिण ह्वै,
पृथक सौ उत्कृष्ट ।। छेदोप० ।।

४४. छेदोवट्ठावणिया—पुच्छा ।
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि सिय नत्थि । जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं सयपुहत्तं ।

४५. पूर्वप्रतिपन्न सारो जी, गो०,
ते आश्रयी अवधारो जी, गो० ।
कदा हुवै सुखकारो जी, गो०,
हुवै नहीं किणवारो जी, गो० ।
ह्वै तो जघन्य अनैं उत्कृष्ट ही,
कोड़ पृथक सौ इष्ट ।। पूर्वप्रतिपन्न० ।।

४५. पुव्वपडिवण्णए पडुच्च सिय अत्थि सिय नत्थि । जइ अत्थि जहण्णेणं कोडिसयपुहत्तं, उक्कोसेण वि कोडिसयपुहत्तं ।

सोरठा

४६. वृत्ति विषे इम जोड़, उत्कृष्ट छेदोपस्थापनी ।
कह्या पृथक सौ कोड़, धुर जिन तीर्थ आश्रयी ।।
४७. जघन्य कह्या छै जेह, तेह सम्यग प्रकार करि ।
नथी जाणियै तेह, न्याय पृथक सौ कोड़ नों ।।
४८. दुःषम अंते देख, दश क्षेत्रे इक-इक विषे ।
इक मुनि समणी एक, सांभलियै छै वीस इम ।।
४९. केइक इम कहै ताय, ए पिण जे धुर जिन तणां ।
तीर्थ काल अपेक्षाय, जघन्य पृथक सौ कोड़ ह्वै ।।

४६. इहोत्कृष्टं छेदोपस्थापनीयसंयतपरिमाणमादितीर्थकर-तीर्थान्याश्रित्य संभवति, (वृ. प. ९१८)
४७. जघन्यं तु तत्सम्यग् नावगम्यते, (वृ. प. ९१८)

४८. यतो दुष्षमान्ते भरतादिषु दशसु क्षेत्रेषु प्रत्येकं तद्द्वयस्य भावाद्विंशतिरेव तेषां श्रूयते, (वृ. प. ९१८)
४९,५०. केचित्पुनराहुः—इदमप्यादितीर्थकराणां यत्तीर्थ-कालस्तदपेक्षयैव समवसेयं, कोटीशतपृथक्त्वं च

*लय : माता सुत नैं भाखै जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५०. जघन्य मान ए जोय, पृथक बे त्रिण कोड़ सौ ।
उत्कृष्टा अवलोय, हुवै अष्ट नव कोड़ शत ।।

जघन्यमल्पतरमुत्कृष्टं च बहुतरमिति ।
(वृ. प. ९१८)

५१. *बहुवचन विशुद्धपरिहारो जी, गो०,
पुलाक जेम विचारो जी, गो० ।
पड़िवजतां अवधारो जी, गो०,
पूर्वप्रतिपन्न सारो जी, गो० ।
कदाचित ह्वै कदाचित नहीं ह्वै,
जो ह्वै तो इम होय । बहुवचन० ।।

५१. परिहारविसुद्धिया जहा पुलागा ।

सोरठा

५२. पड़िवजतां अवधार, ह्वै तो इक बे त्रिण जघन्य ।
उत्कृष्टा सुविचार, पृथक शत पहिछाणियै ।।
५३. पूर्वप्रतिपन्न पेख, ह्वै तो इक बे त्रिण जघन्य ।
फुन उत्कृष्ट विशेख, पृथक सहस्र बखाणियै ।।

५४. *बहु सूक्ष्मसंपराया जी, गो०,
निर्ग्रंथ जेम कहाया जी. गो० ।
पड़िवजतां सुखदाया जी, गो०,
पूर्वप्रतिपन्न पाया जी, गो० ।
कदाचित ह्वै कदाचित नहीं ह्वै,
ह्वै तो इम अवलोय ।। बहु सु० ।।

५४. सुहुमसंपराया जहा नियंठा । (श. २५।५४८)

सोरठा

५५. पड़िवजतां वर्त्तमान, जघन्य एक बे तीन ह्वै ।
उत्कृष्टा पहिछाण, इकसौ बासठ ऊपरै ।।
५६. इकसौ बासठ मांय, इकसौ अष्टज क्षपक नां ।
फुन चोपन मुनिराय, उपशम श्रेणि तणां हुवै ।।
५७. पूर्व-प्रतिपन्न पाय, जघन्य एक बे तीन ह्वै ।
उत्कृष्टो कहिवाय, पवर पृथक शत दशम गुण ।।

५८. *बहुवच अहक्खाय सुजन्नो जी, जिन०,
इम पूछ्यां कहै भगवन्नो जी, गो० ।
पड़िवजतांज सुमन्नो जी, गो०,
सिय अत्थि सिय नत्थि पन्नो जी, गो० ।
उत्कृष्ट इक सौ बासठ होवै,
उपशम क्षपक अमंद ।। बहुवच० ।।

५८. अहक्खायसंजया णं—पुच्छा ।
गोयमा ! पडिवज्जमाणए पडुच्च सिय अत्थि सिय नत्थि । जइ अत्थि जहण्णेणं एक्को वा दो वा तिण्णि वा, उक्कोसेणं बावट्ठं सयं—अट्ठुत्तरसयं खवगाणं, चउप्पण्णं उवसामगाणं ।

५९. पूर्व-प्रतिपन्न माणी जी, गो०,
जघन्य थकी जे जाणी जी, गो० ।
पृथक कोड़ पिछाणी जी, गो०,
वर केवलधर नाणी जी, गो० ।
उत्कृष्टा पिण पृथकज कोड़ि,
विदेहक्षेत्र जिन वृंद ।। पूर्वप्रतिपन्न० ।।

५९. पुव्वपडिवण्णए पडुच्च जहण्णेणं कोडिपुहत्तं, उक्कोसेण वि कोडिपुहत्तं । (स. २५।५४९)

*लय : माता सुत नैं भाखै जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संयत का अल्पबहुत्व

६०. प्रभु ! सामायिक सुखदायो जी, जिन०,
छेदोपस्थापनी ताह्यो जी, जिन० ।
परिहार सूक्ष्मसंपरायो जी, जिन०,
वलि चारित्र अहक्खायो जी, जिन० ।
कुण-कुण थकी जाव प्रभु ! कहियै,
विशेष अधिक विचार ।। प्रभु ! सामायिक० ।।

६१. तब भाखै जिनरायो जी, गो०,
सहु थी थोड़ा थायो जी, गो० ।
मुनि सूक्ष्मसंपरायो जी, गो०,
दशम गुणे दीपायो जी, गो० ।
तेह थकी परिहारविशुद्धक,
संखगुणा अधिकार ।। तब भाखै० ।।

६२. तेह थकी अहक्खायो जी, गो०,
संखगुणा शोभायो जी, गो० ।
छेदोपस्थापनी ताह्यो जी, गो०,
संखगुणा कहिवायो जी, गो० ।
तेह थकी सामायिक मुनि बहु,
संखगुणा ऋषिराय ।। तेह थकी० ।।

वा०—सर्व थी थोड़ा सूक्ष्मसंपराय संयती ते काल नां स्तोकपणां थकी, वलि निर्ग्रंथ तुल्यपणै करी शत पृथक प्रमाणपणां थकी १ । तेहथी परिहार-विशुद्धक संयत संख्यातगुणा तेहनों काल घणों ते माटै । वलि पुलाक तुल्यपणै करी तेहनैं सहस्र पृथक मानपणां थकी २ । तेहथी यथाख्यात संयत संख्यातगुणा, तेहनैं कोटि पृथक प्रमाणपणां थकी ३ । तेहथी छेदोपस्थापनीक संयत संख्यातगुणा, कोटि शत पृथक मानपणैं करी तेहनैं कह्या माटै ४ । तेहथी सामायिक संजत संख्यातगुणा, तेहनैं कषायकुशील तुल्यपणैं करी कोटि सहस्र पृथक मानपणैं करी तेहनैं कह्या माटै ५ ।

सोरठा

६३. संयत पंच प्रकार, षट तीसे द्वारे करी ।
आख्यो प्रभु अधिकार, ग्रहण करै सुगुणा गुणी ।।
६४. धुर बे चरित्त उदार, छठा थी नवमा लगै ।
मुनि विशुद्धपरिहार, षष्टम सप्तम गुण हुवै ।।
६५. वलि दशमें गुणठाण, संपराय-सूक्ष्म कह्यो ।
यथाख्यात फुन जाण, ऊपरलै गुणठाण चिहुं ।।
६६. पणवीसम शत पेख, सप्तमुद्देशक देश ए ।
अर्थ थकी सुविशेख, आख्यो अधिक घमंड[1] करि[2] ।।

६०. एएसि णं भंते ! सामाइय-छेओवट्ठावणिय-परिहारविसुद्धिय-सुहुमसंपराय-अहक्खायसंजयाणं कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा ? [सं. पा] विसेसाहिया वा ?

६१. गोयमा ! सव्वत्थोवा सुहुमसंपरायसंजया, परिहार-विसुद्धियसंजया संखेज्जगुणा,

६२. अहक्खायसंजया संखेज्जगुणा, छेओवट्ठावणियसंजया संखेज्जगुणा, सामाइयसंजया संखेज्जगुणा ।

वा०—'सव्वत्थोवा सुहुमसंपरायसंजय' त्ति स्तोकत्वात्तत्कालस्य निर्ग्रन्थतुल्यत्वेन च शतपृथक्त्वप्रमाणत्वात्तेषां, 'परिहारविसुद्धियसंजया संखेज्जगुण' त्ति तत्कालस्य बहुत्वात् पुलाकतुल्यत्वेन च सहस्रपृथक्त्वमानत्वात्तेषाम्, 'अहक्खायसंजया संखेज्जगुण' त्ति कोटीपृथक्त्वमानत्वात्तेषां, 'छेदोवट्ठावणियसंजया संखेज्जगुण' त्ति कोटीशतपृथक्त्वमानतया तेषामुक्तत्वात्, 'सामाइयसंजया सखेज्जगुण' त्ति कषायकुशीलतुल्यतया कोटीसहस्रपृथक्त्वमानत्वेनोक्तत्वात्तेषामिति । (वृ. प. ९१८,९१९)

---

१. गौरव

२. श्रीमज्जयाचार्य रचित कृतियों में दो कृतियां हैं—'नियंठा नीं जोड़' एवं 'संजया नीं जोड़' । भगवती सूत्र के २५ वें शतक से सम्बन्धित होने के कारण उन्हें प्रस्तुत ग्रन्थ के परिशिष्ट में रखा गया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. *ढाल च्यार सौ चारू जी, मुनिवरजी गुणवंत,
ऊपर अधिक उदारू जी। मुनिवरजी गुणवंत।
सखर साठमी वारू जी, मुनिवरजी गुणवंत,
समय वचन सुखकारू जी। मुनिवरजी गुणवंत।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे,
'जय-जश' हरष सवाय ।। ढाल च्यार सौ० ।।

ढाल : ४६१

दूहा

१. कह्या अनंतर संजया, ते संयत रै मांहि।
केइक ह्वै प्रतिसेवका, दोष लगावै ताहि ।।
२. प्रतिसेवा नां भेद थी, दोष लगायो जेह।
ते निर्दोषज थायवा, आलोइयै गुणगेह ।।
३. आलोचना संबंध थी, आलोचक गुण ताय।
वली गुरू नां गुण प्रतै, देखाड़तो कहिवाय ।।
४. प्रतिसेवना दोष जे, वलि आलोयण लेह।
फुन आलोयणा जोग्य जे, गुरु तसु शुद्ध करेह ।।
५. वलि सामाचारी पवर, प्रायश्चित तप फेर।
ए सहु नों विस्तार हिव, निसुणो सुगुण सुमेर ।।

१-३. अनन्तरं संयता उक्तास्तेषां च केचित्प्रतिसेवावन्तो भवन्तीति प्रतिसेवाभेदान् प्रतिसेवा च निर्दोषमालोचयितव्येति आलोचनादोषान् आलोचनासम्बन्धादालोचकगुणान् गुरुगुणांश्च दर्शयन्नाह—
(वृ. प. ९१९)

४,५. पडिसेवण दोसालोयणा य, आलोयणारिहे चेव।
तत्तो सामायारी, पायच्छित्ते तवे चेव ।।१।।
(श. २५।५५०)

प्रतिसेवना पद

†प्रभु नां वच सुणजो ।। (ध्रुपदं)

६. केतलै भेदै प्रभु! कही रे, प्रतिसेवना पहिछाण?
संजम तणीं विराधना रे, ते पडिसेवणा जाण रे ।।
७. जिन भाखै प्रतिसेवना रे, दशविध दाखी देख।
दोष लगावै दश विधे रे, कहियै तसु सुविशेख रे ।।
८. दोष लगावै दर्प्प थी रे, चित्त तणों उन्माद।
चित्त विह्वलता तेहथी रे, चारित्त देवै विराध रे ।।

९. अथवा प्रमाद करी वली रे, मद विषय नें कषाय।
निद्रा नें विकथा वली रे, ए पंच प्रमाद थी ताय रे ।।

६. कइविहा णं भंते! पडिसेवणा पण्णत्ता?

७. गोयमा! दसविहा पडिसेवणा पण्णत्ता, तं जहा—

८. दप्प
तेन दर्प्पे सति प्रतिसेवा भवति, दर्प्पश्च—वल्गनादिः,
(वृ. प. ९१९)

९. प्पमाद
तथा प्रमादे सति, प्रमादश्च मद्यविकथादिः,
(वृ. प. ९१९)

सोरठा

१०. 'मद अठ जाति कुलादि, विषय तेवींसज सेवतो।
कषाय चिहुं क्रोधादि, करै उदीरी नैं जिको ।।

---

*लय : माता सुत नें भाखै जो
†लय : पुन्य रा फल जोयजो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. भावे निद्रा जेह, निद्रा तेह कही इहां ।
हिंसादिक वर्त्तेह, ते भाव निद्रा धुर अंग वृत्तौ ।।

१२. विकथा च्यार प्रकार, इत्थी भक्त रु देश नृप ।
ए चिहुं विकथा धार, करै प्रमाद करिनै जिको ।।

१३. आख्या पंच प्रमाद, अशुभ जोग ए जाणवा ।
चारित्त दियै विराध, ए प्रमाद करि जीवड़ो ।।

१४. शत सोलम प्रथम उद्देश, लब्धि आहारक फोड़वै ।
प्रमाद कह्यो जिनेश, जोग अशुभ ए जाणवुं ।।

१५. तिम ए निद्रा भाव, अशुभ जोग मिथ्यात्व वा ।
तेह प्रमाद कहाव, द्रव्य निद्रा प्रमाद नहिं ।।

१६. फुन द्रव्य निद्रा मांहि, अशुभ जोग स्वप्नाज में ।
ते पिण प्रमाद ताहिं, पंचम आश्रव योग ते ।।

१७. तीजो आश्रव ताम, अणओछाहज रूप जे ।
प्रमाद तिण रो नाम, पंचम आश्रव थी जुदो ।।

१८. उदय निरंतर ताय, क्रोधादिक च्यारूं जिके ।
आश्रव तुर्य कषाय, जोग आश्रव थी ए जुदो ।।

१९. करै उदीर कषाय, जोग रूप प्रमाद ए ।
पंचम आश्रव थाय, पिण तृतीय तुर्य आश्रव नहीं ।।

२०. करै उदीर कषाय, ए अशुभ जोग नां त्याग छै ।
पिण चोथो आश्रव ताय, किया त्याग नहि ह्वै तसु ।।

२१. कषाय नां पचखाण, उत्तरज्झयण गुणतीसमें ।
ते कर्म घटयां थी जाण, अकषाई ह्वै तिण समय ।।

२२. जोग तणां पचखाण, अजोगी ह्वै तिण समय ।
ए चवदम गुणठाण, योग सर्वथा रूंधियां ।।

२३. तनु पचखाण पिछाण, शरीर रहित हुवै तदा ।
तिम कषाय पचखाण, अकषायी ह्वै तिण समय ।।

२४. तिम तृतीय आश्रव नां ताय, कीधा त्याग हुवै नथी ।
अप्रमत्तपणुंज थाय, सप्तम गुणठाणे गयां ।।

२५. जोग रूप प्रमाद, किया त्याग ह्वै तेहनां ।
ए पंचम आश्रववाद, पिण तीजो आश्रव नहीं ।।

२६. सर्व सावज्ज जोग पचखाण, अशुभ योग नां त्याग इम ।
दीक्षा लेतां जाण, मुनि सामायिक-चरित्तधर ।।

२७. इम बहु न्याय विचार, द्रव्य निद्रा प्रमाद नहिं ।
भावे निद्रा धार, तेह प्रमाद कहीजियै ।।

२८. द्रव्य निद्रा आवंत, दर्शणावरणी उदय थी ।
तिण सूं जीव दबंत, पिण कर्म न बंधै तेहथी ।।

११. सुप्ता द्विधा—द्रव्यतो भावतश्च····
भावसुप्तास्त्वमुनयो—गृहस्था मिथ्यात्वाज्ञानावृता हिंसाद्याश्रवद्वारेषु सदा प्रवृत्ताः। (आ. वृ. प. १३८)

१२. चत्तारि विकहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
इत्थिकहा, भत्तकहा, देसकहा, रायकहा।
(ठा. ४।२४१)

१४. जीवे णं भंते! आहारगसरीरं निव्वत्तेमाणे किं अधिकरणी—पुच्छा।
गोयमा! अधिकरणी पि, अधिकरणं पि।
से केणट्ठेणं जाव अधिकरणं पि?
गोयमा! पमायं पडुच्च। (भ. श. १६।२३,२४)

२१. कसायपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
कसायपच्चक्खाणेणं वीयरागभावं जणयइ····।
(उत्तर. २९।३७)

२२. जोगपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
जोगपच्चक्खाणेणं अजोगत्तं जणयइ····।
(उत्तर. २९।३८)

२३. सरीरपच्चक्खाणेणं भंते! जीवे किं जणयइ?
सरीरपच्चक्खाणेणं सिद्धाइसयगुणत्तणं निव्वत्तेइ····।
(उत्तर. २९।३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२९. भावे निद्रा हुंत, दर्शण चारित्र मोह थी।
बिगड़ै जीव अत्यंत, पाप बंधै छै तेहथी ।।
३०. द्रव्य निद्रा नीं आण, जयणा सू सूतां थकां।
पाप तणों न बंधाण, दशवैकालिक तुर्य ए ।।
३१. सूतो थकोज सोय, स्वप्न प्रतै देखै नथी।
वलि जागरो होय, ते पिण नहिं देखै स्वपन ।।
३२. सुप्तजागरो ताहि, स्वप्न प्रतै देखै कह्यो।
शतक सोलमा मांहि, षष्ठमुद्देशे भगवती ।।
३३. मेघकुमर नीं माय, राणी धारणी आदि दे।
सुप्तजागरी ताय, स्वपनुं देख्यो इम कह्युं ।।
३४. तिणसूं निद्रा नाम, सुप्त शब्द ए जाणवुं।
अमर कोश[1] में आम, सुप्त नाम निद्रा तणुं ।।

३५. सूता अमुनि नित्य, मुनि सदाई जागता।
धुरंग विषे कथित्य, सुप्त नाम ए नींद नुं ।।
३६. इहां वृत्ति रै मांहि, द्रव्य भाव निद्रा कही।
जीव हिंसादिक ताहि, पंचाश्रव भावे निद्रा ।।
३७. निद्रा द्रव्ये भाव, तेह भणी ओलखायवा।
प्रमाद नैं प्रस्ताव, ए विस्तारज आखियो ।।
३८. पंच प्रमाद करेह, दोष लगावै जाण नैं।
ए प्रमत्त अशुभ जोगेह, द्वितीय बोल ए आखियो ।।' (ज.स.)

३९. *अजाणपणें करी वली रे, तीजो बोल कहेह।
ईर्या सुमति चालतां रे, इत्यादिक अजाणेह रे ।।

सोरठा

४०. 'ईर्या सहित गमन, जीव मूआं पिण पाप नहीं।
भाव अहिंसक जन्न, नहीं अजाणपणुं तिको ।।
४१. जिन आणा विण जेह, चालतां हिंसक कह्यो।
असावधानपणेह, गमन अजाणपणुं तिको ।।
४२. आधाकर्मी आहार, शुद्ध ववहार करी लियो।
सूयगडांग मभार, पाप न लागै तेहनैं ।।

४३. सुमति गुप्त रै मांय, खामी पड़ैज तेहमें।
अजाण दोष कहाय,
पिण आण सहित में दोष नहीं ।।
४४. हिंसादिक प्रति ताय, सेवै जेह ऊदीरनैं।
ते जाण दोष कहिवाय, न्याय दृष्टि अवलोकियै ।।
४५. इहां अजाण हिंसादि, आकूटी न कियो तिणे।
असावधान संवादि, तेह अजाणे दोष छै ।।' (ज.स.)

३०. ....जयं सए।
....पावं कम्मं न बंधइ। (दस. ४।८)

३१,३२. सुत्ते णं भंते ! सुविणं पासति ? जागरे सुविणं पासति ? सुत्तजागरे सुविणं पासति ?
गोयमा ! नो सुत्ते सुविणं पासति, नो जागरे सुविणं पासति, सुत्तजागरे सुविणं पासति। (भ. १६।७७)

३३. ....पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि सुत्तजागरा.... ...गयं पासित्ता णं पडिबुद्धा। (नाया. १।१।१८)

३४. निद्रा प्रमीला शयनं संवेश-स्वापसंलयाः .
नन्दीमुखी श्वासहेतिस्तन्द्रा सुप्तं तु साधिका ।।
(अभिधानचिन्तामणिः २।२२६)

३५. सुत्ता अमुणी सया, मुणिणो सया जागरंति।
(आयारो ३।१)

३९. अणाभोगे,
तथाऽनाभोगे सति, अनाभोगश्चाज्ञानम्,
(वृ. प. ९१९)

४२. अहाकम्माणि भुंजंति अण्णमण्णे सकम्मुणा।
उवलित्ते त्ति जाणिज्जा अणुवलित्ते त्ति वा पुणो ।।
(सूयगडो २।५।८)

---

१. अमरकोश में नहीं, अभिधानचिन्तामणिकोश में सुप्त नाम निद्रा का मिला है। उसका अर्थ है गहरी नींद।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. *भूख तृषा करि पीड़ियो रे, तथा रोगादि पीड़्यो जेह।
करै चारित्त नीं विराधना रे, आतुर दोष कहेह रे ।।

४७. आपद पड़ियां आकरी रे, ते आपदा च्यार प्रकार।
द्रव्य क्षेत्र काल भाव नीं रे, आपद दोष विचार रे ।।

गीतकछंद

४८. द्रव्य आपद प्रासुकादिक द्रव्य नें अणपायवै।
फुन क्षेत्र आपद अरण्यक्षेत्रे पड़्यां चित्त चलायवै ।।

४९. अद्ध आपदा दुर्भिक्षकालज प्राप्तचित्तज बाधना।
फुन भाव आपद ग्लान भावे करै चरित्त-विराधना ।।

५०. *स्वपक्ष परपक्ष व्याकुले रे, क्षेत्र छते पहिछाण।
दोष तणीं प्रतिसेवना रे, ते संकीर्ण जाण रे ।।

वा०—स्वपक्ष परपक्ष व्याकुल क्षेत्र थकी संकीर्णपणां थकी।

५१. संकिय पाठ किहां अछै रे, आधाकर्मादिपणेह।
तथा सूझता विषे असूझता रे,
लियै शंक सहित भत्ता देह रे ।।

वा० —वली नशीत[1] पाठे तितणे इसो कहियै। तिहां तितिणपणैं करी वली ते आहारादि अणलाभे छतो खेद सहित वचन बोलै तितिणाटा करै।

५२. सहसात्कार छतै वली रे, क्रिया विषे अकस्मात।
पहिलां तो कांइ दीठो नथी रे,
पछै दीठो पिण तज्यो न जात रे ।।

सोरठा

५३. पहिलां देख्यो नांहि, पात्रादिक प्रक्षेपतां।
सदोष जाण्यं ताहि, पिण टालण समर्थ नथी ।।

वा०—'इहां पहिला पूरी गवेषणा में खामी रही हुवै तिणसुं पहिला न दीठो एहवुं जणाय छै। अनैं जो तीर्थंकरे कह्यो तिम गवेषण कीधी हुवै ते इहां नथी जणाय छै।' (ज स)

सोरठा

५४. प्रथम न दीठो जंत, पग मूकंतो पेखियो।
तजण समर्थ न हुंत, सहसाक्कारे दोष ते ।।

वा० 'इहां पिण तीर्थंकरे कह्यो जिम प्रथम विध न साचवी। देखवा में खामी पड़ी। अनैं पछै जीव देखियो पिण टाली सकियो नहीं। पहिलांईज खामी पड़ी तिणसुं सहसक्कारे दोष जणाय छै। अनैं पहिलां जीव न दीठो, तीर्थंकर कह्यो तिम न जोयो असावधानपणैं विण उपयोगे चाले तथा देखवा में खामी

---

४६. आउरे
'आतुरे' त्ति आतुरत्वे सति, आतुरश्च बुभुक्षा-पिपासादिबाधितः, (वृ. प. ९१९)

४७. आवतीति य।
'आवईय' त्ति आपदि सत्यां, आपच्च द्रव्यादिभेदेन चतुर्विधा, (वृ. प. ९१९)

४८. तत्र द्रव्यापत् प्रासुकादिद्रव्यालाभः, क्षेत्रापत् कान्तारक्षेत्रपतितत्वं, (वृ. प. ९१९)

४९. कालापत् दुर्भिक्षकालप्राप्तिः, भावापद् ग्लानत्वमिति, (वृ. प. ९१९)

५०. संकिण्णे
'संकिण्णे' त्ति सङ्कीर्णे स्वपक्षपरपक्षव्याकुले क्षेत्रे सति, (वृ. प. ९१९)

५१. 'सकिय' त्ति क्वचित्पाठस्तत्र च शङ्किते—आधा-कर्म्मादित्वेन शङ्कितभक्तादिविषये, (वृ. प. ९१९)

वा०—निशीथपाठे तु 'तितिण' इत्यभिधीयते, तत्र च तिन्तिणत्वे सति, तच्चाहाराद्यलाभे सखेदं वचनं, (वृ. प. ९१९)

५२. सहसक्कारे,
'सहसक्कारे' त्ति सहसाकारे सति—आकस्मिक-क्रियायां, (वृ. प. ९१९)

५४. पुव्विं अपासिऊणं पाए छूढंमि जं पुणो पासे।
न तरइ नियत्तेउं पायं सहसाकरणमेयं ।।
(वृ. प. ९१९)

---

१ 'निसीहज्झयणं' में तितिणे पाठ नहीं मिला। यह प्रसंग कप्पो ६।१९ में है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पड़ी अनैं पग मूकतां पिण न दीठो ते अजाणपणैं दोष संभवै अनैं आकूटी ऊदीरी नैं जाणनैं हिंसा करै, मृषावादादिक बोलै ते जाण दोष।' (ज.स.)

५५. *भय करनैं प्रतिसेवना रे, नृप चोरादि भयेण।
करै चारित्र नीं विराधना रे, ते भय दोष कहेण रे।।

५५. भय

५६. अथवा बीहतो ग्रहस्थ भणी रे, मार्ग दिखावै जेह।
अथवा सिंघादिक थकी रे, डरतो वृक्ष चढेह रे।।

५६. भयात्—सिंहादिभयेन प्रतिसेवा भवति,
(वृ. प. ९१९)

५७. द्वेष ते क्रोधादि थकी रे, दोष लगावै जेह।
इहां प्रदोष शब्द ग्रहीवै करी रे, च्यार कषाय वंछेह रे।।

५७. प्पओसा य
तथा प्रद्वेषाच्च, प्रद्वेषश्च—क्रोधादिः, (वृ. प. ९१९)

५८. करिवा शिष्यादिक नीं पारखा रे, दोष लगावै सोय।
पृथ्वी प्रमुख विराधना रे, संघटादि रूप जे होय रे।।

५८. वीमंसा।।१।। (श. २५।५५१)
'वीमंस' त्ति विमर्शात्—शिक्षकादिपरीक्षणादिति,
(वृ. प. ९१९)

५९. प्रतिसेवा ए दश विधे रे, तेह विषे सुविचार।
आलोयण करवी वली रे, तन मन सूं धर प्यार रे।।

५९. एवं कारणभेदेन दश प्रतिसेवाभेदा भवन्ति।
(वृ. प. ९१९)

६०. तेह आलोयण नैं विषे रे, वलि जे दोष आख्यात।
ते परहरवा कारणैं रे, देखाड़ै जगनाथ रे।।

६१. दश दोष आलोयणा नां कह्या रे, आलोवतो छतो आम।
दोष लगावै दश वली रे, कहियै तेहनां नाम रे।।

६१. दस आलोयणादोसा पण्णत्ता, तं जहा—

आलोचना के दोष

६२. गुरु थोड़ो प्रायश्चित देस्यै मुझ भणी रे,
इम धारी मन मांहि।
आलोयण अर्थ करै रे, वैयावचादिक ताहि रे।।

६३. इहां वैयावचादि करिवै करी रे, आचार्य नैं सोय।
आवज्जी नैं आलोयण करै रे,
तथा धूजतो थको आलोय रे।।

६२,६३. आकंपइत्ता
'आकंपइत्ता' गाहा, आकम्प्य—आवर्जितः सन्नाचार्यः स्तोकं प्रायश्चित्तं मे दास्यतीतिबुद्ध्याऽऽलोचनाऽऽचार्यं वैयावृत्यकरणादिनाऽऽवर्ज्य यदालोचनमसावालोचना-दोषः। (वृ. प. ९१९)

६४. थोड़ो अपराध कहै हुंतै रे, देस्यै गुरु अल्प दंड।
मन अनुमान करी इसो रे, करै आलोयण खंड रे।।

६५. अथवा अनुमान करी इसो रे, स्यूं ए मृदु दंड होय।
तथा उग्र दंड स्यूं अछै रे, इम जाणी पूछै सोय रे।।

६४,६५. अणुमाणइत्ता,
'अणुमाणइत्त' त्ति अनुमान्य—अनुमानं कृत्वा लघुतरापराधनिवेदनेन मृदुदण्डादित्वमाचार्यस्या-कालय्य यदालोचनमसौ तद्दोषः, (वृ. प. ९१९)

सोरठा

६६. इहां ए अभिप्राय, अल्प दंड जाणैं कदा।
आलोवै गुरु पाय, नहिं आलोवै अन्यथा।।

६७. *दीठो आचार्यादिके रे, तेहिज दोष आलोय।
अन्य दोष आलोवै नहीं रे, तृतीय दोष ए होय रे।।

६७. जं दिट्ठं
'जं दिट्ठं' त्ति यदाचार्यादिना दृष्टमपराधजातं तदेवालोचयति। (वृ. प. ९१९)

सोरठा

६८. 'आचार्य नैं एह, रंजन मात्र तत्परपणैं।
करै आलोयण जेह, पिण वैराग्य थकी नथी।।

६८ 'जं दिट्ठं' ति यदेव दृष्टमाचार्यादिना दोषजातं तदेवालोचयति नान्यं दोषं, आचार्यरञ्जनमात्रपरत्वे-नासंविग्नत्वादस्येति। [स्था. वृ. प. ४६०]

६९. प्रगट दोष पर दृष्ट, करै तास आलोयणा।
गुरु जाणस्यै इष्ट, दोष इतोइज एहनैं।।

६९. दिट्ठा व जे परेणं दोसा वियडेइ ते चिय न अन्ने।
सोहिभया जाणंतु त एसो एयावदोसो उ।।
(स्था. वृ. प. ४६०)

*लय : पुन्य रा फल जोयजो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. ठाणांगे वृत्ति मांहि, तेह थकी ए आखियो।
तृतीय दोष ए ताहि, आलोयण नों जाणवुं।।

७१. *बादर मोटा दोष नैं रे, निंदा सूं डरतो आलोय।
पिण सूक्ष्म दोष आलोवै नहीं, तुर्य दोष ए जोय रे।।

७२. सूक्ष्म न्हाना दोष नैं रे, करै आलोयण तास।
मोटा दोष आलोवै नहीं, उपजावै विश्वास रे।।

सोरठा

७३. सूक्ष्म दोष आलोय, तो मोटो किम राखसी।
आचार्य नैं जोय, विश्वास इम उपजायवा।।

७४. *छानो अति लज्जा करी रे, जिम पोतैंज सुणेह।
पिण गुरु पूरो सुणैं नहीं रे, तिण विध आलोयेह रे।।

७५. फुन मोटे शब्दे करी रे, करै आलोयण ताम।
जिम अन्य अगीतार्थ तिके रे,
सांभलै जिम कहै आम रे।।

७६. इक अपराधज आपरो रे, बहु जन पास आलोय।
आलोचनाचार्य बहु रे, दोष अष्टमों होय रे।।

७७. अव्यक्त अगीतार्थ कनैं रे, करै आलोयण जेह।
तास संबंध थकी इहां रे, अव्यक्त दोष कहेह रे।।

७८. जे अपराध आलोयस्यै रे, तेहिज दोष नां ताय।
सेवणहारा गुरु कनैं रे, करै आलोयण जाय रे।।

सोरठा

७९. इहां एहवो अभिप्राय, बिहूं सरीखा ते भणी।
थोड़ो प्राश्चित ताय, मुज नैं ए गुरु आपस्यै।।
८०. जे गुरु शील समान, निज अपराध सुखे करी।
कहिवा समर्थ जान, तत्सेवी दशमों कह्यो।।

आलोचक की अर्हता

८१. *दश गुण ते स्थाने करी रे, संपन्न जे अणगार।
ते निज दोष आलोयवा रे, जोग्य कह्यो जगतार रे।।
८२. जातिसंपन्न धुर गुण कह्यो रे, जातिवंत जे जोय।
बहुलपणैं दोष सेवै नहीं रे,
कदा सेव्यो हुवै तो आलोय रे।।

---

*लय : पुन्य रा फल जोयजो

७१. बादरं व
'बायरं व' त्ति बादरमेवातिचारजातमालोचयति न सूक्ष्मं तत्रावज्ञापरत्वात्, (वृ. प. ९१९)
७२. सुहुमं वा।
'सुहुमं व' त्ति सूक्ष्ममेवातिचारजातमालोचयति, (वृ. प. ९१९)

७३. यः किल सूक्ष्मं तदालोचयति स कथं बादरं तन्नालोचयतीत्येवंरूपभावसम्पादनायाऽऽचार्यस्येति, (वृ. प. ९१९)
७४. छन्नं
'छन्नं' ति छन्नं—प्रतिच्छन्नं प्रच्छन्नं—अतिलज्जालुतयाऽव्यक्तवचनं यथा भवति, एवमालोचयति यथाऽऽत्मनैव शृणोति, (वृ. प. ९१९,९२०)
७५. सद्दाउलयं,
'सद्दाउलयं' ति शब्दाकुलं—बृहच्छब्दं यथा भवत्येवमालोचयति, अगीतार्थान् श्रावयन्नित्यर्थः, (वृ. प. ९२०)
७६. बहुजण
'बहुजण' त्ति बहवो जना—आलोचनागुरवो यत्रालोचने तद्बहुजनं यथा भवत्येवमालोचयति, एकस्याप्यपराधस्य बहुभ्यो निवेदनमित्यर्थः, (वृ. प. ९२०)
७७. अव्वत्त
'अव्वत्त' त्ति अव्यक्तः—अगीतार्थस्तस्मै आचार्याय यदालोचनं तदप्यव्यक्तमित्युच्यते, (वृ. प. ९२०)
७८. तस्सेवी। (श २५।५५२)
'तस्सेवि' त्ति यमपराधमालोचयिष्यति तमेवासेवते यो गुरुः स तत्सेवी तस्मै यदालोचनं तदपि तत्सेवीति, (वृ. प. ९२०)
७९,८०. यतः समानशीलाय गुरवे सुखेनैव विवक्षितापराधो निवेदयितुं शक्यत इति तत्सेविने निवेदयतीति। (वृ. प. ९२९)

८१. दसहिं ठाणेहिं संपण्णे अणगारे अरिहति अत्तदोसं आलोइत्तए, तं जहा—
८२. जातिसंपण्णे
जातिसम्पन्नः प्रायोऽकृत्यं न करोत्येव कृतं च सम्यगालोचयतीति, (वृ. प. ९२०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८३. कुलसंपन्न कह्यो तसु रे, दंड कियो अंगीकार।
वहिणहार तेहनों हुवै रे, ए गुण द्वितीय उदार रे ॥

८४. विनयसंपन्न कह्यो वली रे, वंदनादिक सुविचार।
आलोयण समाचारी तणों रे, प्रयोक्ता हुवै सार रे ॥

८५. ज्ञानसंपन्न कह्यो वली रे, कार्य करिवा जोग।
फुन करिवा जोग्य कार्य नहीं रे,
बिहुं नों जाण प्रयोग रे ॥

८६. दर्शणसंपन्न गुण पंचमो रे, प्रायश्चित थी शुद्ध।
आत्म ह्वै छै आपणी रे, इम सद्दहै वर बुद्ध रे ॥

८७. चरित्तसंपन्न ए गुण छठो रे, प्रायश्चित प्रति सार।
अंगीकार करै तिको रे, चरण आराधना धार रे ॥

८८. क्षम्यावंत तिको खरो रे, गुरु ओलुंभो देह।
न धरै कोप क्षम्या करै रे, सप्तम गुण छै एह रे ॥

८९. दंत कह्यो गुण आठमों रे, इंद्रिय दमनपणेह।
शुद्ध सम्यक वहै तिको रे, योग्य आलोयण जेह रे ॥

९०. जे अपराध कीधो तिको रे, अणगोपवतो जान।
आलोयणा करै शुद्ध मनें रे, तेह अमाई स्थान रे ॥

९१. आलोयण कीधे छते रे, न करै पश्चात्ताप।
निर्जरा नों भागी हुवै रे, ए दशमों गुण व्याप रे ॥

सोरठा

९२. दशमें ठाणे देख, वृत्ति विषे इम आखियो।
चरम बोल बिहुं पेख, ग्रंथांतरे स्वरूप तसु ॥
९३. नो पलिउंचे न्हाल, स्वरूप अमाई तणों।
अपच्छायावी भाल, अपरितप्पेत्ति दशम ॥

आलोचनादायक की अर्हता

९४. *मुनि अष्ट ठाणे करि सहित छै रे,
आलोयण करणी तसु पास।
ते प्रायश्चित्त देवा जोग्य छै रे, धीर गंभीर विमास रे ॥
९५. आचारवंत मुनि गुणी, पंच आचार सहीत।
करवी आलोयण ते कनें रे, ए गुण प्रथम वदीत रे ॥

९६. आधारवंतज दूसरो रे, आलोयो दोष धारंत।
पिण तसु वीसारै नहीं रे, धारचां थी शुद्ध करंत रे ॥

*लय : पुन्य रा फल जोयजो

८३. कुलसंपण्णे,
कुलसम्पन्नोऽङ्गीकृतप्रायश्चित्तस्य वोढा भवति,
(वृ. प. ९२०)

८४. विणयसंपण्णे,
विनयसम्पन्नो वन्दनादिकाया आलोचनासामाचार्याः
प्रयोक्ता भवतीति, (वृ. प. ९२०)

८५. नाणसंपण्णे,
ज्ञानसम्पन्नः कृत्याकृत्यविभागं जानाति,
(वृ. प. ९२०)

८६. दंसणसंपण्णे,
दर्शनसम्पन्नः प्रायश्चित्ताच्छुद्धिं श्रद्धत्ते,
(वृ. प. ९२०)

८७. चरित्तसंपण्णे,
चारित्रसम्पन्नः प्रायश्चित्तमङ्गीकरोति,
(वृ. प. ९२०)

८८. खंते,
क्षान्तो—गुरुभिरुपालम्भितो न कुप्यति,
(वृ. प. ९२०)

८९. दंते,
दान्तो—दान्तेन्द्रियतया शुद्धिं सम्यग् वहति,
(वृ. प. ९२०)

९०. अमायी,
अमायी—अगोपयन्नपराधमालोचयति,
(वृ. प. ९२०)

९१. अपच्छाणुतावी। (श. २५।५५३)
अपश्चात्तापी आलोचितेऽपराधे पश्चात्तापमकुर्वन्निर्जराभागी भवतीति। (वृ. प. ९२०)

९२,९३. 'अमायी अपच्छानुतावी' ति पदद्वयमिहाधिकं प्रकटं च, नवरं ग्रंथान्तरोक्तं तत्स्वरूपमिदं—'नो पलिउंचे अमायी अपच्छायावी न परितप्पे' त्ति।
[स्था. वृ. प. ४६१]

९४. अट्ठहिं ठाणेहिं संपन्ने अणगारे अरिहति आलोयणं पडिच्छित्तए, तं जहा—

९५. आयारवं,
'आचारवान्' ज्ञानादिपञ्चप्रकाराचारयुक्तः।
(वृ. प. ९२०)

९६. आहारवं,
'आहारवं' ति आलोचितापराधानामवधारणावान्।
(वृ. प. ९२०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९७. ववहार पंच कह्या वली रे, पंच ववहार रै मांहि ।
इक ववहार सहित हुवै रे, आलोयवुं ते पाहि रे ।।

९८. अतिचार प्रतिगोपवै रे, कहितां लज्जा आय ।
मृदु वच लाज खोलाय नैं रे, आलोयणा जु कराय रे ।।

९९. जे अपराध आलोवियो रे, प्राश्चित्त देइ तास ।
विशुद्ध प्रतै करिवा जिको रे, समर्थ छै गुणरास रे ।।

१००. अपरिश्रावी गुण वली रे, दोष आलोया जेह ।
अनेरै पास कहै नहीं रे, छठो गुण छै एह रे ।।

१०१. निर्यापक गुण सातमों रे, प्रायश्चित्त वहिवा जेह ।
समर्थ जो जाणैं नहीं रे, तो खंड-खंड करि देह रे ।।

१०२. अपायदर्शी आठमों रे, न करै आलोयण जेह ।
परलोके दुख भोगवै रे, नरक निगोदादिकेह रे ।।

सोरठा

१०३. 'अनिर्वाहादि न्हाल, चित्त भंग शिष्य तेहनैं ।
उभय भवे दुख भाल, देखाड़ै अनर्थ प्रति ।।
१०४. आलोयण न करेह, इह भव मांहै ते सही ।
दुर्भिक्षे दुख लेह, रोग सोग दुर्बलपणुं ।।
१०५. फुन परलोके पेख, दुर्लभ बोधपणुं लहै ।
नरक निगोद विशेख, उत्कृष्ट काल अनंत दुख ।।
१०६. इम अनर्थ देखाय, सम्यक आलोयण भली ।
वर शिष्य प्रतै कराय, शुद्ध करै गुण आठमों ।।
१०७. ए अठ गुणे सहीत, ह्वै पास तसु आलोयणा ।
करै शीस सुविनीत, गुण उत्कृष्टपणैंज ए ।।
१०८. अल्प गुण ह्वै तिण पास, आलोयण करी शुद्ध हुवै ।
तेह तणों सुविमास, कथन इहां दीसै नहीं ।।
१०९. सुत्त ववहार विमास, प्रथमुद्देशक नैं विषे ।
आचार्यादिक पास, आलोयण करवी कही ।।
११०. पच्छाकड़ो पहिछाण, श्रावक पै आलोवणा ।
भेषधारी वलि जाण, तिण पासे करवी कही ।।
१११. चारित्त गुणे रहीत, पिण बहुश्रुत आगम बहु ।
आख्या वीर वदीत, कही आलोयण तिण कन्है ।।
११२. ए पिण देखै नांहि, तो सम्यक भावित चैत्य पै ।
कही आलोयण ताहि, बहुश्रुत पाठ इहां नथी ।।
११३. ते माटै अवलोय, ए अठ गुण उत्कृष्ट थी ।
संभावियै छै सोय, सुत्त ववहार विलोकतां ।।

९७. ववहारवं,
'ववहारवं' ति आगमश्रुतादिपञ्चप्रकारव्यवहाराणा-
मन्यतमयुक्तः । (वृ. प. ९२०)

९८. उव्वीलए,
'उव्वीलए' त्ति अपव्रीडकः—लज्जयाऽतीचारान्
गोपायन्तं विचित्रवचनैर्विलज्जीकृत्य सम्यगालोचनां
कारयतीत्यर्थः (वृ. प. ९२०)

९९. पकुव्वए,
'पकुव्वए' त्ति आलोचितेष्वपराधेषु प्रायश्चित्तदानतो
विशुद्धिं कारयितुं समर्थः । (वृ. प. ९२०)

१००. अपरिस्सावी,
'अपरिस्सावि' त्ति आलोचकेनालोचितान् दोषान्
योऽन्यस्मै न कथयत्यसावपरिश्रावी । (वृ. प. ९२०)

१०१. निज्जवए,
'निज्जवए' त्ति 'निर्य्यापकः' असमर्थस्य प्रायश्चित्तिनः
प्रायश्चित्तस्य खण्डशः करणेन निर्वाहकः ।
(वृ. प. ९२०)

१०२. अवायदंसी । (श. २५।५५४)
'अवायदंसि' त्ति आलोचनाया अदाने पारलौकिका-
पायदर्शनशील इति । (वृ. प. ९२०)

१०९-११२. भिक्खू य अण्णयरं अकिच्चट्ठाणं सेवित्ता,
इच्छेज्जा आलोएत्तए, जत्थेव अप्पणो आयरिय-
उवज्झाए पासेज्जा, ते संतियं आलोएज्जा······ ।
[ववहारो १।३३]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११४. पणवीसम देश सप्त नुं रे, चिहुं सौ इगसठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे,
'जय-जश' मंगलमाल रे ।।

ढाल : ४६२

दूहा

१. अनंतरे आलोचना, आचार्य आख्यात।
ते सामाचारी तणां, पवर प्रवर्त्तक थात ।।
२. अथ सामाचारी प्रतै, देखाड़तो कहिवाय।
सामाचारी दशविधा, दाखी श्री जिनराय ।।

१,२. दसविहा सामायारी पण्णत्ता, तं जहा—
अनन्तरमालोचनाचार्य उक्तः, स च सामाचार्याः प्रवर्त्तको भवतीति तां प्रदर्शयन्नाह—
(वृ. प. ९२०)

सामाचारी पद

*मुनीश्वर ! सामाचारी आराध ।। (ध्रुपदं)

३. इच्छाकार प्रथम कही जी, इच्छा हुवै भगवान !
तो निमंत्रणादि कार्य करूं जी, इम कहिवुं तज मान ।।

३. इच्छा

सोरठा

४. रूंधी निज अभिप्राय, तिण करिकै जे कार्य नुं।
करिवुं तिण रै मांय, कथन रूप इच्छा कही ।।

वा०—इच्छा—इच्छाकारेण सदिस्सह भयवं इत्यादिक कथनरूपा।

५. *खलणा चूक पड़चो थके रे, मिच्छा मि दुक्कडं देह।
मैं कार्य भूंडो करचूं रे, निज आतम निंदेह ।।

५. मिच्छा

६. तहत्तिकार तीजी कही रे, पामी गुरु-आदेश।
करै अंगीकार गुरु वचन नें रे, तहत्ति कहै सुविशेष ।।

६. तहक्कारो,

७. आवस्सही कही स्थान थी रे, गोचरियादिक जाय।
अवश्य गमन ए मुनि तणुं रे,
पिण निफल गमन नहिं थाय ।।

७. आवस्सिया य

८. स्थानक मांहै पेसतां रे, निसीहिया कहिवाय।
गमनादिक नां निषेध थी रे, तेह विषे ए थाय ।।

८. निसीहिया।

९. पोता नां सर्व कार्य करै रे, गुरु नैं पूछी ताम।
ए कार्य करूं कै नहिं करूं रे, आपुच्छणा तसु नाम ।।

९. आपुच्छणा य
आपृच्छा—कार्ये प्रश्न इति, (वृ. प. ९२०)

१०. कार्य करै अन्य मुनि तणुं रे, गुरु नों लही आदेश।
कार्य करतां पूछै वली रे, ते पड़िपुच्छणा कहेस ।।

१०. पडिपुच्छा,
प्रतिपृच्छा तु पूर्वनिषिद्धे कार्य एव, (वृ. प. ९२०)

११. असनादिक द्रव्य जाचिया रे, अन्य साधु नैं आम।
निमंत्रियै गुरु-आण थी रे, छंदणा तिणरो नाम ।।

११ छंदणा य
छन्दना—पूर्वगृहीतेन भक्तादिना (वृ. प. ९२०)

---

*लय : कपूर हुवै अति ऊजलो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. असनादिक नहिं जाचिया रे, ते जाची नें ताय।
अन्य साधु नें निमंत्रियै रे, ते निमंत्रणा कहिवाय ।।
१३. ज्ञानादिक नैं कारणैं रे, अन्य आचार्य पाय।
जेतला काल लगै रहे रे, उपसंपदा कहिवाय ।।

१४. ए सामाचारी दश आचरी रे, भव दधि तिरचा निर्ग्रंथ।
उत्तराध्ययन छबीसमें रे, सहु दुख नों करै अंत ।।

१२. निमंतणा।
निमन्त्रणा त्वगृहीतेन, (वृ. प. ९२०)
१३. उवसंपया य काले,
उपसम्पच्च—ज्ञानादिनिमित्तमाचार्यान्तराश्रयण-
मिति। (वृ. प. ९२०)
१४. सामायारी भवे दसहा। (श. २५।५५५)
एसा सामायारी समासेण वियाहिया।
जं चरित्ता बहू जीवा तिण्णा संसारसागरं ।।
(उत्तर० २६।५२)

वा०—'उत्तराध्ययन छब्बीस में छंदणा कही अनैं निमंत्रणा न कही ते छंदणा में आवी। अनैं अब्भुट्ठाण नवमीं कही इहां अब्भुट्ठाण न कही। अनैं छंदणा निमंत्रणा बे जुदी कही।

जे उत्तराध्ययन में आवस्सही १, निसीहिया २, आपुच्छणा ३, पडिपुच्छणा ४, छंदणा ५, इच्छाकारो ६, मिच्छाकारो ७, तहक्कारो ८, अब्भुट्ठाण ९, उपसंपदा १०। इहां भगवती में इच्छाकार, मिच्छाकार जाव उपसंपदा दशमी कही। इम अनुक्रम कही तेहनों दोष नथी। अनुयोगद्वारे ऋषभ जाव महावीर ए पूर्वानुपूर्वी (सू. २२७) कही। अनैं महावीर जाव ऋषभ पश्चानुपूर्वी (सू. २२८)। अनैं आमां सहमां गिणियां अनानुपूर्वी (सू. २२९)।

वलि अनुयोगद्वारे इच्छा, मिच्छा, तहक्कार जाव उपसंपदा ए तो पूर्वानुपूर्वी (सू. २३९)। कही अनैं उपसंपदा जाव इच्छा ए पश्चानुपूर्वी (सू. २४०)। अनैं आमी-साहमी कियां अनानुपूर्वी (सू. २४१) कही। ते माटै भगवती (२५।५५५) नैं विषे कही ते पूर्वानुपूर्वी अनैं उत्तराध्ययने कही ते अनानुपूर्वी इम कह्यां दोष नथी।' (ज०स०)

वा.—पढमा आवस्सिया नाम बिइया य निसीहिया।
आपुच्छणा य तइया चउत्थी पडिपुच्छणा ।।
पंचमा छंदणा नाम इच्छाकारो य छट्ठओ।
सत्तमो मिच्छाकारो य तहक्कारो य अट्ठमो ।।
अब्भुट्ठाणं नवमं दसमा उवसंपदा।
एसा दसंगा साहूणं सामायारी पवेइया ।।
(उत्तर० २६।२-४)

सोरठा

१५. सामाचारी विशेख, तेहनां भाव थकी हिवै।
प्रायश्चित्त संपेख, तेह प्रतै कहियै अछै ।।

१५. अथ समाचारीविशेषत्वात्प्रायश्चित्तस्य तदभिधातु-
माह— (वृ. प. ९२०)

प्रायश्चित्त पद

१६. *प्रायश्चित्त दशविध कह्यो रे, प्रायश्चित रव एह।
अपराध तथा शुद्धि नैं विषे रे, इहां अपराध विषेह ।।

१६. दसविहे पायच्छित्ते पण्णत्ते, तं जहा—
इह प्रायश्चित्तशब्दोऽपराधे तच्छुद्धौ च दृश्यते तदिहा-
पराधे दृश्यः, (वृ. प. ९२०)

१७. गुरु आगल निवेदवै रे, आतम शुद्धज होय।
आलोयण जोग्य कह्यो तिको रे, एवं अन्य पिण जोय ।।

१७. आलोयणारिहे,
तत्र 'आलोयणारिहे' त्ति आलोचना—निवेदना
तल्लक्षणां शुद्धिं यदर्हत्यतिचारजातं तदालोचनार्हं
एवमन्यान्यपि, (वृ. प. ९२०)

१८. केवल मिच्छा मि दुक्कडं रे, दीये छते शुद्ध थाय।
पडिकमण जोग्य कह्यो तसु रे, द्वितीय प्रायश्चित्त ताय ।।

१८. पडिक्कमणारिहे,
केवलं प्रतिक्रमणं—मिथ्यादुष्कृतं तदुभयं आलोचना-
मिथ्यादुष्कृते, (वृ. प. ९२०)

१९. आलोयण मिच्छा मि दुक्कडं रे, बिहुं लीधां शुद्ध होय।
उभय जोग तसु आखियो रे, तृतीय प्रायश्चित्त जोय ।।

१९. तदुभयारिहे,

२०. अशुद्ध भक्तादिक छांडवै रे, शुद्ध हुवै सुखदाय।
प्रायश्चित्त चोथा भणी रे, विवेक जोग कहाय ।।

२०. विवेगारिहे,
विवेकः—अशुद्धभक्तादित्यागः, (वृ. प. ९२०)

*लय : कपूर हुवै अति ऊजलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. स्वप्न पंचाश्रव सेवियां रे, काओसग्गे शुद्ध थाय।
लोगस्स च्यार गुणै गुणी रे, काओसग्ग जोग्य कहाय।।
२२. विगय त्याग प्रमुख करी रे, आतम हुवै निर्दोष।
ते तप जोग्य छठो कह्यो रे, हुवै कर्म नों शोष।।
२३. ह्रस्वीकरण प्रव्रज्या तणों रे, पर्याय थी पहिछाण।
लहुड़ै करिवै शुद्ध हुवै रे, छेद जोग्य ते जाण।।
२४. महाव्रत वलि आरोपवै रे, नवी दीक्षा दियां शुद्ध थाय।
प्रायश्चित्त ए आठमों रे, मूल जोग्य कहिवाय।।
२५. तप कीधां नैं व्रत आरोपवै रे, आतम निर्मल थाय।
अणवठप्प जोग्य ते कह्यो रे, नवम प्रायश्चित्त ताय।।

२१. विउसग्गारिहे,
व्युत्सर्गः—कायोत्सर्गः (वृ. प. ९२०)
२२. तवारिहे,
तपो—निर्विकृतिकादि, (वृ. प. ९२०)
२३. छेदारिहे,
छेदः—प्रव्रज्यापर्यायह्रस्वीकरणं (वृ. प. ९२०)
२४. मूलारिहे,
मूलं—महाव्रतारोपणं (वृ. प. ९२०)
२५. अणवट्ठप्पारिहे,
अनवस्थाप्यं—कृततपसो व्रतारोपणं (वृ. प. ९२०)

सोरठा

२६. 'ठाणांगे वृत्ति मांहि, अणवठप्पा नों अर्थ इम।
किता काल लग ताहि, गण बाहिर राखी करी।।
२७. तप करावी तास, दोष थकी ते निवर्त्यो।
पछै दीक्षा दै जास, अनवस्थापन जोग्य ए।।' (ज० स०)

२६,२७. 'अणवट्ठप्पारिहे' यस्मिन्नासेविते कंचनकालं व्रतेष्वनवस्थाप्यं कृत्वा पश्चाच्चीर्णतपास्तद्दोषोपरतो व्रतेषु स्थाप्यते तदनवस्थाप्यार्हम्।
(स्था. वृ. प. ४६१)

२८. *पारांचिक जोग्य दशम कह्यो रे, काढी नैं गणबार।
गृहलिंग तपस्या कराय नें रे, दीक्षा देवै सार।।

२८. पारंचियारिहे। (श. २५।५५६)
पाराञ्चिकं—लिङ्गादिभेदमिति। (वृ. प. ९२०)

सोरठा

२९. 'नवम प्रायश्चित्त मांय, गृहीभूत न कह्यो इहां।
गृहीभूत इण न्याय, सूत्र देखतां जोइयै।।
३०. द्वितीय उदेशा मांहि, पाठ विषे ववहार में।
गृहीभूत नैं ताहि, नवम दशम देणो कह्यो।।

३०. अणवट्ठप्पं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावेत्तए।
पारंचियं भिक्खुं गिहिभूयं कप्पइ तस्स गणावच्छेइयस्स उवट्ठावेत्तए। (ववहारो २।१९,२१)

३१. अणवठप्प पारंच, गृहीभूत वा कारणे।
अगृहीभूतज संच, चरित्त विषे तसु स्थापवो।।
३२. जिम ते गण नैं जाण, प्रीत ऊपजै तिम करै।
ववहारे ए वाण, निपुण विचारै न्याय तसु।।

३१,३२. अणवट्ठप्पं भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा कप्पइ····जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।
पारंचियं भिक्खुं अगिहिभूयं वा गिहिभूयं वा कप्पइ····जहा तस्स गणस्स पत्तियं सिया।
(ववहारो २।२२,२३)

३३. पारांचिक नैं पेख, तपादि ठाणांग वृत्ति में।
मिलतो न्याय विशेख, दशम प्रायश्चित्त ते भणो।।' (ज.स.)

३३. 'पारञ्चियारिहे' एतदधिकमिह, तत्र यस्मिन् प्रतिषेविते लिंगक्षेत्रकालतपोभिः पाराञ्चिको—बहिर्भूतः क्रियते तत्पाराञ्चिकं तदर्हमिति।
(स्था. वृ. प. ४६१)

३४. प्रायश्चित्त तप ख्यात, हिव कहियै तप भेद थी।
दाखै श्री जगनाथ, चित्त लगाई सांभलो।।
३५. *पणवीसम देश सातमें रे, च्यार सौ नैं बासठमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे,
'जय-जश' हरष विशाल रे।।

३४. प्रायश्चित्तं च तप उक्तं, अथ तप एव भेदत आह—
(वृ. प. ९२०)

*लय : कपूर हुवै अति ऊजलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४६३

तप पद

दूहा

१. अथ तप नों अधिकार जे, वर जिन वचन विशेख ।
दोय प्रकारे तप कह्यो, बाह्य अभिंतर पेख ।।

२. बाह्य शरीर प्रतै अपि, तापन थकीज ताम ।
बाह्य तप आख्यो प्रभु, ए गुणनिष्पन नाम ।।

३. अभिंतर तप कार्मण, शरीर तेहिज कर्म ।
तापन थकीज आखियै, अब्भिंतर तप पर्म ।।

१. दुविहे तवे पण्णत्ते, तं जहा—बाहिरए य, अब्भिंतरए य । (श. २५।५५७)

२. 'बाहिरिए य' त्ति बाह्यं—बाह्यस्यापि शरीरस्य तापनात् मिथ्यादृष्टिभिरपि तपस्तयाऽभ्युपगमाच्च । (वृ. प ९२४)

३. 'अब्भितरिए य' त्ति आभ्यन्तरम्—अभ्यन्तरस्यैव कार्म्मणाभिधानशरीरस्य प्रायस्तापनात्सम्यग्दृष्टिभिरेव प्रायस्तपस्तयाऽभ्युपगमाच्चेति । (वृ. प. ९२४)

वा०—अब्भितर कार्मण शरीर नैं हीज बहुलपणैं तापन थकी अब्भितर तप । आठ कर्म नैं कार्मण शरीर कहियै ।

बाह्य तप के प्रकार

४. अथ स्यूं ते तप बाह्य वर, षटविध बाह्य उदार ?
अणसण भक्तादिक तजै, ऊणोदरिया सार ।।

५. ऊणो करिवो उदर नों, उणोदरिया नाम ।
व्युत्पत्ति मात्रज ए कह्यं, शब्द अर्थ अभिराम ।।

६. उपकरणादिक नों अपि, ऊणो करिवो जेह ।
ऊणोदरिका पिण तिका, कही अर्थ करि एह ।।

७. भिक्षाचरिका तृतीय तप, समवायांगे जान ।
वृत्तिसंक्षेप कह्यो अछै, भिक्षाचरिया स्थान ।।

८. रसपरित्यागज तुर्य तप, पंचम कायकिलेश ।
षष्टम प्रतिसंलीनता, ए षट बाह्य कहेस ।।

४. से किं तं बाहिरए तवे ? बाहिरए तवे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणं ओमोदरिया,

५,६. 'ओमोयरिए' त्ति अवमस्य—ऊनस्योदरस्य करणमवमोदरिका, व्युत्पत्तिमात्रमेतदितिकृत्वोपकरणादेरपि न्यूनताकरणं सोच्यते, (वृ. प. ९२४)

७. भिक्खायरिया,
छव्विहे बाहिरे तवोकम्मे पण्णत्ते, तं जहा—अणसणे ओमोदरिया वित्तिसंखेवो···· (समवाओ ६।३)

८. रसपरिच्चाओ, कायकिलेसो, पडिसंलीणता । (श. २५।५५८)

अनशन

९. *अथ स्यूं ते अणसण अवधार ? अणसण आख्यो दोय प्रकार ।
इत्वर अल्प काल नों जेह, जावजीव यावतकथिकेह ।।

१०. अथ स्यूं ते इत्वर सुविचार ? अल्पकालीन अनेक प्रकार ।
चउथ भक्त ते इक उपवास, छठ भक्त ते बेलो जास ।।

११. अठम भक्त तेला नैं कहियै, दशम भक्त ते चोलो लहियै ।
द्वादश भक्त पंचोलो पेख, चवदै भक्त ते षट दिन देख ।।

१२. अर्द्धमास फुन मास प्रकाश, दोय मास त्रिण मास उजास ।
यावत षटमासिक तप चीन,
ए अणसण इत्वर अल्पकालीन ।।

९. से किं तं अणसणे ? अणसणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—इत्तरिए य आवकहिए य । (श. २५।५५९)

१०. से किं तं इत्तरिए ? इत्तरिए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—चउत्थे भत्ते, छट्ठे भत्ते,
'इत्तरिए य' त्ति अल्पकालीनं (वृ. प. ९२४)

११. अट्ठमे भत्ते, दसमे भत्ते, दुवालसमे भत्ते, चोदसमे भत्ते

१२. अद्धमासिए भत्ते, मासिए भत्ते, दोमासिए भत्ते, तेमासिए भत्ते जाव छम्मासिए भत्ते । सेत्तं इत्तरिए । (श. २५।५६०)

---

*लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. अथ स्यूं यावतकथिक उदार ?
यावतकथिक द्विविध अवधार।
पाओवगमन भक्तपचखाण, जावजीव ए बे विध जाण ।।

सोरठा

१४. पादप वृक्ष पिछाण, तेहनीं परि निश्चल रहै।
दूजो भक्तपचखाण, त्रिहुं चिहुं आहार तजै तिको ।।

१५. *पाओपगमन हिवै स्यूं तेह ? दोय प्रकारे दाख्यो जेह।
नीहारम अनीहारम जोय, अप्रतिकर्म निश्चय अवलोय ।।

सोरठा

१६. आश्रय नैं इक देश, तेह विषे जे आदरै।
काढै तनु सुविशेष, तेह नीहारम जाणवुं ।।

१७. गुफा प्रमुख में सोय, तास कलेवर नों तदा।
निकालवो नहिं होय, कहियै अनिहारम जिको ।।

१८. प्रतिकर्म तनु नीं सार, निश्चय करि न करै बिहुं।
इतरै ए अवधार, पाओपगमन कह्यं तिको ।।

१९. *अथ हिव स्यूं ते भत्तपचक्खाण,
भत्तपचक्खाण दोय विध जाण।
नीहारम अनीहारम धार,
सप्रतिकर्म निश्चय तनु सार ।।

२०. आख्यो छै ए भत्तपच्चखाण,
यावतकथिक कह्यो फुन जाण।
जे तप बाह्य विषे सुविचार,
आख्यो अणसण प्रथम उदार ।।

१३. से किं तं आवकहिए ? आवकहिए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पाओवगमणे य, भत्तपच्चक्खाणे य। (श. २५।५६१)

१४. 'पाओवगमणे' त्ति पादपवन्निस्पन्दतयाऽवस्थानं, (वृ. प. ९२४)

१५. से किं तं पाओवगमणे ? पाओवगमणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अणीहारिमे य। नियमं अपडिकम्मे। सेत्तं पाओवगमणे। (श. २५।५६२)

१६ 'नीहारिमे' त्ति यदाश्रयस्यैकदेशे विधीयते, तत्र हि कडेवरमाश्रयान्निर्हरणीयं स्यादितिकृत्वा निर्हारिम, (वृ. प. ९२४)

१७. 'अणीहारिमे य' त्ति अनिर्हारिमं यद् गिरिकन्दरादौ प्रतिपद्यते, (वृ. प. ९२४)

१९. से किं तं भत्तपच्चक्खाणे ? भत्तपच्चक्खाणे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—नीहारिमे य, अणीहारिमे य। नियमं सपडिकम्मे।

२०. सेत्तं भत्तपच्चक्खाणे। सेत्तं आवकहिए। सेत्तं अणसणे। (श. २५।५६३)

अवमोदरिका

२१. अथ स्यूं अवमोदरिका तेह ? अवमोदरिका द्विविध जेह।
धुर द्रव्य अवमोदरिका दाखी, भाव अवमोदरिका भाखी ।।

२२. अथ स्यूं धुर अवमोदरिका ते ? दोय प्रकार प्रभु आख्याते।
धुर उपकरण द्रव्य नीं जेह, भक्त पाण द्रव्य नीं द्वितीयेह ।।

२३. अथ स्यूं उपकरण द्रव्य नीं जेह, अवमोदरिका भाखी तेह ?
एक वस्त्र फुन पात्रज एक, राखे संजत परम विवेक ।।

२४. यथोक्त लक्षण सहितपणेह, भोगवीयै वस्त्रादिक जेह।
ते पिण ममत्व रहित आचरिया,
ए उपकरण द्रव्य अवमोदरिया ।।

२१. से किं तं ओमोदरिया ? ओमोदरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—दव्वोमोदरिया य, भावोमोदरिया य। (श. २५।५६४)

२२. से किं तं दव्वोमोदरिया ? दव्वोमोदरिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—उवगरणदव्वोमोदरिया य, भत्तपाणदव्वोमोदरिया य। (श. २५।५६५)

२३. से किं तं उवगरणदव्वोमोदरिया ? उवगरणदव्वोमोदरिया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—एगे वत्थे, एगे पाए;

२४. चियत्तोवगरणसातिज्जणया। सेत्तं उवगरणदव्वोमोदरिया। (श. २५।५६६)
'चियत्तोवगरणसाइज्जणय' त्ति 'चियत्तस्स' त्ति लक्षणोपेततया संयतस्यैव 'साइज्जणय' त्ति स्वदनता परिभोजनमिति' (वृ. प. ९२४)

*लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. अथ स्यूं भात पाणी नीं तेह, द्रव्य अवमोदरिका जेह ?
उत्तर तास कहै जिनराय,
सांभलजो भवियण ! चित ल्याय ।।

२६. अष्ट कुकुड़ि अंडग कहिवाय, तेह प्रमाण मात्र जे ताय ।
कवल नां आहार प्रतै आहारेह,
अल्प आहार कहियै छै एह ।।

२७. जिम सप्तम सत प्रथम उदेश, तेह विषे आख्यो सुविशेष ।
जाव घणों रसभोजी नांही, कहिवुं इतरा लगैज यांही ।।

सोरठा

२८. द्वादश कुकुड़ि अंड-प्रमाण मात्रज कवल नों ।
आहार करै मुनि मंड, अपार्द्ध ते अवमोदरी ।।

२९. सोलै कुकुड़ि अंड-प्रमाण मात्रज कवल नों ।
आहार करै ऋषि मंड, दुभाग पत्त अवमोदरी ।।

३०. कुकुडि अंड चउवीस, प्रमाण मात्रज कवल नों ।
आहार करै मुनि ईश, तिका प्राप्त अवमोदरी ।।

वा०—बीजा अर्द्ध नैं मध्य भाग प्राप्त कहियै बत्तीस कवल आहार नीं अपेक्षाय । चउवीस कवल ते त्रिण भाग लीधा, चउथो भाग न लीधो ते प्राप्त ऊणोदरी जाणवी ।

३१. कुकुड़ि अंड इगतीस-प्रमाण मात्रज कवल नों ।
आहार करै मुनि ईश, किंचि ऊण अवमोदरी ।।

३२. कुकुड़ि अंड बत्तीस-प्रमाण मात्रज कवल नों ।
कीधां आहार मुनीश, पूर्ण प्रमाण प्राप्त ते ।।

३३. एह थकी इक ग्रास, एक शीत पिण ऊण मुनि ।
आहार कियां गुणरास, प्रकामरसभोजी न ते ।।

३४. *से तं भक्त अनैं वलि पाण, द्रव्य तणी अवमोदरी जाण ।
एह द्रव्य अवमोदरी आखी, अर्थ रूप अरिहंते भाखी ।।

३५. अथ ते स्यूं अवमोदरी भाव ? तेह अनेक प्रकार कहाव ।
अल्प क्रोध जावत अल्प लोभ,
अल्प शब्द अल्प झंझ सुशोभ ।।

सोरठा

३६. क्रोधादिक नों ख्यात, अल्पपणों अवमोदरिक ।
अभेद-उपचारात, नर पिण अवमोदरिक ह्वै ।।

३७. रात्र्यादिक में जेह, असंजती जागरण नां ।
भय थी अल्प लवेह, अल्प शब्द नों अर्थ ए ।।

वा०—पोहर रात्रि उपरंत गाढे शब्दे न बोलै, रखे असंजती जागै ते माटै तथा दिवसे पिण विचारी अल्प शब्द बोलै ।

---

* लय : इण पुर कंबल कोयनले सी

२५. से किं तं भत्तपाणदव्वोमोदरिया ?

२६. भत्तपाणदव्वोमोदरिया अट्ठकुक्कुडिअंडगप्पमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अप्पाहारे,

२७. जहा सत्तमसए पढमोद्देसए (७।२४) जाव नो पगामरसभोजी ति वत्तव्वं सिया । (पाटि. ३ पृ. ९६९)

२८. दुवालस कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे अवड्ढोमोदरिए,

२९. सोलस कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे दुभागप्पत्ते,

३० चउव्वीसं कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे ओमोदरिए,

३२. बत्तीसं कुक्कुडिअंडगपमाणमेत्ते कवले आहारमाहारेमाणे पमाणमेत्ते,

३३. एत्तो एक्केण वि घासेणं ऊणगं आहारमाहारेमाणे समणे निग्गंथे नो पकामरसभोजीति वत्तव्वं सिया ।

३४. सेत्तं भत्तपाणदव्वोमोदरिया । सेत्तं दव्वोमोदरिया ।
(श. २५।५८७)

३५. से किं तं भावोमोदरिया ? भावोमोदरिया अणेगविहा पण्णत्ता, तं जहा—अप्पकोहे जाव (सं. पा.) अप्पलोभे, अप्पसद्दे, अप्पझंझे,

३६. 'अप्पकोहे' त्ति अल्पक्रोधः पुरुषोऽवमोदरिको भवत्यभेदोपचारादिति । (वृ. प. ९२४)

३७. 'अप्पसद्दे' त्ति अल्पशब्दो रात्र्यादावसंयतजागरणभयात् (वृ. प. ९२४)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

३८. झंझ अर्थ इम हुंत, कोप विशेष थकी जिको ।
वचन-श्रेणि बोलंत, ते झंझा पिण अल्प छै ।।
३९. चूर्णि विषे इम वाय, झंझा अर्थ विना जिको ।
वदै वचन बहु ताय, तेह झंझा जेहनैं नथी ।।
४०. *अल्प तुमंतुम अर्थ संबोध, हृदय विषेज रह्यं जे क्रोध ।
से तं अवमोदरिका भाव, से तं अवमोदरिका कहाव ।।

वा०—किंचित कोप हिया नैं विषेहीज रह्यं पिण बाहिर प्रकाशै नहीं ।

भिक्षाचर्या

४१. अथ हिव स्यूं ते भिक्खायरिया ?
भिक्खायरिया बहुविध चरिया ।
द्रव्य अभिग्रह द्रव्य आश्रित्य,
करै अभिग्रह संत उचित्य ।।

सोरठा

४२. द्रव्य आश्रयी जाण, अभिग्रह ते भिक्षाचरी ।
लेपकृतादि पिछाण, द्रव्य विषे जे जाणवुं ।।

वा० जे भिक्षाचर्या अनैं भिक्षाचर्यावत अभेद वंछवा थकी पुरुष पिण द्रव्य अभिग्रहचारक भिक्षाचर्य इम कहियै । अनैं द्रव्य अभिग्रह लेपकृतादिक द्रव्य विषय खरडचे हाथे देवै तो लेऊं तथा अमुको द्रव्य देवै तो लेऊं इत्यादिक द्रव्य अभिग्रह ।

४३. *जिम उववाइ विषे आख्यात, कहिवुं तेम इहां अवदात ।
यावत शुद्ध एषणिक पिंड, ग्रहिवुं त्यां लग कहिवुं अखंड ।।

सोरठा

४४. जाव शब्द थी ताम, क्षेत्र अभिग्रह करि चरै ।
स्व ग्राम फुन पर ग्राम, आदि विषय जे क्षेत्र नों ।।
४५. काल अभिग्रहण सार, प्रथम पोहर आदिक विषय ।
भावाभिग्रह धार, गान हसन आदिक दियै ।।
४६. इत्यादिक अवलोय, जाव शब्द में जाणवा ।
किहां लगै ते होय, शुद्ध एषणीक अर्थ लग ।।
४७. *शुद्ध एषणा संकित आदि, दोष तजी लै पिंड संवादि ।
संख्या पंच षटादि दात, भिक्षाचर्या ए आख्यात ।।

*लय : इण पुर कंबल कोय न लेसी

३८. 'अप्पझंझे' त्ति इह झञ्झा—विप्रकीर्णा कोपविशेषाद्वचनपद्धतिः, (वृ. प. ९२४)
३९. चूर्ण्यां तूक्तं—'झंझा अणत्थयबहुप्पलावित्तं' (वृ. प. ९२४)
४०. अप्पतुमंतुमे । सेत्तं भावोमोदरिया । सेत्तं ओमोदरिया । (श. २५।५६८)
'अप्पतुमंतुमे' त्ति तुमन्तुमो—हृदयस्थः कोपविशेष एव, (वृ. प. ९२४)

४१. से किं तं भिक्खायरिया ? भिक्खायरिया अणेगविहा पण्णत्ता ? तं जहा—दव्वाभिग्गहचरए, १ (सं. पा.) अप्पकोहे जाव अप्पलोभे ।

वा.—दव्वाभिग्गहचरए' त्ति भिक्षाचर्यायास्तद्वतश्चाभेदविवक्षणाद्द्रव्याभिग्रहचरको भिक्षाचर्येत्युच्यते, द्रव्याभिग्रहाश्च लेपकृतादिद्रव्यविषयाः । (वृ. प. ९२४)

४३. जहा ओववाइए [सू. ३४] जाव सुद्धेसणिए । (पाटि. २ पृ. ९७०)

४४-४६. अनेनेदं सूचितं—'खेत्ताभिग्गहचरए कालाभिग्गहचरए भावाभिग्गहचरए' इत्यादि, (वृ. प. ९२४)

४७. सुद्धेसणिए, संखादत्तिए । सेत्तं भिक्खायरिया । (श. २५।५६९)
'सुद्धेसणिए' त्ति शुद्धैषणा—शङ्कितादिदोषपरिहारतः पिण्डग्रहस्तद्वांश्च शुद्धैषणिकः 'संखादत्तिए' त्ति सङ्ख्याप्रधानाः पञ्चषादयो दत्तयो—भिक्षाविशेषा यस्य स तथा, (वृ. प. ९२४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. बे सौ सत्तावन देश विशाल, च्यारसौ नें तेसठमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय पसाय,
'जय-जश' संपति हरष सवाय ।।

ढाल : ४६४

रसपरित्याग

दूहा

१. अथ ते स्यूं परित्याग रस, रसपरित्याग संगीत ?
अनेक भेद परूपिया, 'नीवी' विगय रहीत ।।
२. जिम उववाई में कह्यो, यावत लूक्खो आहार ।
जाव शब्द में जाणवो, आंबिल प्रमुख विचार ।।

१. से किं तं रसपरिच्चाए ? रसपरिच्चाए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—निव्विगितिए;
२. जहा ओववाइए (सू. ३५) जाव लूहाहारे । (पाटि. ३ पृ. ९७०)
'जहा उववाइए' त्ति अनेनेदं सूचितम्—'आयंबिलिए आयामसित्थभोई अरसाहारे' इत्यादि, (वृ. प. ९२४)

कायक्लेश

३. आख्यो रसपरित्याग ए, अथ स्यूं कायक्लेश ?
कायक्लेश अनेकविध, दाख्यो अर्थ जिनेश ।।
४. अतिसय करि कायोत्सर्ग, पिण उत्कट आसन ।
जिम उववाई सूत्र में, आख्यो तेम कथन ।।
५. जावत सर्व शरीर नीं, तजी शुश्रूषा जेह ।
उववाइ में आखियो, प्रतिमा आदिक तेह ।।
६. द्वादश प्रतिमा पालवी, वीरासण फुन सार ।
वलि पालठी वाल नें, बेसै हरष अपार ।।
७. इत्यादिक ए आखिया, जाव शब्द रै मांय ।
दाख्यो कायक्लेश ए, पंचम तप अधिकाय ।।

३. सेत्तं रसपरिच्चाए । (श. २५।५७०)
से किं तं कायकिलेसे ? कायकिलेसे अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—
४,५. ठाणादीए, जहा ओववाइए (सू. ३६) जाव सव्वगायपरिकम्म-विभूसविप्पमुक्के ।
'ठाणाइय' त्ति स्थानं—कायोत्सर्गादिकमतिशयेन ददाति गच्छतीति वा । (वृ. प ९२४)
६. अनेनेदं सूचितं—'पडिमट्ठाई वीरासणिए नेसज्जिए' इत्यादि, इह च प्रतिमाः—मासिक्यादयः, वीरासनं च—सिंहासननिविष्टस्य भून्यस्तपादस्य सिंहासनेऽपनीते यादृशमवस्थानं, निषद्या च—पुताभ्यां भूमावुपवेशनं, (वृ. प. ९२४)
७. सेत्तं कायकिलेसे । (श. २५।५७१)

प्रति संलीनता

*षष्टम तप तुम्हें सांभलो ।। (ध्रुपदं)

८. अथ स्यूं प्रतिसंलीणता ? प्रतिसंलीणता जेहो जी ।
आखी च्यार प्रकार नीं, जु-जूआ भेद सुणेहो जी ।
९. इंद्रियप्रतिसंलीनता, कषायप्रतिसंलीनो जी ।
जोगपडीसंलीणता, विविक्तसयनासन चीनो जी ।।

८. से किं तं पडिसंलीणया ? पडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
९. इंदियपडिसंलीणया, कसायपडिसंलीणया, जोगपडिसंलीणया, विवित्तसयणासणसेवणया ।
(श. २५।५७२)

*लय : धर्मदलाली चित्त धरै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. इंद्रियप्रतिसंलीनता, अथ स्यूं ते सुखकारो जी ?
इंद्रियपडिसंलीणया, दाखी पंच प्रकारो जी ।।
११. श्रोतेंद्रिय नीं विषय जे, इष्ट अनिष्ट शब्द विषेहो जी ।
श्रवण प्रवृत्ति नों रूंधवुं, इतरै शब्द सुणवो वर्जेहो जी ।।

सोरठा

१२. इष्ट अनिष्ट कथित्त, जे रव सुणवा नैं विषे ।
राग द्वेष धर चित्त, सुणै नहीं ते महामुनि ।।

१३. *तथा श्रोतेंद्रिय नीं विषय जे,
ते पाम्या जे अर्थ विषेहो जी ।
शब्द गमता अणगमता सांभल्यां,
तिण में राग द्वेष न करेहो जी ।।

सोरठा

१४. अथवा इष्ट अनिष्ट, शब्द पड्या जे कान में ।
तेह विषे धर्मिष्ठ, राग द्वेष न करै मुनि ।।

१५. *इम विषय चक्षु इंद्रिय तणीं, एवं जावत जाणो जी ।
फर्शेंद्रिय विषय प्रवृत्ति, रूंधै संत सुजाणो जी ।।
१६. तथा फर्शइंद्रिय नीं विषय जे, पाम्या अर्थ विषेहो जी ।
राग द्वेष नों रूंधवो, इंद्री-प्रतिसंलीनता एहो जी ।।
१७. कषायप्रतिसंलीनता, हिवै किसी ते आखी जी ?
च्यार प्रकारे ते कही, सांभलजो चित्त राखी जी ।।
१८. क्रोध उदय नों निरोध जे, कोध प्रतै न करेहो जी ।
अथवा उदय प्राप्त क्रोध नैं, निर्फल करै गुणगेहो जी ।।
१९. एवं जावत लोभ नों, उदय निरोध करेहो जी ।
लोभ उदय थया नैं निर्फल करै,
कषायपडिसंलीण एहो जी ।।
२०. अथ हिवै स्यूं ते आखियो, जोगप्रतिसंलीनो जी ?
तीन प्रकारे ते कह्यं , मन वच काय सुचीनो जी ।।

२१. अथ हिवै स्यूं ते आखियो, जे मन जोग व्यापारो जी ।
तेहनुं प्रतिसंलीनता ? उत्तर दे जगतारो जी ।।
२२. अकुशल मन जे पाडुओ, करिवो तास निरोधो जी ।
सावज मन वर्त्तावै नहीं, अघभीरू दिल सोधो जी ।।
२३. तथा कुशल जे मन छै तेहनीं, करै उदीरणा आपो जी ।
तथा मन नैं विशिष्टपणैं करी,
करिवुं एकाग्र भाव सुथापो जी ।।

१०. से किं तं इंदियपडिसंलीणया ? इंदियपडिसंलीणया पंचविहा पण्णत्ता, तं जहा —
११. सोइंदियविसयप्पयारणिरोहो वा,

१२. श्रोत्रेन्द्रियस्य यो विषयेषु—इष्टानिष्टशब्देषु प्रचारः—श्रवणलक्षणा प्रवृत्तिस्तस्य यो निरोधो—निषेधः स तथा शब्दानां श्रवणवर्जनमित्यर्थः (वृ. प. ९२४)
१३. सोइंदियविसयप्पत्तेसु वा अत्थेसु रागदोसविणिग्गहो ।

१४. श्रोत्रेन्द्रियविषयेषु प्राप्तेषु च 'अर्थेषु' इष्टानिष्टशब्देषु रागद्वेषविनिग्रहो—रागद्वेषनिरोधः ।
(वृ. प. ९२४)
१५. चक्खिदियविसयप्पयारणिरोहो वा एवं जाव फासिंदियविसयप्पयारणिरोहो वा,
१६. फासिंदियविसयप्पत्तेसु वा अत्थेसु रागदोसविणिग्गहो ।
सेत्तं इंदियपडिसंलीणया । (श. २५।५७३)
१७. से किं तं कसायपडिसंलीणया ? कसायपडिसंलीणया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
१८. कोहोदयनिरोहो वा, उदयप्पत्तस्स वा कोहस्स विफलीकरणं ।
१९. एव जाव लोभोदयनिरोहो वा, उदयपत्तस्स वा लोभस्स विफलीकरणं । सेत्तं कसायपडिसंलीणया ।
(श. २५।५७४)
२०. से किं तं जोगपडिसंलीणया ? जोगपडिसंलीणया तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—मणजोगपडिसंलीणया, वइजोगपडिसंलीणया, कायजोगपडिसंलीणया ।
(श. २५।५७५)
२१. से किं तं मणजोगपडिसंलीणया ?

२२. मणजोगपडिसंलीणया अकुसलमणनिरोहो वा,

२३. कुसलमणउदीरणं वा, मणस्स वा एगत्तीभावकरणं ।
सेत्तं मणजोगपडिसंलीणया । (श. २५।५७६)
'मणस्स वा एगत्तीभावकरणं' मनसो वा 'एगत्त' त्ति विशिष्टैकाग्रत्वेनैकता तद्रूपस्य भावस्य करणमेकताभावकरणं, (वृ. प. ९२४)

***लय : धर्मदलाली चित्त धरै**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२४. अथवा आत्म सहित एकता, निरालबनपणुं जेहो जी ।
तद्‌रूप भाव छै तेहनैं, करिवुं हरष घणेहो जी ।।
२५. अथ हिवै स्यूं ते आखियो, वचन जोग नों वारू जी ।
प्रतिसंलोनता पवर ही ? उत्तर दै जगतारू जी ।।
२६. अकुशल वचन जोग रूंधवो, न वदै सावज्ज वाणी जी ।
तथा कुशल वचन नीं ऊदीरणा, निर्वद्य बोलै जाणी जी ।।
२७. तथा विशिष्ट एकाग्रपणें करी, एकता रूप जे भावो जी ।
करिवूं जे वच जोग नैं, ए वचपडिसंलीण सावो जी ।।

२८. हिवै कायपडिसंलीणया किसी ?
तनु पडिसंलीणता तेहो जी ।
पाम्यो समाधि भली परै, बाह्य वृत्ति करि जेहो जी ।।
२९. वलि अंतरवृत्ति करी जिको, प्रशांत चित्त सवायो जी ।
कर पग संहरचा छै जिणे,
पिण विक्षिप्त कर पग नांह्यो जी ।।

३०. गुप्त इंद्रिय काछवा नीं परै,
किसी अवस्था नैं विषे संतो जी ।
पूर्व थोड़ो-सो लीन आलीन ते,
पछै अति लीनपणैं रहंतो जी ।।

३१. कही ए तनुप्रतिसंलीनता, जोग तणी वलि एहो जी ।
आखी प्रतिसंलोनता, ए तीनूं भेद कहेहो जी ।।
३२. अथ हिवै स्यूं ते सेविवो, विवित्तसयनासन्नो जी ?
ए तुर्य भेद कहियै हिवै, सांभलजो धर मन्नो जी ।।
३३. उत्तम पवर प्रधान जे, पुष्प तणों वन जाणो जी ।
तेह आराम कहीजियै, जेह विषे पहिछाणो जी ।।
३४. दाता पुष्प नैं फल तणां, महावृक्ष समुदायो जी ।
तेह उद्यान कहीजियै, जेह विषे मुनिरायो जी ।।
३५. जिम सोमल उद्देशके, शतक अठारमा मांह्यो जी ।
दशम उद्देशक नैं विषे, आख्यो तिम कहिवायो जी ।।
३६. जाव सेज्जा संथारा प्रतै, अंगीकार करी विचरंतो जी ।
जाव शब्द में पाठ जे, जाणै पंडित बुद्धिवंतो जी ।।

सोरठा

३७. जाव शब्द में जाण, देवकुल देहरा विषे ।
सभा विषे पहिछाण, पवा प्रपा पाणी तणीं ।।
३८. स्त्री पशु पंडग रहीत, एहवी वस्ती नैं विषे ।
फासु तिहां संगीत, एषणीक पीढादि जे ।।
३९. पीढ बाजवट जान, फलग पाटिया नैं कह्युं ।
सेज्जा जायगा मान, संथारो दर्भादि नों ।।

*लय : धर्मदलाली चित्त धरै

२४. आत्मना वा सह यैकता—निरालम्बनत्वं तद्रूपो भावस्तस्य करणं यत्तत्तथा (वृ. प. ९२४)

२५. से किं तं वइजोगपडिसंलीणया ?

२६. वइजोगपडिसंलीणया अकुसलवइनिरोहो वा, कुसलवइउदीरणं वा,

२७. वईए वा एगत्तीभावकरणं । सेत्तं वइजोगपडिसंलीणया । (श. २५।५७७)
'वईए वा एगत्तीभावकरणं' ति वाचो वा विशिष्टैकाग्रत्वेनैकतारूपभावकरणमिति (वृ. प. ९२४)

२८,२९. से किं तं कायजोगपडिसंलीणया ? कायजोगपडिसंलीणया जण्णं सुसमाहियपसंत-साहरियपाणिपाए
'सुसमाहियपसंतसाहरियपाणिपाए' त्ति सुष्ठु समाहितः—समाधिप्राप्तो बहिर्वृत्त्या स चासौ प्रशान्तश्चान्तर्वृत्त्या यः स तथा संहृतं—अविक्षिप्ततया धृतं पाणिपादं येन स तथा (वृ. प. ९२४)

३०. कुम्मो इव गुत्तिदिए अल्लीण-पल्लीणे चिट्ठति ।
'कुम्मो इव गुत्तिदिए' त्ति गुप्तेन्द्रियो गुप्त इत्यर्थः, क इव ? कूर्म इव, कस्यामवस्थायामित्यत एवाह—'अल्लीणे पल्लीणे' त्ति आलीनः—ईषल्लीनः पूर्वं प्रलीनः पश्चात् प्रकर्षेण लीनः । (वृ. प. ९२४)

३१. सेत्तं कायपडिसंलीणया । सेत्तं जोगपडिसंलीणया । (श. २५।५७८)

३२. से किं तं विवित्तसयणासणसेवणया ?

३३. जण्णं आरामेसु वा

३४. उज्जाणेसु वा

३५,३६. जहा सोमिलुद्देसए [१८।२१२] जाव सेज्जा····
[श. २५।२७९ पाटि]

३७. देवकुलेसु वा सभासु वा पवासु वा

३८. इत्थी-पसु-पंडगविवज्जियासु वा वसहीसु फासु—एसणिज्जं

३९. पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४०. अंगीकार करी तेह, विचरै मुनि समभाव थी।
जाव शब्द में जेह, पाठ कह्या ते जाणवा।।

४०. उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

४१. विविक्तसयनासन सेवणया,
तुर्य भेद ए आख्यो जी।
से तं पडिसंलीणता, बाहिर तप ए भाख्यो जी।।

४१. सेत्तं विवित्तसयणासणसेवणया। सेत्तं पडिसंलीणया। सेत्तं बाहिरए तवे। (श. २५।५७९)

४२. शत पणवीसम देश सात नों,
च्यार सौ चउसठमीं ढालो जी।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' मंगलमालो जी।।

ढाल : ४६५

आभ्यन्तर तप के प्रकार

दूहा

१. अथ स्यूं भितर तप तिको? भितर तप षट भेद।
प्रायश्चित्त शब्दे करी, शुद्ध आराधन वेद।।

१. से किं तं अब्भितरए तवे? अब्भितरए तवे छव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—पायच्छित्तं,
'पायच्छित्ते' त्ति इह प्रायश्चित्तशब्देनापराधशुद्धि-रुच्यते, (वृ. प. ९२४)

२. विनय वेयावच मुनि तणों, सज्झाय नें फुन ध्यान।
विउसग्ग छठो कह्यो, हिव तसु भेद पिछान।।

२. विणओ, वेयावच्चं, सज्झाओ, झाणं, विउसग्गो। (श. २५।५८०)

प्रायश्चित्त

३. हिवै तेह स्यूं प्रायश्चित्त? प्रायश्चित्त दश भेद।
धुर आलोयण जोग्य जे, इत्यादिक संवेद।।

३. से किं तं पायच्छित्ते? पायच्छित्ते दसविहे पण्णत्ते, तं जहा आलोयणारिहे

४. जाव पारंचिक जोग्य जे, कह्यो प्रार्यश्चित्त एह।
हिवै विनय विस्तार जे, तास प्रश्न पूछेह।।

४. जाव पारंचियारिहे। सेत्तं पायच्छित्ते। (श. २५।५८१)

विनय के प्रकार

५. †अथ विनय किसूं ते? विनय सप्तविध वारू।
धुर ज्ञान विनय फुन, दर्शण विनय उदारू।।

५. से किं तं विणए? विणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—नाणविणए, दंसणविणए,

६. वलि चारित्त विनयज, मन विनय श्रीकार।
वच काय विनय फुन, विनय लोक उपचार।।

६. चरित्तविणए, मणविणए, वइविणए, कायविणए, लोगोवयारविणए। (श. २५।५८२)

ज्ञान विनय

७. अथ स्यूं ते कहियै, ज्ञान विनय गुणधार?
जे ज्ञान विनय नां, दाख्या पंच प्रकार।।

७. से किं तं नाणविणए? नाणविणए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—

८. धुर आभिनिबोधिक, ज्ञान विनय गुणहीर।
जाव केवलज्ञानज, ए ज्ञान विनय कह्यं वीर।।

८. आभिणिबोहियनाणविणए जाव (सं.पा.) केवलनाण-विणए। सेत्तं नाणविणए। (श. २५।५८३)

*लय : धर्मदलाली चित्त धरै

†लय : नमुं अनंत चउवीसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

९. कह्यं वृत्ति रै मांहि, ज्ञान विनय नों अर्थ जे।
ज्ञान मत्यादिक ताहि, शुद्धपणें श्रद्धे तसु ।।
१०. तास भक्ति बहुमान, दृष्ट अर्थ तसु भावना।
विधि ग्रहण करि जान, फुन अभ्यास तद्रूप जे ।।
११. 'पिण मति ज्ञानी जेह, समदृष्टि श्रावक तणों।
करिवू विनयज तेह, न कह्यं वृत्ति विषे इहां ।।
१२. ज्ञान तणां गुणग्राम, फुन अभ्यास तेहनुं करै।
वलि तसु श्रद्धे ताम, ज्ञान विनय कहियै तिको ।।' (ज.स.)

९,१०. 'नाणविणए' त्ति ज्ञानविनयो—मत्यादिज्ञानानां श्रद्धानभक्तिबहुमानतद्दृष्टार्थभावनाविधिग्रहणाभ्यासरूपः। (वृ. प. ९२४)

दर्शन विनय

१३. *अथ स्यूं ते कहियै, दर्शण विनय उदार ?
जे दर्शण विनयज, दाख्यो दोय प्रकार ।।
१४. सुश्रूषाज सेवा, दाख्यो ए धुर भेद।
न करै आसातन, द्वितीय भेद संवेद ।।
१५. अथ स्यूं ते कहियै, सुश्रूषा विनय उदार ?
सुश्रूषा विनय नां, कह्या अनेक प्रकार ।।
१६. सत्कार नों देवो, वलि देवुं सन्मान।
जिम चवदम शतके, तृतीय उद्देशे जान ।।
१७. जाव चरम भेद ए, पहुंचावण नैं जाय।
इहां जाव शब्द में, दाख्या ते कहिवाय ।।

१३. से किं तं दंसणविणए ? दंसणविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१४. सुस्सूसणाविणए य, अणच्चासादणाविणए य। (श. २५।५८४)
१५. से किं तं सुस्सूसणाविणए ? सुस्सूसणाविणए अणेगविहे पण्णत्ते, तं जहा—
१६,१७. सक्कारे इ वा सम्माणे इ वा (सं० पा०) जहा चोद्दसमसए ततिए उद्देसए (१४।३२) जाव पडिसंसाहणया।

सोरठा

१८. कितिकर्म कहिवाय, करवी वंदन कार्य वा।
अभ्युत्थानज ताय, आसण छोडी ऊठवो ।।
१९. अंजली ते अवलोय, हाथ बिहुं नों जोड़वो।
सुगुरू मुनि नैं सोय, आसन नों जे धामवो ।।
२०. तसु काजै आसन्न, अन्य स्थान संचारिवुं।
गौरव जोग्यज मुन्न, आवत सन्मुख जायवो ।।
२१. मुनि रह्या जे स्थान, करै तास पर्युपासना।
जाव शब्द में जान, कहियै बोलज एतला ।।
२२. *इतर ए आख्यो, विनय सुश्रूषा सार।
ते जोग्य श्रमण नो, करिवो धर अति प्यार ।।
२३. अथ स्यूं ते विनय, अण-अतिआसातन ?
आसातन न करै, कहियै तेह सुजन ।।
२४. आसातन न करै, तसु पैंतालीस प्रकार।
अरिहंत तणीं जे, आसातन परिहार ।।
२५. अरिहंत परूप्या धर्मतणीं सुविचार।
आसातन टालै, अवर्णवाद निवार ।।
२६. वलि आचार्य नीं, आशातन न करेह।
मन वचन काय करि, प्रतिकूलपणुं तजेह ।।

१८. किइकम्मे इ वा अब्भुट्ठाणे इ वा
१९. अंजलिपग्गहे इ वा आसणाभिग्गहे इ वा
२०. आसणाणुप्पदाणे इ वा, एतस्स पच्चुग्गच्छणया,
२१. ठियस्स पज्जुवासणया,
२२. सेत्तं सुस्सूसणाविणए। (श. २५।५८५)
२३. से किं त अणच्चासादणाविणए ?
२४. अणच्चासादणाविणए पणयालीसइविहे पण्णत्ते, तं जहा अरहंताणं अणच्चासादणया,
२५. अरहंतपण्णत्तस्स धम्मस्स अणच्चासादणया,
२६. आयरियाणं अणच्चासादणया,

*लय : नमुं अनंत चउवीसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. इम उपाध्याय नीं, स्थविर तणीं पिण जेह।
कुल गण नें संघ नीं, आशातन न करेह ।।

सोरठा

२८. कुल गण संघ नों ताहि, अर्थ इहां नहिं वृत्ति में।
अष्टम शत वृत्ति मांहि, अष्टमुद्देशे अर्थ इम ।।
२९. कुल इक गणपति शीस,
त्रिण कुल नों इक गण हुवै।
मुनि-समुदाय जगीस, संघ कहीजै तेहनैं ।।
३०. *परलोक आतम छै, शिव आस्तिक थापेह।
कहियै तसु क्रिया जसु, आसातन न करेह ।।

३१. जसु धर्म सरीखो, लियै दियै भक्तादि।
ते सांभोगिक नीं, वर्जै आशातन वादि ।।

३२. वलि मतिज्ञान नीं, जावत केवलज्ञान।
तेहनीं नहीं करवी, अत्याशातन जान ।।
३३. वलि ए पनरै नीं, भक्ति सहित बहुमान।
भक्ति बाह्य सुप्रीती, बहुमान अंतर प्रीति जान ।।

३४. वलि एह पनर नें, छता गुण वर्णन करि जेह।
जश नुं दीपाविवुं, भेद पैंतालीस एह ।।

३५. ए अणआशातन, विनय पूर्व आख्यात।
ए दर्शण विनयज, दाख्यो श्री जगनाथ ।।

सोरठा

३६. 'चरित्त सहित श्रद्धान, विनय सुश्रूषा तेहनों।
दर्शण विनय सुजान, तेह तणीं जिन आगन्या ।।
३७. आराधना त्रिणविद्ध, ज्ञान दर्शण चारित्त तणीं।
अष्टम शते प्रसिद्ध, दशम उद्देशक नें विषे ।।
३८. जघन्य ज्ञान नीं जोय, वलि जघन्य दर्शण तणीं।
आराधना तसु होय, सप्त अष्ट उत्कृष्ट भव ।।
३९. कह्यो तिहां वृत्तिकार, चारित्त करि ए सहित छै।
तसु भव पनर विचार, ए छै फल चारित्त तणों ।।
४०. चारित्त रहित सुइष्ट, देशविरति समदृष्टि नां।
भव असंख उत्कृष्ट, एहवुं आख्यो वृत्ति में ।।

*लय : नमु अनंत चउवीसी

२७. उवज्झायाणं अणच्चासादणया, थेराणं अणच्चासादणया, कुलस्स अणच्चासादणया, गणस्स अणच्चासादणया, संघस्स अणच्चासादणया,

२८,२९. एत्थ कुलं विन्नेयं एगायरियस्स संतई जा उ।
तिण्ह कुलाण मिहो पुण सावेक्खाणं गणो होइ ।।
सव्वो वि नाणदंसणचरणगुणविहूसियाणसमणाणं।
समुदाओ पुण संघो गणसमुदाओ त्ति काऊणं ।।
(भ. वृ. प. ३८२)

३०. किरियाए अणच्चासादणया,
'किरियाए अणच्चासायणाए' त्ति इह क्रिया—अस्ति परलोकोऽस्त्यात्माऽस्ति च सकलक्लेशाकलङ्कितं मुक्तिपदमित्यादिप्ररूपणात्मिका गृह्यते।
(वृ. प. ९२५)

३१. संभोगस्स अणच्चासादणया,
'संभोगस्स अणच्चासायणाए' त्ति सम्भोगस्य—समानधर्म्मिकाणां परस्परेण भक्तादिदानग्रहणरूपस्यानत्याशातना—विपर्यासकरणपरिवर्जनं
(वृ. प. ९२५)

३२. आभिणिबोहियनाणस्स अणच्चासादणया, जाव केवलनाणस्स अणच्चासादणया,

३३. एएसिं चेव भत्ति-बहुमाणेणं,
'भत्तिबहुमाणेणं' ति इह भक्त्या सह बहुमानो भक्तिबहुमानः भक्तिश्च इह बाह्या परिजुष्टिः बहुमानश्च—आन्तरः प्रीतियोगः। (वृ. प. ९२५)

३४. एएसिं चेव वण्णसंजलणया।
'वन्नसंजलणय' त्ति सद्भूतगुणवर्णनेन यशोदीपनं।
(वृ. प. ९२५)

३५. सेत्तं अणच्चासादणयाविणए। सेत्तं दंसणविणए।
(श. २५।५८६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. तेम इहां पिण धार, दर्शण विनय संभावियै ।
चरित्त सहित सुविचार, करवी सुश्रूषा तसु ।।
४२. ग्रहस्थ तणींज ताहि, सुश्रूषा करवा तणीं ।
श्री जिन आज्ञा नांहि, तिण सूं चारित्त सहित ए ।।

चारित्र विनय

४३. *अथ स्यूं ते कहियै, चारित्त विनय सुचंग ?
ए पंच प्रकारे दाख्यो, सखर सुरंग ।।
४४. सामायिक जावत, यथाख्यात सुविचार ।
तसु गुण वर्णवियै, ए चारित्त विनय उदार ।।

मन विनय

४५. अथ स्यूं मन विनयज ? ते मन विनय द्विविद्ध ।
पसत्थ मन विनयज, अपसत्थ मन सुप्रसिद्ध ।।

सोरठा

४६. प्रशस्त मन कहिवाय, तेहिज प्रवर्त्तन द्वार करि ।
विनय कर्म क्षय ताय, तास उपाय कहीजियै ।।

४७. अपसत्थ मन कहिवाय, तेहिज निर्वर्त्तन द्वार करि ।
विनय अर्थ सुखदाय, अघ क्षय करण उपाय जे ।।
४८. *अथ स्यूं ते कहियै, विनय प्रशस्त मन ?
ते सप्त प्रकारे, सांभलजो गुणीजन ।।
४९. सामान्य करीनें, पाप रहित मन जास ।
ए कह्यं अपापक, ए धुर भेद विमास ।।
५०. वलि विशेष करिकै, क्रोधादि अवद्य रहीत ।
ते कह्यो असावज्ज, द्वितीय भेद संगीत ।।

५१. वलि काइयादिक जे, क्रिया रहित मन ताय ।
ए तृतीय भेद फुन, अकिरिये कहिवाय ।।

५२. वलि मन शोकादिक, आत्म कलेश रहीत ।
ते भेद चतुर्थो, निरुपक्लेश संगीत ।।

५३. प्राणातिपातादिक, आश्रव करण रहीत ।
ए अणआश्रव करि, पंचम भेद पुनीत ।।

५४. निज पर नें खेद जे, करण शील जसु नांय ।
एहवुं मन जेहनुं, अछवीकर कहिवाय ।।

५५. जेह थकी जीव नें, संका भय नहीं जन्न ।
एहवुं मन जेहनुं, अभूताभिसंकन्न ।।

---

*लय : नमु अनंत चउवीसी

४३. से किं तं चरित्तविणए ? चरित्तविणए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—
४४. सामाइयचरित्तविणए जाव अहक्खायचरित्तविणए । सेत्तं चरित्तविणए । (श. २५।५८७)

४५. से किं तं मणविणए ? मणविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—पसत्थमणविणए य, अप्पसत्थमणविणए य । (श. २५।५८८)

४६. 'पसत्थमणविणए' त्ति प्रशस्तमन एव प्रवर्तनद्वारेण विनयः—कर्म्मापनयनोपायः प्रशस्तमनोविनयः, (वृ. प. ९२५)
४७. अप्रशस्तमन एव निवर्त्तनद्वारेण विनयोऽप्रशस्तमनोविनयः । (वृ. प. ९२५)
४८. से किं तं पसत्थमणविणए ? पसत्थमणविणए सत्तविहे पण्णत्ते, जं जहा—
४९. अपावए,
'अपावए' त्ति सामान्येन पापवर्जितं । (वृ. प. ९२५)
५०. असावज्जे,
विशेषतः पुनरसावद्यं—क्रोधाद्यवद्यवर्जितं । (वृ. प. ९२५)
५१. अकिरिए,
'अकिरिए' त्ति कायिक्यादिक्रियाऽभिष्वङ्गवर्जितं । (वृ. प. ९२५)
५२. निरुवक्केसे,
'निरुवक्केसं' ति स्वगतशोकाद्युपक्लेशवियुक्तं । (वृ. प. ९२५)
५३. अणण्हवकरे,
'अणण्हयकरे' त्ति अनाश्रवकरं प्राणातिपाताद्याश्रवकरणरहितमित्यर्थः । (वृ. प. ९२५)
५४. अच्छविकरे,
'अच्छविकरे' त्ति क्षपिः—स्वपरयोरायासो यत् तत्करणशीलं न भवति तदक्षपिकरं (वृ. प. ९२५)
५५. अभूयाभिसंकणे ।
'अभूयाभिसंकणे' त्ति यतो भूतान्यभिशङ्कन्ते—बिभ्यति तस्माद्यदन्यत्तदभूताभिशङ्कनं, (वृ. प. ९२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. इतलै ए आख्यो, प्रशस्त मन विनयेह।
शुद्ध मन प्रवर्त्तावै, प्रशस्त मन कह्यं तेह।।

५७. अथ स्यूं ते अपसत्थ, मन विनय अधिकार?
अपसत्थ मन विनयो, दाख्यो सप्त प्रकार।।

५८. सामान्य करीनैं, पापकारिक जे मन।
ते नाम पापको, ए धुर भेद कथन।।

५९. विशेष थकी जे, क्रोधादिक करि सहीत।
एहवुं मन जेहनुं, सावज्ज नाम संगीत।।

६०. वलि काइयादिक जे, किरिया सहित मन ताय।
ए तृतीय भेद फुन, सकिरिये कहिवाय।।

६१. वलि मन शोकादिक, आतम कलेश सहीत।
ते भेद चतुर्थो, सउपक्लेश संगीत।।

६२. प्राणातिपातादिक, आश्रव करण सहीत।
ते आश्रव करि, पंचम भेद कथीत।।

६३. निज पर नैं खेद जे, करण शील छै जास।
एहवुं मन जेहनुं, कह्यं छविकर तास।।

६४. जे थकी जीव नैं, संका भय उपजंत।
एहवुं मन जेहनुं, भूताभिसंक नमंत।।

६५. इतलै ए आख्यो, अपसत्थ मन विनयेह।
मन असुद्ध निवारै, तेह विनय गुणगेह।।

वचन विनय

६६. अथ स्यूं ते कहियै, वच विनय सुविचार?
वच विनय अछै ते, दाख्यो दोय प्रकार।।

६७. प्रशस्त वचन जे, वच विनय धुर भेद।
अपसत्थ वच विनयो, द्वितीय भेद संवेद।।

६८. अथ स्यूं ते प्रशस्तज, वचन विनय कहिवाय?
ते सप्त प्रकारे, सांभलजो चित ल्याय।।

६९. धुर भेद अपापक, जाव सातमों जन्न।
अभूताभिसंकन, ए विनय प्रशस्त वचन्न।।

७०. अथ स्यूं ते अपसत्थ, वचन विनय कहिवाय?
ते सप्त प्रकारे, दाख्यो श्री जिनराय।।

७१. पापक फुन सावज्ज, जाव भूताभिसंकन्न।
ए अपसत्थ वच विनयो, ए वच विनय कथन्न।।

सोरठा

७२. अपापकारी ताय, वचन प्रवर्तन रूप जे।
अघ क्षय करण उपाय, तेह अपापक वच विनय।।

७३. इम अन्य पिण कहिवाय, जिम मन नां पूर्वे कह्या।
तेम वचन नां थाय, जाव अभूताभिसंकन।।

५६. सेत्तं पसत्थमणविणए। (श. २५।५८९)

५७. से किं तं अप्पसत्थमणविणए? अप्पसत्थमणविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

५८. पावए,

५९. सावज्जे,

६०. सकिरिए,

६१. सउवक्केसे,

६२. अण्हयकरे,

६३. छविकरे,

६४. भूयाभिसंकणे।

६५. सेत्तं अप्पसत्थमणविणए। सेत्तं मणविणए। (श. २५।५९०)

६६. से किं तं वइविणए? वइविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—

६७. पसत्थवइविणए य, अप्पसत्थवइविणए य। (श. २५।५९१)

६८. से किं तं पसत्थवइविणए? पसत्थवइविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

६९. अपावए, असावज्जे जाव अभूयाभिसंकणे। सेत्तं पसत्थवइविणए। (श. २५।५९२)

७०. से किं तं अप्पसत्थवइविणए? अप्पसत्थवइविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

७१. पावए, सावज्जे जाव भूयाभिसंकणे। सेत्तं अप्पसत्थवइविणए। सेत्तं वइविणए। (श. २५।५९३)

७२,७३. 'अपावए' त्ति अपापवाक्प्रवर्त्तनरूपो वाग्विनयोऽपापक इति, एवमन्येऽपि, (वृ. प. ९२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायविनय

७४. *अथ स्यूं ते कहियै, काय-विनय जे ताय ?
ते दोय प्रकारे, पसत्थ अपसत्थ काय ।।

७४. से किं तं कायविणए ? कायविणए दुविहे पण्णत्ते, तं जहा —
पसत्थकायविणए य, अप्पसत्थकायविणए य ।
(श. २५।५९४)

७५. अथ स्यूं ते प्रशस्त-कायविनय सुखदाय ?
ते सप्त प्रकारे, सांभलजो चित ल्याय ।।

७६. 'आउत्तं गमणं', गमन उपयोग सहीत ।
जिण-आण सहित जे, चालै रूड़ी रीत ।।

७५. से किं तं पसत्थकायविणए ? पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा —

७६. आउत्तं गमणं,

सोरठा

७७. आगुप्त संजत सार, तेह संबंधि जेह छै ।
ते आगुप्तज धार, वृत्ति विषे इम आखियो ।।

७७. 'आउत्तं' ति आगुप्तस्य—संयतस्य सम्बन्धि यत्तदागुप्तमेव । (वृ. प. ९२५)

७८. *'आउत्तं ठाणं', उपयोगे करि स्थान ।
जे ऊभो रहिवुं, आण सहित पहिछान ।।

७८. आउत्तं ठाणं,

७९. 'आउत्तं निसियण', जे उपयोग सहीत ।
मही विषे बेसवुं, आण सहित धर प्रीत ।।

७९. आउत्तं निसीयणं,

८०. 'आउत्तं तुयट्टणं', सूवुं उपयोग सहीत ।
जिन आण सहित ए, सूअै रूड़ी रीत ।।

८०. आउत्तं तुयट्टणं,

८१. 'आउत्तं उल्लघणं', आगल द्वार वरंड-
आदिक उलंघवो, आज्ञा सहित अखंड ।।

८१. आउत्तं उल्लंघणं,
'उल्लघणं' ति ऊर्ध्वं लङ्घनं द्वारार्गलावरण्डकादेः
(वृ. प. ९२५)

८२. 'आउत्तं पलंघणं', विस्तीर्ण भू जाण ।
जे खाइ प्रमुख नों, अति उलंघवो आण ।।

८२. आउत्तं पल्लंघणं,
'पल्लंघणं' ति प्रलङ्घनं—प्रकृष्टं लङ्घनं विस्तीर्णभूखातादेः
(वृ. प. ९२५)

८३. उपयोग सहित फुन, सर्वेन्द्रिय व्यापार ।
तेहनांज प्रयोगज, तास योजना सार ।।

८३. आउत्तं सव्विंदियजोगजुंजणया
सव्विंदियजोगजुंजण' त्ति सर्वेषामिन्द्रियव्यापाराणां प्रयोग इत्यर्थः
(वृ. प. ९२५)

८४. ए प्रशस्त कायज-विनय कह्यो जिनराय ।
सहु आण सहित है, जाणैं समदृष्टि न्याय ।।

८४. सेत्तं पसत्थकायविणए । (श. २५।५९५)

वा० — 'इहां गमनादिक सात प्रकारे प्रशस्त कायविनय कह्या, तिहां सातूं नैं विषे आउत्तं पाठ कह्यो, ते आउत्तं रो अर्थ टीका में कह्यो ते लिखियै छै— आगुप्तस्य संजतस्य संबंधि यत्तदागुप्तमेव । हिवै एहनों अर्थ—आगुप्तस्य संजतस्य कहितां गुप्तवंत संजती नो, संबंधि कहितां ते संजती संबंधि, यत कहितां जे, तत कहितां ते, आगुप्तं एव कहितां आगुप्तईज कहियै ।

इहां वृत्ति नों अर्थ देखतां तो आगुप्त संजती नों हीज चालिवुं १ ऊभो रहिवुं २ बैसवुं ३ सूयवुं ४ उलंघवुं ५ विशेषे उलंघवुं ६ अनै सर्व इंद्रिय व्यापार नां प्रयोग नीं योजना जाणवी ७ । आगुप्त संजत कहिवै साधु पिण उपयोग सहित ए सातूं कार्य करै ते प्रशस्तकाय विनय कहियै । ए संजत संबंधि टीकाकार कह्या ते माटै गमनादिक साधु नों जाणवुं । अनै टबा नैं करणहार आउत्तं नों अर्थ उपयोग सहित समुच्चय कियो, पिण साधु ग्रहस्थ रो नाम खोल्यो नथी । ते भणी कोइ ग्रहस्थ नों गमनादिक थापै, तेहनों उत्तर—जो ग्रहस्थ नों उपयोग सहित

*लय : नमूं अनंत चउवीसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्त कायविनय हुवै तो जिन आज्ञा सहित गमनादिक करै तो ते पिण मिलै, ते कहियै छै—जे साधु नैं वंदना नैं अर्थे अथवा बहिरावा नैं अर्थे उपयोग सहित जयणा सहित गमनादिक करै, तिहां जिन आज्ञा छै। जे साधु नैं वहिरावा जयणा सहित पगला भरिया ते गमन १। तथा वंदना, बहिरावा नैं अर्थे ऊभो रहिवुं २। इम वंदना बहिरावा हेठो बेसवुं ३। इम वंदना नैं अर्थे अधो थइ पगां में मस्तक देइ कहै - म्हारै बहिरो ४। इमहिज साधु नें बांदवा तथा बहिरावा डेहली प्रमुख उल्लंघवुं ५। इमहिज साधु नैं वंदना तथा बहिरावा विस्तीर्ण भूमिका खाड प्रमुख विशेष उल्लंघवुं ६। इमहिज साधु नैं वंदना तथा बहिरावा सर्व इंद्रिय व्यापार नां प्रयोग नीं योजना करवी—ए सातूंइ उपयोग सहित जयणा सहित' इम इत्यादिक जिन आज्ञा सहित निरवद्य काया नां जोग प्रवर्त्तावै, ते पिण प्रशस्त कायविनय जाणवुं, पिण ग्रहस्थ व्यापारादिक सावद्य कार्य नैं अर्थे जयणा सहित जे काय नां जोग प्रवर्त्तावै त्यां तीर्थंकर नीं आज्ञा नथी।

ते प्रशस्त कायविनय न कहियै, जे आगलो निरवद्य कार्य वंदना करिवा रूप तथा साधु नैं दान देवादिक नों छै तेहनैं अर्थे जयणा सूं गमनादिक करै तथा ऊभो बेस बहिरावै, बैठो हुवै ते ऊभो थइ बहिरावै, ए गमनादिक निरवद्य छै तेहनैं साधु चाल, ऊभो था तथा बैस इम न कहै संभोग नहीं ते माटै। पिण गमनादिक कार्य नीं आज्ञा देवै—जे साहमो असणादिक पडियो ते बहिरावै। तथा रसतादिक बतावै—इण रसतै होय बहिरावै तो अटकाव नहीं, उण रसतै होय न जाणो सचित छै ते माटै, इहां सचित नहीं ए रसतै होय नैं बहिराव, त्यां बहिरावतां दाणो लगै तो ते घर असूझतो हुवै तेहनुं चालणो अंगीकार कियो ते माटै तथा कुड़छी सूं बहिराव इम कह्यां जयणा सहित कुड़छी हाथ में लेणी ठांम में घालणी इत्यादिक सर्व नीं आज्ञा थइ तथा पांचूं अंग नमाय वंदणा करणी तथा पडिकमणा री विध सिखावै अहोकायं कायसंफासं इहां हाथ जोड़नैं वंदणा करणी, इम पंच पदां री वंदणा करणी, काउसग्ग करणो, इम नमोत्थुणं गुणणो, पोतै काय रा जोग प्रवर्त्तावी बतावै इम निरवद्य कार्य मांहि घाली आज्ञा दै तिहां गमनादिक नीं आज्ञा थइ।

जे ग्रहस्थ पूछै—मन, वचन, काया रा जोग भला प्रवर्त्तावुं तिवारै? साधु कहै प्रवर्त्तावो। इम साधु आज्ञा देवै, ते काया भली किम प्रवर्त्तवै। ऊभो हुवै तो बेस बहिरावै, बेठो हुवै तो ऊभो थइ बहिरावै, साहमी वस्तु पड़ीं तो चालनैं बहिरावै इत्यादिक निरवद्य चालवो प्रमुख आज्ञा मांहि आयो, इम उपयोग सहित निरवद्य गमनादिक प्रशस्त कायविनय जाणवो। अनैं व्यापारादिक सावज्ज कार्य नैं अर्थे जयणा सहित जोय-जोय नैं चालै ते चालवो सावज्ज छै। अनैं रसतै में जीव ऊपर पग न दियो तो ते हिंसा नों पाप न लागो, पिण ते पगलो भरै ते सावज्ज छै। पगले-पगले व्यापार रूप सावज्ज कार्य नजदीक करै छै ते भणी ए गमनादिक प्रशस्त कायविनय नथी।' हिवै अपसत्थ कायविनय कहै छै—'

(ज. स.)

८५. अथ स्यूं ते अपसत्थ-कायविनय कहिवाय ?
अपसत्थ तनु-विनयो, सप्त प्रकारे ताय ।।

८६. 'अणाउत्तं गमणं', गमन उपयोग रहीत।
धुर भेद कह्यो ए, अर्थ टबा नों संगीत ।।

८७. जावत अणाउत्तं, सर्व इंद्रिय व्यापार।
तेहनांज प्रयोग नीं, संयोजना अवधार ।।

८५. से किं तं अप्पसत्थकायविणए? अप्पसत्थकायविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा—

८६. अणाउत्तं गमणं

८७. जाव अणाउत्तं सव्विंदियजोगजुंजणया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—ए अप्रशस्त कायविनय निवर्तन द्वार करिकै जाणवो ।

८८. इतरै ए अपसत्थ-कायविनय आख्यात ।
कह्यं कायविनय ए, वारू रीत विख्यात ।।

८८. सेत्तं अप्पसत्थकायविणए । सेत्तं कायविणए ।
(श. २५।५९६)

लोकोपचार विनय

८९. अथ स्यूं ते कहियै, विनय लोक-उपचार ?
ते सप्त प्रकारे, दाख्यो श्री जगतार ।।

८९. से किं तं लोगोवयारविणए ? लोगोवयारविणए सत्तविहे पण्णत्ते, तं जहा –

९०. 'अब्भासवत्तियं', गौरव्य समीप ताय ।
वर्तिवा नुं शील जसु, तास भाव सुखदाय ।।

वा०—अभ्यास कहियै गौरव्य नैं समीप तेहनैं विषे वर्तवा नुं शील जेहनुं इति अभ्यासवर्त्ती । तेहनों भाव ते अभ्यासवर्त्तीपणुं । अथवा अभ्यास नैं विषे प्रीति प्रेम । जिम सेठ नैं समीपे वाणोत्तर रहितो हुंतो द्रव्य लाछ पामै, तिम गुरु समीपे शिष्य रहितो ज्ञानादिक पामै ।

९०. अब्भासवत्तियं,

वा.—'अब्भासवत्तियं' ति अभ्यासो गौरव्यस्य समीपं तत्र वर्त्तितुं शीलमस्येत्यभ्यासवर्ती तद्भावो-ऽभ्यासवर्तित्वं, अभ्यासे वा प्रीतिकं – प्रेम,
(वृ. प. ९२५)

९१. आराधन जोग्यज, तसु छंदै अभिप्राय ।
वर्त्तवा नुं शील जसु, 'परच्छंदाणुवत्तियं' कहाय ।।

वा०—पर कहियै आराधवा जोग्य, तेहनुं छंद कहियै अभिप्राय, तेह प्रति अनुवर्त्तन नुं शील जेहनुं ते परच्छंदानुवर्त्ती, तेहनुं भाव ते परच्छंदानुवर्त्तीपणुं । जिम वाणोत्तर सेठ नैं छांदै चालै, तिम शिष्य गुरू नैं केड़ै प्रवर्त्तै ।

९१. परच्छंदाणुवत्तियं,

वा०—'परछंदाणुवत्तियं' ति परस्य—आराध्यस्य छन्दः—अभिप्रायस्तमनुवर्त्तयतीत्येवंशीलः परच्छन्दा-नुवर्त्ती तद्भावः परच्छन्दानुवर्त्तित्वं (वृ. प. ९२५)

९२. ज्ञानादि निमित्तज, भक्तादिक नुं दान ।
देवूं ते कहियै, कार्य हेतु जान ।।

वा०—'कज्जहेउं' कहितां ज्ञानादि कार्य निमित्त भक्तादिक दान इसो जाणवो । जिम वाणोत्तर नैं धनादि कारणे सेवै तिम शिष्य ज्ञानादिक कारणे सेवै गुरु नैं भात-पाणी आणी आपै ।

९२. कज्जहेउं,

वा०—'कज्जहेउं' ति कार्यहेतोः—ज्ञानादिनिमित्तं भक्तादिदानमिति गम्यं । (वृ. प. ९२५)

९३. कयपडिकइया ते, विनय थकी गुरुराय ।
चित्त प्रसन्न थयां मुझ, श्रुत भणावस्यै ताय ।।

९४. इण अभिप्राय करि, असनादिक दै आण ।
भगवती वृत्ति में, आख्यो इह विध जाण ।।

९३,९४. कयपडिकइया,
'कयपडिकइय' त्ति कृतप्रतिकृता नाम विनयात्-प्रसादिता गुरवः श्रुतं दास्यन्तीत्यभिप्रायेणाशनादि-दानप्रयत्नः । (वृ. प. ९२५)

९५. कयपडिकिरिया इम, मुझ नैं एण भणायो ।
इम जाण भक्तादिक, दियै उववाइ मांह्यो ।।

वा० सेठ मांहरै अति गुण कीधो तो हूंइ सेठ नां कार्य करूं तिम जिणे गुरु भणाव्यो तो हूंइ गुरु नों विनय भक्ति करूं ।

९५. ····कयपडिकिरिया···· [ओवाइयं सू ४०]
'कयपडिकिरिय' त्ति अध्यापितोऽहमनेनेति बुद्धया भक्तादिदानमिति । [औप. वृ. प. ८१]

९६. आर्त्त तेह ग्लान नैं, ओषधादिक नीं जेह ।
शुद्ध करै गवेषण, आर्त्तगवेषण तेह ।।

वा०—'अत्तगवेसणया' नों अर्थ – आर्त्त ते ग्लानीभूत प्रति गवेसै ओषधि भेषजादि करिकै जे ए आर्त्तगवेषण तेहनुं भाव ते आर्त्त-गवेषणता । जिम लोकिक पक्षे कोइ अनाथ हुवै, तेहनों कार्य करै सहाज्य दीयै, तिम कोइ अनाथ यति हुवै तेहनैं आर्त्त ऊपनी जाणी तेहनीं गवेषणा करै तेहनों वेयावच्च करै ।

९६. अत्तगवेसणया,

वा०—'अत्तगवेसणय' त्ति आर्त्त—ग्लानीभूतं गवेषयति भैषज्यादिना योऽसावात्तगवेषणस्तद्भाव आर्त्तगवेषणता । वृ. प ९२५)

९७. प्रस्ताव अनैं वलि, अवसर जाणी जेह ।
करै गुरु नीं व्यावच, देश कालज्ञ तेह ।।

देशकालण्णता—देश काल प्रति जाणैं प्रस्ताव नैं जाणपणैं अवसर जोग्य अर्थ उपजायवो इत्यर्थ ।

९७. देसकालण्णया,
'देसकालण्णय' त्ति प्रस्तावज्ञता—अवसरोचितार्थ-सम्पादनमित्यर्थः (वृ. प. ९२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९८. आराधवा जोग्य नां, सर्व प्रयोजन विषेह।
अनुकूलपणुं जेहनुं, प्रतिकूल नहीं वर्त्तेह ।।

९९. इतलै ए आख्यो, विनय लोक-उपचार।
तप विनय कह्युं ए, वारू करि विस्तार ।।

१००. च्यारसौ नें पैंसठमीं, आखी ढाल उदार।
भिक्षु भारी रायशशि, 'जय-जश' हरष अपार ।।

९८. सव्वत्थेसु अप्पडिलोमया,
'सव्वत्थेसु अपडिलोमय' त्ति सर्वप्रयोजनेष्वाराध्य-
सम्बन्धिष्वानुकूल्यमिति। (वृ. प. ९२५)

९९. सेत्तं लोगोवयारविणए। सेत्तं विणए।
(श. २५।५९७)

ढाल : ४६६

वैयावृत्य

दूहा

१. अथ स्यूं वेयावच्च ते ? वेयावच्च दश भेद।
भक्त पान आदे करी, उपष्टंभ संवेद ।।

२. वेयावच्च आचार्य नुं, उपाध्याय नुं ताय।
त्रिविध स्थविर जन्मादि जे, वय अरु श्रुत पर्याय ।।

३. तप अठमादिक कारको, तेह तपस्वी जाण।
ग्लान रोगी मुनि तणुं, नव शिष्य नुं पहिछाण ।।

४. फुन कुल गण संघ नुं कह्युं, इहां अर्थ नहीं ख्यात।
अष्टम शत नें अष्टमें, आख्यो पूर्व सुजात ।।

५. फुन सार्धमिक नुं कह्युं, वृत्तिकार इह स्थान।
अर्थ प्रगट खोल्यो नथी, अन्य सूत्र थी जान ।।

६. उववाई वृत्ति में कह्युं, चिहुं पद अर्थ पिछाण।
साधु अथवा साधवी, ते सार्धमिक जाण ।।

७. कुल ते गछ-समुदाय छै, गण ते कुल-समुदाय।
संघ ते गण-समुदाय छै, इम आख्यो वृत्ति मांय ।।

८. दशमें ठाणे वृत्ति में, नव पद अर्थ न ख्यात।
सार्धमिक साधु कह्या, सदृश्य धर्म सुजात ।।

९. इतलै वेयावच्च कह्यो, षटविध भितर मांय।
तृतीय भेद ए आखियो, अथ वर तुर्य सज्झाय ।।

१. से किं तं वेयावच्चे ? वेयावच्चे दसविहे पण्णत्ते, तं जहा—

२. आयरियवेयावच्चे, उवज्झायवेयावच्चे, थेरवेयावच्चे,
'थेरवेयावच्चे' त्ति इह स्थविरो जन्मादिभिः।
(वृ. प. ९२५)

३. तवस्सिवेयावच्चे, गिलाणवेयावच्चे, सेहवेयावच्चे,
'तवस्सिवेयावच्चे' त्ति तपस्वी चाष्टमादिक्षपकः।
(वृ. प. ९२५)

४. कुलवेयावच्चे, गणवेयावच्चे, संघवेयावच्चे,

५. साहम्मियवेयावच्चे।

६. सार्धमिकः साधुः साध्वी वा, (औप. वृ. प. ८१)

७. कुलं गच्छसमुदायः गणः कुलानां समुदायः संघो गण-
समुदाय इति। (औप. वृ. प. ८१)

८. 'साहम्मिय' त्ति समानो धर्म्मः सधर्म्मस्तेन चरन्तीति
साधर्मिकाः—साधवः। [स्था. वृ. प. ४४९]

९. सेत्तं वेयावच्चे। (श. २५।५९८)

स्वाध्याय

*सांभल हो गुणीजन,
वारू तो तप विध श्री जिन वागरै ।। (ध्रुपदं)

*लय : महिलां तो बैठी हो राणी कमलावती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. अथ स्यूं पवर सज्झाय कहीजियै ?
स्वाध्याय पंच प्रकार।
प्रथम वाचना ते तो वाचवुं, सीखै सुगुरु पै सार ।।

११. दूजो तो भेद कह्यो पडिपुच्छणा, पुछवूं अर्थ प्रकार।
परियट्टणा बार-बार भणिवुं तिको,
भणिया नों गुणवुं सार ।।

१२. अनुप्रेक्षा वर अर्थ नुं, चिंतववुं मन मांय।
धर्मकथा ते कहिवुं धर्म नुं, ए पंच प्रकार सज्झाय ।।

१०. से किं तं सज्झाए ? सज्झाए पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—वायणा,

११. पडिपुच्छणा, परियट्टणा,

१२. अणुप्पेहा, धम्मकहा। से तं सज्झाए।
(श. २५।५९९)

ध्यान के प्रकार

१३. अथ स्यूं ते ध्यान कवण ? इम पूछियो,
ध्यान ते चतुर प्रकार।
आर्त्त रौद्र अशुभ बे टालियै, धर्म शुक्ल दिल धार ।।

१३. से किं तं झाणे ? झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—अट्टे झाणे, रोद्दे झाणे, धम्मे झाणे, सुक्के झाणे।
(श. २५।६००)

आर्त्तध्यान

१४. आर्त्त ध्यान प्रथम आखियो, विषय नुं रंजत जेह।
चतुर प्रकार कह्या छै तेहनां, सांभलजो चित्त देह ।।

१५. अणगमता शब्द रूपादिक तेहनुं,
संजोग ऊपनों तिवार।
तेहनुं विजोग तीव्र चित्त वांछियै,
जाणै ए परहा जास्यै किणवार ।।

१६. मनगमता शब्द रूपादिक तेहनुं,
संजोग ऊपनों तिवार।
तेहनां अविजोग तीव्र चित्त चिंतवै,
एहनुं विरह म थावो किवार ।।

१७. आतंक रोग सूलादिक तेहनुं,
संजोग मिलियो तिवार।
तेहनुं विजोग तीव्र चित्त वांछवुं,
एहनुं विरह थास्यै किणवार ।।

१८. सेविवा जोग्य काम अरु भोग नुं,
संजोग ऊपनों तिवार।
तेहनुं अविजोग चिंतवै मन विषे,
एहनुं विजोग म थावो किवार ।।

१९. आर्त्त ध्यान तणां जिनराज ए, लक्षण आख्या चार।
कंदणया ते मोटै शब्दे करी,
रड़िवो आक्रंद करिवो अपार ।।

२०. सोयणया कहितां दीनपणुं धरै,
तिप्पणया कहितां ताम।
विमनपणै आंसू नों न्हाखवो,
ए तृतीय लक्षण कह्यो आम ।।

२१. विलवणया कहितां जेह वली, बोलवो क्लिष्ट वचन।
जंपै हा देव! वलि हा देव! जी, इत्यादि वयण कथन ।।

१४. अट्टे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, त जहा—

१५. अमणुण्णसंपयोगसंपउत्ते तस्स विप्पयोगसतिसमन्नागए यावि भवइ,

१६. मणुण्णसंपयोगसंपउत्ते तस्स अविप्पयोगसतिसमन्नागए यावि भवइ,

१७. आयंकसंपयोगसंपउत्ते तस्स विप्पयोगसतिसमन्नागए यावि भवइ,

१८. परिझुसियकामभोगसंपयोगसंपउत्ते तस्स अविप्पयोगसतिसमन्नागए यावि भवइ। (श. २५।६०१)

१९. अट्टस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—कंदणया,
'कंदणय' त्ति महता शब्देन विरवणं। (वृ. प. ९२६)

२०. सोयणया, तिप्पणया
'सोयणय' त्ति दीनता 'तिप्पणय' त्ति तेपनता तिपःक्षरणार्थत्वादश्रुविमोचनं (वृ. प. ९२६)

२१. परिदेवणया। (श. २५।६०२)
'परिदेवणय' त्ति परिदेवनता—पुनः पुनः क्लिष्टभाषणतेति। (वृ. प. ९२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रौद्रध्यान

२२. चिहुं विध रोद्र ध्यान जिन आखियो,
हिंसानुबंधी जान।
जीव हिंसा नुं चिंतविवुं जिको, तेह निरंतर ध्यान ।।

२२. रोद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—हिंसाणुबंधी,

सोरठा

२३. सत्व भणी जे सोय, वध बंधन वेधादि जे।
अनेक प्रकारे जोय, उपजावै पीड़ा प्रतै ।।
२४. जेह निरंतर जान, प्रवर्त्ती करिवा तणुं।
तास शील प्रणिधान, छै जसु ते हिंसानुबंध ।।

वा०– सत्वां नैं वधबंधनादि प्रकारे करी पीड़ा तेह प्रतै अनुबंधै निरंतर प्रवर्त्ती प्रतै करै एहवो शील जेह प्रणिधान ते चिंतविवूं ते हिंसानुबंधी अथवा हिंसानुबंध जिहां छै ते हिंसानुबंधी।

वा०—'हिंसाणुबंधि' त्ति हिंसा—सत्त्वानां वधबन्धबन्धनादिभिः प्रकारैः पीडामनुबध्नाति—सततप्रवृत्तां करोतीत्येवंशीलं यत्प्रणिधानं हिंसानुबंधो वा यत्रास्ति तद्धिसानुबन्धि (वृ. प. ९२६)

२५. मोसाणुबंधी जेह मृषा तणुं, चिंतविवुं मन मांहि।
पिशुन अलीक वचन अछतै करी चित्त अनुबंधै ताहि ।।

२५. मोसाणुबंधी,
'मोसाणुबंधि' त्ति मृषा—असत्यं तदनुबध्नाति पिशुनासत्यासद्भूतादिभिर्वचनभेदैस्तन्मृषानुबन्धि (वृ. प. ९२६)

२६. तेयाणुबंधी ते चोरी तणुं, चिंतववुं मन मांहि।
चोर नुं कर्म तीव्र क्रोधादि जे, आकुलपणें करि ताहि ।।

२६. तेयाणुबंधी,
'तेयाणुबंधि' त्ति स्तेनस्य चौरस्य कर्म स्तेयं तीव्रक्रोधाद्याकुलतया तदनुबन्धवत् स्तेयानुबन्धि। (वृ. प. ९२६)

२७. 'सारक्खणाणुबंधी' ए कह्युं, सर्व उपाय करेह।
विषय नां कारण तणोंज राखवो, तसु अनुबंधी एह ।।

२७. सारक्खणाणुबंधी। (श. २५।६०३)
'सारक्खणाणुबंधि' त्ति संरक्षणे—सर्वोपायैः परित्राणे विषयसाधनस्य धनस्यानुबन्धो यत्र तत्संरक्षणानुबन्धि, (वृ. प. ९२६)

२८. लक्षण च्यार कह्या फुन रोद्र नां, उसन्न दोष धुर भेद।
'हिंसामोसातेयाणुबंधी' जे, 'सारक्खणाणुबंधी' संवेद ।।
२९. पूर्वे आख्या च्यारूं मांहिलो, दोष एक सेवेह।
बहुलपणेंज तीव्र भावे करी, उसन्न दोष कह्युं तेह ।।

२८,२९. रोद्दस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—ओस्सन्नदोसे,
'ओस्सन्नदोसे' त्ति 'ओस्सन्नं' ति बाहुल्येन—अनुपरतत्वेन दोषो हिंसाऽनृतादत्तादानसरक्षणानामन्यतम ओसन्नदोषः (वृ. प. ९२६)

३०. हिंसाणुबंधी आदि च्यारूं विषे, प्रवर्तवा रूप दोष।
ते बहु दोष भेद दूजो कह्यो, ए च्यारूं विषे चित्त पोष ।।

३०. बहुलदोसे,
'बहुदोसे' त्ति बहुष्वपि—सर्वेष्वपि हिंसादिषु ४ दोषः—प्रवृत्तिलक्षणो बहुदोषः। (वृ. प. ९२६)

३१ कुशास्त्र संस्कार जे ते थकी, हिंसादि अधर्म विषेह।
धर्म जाणी प्रवर्ती दोष जे, ते अज्ञान दोष कहेह ।।

३१. अण्णाणदोसे,
'अन्नाणदोसे' त्ति अज्ञानात्—कुशास्त्रसंस्कारात् हिंसादिषु अधर्मस्वरूपेषु धर्मबुद्धया या प्रवृत्तिस्तल्लक्षणो दोषोऽज्ञानदोषः। (वृ. प. ९२६)

३२. आमरणंत दोष चोथो कह्यो, मरण अंत लग जोय।
कालशोकरिकादिक तेहनीं परै, हिंसादि प्रवृत्ति होय ।।

३२. आमरणंतदोसे। (श. २५।६०४)
'आमरणंतदोसे' त्ति मरणमेवान्तो मरणान्तः आमरणान्ताद्—आमरणान्तमसंजातानुतापस्य कालकशौकरिकादेरिव या हिंसादिप्रवृत्तिः सैव दोषः आमरणान्तदोषः। (वृ. प. ९२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मध्यान

३३. चिहुं विध धर्म ध्यान वर च्यार जे,
भेद लक्षण अवधार ।
आलंबन अनुप्रेक्षा में अवतरै,
तिण सुं प्रत्यवतार कह्या च्यार ।।

वा.—धम्मे झाणे—ध्यान चतुरविध तथा च्यार प्रत्यवतार एतलै भेद १, लक्षण २, आलंबन ३, अनुपेक्षा ४ ए च्यार पदार्थ नैं विषे प्रत्यवतार कहितां विचारवा जोग्यपणैं करी समवतार छै जे धर्मध्यान नैं ते चतुर प्रत्यवतार कहियै अथवा चतुरविध शब्द नों हीज ए पर्याय ।

३३. धम्मे झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा—

वा०—'चउप्पडोयारे' त्ति चतुर्षु भेदलक्षणालम्बनानुप्रेक्षा ४ लक्षणेषु पदार्थेषु प्रत्यवतारः समवतारो विचारणीयत्वेन यस्य तच्चतुष्प्रत्यवतारं, चतुर्विधशब्दस्यैव पर्यायो वाऽयम्, (वृ. प. ९२६)

३४. आज्ञा कहितां जिन प्रवचन तेहनुं,
विचय निर्णय जिहां होय ।
प्राकृत भाव थकी विजए कह्युं, ते आणाविजए जोय ।।

३४. आणाविजए,
'आणाविजते' त्ति आज्ञा—जिनप्रवचनं तस्या विचयो—निर्णयो यत्र तदाज्ञाविचयं प्राकृतत्वाच्च 'आणाविजए' त्ति, (वृ. प. ९२७)

३५. राग द्वेषादिक थी जे ऊपनों, अनर्थ जेह अपाय ।
तेहनुं जे निर्णय चिंतन तेह विषे,
ते अपायविजए कहिवाय ।।

३५. अवायविजए,
अपाया—रागद्वेषादिजन्या अनर्थाः (वृ. प. ९२६)

३६. विपाक कहितां जे कर्म नां फल तणुं,
विचय निर्णय जिहां होय ।
भेद तीजो ए धर्मज ध्यान नों, विवागविजए जोय ।।

३६. विवागविजए,
विपाकः—कर्म्मफलं (वृ. प. ९२६)

३७. संस्थान लोक द्वीप दधि आदि जे, तेह तणों आकार ।
तेह तणु जे निर्णय छै जिहां, ए संठाणविजए विचार ।।

३७. संठाणविजए । (श. २५।६०५)
संस्थानानि लोकद्वीपसमुद्राद्याकृतयः ।
(वृ. प. ९२६)

धर्मध्यान के लक्षण

३८. फुन धर्मज ध्यान तणां लक्षण चिहुं,
आज्ञा ते सूत्र नों व्याख्यान ।
तेह विषे वा तिण करिकै रुचि, आज्ञारुचि ते जान ।।

३८. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—आणारुयी,
'आणारुइ' त्ति आज्ञा—सूत्रस्य व्याख्यानं निर्युक्त्यादि तत्र तया वा रुचिः—श्रद्धानं साऽऽज्ञारुचिः ।
(वृ. प. ९२६)

३९. निसर्ग कहितां जेह स्वभाव थी, तत्व तणोंज श्रद्धान ।
ए उपदेश विना जे सद्दहवुं, निसर्गरुचि ए जान ।।

३९. निसग्गरुयी
'निसग्गरुइ' त्ति स्वभावत एव तत्त्वश्रद्धानं

सोरठा

४०. अथवा ए अवधार, स्वमति जातिस्मरण करि ।
तत्व तणों सुविचार, सद्दहै ते निसर्गरुचि ।।

४१. *आगम सूत्र थकी तत्व नुं, सद्दहिवुं शुद्ध उदार ।
तीजो ए लक्षण धर्मज ध्यान नों, सूत्ररुचि सुखकार ।।

४१. सुत्तरुयी,
'सुत्तरुइ' त्ति आगमात्तत्त्वश्रद्धानम (वृ. प. ९२६)

४२. द्वादश अंग भणी अवगाहवै, विस्तार अधिगम जान ।
तिण करि रुचि जे श्रद्धा तत्व नीं,
ते अवगाहरुचि मान ।।

४२. ओगाढरुयी । (श. २५।६०६)
'ओगाढरुइ' त्ति अवगाढनमवगाढं द्वादशाङ्गावगाहो विस्ताराधिगमस्तेन रुचिः (वृ. प. ९२६)

४३. अथवा जे साधु तणें नजीक ह्वै,
तसु उपदेश दै मुनिराय ।
तेह उपदेश थकी रुचि सद्दहणा,
ते अवगाढरुचि कहिवाय ।।

४३. अथवा 'ओगाढ' त्ति साधुप्रत्यासन्नीभूतस्तस्य साधूपदेशाद् रुचिरवगाढरुचिः, (वृ. प. ९२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्मध्यान के आलम्बन

४४. च्यार आलंबन धर्मज ध्यान नां,
धर्मध्यान रूप सौध जान।
शिखरे चढतो आलंबियै, दोरड़ी जिम पहिछाण ।।

४४. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा; पण्णत्ता, तं जहा—'आलंबण' त्ति धर्म्मध्यानसौधशिखरारोहणार्थं यान्यालम्ब्यन्ते तान्यालम्बनानि—वाचनादीनि,
(वृ. प. ९२६)

४५. वाचना धुर आलंबन जाणवो, पडिपुच्छणा प्रश्न पूछेह।
परियट्टणा गुणवो भणिया तणों, धर्मकथा तुर्य लेह ।।

४५. वायणा, पडिपुच्छणा, परियट्टणा, धम्मकहा।
(श. २५।६०७)

धर्मध्यान की अनुप्रेक्षा

४६. चारू जे धर्मध्यान छै तेहनीं, अनुप्रेक्षा कही च्यार।
सर्व प्रकार करी आलोचना, कहियै छै ते सार ।।

४६. धम्मस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
'अणुप्पेह' त्ति धर्म्मध्यानस्य पश्चात्प्रेक्षणानि—पर्यालोचनान्यनुप्रेक्षाः, (वृ. प. ९२६)

४७. जीव परभव थी आयो एकलो, एकलो जास्यै सोय।
एहवी विचारण चिंतन रूप जे, ते एगत्ताणुप्पेहा जोय ।।

४७. एगत्ताणुप्पेहा,

४८. ए संसारिक सर्व पदार्थ अनित्य छै, एक धर्म छै नित्त।
एहवी विचारण चिंतन रूप जे,
ते अनिच्चाणुप्पेहा पवित्त ।।

४८. अणिच्चाणुप्पेहा,

४९. एह संसार विषे जे जीव नैं,
धर्म विना सरण कोइ नांय।
एहवी विचारण चिंतन रूप जे,
ए असरणाणुप्पेहा कहाय ।।

४९. असरणाणुप्पेहा,

५०. गति आगति फिरवो संसार छै, जनक मरी सुत थाय।
इत्यादि विचारणा जे भावना, ते संसाराणुप्पेहा कहाय ।।

५०. संसाराणुप्पेहा। (श. २५।६०८)

शुक्लध्यान

५१. चिहुं विध शुक्लध्यान वर च्यार जे,
भेद लक्षण अवधार।
आलंबन अनुप्रेक्षा में अवतरै,
तिणसूं प्रत्यवतार कह्या च्यार ।।

वा०—शुक्ल ध्यान निरंजन रूप तेहवो, तेहनां च्यार प्रकार १, च्यार लक्षण २, च्यार आलंबन ३, च्यार अनुपेक्षा रूप ४—ए च्यारविध ते च्यार पदार्थ नैं विषे प्रत्यवतार अवतारो छै जेहनुं ते एक-एक नां च्यार-च्यार प्रकार एतलै च्यार चउक सोलै प्रकार कह्या। एतलै शुक्लध्यान च्यारविध तथा भेद १, लक्षण २, आलंबन ३, अनुपेक्षा ४—ए च्यार नैं विषे शुक्लध्यान अवतरै। ते माटै शुक्लध्यान च्यार प्रत्यवतार कह्यो। ए चतुरविध शब्द नों हीज पर्यायवाची जाणवुं।

५१. सुक्के झाणे चउव्विहे चउप्पडोयारे पण्णत्ते, तं जहा—

५२. पृथकवितर्कसविचारी कह्यो, एक द्रव्य रै मांय।
उत्पन्न ध्रुव विगम भेद करि विचारवुं,
ते पृथकवितर्क कहिवाय ।।

५२. पुहत्तवितक्के सवियारी,
'पुहत्तवियक्के सवियारे' त्ति पृथक्त्वेन—एकद्रव्याश्रितानामुत्पादादिपर्यायाणां भेदेन वितर्को—विकल्पः
(वृ. प. ९२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. ए पूर्वगत श्रुत आलंबन नैं विषे,
नानाविध नय नुं तास ।
पवर अनुसरणहार जेहनैं विषे,
ए पृथकवितर्क्क विमास ।।
५४. अर्थ थकी जे व्यंजण नैं विषे, व्यंजन थकी अर्थ मांय ।
विचार सहित मन संचारिवुं, ते सविचारी कहिवाय ।।

५३. पूर्वगतश्रुतालम्बनो नानानयानुसरणलक्षणो यत्र तत्पृथक्त्ववितर्कं (वृ. प. ९२६)

५४. तथा विचारः — अर्थाद्व्यञ्जने व्यञ्जनादर्थे मनः-प्रभृतियोगानां चान्यस्मादन्यस्मिन् विचरणं सह विचारेण यत्तत्सविचारि, (वृ. प. ९२६)

वा० — पुहुत्तवितक्के सवियारे — ए एक द्रव्य नैं विषे रह्या पृथक ते उत्पाद, ध्रुव, विनासादि पर्याय नैं भेदे करी। उप्पन्ने कहितां ए पर्याय किम ऊपनों १, ध्रुवे कहितां केतला काल नीं स्थित ते केतला काल लगैं रहिस्यै २ विगए कहितां ए विणसस्यै ३ इम पृथक कहितां जूओ-जूओ, वितक्कं कहितां विचारिवुं, ए पर्याय नुं विचारवुं ते पूर्वगत श्रुत आलंबन नैं विषे नानाविध नय नुं अनुसरण लक्षण एहवुं छै तेहनैं विषे ते पृथक वितर्क्क कहियै। अनैं सवियारी कहितां अर्थ थकी व्यंजन नैं विषे, व्यंजन थकी अर्थ नैं विषे, मनादिक जोग नों अनेरा थकी अनेरा नैं विषे संचारिवुं ते विचार अनैं विचार सहित प्रवर्त्तै ते सविचारी एतलै द्रव्य पर्याय नां भेद नों विचारवुं ए पहिलो भेद शुक्ल ध्यान नों १।

५५. एकत्ववितर्क्कअविचारी कह्यं, उत्पादादिक पर्याय ।
ते मांहै एक पर्याय आलंब नैं, वितर्क्क विचारवुं ताय ।।
५६. ए पूर्वगत श्रुत पूर्वगत मति विषे, व्यंजन रूप सुहाय ।
अथवा जे अर्थ रूप चिंतन जसु,
ते एकत्ववितर्क्क कहाय ।।

५५,५६. एगत्तवितक्के अवियारी,
'एगत्तवियक्के अवियार' त्ति एकत्वेन अभेदेनोत्पादादि-पर्यायाणामन्यतमैकपर्यायालम्बनतयेत्यर्थः वितर्कः — पूर्वगतश्रुताश्रयो व्यञ्जनरूपोऽर्थरूपो वा यस्य तदेकत्ववितर्कं, (वृ. प. ९२६)

सोरठा

५७. भगवती वृत्ति मझार, पूर्वगत श्रुत अश्रुत जे ।
ए दोनूं अवधार, तिणसुं श्रुत मति बिहुं कह्या ।।
५८. वृत्ति तणीं पर्याय, तेह विषे इम लेख है ।
पूर्वगत श्रुत ताय, अश्रुत पूर्वगत मति ।।
५९. उववाई वृत्ति मांहि, पूर्वगत श्रुत आश्रय ।
व्यंजन रूपज ताहि, अर्थ रूप वा छै जसु ।।
६०. *नहीं छै विचार अर्थ व्यंजन तणों,
अन्य थी अन्य विषे धारि ।
अविचारी तणों अर्थ ए आखियो,
ए एकत्ववितर्क्क अविचारि ।।
६१. तथा नहीं छै विचार मनादिक जोग नुं,
अन्य थी अन्य विषे जसु धारि ।
अविचारी तणों अर्थ ए आखियो,
एकत्ववितर्क्क अविचारि ।।
६२. एकत्ववितर्क्कअविचारी तणुं, एह अर्थ आख्यात ।
इक पर्याय अवलंबी थिर रहै, जिम दीपज घर निर्वात ।।

५९. वितर्कः पूर्वगतश्रुताश्रयो व्यंजनरूपोऽर्थरूपो वा यस्य तदेकत्ववितर्कम् । (औप. वृ. प. ८४)
६०. तथा न विद्यते विचारोऽर्थव्यञ्जनयोरितरस्मादितरत्र (वृ. प. ९२६)

६१. तथा मनःप्रभृतीनामन्यस्मादन्यत्र यस्य तदविचा-रीति २, (वृ. प. ९२६)

*लय : महिला तो बैठी हो राणी कमलावती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा० —'एगत्तवितक्के अवियारे' एहनों अर्थ—एकपणैं करी ते अभेदे करी ते भेद नहीं एकज उत्पादादिक तीन मांहिलो एक नैं उप्पन्ने वा १ धुवे वा २ विगए वा ३ एती पर्याय मांहिली एक पर्याय नैं आलंबवै करी एहवा जे वितर्क्क चिंतवन ए पूर्वगत श्रुत अश्रुत नैं विषे व्यंजनरूप अथवा अर्थरूप जेहनैं ते एकत्ववितर्क्क। तथा नहीं छै विचार अर्थ व्यंजन नैं अन्य थकी अन्य नैं विषे जेहनैं। तथा नहीं छै विचार मनादिक जोग नों अनेरा थकी अनेरा नैं विषे संचारिवुं जेहनुं, ते वायु रहित घर नैं विषे दीवा नीं परै। ते अविचारी एतलै उत्पाद, स्थिति, विनाशादिक नां पर्याय माहिलों एक पर्याय नैं विषे निरवाय घर दीवा नीं परै निःप्रकंप चित्त, ते एकत्ववितर्क्कअविचारी ए बीजो भेद २।

६३. सुहुमकिरिये अनियट्टी कह्युं,
सूक्ष्म किरिया छै जेह विषेह।
मन वच जोग निरुद्धपणैं छतै,
अर्द्ध तनु जोग निरुद्ध थी जेह॥

६३. सुहुमकिरिए अणियट्टी,
'सुहुमकिरिए अणियट्टि' त्ति सूक्ष्मा क्रिया यत्र निरुद्धवाग्मनोयोगत्वे सत्यर्द्धनिरुद्धकाययोगत्वात्तत्सूक्ष्मक्रियं न निवर्त्तत इत्यनिवर्ति।
(वृ. प. ९२६)

६४. प्रवर्द्धमान परिणामपणां थकी,
पाछो निवर्त्तवुं न होय।
ए ध्यान निर्वाण-गमन काले हुवै,
तेरमें गुणठाणे छेहड़े जोय॥

६४. वर्द्धमानपरिणामत्वात्, एतच्च निर्वाणगमनकाले केवलिन एव स्यादिति (वृ. प. ९२६)

६५. समुच्छन्नकिरिये अपडवाइ कह्युं,
काय किरिया सर्वथा क्षीण।
चवदमें गुण ए जोगज रुंधवै,
अपडवाइ ते न पड़ै प्रवीण॥

६५. समोच्छिण्णकिरिए अप्पडिवायी। (श. २५।६०९)
'समुच्छिन्नकिरिए अप्पडिवाइ' त्ति समुच्छिन्ना क्रिया—कायिक्यादिका शैलेशीकरणनिरुद्धयोगत्वेन यस्मिंस्तत्तथा अप्रतिपाति—अनुपरतस्वभावम्,
(वृ. प. ९२६)

शुक्ल ध्यान के लक्षण

६६. शुक्ल ध्यान तणां लक्षण चिहुं, क्षमा ते जीपवो क्रोध।
मुक्ति निर्लोभपणुं सरलपणुं, मार्द्दव नर्माइपणुं सोध॥

६६. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि लक्खणा पण्णत्ता, तं जहा—खंती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे।
(श. २५।६१०)

शुक्ल ध्यान के आलम्बन

६७. आलंबन शुक्ल ध्यान तणां चिहुं,
देवादिक उपसर्ग थी उपन्न।
भय तथा चलणपणुं तसु नहीं हुवै,
ते अव्वहे अव्यथा सुजन्न॥

६७. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि आलंबणा पण्णत्ता, तं जहा—अव्वहे,
'अव्वहे' त्ति देवाद्युपसर्गजनितं भयं चलनं वा व्यथा तदभावोऽव्यथम् (वृ. प. ९२६)

६८. देवादिक कृत माया थी ऊपनां,
फुन सूक्ष्म पदार्थ विषयो विचार।
एहनुं जे मूढपणुं नहीं छै जसु, ते असंमोहे अवधार॥

६८. असंमोहे,
'असमोहे' त्ति देवादिकृतमायाजनितस्य सूक्ष्मपदार्थविषयस्य च संमोहस्य—मूढताया निषेधोऽसंमोहः।
(वृ. प. ९२६)

६९. तनु थी आतम बुद्धि करि जुदो करै,
आतम थी सर्व संजोग।
बुद्धया पृथक करिवुं तेहनुं, एह विवेक प्रयोग॥

६९. विवेगे,
'विवेगे' त्ति देहादात्मनः आत्मनो वा सर्वसंयोगानां विवेचनं—बुद्धया पृथक्करणं विवेकः। (वृ. प. ९२६)

७०. निसंगपणैं करि देह उपधि नुं, त्यागै ते तजवुं होय।
विउसग्ग तास श्री जिन भाखियो,
अमल चित्त अवलोय॥

७० विउसग्गे। (श. २५।६११)
'विउसग्गे' त्ति व्युत्सर्गो—निस्सङ्गतया देहोपधित्यागः
(वृ. प. ९२६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा० — ठाणांग ठाणे चउथे उद्देशे पहिले च्यार लक्षण कह्या — तिहां अव्वहे, असंमोहे, विवेगे, विउसग्गे। अनैं च्यार आलंबन कह्या — खंत्ती, मुत्ती, अज्जवे, मद्दवे। अनैं उववाइ में शुक्लध्यान नां च्यार लक्षण कह्या — विवेग, विउसग्ग, अव्वहे, असंमोहे। अनैं इहां भगवती में क्षमादि च्यार लक्षण कह्या। अनैं अव्वहे प्रमुख च्यार आलंबन कह्या। एतलुं फेर छै तेहनुं न्याय बहुश्रुत विचार लेसी।

शुक्लध्यान की अनुप्रेक्षा

७१. अनुप्रेक्षा शुक्लध्यान नीं चिहुं कही,
भवसंतति नुं चितन्न।
रुलियो अनंत भवे इम चितवै,
ते 'अणंतवत्तियाणुप्पेहा' मन्न।।

७२. पुद्गल प्रमुख सहु वस्तु तणुं,
क्षण-क्षण पलटै परिणाम।
वलि देवादिक नीं ऋद्धि अस्थिर चितवै,
ए 'विपरिणामाणुप्पेहा' ताम।।

७३. संसार नुं अशुभपणुं चित्त चितवै,
रूप गर्वित मरी जेह।
पोता नां कलेवर मांहि कीड़ो हुवै,
इत्यादिक चितवणाज करेह।
सांभल हो गुणीजन !
ए 'असुभाणुप्पेहा' भेद तीजो कह्यो।।

७४. हिंसादिक आश्रव थी अनर्थ हुवै,
रागद्वेष थी दुक्ख ते अपाय।
एहवी जे चित्त में चितवणा करै,
ते 'अवायाणुप्पेहा' कहाय।
सांभल हो गुणीजन!
सेत्तं ए शुक्लध्यान प्रभु आखियो।।

सोरठा

७५. इहां तप नैं अधिकार, अप्रशस्त ध्यानज वर्जवै।
पसत्थ सेविवै सार, तप ह्वै इम कह्युं वृत्ति में।।

७६. सेत्तं ए ध्यान अभिंतर तप तणुं, पंचम भेद आख्यात।
शत पणवीसम सप्तमुद्देशके, कह्यो अर्थ रूप जगनाथ।।

७७. आखी ए च्यारसौ छासठमीं,
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय।
तास प्रसादे संपति गणवृद्धि,
'जय-जश' हरष सवाय।।

७१. सुक्कस्स णं झाणस्स चत्तारि अणुप्पेहाओ पण्णत्ताओ, तं जहा—
अणंतवत्तियाणुप्पेहा,
'अणंतवत्तियाणुप्पेह' त्ति भवसन्तानस्यानन्तवृत्तिताऽनुचिन्तनं (वृ. प. ९२६,९२७)

७२. विप्परिणामाणुप्पेहा,
'विप्परिणामाणुप्पेह' त्ति वस्तूनां प्रतिक्षणं विविधपरिणामगमनानुचिन्तनम् (वृ. प. ९२७)

७३. असुभाणुप्पेहा,
'असुभाणुप्पेह' त्ति संसाराशुभत्वानुचिन्तनम् (वृ. प. ९२७)

७४. अवायाणुप्पेहा।
'अवायाणुप्पेह' त्ति अपायानां—प्राणातिपाताद्याश्रवद्वारजन्यानर्थानामनुप्रेक्षा—अनुचिन्तनमपायानुप्रेक्षा, (वृ. प. ९२७)

७५. इह च यत्तपोऽधिकारे प्रशस्ताप्रशस्तध्यानवर्णनं तदप्रशस्तस्य वर्जने प्रशस्तस्य च तस्यासेवने तपो भवतीति कृत्वेति। (वृ. प. ९२७)

७६. सेत्तं झाणे। (श. २५।६१२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४६७

व्युत्सर्ग

दूहा

१. अथ स्यूं ते विउसग्ग कह्यं ? द्विविध विउस्सग देख ।
द्रव्य विउसग्ग धुर कह्यं, भाव विउस्सग पेख ।।
*वारू जिन वागरै, भेद विउस्सग नां सुखकार रे ।। (ध्रुपदं)

१. से किं तं विउसग्गे ? विउसग्गे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—
दव्वविउसग्गे य, भावविउसग्गे य। (श. २५।६१३)

२. अथ द्रव्य विउस्सग स्यूं कह्यं ?
द्रव्य विउस्सग च्यार प्रकार रे ।
गण-विउस्सग ते तजै गण प्रतै,
जिनकल्पी प्रमुख अणगार रे ।।

२. से किं तं दव्वविउसग्गे ? दव्वविउसग्गे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—गणविउसग्गे,

३. तनु-विउस्सग तजै तनु भणी,
उपधि-विउस्सग उपधि नु त्याग रे ।
भक्त-पान-विउस्सग वली,
कह्यं ए द्रव्य विउस्सग माग रे ।।

३. सरीरविउसग्गे, उवहिविउसग्गे, भत्तपाणविउसग्गे। सेत्तं दव्वविउसग्गे। (श. २५।६१४)

वा०—शरीर नीं सार-संभाल तजै ते कायोत्सर्गादिक २ । उपधि विउस्सग उपधि तजै, एक वस्त्र एक पात्र उपरंत न राखै, कोइ एक पात्र पिण न राखै, चोलपटो तथा कडबंधण उपरंत वस्त्र पिण न राखै ३ । भत्त-पाण विउस्सग ते भात-पाणी पचखी संथारो करै। ए सर्व निर्जरा री करणी छै ४। ए द्रव्य विउस्सग कह्यो ।

४. अथ भाव-विउस्सग स्यूं कह्यं ?
भाव विउस्सग तीन प्रकार रे ।
कषाय संसार नैं कर्म नुं, तजवूं ते विउस्सग सार रे ।।

४. से किं तं भावविउसग्गे ? भावविउसग्गे तिविहे पण्णत्ते, तं जहा—कसायविउसग्गे, संसारविउसग्गे, कम्मविउसग्गे। (श. २५।६१५)

५. अथ कषाय-विउसग स्यूं कह्यं ?
कषाय-विउसग च्यार प्रकार रे ।
क्रोध-विउसग धुर कह्यं,
तिको क्रोध नु तजवो सार रे ।।

५. से किं तं कसायविउसग्गे ? कसायविउसग्गे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—कोहविउसग्गे,

६. मान-विउस्सग दूसरो,
माया-विउस्सग माया तजंत रे ।
लोभ-विउस्सग लोभ प्रतै तजै,
एह कषाय विउस्सग हुंत रे ।।

६. माणविउसग्गे, मायाविउसग्गे, लोभविउसग्गे। सेत्तं कसायविउसग्गे। (श. २५।६१६)

७. अथ संसार-विउस्सग स्यूं तिको ?
संसार-विउस्सग च्यार प्रकार रे ।
नारक-संसार-विउस्सग,
आख्यो ए धुर भेद उदार रे ।।

७. से किं तं संसारविउसग्गे ? संसारविउसग्गे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—नेरइयसंसारविउसग्गे

८. जावत देव-संसार नुं, तजवुं ते विउस्सग जाण रे ।
देव-संसार-विउस्सग तिको,
ए संसार विउस्सग माण रे ।।

८. जाव देवसंसारविउसग्गे। सेत्तं संसारविउसग्गे। (श. २५।६१७)

---

*लय : श्रेयांस जिनेश्वर प्रणमूं नित बेकर जोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. अथ कर्म-विउस्सग स्यूं तिको ?
कर्म-विउसग्ग आठ प्रकार रे ।
ज्ञानावरणी कर्म नुं तजिवूं ते विउस्सग सार रे ।।
१०. जाव अंतराय कर्म नुं तजवूं ते विउस्सग जाण रे ।
कर्म-विउस्सग ए कह्यं,
इतरै भाव-विउस्सग माण रे ।।

वा०—नारकादिक आयुखा नां हेतु मिथ्यादृष्टि आदि नों त्याग ते संसार-विउस्सग । अनैं कर्मविउस्सग ते ज्ञानवरणादि कर्म बंधन हेतु जे ज्ञानप्रत्यनीकादिकपणुं तेहनुं त्याग, इम वृत्ति में कह्यं । इहां कोइ पूछै—देव-संसार-विउस्सग किणनैं कहीजैं ? उत्तर— जे देव आयुखा नां बंध नां हेतु जे अध्यवसाय उलंघी श्रेणि चढ्यो तेहनैं सुर आयुबंध हेतु नथी, ते माटैं देव-संसार-विउस्सग संभवै । ए पिण निर्जरा री करणी जाणवी । कर्म-विउस्सग ते ज्ञानावरणी आदि कर्मबंध नों हेतु तजै तथा शुभध्यान शुभजोग सूं ज्ञानावरणीयादि कर्म हीणा करै ते कर्म-विउस्सग । ए पिण निर्जरा री करणी जाणवी ३ ।

११. एह अभितर तप कह्यं, सेवं भंते ! सेवं भंत ! रे ।
अर्थ पणवीसम शत तणुं, कह्यं सप्तमुद्देशक तंत रे ।।
१२. ढाल च्यार सौ ऊपरे, कही सतसठमीं तंत सार रे ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
कांइ 'जय-जश' हर्ष अपार रे ।।

पंचविंशतितमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।२५।७।।

९. से किं तं कम्मविउसग्गे ? कम्मविउसग्गे अट्ठविहे पण्णत्ते, तं जहा— **नाणावरणिज्जकम्मविउसग्गे**

१०. जाव अंतराइयकम्मविउसग्गे । **सेत्तं कम्मविउसग्गे ।** सेत्तं भावविउसग्गे ।

वा.—'संसारविउसग्गो' त्ति नारकायुष्कादिहेतूनां मिथ्यादृष्टित्वादीनां त्यागः 'कम्मविउसग्गो' त्ति ज्ञानावरणादिकर्म्मबन्धहेतूनां ज्ञानप्रत्यनीकत्वादीनां त्याग इति । (वृ. प. ९२७)

११. सेत्तं अब्भितरए तवे । (श. २५।६१८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २५।६१९)

ढाल : ४६८

दूहा

१. सप्तमुद्देशक नैं विषे, आख्या संजत भेद ।
तेहनां विपक्षभूत जे, असंजता संवेद ।।
२. तेह फुन नारक आदि छै, जिम ह्वै तसु उत्पाद ।
तिम अष्टम उदेशके, कहियै छै विधवाद ।।

१. सप्तमोद्देशके संयता भेदत उक्तास्तद्विपक्षभूताश्चासंयता भवन्ति (वृ. प. ९२७)
२. ते च नारकादयस्तेषां च यथोत्पादो भवति तथाऽष्टमेऽभिधीयते (वृ. प. ९२७)

नैरयिक आदि के पुनर्भव

३. नगर राजगृह नैं विषे, जाव वदै इम वान ।
हे प्रभुजी ! जे नेरइया, ते किम ऊपजै जान ?
*वीर कहै सुण गोयमा ! (ध्रुपदं)
४. वीर कहै सुण गोयमा ! से जहानामए जेहो रे ।
पवय कहितां जीव जे, कूदतो जावै तेहो रे ।।

३. रायगिहे जाव एवं वयासी नेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?
४. गोयमा ! से जहानामए पवए
'पवए' त्ति प्लवकः—उत्प्लवनकारी ।
(वृ. प. ९२७)

---

*लय : चंदगुप्त राजा सुणै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. ते उत्प्लुति करतो छतो, कूदी जायवुं अमकै ठामो रे।
एहवा तसु अध्यवसाय जे, निपजायवै करि तामो रे।।

६. उत्प्लवन लक्षण जे क्रिया, तेहिज कही छै उपायो रे।
ते अन्य स्थान प्राप्ति हेतु, कारण उपाय करि ताह्यो रे।।

७. रह्यो हुंतो जे स्थानके, ते स्थानक छोड़ी तामो रे।
काल अनागत नैं विषे, पूर्व चिंतित स्थानक पामो रे।।
८. ते पूर्व चिंतित स्थान नैं, अंगीकार करी विचरंतो रे।
इण दृष्टांते गोयमा ! कहियै ते पिण जंतो रे।।

९. प्लवक नीं परै जाणवा, उत्प्लुति करता जेहो रे।
तथाविध अध्यवसाय जे, निपजायवै करि तेहो रे।।

१०. कर्म प्लवन क्रिया विशेष जे, करण तिको कहिवायो रे।
अन्य स्थानक पामवा तणां, हेतुपणैं करि ताह्यो रे।।
११. तिणसूं करण नैं कर्म कहीजियै,
तेह उपाय छै ताह्यो रे।
तिण करण उपाय करी तिको,
काल आगामिक मांह्यो रे।।
१२. ते मनुष्यादिक भव छांडनैं, पामवा जोग्यज जेहो रे।
नारक नां जे भव प्रतै, अंगीकार करी विचरेहो रे।।

वा०—इहां गोतम पूछ्यो—नारक हे भगवन किम ऊपजै ? हे गोतम ! यथानामे पवए कहितां कूदण वालो जीव ते पवमाण कहितां उत्प्लुति करतो अनैं कूदी अमुकै ठाम जायवो एहवै अध्यवसाय विशेषे निपजाव्या जे उत्प्लवन लक्षण जे क्रिया विशेष तेहिज उपाय ते स्थानांतर प्राप्ति हेतु तेणे करी आगामि काल नैं विषे जेह स्थानक नैं विषे रह्यो तेह स्थानक प्रतै छांडी नैं एतलै पूर्व चिंतित ठाम प्रतै अंगीकार करिनैं विहरै। इण दृष्टांते तेह पिण जीव प्लवक नीं परै उत्प्लुति करता थका तथाविध अथवा अध्यवसाय निर्वत्तित करण अथवा कर्म प्लवन क्रिया विशेष तेह कारण स्थानांतर प्राप्ति हेतुपणैं करी आगामि काल नैं विषे तेह मनुष्यादि भव प्रतै छांडी नैं पामवा जोग्य नारक भव प्रतै अंगीकार करिनैं विहरै।

१३. हे प्रभुजी ! ते जीव नैं, किसी शीघ्र गति ह्योयो रे।
वलि शीघ्र गति नों किसो, विषय गोचर अवलोयो रे।।

५. पवमाणे अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं
'पवमाणे' त्ति प्लवमानः— उत्प्लुति कुर्वन् 'अज्झवसाणनिव्वत्तिएण' ति उत्प्लोतव्यं मयेत्येवंरूपाध्यवसायनिर्वर्तितेन (वृ. प. ९२८)

६. करणोवाएण
'करणोपायेणं' ति उत्प्लवनलक्षणं यत्करणं— क्रियाविशेषः स एवोपायः— स्थानान्तरप्राप्तौ हेतुः करणोपायस्तेन (वृ.प. ९२८)

७,८. सेयकाले तं ठाणं विप्पजहित्ता पुरिमं ठाणं उपसंपज्जित्ताणं विहरइ, एवामेव एए वि जीवा
'सेयकाले' त्ति एष्यति काले विहरतीति योगः, किं कृत्वा ? इत्याह—
'तं ठाणं' ति यत्र स्थाने स्थितस्तत्स्थानं 'विप्रजहाय' प्लवनतस्त्यक्त्वा 'पुरिमं' ति पुरोवर्तिस्थानम् 'उपसम्पद्य' विहरतीति योगः 'एवामेव ते जीव' त्ति दार्ष्टान्तिकयोजनार्थः, (वृ प. ९२८)

९. पवओ विव पवमाणा अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं
'अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं' ति तथाविधाध्यवसायनिर्वर्त्तितेन (वृ प. ९२८)

१०,११. करणोवाएणं सेयकाले
'करणोवाएणं' ति क्रियते विविधाऽवस्था जीवस्यानेन क्रियते वा तदिति करणं कर्म्म प्लवनक्रियाविशेषो वा करणं करणमिव करणं — स्थानान्तरप्राप्तिहेतुतासाधर्म्यात्कर्मैव तदेवोपायः करणोपायस्तेन।
(वृ. प. ९२८)

१२. तं भवं विप्पजहित्ता पुरिमं भवं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति। (श २५।६२०)
'तं भवं' ति मनुष्यादिभवं 'पुरिमं भवं' ति प्राप्तव्यं नारकभवमित्यर्थः। (वृ. प. ९२८)

१३. तेसि णं भंते ! जीवाणं कहं सीहा गती, कहं सीहे गतिविसए पण्णत्ते ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. श्री जिन भाखै गोयमा ! यथादृष्टांते जाणी रे।
कोइ पुरुष तरुणो अछै, वलि बलवंत पिछाणी रे ।।
१५. इम जिम चवदम शतक रै,
कह्यो प्रथम उद्देशक मांह्यो रे ।
जावत तीन समय तणीं, तथा विग्रह करि उपजायो रे ।।
१६. ते जीव नीं तिम शीघ्र गति कही,
तिम शीघ्र गति नुं एहो रे ।
गोचर विषय परूपियो, वलि गोतम पूछेहो रे ।।
१७. हे भगवंत ! ते जीवड़ा, किसै प्रकार करेहो रे ।
परभव नां आयु प्रतै, पकड़ै बांधै तेहो रे ?
१८. जिन कहै अध्यवसाय जे, जीव तणां परिणामो रे ।
योग ते मन वच काय नां, व्यापार कहियै तामो रे ।।
१९. ए बिहुं करि निपजावियो, तथा करण उपाय कहायो रे ।
ते कर्मबंध हेतु करी, परभव आयु बंधायो रे ।।

१४. गोयमा ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे बलवं

१५. एवं जहा चोद्दसमसए पढमुद्देसए (१४।३) जाव तिसमएण वा विग्गहेणं उववज्जंति

१६. तेसि णं जीवाणं तहा सीहा गई, तहा सीहे गति-विसए पण्णत्ते । (श. २५।६२१)

१७. ते णं भंते ! जीवा कहं परभवियाउयं पकरेंति ?

१८,१९. गोयमा ! अज्झवसाणजोगनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं,
'अज्झवसाणजोगनिव्वत्तिएणं' ति अध्यवसानं—जीवपरिणामो योगश्च—मनः-प्रभृतिव्यापारस्ताभ्यां निर्वर्त्तितो यः स तथा तेन 'करणोवाएणं' ति करणोपायेन—मिथ्यात्वादिना कर्मबन्धहेतुनेति । (वृ. प. ९२८)

२०. इम निश्चै ते जीवड़ा, परभव आयु बांधै रे ।
कर्म तणां जे बंध नां, हेतु करिकै सांधै रे ।।
२१. हे प्रभुजी ! ते जीव नैं, किसै प्रकार करेहो रे ।
गति प्रवर्त्तै छै तसु, परभव जायै जेहो रे ?
२२. जिन कहै आयुक्षय करी, भवक्षय स्थितिक्षय कीधै रे ।
इम निश्चै ते जीव नीं, गति प्रवर्त्तै सीधै रे ।।

२०. एवं खलु ते जीवा परभवियाउयं पकरेंति । (श. २५।६२२)

२१ तेसि णं भंते ! जीवाणं कहं गती पवत्तइ ?

२२. गोयमा ! आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठिइक्खएणं, एव खलु तेसिं जीवाणं गती पवत्तति । (श. २५।६२३)

२३. हे प्रभु ! स्यूं ते जीवड़ा, निज ऋद्धि करि ऊपजंता रे ।
कै पर ऋद्धि करि ऊपजै, उत्पत्ति स्थान पावंता रे ?
२४. जिन कहै आत्म ऋद्धि करी, परभव में ऊपजंता रे ।
पर ऋद्धि करि नहीं ऊपजै, वलि गोतम पूछंता रे ।।
२५. हे प्रभु ! स्यूं ते जीवड़ा, निज कर्म करी उपजंता रे ।
कै पर कर्मे करि जिके, परभव स्थान पामंता रे ?
२६. जिन कहै आत्म कर्म करि, परभव में उपजंता रे ।
पर कर्मे नहीं ऊपजै, वलि गोतम पूछंता रे ।।
२७. हे प्रभु ! स्यूं ते जीवड़ा, आत्म प्रयोगे जाणी रे ।
परभव मांहै ऊपजै, पर प्रयोगे पिछाणी र ?
२८. जिन कहै आत्म प्रयोग करि, ऊपजै परभव मांह्यो रे ।
पिण पर प्रयोगे करी, परभव में नहीं जायो रे ।।
२९. हे प्रभु ! असुर किम ऊपजै ?
जिम नारक तिम ज्यांही रे ।।
सहु विस्तार कहीजियै,
जाव पर प्रयोगे ऊपजै नांही रे ।
३०. इम एकेंद्रिय वर्ज नैं, जाव वैमानिक धारो रे ।
इमज छै एगिंदिया, णवरं विग्रह समया च्यारो रे ।।

२३. ते णं भंते ! जीवा किं आइड्ढीए उववज्जंति ? परिड्ढीए उववज्जंति ?

२४. गोयमा ! आइड्ढीए उववज्जंति, नो परिड्ढीए उववज्जंति । (श. २५।६२४)

२५. ते णं भंते ! जीवा किं आयकम्मुणा उववज्जंति ? परकम्मुणा उववज्जंति ?

२६. गोयमा ! आयकम्मुणा उववज्जंति, नो परकम्मुणा उववज्जंति । (श. २५।६२५)

२७. ते णं भंते ! जीवा किं आयप्पयोगेणं उववज्जंति ? परप्पयोगेणं उववज्जति ?

२८. गोयमा ! आयप्पयोगेणं उववज्जंति, नो परप्पयोगेणं उववज्जंति । (श. २५।६२६)

२९. असुरकुमारा णं भंते ! कहं उववज्जंति ? जहा नेरइया तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति ।

३०. एवं एगिंदियवज्जा जाव वेमाणिया । एगिंदिया एवं चेव, नवरं—चउसमइओ विग्गहो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. शेष तिमज कहिवुं सहु, उगणीस दंडक मांह्यो रे।
विग्रह गति तीन समय नीं,
चिहुं समय एकेंद्रिय थायो रे।।
३२. सेवं भंते ! स्वामजी, जाव गोयम विचरंतो रे।
पणवीसम शत अर्थ थी, अष्टमुद्देश ओपंतो रे।।

पंचविंशतितमशते अष्टमोद्देशकार्थः ।।२५।८।।

३१. सेसं तं चेव।

३२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श. २५।६२८)

भवसिद्धिक का पुनर्भव

३३. भवसिद्धक जे नेरइया, किम ऊपजे जिनरायो रे ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! यथादृष्टांते ताह्यो रे।।
३४. प्लवक कूदणहार जे, कूदंतो इत्यादो रे।
शेष तिमज कहिवुं सहु, जाव वैमानिक वादो रे।।
३५. सेवं भंते ! स्वामजी, पणवीसम शत पेखो रे।
नवमुद्देशक नों भलो, अर्थ अनूप विशेखो रे।।

पंचविंशतितमशते नवमोद्देशकार्थः ।।२५।९।।

३३. भवसिद्धियनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?
गोयमा ! से जहानामए
३४. पवए पवमाणे, अवसेसं तं चेव जाव वेमाणिए।
(श. २५।६२९)
३५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति। (श. २५।६३०)

अभवसिद्धिक का पुनर्भव

३६. अभवसिद्धक नेरइया, किम ऊपजै जिनरायो रे ?
प्रभु भाखै सुण गोयमा ! यथादृष्टांते ताह्यो रे।।
३७. प्लवक कूदणहार जे, कूदंतो इत्यादो रे।
शेष तिमज कहिवुं सहु, जाव वैमानिक वादो रे।।
३८. सेवं भंते ! स्वामजी, पणवीसम शत पेखो रे।
दशमुद्देशक नों भलो, अर्थ अनूप विशेखो रे।।

पंचविंशतितमशते दशमोद्देशकार्थः ।।२५।१०।।

३६. अभवसिद्धियनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?
गोयमा ! से जहानामए
३७. पवए पवमाणे, अवसेसं तं चेव। एवं जाव वेमाणिए।
(श. २५।६३१)
३८. सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति। (श. ३५।६३२)

सम्यक्‌दृष्टि का पुनर्भव

३९. समदृष्टि जे नेरइया, किम ऊपजै जिनरायो रे ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! यथादृष्टांते ताह्यो रे।।
४०. कूदणहारो कूदतो, शेष तिमज सहु कहियै रे।
इक एकेंद्रिय वर्ज नैं, जाव वैमानिक लहियै रे।।
४१. सेवं भंते ! स्वामजी, पणवीसम शत पेखो रे।
ग्यारमुद्देशक नों भलो, अर्थ अनूप विशेखो रे।।

पंचविंशतितमशते एकादशोद्देशकार्थः ।।२५।११।।

३९. सम्मदिट्ठिनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?
गोयमा ! से जहानामए
४०. पवए पवएमाणे, अवसेसं तं चेव। एवं एगिंदियवज्जं
जाव वेमाणिए। (श. २५।६३३)
४१. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. २५।६३४)

मिथ्यादृष्टि का पुनर्भव

४२. मिथ्यादृष्टि नेरइया, किम ऊपजै जिनरायो रे ?
प्रभु भाखै सुण गोयमा ! यथादृष्टांते ताह्यो रे।।
४३. प्लवक कूदणहार जे, कूदंतो इत्यादो रे।
शेष तिमज कहिवो सहु, इम जाव वैमानिक वादो रे।।
४४. सेवं भंते ! स्वामजी ! पणवीसम शत पेखो रे।
बारमुद्देशक नों भलो, अर्थ अनूप विशेखो रे।।

४२. मिच्छदिट्ठिनेरइया णं भंते ! कहं उववज्जंति ?
गोयमा ! से जहानामए
४३. पवए पवमाणे, अवसेसं तं चेव। एवं जाव वेमाणिए।
(श. २५।६३५)
४४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. २५।६३६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४५. कह्यो अर्थ पणवीसम शत तणों,
च्यारसौ अड़सठमीं ढालो रे ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष विशालो रे ।।

४६. उगणीसै चउवीस में,
आसोज सुदि बीज रविवारो रे ।
ठाणा पचवन परवरा, सुजाणगढ सुखकारो रे ।।

पंचविंशतितमशते द्वादशोद्देशकार्थः ।।२५।१२।।

गीतकछंद

१. पणवीसमें शत न्याय बहुला क्वचित टीका थी कह्या ।
क्वचित चूर्णि क्वचित ही जे रव प्रवृत्ती थी लह्या ।।

२. वलि क्वचित गम वाच्यविषयं
क्वचित विद्वत-वयण ही ।
फुन क्वचित ही महाशास्त्र अपरं
आश्रयीज कह्या सही ।।

१,२. क्वचिट्टीकावाक्यं क्वचिदपि वचश्चौर्णमनघं
क्वचिच्छाब्दीं वृत्तिं क्वचिदपि गमं वाच्यविषयम् ।
क्वचिद्विद्वद्वाचं क्वचिदपि महाशास्त्रमपरं
समाश्रित्य व्याख्या शत इह कृता दुर्गमगिराम् ।।१।।
(वृ. प. ९२८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्विंशतितम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षड्विंशतितम शतक

ढाल : ४६९

दूहा

१. नमस्कार थावो निर्मल, श्रुतदेवता प्रतेह ।
भगवती ज्ञानवती प्रतै, भावे गुणनिधि गेह ।।

१. नमो सुयदेवयाए भगवईए

सम्बन्ध योजना

२. अनंतरे पणवीसमों, शतक बखाण्यो सार ।
अथ षटवीसम शत तणुं, कहूं अर्थ अधिकार ।।

३. नारक आदिक जीव नीं, उत्पत्ति पूर्व आख्यात ।
कर्मबंधपूर्वक तिका, संसारिक नें थात ।।

४. ते माटे षटवीसमें, कर्मबंध सुविचार ।
इण संबंध कर एहनां, पवर उद्देश इग्यार ।।

५. इक-इक उद्देशा तणां, द्वार निरूपण अर्थ ।
गाथा प्रथम कहीजियै, जीव लेश्यादि तदर्थ ।।

२. व्याख्यातं पञ्चविंशतितमं शतम्, अथ षड्विंशतितम-मारभ्यते, (वृ. प. ९२८)

३. अनन्तरशते नारकादिजीवानामुत्पत्तिरभिहिता सा च कर्मबंधपूर्विका । (वृ. प. ९२८)

४,५. षड्विंशतितमशते मोहकर्मबन्धोऽपि विचार्यते इत्येवंसम्बन्धस्यास्यैकादशोद्देशकप्रमाणस्य प्रत्युद्देशकं द्वारनिरूपणाय तावद्गाथामाह— (वृ. प. ९२८)

विषयवस्तु

६. जीव प्रति उद्देशके, बंध वक्तव्यता स्थान ।
लेश्या पाक्षिक दृष्टि फुन, ज्ञान अनें अज्ञान ।।

७. संज्ञा वेद कषाय फुन, जोग अनें उपयोग ।
बंध वार्त्ता स्थान ए, एकादश सुप्रयोग ।।

वा.—तिहां अनंतरोत्पन्नादिक विशेष रहित जीव आश्रयी एकादश उक्त रूप द्वार करिकै बंध वक्तव्यता प्रथम उदेशक नें विषे कहै छै—

६,७. १ जीवा य २. लेस्स ३. पक्खिय,
४. दिट्ठि ५. अण्णाण ६. नाण ७. सण्णाओ ।
८. वेय ९. कसाए १०. उवओग
११. जोग एक्कारस वि ठाणा ।१।।

वा०—तत्रानन्तरोत्पन्नादिविशेषविरहितं जीव-माश्रित्यैकादशभिरुक्तरूपैर्द्वारैर्बन्धवक्तव्यतां प्रथमोद्देशकेऽभिधातुमाह— (वृ. प. ९२९)

पाप-कर्म बन्ध-अबन्ध पद

८. तिण काले नें तिण समय, नगर राजगृह जाण ।
जावत गोतम वीर नैं, वदै पवर इम वाण ।।
*बंधी शत अर्थ सांभलो ।। (ध्रुपदं)

८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे जाव एवं वयासी—

९. जीव प्रभु ! पाप कर्म स्यूं, पूर्वे बांध्या ताय ।
हिवडां बांधै वलि बांधस्यै ? ए धुर भंग कहाय ।।

१०. काल अतीतज बांधिया, बांधै फुन वर्त्तमान ।
अनागते नहिं बांधस्यै ? द्वितीय भंग ए जान ।।

११. काल अतीतज बांधिया, नहिं बांधै वर्त्तमान ।
अनागते वलि बांधस्यै ? तृतीय भंग पहिछान ।।

१२. काल अतीतज बांधिया, नहिं बांधै वर्त्तमान ।
अनागते नहिं बांधस्यै ? तुर्य भंग पहिछान ।।

९. जीवा णं भंते ! पावं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ ?

१०. बंधी बंधइ न बंधिस्सइ ?

११. बंधी न बंधइ बंधिस्सइ ?

१२. बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ?

*लय : सीता दे रे ओलंभड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१३. ए च्यारूं ही भंग, अतीत काले बांधिया।
ए पद थकी प्रसंग, लाधा ते आख्या इहां ।।
१४. अनें अतीतज काल, नहिं बांध्या ए पद थकी।
भांगा च्यार निहाल, अन्य स्थानके आखिया ।।
१५. ते इहां संभवै नांहि, अतीत अघ नहिं बांधिया।
तेह जीव नें ताहि, नहीं संभवै ते भणी ।।

१३-१५. इत्येवं चत्वारो भङ्गा बद्धवानित्येतत्पदलब्धाः 'न बंधी' त्येतत्पदलभ्यास्त्विह न भवन्ति, अतीतकालेऽबन्धकस्य जीवस्यासम्भवात्, (वृ. प. ९२९)

१६. *जिन कहै कोइक जीव जे, बांध्या पूर्व पाप।
हिवड़ां बांधै वलि बांधस्यै, अभव्य आश्री स्थाप ।।

१६. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ,
तत्र च बद्धवान् बध्नाति भन्त्स्यति चेत्येष प्रथमोऽभव्यमाश्रित्य, (वृ. प. ९२९)

१७. कोइक अतीत ते बांधिया, फुन बांधै वर्त्तमान।
अनागते नहिं बांधस्यै, शिवगामी भव्य जान ।।

१७. अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ,
बद्धवान् बध्नाति न भन्त्स्यतीति द्वितीयः प्राप्तव्यक्षपकत्वं भव्यविशेषमाश्रित्य, (वृ. प. ९२९)

१८. कोइक अतीते बांधिया, नहिं बांधै वर्त्तमान।
अनागते फुन बांधस्यै, ए ग्यारम गुणस्थान ।।

१८. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ,
बद्धवान् न बध्नाति भन्त्स्यतीत्येष तृतीयो मोहोपशमे वर्त्तमानं भव्यविशेषमाश्रित्य, ततः प्रतिपतितस्य तस्य पापकर्मणोऽवश्यं बन्धनात्, (वृ. प. ९२९)

१९. कोइक अतीते बांधिया, नहिं बांधै वर्त्तमान।
अनागते नहिं बांधस्यै, क्षीणमोह पिछान ।।

१९. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ। (श. २६।१)
बद्धवान् न बध्नाति न भन्त्स्यतीति चतुर्थः क्षीणमोहमाश्रित्येति। (वृ. प. ९२९)

लेश्याद्वार

२०. सलेशी स्यूं भगवंतजी ! पाप कर्म सुजोय।
बांध्या बांधै बांधस्यै ? धुर भांगो होय ।।

२०. सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ ?

२१. कै काल अतीते बांधिया, बांधै वर्तमान।
अनागते नहिं बांधस्यै ? वारू प्रश्न पिछान ।।

२१. बंधी बंधइ न बंधिस्सइ—पुच्छा।

२२. जिन कहै कोइक जीव जे, बांध्या काल अतीत।
हिवड़ां बांध्या वलि बांधस्यै,
इम चिहुं भंग संगीत ।।

२२. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ,
अत्थेगतिए एवं चउभंगो। (श. २६।२)

सोरठा

२३. सलेशी नें जोय, भांगा च्यारूं ही हुवै।
शुक्ललेसी नें सोय, पाप कर्म पिण अबंध छै ।।
२४. तिण कारण आख्यात, चिहुं भंग सलेशी विषे।
वारू न्याय विख्यात, बुद्धिवंत आलोची कहै ।।

२३. सलेश्यजीवस्य चत्वारोऽपि स्युर्यस्माच्छुक्ललेश्यस्य पापकर्म्मणोऽबन्धकत्वमप्यस्तीति, (वृ. प. ९२९)

२५. *कृष्णलेशी प्रभु ! जीव जे, पाप कर्म पिछान।
बांध्या बांधै बांधस्यै ? प्रश्न पवर सुविधान ।।

२५. कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा।

२६. जिन कहै कोइक जीव जे, बांध्या काल अतीत।
हिवड़ां बांधै वलि बांधस्यै, ए धुर भंग प्रतीत ।।

२६. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ,

२७. कोइक बांध्या पूर्व ही, बांधै वर्त्तमान।
अनागते नहिं बांधस्यै, क्षपक अबंध पिछान ।।

२७. अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ।

*** लय : सीता दे रे ओलंभड़ा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. एवं जावत जाणवुं, पद्मलेशी पर्यंत ।
सर्वत्र ए पंच लेश में, प्रथम द्वितीय भंग हुंत ।।

२८. एवं जाव पम्हलेस्से । सव्वत्थ पढम-बितियभंगा ।

सोरठा

२९. कृष्णादिक जे पंच, लेश्यावंतज जीव जे ।
तृतीय तुर्य जे संच, ए बिहुं भंग न संभवै ।।

२९. कृष्णलेश्यादिपञ्चकयुक्तस्य त्वाद्यमेव भङ्गकद्वयं, (वृ. प. ९२९)

३०. वर्त्तमान में तास, मोह कर्म नों क्षय नथी ।
उपशम पिण नहिं जास,
तिणसूं बे भंग चरम नहीं ।।

३०. तस्य हि वर्त्तमानकालिको मोहलक्षणपापकर्मण उपशमः क्षयो वा नास्तीत्येवमन्त्यद्वयाभावः, (वृ. प. ९२९)

३१. द्वितीय भंग फुन तास, कृष्णादि लेशी तिको ।
कालांतरे विमास, क्षपक विषे नहिं बांधस्यै ।।

३१. द्वितीयस्तु तस्य संभवति, कृष्णादिलेश्यावतः कालान्तरे क्षपकत्वप्राप्तौ न भन्त्स्यतीत्येतस्य सम्भवादिति, (वृ. प. ९२९)

३२. *शुक्ल लेश्या नें वलि, जिम सलेशी मांय ।
च्यार भांगा कह्या तिम, चिहुं पूर्ववत न्याय ।।

३२. सुक्कलेसे जहा सलेस्से तहेव चउभंगो । (श. २६।३)

३३. अलेशी प्रभु ! जीव जे, पाप कर्म पिछान ।
स्यूं बांध्या बांधै बांधस्यै ? इम पूछा जान ।।

३३. अलेस्से णं भंते ! जीवे पाव कम्मं किं बंधी - पुच्छा ।

३४. जिन कहै बांध्या अतीत ही, न बांधै वर्त्तमान ।
अनागते नहिं बांधस्यै, तुर्य भंग ए जान ।।

३४. गोयमा ! बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ । (श. २६।४)

सोरठा

३५. एह अजोगी साव, तुर्य हीज भांगो तसु ।
लेश्या तणैं अभाव, बंधक तणां अभाव थी ।।

३५. अलेश्यः—अयोगिकेवली तस्य च चतुर्थ एव, लेश्याभावे बन्धकत्वाभावादिति । (वृ. प. ९२९)

पाक्षिक द्वार

३६. *कृष्णपाक्षिक प्रभु ! जीव जे, पाप कर्म पूछेह ।
जिन भाखै सुण गोयमा ! प्रथम द्वितीय भंग बेह ।।

३६. कण्हपक्खिए णं भंते ! जीवे पावं कम्मं पुच्छा ।
गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, पढम-बितिया भंगा । (श. २६।५)

सोरठा

३७. वर्त्तमान कालेह, अबंध तणां अभाव थी ।
कृष्णपाक्षिक नें जेह, दोय भंग छेहला नथी ।।

३७. कृष्णपाक्षिकस्याद्यमेव भङ्गकद्वयं, वर्त्तमाने बन्धाभावस्य तस्याभावात्, (वृ. प. ९२९)

३८. धुर भंग अभव्य विषेह, शिवगामी भव्य नैं विषे ।
द्वितीय भंग पावेह, पिण छेहला बे भंग नथी ।।

३९. *शुक्लपाक्षिक नीं पूछा कियां, भाखै भगवान ।
भांगा च्यार भणीजियै, वर न्याय प्रधान ।।

३९. सुक्कपक्खिए णं भंते ! जीवे—पुच्छा ।
गोयमा ! चउभंगो भाणियव्वो । (श. २६।६)

सोरठा

४०. प्रश्न समय बंध तास, तेह अपेक्षा भंग धुर ।
पूर्व बांध्यां जास, वर्त्तमान बांधै वलि ।।

४१. अंतररहित कहेह, समय आगामिक नैं विषे ।
वलि बांधस्यै जेह, प्रथम भंग इण न्याय ह्वै ।।

४०,४१. स हि बद्धवान् बध्नाति भन्त्स्यति च प्रश्नसमयापेक्षयाऽनन्तरे भविष्यति समये १ ।

४२. बांध्या बांधै ताय, आगामिक नहिं बांधस्यै ।
ए द्वितीय भंग नुं न्याय, क्षपकश्रेणि प्राप्ती विषे ।।

४२. तथा बद्धवान् बध्नाति न भन्त्स्यति क्षपकत्वप्राप्तौ २। (वृ. प. ९२९)

---

*लय : सीता दे रे ओलंभड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. पूर्वे जे बद्धवान, नहिं बांधै ग्यारम गुणे।
प्रश्न समय ए जान, पड़ी बांधस्यै तृतीय भंग ।।

४४. पूर्वे जे बद्धवान, क्षपकपणें बांधै नथी।
प्रश्न समय ए जान, अनागते नहिं बांधस्यै ।।

वा०—जो कृष्णपाक्षिक न बांधस्यै एहनैं संभव थकी इम एहनैं द्वितीय भंग वांछ्यो तो शुक्लपाक्षिक नैं अबंधकपणां नैं अवश्य संभव थकी प्रथम भंग किम हुवै ? एहनों उत्तर कहै छै—पृच्छा अनंतर अनागत काल नैं विषे अबंधकपणां नां अभाव थकी प्रथम भंग हुवै। वलि कह्युं छै वृद्धे—इहां साक्षेपसपरिहार— स आक्षेप ते प्रश्न सहित, परिहार कहितां उत्तर। वृद्ध इम कहै— बंधी शतक नैं कृष्णपाक्षिकादिक नैं दूजो भांगो जो हुवै तो शुक्लपाक्षिकादिक नैं प्रथम भंग किम हुवै ? इति आक्षेप कहितां प्रश्न। हिव एहनों परिहार कहितां उत्तर कहै छै—

प्रतिपृच्छा अनंतर काल आश्रयी नैं शुक्लपाक्षिकादि नैं प्रथम भंग हुवै। अनैं कृष्णपाक्षिकादि नैं विशेष-रहित काल आश्रयी नैं द्वितीय भंग हुवै इति।

४३. तथा बद्धवान् न बध्नाति चोपशमे भन्त्स्यति च तत्प्रतिपाते ३ (वृ. प. ९२९)

४४. तथा बद्धवान्न बध्नाति न च भन्त्स्यति क्षपकत्व इति ४, (वृ. प. ९२९)

वा०—ननु यदि कृष्णपाक्षिकस्य न भन्त्स्यतीत्यस्यासम्भवाद्द्वितीयो भङ्गक इष्टस्तदा शुक्लपाक्षिकस्यावश्यं सम्भवात्कथं तत्प्रथमभङ्गकः ? इति, अत्रोच्यते, पृच्छानन्तरे भविष्यत्कालेऽबन्धकत्वस्याभावात् उक्तं च वृद्धैरिहसाक्षेपपरिहारं—
"बंधिसयबीयभंगो जुज्जइ जइ कण्हपक्खियाईणं।
तो सुक्कपक्खियाणं पढमो भंगो कहं गेज्झो ?॥१॥
उच्यते—
पुच्छाणंतरकालं पइ पढमो सुक्कपक्खियाईणं।
इयरेसिं अवसिट्ठं कालं पइ बीयओ भंगो ॥२॥
(वृ० प० ९२९,९३०)

दृष्टि द्वार

४५. *समदृष्टि नें विषे हुवै, च्यारूंई भंग।
शुक्लपाक्षिक जिम जाणवुं, वर न्याय सुचंग ।।

४६. मिथ्यादृष्टि नें विषे, प्रथम द्वितीय बे भंग।
समामिथ्यादृष्टि इमज ही, तसु न्याय सुचंग ।।

४५. सम्मद्दिट्ठीणं चत्तारि भंगा,
सम्यग्दृष्टेश्चत्वारोऽपि भङ्गाः शुक्लपाक्षिकस्येव भावनीयाः, (वृ. प. ९३०)

४६. मिच्छादिट्ठीणं पढम-बितिया, सम्मामिच्छादिट्ठीणं एवं चेव। (श. २६।७)

सोरठा

४७. मिथ्या मिश्रज दृष्ट, तेह विषे धुर भंग बे।
मोह लक्षण तसु इष्ट, प्रश्न समय अघ बंध तसु ।।
४८. तिण कारण थी तास, अंतिम बे भांगा नथी।
धुर बे भंग विमास, बुद्धिवंत न्याय विचारियै ।।

४७,४८. मिथ्यादृष्टिमिश्रदृष्टीनामाद्यौ द्वावेव, वर्त्तमानकाले मोहलक्षणपापकर्मणो बन्धभावेनान्त्यद्वयाभावात्, (वृ. प. ९३०)

ज्ञान द्वार

४९. *ज्ञानवंत ज्ञानी विषे, च्यारूं ही भंग।
समदृष्टि जिम जाणवो, वारू न्याय सुचंग ।।
५०. आभिनिबोधिक ज्ञान जे, जाव मनपर्याय।
ए चिहुं नाणी नें विषे, च्यारूं भंग कहाय ।।
५१. केवलज्ञानी नें विषे, इक चरम सुभंग।
अलेशी ज्यूं जाणवो, वर न्याय सुअंग ।।

४९. नाणीणं चत्तारि भंगा।

५०. आभिणिबोहियनाणीणं जाव मणपज्जवनाणीणं चत्तारि भंगा।

५१. केवलनाणीणं चरिमो भंगो जहा अलेस्साणं। (श. २६।८)

सोरठा

५२. वर्तमान कालेह, वलि अनागत काल में।
बंध अभावपणेह, चरम भंग इक ते भणी ।।

५२. 'केवलनाणीणं चरिमो भंगो' त्ति वर्त्तमाने एष्यत्काले च बन्धाभावात्। (वृ. प. ९३०)

*लय : सीता दे रे ओलंभड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अज्ञान द्वार

५३. *अज्ञानी में धुर भंग बे, कृष्णपाक्षिक जेम।
मति श्रुत विभंग विषे वली, कहिवुं छै एम ।।

५३. अण्णाणीणं पढम-बितिया, एवं मइअण्णाणीणं, सुयअण्णाणीणं, विभंगनाणीण वि। (श. २६।९)

सोरठा

५४. जे अज्ञान विषेह, मोह कर्म नुं क्षय नथी।
फुन उपशम नहिं लेह, ते माटै धुर भंग बे ।।

५४. 'अन्नाणीणं पढमबीय' त्ति, अज्ञाने मोहलक्षणपापकर्म्मणः क्षपणोपशमनाभावात्। (वृ. प. ९३०)

संज्ञोपयुक्त द्वार

५५. *आहारसण्णोवउत्ता विषे, जाव परिग्रह जोय।
च्यारूं संज्ञा-उपयुक्त में, धुर भांगा दोय ।।

५५. आहारसण्णोवउत्ताणं जाव परिग्गहसण्णोवउत्ताणं पढम-बितिया।

सोरठा

५६. संज्ञा नां उपयोग, गृद्धपणां नां काल में।
उपशम क्षपक प्रयोग, अभाव थी बे भंग धुर ।।

५६. 'पढमबीय' त्ति आहारादिसञ्ज्ञोपयोगकाले क्षपकत्वोपशमकत्वाभावात्। (वृ. प. ९३०)

५७. *नोसण्णवउत्ता नें विषे, संज्ञा आहारादि धार।
गृद्ध भाव करि रहित ए, तिण में भांगा च्यार ।।

५७. नोसण्णोवउत्ताणं चत्तारि। (श. २६।१०)

सोरठा

५८. आहारादिक नां जेह, गृद्धपणां करि रहित छै।
तिण में चिहुं भंग लेह, उपशम क्षपक संभव थकी ।।

५८. 'नोसन्नोवउत्ताणं चत्तारि' त्ति नोसञ्ज्ञोपयुक्ता—आहारादिषु गृद्धिवर्जितास्तेषां च चत्वारोऽपि क्षपणोपशमसम्भवादिति। (वृ. प. ९३०)

वेद द्वार

५९. *सवेदी में धुर भंग बे, वेद उदय विषेह।
उपशम क्षपक हुवै नथी, इम त्रिहुं वेद कहेह ।।

५९. सवेदगाणं पढम-बितिया। एवं इत्थिवेदगा, पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा वि।
'सवेयगाणं पढमबीय' त्ति वेदोदये हि क्षपणोपशमौ न स्यातामित्याद्यद्वयम्। (वृ. प. ९३०)

६०. अवेदी में भंग चिहुं हुवै, जेह उपशांत वेद।
अथवा क्षीणवेदी भणी, कह्या अवेदी संवेद ।।

६०. अवेदगाणं चत्तारि। (श. २६।११)

सोरठा

६१. पूर्व काल बद्धवान, उपशमवेदे नवम गुण०।
बांधै छै वर्त्तमान, वलि बांधस्यै ते तिहां ।।

६१. 'अवेदगाणं चत्तारि' त्ति स्वकीये वेदे उपशान्ते बध्नाति भन्त्स्यति च। (वृ. प. ९३०)

६२. मोह कर्म जे पाप, त्यां लग नहिं ह्वै दशम गुण०।
त्यां लग मोह बंध स्थाप, बांध्या बांधै बांधस्यै ।।

६३. तथा दशम गुण० थीज, पड़ी नवम गुण० नें विषे।
बांध्यो बांधै हीज, वलि बांधस्यै प्रथम भंग ।।

६२,६३. मोहलक्षणं पापं कर्म्म यावत्सूक्ष्मसम्परायो न भवति प्रतिपतितो वा भन्त्स्यतीत्येवं प्रथमः। (वृ. प. ९३०)

६४. पूर्व अघ बद्धवान, क्षीणवेद नवमें गुण०।
बांधै छै वर्त्तमान, मोह पाप कर्म आश्रयी ।।

६४. तथा वेदे क्षीणे बध्नाति। (वृ. प. ९३०)

६५. फुन सूक्ष्मसंपराय, आदि विषे नहिं बांधस्यै।
बांध्यो बांधै ताय, नथी बांधस्यै द्वितीय भंग ।।

६५. सूक्ष्मसंपरायाद्यवस्थायां च न भन्त्स्यतीत्येवं द्वितीयः। (वृ. प. ९३०)

६६. पूर्वे बांध्यो जोह, दशमें गुण० बांधै नथी।
वलि बांधस्यै मोह, उपशमश्रेणी तृतीय भंग ।।

६६. तथोपशान्तवेदः सूक्ष्मसम्परायादौ न बध्नाति प्रतिपतितस्तु भन्त्स्यतीति तृतीयः। (वृ. प. ९३०)

*लय : सीता दै रे ओलंभड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. पूर्वे जे बद्धवान, क्षीणवेद दशमादिके ।
नहि बांधै वर्त्तमान, नथी बांधस्यै तुर्य भंग ।।

६७. तथा क्षीणे वेदे सूक्ष्मसम्परायादिषु न बध्नाति न चोत्तरकालं भन्त्स्यतीत्येवं चतुर्थः । (वृ. प. ९३०)

कषाय द्वार

६८. चिहुं भंग सकषाई विषे, क्रोध मान माया धार ।
प्रथम द्वितीय भंग जाणवा, लोभ कषाई में च्यार ।।

६८. सकसाईणं चत्तारि, कोहकसाईणं पढम-बितिया भंगा, एवं माणकसायिस्स वि, मायाकसायिस्स वि । लोभकसायिस्स चत्तारि भंगा । (श. २६।१२)

सोरठा

६९. सकषाई में च्यार, धुर भंग अभव्य आश्रयी ।
द्वितीय भंग अवधार, शिवगामी भव्य मोह क्षय ।।

७०. उपशम दशम गुणेह, तृतीय भंग तेहनें विषे ।
तुर्य भंग फुन लेह, क्षपक सूक्ष्मसंपराय में ।।

७१. लोभकषाई ताय, सकषाई जिम भंग चिहुं ।
क्रोधी मानी माय, धुर भंग दोय विचारवा ।।

६९. 'सकसाईणं चत्तारि' त्ति तत्राद्योऽभव्यस्य द्वितीयो भव्यस्य प्राप्तव्यमोहक्षयस्य । (वृ. प ९३०)

७०. तृतीय उपशमकसूक्ष्मसम्परायस्य चतुर्थः क्षपकसूक्ष्म-सम्परायस्य । (वृ. प. ९३०)

७१. एवं लोभकषायिणामपि वाच्यं । (वृ. प. ९३०)

७२. *प्रभु ! अकषाई जीव स्यूं, पाप कर्म प्रसीध ।
बांध्यो बांधै बांधस्यै ? पूछा चिहुं भंग कीध ।।

७३. जिन कहै कोइक जीव जे, बांध्यो बांधै नांहि ।
अनागते फुन बांधस्यै, उपशम आश्रयी ताहि ।

७४. कोयक पूर्वे बांधियो, नहिं बांधै वर्त्तमान ।।
अनागते नहिं बांधस्यै, क्षपक आश्रयी जान ।।

७२. अकसायी णं भंते ! जीवे पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।

७३. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ, 'अकसाईण' मित्यादि तत्र 'बंधी न बंधइ बंधिस्सइ' त्ति उपशमकमाश्रित्य । (वृ. प. ९३०)

७४. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ । (श. २६।१३)
'बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ' त्ति क्षपकमाश्रित्येति । (वृ. प. ९३०)

सोरठा

७५. अकषाई में दोय, भांगो तीजो चतुर्थो ।
कह्यो न्याय तसु सोय,
प्रथम द्वितीय भंग बे नथी ।।

योग द्वार

७६. चिहुं भंग सजोगी विषे, मनजोगी पिण एम ।
वच काय जोगी विषे,
वलि भणवा चिहुं भंग तेम ।।

७६. सजोगिस्स चउभंगो, एवं मणजोगिस्स वि, वइ-जोगिस्स वि, कायजोगिस्स वि ।

सोरठा

७७. धुर भंग अभव्य मांय,
शिवगामी भव्य द्वितीय भंग ।
तृतीय उपशम पाय, क्षपक विषे फुन तुर्य भंग ।।

७८. *चरम भांगो अजोगी विषे, पूर्वे बांध्यो ताहि ।
वर्त्तमान बांधै नहीं, फुन बांधस्यै नांहि ।।

७७. 'सजोगिस्स चउभंगो' त्ति अभव्यभव्यविशेषोपशमक-क्षपकाणां क्रमेण चत्वारोऽप्यवसेयाः । (वृ. प. ९३०)

७८. अजोगिस्स चरिमो । (श. २६।१४)
'अजोगिस्स चरमो' त्ति बध्यमानभन्त्स्यमानत्वयो-स्तस्याभावादिति । (वृ. प. ९३०)

उपयोग द्वार

७९. सागारोवउत्ता विषे, भांगा च्यारूं उक्त ।
अनाकारोवउत्ते अपि, चिहुं भंग सुयुक्त ।।

७९. सागारोवउत्ते चत्तारि, अणागारोवउत्ते वि चत्तारि भंगा । (श. २६।१५)

***लय : सीता दै रे ओलंभड़ा**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—पांच ज्ञान, तीन अज्ञान सागारोवउत्ता कहीजै अनैं च्यार दर्शण अणागारोवउत्ता कहीजै।

वा०—अट्ठविहे सागारोवओगे······।
चउव्विहे अणागारोवओगे·······।
(पण्णवणा ३१।१,२)

८०. छबीसम धुर देश ए, चिहुंसौ गुणंतरमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष विशाल॥

ढाल : ४७०

चौबीस दण्डकों के बन्ध-अबन्ध

वा०—हिवै चउवीस दंडके एकीका दंडक विषे इग्यारै-इग्यारै द्वारे करी कहै छै। नारकी में बोल पावै ३५, तेहनों अधिकार कहै छै—

दूहा

१. नारक हे भगवंतजी! पाप कर्म जे पंक।
बांध्या बांधै बांधस्यै, चिहुं भंग प्रश्न अवंक॥

१. नेरइए णं भंते! पावं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ?

२. जिन भाखै सुण गोयमा!
प्रथम द्वितीय भंग दोय।
उपशम क्षायक श्रेणि नां, अभाव थी अवलोय॥

२. गोयमा! अत्थेगतिए बंधी, पढम-बितिया।
(श. २६।१६)
'पढमबीय' त्ति नारकत्वादौ श्रेणीद्वयाभावात् प्रथम-द्वितीयावेव। (वृ. प. ९३१)

३. इम सलेशादिक जिके, विशेष करिकै जेह।
नारक पद धुर दंडके, सांभलियै चित देह॥
*सुणजो रे भव प्राणी!
मत भमजो रे चिहुं गति दुख अंग कै।
सेवो रे जिन वाणी,
तुम्हे रमजो रे संजम सुख संग कै॥
चेतो रे भव प्राणी! (ध्रुपदं)

४. सलेशी प्रभु! नेरइयो जी, पाप कर्म पूछेह।
इमहिज धुर भंग बे हुवै,
समुच्चै नारक रै कह्यो तेम कहेह कै॥

४. सलेस्से णं भंते! नेरइए पावं कम्मं? एवं चेव।

५. इम कृष्णलेशी नारक विषे रे,
नीललेशी नें विषेह।
कापोतलेशी नारक विषे,
धुर भंगा रे भणवा इम बेह कै॥

५. एवं कण्हलेस्से वि, नीललेस्से वि, काउलेस्से वि।

६. इम कृष्णपाक्षिक नारक विषे रे,
शुक्लपाक्षिक में एम।
समदृष्टि नारक विषे,
मिथ्यादृष्टि रे मिश्रदृष्टि तेम कै॥

६. एवं कण्हपक्खिए सुक्कपक्खिए, सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी।

*लय : सुरतरु नीं परै दोहिलो लही मानव अवतार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. इम ज्ञानी नारक विषे रे, आभिनिबोधिकवंत।
श्रुत फुन अवधिज्ञानी विषे,
धुर भांगा रे दोय भणवा मंत कै ।।
८. अज्ञानी नारक विषे, मति अज्ञानी मांहि।
श्रुत विभंग नारक विषे,
धुर भंगा रे बे भणवा ताहि कै ।।
९. आहारसण्णोवउत्ता विषे रे, जाव परिग्रह जाण।
सवेदी नारक विषे वली,
नपंसक रे वेद बे आण कै ।।
१०. सकषाई नारक विषे रे, जावत लोभकषाय।
बे भंग सजोगी नारके,
मन वच जोगी रे कायजोगी मांय कै ।।
११. सागारोवउत्त नारक विषे रे,
उपयुक्त फुन अनाकार।
ए सहु पद नैं विषे हुवै,
प्रथम बीजो रे भांगा बे धार कै ।।

वा० – हिवै भवणपति में ३७ बोल पावै तेहनुं अधिकार कहै छै—

१२. इमहिज असुरकुमार नीं रे, वक्तव्यता सुविधान।
णवरं इतरो विशेष छै,
तिको कहियै रे सुणजो धर कान कै ।।
१३. तेजुलेशी स्त्रीवेदगा रे, पुरुष वेद पिण पाय।
नपुंसक वेद भणवो नथी,
शेष तिमहिज रे नारक जिम ताय कै ।।
१४. सगलाई स्थानक विषे रे, धुर बे भंगा धार।
एवं जावत जाणवा,
जिन भाख्या रे ए तो थणियकुमार कै ।।

हिवै पृथ्वी पाणी आदि नों अधिकार—

१५. पृथ्वीकायिक पिण इह विधे रे,
इमहिज फुन अपकाय।
इम जाव पंचेंद्री तिर्यंच में,
सहु ठामे रे धुर बे भंग पाय कै ।।
१६. णवरं जेहनें लेश्या जिका रे,
दृष्टि रु ज्ञान अज्ञान।
वेद जोग जेहनें जसु,
तसु कहिवो रे शेष तिमहिज जान कै ।।

वा० —पृथ्वी, पाणी, वनस्पति में २७ बोल पावै। तेऊ, वाऊ में २६। विकलेंद्री में ३१। तिर्यंच पंचेंद्री में ४० बोल पावै। मनुष्य में ४७ बोल पावै, तेहनों अधिकार कहै छै—

१७. वक्तव्यता जिका जीव नीं रे, सलेश आदि पदेह।
चतुर भंगादिक नीं कही,
तिमहिज कहिवी रे, सहु मनुष्य विषेह कै ।।

७. नाणी आभिणिबोहियनाणी सुयनाणी ओहिनाणी।

८. अण्णाणी मइअण्णाणी सुयअण्णाणी विभंगनाणी।

९. आहारसण्णोवउत्ते जाव परिग्गहसण्णोवउत्ते, सवेदए नपुंसकवेदए।

१०. सकसायी जाव लोभकसायी, सजोगी मणजोगी वइजोगी कायजोगी।

११. सागारोवउत्ते अणागारोवउत्ते--एएसु सव्वेसु पदेसु पढम-बितिया भंगा भाणियव्वा।

१२. एवं असुरकुमारस्स वि वत्तव्वया भाणियव्वा। नवरं—

१३. तेउलेसा, इत्थिवेदग-पुरिसवेदगा य अब्भहिया, नपुंसगवेदगा न भण्णंति, सेसं तं चेव।

१४. सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा। एवं जाव थणियकुमारस्स।

१५. एवं पुढविकाइयस्स वि, आउकाइयस्स वि जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणियस्स वि सव्वत्थ वि पढम-बितिया भंगा।

१६. नवरं—जस्स जा लेस्सा। दिट्ठी, नाणं, अण्णाणं, वेदो, जोगो य अत्थि तं तस्स भाणियव्वं, सेसं तहेव।

१७. मणूसस्स जच्चेव जीवपदे वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१८. जीव मनुष्य नें जाण, समान धर्मपणां थकी।
तिण कारण पहिछाण,
जीव कह्यो तिम मनुष्य पिण ।।

१९. *व्यंतर असुर तणीं परै रे,
इम ज्योतिषि वैमानीक।
णवरं लेश्या जे जाणवी,
शेष तिमहिज रे कहिवुं तहतीक कै ।।

१८. 'मणूसस्से' त्यादि, या जीवस्य निर्विशेषणस्य सलेश्यादिपदविशेषितस्य च चतुर्भंग्यादिवक्तव्यतोक्ता सा मनुष्यस्य तथैव निरवशेषा वाच्या, जीवमनुष्ययोः समानधर्म्मत्वादिति। (वृ. प. ९३१)

१९. वाणमंतरस्स जहा असुरकुमारस्स। जोइसियस्स वेमाणियस्स एवं चेव। नवरं— लेस्साओ जाणियव्वाओ, सेसं तहेव भाणियव्वं। (श. २६।१७)

समुच्चय जीव में पाप कर्म बंध-अबंध नां भांगा

	भंग	१ बंधी बंधइ बंधिस्सइ	२ बंधी बंधइ न बंधिस्सइ	३ बंधी न बंधइ बंधिस्सइ	४ बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ
१. समुच्चय जीव में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
२. सलेशी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
३. कृष्णलेशी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
४. नीललेशी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
५. कापोतलेशी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
६. तेजुलेशी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
७. पद्मलेशी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
८. शुक्ललेशी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
९. अलेशी में	१	नहीं	नहीं	नहीं	पावै
१०. कृष्णपाक्षिक में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
११. शुक्लपाक्षिक में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
१२. समदृष्टि में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
१३. मिथ्यादृष्टि में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१४. मिश्रदृष्टि में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१५. सनाणी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
१६. मतिनाणी में	४	पावै	पावै	पावै	प वै
१७. श्रुतनाणी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
१८. अवधिनाणी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
१९. मनपर्यवनाणी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
२०. केवलनाणी में	१	नहीं	नहीं	नहीं	पावै
२१. अनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२२. मतिअनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२३. श्रुतअनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२४. विभंगअनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२५. आहारसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२६. भयसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२७. मैथुनसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२८. परिग्रहसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२९. नोसण्णोवउत्ता में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
३०. सवेदी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३१. स्त्रीवेदी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३२. पुरुषवेदी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३३. नपुंसकवेदी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३४. अवेदी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
३५. सकषायी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

*लय : सुरतरु नीं परै दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

	भंग	१ बंधी बंधइ बंधिस्सइ	२ बंधी बंधइ नबंधिस्सइ	३ बंधी न बंधइ बंधिस्सइ	४ बंधी न बंधइ नबंधिस्सइ
३६. क्रोधकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३७. मानकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३८. मायाकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३९. लोभकषायी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
४०. अकषायी में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
४१. सजोगी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
४२. मनजोगी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
४३. वचनजोगी में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
४४. कायजोगी में	४	नहीं	पावै	पावै	पावै
४५. अजोगी में	१	पावै	नहीं	नहीं	पावै
४६. सागारोवउत्ता में	४	पावै	पावै	पावै	पावै
४७. अनागारोवउत्ता में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

नारकी में ३५ बोल पावै

१. समुच्चय नारकी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२. सलेशी नारकी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३. कृष्णलेशी नारकी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
४. नीललेशी नारकी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
५. कापोतलेशी नारकी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
६. कृष्णपाक्षिक में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
७. शुक्लपाक्षिक में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
८. समदृष्टि में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
९. मिथ्यादृष्टि में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१०. मिश्रदृष्टि में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
११. सनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१२. मतिनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१३. श्रुतनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१४. अवधिनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१५. अनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१६. मतिअनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१७. श्रुतअनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१८. विभंगअनाणी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
१९. आहारसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२०. भयसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२१. मैथुनसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२२. परिग्रहसण्णोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२३. सवेदी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२४. नपुंसकवेदी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२५. सकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२६. क्रोधकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२७. मानकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२८. मायाकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
२९. लोभकषायी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३०. सजोगी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३१. मनजोगी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३२. वचनजोगी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३३. कायजोगी में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३४. सागारोवउत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं
३५. अनागारोवत्ता में	२	पावै	पावै	नहीं	नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२ बोल टलिया ते कहै छै—

१. तेजुलेशी	५. मनपर्यवज्ञानी	९. पुरुषवेदी
२. पद्मलेशी	६. केवलज्ञानी	१०. अवेदी
३. शुक्ललेशी	७. नोसण्णोवउत्ता	११. अकषायी
४. अलेशी	८. स्त्रीवेदी	१२. अजोगी ।

असुरकुमार आदि १० भवनपति में ३७ बोल पावै । तिण में भांगा २—पहलो, दूजो । १० बोल टलिया ते कहै छै—

१. पद्मलेशी	४. मनपर्यवज्ञानी	७. नपुंसकवेदी
२. शुक्ललेशी	५. केवलज्ञानी	८. अवेदी
३. अलेशी	६. नोसण्णोवउत्ता	९. अकषायी
		१०. अजोगी ।

पृथ्वी, पानी, वनस्पति में २७ बोल पावै । तिण में भांगा २—पहलो, दूजो । २० बोल टालिया कहै छै—

१. पद्मलेशी	८. श्रुतज्ञानी	१५. पुरुषवेदी
२. शुक्ललेशी	९. अवधिज्ञानी	१६. अवेदी
३. अलेशी	१०. मनपर्यवज्ञानी	१७. अकषायी
४. समदृष्टि	११. केवलज्ञानी	१८. मनजोगी
५. मिश्रदृष्टि	१२. विभंगअनाणी	१९. वचनजोगी
६. सनाणी	१३. नोसण्णोवउत्ता	२०. अजोगी ।
७. मतिज्ञानी	१४. स्त्रीवेदी	

तेजसकाय, वायुकाय में २६ बोल पावै पृथ्वीकायवत । एक तेजोलेशी वर्जी । भांगा २—पहलो, दूजो ।

तीन विकलेन्द्रिय में ३१ बोल पावै । २६ बोल तो तेजसकायवत । अनैं ५ बोल बध्या ते कहै छै—

१. सम्यक्दृष्टि	३. मतिनाणी	५. वचनजोगी ।
२. सनाणी	४. श्रुतनाणी	

तिर्यंचपंचेन्द्रिय में ४० बोल पावै । तिण में भांगा २—पहलो, दूजो ।

७ बोल टलिया ते कहै छै—

१. अलेशी	३. केवलज्ञानी	५. अवेदी
२. मनपर्यवज्ञानी	४. नोसण्णोवउत्ता	६. अकषायी
		७. अजोगी ।

मनुष्य में बोल ४७ ही पावै समुच्चय जीववत । भांगा समुच्चय जीववत कहिवा ।

व्यंतर में ३७ बोल पावै असुरकुमारवत । भांगा २—पहलो, दूजो ।

ज्योतिषी में ३४ बोल पावै । तिण में भांगा २—पहलो, दूजो ।

१३ बोल टलिया ते कहै छै—

१. कृष्णलेशी	६. अलेशी	१०. नपुंसकवेदी
२. नीललेशी	७. मनपर्यवज्ञानी	११. अवेदी
३. कापोतलेशी	८. केवलज्ञानी	१२. अकषायी
४. पद्मलेशी	९. नोसण्णोवउत्ता	१३. अजोगी
५. शुक्ललेशी		

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहला, दूजा देवलोक में ३४ बोल पावै ज्योतिषीवत। भांगा २—पहलो, दूजो।

तीजै, चौथै, पंचमे देवलोक में स्त्रीवेदी वर्जी ३३ बोल पावै ज्योतिषीवत। भांगा २—पहलो, दूजो। इहां तेजुलेश्या कै स्थान पर पद्मलेश्या कहणी।

छठा देवलोक सूं लेइ बारमां देवलोक तांई ३३ बोल पावै। तीजै देवलोक-वत। इहां पद्मलेश्या कै स्थान पर शुक्ललेश्या कहणी। भांगा २—पहलो, दूजो।

नव ग्रीवेयक में मिश्रदृष्टिवर्जी ३२ बोल पावै पूर्ववत। भांगा २—पहलो, दूजो।

पंच अनुत्तर विमान में २६ बोल पावै। भांगा २—पहलो, दूजो।

२१. बोल टलिया ते कहै छै—

१. कृष्णलेशी	८. मिथ्यादृष्टि	१५. विभंगअनाणी
२. नीललेशी	९. मिश्रदृष्टि	१६. नोसण्णोवउत्ता
३. कापोतलेशी	१०. मनर्यवज्ञानी	१७. स्त्रीवेदी
४. तेजुलेशी	११. केवलज्ञानी	१८. नपुंसकवेदी
५. पद्मलेशी	१२. अनाणी	१९. अवेदी
६. अलेशी	१३. मतिअनाणी	२०. अकषायी
७. कृष्णपाक्षिक	१४. श्रुतअनाणी	२१. अजोगी।

सोरठा

२०. समुच्चय जीव जगीस, नारकादि चउवीस फुन।
इम दंडक पणवीस, पापकर्म आश्रयी कह्या॥

२०. तदेवं सर्वेऽपि पञ्चविंशतिर्दण्डकाः पापकर्म्मा-श्रित्योक्ताः। (वृ. प. ९३१)

२१. इमहिज वली जगीस, ज्ञानावरणी आश्रयी।
दंडक जे पणवीस, कहियै छै हिव आगलै॥

२१. एवं ज्ञानावरणीयमप्याश्रित्य पञ्चविंशतिर्दण्डका वाच्याः, एतदेवाह— (वृ. प. ९३१)

आठ कर्मों के सन्दर्भ में बन्ध-अबन्ध

२२. *जीव ज्ञानावरणी कर्म नैं प्रभु! स्यूं बांध्यो गयै काल।
हिवड़ां बांधै फुन बांधस्यै? इम पूछ्यां रे कहै दीनदयाल कै॥

२२. जीवे णं भंते! नाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ बंधिस्सइ?

२३. इम जिम वक्तव्यता कही रे, पाप कर्म नीं पेख।
ज्ञानावरणी कर्म नीं, आतो कहिवी रे तिमहीज उवेख कै॥

२३. एवं जहेव पावकम्मस्स वत्तव्वया तहेव नाणावर-णिज्जस्स वि भाणियव्वा।

२४. णवरं जीव-पद मनु-पदे रे, सकषाई रै मांय।
जाव लोभकषाई विषे, पहिलो दूजो रे भांगा बे पाय कै॥

२४. नवरं—जीवपदे मणुस्सपदे य सकसाइम्मि जाव लोभकसाइम्मि य पढम-बितिया भंगा।

सोरठा

२५. तिहां जीव-पद मांहि, तथा मनुष्य-पद नैं विषे।
सकषाई मे ताहि, वलि जे लोभकषाइ में॥

२५. पापकर्म्मदण्डके जीवपदे मनुष्यपदे च यत्सकषायिपदं लोभकषायिपदं च। (वृ. प ९३१)

२६. तिहां दशमें गुणठाण, मोह लक्षण अघ कर्म ते।
अबंधकपणें पिछाण, भांगा च्यार कह्या तिहां॥

२६. तत्र सूक्ष्मसम्परायस्य मोहलक्षणपापकर्म्मबन्धकत्वेन चत्वारो भङ्गा उक्ताः। (वृ. प. ९३१)

२७. इहां तो धुर भंग दोय वीतराग नहि तेहनैं।
ज्ञानावरणी जोय, बंधकपणां थकी कह्या।

२७. इह त्वाद्यावेव वाच्यौ अवीतरागस्य ज्ञानावरणीय-बन्धकत्वादिति। (वृ. प. ९३१)

---

*लय: सुरतरु नीं परै दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. *अवशेष तिमज कहिवो सहु रे, जाव वैमानिक जान ।
इम दर्शणावरणी संघात ही,
दंडक भणवो रे सगलो सुविधान कै ।।

२९. जीव प्रभुजी ! वेदनी रे, स्यूं बांध्यो बांधेह ।
कै काल अनागत बांधस्यै ? इम पूछ्यां रे चिहुं भांगा तेह कै ।।

३०. जिन कहै जीव कोइक जिको रे, बांध्यो बांधै जेह ।
काल अनागत बांधस्यै, धुर भांगो रे अभव्य आश्रयी लेह कै ।।

३१. कोइक जीव पूर्वे बांधियो रे, बांधै वली वर्त्तमान ।
अनागते नहिं बांधस्यै, शिवगामी रे भव्य आश्रयी जान कै ।।

३२. कोइक पूर्वे बांधियो रे, नहिं बांधै वर्त्तमान ।
अनागते नहिं बांधस्यै, एतो कहियै रे चवदम गुणस्थान कै ।।

सोरठा

३३. तृतीय भंग नहिं पाय, कर्म वेदनी छै तिको ।
अबंध थई नें ताय, बंधकपणुं हुवै नथी ।।

३४. *सलेशी जीव विषे वली रे, एवं चेव कहाय ।
तृतीय भंग विण थाकता, तीन भांगा रे कह्या सूत्र रै मांय ।।

सोरठा

३५. तृतीय भंग अभाव, युक्ति पूर्ववत जाणवी ।
तुर्य भंग विण फुन साव, आख्यो छै सूत्रे इहां ।।

३६. वृत्तिकार कहै न्याय, सम्यक जाण्यो जाय नहीं ।
बांध्यो बांधै नांय, नथी बांधस्यै तुर्य भंग ।।

३७. जोग रहितपणेंज, तुर्य भंग ए संभवै ।
तेह अजोग विषेज, लेश्या सहितपणुं नथी ।।

३८. केइ कहै इह वचनेन, अजोगी नें धुर समय ।
घंटा लाला न्यायेन, परम-शुक्ल लेश्या हुवै ।।

३९. इण हेतु करि होय, सलेशी में तुर्य भंग ।
वली तत्व अवलोय, बहुश्रुत जाणैं इम वृत्तौ[१] ।।

४० *कृष्णलेश्यी जावत वली रे, पद्मलेशी रै मांय ।
अजोगीपणां रा अभाव थी,
पहिलो दूजो रे भांगा दोय पाय कै ।।

४१. शुक्ललेशी में तीजा विना रे, तीन भांगा कहिवाय ।
सलेशी जीव विषे कह्या,
तिम कहिवो रे वलि एहनों न्याय कै ।।

४२. चरम भांगो अलेशी विषे रे, शेलेसी फुन सिद्ध तेह ।
पूर्व वेदनी बांधियो, नहिं बांधै रे नहि बांधस्यै जेह कै ।।

४३. कृष्णपाक्षिक जंतु विषे रे, धुर बे भांगा होय ।
अजोगीपणां नां अभाव थी,
कर्म वेदनी रे बंधकपणुं जोय कै ।।

२८. अवसेसं तं चेव जाव वेमाणिया । एवं दरिसणावरणिज्जेण वि दंडगो भाणियव्वो निरवसेसो ।
(श. २६।१८)

२९. जीवे णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।

३०. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ,
प्रथमे भङ्गेऽभव्यः । (वृ. प. ९३१)

३१. अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ,
द्वितीये भव्यो यो निर्वास्यति । (वृ. प. ९३१)

३२. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ ।

३३. तृतीयो न संभवति वेदनीयमबद्ध्वा पुनस्तद्बन्धनस्या सम्भवात् । (वृ. प. ९३१)

३४. सलेस्से वि एवं चेव ततियविहूणा भंगा ।

३५,३७. इह तृतीयस्याभावः पूर्वोक्तयुक्तेरवसेयः चतुर्थः पुनरिहाभ्युपेतोऽपि सम्यग् नावगम्यते, यतः 'बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ' इत्येतदयोगिन एव संभवति, स च सलेश्यो न भवतीति । (वृ. प. ९३१)

३८,३९. केचित्पुनराहुः—अत एव वचनादयोगिताप्रथमसमये घण्टालालान्यायेन परमशुक्ललेश्याऽस्तीति सलेश्यस्य चतुर्भङ्गकः संभवति, तत्त्वं तु बहुश्रुतगम्यमिति । (वृ. प. ९३१)

४०. कण्हलेस्से जाव पम्हलेस्से पढम-बितिया भंगा ।
कृष्णलेश्यादिपञ्चकेऽयोगित्वस्याभावादाद्यावेव ।
(वृ प. ९३१, ९३२)

४१. सुक्कलेस्से ततियविहूणा भंगा ।
शुक्ललेश्ये जीवे सलेश्यभाविता भङ्गा वाच्याः ।
(वृ. प. ९३२)

४४. अलेस्से चरिमो भंगो ।
अलेश्यः—शैलेशीगतः सिद्धश्च, तस्य च बद्धवान्न बध्नाति न भन्त्स्यतीत्येक एवेति । (वृ. प. ९३२)

४३. कण्हपक्खिए पढम-बितिया ।
'कण्हपक्खिए पढमबीय' त्ति कृष्णपाक्षिकस्यायोगित्वाभावात् । (वृ. प. ९३२)

---

* लय : सुरतरु नीं परं दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. शुक्लपाक्षिक जंतु विषे रे, तृतीय भंग विण तीन ।
तेह अजोगी पिण हुवै, इण कारण रे भंग तुर्य सुचीन कै ।।

४४. सुक्कपक्खिया ततियविहूणा ।
'सुक्कपक्खिए तईयविहूण' त्ति शुक्लपाक्षिको यस्मादयोग्यपि स्यादतस्तृतीयविहीनाः शेषास्तस्य स्युरिति ।
(वृ. प. ९३२)

४५. इमहिज समदृष्टि तणें रे, तृतीय बिना त्रिहुं भंग ।
अजोगीपणुं पिण ह्वै तसु, कर्म वेदनो रे अबन्ध प्रसंग कै ।।

४५. एवं सम्मदिट्ठिस्स वि ।
'एवं सम्मदिट्ठिस्सवि' त्ति तस्याप्ययोगित्वसम्भवेन बन्धासम्भवात् । (वृ. प. ९३२)

४६. मिथ्यादृष्टि मिश्रदृष्टि नैं रे, प्रथम द्वितीय भंग बेह ।
अजोगीपणां रा अभाव थी, वेदनी नों रे अबंधक न तेह कै ।।

४६. मिच्छादिट्ठिस्स सम्मामिच्छादिट्ठिस्स य पढम-बितिया
मिथ्यादृष्टिमिश्रदृष्ट्योश्चायोगित्वाभावेन वेदनीयाबन्धकत्वं नास्तीत्याद्यावेव स्याताम् ।
(वृ० प० ९३२)

४७. ज्ञानवंत ते ज्ञानी तणें रे, तृतीय बिना भंग तीन ।
चरम भांगो अजोगीपणें, कर्म वेदनी रे नहिं बांधै सुचीन कै ।।

४७. नाणिस्स ततियविहूणा ।
ज्ञानिनः केवलिनश्चायोगित्वेऽन्तिमोऽस्ति ।
(वृ० प० ९३२)

४८. मति जावत मनपज्जव में रे, प्रथम द्वितीय भंग दोय ।
इहां अजोगी भाव हुवै नहीं,
तिण कारण रे चरम भंग न होय कै ।।

४८. आभिणिबोहियनाणी जाव मणपज्जवनाणी पढम-बितिया ।
आभिनिबोधिकादिष्वयोगित्वाभावान्नान्तिमः ।
(वृ. प. ९३२)

४९. केवलज्ञानी जीव में रे, तृतीय विना त्रिहुं भंग ।
तेह अजोगी पिण हुवै, तिण कारण रे भंग चरम सुचंग कै ।।

४९. केवलनाणी ततियविहूणा ।

५०. इम नोसण्णोवउत्ते कह्युं रे, अवेदी नैं अकषाय ।।
सागारोवउत्त विषे वलो, अनाकारोवउत्ता रै मांय कै ।।

५०. एवं नोसण्णोवउत्ते, अवेदए, अकसायी । सागारोवउत्ते अणागारोवउत्ते ।

५१. एह सहु स्थानक विषे रे, तृतीय भंग विण तीन ।
चरम भांगो अजोगी विषे, शेष पद में रे भंग बे धुर चीन कै ।।

५१. एएसु ततियविहूणा । अजोगिम्मि य चरिमो । सेसेसु पढम-बितिया । (श० २६।१९)

वा.—अज्ञानी १, मतिअज्ञानी २, श्रुतअज्ञानी ३, विभंगअज्ञानी ४, आहारसण्णोवउत्ते ५ जाव परिग्गहसण्णोवउत्ते ८, सवेदी ९ जाव नपुंसकवेदी १२, सकषाई १३, जाव लोभकषाई १७, सजोगी १८, जाव कायजोगी २१, शेष पद में ए २१ बोल आया । तिणमें पहिलो दूजो भांगो पावै ।

५२. इम जिहां अजोगीपणों हुवै रे, चरम भांगो तिण मांय ।
जिहां अजोगी भाव हुवै नहीं,
तिहां भांगा रे धुरला बे पाय कै ।।

५२. एवं सर्वत्र यत्रायोगित्वं संभवति तत्र चरमो यत्र तु तन्नास्ति तत्राद्यौ द्वावेवेति भावनीयाविति ।
(वृ. प. ९३२)

५३. नारक हे भगवंतजी ! रे, वेदनी कर्म प्रतेह ।
स्यूं बांध्यो बांधै बांधस्यै ? इत्यादिक रे चिहुं भंग पूछेह कै ।।

५३. नेरइए णं भंते ! वेयणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ ?

५४. इम नारक आदि देई करी रे, जाव वैमानिक अंत ।
जेह विषे जे बोल छै, सहु ठामे रे धुर बे भंग हुंत कै ।।

५४. एवं नेरइया जाव वेमाणिय त्ति । जस्स जं अत्थि सव्वत्थ वि पढम-बितिया ।

५५. नवरं इतरो विशेष छै रे, मनुष्य विषे पहिछान ।
जीव विषे जिम आखियो,
तिम कहिवो रे कर्म वेदनी जान कै ।।

५५. नवरं—मणुस्से जहा जीवे ।
(श. २६।२०)

५६. जीव अहो भगवंतजी ! मोहणी कर्म प्रतेह ।
स्यूं बांध्यो बांधै बांधस्यै ? इत्यादिक रे भंग चिहुं पूछेह कै ।।

५६. जीवे णं भंते ! मोहणिज्जं कम्मं किं बंधी बंधइ ?

५७. पापकर्म जिमहिज कह्युं रे, मोहणी पिण तिमहीज ।
समस्तपणैं भांगा चिहुं, जाव वैमानिक रे पर्यंत कहीज कै ।।

५७. जहेव पावं कम्मं तहेव मोहणिज्जं पि निरवसेस जाव वेमाणिए । (श. २६।२१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५८. जीव अहो भगवंतजी ! रे, आयु कर्म प्रति जेह ।
स्यूं बांध्यो बांधै बांधस्यै ? इत्यादिक रे चिहुं भंग पूछेह कै ।।

५८. जीवे णं भंते ! आउयं कम्मं किं बंधी बंधइ—पुच्छा ।

५९. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे, कोइक जीव सुजोय ।
बांध्यो बांधै बांधस्यै, इत्यादिक रे चिहुं भांगा होय कै ।।

५९. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी चउभंगो ।

सोरठा

६०. आउ कर्म अवलोय, धुर भग अभव्य आश्रयी ।
द्वितीय भंग फुन जोय, चरमशरीरी जे हुस्यै ।।

६०. तत्र प्रथमोऽभव्यस्य द्वितीयो यश्चरमशरीरो भविष्यति तस्य । (वृ. प. ९३२)

६१. तृतीय उपशम संध, आयू पूर्वे बांधियो ।
उपशम समय अबंध, पड़चै छते फुन बांधस्यै ।।

६१. तृतीयः पुनरुपशमकस्य, स ह्यायुर्बद्धवान् पूर्वं उपशमकाले न बध्नाति तत्प्रतिपतितस्तु भन्त्स्यति । (वृ. प. ९३२)

६२. तुर्य क्षपक नैं जान, पूर्वे आयू बांधियो ।
बांधै नहिं वर्त्तमान, अनागते नहिं बांधस्यै ।।

६२. चतुर्थस्तु क्षपकस्य, स ह्यायुर्बद्धवान् न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति । (वृ. प. ९३२)

६३. *सलेशी जाव शुक्ल विषे रे, भणवा भांगा च्यार ।
जाव शब्द में जाणवा, कृष्णादिक रे लेश्या अवधार कै ।।

६३. सलेस्से जाव सुक्कलेस्से चत्तारि भंगा ।
'सलेस्से' इह यावत्करणात् कृष्णलेश्यादिग्रहः । (वृ. प. ९३२)

सोरठा

६४. प्रथम भंग इम लेह, शिव नहिं जास्यै तेह विषे ।
चरमशरीरपणेह, जन्म होस्यै तसु द्वितीय भंग ।।

६४. तत्र यो न निर्वास्यति तस्य प्रथमः । यस्तु चरमशरीरतयोत्पत्स्यते तस्य द्वितीय. । (वृ. प. ९३२)

६५. आयु अबंध काल, तृतीय भंग तेहनैं विषे ।
भंग चतुर्थो न्हाल, चरमशरीरी जीव में ।।

६५. अबन्धकाले तृतीयः, चरमशरीरस्य च चतुर्थः । (वृ. प. ९३२)

६६. अन्य स्थान पिण एम, कहिवा भंग विचार नैं ।
पवर न्याय धर प्रेम, आगल इम अवलोकियै ।।

६६. एवमन्यत्रापि । (वृ. प. ९३२)

६७. *चरम भांगो अलेशी विषे रे, शैलेशी सिद्ध एह ।
वर्त्तमान अनागत अद्धा, कर्म आयु रे तसु अबंधपणेह कै ।।

६७. अलेस्से चरिमो भंगो (श. २६।२२)
'अलेस्से चरमो' त्ति अलेश्यः—शैलेशीगतः सिद्धश्च तस्य च वर्त्तमानभविष्यतकालयोरायुषोऽबन्धकत्वाच्चरमो भङ्गः । (वृ. प. ९३२)

६८. पूछा कृष्णपाक्षिक तणीं रे, जिन कहै भांगा दोय ।
प्रथम अनैं तीजो हुवै, दूजो चउथो रे पावै नहीं कोय कै ।।

६८. कण्हपक्खिए णं—पुच्छा ।
गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ, अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ ।

सोरठा

६९. धुर भंग अभव्य न्हाल, तृतीय भंग बांधै नथी ।
आयु अबंध काल, उत्तर-काले बांधस्यै ।।

६९ कृष्णपाक्षिकस्य प्रथमस्तृतीयश्च संभवति, तत्र च प्रथमः प्रतीत एव, तृतीयस्त्वायुष्काबन्धकाले न बध्नात्येव उत्तरकालं तु तद् भन्त्स्यतीत्येवं स्यात्, (वृ. प. ९३२)

७०. द्वितीय तुर्य भंग जाण, अंगीकार न कियो इहां ।
तास न्याय पहिछाण, कहियै छै ते सांभलो ।।

७०. द्वितीयचतुर्थौ तु तस्य नाभ्युपगम्येते, (वृ. प. ९३२)

७१. कृष्णपाक्षिक छै जेह, कृष्णपक्ष नां भाव में ।
आगामिक कालेह, आयु अबंध न सर्वथा ।।

७१,७२. कृष्णपाक्षिकत्वे सति सर्वथा तदभन्त्स्यमानताया अभाव इति विवक्षणात्, (वृ. प. ९३२)

*लय : सुरतरु नीं परै वाहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७२. इण वंछा करि ताय, द्वितीय चतुर्थो भंग बे।
न कह्या श्री जिनराय, एहवुं न्यायज वृत्ति में।।

७३. *शुक्लपाक्षिक समदृष्टि में रे, मिथ्यादृष्टी मांय।
भांगा च्यार भणियै, आयु कर्मज रे आश्रयी कहिवाय कै।।

७३. सुक्कपक्खिए सम्मदिट्ठी मिच्छादिट्ठी चत्तारि भंगा। (श. २६।२३)

सोरठा

७४. शुक्लपाक्षिक समदृष्ट, प्रथम भंग नों न्याय इम।
पूर्वे काले इष्ट, आऊ कर्मज बांधियो।।
७५. बांधै फुन बंध काल, अनागते जे अन्य भवे।
वली बांधस्यै न्हाल, अबंध काल नें ऊपरे।।

७४,७५. शुक्लपाक्षिकस्य सम्यग्दृष्टेश्चत्वारः, तत्र बद्धवान् पूर्वं बध्नाति च बन्धकाले भन्त्स्यति चाबन्धकालस्योपरीत्येकः १। (वृ. प. ९३२)

७६. बांध्यो पूर्वे भवेह, बांधै छै वर्त्तमान भव।
आगामिक भव जेह, नथी बांधस्यै चरम तनु।।

७६. बद्धवान् बध्नाति न भन्त्स्यति च चरमशरीरत्वे इति द्वितीयः २। (वृ. प. ९३२)

७७. बांध्यो पूर्वे जेह, हिवड़ां जे बांधै नहीं।
अबंध काल विषेह, अथवा उपशम अवस्था।।
७८. बंध काल फुन जेह, अथवा उपशम थी पड़चां।
आगामिक कालेह, वली बांधस्यै तृतीय भंग।।

७७,७८. तथा बद्धवान् न बध्नात्यबन्धकाले उपशमावस्थायां वा भन्त्स्यति च पुनर्बन्धकाले प्रतिपतितो वेति तृतीयः ३। (वृ. प. ९३२)

७९. बांध्यो पूर्वे जेह, वर्त्तमान बांधै नथी।
नथी बांधस्यै तेह, क्षपकपणें ए तुर्य भंग।।

७९. चतुर्थस्तु क्षपकस्येति ४। (वृ. प. ९३२)

८०. मिथ्यादृष्टी ताहि, द्वितीय भंग नहिं बांधस्यै।
आगामिक भव मांहि, चरम तनु प्राप्ति विषे।।

८०. मिथ्यादृष्टिस्तु द्वितीयभङ्गके न भन्त्स्यति चरमशरीरप्राप्तौ। (वृ. प. ९३२)

८१. तृतीय बांधै नाहिं, एह अबंध अद्धा विषे।
बंध काल रै मांहि, वलि बांधस्यै तृतीय भंग।

८१. तृतीये न बध्नात्यबन्धकाले। (वृ. प. ९३२)

८२. बांध्यो पूर्वे जेह, वर्त्तमान बांधै नथी।
नथी बांधस्यै तेह, चरम तनु प्राप्ति विषे।।

८२. चतुर्थे न बध्नात्यबन्धकाले न भन्त्स्यति चरमशरीरप्राप्ताविति। (वृ. प ९३१)

८३. *समा-मिथ्यादृष्टि पूछियां रे, जिन कहै कोइक जीव।
पूर्व बांध्या हिवड़ां बांधै नहीं,
वलि बांधस्यै तृतीय भंग कहीव कै।।

८३. सम्मामिच्छादिट्ठी—पुच्छा।
गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ।

८४. कोइक जीव अछै तिको रे, बांध्यो पूर्व काल।
वर्त्तमान बांधै नहीं, नथी बांधस्यै रे भंग तुर्य निहाल कै।।

८४. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ।

सोरठा

८५. पूर्वे बांध्यो जेह, मिश्रपणें बांधै नथी।
वली बांधस्यै तेह, तृतीय भंग नुं न्याय ए।।

८५. 'सम्मामिच्छे' त्यादि, सम्यग्मिथ्यादृष्टिरायुर्न बध्नाति। (वृ. प. ९३२)

८६. पूर्वे बांध्यो ताहि, वर्त्तमान बांधै नथी।
वली बांधस्यै नांहि, चरम-शरीरपणां विषे।।

८६. चरमशरीरत्वे च कश्चिन्न भन्त्स्यत्यपीतिकृत्वा। (वृ. प. ९३२)

८७. *च्यार भांगा ज्ञानी विषे रे, पूर्वली परि न्याय।
जावत अवधिज्ञानी विषे,
च्यार भांगा रे भाख्या जिनराय कै।।

८७. नाणी जाव ओहिनाणी चत्तारि भंगा। (श. २६।२४)
ज्ञानिनां चत्वारः प्राग्वद्भावयितव्याः। (वृ. प. ९३२, ९३३)

---

*लय : सुरतरु नों परं दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—समचे नाणी, मति, श्रुत, अवधिज्ञानी में दूजो भांगो कह्यो ते देवता, नारकी अवधिज्ञानी आश्रयी जाणवुं। जे अवधिज्ञानी देवता, नारकी पूर्व भवे आऊ बांध्यो, वर्त्तमान भवे मनुष्य नों आऊ बांधै अनें अनागत भवे चरम-शरीरी माटै आऊ न बांधस्यै। पिण मनुष्य तिर्यंच आश्रयी न संभवै। जे मति, श्रुत, अवधिज्ञानी पूर्व भवे बांध्यो, वर्त्तमान भवे देव आऊ बांधै ते तो देवता नें भवे अवश्य आऊ बांधस्यै। ते माटै बांध्यो, बांधै, न बांधस्यै—ए दूजो भांगो ज्ञानी, मति, श्रुत, अवधि नाणी मनुष्य, तिर्यंच रै न संभवै।

८८. मनपर्यव तणीं पृच्छा रे, तब भाखै जिनराय।
कोइक पूर्वे बांधियो, हिवड़ां बांधै रे वली बांधस्यै ताय कै ॥

८९. कोइक पूर्वे बांधियो रे, नहिं बांधै वर्त्तमान।
अनागते फुन बांधस्यै, भंग तीजो रे कहियै पहिछान कै ॥

९०. कोइक पूर्वे बांधियो रे, बांधै नहीं वर्त्तमान।
अनागते नहिं बांधस्यै, तुर्य भांगो रे कहियै सुविधान कै ॥

८८. मणपज्जवनाणी—पुच्छा।
गोयमा! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ।

८९. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ।

९०. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ न बंधिस्सइ।

सोरठा

९१. पूर्वे बांध्यो ताहि, फुन बांधै सुर आउखो।
देव तणां भव मांहि, मनुष्य आउ फुन बांधस्यै ॥

९२. पूर्वे बांध्यो ताहि, हिवड़ां बांधै छै तिके।
वली बांधस्यै नांहि, ए द्वितीय भंग नहिं संभवै ॥

९३. देव तणां भव मांहि, अवश्य मनुष्य नों आउखो।
तेह बांधस्यै ताहि, द्वितीय भंग नहि ते भणी ॥

९४. पूर्वे बांध्यो जेह, नहिं बांधै उपशम विषे।
पड़ियां पछैज तेह, वली बांधस्यै तृतीय भंग ॥

९५. पूर्वे बांध्यो ताहि, क्षपक विषे बांधै नहीं।
वलि बांधस्यै नाहि, तुर्य भंग नों न्याय ए ॥

९१. मनःपर्यायज्ञानिनो द्वितीयवर्जास्तत्रासौ पूर्वमायुर्बद्धवान् इदानीं तु देवायुर्बध्नाति ततो मनुष्यायुर्भन्त्स्यतीति प्रथमः। (वृ. प. ९३३)

९२. बध्नाति न भन्त्स्यतीति न संभवति। (वृ. प. ९३३)

९३. अवश्यं देवत्वे मनुष्यायुषो बन्धनादितिकृत्वा द्वितीयो नास्ति। (वृ. प. ९३३)

९४. तृतीय उपशमकस्य, स हि न बध्नाति प्रतिपतितश्च भन्त्स्यति। (वृ. प. ९३३)

९५. क्षपकस्य चतुर्थः, (वृ. प. ९३३)

९६. *केवलज्ञानी नें कह्यो रे, चरम भांगो पहिछान।
तिके आउ कर्म बांधै नहीं,
नहीं बांधस्यै रे वलि तेह सुजान कै ॥

९७. इम इण अनुक्रमे करी रे, नोसण्णोवउत्ते चीन।
मनपर्यव तणीं परै, भांगा कहियै रे बीजा विण तीन कै ॥

९८. अवेदी अकषाई विषे रे, तृतीय तुर्य भंग दोय।
जिम मिश्रदृष्टि विषे कह्या,
तिम कहिवा रे इम सूत्रे जोय कै ॥

९६. केवलनाणे चरिमो भंगो।
'केवलनाणे चरमो' त्ति केवली ह्यायुर्न बध्नाति न च भन्त्स्यतीतिकृत्वा, (वृ. प ९३३)

९७. एवं एएणं कमेणं नोसण्णोवउत्ते बितियविहूणा जहेव मणपज्जवनाणे।

९८. अवेदए अकसाई य ततिय-चउत्था जहेव सम्मामिच्छत्ते।

सोरठा

९९. अवेदक अकषाय, ए बिहुं उपशम क्षपक वा।
कर्म आउखो ताय, वर्त्तमान बांधै नथी ॥

१००. क्षपक बांधस्यै नांय, उपशम पड़ियां बांधस्यै।
अवेदको अकषाय, तृतीयो भंगक इम हुवै ॥

९९. अवेदकोऽकषायी च क्षपक उपशमको वा तयोश्च वर्त्तमानबन्धो नास्त्यायुषः। (वृ. प. ९३३)

१००. उपशमकश्च प्रतिपतितो भन्त्स्यति क्षपकस्तु नैवं भन्त्स्यतीतिकृत्वा तयोस्तृतीयचतुर्थौ, (वृ. प. ९३३)

---

*लय : सुरतरु नीं परै वोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०१. *चरम भांगो अजोगी विषे रे, शेष पदे चिउं भंग ।
जाव अनाकारोवउत्ते, अर्थ चारू रे जिन वचन सुचंग कै ।।

१०१. अजोगिम्मि चरिमो, सेसेसु पदेसु चत्तारि भंगा जाव अणागारोवउत्ते । (श. २६।२५)

सोरठा

१०२. अन्य पद एह पिछाण, समुच्चय अनाणी प्रथम ।
वलि जे तीन अनाण, आहारादि संज्ञोपयुक्त ।।
१०३. सवेद स्त्री-वेदादि, सकषाई क्रोधादि चिहुं ।
सजोगी मनजोगादि, साकार नें अनाकार फुन ।।
१०४. ए तेवीसूं बोल, शेष पद में आविया ।
तिणमें चिहुं भंग तोल, कहिवा जिन वचने करी ।।

१०२-१०४. 'सेसेसु' त्ति शेषपदेषु—उक्तव्यतिरिक्तेषु अज्ञान १ मत्यज्ञानादि ३ सञ्ज्ञोपयुक्ताहारादिसञ्ज्ञोपयुक्त ४ सवेद १ स्त्रीवेदादि ३ सकषाय १ क्रोधादिकषाय ४ सयोगि १ मनोयोग्यादि २ साकारोपयुक्तानाकारोपयुक्तलक्षणेषु चत्वार एवेति । (वृ.प. ९३३)

ए समुच्चय जीव दंडक आश्रयी कह्यो ।

हिवै नारकादि चउवीस दंडक ते आयु कर्म आश्रयी कहै छै—

१०५. *नारक हे भगवंतजी ! रे, आउखा कर्म प्रतेह ।
स्यूं बांध्यो बांधै बांधस्यै? इत्यादिक रे चिउं भंग पूछेह कै ।।

१०५. नेरइए णं भंते ! आउयं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।

१०६. श्री जिन भाखै गोयमा ! रे, कोइक नारक जेह ।
बांध्यो बांधै बांधस्यै, इत्यादिक रे चिउं भंग लहेह कै ।।

१०६. गोयमा ! अत्थेगतिए चत्तारि भंगा,

सोरठा

१०७. नारक आऊ जेह, बांध्यो पूर्व भव विषे ।
बांधै बंध-कालेह, भवांतरे फुन बांधस्यै ।।

१०७. तत्र नारक आयुर्बद्धवान् बध्नाति बन्धकाले भन्त्स्यति भवान्तर इत्येक: १, (वृ.प. ९३३)

१०८. बांध्यो पूर्व भवेह, बंध-काल बांधै वली ।
नथी बांधस्यै जेह, मनुष्य थइ नें सीझस्यै ।।

१०८. प्राप्तव्यसिद्धिकस्य द्वितीयः, (वृ.प. ९३३)

१०९. पूर्वे बांध्यो ताहि, वर्त्तमान बंध-काल नहीं ।
तिणसूं बांधै नांहि, जे नारक नां भव विषे ।।
११०. होणहार बंध-काल, तिण वेला ते बांधस्यै ।
तेह अपेक्षा न्हाल, तृतीय भंग ए जाणवुं ।।

१०९,११०. बन्धकालाभावं भाविबन्धकालं चापेक्ष्य तृतीयः, (वृ. प. ९३३)

१११. बांध्यो परभव आयु, अंतर रहित मनुष्य थइ ।
वर शिव-गमन करायु, नहिं बांधै नहिं बांधस्यै ।।

१११. बद्धपरभविकायुषोऽनन्तरं प्राप्तव्यचरमभवस्य चतुर्थः, (वृ. प. ९३३)

११२. *इम सर्वत्र सर्व स्थानक विषे रे, नारक नें भंग च्यार ।
णवरं इतरो विशेष छै,
तिको कहियै रे आगल अधिकार कै ।।

११२. एवं सव्वत्थ वि नेरइयाणं चत्तारि भंगा, नवरं—

११३. कृष्णलेशी कृष्णपाक्षिके रे, ए बिहुं नारक मांय ।
बे भंग तास भणीजियै, धुर तीजो रे भांगा ए पाय कै ।।

११३. कण्हलेस्से कण्हपक्खिए य पढम-ततिया भंगा,

सोरठा

११४. लेश्या पद रै मांय, कृष्णलेशी नारक विषे ।
प्रथम तृतीय भंग पाय, तास न्याय कहियै अछै ।।

११४. लेश्यापदे कृष्णलेश्येषु नारकेषु प्रथमतृतीयौ, तथाहि— (वृ. प. ९३३)

११५. कृष्ण लेश्यावंत ताहि, नारक छै ते मरि करी ।
उपजै तिर्यंच मांहि, वा अचरम तनु मनुष्य में ।।

११५. यत: कृष्णलेश्यो नारकस्तिर्यक्षूत्पद्यते मनुष्येषु चाचरमशरीरेषु, (वृ. प. ९३३)

११६. कृष्ण पंचमी मांहि, छठी सातमीं में वली ।
तेहथो नीकल ताहि, अनंतरे शिव गति नथी ।।

११६. कृष्णलेश्या हि पञ्चमनरकपृथिव्यादिषु भवति न च तत उद्वृत्तः सिद्ध्यतीति, (वृ. प. ९३३)

*लय : सुरतरु नीं परै दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११७. तेहिज नारक जान, बांध्यो नैं बांधै तिको ।
वली बांधस्यै मान, तिरि मनु अचरम तनु भणी ।।

११८. नारक जे कण्हलेश, अबंध-काल बांधै नथी ।
बंध-काल सुविशेष, वली बांधस्यै तृतीय भंग ।।

११९. द्वितीय तुर्य भंग नांय, आउ अबंधपणां तणां ।
अभाव थी कहिवाय, वली बांधस्यै ते भणी ।।

वा. – हिवै कृष्णपाक्षिक में प्रथम भांगो प्रसिद्ध अनैं बीजो भांगो न पावै । ते कृष्णपाक्षिक पूर्वे बांध्यो, वर्त्तमान बांधै अनैं अनागते न बांधस्यै—ए तीजो पद न संभवै । अनैं तेहनैं चरम भव नां अभाव थी तीजो भांगो पावै ३ । अनैं चोथो पिण न पावै ।

१२०. *समामिथ्यादृष्टि विषे रे, तृतीय तुर्य बे भंग ।
आउ बंध नां अभाव थी,
ए तो आख्यो रे नारक नों अंग कै ।।

१२१. इमहिज असुरकुमार नैं, नवरं इतरो विशेष ।
कृष्णलेशी जे असुर अछै,
तेहमें पिण रे चिहुं भंग लहेस कै ।।

सोरठा

१२२. नारक दंडक मांय, कृष्णलेशी नारक विषे ।
प्रथम तृतीय भंग पाय, कृष्णलेशी असुरे चिहुं ।।

१२३. असुर मनुष्य गति पाय, सिद्धि संभवै कर तसु ।
द्वितीय तुर्य भंग थाय, तिणसुं असुरे भंग चिहुं ।।

१२४. *एवं जावत जाणवा रे, थणियकुमार विचार ।
असुरकुमार तणीं परै,
ओ तो कहिवो रे सगलोइ प्रकार कै ।।

१२५. पृथ्वी नैं सर्व स्थानक विषे रे, भणवा भांगा च्यार ।
नवरं कृष्णपाक्षिक विषे,
पहिलो तीजो रे भांगो अवधार कै ।।

सोरठा

१२६. कृष्णपाक्षिक महिकाय, प्रथम तृतीय बे भंग तसु ।
युक्ति पूर्ववत थाय, कहिवी तेह विचार नैं ।।

१२७. *तेजुलेशी पृथ्वी नीं पृच्छा रे, तब भाखै जिनराय ।
बांध्यो न बांधै बांधस्यै,
तीजो भांगो रे आउ नीं अपेक्षाय कै ।।

सोरठा

१२८. तेजूलेशी देव, पृथ्वी विषे समुपजै ।
तेजुलेशी कहेव, अपर्याप्त भावेज ह्वै ।।

*लय : सुरतरु नीं परै बोहिलो

११७. तदेवमसौ नारकस्तिर्यग्गाद्यायुर्बद्ध्वा पुनर्भन्त्स्यति अचरमशरीरत्वादिति । (वृ. प. ९३३)

११८. तथा कृष्णलेश्यो नारक आयुष्काबन्धकाले तन्न बध्नाति बन्धकाले तु भन्त्स्यतीति तृतीयः, (वृ. प. ९३३)

११९. चतुर्थस्तु तस्य नास्ति आयुरबन्धकत्वस्याभावादिति । (वृ. प. ९३३)

वा.—तथा कृष्णपाक्षिकनारकस्य प्रथमः प्रतीत एव, द्वितीयो नास्ति, यतः कृष्णपाक्षिको नारक आयुर्बद्ध्वा पुनर्न भन्त्स्यतीत्येतन्नास्ति, तस्य चरमभवाभावात्, तृतीयस्तु स्यात् चतुर्थोऽपि न उक्तयुक्तेरेवेति । (वृ. प. ९३३,९३४)

१२०. सम्मामिच्छत्ते ततियचउत्था ।
'सम्मामिच्छत्त तइयचउत्थ' त्ति सम्यग्मिथ्यादृष्टेरायुषो बन्धाभावादिति । (वृ. प. ९३४)

१२१. असुरकुमारे एवं चेव, नवरं—कण्हलेस्से वि चत्तारि भंगा भाणियव्वा,

१२२. नारकदण्डके कृष्णलेश्यनारकस्य किल प्रथमतृतीयावुक्तौ, (वृ. प. ९३४)

१२३. असुरकुमारस्य तु कृष्णलेश्यस्यापि चत्वार एव, तस्य ही मनुष्यगत्यवाप्तौ सिद्धिसम्भवेन द्वितीयचतुर्थयोरपि भावादिति । (वृ. प. ९३४)

१२४. एवं जाव थणियकुमाराणं ।

१२५. पुढविक्काइयाणं सव्वत्थ वि चत्तारि भंगा, नवरं—कण्हपक्खिए पढम-ततिया भंगा । (रा. २६/२६)

१२६. पृथिवीकायिकदण्डके 'कण्हपक्खिए पढमतइया भंग' त्ति, इह युक्तिः पूर्वोक्तैवानुसरणीया । (वृ. प. ९३४)

१२७. तेउलेस्से पुच्छा ।
गोयमा ! बंधी न बंधइ बंधिस्सइ,

१२८. तेजोलेश्यापदे तृतीयो भङ्गः, कथं ,?, कश्चिद्देवस्तेजोलेश्यः पृथिवीकायिकेषूत्पन्नः स चापर्याप्तकावस्थायां तेजोलेश्यो भवति, (वृ. प. ९३४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२९. ते तेजू अद्धा मांय, आउखो बांधै नथी ।
तथा पछै बंधाय, तिणसुं तीजो भंग इक ।।
१३०. तेजू पृथ्वीकाय, बांध्यो पूर्व सुर-भवे ।
पृथ्वी तेजू मांय, वर्त्तमान बांधै नथी ।।
१३१. तेजू मिटचां जताय, वलि बांधस्यै आउखो ।
तृतीय भंग इण न्याय, तेजूलेशी महि विषे ।।

१२९-१३१ तेजोलेश्याद्धायां चापगतायामायुर्बध्नाति तस्मात्तेजोलेश्यः पृथिवीकायिक आयुर्बद्धवान् देवत्वे न बध्नाति तेजोलेश्यावस्थायां भन्त्स्यति च तस्यामपगतायामित्येवं तृतीयः, (वृ. प. ९३४)

१३२. *कहिवुं इम अपकाय नें, इमज वणस्सइकाय ।
भणवा समस्तपणें करी,
जिम पृथ्वी रे तिम कहिवुं ताय कै ।।

वा०—पूर्वे पृथ्वी नैं विषे न्याय कह्यु, तिम कृष्णपाक्षिक अप वनस्पति नैं विषे प्रथम तृतीय भंग अनैं तेजूलेशी नैं विषे तीजो भांगो । अन्य स्थानके च्यार भांगा ।

१३२. एवं आउक्काइय-वणस्सइकाइयाण वि निरवसेसं ।

वा.—'एवं आउक्काइयवणस्सइकाइयाणवि' त्ति उक्तन्यायेन कृष्णपाक्षिकेषु प्रथमतृतीयौ भङ्गौ, तेजोलेश्यायां च तृतीयभङ्गसम्भवस्तेष्वित्यर्थः, अन्यत्र तु चत्वारः, (वृ. प. ९३४)

१३३. तेउकाय वाऊकाय नें रे, सर्वत्र सगलै स्थान ।
प्रथम तृतीय भंग जाणवा,
वारू जिन वच रे वर न्याय सुजान कै ।।

१३३ तेउकाइय-वाउक्काइयाणं सब्वत्थ वि पढम-ततिया भंगा ।

यतनी

१३४. तेउ वाऊकाय नें ताहि, सर्व स्थान एकादश मांहि ।
प्रथम तृतीय भंग बे पाय, अंतर रहित मनुष्य नहिं थाय ।।
१३५. तिणसूं सिद्ध गमन हुवै नांय, तेऊ वाउ मरि तिर्यंच थाय ।
इण न्याय थकी अवलोय, द्वितीय तुर्य भंग नहिं कोय ।।

१३४,१३५. तेजस्कायिकवायुकायिकानां सर्वत्र एकदशस्वपि स्थानकेष्वित्यर्थः प्रथमतृतीयभङ्गौ भवतस्तत उद्वृत्तानामनन्तरं मनुष्येष्वनुत्पत्त्या सिद्धिगमनाभावेन द्वितीयचतुर्थासम्भवाद्, (वृ. प. ९३४)

सोरठा

१३६. तेऊ वाऊकाय, सप्तम पृथ्वी नेरइया ।
सर्व युगलिया ताय, निकल मनुष्य हुवै नथी ।

१३६. मनुष्येषु अनुत्पत्तिश्चैतेषां
'सत्तममहिनेरइया तेउवाऊ अणंतरुव्वट्टा ।
न य पावे माणुस्सं तहेवऽसंखाउआ सव्वे ।।'
(वृ. प. ९३४)

१३७. *बे ते चउरिंद्री जीव नें रे, सर्व स्थानक रे मांय ।
प्रथम तृतीय भंग जाणवा,
णवरं इतरो रे विशेषज पाय कै ।।

१३७. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं पि सव्वत्थ वि पढम-ततिया भंगा, नवरं—

१३८. सम्यक्त्व मति श्रुत ज्ञान में रे, तृतीय भंग ए पाय ।
ए चिहुं आउ बांधै नथी,
तिण कारण रे, तीजो भंग कहिवाय कै ।।

१३८. सम्मत्ते, नाणे, आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे ततिओ भंगो ।

यतनी

१३९. तेहनैं विकलेंद्री थी ताय, अंतर रहित मनुष्य तो थाय ।
पिण शिवगति पामै नांय, तिण सुं अवश्य आउ बंधाय ।।
१४०. तिण कारण सर्वत्र स्थान, प्रथम तृतीय भंग जिन वान ।
सूत्रे णवरं विशेष संवाद, वृत्तिकार कह्यो अपवाद ।।

१३९. यतस्तत उद्वृत्तानामानन्तर्येण सत्यपि मानुषत्वे निर्वाणाभावस्तस्मादवश्यं पुनस्तेषामायुषो बन्ध इति, (वृ. प. ९३४)
१४०. तदुक्तं विकलेन्द्रियाणां सर्वत्र प्रथमतृतीयभङ्गाविति तदपवादमाह— (वृ. प. ९३४)

*लय : सुरतरु नीं परै दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४१. सम्यक्त्व ज्ञान मति श्रुत रै मांय,
एक तीजो भांगो हीज पाय ।
सास्वादन मति श्रुत ज्ञान, ह्वै विकलेंद्रिय में जान ।।
१४२. अपर्याप्तक अवस्था मांहि, तिण वेला आऊ बांधै नांहि ।
ते मिटचां पछै आऊ बंध, तिण सुं पूर्व भवे बांध्यो संध ।।
१४३. सम्यक्त्वकादिक रै मांहि, विकलेंद्री आऊ बांधै नांहि ।
सम्यक्त्वकादिक मिटियां जेह, आऊ कर्म बांधस्यै तेह ।।
१४४. बांध्यो पूर्व भव में ताहि, नहीं बांधै सम्यक्त्वकादि मांहि ।
ते मिटचां बांधस्यै सोय, तिणसुं तृतीय भंग इम होय ।।

१४१,१४२. सम्यक्त्वे ज्ञाने आभिनिबोधिके श्रुते च विकलेन्द्रियाणां तृतीय एव, यतः सम्यक्त्वादीनि तेषां सासादनभावेनापर्याप्तकावस्थायामेव, तेषु चापगतेष्वायुषो बन्ध इत्यतः पूर्वभवे बद्धवन्तः
(वृ. प. ९३४)

१४३,१४४. सम्यक्त्वाद्यवस्थायां च न बध्नन्ति तदनन्तरं च भन्त्स्यंतीति तृतीय इति : (वृ. प. ९३४)

१४५. *पंचेंद्रिय तिर्यंच में रे, कृष्णपाक्षिक रै मांय ।
भांगा दोय भणीजियै,
पहिलो तीजो रे सुणजो तसु न्याय कै ।।

वा० —पंचेंद्रिय तिर्यंच नैं कृष्णपाक्षिक पद विषे पहिलो, तीजो भांगो पावै, निश्चै करी कृष्णपाक्षिक आयुष्क बांधी नैं अथवा अणबांधी नैं ते आयुष्क नां अबंधक अनंतर हीज न हुवै ते कृष्णपाक्षिक नैं सिद्धिगमन अयोग्यपणां थकी इति ।

१४५. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं कण्हपक्खिए पढमततिया भंगा।

वा.— पञ्चेन्द्रियतिरश्चां कृष्णपाक्षिकपदे प्रथमतृतीयौ, कृष्णपाक्षिको ह्यायुर्बद्ध्वाऽबद्ध्वा वा तदबन्धकोऽनन्तरमेव भवति तस्य सिद्धिगमनायोग्यत्वादिति । (वृ. प. ९३४)

१४६. समामिथ्या दृष्टि विषे रे, तृतीय तुर्य भंग दोय ।
तेह आउखो बांधै नथी, ए तो पूर्वे रे आख्यो ते जोय कै ।।

१४६. सम्मामिच्छत्ते ततियचउत्थो भंगो ।
'सम्मामिच्छत्ते तईयचउत्थ' त्ति सम्यग्मिथ्यादृष्टेरायुषो बन्धाभावात्तृतीयचतुर्थाविव, भावितं चैतत्प्रागेवेति।
(वृ. प. ९३४)

१४७. सम्यक्त्व समुच्चय ज्ञान में रे, मति श्रुत अवधि सुज्ञान ।
ए पांचूंइ पद विषे,
त्रिण भांगा रे द्वितीय विण पहिछान कै ।।

१४७. सम्मत्ते, नाणे, आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे—एएसु पंचसु वि पदेसु बितियविहूणा भंगा,

सोरठा

१४८. तिरि पंचेंद्रिय तेह, सम्यक्त्वादि पांचूं पदे ।
आऊ बांधी जेह, वैमानिक में ऊपजै ।।
१४९. तेह पुनरपि देव, निश्चै आऊ बांधस्यै ।
ते कारण थी भेव, द्वितीय भंग नहिं संभवै ।।

१४८,१४९. पञ्चेन्द्रियतिरश्चां सम्यक्त्वादिषु पञ्चसु द्वितीयवर्जा भंगा भवन्ति, कथं ? यदा सम्यग्दृष्ट्यादिः पञ्चेन्द्रियतिर्यगायुर्भवति तदा देवेष्वेव स च पुनरपि भन्त्स्यतीति न द्वितीयसम्भवः,
(वृ. प. ९३४)

१५०. पहिलो तीजो पेख, ते तो प्रसिद्ध हीज छै ।
तुर्य भंग सुविशेख, तास न्याय इम सांभलो ।।
१५१. मनुष्य तणों संवादि, आऊखो बांध्या पछै ।
पाम्यो सम्यक्त्वादि, अनंतरे वलि मनुष्य ह्वै ।।
१५२. चरमशरीरी जेह, मनुष्य चरण ले सिद्ध हुस्यै ।
नथी बांधस्यै तेह, तुर्य भंग इण न्याय ह्वै ।।
१५३. सम्यक्त्व आदिज पंच, प्रश्न काल थी पूर्व तिण ।
बांध्यो आऊ संच, नहिं बांधै नहिं बांधस्यै ।।

वा०—पंचेंद्रिय तिर्यंच नैं सम्यक्त्वादि पंच पद विषे दूजो भांगो वर्जी तीन भांगा हुवै, ते किम ? जिवारै सम्यगदृष्टि आदि पंचेंद्रिय तिर्यंच आयु बांधै

१५०. प्रथमतृतीयौ तु प्रतीतावेव, चतुर्थः पुनरेवं—
(वृ. प. ९३४)

१५१,१५२. यथा मनुष्येषु बद्धायुरसौ सम्यक्त्वादि प्रतिपद्यते अनन्तरं च प्राप्तस्य चरमभवस्तदैवेति ।
(वृ. प. ९३४)

*लय : सुरतरु नीं परं दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिवारै वैमानिक देव नों हीज आउखो बांधै ते वैमानिक देव वलि बांधस्यै इति। इम द्वितीय भंग न संभवै। प्रथम, तृतीय भंग प्रसिद्ध हीज छै। अनैं चतुर्थो भंग इम —जे तिर्यंच पंचेंद्रिय पहिलां चरमशरीरी मनुष्य नों आउखो बांधी पछै सम्यक्त्वादि ज्ञान पामी काल करी चरमशरीरी मनुष्य थयो। इण न्याय पूर्वे बांध्यो, वर्त्तमान आउखो न बांधै, अनागते न बांधस्यै। इम चतुर्थ भंग संभवै।

१५४. *शेष रह्या पद नें विषे रे, च्यार भांगा संपेख।
ते शेष पद तेतीस छै,
तिके कहिवा रे जुआ-जुआ उवेख कै।।

१५४. सेसेसु चत्तारि भंगा।

वा०—तिर्यंच पंचेंद्रिय में अलेशी १, मनःपर्यायज्ञानी २, केवलज्ञानी ३, नोसण्णोवउत्ते ४, अवेदी ५, अकषाई ६, अजोगी ७—ए सात बोल वर्जी ४० बोल पावै तिणमें कृष्णपाक्षिक १, समामिथ्यादृष्टि २, समदृष्टि ३, ज्ञानी ४, मतिज्ञानी ५, श्रुतज्ञानी ६, अवधिज्ञानी ७—ए सात बोल तो पूर्वे इहां कह्या हीज छै। शेष बोल ३३ समुच्चय तिर्यंच पंचेंद्री जीव १, सलेशी तिर्यंच पंचेंद्री २ जाव शुक्ललेशी तिर्यंच पंचेंद्रिय ८, शुक्लपाक्षिक ९, मिथ्यादृष्टि १०, अनाणी ११, मतिअनाणी १२, श्रुतअनाणी १३, विभंगअनाणी १४, आहारसण्णोवउत्ता १५ जाव परिग्रहसण्णोवउत्ता १८, सवेदी १९ जाव नपुंसकवेदी २२, सकषाई २३ जाव लोभकषाई २७, सजोगी २८ जाव कायजोगी ३१, सागारोवउत्ता ३२, अनाकारोवउत्ता ३३—ए शेष ३३ में भांगा पावै च्यार।

१५५. मनुष्य नें कहिवुं इहविधे रे, जिम जीव नें आख्यात।
नवरं इतरो विशेष छै,
तिको कहियै रे सुणजो अवदात कै।।

१५५. मणुस्साणं जहा जीवाणं, नवरं—

१५६. सम्यक्त्व ओघिक ज्ञान में रे, मति श्रुत अवधि सुज्ञान।
यांमे त्रिण भंग द्वितीय विना हुवै,
शेष तिमहिज रे कहिवो सुविधान कै।।

१५६. सम्मत्ते, ओहिए नाणे, आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे ओहिनाणे—एएसु बितियविहूणा भंगा, सेसं तं चेव।

सोरठा

१५७. सम्यक्त्वादिक पंच, पद पावै ते मनुष्य में।
भांगा तीन विरंच, द्वितीय भंग पावै नहीं।।

१५७. सम्यक्त्वसामान्यज्ञानादिषु पञ्चसु पदेषु मनुष्या द्वितीयविहीनाः (वृ. प. ९३४)

१५८. तास न्याय अवलोय, पंचेंद्रिय-तिर्यंचवत।
बंधायु मनु जोय, मनुष्य थइ शिव तुर्य भंग।।

१५८. भावना चेह पञ्चेन्द्रियतिर्यक्सूत्रवदवसेयेति। (वृ. प. ९३४)

१५९. *वानव्यंतर नें जोतिषी रे, वैमानिक ए तीन।
जिम कह्या असुरकुमार नैं,
तिम कहिवा रे एहनैं पिण चीन कै।।

१५९. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।

१६०. नाम गोत्र अंतराय नें रे, ज्ञानावरणी जिम जान।
सेवं भंते! सेवं भंते! स्वामजी,
जाव विचरै रे गौतम वर ध्यान कै।।

१६०. नामं गोयं अंतरायं च एयाणि जहा नाणावरणिज्जं। (श. २६/२७)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति जाव विहरइ। (श. २६/२८)

१६१. बंधी शत प्रथम उदेशको रे, चिहुं सौ सित्तरमीं ढाल कै।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
सुख संपति रे 'जय-जश' सुविशाल कै।।

षड्विंशतितमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।२६।१।।

---

*लय : सुरतरु नीं परैं दोहिलो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४७१

दूहा

१. प्रथम उद्देशक नैं विषे, जीवादिक पणवोस।
स्थानक द्वार इग्यार करि, आख्या अधिक जगीस ।।

२. द्वितीय उद्देशे पिण तेहिज, कहियै पद चउवीस।
धुर पद जीव तणों तिहां, कहिवो नहीं जगीस ।।

अनन्तरोपपन्नक : बन्ध-अबन्ध

*प्रश्नोत्तर परवरा, बंधी शतक नैं द्वितीय उदेश ।। (ध्रुपदं)

३. प्रथम समय नां ऊपनां, तिके नारक हे भगवान !
पापकर्म स्यूं बांधियो ?
तिमहिज चिहुं भंग प्रश्न पिछान ।।

४. जिन कहै कोइक नारकी, गोयम प्रथम द्वितीय भंग दोय।
बांध्यो बांधै बांधस्यै, बांध्यो बांधै नहि बांधस्यै सोय ।।

सोरठा

५. पापकर्म पूछेह, ते मोह कर्म अपेक्षया।
प्रथम समय नों जेह, अनंतरोत्पन्न नारकी ।।

६. मोह लक्षण अघ वादि, अबंधपणुं नहि छै तिहां।
सूक्ष्मसंपरायादि, मोह अबंधक छै जिहां ।।

७. ते सूक्ष्मसंपरायादि, नारक विषे हुवै नहीं।
तिण कारण संवादि, चरम भंग बे नहि तिहां ।।

८. *जे सलेशी नारकी, प्रभु ! प्रथम समय उत्पन्न।
पापकर्म स्यूं बांधियो ? गोयम इत्यादि प्रश्न कथन्न ।।

९. जिन कहै धुर भंग बे हुवै, गोयम ! इम सगलै अवलोय।
कृष्ण लेश्यादिक पद विषे,
गोयम ! प्रथम द्वितीय भंग दोय ।।

वा०—लेश्यादि पद नैं विषे सामान्य थकी नारकादिक नैं पिण हुवै जे पद प्रथम समयोत्पन्न नरकादि नैं अपर्याप्तकपणैं करी न हुवै ते पद प्रथम समयोत्पन्न नैं न पूछणा ते देखाड़तो थको कहै छै—

१०. नवरं इतरो विशेष छै, गोयम ! मिश्रदृष्टि मन जोय।
वचन जोग नहि पूछवा, गोयम ! प्रथम समय नहि होय ।।

वा०—प्रथम उद्देशके समुच्चय नारकी नैं मिश्रदृष्टि १, मन जोग २, वचन जोग ३—ए त्रिहुं बोल कह्या छै। इहां ए न कहिवा। यद्यपि नारकी नैंए त्रिहुं पद छै तो पिण प्रथम समयोत्पन्नपणैं करी ते नारकी नैं ते त्रिहुं बोल नहीं।

---

१. प्रथमोद्देशके जीवादिद्वारे एकादशकप्रतिबद्धैर्नवभिः पापकर्मादिप्रकरणैर्जीवादीनि पञ्चविंशति-जीवस्थानानि निरूपितानि (वृ. प. ९३४)

२. द्वितीयेऽपि तथैव तानि चतुर्विंशतिर्निरूप्यन्ते (वृ. प. ९३४)

३. अणंतरोववन्नए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा तहेव।

४. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी, पढम-बितिया भंगा। (श. २६/२९)

५,६. इहाद्यावेव भङ्गौ अनन्तरोपपन्ननारकस्य मोह-लक्षणपापकर्माबन्धकत्वासम्भवात्, तद्धि सूक्ष्म-सम्परायादिषु भवति, तानि च तस्य न संभवन्तीति। (वृ. प. ९३५)

८. सलेस्से णं भंते ! अणंतरोववन्नए नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा।

९. गोयमा ! पढम-बितिया भंगा। एवं खलु सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा,

वा.—लेश्यादिपदेषु, एतेषु च लेश्यादिपदेषु सामान्यतो नारकादीनां संभवन्त्यपि, यानि पदान्यनन्तरोत्पन्ननारकादीनामपर्याप्तकत्वेन न सन्ति तानि तेषां न प्रच्छनीयानीति दर्शयन्नाह— (वृ. प. ९३५)

१०. नवरं—सम्मामिच्छत्तं मणजोगो वइजोगो य न पुच्छिज्जइ।

वा.—तत्र सम्यग्मिथ्यात्वाद्युक्तत्रय यद्यपि नारकाणामस्ति तथाऽपीहानन्तरोत्पन्नतया तेषां तन्नास्तीति न पृच्छनीयं, एवमुत्तरत्रापि। (वृ. प ९३५)

---

*लय : जीवा ! तूं तो भोलो रे प्राणी इम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ते भणी ए त्रिहुं बोल नहीं पूछवा। इम आगल पिण जाणवा।

११. एवं जावत जाणवुं, गोयम ! थणियकुमार लगेह।
बोल पावै जे एह में, तिके नारकि नीं परै लेह।।

११. एवं जाव थणियकुमाराणं।

वा०—प्रथम उदेशे समुच्चय नारकी नैं ३५ बोल कह्या। अनैं इहां प्रथम समयोत्पन्न नारकी नैं मिश्रदृष्टि १, मन जोग २, वचन जोग ३—ए तीन बोल वर्जी शेष ३२ बोल कहिवा। अनै प्रथम उद्देशे समुच्चय भवनपति में ३७ बोल कह्या। नारकी में ३५ बोल पावै। ते मांहिलो नपुंसक वेद वर्जी ३४ बोल अनै तेजूलेशी १, स्त्री वेद २, पुरुष वेद ३—ए तीन बोल घाल्या। एवं ३७ बोल समुच्चय पावै। ते ३७ बोल मांहिलो मिश्रदृष्टि १, मन जोग २, वचन जोग ३—ए तीन बोल वर्जी शेष ३४ बोल प्रथम समयोत्पन्न भवनपति में कहिवा।

१२. धुर समय विकलेंद्रिय जीव नैं,
गोयम ! वचन जोग न भणेह।
प्रथम समय नां ऊपनां, तिण वेला वचन न कहेह।।

१२. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं वइजोगो न भण्णइ।

वा०—समुच्चय बेइंद्री में प्रथम उदेशे ३१ बोल कह्या। ते मांहिला वचन जोग वर्जी शेष ३० बोल इहां प्रथम समयोत्पन्न में कहिवा। ते माटै वचन जोग वर्ज्यो।

१३. धुर समय पंचेंद्री तिर्यंच नैं, गोयम ! मिश्रदृष्टि अवधिज्ञान।
विभंग जोग मन वच नहीं, ए तो पंच न भणवा जान।।

१३. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं पि सम्मामिच्छत्तं, ओहिनाणं, विभंगनाणं, मणजोगो, वइजोगो—एयाणि पंच न भण्णंति।

वा—समुच्चय पंचेंद्री तिर्यच में प्रथम उदेशे ४० बोल कह्या। ते मांहिला मिश्रदृष्टि १, अवधिज्ञान २, विभंगअज्ञान ३, मन जोग ४, वचन जोग—ए ५ बोल वर्जी शेष ३५ बोल इहां प्रथम समयोत्पन्न में कहिवा।

१४. प्रथम समयोत्पन्न मनुष्य नैं गोयम ! अलेशी समामिथ्यात।
मनपज्जव केवल वली गोयम ! विभंगअज्ञान विख्यात।।
१५. नोसण्णोवउत्त अवेदगे, गोयम ! अकषाई मन जोय।
वचन जोग अजोगी वली, गोयम ! पद ग्यारै नहिं होय।।

१४,१५. मणुस्साणं अलेस्स-सम्मामिच्छत्त-मणपज्जवनाण-केवलनाण-विभंगनाण-नोसण्णोवउत्त-अवेदग-अकसाय-मणजोग-वइजोग-अजोगि—एयाणि एक्कारस पदाणि न भण्णंति।

वा० समुच्चय मनुष्य में प्रथम उदेशे ४७ बोल कह्या। ते मांहिला अलेशी आदि ११ बोल वर्जी शेष ३६ बोल इहां प्रथम समयोत्पन्न मनुष्य में कहिवा।

१६. वाणव्यंतर नैं ज्योतिषी, गोयम ! वैमानिक नैं ताहि।
जिम नारक तिम जाणवा, तिमहिज त्रिण पद भणवा नांहि।।

१६. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणियाणं जहा नेरइयाणं तहेव ते तिण्णि न भण्णंति।

वा०—समुच्चय व्यंतर में प्रथम उदेशे बोल ३७ कह्या। ते मांहिला मिश्रदृष्टि १, मन जोग २, वचन जोग ३—ए ३ बोल वर्जी शेष ३४ बोल इहां प्रथम समयोत्पन्न व्यंतर में कहिवा। अनैं समुच्चय ज्योतिषी में प्रथम उदेशे ३४ बोल कह्या ते मांहिला ए ३ बोल वर्जी शेष ३१ बोल इहां प्रथम समयोत्पन्न ज्योतिषी में कहिवा। अनैं वैमानिक प्रथम समयोत्पन्न में पिण ए तीन बोल न कहिणा।

१७. सर्व नैं जे शेष स्थानके, इतरै जेह थकी शेष स्थान।
सर्वत्र दोय भांगा हुवै, ए तो प्रथम द्वितीय पहिछाण।।
१८. प्रथम समय नां ऊपनां गोयम ! एकेंद्रिय नैं जोय।
सर्वत्र स्थानक नैं विषे गोयम ! प्रथम द्वितीय भंग दोय।।

१७. सव्वेसिं जाणि सेसाणि ठाणाणि सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा।

१८. एगिंदियाणं सव्वत्थ पढम-बितिया भंगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिवै आठ कर्म आश्रयी जूओ-जूओ कहै छै तिहां प्रथम आउखो वर्जी सात कर्म आश्रयी जूओ-जूओ कहै छै—

१९. जिम पापकर्म विषे आखियो, तिम दंडक ज्ञानावरणी ताय ।
इम आउखो वर्जी करी, यावत कहिवुं दंडक अंतराय ।।

१९. जहा पावे एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ, एवं आउयवज्जेसु जाव अंतराइए दंडओ । (श. २६/३०)

हिवै आउखा कर्म आश्रयी कहै छै—

२०. प्रथम समय नां ऊपनां, तिके नारक हे भगवान !
आयु कर्म स्यूं बांधियो ? कांइ प्रश्न इत्यादिक जान ।।
२१. जिन कहै पूर्वे बांधियो, कांइ बांधै नहीं वर्त्तमान ।
अनागते फुन बांधस्यै, गोयम ! तृतीय भंग इक जान ।।

२०. अणंतरोववन्नए णं भंते ! नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।
२१. गोयमा ! बंधी न बंधइ बंधिस्सइ । (श. २५/३१)

२२. नारक सलेशी धुर समय नैं, स्वामी ! आयु कर्म नों अंग ।
स्यूं बांध्यो ? इत्यादिक पूछियां गोयम ! इमहिज तीजो भंग ।।
२३. इम जाव अणागारोवउत्त नैं, गोयम ! सर्वत्र सगलै स्थान ।
तृतीय भंग कहिवुं इहां गोयम ! आयु कर्म आश्रयी जान ।।
२४. एवं मनुष्य वर्जी करी, गोयम ! जाव वैमानिक अंत ।
मनुष्य नैं सर्व स्थानक विषे, गोयम ! तृतीय तुर्य भंग हुंत ।।

२२. सलेस्से णं भंते ! अणंतरोववन्नए नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी ? एवं चेव ततिओ भंगो ।
२३. एवं जाव अणागारोवउत्ते । सव्वत्थ वि ततिओ भंगो ।
२४. एवं मणुस्सवज्जं जाव वेमाणियाणं । मणुस्साणं सव्वत्थ ततिय-चउत्था भंगा,

सोरठा

२५. प्रथम समय नां ताहि, मनुष्य ऊपनां आयु प्रति ।
बांध्यो बांधै नांहि, अचरम तनु फुन बांधस्यै ।।
२६. चरमशरीरी ताहि, बांध्यो नैं बांधै नथी ।
वलि बांधस्यै नांहि, तुर्य भंग इण न्याय ह्वै ।।

२५. यतोऽनन्तरोत्पन्नो मनुष्यो नायुर्बध्नाति भन्त्स्यति पुनः (वृ. प. ९३५)
२६. चरमशरीरस्त्वसौ न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति । (वृ. प. ९३५)

२७. *नवरं कृष्णपाक्षिक विषे गोयम ! तृतीय भंग इक पाय ।
मनुष्य में शेष बोलां विषे, गोयम ! तृतीय तुर्य भंग थाय ।।

२७. नवरं—कण्हपक्खिएसु ततिओ भंगो ।

२८. सर्व नारकादि जीव नैं, जिके पापकर्म दंडकेह ।
नानात्व भेद कह्यं अछै, तेहिज आयु विषे पिण लेह ।।

२८. सव्वेसिं नाणत्ताइं ताइं चेव । (श. २६/३२)

वा०—सर्व नारकादिक जीव नैं जे पाप कर्म दंडक नैं विषे कह्यं नानापणुं तेहिज आयु दंडक नैं विषे पिण इति ।

वा.—नारकादिजीवानां यानि पापकर्मदण्डकेऽभिहितानि नानात्वानि तान्येवायुर्दण्डकेऽपीति । (वृ. प. ९३५)

२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! ते स्वामजी,
बंधी शतक नों द्वितीय उदेश ।
अनंतरोत्पन्न आखियो, हिवै परंपरोत्पन्न कहेस ।।

२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २६/३३)
द्वितीयोद्देशकोऽनन्तरोपपन्नकान्नारकादीनाश्रित्योक्तस्तृतीयस्तु परम्परोपपन्नकानाश्रित्योच्यते (वृ. प. ९३५)

षड्विंशतितमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।२६।२।।

परम्परोपपन्नक : बन्ध-अबन्ध

३०. बे आदि समय नां ऊपनां, स्वामी ! परंपरोत्पन्न जेह ।
नारक पापकर्म स्यूं बांधियो ? गोयम इत्यादि प्रश्न पूछेह ।।
३१. जिन कहै कोयक बांधियो, गोयम ! इम धुर भांगा बेय ।
बांध्यो बांधै बांधस्यै, बांध्यो बांध्यै न बांधस्यै केय ।।
३२. इम जिम प्रथम उदेशके, कह्या जीव नारकादि साथ ।
तिमहिज तृतीय उदेशके, कहिवो परंपरोत्पन्न संघात ।

३०. परंपरोववन्नए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।
३१. गोयमा ! अत्थेगतिए पढम-बितिया ।
३२. एवं जहेव पढमो उद्देसओ तहेव परंपरोववन्नएहि वि उद्देसओ भाणियव्वो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

३३. प्रथम उदेशक मांहि, जीव नारकादि विषय ।
केवल आख्यो ताहि, पंचवीस पद जूजुआ ।।

३४. इहां नारकी आदि, च्यार बीस पद हीज ते ।
कहिवा विध संवादि, तेहिज कहियै छै हिवै ।।

३५. *कह्या नारक आदि देइ करी, तिमहिज नव दंडक संगृहीत ।
समुच्चय पापकर्म नों प्रथम हि, ज्ञानावरणादि आठ प्रतीत ।।

३६. इम नव दंडक पूर्वे कह्या, गोयम ! तिण करि युक्त पिछाण ।
कहिवो एह उदेशके, गोयम ! वारू रीत विनाण ।।

वा०—नेरइयाओत्ति नारकादिक इहां कहिवा इत्यर्थः । तहेव नव दंडग-संगहिओत्ति पापकर्म ज्ञानावरणादि प्रतिबद्धा जे नव दंडक पूर्वे कह्या तेणे करी संगृहीत युक्त जे उदेशक ते तथा ।

३७. आठूं कर्म प्रकृति तणीं, जिका वक्तव्यता कही जास ।
हीणी नहीं अधिकी नहीं, तिका वक्तव्यता कहिवी तास ।।

३८. जावत वैमाणिक तणें, गोयम ! अनाकार उपयोग ।
तिहां लगै कहिवो सहु, सेवं भंते ! सेवं भंत ! जोग ।।

३९. बंधी छावीसम शतक नों, वारू तृतीय उदेशक ताम ।
अर्थ थकी ए आखियो, वारू जिन वच अति अभिराम ।।

४०. चिहुं सौ एकोत्तरमीं भली, आखी ढाल रसाल उदार ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, नित्य 'जय-जश' मंगलाचार ।।

षड्विंशतितमशते तृतीयोद्देशकार्थः ।।२६।३।।

३३. 'जहेव पढमो उद्देसओ' त्ति जीवनारकादिविषयः, केवलं तत्र जीवनारकादिपञ्चविंशतिः पदान्यभिहितानि (वृ. प. ९३६)

३४. इह तु नारकादीनि चतुर्विंशतिरेवेति, एतदेवाह— (वृ. प. ९३६)

३५. नेरइयाईओ तहेव नवदंडगसंगहिओ ।

३६. अट्ठण्ह वि कम्मप्पगडीणं जा जस्स कम्मस्स वत्तव्वया सा तस्स अहीणमतिरित्ता नेयव्वा ।

वा—'नेरइयाइओ' त्ति नारकादयोऽत्र वाच्या इत्यर्थः, 'तहेव नवदंडगसंगहिओ' त्ति पापकर्मज्ञानावरणादिप्रतिबद्धा ये नव दण्डकाः प्रागुक्तास्तैः सङ्गृहीतो—युक्तो य उद्देशकः स तथा । (वृ० प० ९३६)

३७. जाव वेमाणिया अणागारोवउत्ता । (श. २६।३४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २६।३५)

ढाल : ४७२

अनन्तरावगाढ : बन्ध-अबन्ध

दूहा

१. प्रथम समय जे नारकी, अवगाह्यो जे खेत ।
अनंतरोवगाढा तिके, कहियै नारक तेथ ।।

२. अनंतरोवगाढक प्रभु ! नारक जेह निहाल ।
पापकर्म स्यूं बांधियो ? प्रश्न इत्यादिक भाल ।।

३. जिन कहै केयक इम जिमज, अनंतरोत्पन्न जेह ।
नव दंडक संगृहीत जे, कह्यो उदेशक तेह ।।

४. प्रथम समय अवगाढ पिण, नव दंडक संगृहीत ।
हीण नहीं अधिको नहीं, भणिवो तिमज सुरीत ।।

२. अणंतरोगाढए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।

३. गोयमा ! अत्थेगतिए एवं जहेव अणंतरोववन्नएहिं नवदंडगसंगहिओ उद्देसो भणिओ ।

४. तहेव अणंतरोगाढएहि वि अहीणमतिरित्तो भाणियव्वो ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. नारक आदि देइ करी, वैमानिक लग ताम ।
कहिवा पद चउवीस ए, सेवं भंते ! स्वाम ।।

वा०—इम चतुर्थ आदि एकादशांत लगै नवरं 'अणंतरोगाढे' त्ति उत्पत्ति समय अपेक्षया अत्र अणंतरोवगाढपणुं जाणवो अन्यथा अनंतरोत्पन्न अनैं अनंतरावगाढ नैं समान स्वरूपपणुं न हुवै ।

५. नेरइयादीए जाव वेणाणिए । (श. २६।३६)
सेवं भंते ! सेवं भंते । त्ति । (श. २६।३७)

वा०—'अणंतरोगाढे' त्ति उत्पत्तिसमयापेक्षयाऽनानन्तरावगाढत्वमवसेयं, अन्यथाऽनन्तरोत्पन्नानन्तरावगाढयोनिविशेषता न स्यात्, (वृ. प. ९३७)

६. षटवीसम बंधी शतक, तुर्य उदेशक तास ।
अर्थ थकी ए आखियो, पंचम हिवै प्रकाश ।।

षड्विंशतितमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।२६।४।।

परम्परावगाढ : बन्ध-अबन्ध

७. बे आदि समय नां नारकी, अवगाह्यो जे खेत ।
परपरोवगाढक तिके, कहियै छै हिव एथ ।।

८. परंपरोवगाढक प्रभु ! जेह नारकै जान ।
पापकर्म स्यूं बांधियो ? प्रश्न इत्यादि पिछान ।।

८. परंपरोगाढए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी ?

९. जिम परंपरोत्पन्न साथ हि, तृतीय उदेशक ख्यात ।
तेहिज संपूर्ण इहां, भणिवो ए अवदात ।।

९. जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो सो चेव निरवसेसो भाणियव्वो । (श. २६।३८)

१०. सेवं भंते ! स्वामजी, बंधी शतके ताम ।
पंचमुदेशक अर्थ थी, आख्यो अति अभिराम ।।

१०. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २६।३९)

षड्विंशतितमशते पंचमोद्देशकार्थः ।।२६।५।।

अनन्तराहारक : बन्ध-अबन्ध

*बंधी शतक तुम्हें सांभलो ।। (ध्रुपदं)

११. प्रथम समय जे नारकी, आहार लियै ते अनंतर आहार कै ।
प्रभु ! पापकर्म स्यूं बांधियो ?
इत्यादिक जे प्रश्न प्रकार कै ।।

११. अणंतराहारए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा । (वृ. प. ९३७)
'अनंतराहारए' त्ति आहारकत्वप्रथमसमयवर्त्ती

१२. जिन भाखै जिमहीज जे, अनंतरोत्पन्न साथ उदेश कै ।
आख्यो छै तिमहीज ए, समस्तपणें कहिवो सुविशेष कै ।।

१२. एवं जहेव अणंतरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसं । (श. २६।४०)

१३. सेवं भंते ! स्वामजी ! बंधी शतक नुं षष्ठमुद्देश कै ।
अर्थ थकी इम आखियो, श्रीजिन वचनामृत सुविशेष कै ।।

१३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २६।४१)

षड्विंशतितमशते षष्ठोद्देशकार्थः ।।२६।६।।

परम्पराहारक : बन्ध-अबन्ध

१४. बे आदि समयवर्त्ती नारकी,
आहार लियै ते परंपर आहार कै ।
प्रभु ! पापकर्म स्यूं बांधियो ?
इत्यादिक जे प्रश्न प्रकार कै ।।

१४. परंपराहारए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा । परम्पराहारकस्त्वाहारकत्वस्य द्वितीयादिसमयवर्त्ती, (वृ. प. ९३७)

१५. जिन भाखै जिमहीज जे, परंपरोत्पन्न साथ उदेश कै ।
आख्यो छै तिमहीज ए, समस्तपणें कहिवो सुविशेष कै ।।

१५. गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसो भाणियव्वो । (श. २६।४२)

१६. सेवं भंते ! स्वामजी ! बंधी शतक नों सप्तमुद्देश कै ।
अर्थ थकी ए आखियो, वारू जिन वच अधिक विशेष कै ।।

१६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २६।४३)

षड्विंशतितमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।२६।७।।

---

*लय : हूं बलिहारी जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तरपर्याप्तक : बन्ध-अबन्ध

१७. प्रथम समयवर्त्ती नारकी, अनंतर पर्याप्तक जेह कै ।
प्रभु ! पापकर्म स्यूं बांधियो ?
इत्यादिक जे प्रश्न पूछेह कै ।।
१८. जिन भाखै जिमहीज जे, अनंतरोत्पन्न साथ उदेश कै ।
आख्यो छै तिमहीज ए, समस्तपणैं कहिवो सुविशेष कै ।।
१९. सेवं भंते ! स्वामजी ! बंधी शतक नों अष्टमुद्देश कै ।
अर्थ थकी ए आखियो, वारू जिन वच अधिक विशेष कं ।।

षड्विंशतितमशते अष्टमोद्देशकार्थः ।।२६।८।।

१७. अणंतरपज्जत्तए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा । (वृ. प. ९३७)
'अणतरपज्जत्त' त्ति पर्याप्तकत्वप्रथमसमयवर्ती,
१८. गोयमा ! जहेव अणंतरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसं । (श. २६।४४)
१९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २६।४५)

परम्परपर्याप्तक : बन्ध-अबन्ध

२०. द्वितीयादि समयवर्त्ती नारकी, परंपर पर्याप्तक जेह कै ।
प्रभु ! पाप कर्म स्यूं बांधियो ?
इत्यादिक जे प्रश्न पूछेह कै ।
२१. जिन भाखै जिमहीज जे, परंपरोत्पन्न साथ उदेश कै ।।
आख्यो छै तिमहीज ए, समस्तपणैं कहिवा सुविशेष कै ।।
२२. सेवं भंते ! स्वामजी ! बंधी शतक नों नवम उदेश कै ।
अर्थ थकी ए आखियो, वारू जिन वच अधिक विशेष कै ।।

षड्विंशतितमशते नवमोद्देशकार्थः ।।२६।९।।

२०. परंपरपज्जत्तए णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।
२१. गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव निरवसेसो भाणियव्वो । (श. २६।४६)
२२. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ । (श. २६।४७)

चरम : बन्ध-अबन्ध

२३. जे वलि ते भव नहिं पामस्यै,
तेह चरम नारक भगवान ! कै ।
पापकर्म स्यूं बांधियो ? इत्यादिक जे प्रश्न पिछान कै ।।
२४. जिन भाखै तिमहीज जे, परंपरोत्पन्न साथ उदेश कै ।
आख्यो छै तिमहीज ए, समस्तपणैं कहिवो सुविशेष कै ।।

२३. चरिमे णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी पुच्छा ।
'चरमे णं भंते ! नेरइए' त्ति, इह चरमो यः पुनस्तं भवं न प्राप्स्यति, (वृ. प. ९३७)
२४. गोयमा ! एवं जहेव परंपरोववन्नएहिं उद्देसो तहेव चरिमेहिं निरवसेसं । (श. २६।४८)

सोरठा

२५. यद्यपि ए अवधार, अविशेष करिके कथन ।
कीधो सूत्र मझार, तथापि विशेष जाणवो ।।
२६. चरम उदेशक बात, परंपरोत्पन्न सारिखो ।
कहिवूं इहां अवदात, निर्विशेष करिनैं तिको ।।
२७. परंपरोवन्न उद्देश, प्रथम उदेशकवत अछै ।
तिहां मनुष्य में एस, आयु कर्म अपेक्षया ।।
२८. सामान्य थी सुविचार, भांगा च्यार कह्या तिहां ।
इहां चरम मनु धार, आयु आश्रयी तुर्य भंग ।।
२९. चरम मनुष्य ए ताहि, पूर्वे आयू बांधियो ।
हिवड़ां बांधै नांहि, अनागते नहिं बांधस्यै ।।

२५. इह च यद्यप्यविशेषेणातिदेशः कृतस्तथाऽपि विशेषोऽवगन्तव्यः, (वृ. प. ९३७)
२६. तथाहि—चरमोद्देशकः परम्परोद्देशकवद्वाच्य इत्युक्तं, (वृ. प. ९३७)
२७. परम्परोद्देशकश्च प्रथमोद्देशकवत्, तत्र च मनुष्यपदे आयुष्कापेक्षया (वृ. प. ९३७)
२८. सामान्यतश्चत्वारो भङ्गा उक्ताः, तेषु च चरममनुष्यस्यायुष्ककर्म्मबन्धमाश्रित्य चतुर्थ एव घटते, (वृ. प. ९३७)
२९. यतो यश्चरमोऽसावायुर्बद्धवान् न बध्नाति न च भन्त्स्यतीति, (वृ. प. ९३७)

---

*लय : हूं बलिहारी जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—अन्यथा चरमपणुं हीज न हुवै। इम अन्यत्र स्थानके पिण विशेष जाणवूं।

३०. सेवं भंते ! स्वामजी, बंधी शतक नों दशम उद्देश कै।
अर्थ थकी ए आखियो, जिन वच श्रद्धा मिटियै कलेश कै॥

षड्विंशतितमशते दशमोद्देशकार्थः ॥२६।१०॥

अचरम : बन्ध-अबन्ध

३१. फुन जे तेहिज भव पामस्यै,
ते अचरम नारक हे भगवान ! कै।
पापकर्म स्यूं बांधियो ? इत्यादिक जे प्रश्न पिछान कै॥

३२. जिन कहै कोइक नारकी, जिमहिज प्रथम उदेशे ख्यात कै।
तिमहीज सर्वत्र स्थानके, भणवा बे धुर भंग संजात कै॥

३३. जाव तिर्यंच पंचेंद्रिय, तिहां लगै कहिवूं अधिकार कै।
हे प्रभु ! अचरम मनुष्य स्यूं,
पापकर्म बंध ? प्रश्न प्रकार कै॥

३४. जिन कहै कोइक बांधियो, बांधै छै वलि बांधस्यै तेह कै।
कोइक बांध्यो बांधै अछै, अनागते नहीं बांधस्यै जेह कै॥

३५. कोइक बांध्यो न बांधै, आगमिक फुन बांधस्यै सोय कै।
पिण चउथो भांगो हुवै नथी,
तुर्य भंग मनु चरम में होय कै॥

३६. सलेशी अचरम मनुष्य स्यूं,
पापकर्म प्रति हे भगवान ! कै।
बांध्यो बांधै बांधस्यै ? इत्यादिक जे प्रश्न पिछान कै॥

३७. इमहिज तुर्य भांगा विना, भणवा जे धुर भांगा तीन कै।
इम जिम प्रथम उदेशके,
भाख्यो छै तिम कहिवुं सुचीन कै॥

३८. नवरं बीस पदे तिहां, जेह विषे कह्या भांगा च्यार कै।
तेह विषे त्रिण भंग इहां, तुर्य भंग विण धुर रा धार कै॥

सोरठा

३९. कह्या तिहां पद बीस, जीव सलेशी शुक्ल ए।
पाक्षिक-शुक्ल जगीस, सम्यकदृष्टि पंचमो॥

४०. समुच्चय ज्ञानी सोय, मति-श्रुत-ज्ञानी अवधि फुन।
मनपज्जव अवलोय, नोसण्णोवउत्ते वली॥

४१. अवेद नैं सकषाय, लोभकषाई चवदमो।
सजोगी कहिवाय, मन-जोगी वच काय फुन॥

४२. सागार नैं अनागार, बीस पदे भंग चिहुं तिहां।
इहां अचरम मनु धार, तिणसूं धुर भंग त्रिणज ह्वै॥

*लय : हूं बलिहारी जादवां

वा०—अन्यथा चरमत्वमेव न स्यादिति, एवमन्यत्रापि विशेषोऽवगन्तव्य इति, (वृ. प. ९३७)

३०. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ। (श. २६।४९)

३१. अचरिमे णं भंते ! नेरइए पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा।
अचरमो यस्तं भव पुनः प्राप्स्यति, (वृ. प. ९३७)

३२. गोयमा ! अत्थेगइए एवं जहेव पढमोद्देसए, पढम-बितिया भंगा भाणियव्वा सव्वत्थ

३३. जाव पंचिदियतिरिक्खजोणियाणं। (श० २३।५०)
अचरिमे णं भंते ! मणुस्से पावं कम्मं किं बंधी—पुच्छा।
तत्राचरमोद्देशके पञ्चेन्द्रियतिर्यगन्तेषु पदेषु पापं कर्माश्रित्याद्यौ भङ्गकौ, (वृ. प. ९३७)

३४. गोयमा ! अत्थेगतिए बंधी बंधइ बंधिस्सइ, अत्थेगतिए बंधी बंधइ न बंधिस्सइ,

३५. अत्थेगतिए बंधी न बंधइ बंधिस्सइ। (श. २६।५१)
मनुष्याणां तु चरमभङ्गकवर्जास्त्रयो, यतश्चतुर्थश्चरमस्येति, (वृ. प. ९३७)

३६. सलेस्से णं भंते ! अचरिमे मणुस्से पावं कम्मं किं-बंधी ?

३७. एवं चेव तिण्णि भंगा चरमविहूणा भाणियव्वा एवं जहेव पढमुद्देसे,

३८. नवरं—जेसु तत्थ वीससु चत्तारि भंगा तेसु इह आदिल्ला तिण्णि भंगा भाणियव्वा चरिमभंगवज्जा।

३९. वीससु पएसु'त्ति, तानि चैतानि—जीव १ सलेश्य २ शुक्ललेश्य ३ शुक्लपाक्षिक ४ सम्यग्दृष्टि ५ (वृ. प. ९३७)

४०. ज्ञानि ६ मतिज्ञानादिचतुष्टय १० नोसञ्ज्ञोपयुक्त ११ (वृ. प. ९३७)

४१. अवेद १२ सकषाय १३ लोभकषाय १४ सयोगि १५ मनोयोग्यादित्रय १८ (वृ. प. ९३७)

४२. साकारोपयुक्तानाकारोपयुक्त १९, २० लक्षणानि, एतेषु च सामान्येन भङ्गकचतुष्कसम्भवेऽप्यचरमत्वान्मनुष्यपदे चतुर्थो नास्ति, चरमस्यैव तद्भावादिति। (वृ. प. ९३७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. *अलेशी नैं केवली, अजोगी नहीं पूछवा तीन कै ।
ए त्रिण चरम विषेज ह्वै,
शेष तिमहिज कहिवाज सुचीन कै ।।

४३. अलेस्से केवलनाणी य अजोगी य—एए तिण्णि वि न पुच्छिज्जंति, सेसं तहेव ।
'अलेस्से' इत्यादि, अलेश्यादयस्त्रयश्चरमा एव भवन्तीतिकृत्वेह न प्रष्टव्याः । (वृ. प. ९३७)

४४. वाणव्यंतर नैं ज्योतिषी, वैमानिक ए त्रिण नैं ताम कै ।
जेम कह्यं छै नारकी, तिमहिज ए त्रिण कहिवा तमाम कै ।।

४४. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिए जहा नेरइए । (श. २६।५२)

अचरम के संदर्भ में आठ कर्म : बन्ध-अबन्ध

४५. स्यं प्रभु ! अचरम नारकी, ज्ञानावरणी कर्म विचार कै ।
बांध्यो बांधै बांधस्यै ? इत्यादिक जे प्रश्न उचार कै ।।

४५. अचरिमे णं भंते ! नेरइए नाणावरणिज्जं कम्मं किं बंधी - पुच्छा ।

४६. जिन कहै पापकर्म कह्यु,
तिमहिज नवरं मनुष्य विषेह कै ।
सकषाई लोभकषाय में, प्रथम द्वितीय भंग पावै बेह कै ।।

४६. गोयमा ! एवं जहेव पावं, नवरं—मणुस्सेसु सकसाईसु लोभकसाईसु य पढम-बितिया भंगा,

सोरठा

४७. पापकर्म दंडकेह, सकसायी लोभ-कषाइ में ।
धुर भंग त्रिण तिहां लेह, इहां आदि धुर भंग बे ।।

४७. पापकर्मदण्डके सकषायलोभकषायादिष्वाद्यास्त्रयो भङ्गका उक्ता इह त्वाद्यौ द्वावेव, (वृ. प. ९३७)

४८. सकसाई लोभकसाइ, ज्ञानावरणी कर्म नैं ।
अणबांधी नैं ताहि, पुनः बंधगा नहिं हुवै ।।

४८. यत एते ज्ञानावरणीयमबद्ध्वा पुनर्बन्धका न भवन्ति, (वृ. प. ९३७)

४९. सकसाई अवलोय, ज्ञानावरणी कर्म नां ।
सदा बंधगा होय, तृतीय भंग नहिं ते भणी ।।

४९. कषायिणां सदैव ज्ञानावरणबन्धकत्वात्, (वृ. प. ९३७)

५०. तुर्य भंग फुन तास, अचरमपणां थकीज ते ।
सकसाई नैं जास, निश्चै करिकै ह्वै नहीं ।।

५०. चतुर्थस्त्वचरमत्वादेव न भवतीति, (वृ. प. ९३७)

५१. *शेष अठार पद विषे, चरम भंग विण भांगा तीन कै ।
शेष तिमज कहिवो सहु, जावत वैमानिक लग चीन कै ।।

५१. सेसा अट्ठारस चरमविहूणा, सेसं तहेव जाव वेमाणियाणं ।

५२. दर्शणावरणी कर्म पिण, कहिवुं समस्तपणें इमहीज कै ।
ज्ञानावरणी नीं परै, वारू श्री जिन वच सलहीज कै ।।

५२. दरिसणावरणिज्जं पि एवं चेव निरवसेसं ।

५३. वेदनी सगलै स्थानके, भंग प्रथम द्वितीयो कहिवाय कै ।
जावत वैमानिक लगै, तृतीय तुर्य भंग पावै नांय कै ।।

५३. वेयणिज्जे सव्वत्थ वि पढम-बितिया भंगा जाव वेमाणियाणं,
'वेयणिज्जे सव्वत्थ पढमबीय' त्ति, तृतीयचतुर्थयोरसम्भवात्, (वृ. प. ९३७)

सोरठा

५४. कर्म वेदनी ताहि, अबंधका थइ नैं वली ।
तसु बंधग ह्वै नांहि, तृतीय भंग नहिं ते भणी ।।

५४. एतयोर्हि प्रथमः प्रागुक्तयुक्तेर्न संभवति (वृ. प. ९३७)

५५. तुर्य भंग अवलोय, अजोगो नैं ईज ह्वै ।
ते माटै ए जोय, भंग चतुर्थो पिण नथी ।।

५५. द्वितीयस्त्वयोगित्व एव भवतीति । (वृ. प. ९३७)

५६. *नवरं मनुष्य विषे इहां, अलेशी नैं केवली जोय कै ।
अजोगी ए त्रिहुं नथी, ए तीनूं अचरम नहिं होय कै ।।

५६. नवरं—मणुस्सेसु अलेस्से केवली अजोगी य नत्थि । (श. २६।५३)

५७. स्यूं प्रभु ! अचरम नारकी, कर्म मोहणी बांध्यो सोय कै ।
बांधै नैं फुन बांधस्यै ? इत्यादिक पूछा अवलोय कै ।।

५७. अचरिमे णं भंते ! नेरइए मोहणिज्जं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।

५८. जिन भाखै सुण गोयमा ! पापकर्म जिम पूरव ख्यात कै ।
तिमहिज कहिवूं सर्व ही, जाव वैमानिक लग अवदात कै ।।

५८. गोयमा ! जहेव पावं तहेव निरवसेसं जाव वेमाणिए । (श. २६।५४)

*लय : हूं बलिहारी जादवां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. अचरम नारक स्यूं प्रभु ! आयु कर्म बांध्यो पूछेह कै ।
जिन भाखै सुण गोयमा ! प्रथम तृतीय भंग पावै बेह कै ।।

५९. अचरिमे ण भंते ! नेरइए आउयं कम्मं किं बंधी—पुच्छा ।
गोयमा ! पढम-ततिया भंगा ।

सोरठा

६०. धुर भंग प्रसिद्ध पिछाण, द्वितीय भंग पावै नथी ।
अचरम नारक जाण, नरकायु फुन बांधस्यै ।।

६०. तत्र प्रथमः प्रतीत एव द्वितीयस्त्वचरमत्वान्नास्ति, अचरमस्य हि आयुर्बन्धोऽवश्यं भविष्यत्यन्यथाऽचरमत्वमेव न स्यात्, (वृ. प. ९३७)

६१. जिम दूजो भंग नांय, अचरम नारक नें विषे ।
तिमज तुर्य नहिं पाय, ते ह्वै चरम-शरीरके ।।

६१. एवं चतुर्थोऽपि, (वृ. प. ९३८)

६२. पूर्वे बांध्यो सोय, अबंध काल बांधै नथी ।
वलि बांधस्यै जोय, अचरम माटै तृतीय इम ।।

६२. तृतीये तु न बध्नात्यायुस्तदबन्धकाले पुनर्भन्त्स्यत्यचरमत्वादिति, (वृ. प. ९३८)

६३. *सर्व पदे पिण नारके, इमहिज प्रथम तृतीय भंग दोय कै ।
नवरं मिश्रदृष्टि विषे, तीजो भांगो कहिवो सोय कै ।।

६३. एवं सव्वपदेसु वि । नेरइयाणं पढम-ततिया भंगा, नवरं—सम्मामिच्छत्ते ततिओ भंगो ।

सोरठा

६४. पूर्व पद आख्यात, तिण अनुसारे न्याय जे ।
शेष पदे अवदात, कहिवुं सर्व विचार नें ।।

६४. शेषपदानां तु भावना पूर्वोक्तानुसारेण कर्त्तव्येति । (वृ. प. ९३८)

६५. *इम जावत थणियकुमार नें,
अत्र पृथ्वी अप वणस्सई मांहि कै ।।
तेजू लेश्या नें विषे, तीजो भांगो कहियै ताहि कै ।।

६५. एवं जाव थणियकुमाराणं । पुढविक्काइय-आउक्काइय-वणस्सइकाइयाणं तेउलेस्साए ततिओ भंगो ।

६६. शेष सर्व पद नें विषे, प्रथम तृतीय भंग पावै दोय कै ।
तेऊ वाउ सर्व स्थानके, पहिलो तीजो भांगो होय कै ।।

६६. सेसेसु पदेसु सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा । तेउकाइय-वाउक्काइयाणं सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा ।

६७. बे ते चउरिंद्रिय नें विषे, इमहिज पहिलो तीजो जान कै ।
नवरं इतरो विशेष छै, सांभलजो श्रोता सुविधान कै ।।

६७. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं एवं चेव, नवरं—

६८. सम्यक्त्व समुचय ज्ञान में, आभिनिबोधिक नें श्रुत ज्ञान कै ।
ए च्यारूं ही स्थानके, भंग तृतीय भाखै भगवान कै ।।

६८. सम्मत्ते ओहिनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे—एएसु चउसु वि ठाणेसु ततिओ भंगो ।

६९. पंचेंद्रिय तिर्यंच नें, मिश्रदृष्टि में तीजो भंग कै ।
शेष पदे सहु स्थानके, प्रथम तृतीय बे भंग प्रसंग कै ।।

६९. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं सम्मामिच्छत्ते ततिओ भंगो । सेसपदेसु सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा ।

७०. मनुष्य नें मिश्रदृष्टि विषे, अवेदक अकसाई मांय कै ।
तीजो भांगो जाणवो, श्री जिन वच वर निर्मल न्याय कै ।।

७०. मणुस्साणं सम्मामिच्छत्ते अवेदए अकसाइम्मि य ततिओ भंगो,

७१. अलेशी नें केवली, अजोगी त्रिहुं पूछवा नांय कै ।
शेष पदे सहु स्थानके, प्रथम तृतीय बे भंग कहाय कै ।।

७१. अलेस्स-केवलनाण-अजोगी य न पुच्छिज्जंति । सेसपदेसु सव्वत्थ पढम-ततिया भंगा ।

वा०—इहां अचरम मनुष्य नों अधिकार छै । अनें अलेशी अजोगी केवली—ए तीनूं चरम मनुष्य छै । ते माटै ए तीनूं न पूछवा ।

७२. वाणव्यंतर नें ज्योतिषी, वैमानिक वली अचरम न्हाल कै ।
आख्या छै जिम नारकी,
तिमहिज कहिवा न्याय विशाल कै ।।

७२. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा नेरइया ।

७३. नाम गोत्र अंतराय ए, ज्ञानावरणी जिम आख्यात कै ।
तिमहिज ए कहिवो सहु, सेवं भंते ! स्वाम सुजात कै ।।

७३. नामं गोयं अंतराइयं च जहेव नाणावरणिज्जं तहेव निरवसेसं । (श. २६।५५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ । (श. २६।५६)

***लय : हूं बलिहारी जादवां**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७४. बंधी शतक छावीसमों, एकादशम उदेशक एह कै ।
अर्थ थकी इम आखियो,
चउवीसै आसु सुदि चउदश लेह कै ।।
७५. च्यारसौ बोहत्तरमीं भली,
आखी ढ़ाल रसाल उदार कै ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' संपति नित्य जयकार कै ।।

षड्विंशतितमशते एकादशोद्देशकार्थः ।।२६।११।।

गीतक छंद

१. जसु वाणि गौ विशदार्थ पयदात्री पवित्रात्मा मुदा ।
शुभ अलंकार सुसंवरा[1] शुभ पद सुवर्णयुता सदा ।।
वर वदनरूप अनूप गृह-अंगण थकी निकली करी ।
बुधजन सभामय ग्राम चत्वर विषे सोभाये खरी ।।
२. एहवा जु भिक्षू भारिमाल सुरायचन्द गणिन्द ही ।
तसु सखर करुणा दृष्टि थी धर मोद अधिक अमन्द ही ।।
वर जोड़ शतक छवीसमा नीं वृत्ति न्याय विलोकने ।
स्वपरोपकार विचार 'जय-जश' रची तन-मन हित घने ।।

१,२. येषां गौरिव गौः सदर्थपयसां दात्री पवित्रात्मिका,
सालङ्कारसुविग्रहा शुभपदक्षेपा सुवर्णान्विता ।
निर्गत्यास्यगृहाङ्गणाद्बुधसभाग्रामाजिरं राजयेद्,
ये चास्यां विवृतो निमित्तमभवन्नन्दन्तु ते सूरयः ।।
(वृ. प. ९३८)

---

१. सुविग्रहा, सुशरीरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तविंशतितम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तविंशतितम शतक

ढाल : ४७३ (क)

दूहा

१. शत षटवीसम जीव नैं, कर्म बंध अवलोय ।
क्रिया अतीतादिक अद्धा, विशेष कर कही सोय ।।
२. सप्तवीसमें जीव नैं, तथाविधज पहिछान ।
कर्म करण क्रिया तिका, कहियै सुणो सुजान ।।

पापकर्म : करण-अकरण पद

*सुणजो अर्थ शतक सप्तवीसमों ।। (ध्रुपदं)

३. जीव अहो भगवंतजी ! पापकर्म स्यूं तेह ।
कीधो हिवड़ां पिण करै, करिस्यै आगामिकेह ?
४. अथवा काल अतीत कीधो इणे, करै छै वर्त्तमान ।
अनागते करिस्यै नहीं ? भंग दूजो जान ।।
५. अथवा काल अतीत कीधो इणे, न करै वर्त्तमान ।
अनागते करिस्यै सही ? तृतीय भंग पहिछान ।।
६. अथवा कीधो काल अतीत हि, न करै वर्त्तमान ।
अनागते करिस्यै नहिं ? भंग चतुर्थो जान ।।

सोरठा

७. बंध करण नुं जान, किसो विशेषज भेद जे ?
उत्तर तास पिछान, नहीं छै विशेष एहनों ।।
८. तो स्यूं भेद करेह, बंध अनैं फुन करण नैं ।
भिन्न शतक करि एह, आख्यो हिव उत्तर तसुं ।।
९. जीव तणीं जे जान, कर्मबंध-क्रिया तिका ।
कर्ता जीव पिछान, न तु ईश्वरादि कृता ।।
१०. एह अर्थ नैं जोय, देखाड़वा अर्थे इहां ।
बंधकरण अवलोय, भेद करीनैं भाखिया ।।
११. अथवा धुर जे बंध, ते तो कह्यं सामान्य थी ।
करणपणें जे संध, फलदायक निद्धतादि जे ।।
१२. *जिन कहै कोइक जीव जे, कीधो काल अतीत ।
वर्त्तमान काले करै, आगै करिस्यै प्रतीत ।।
१३. कोइक कीधो करै अछै, नहीं करिस्यै तेह ।
कोइक कीधो करै नहीं, वलि करिस्यै जेह ।।

*लय : वीरमती कहै चंद नैं

१. अनन्तरशते जीवस्य कर्मबन्धनक्रिया भूतादिकाल-विशेषेणोक्ता (वृ. प. ९३८)
२. सप्तविंशशते तु जीवस्य तथाविधैव कर्म्मकरणक्रियोच्यते (वृ. प. ९३८)

३. जीवे णं भंते ! पावं कम्मं किं करिंसु करेति करेस्सति ?
४ करिंसु करेति न करेस्सति ?
५. करिंसु न करेति करेस्सति ?
६. करिंसु न करेति न करेस्सति ?

७. ननु बन्धस्य करणस्य च कः प्रतिविशेषः ?, उच्यते, न कश्चित्, (वृ. प. ९३८)
८. तर्हि किमिति भेदेनोपन्यासः ?, उच्यते, (वृ प. ९३८)
९,१०. येयं जीवस्य कर्म्मबन्धनक्रिया सा जीवकर्तृका न त्वीश्वरादिकृतेत्यस्यार्थस्योपदर्शनार्थं, (वृ. प. ९३८)
११. अथवा बन्धः सामान्यतः करणं त्ववश्यं विपाकदायित्वेन निष्पादनं निधत्तादिस्वरूपमिति । (वृ. प. ९३८)
१२. गोयमा ! अत्थेगतिए करिंसु करेति करेस्सति,
१३. अत्थेगतिए करिंसु करेति न करेस्सति, अत्थेगतिए करिंसु न करेति करेस्सति,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. कोइक कीधो करै नहीं, वलि करिस्यै नांय ।
समुच्चय जीव विषे इहां, भंग च्यारूंई पाय ।।

१५. प्रभु ! सलेशी जीव जे, पापकर्म प्रतेह-
कीधो ? इत्यादिक प्रश्न जे, भंग च्यारूं पूछेह ।।

१६. इम इण आलावे करी, बंधी शतक विषेह ।
जेहिज वक्तव्यता कही, भणवी सगली तेह ।।

१७. तिमहिज नव दंडक करी, संगृहीतज जेह ।
कहिवा इग्यार उद्देशका, सप्तवीसम शत एह ।।

वा०—इति करिंसु इस्यै शब्द उपलक्षित शत प्राकृत भाषा करिकै करिसु कहियै ।

सप्तविंशतितमशते प्रथमोद्देशकादारभ्य एकादशोद्देशकार्थः ।।२७।१-११।।

गीतक-छंद

१. शत सप्तवीसम आखियो षटवीसमां शत सारिखो ।
विस्तार न कह्यं तेहनों प्रत्यक्ष ही ए पारिखो ।।
२. पेख्याज पंथ सरीष पथ नों वलि स्यूं देखारिवो ।
षटवीसमो शत आखियो तिमहीज ए विस्तारियो ।।

१४. अत्थेगतिए करिंसु न करेति न करेस्सति ।
(श. २७।१)

१५. सलेस्से णं भंते ! जीवे पावं कम्मं ?

१६. एवं एएणं अभिलावेणं जच्चेव बंधिसए वत्तव्वया सच्चेव निरवसेसा भाणियव्वा,

१७. तहेव नवदंडगसंगहिया एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा । (श. २७।२)

वा.—'करिंसुयसयं' ति 'करिंसु' इत्यनेन शब्देनोपलक्षितं शतं प्राकृतभाषया 'करिंसुयसयं' ति ।
(वृ. प. ९३८)

१,२. व्याख्यातशतसमानं
शतमिदमित्यस्य नो कृता विवृतिः ।
दृष्टसमाने मार्गे
किं कुरुताद्दर्शकस्तस्य ।।१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टविंशतितम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अष्टविंशतितम शतक

ढाल : ४७३ (ख)

सोरठा

१. सप्त वीसम शत ख्यात, वक्तव्यता कर्म अनुगतं ।
अथ अनुक्रम आयात, शत अठवीसम अर्थ थी ।।

२. तिहां उद्देश इग्यार, जीव सलेशादिक जिके ।
एकादश जे द्वार, पापकर्मादि दंडक नव ।।

३. पापकर्म धुर जोय, अष्ट कर्म नां अठ दंडक-
सहित जीवादि होय, अथ तसु प्रथम उदेशके ।।

पापकर्म : समर्जन-समाचरण पद

४. *जीव जिके भगवंतजी ! पापकर्म प्रतेह ।
किण गति मांहि रह्या थका, ग्रह्या उपार्ज्या जेह ?
सुणजो अष्टवीसम शत अर्थ थी ।।

५. किण गति मांहि रह्या थका, समाचरितवंत जेह ?
हेतु पाप करण तणां, समाचरण करेह ।।

६. ते पापकर्म नां विपाक नें, अनुभव न करेह ।
किण गति मांहै भोगव्या ? वृद्ध अर्थ करै एह ।।

७. अथवा किण गति में ग्रह्या, वली किण गति मांय ।
पापकर्म नें आचर्या ? बिहुं शब्द पर्याय ।।

८. जिन भाखै सुण गोयमा ! सहु जीव पिण जोय ।
प्रथम तिर्यंचयोनिका विषे, पद दोनूंई होय ।।

सोरठा

९. तिर्यंच निगोद रूप, ते सगला जीवां तणों ।
मातृस्थान तद्रूप, ते तिरि बहुतपणां थकी ।।

१०. तिणसूं सहु पिण जेह, तिर्यंच थी अन्य जीव जे ।
नारकि प्रमुख तेह, तिरि थी आवी ऊपनां ।।

११. कदाचित इम थाय, पूर्वे भाख्यो तिह विधे ।
ते सहु तिर्यंच मांय, पूर्व ऊपनां जाणियै ।।

१२. इहां एहवुं अभिप्राय, विवक्षित जे समय में ।
नारक आदि कहिवाय, हुआ तिरिख विण त्रिहुं गतौ ।।

लय : वीरमती कहै चंद नै

---

१. व्याख्यातं कर्म्मवक्तव्यताऽनुगतं सप्तविंशं शतम्,
अथ क्रमायातं तथाविधमेवाष्टाविंशं व्याख्यायते,
(वृ. प. ९३८)

२,३. तत्र चैकादशोद्देशका जीवाद्येकादशद्वारानुगत-
पापकर्मादिदण्डकनवकोपेता भवन्ति, तत्र चाद्योद्देशक-
स्येदमादिसूत्रम्— (वृ. प. ९३८)

४. जीवा णं भंते ! पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु ?
'कहिं समज्जिणिंसु' त्ति कस्यां गतौ वर्त्तमानाः
'समर्जितवन्तः' ? गृहीतवन्तः (वृ. प. ९३९)

५. कहिं समायरिंसु ?
'कहिं समायरिंसु' त्ति कस्यां समाचरितवन्तः ?
पापकर्म्महेतुसमाचरणेन, (वृ. प. ९३९)

६. तद्विपानुभवनेनेति वृद्धाः, (वृ. प. ९३९)

७. अथवा पर्यायशब्दावेताविति, (वृ. प. ९३९)

८. गोयमा ! १. सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु
होज्जा

९. इह तिर्यग्योनिः सर्वजीवानां मातृस्थानीया बहुत्वात्
(वृ. प. ९३९)

१०,११. ततश्च सर्वेऽपि तिर्यग्भ्योऽन्ये नारकादयस्तिर्य-
ग्भ्य आगत्योत्पन्नाः कदाचिद् भवेयुस्ततस्ते सर्वेऽपि
तिर्यग्योनिकेष्वभूवन्निति व्यपदिश्यन्ते,
(वृ. प. ९३९)

१२-१४. अयमभिप्रायः—ये विवक्षितसमये नारका-
दयोऽभूवंस्तेऽल्पत्वेन समस्ता अपि सिद्धिगमनेन
तिर्यग्गतिप्रवेशेन च निर्लेपतयोद्वृत्ताः ।
(वृ. प. ९३९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. अल्पपणें करि तेह, समस्त पिण सिद्धि गमन करि ।
तिर्यंच गति में जेह, प्रवेश करिवै करि वली ।।
१४. इम निर्लेपपणेह, करिकै सगला नीकल्या ।
केइक सिद्ध गति लेह, केई तिरि गति में गया ।।
१५. तीनूं गति नां जीव, इम निर्लेपपणें करी ।
जंतू रहित कहीव, तिर्यंच गति विण तीन गति ।।
१६. तठा पछै वलि तेह, तिर्यंच गति में जीव जे ।
अनंतपणें करि जेह, अनिर्लेपन भाव थी ।।
१७. तिर्यंच गति थी तेह, नीकल नें जे जीवड़ा ।
नारकि आदिपणेह, ते स्थानक में ऊपनां ।।
१८. इम तिर्यंच गति मांहि, नारकि गत्यादिक तणां ।
हेतुभूतज ताहि, पाप कर्म बांध्या तिहां ।।

वा०—इहां सगलैइ पहिलां तिर्यंचयोनिक नें विषे हुवै जेह भणी सर्व जीवा नीं मातृस्थानक तिर्यंच जोनि जाणवी । ते भणी तिर्यंचयोनिक नें विषे सर्व भाव हुवै । इहां ए अभिप्राय—जे जीव विचारचा समय नैं विषे नारकादिक हुआ तेह अल्पपणें करी सघला ही सिद्धिगमन करि तथा तिर्यंग गति प्रवेशे करी निर्लेपपणें करी नीकल्या । एतलै केइ एक सिद्धि गति, केइ एक तिर्यंच गति मांहे गया । अनेरी गति ते जीव रहित थइ । तिवारैं पछै तिर्यग गति नें अनंतपणें करी अनिर्लेपनीयपणां थकी ते तिर्यंच गति थी नीकल्या तेह स्थानक नैं विषे नारकादिकपणें करी ऊपनां तिवारै तिर्यंच गति नें विषे नारक गत्यादि हेतुभूत पाप कर्म उपार्ज्यो ए एक भांगो ।

१६. ततश्च तिर्यग्गतेरनन्तत्वेनानिर्लेपनीयत्वात्तत् (वृ. प. ९३९)
१७. तत उद्वृत्तास्तिर्यञ्चस्तत्स्थानेषु नारकादित्वेनोत्पन्नाः (वृ. प. ९३९)
१८. ततस्ते तिर्यग्गतौ नरकगत्यादिहेतुभूतं पापं कर्म समर्जितवन्त इत्युच्यत इत्येकः, (वृ. प. ९३९)

१९. *अथवा तिर्यंच योनि विषे, वलि नारकि मांहि ।
पापकर्म ज्यां उपार्ज्या, समाचरचा पूर्व ताहि ।।

१९. २. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य होज्जा ।

सोरठा

२०. वांछित समय विषेह, मनुष्य देवता जे थया ।
तिणहिज रीते तेह, निर्लेपपणें करी नीकल्या ।।
२१. मनुष्य देवता मांहि, नारकि तिरि बिहुं गति थकी ।
आवी ऊपनां ताहि, ते तिर्यग नरक विषे हुंता ।।
२२. जे वलि नारकि मांहि, तिर्यंच विषे थया तिके ।
तिणहिज गति में ताहि, कर्म उपार्जितवंत था ।।

२०. विवक्षितसमये ये मनुष्यदेवा अभूवंस्ते निर्लेपतया तथैवोद्वृत्ताः (वृ. प. ९३९)
२१. तत्स्थानेषु च तिर्यग्नारकेभ्य आगत्योत्पन्नाः, ते चैवं व्यपदिश्यन्ते—तिर्यग्नैरयिकेष्वभूवन्नेते, (वृ. प. ९३९)
२२. ये च यत्राभूवंस्ते तत्रैव कर्मोपार्जितवन्त इत्यर्थो लभ्यत इति द्वितीयः, (वृ. प. ९३९)

२३. *अथवा तिर्यंचयोनिक विषे, वली मनुष्य गति मांहि ।
पापकर्म त्यां उपार्ज्या, समाचरचा पिण ताहि ।।

२३. ३. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य होज्जा ।

सोरठा

२४. वांछित समय विषेह, नारकि नें जे देवता ।
तिणहिज रीत करेह, निर्लेपपणें करि नीकल्या ।।
२५. नारकि सुर गति मांहि, तिर्यंच मनु बिहुं गति थकी ।
आवी उपनां ताहि, ते तिरि मनुष्य विषे हुंता ।।

२४. विवक्षितसमये ये नैरयिकदेवास्ते तथैव निर्लेपतयोद्वृत्ताः (वृ. प. ९३९)
२५. तत्स्थानेषु च तिर्यग्मनुष्येभ्य आगत्योत्पन्नाः, ते चैवं व्यपदिश्यन्ते—तिर्यग्मनुष्येष्वभूवन्नेते, (वृ. प. ९३९)

*लय : वीरमती कहै चंद नै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. जे वलि मनु गति मांहि, तिर्यंच विषे थया तिके।
तिणहिज गति में ताहि, कर्म उपार्जितवंत था ।।
२७. इणहिज न्याय करेह, भांगा अठ ए जाणवा ।
इक द्विक त्रिक योगेह, चउक-संयोगे पिण जिके ।।
२८. *तथा तिर्यंच देव विषे हुवै, भंग चतुर्थो चीन ।
इकसंयोगिक धुर कहूं, द्विकयोगिक तीन ।।

हिवै त्रिकसंयोगे तीन भांगा कहै छै—

२९. अथवा तिर्यंच नारकि मनु विषे, होवै बिहुं पद हेवे ।
अथवा तिर्यंच नारकि सुर विषे, तथा तिरि मनु देवे ।।

हिवै चतुष्कसंयोगियो १ भांगो कहै छै—

३०. तथा तिर्यंच नारकि मनुष्य में, वलि सुर रै मांहि ।
पापकर्म उपार्ज्या समाचरचा वलि ताहि ।।
३१. सलेशी जीव भदंत ! जे, पाप कर्म प्रतेह ।
किण गति मांहि ग्रह्या तिणे, किहां समाचरचा जेह ?
३२. जिन भाखै सुण गोयमा ! इमहिज अवलोय ।
कहिवा पूर्वली परै, अठ भांगा जोय ।।
३३. एवं कृष्णलेशी कह्या, जाव अलेशी प्रयुक्त ।
कृष्णपाक्षिक शुक्लपाक्षिका, इम जाव अनाकारोवउत्त ।।

हिवै नारकादि २४ दंडक कहै छै—

३४. नारकि हे भगवंतजो ! पापकर्म प्रतेह ।
किण गति में वर्त्तंतै ग्रह्या, किहां समाचरचा जेह ? ।।
३५. श्री जिन भाखै सर्व ही, प्रथम तिर्यंच रै मांय ।
इमहिज अष्ट भांगा तिके, पूर्ववत कहिवाय ।।
३६. इम सलेश्यादिक जिके, सहु पद में उदंत ।
भांगा आठ भणीजियै, जाव अनाकार अंत ।।
३७. एवं जाव वेमाणिया, धुर दंडक ख्यात ।
द्वितीय दंडक इम जाणवूं, ज्ञानावरणी संघात ।।
३८. एवं जाव कहीजियै, अंतराय संघात ।
पापकर्म धुर दंडके, अष्ट कर्म अठ ख्यात ।।
३९. इम एह जीवादिक जिके, वैमानिक पर्यंत ।
नव दंडक हुवै ते इहां, कहिवा धर खंत ।।
४०. सेवं भंते ! स्वामजी, जाव गोयम विहरंत ।
अष्टवीसम शत अर्थ थी, प्रथम उदेशक तंत ।।

अष्टाविंशतितमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।२८।१।।

४१. प्रथम समय नां नारकी, अनंतरोत्पन्न ताम ।
पापकर्म किण गति ग्रह्या, समाचरचा किण ठाम ?।।
४२. श्री जिन भाखै सर्व ही, प्रथम तिर्यंच में होय ।
एम इहां पिण जाणवा, अष्ट भांगा सोय ।।

***लय : वीरमती कहै चंद नै**

२६. ये च यत्राभूवंस्ते तत्रैव कर्मोपार्जितवन्त इति सामर्थ्यगम्यमिति तृतीयः, (वृ. प. ९३९)

२७. तदेवमनया भावनयाऽष्टावेते भङ्गाः, (वृ. प. ९३९)

२८. ४. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य देवेसु य होज्जा ।
तत्रैकस्तिर्यग्गत्यैव, अन्ये तु तिर्यग्नैरयिकाभ्यां तिर्यग्मनुष्याभ्यां तिर्यग्देवाभ्यामिति त्रयो द्विकसंयोगाः, (वृ. प. ९३९)

२९. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य होज्जा ६. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य देवेसु य होज्जा ७. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा । (श. २८।१)

३०. ८. अहवा तिरिक्खजोणिएसु य नेरइएसु य मणुस्सेसु य देवेसु य होज्जा । (श. २८।१)

३१. सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु ? कहिं समायरिंसु ?

३२. एवं चेव ।

३३. एवं कण्हलेस्सा जाव अलेस्सा । कण्हपक्खिया, सुक्कपक्खिया । एवं जाव अणागारोवउत्ता । (श. २८।२)

३४. नेरइया णं भंते ! पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु ? कहिं समायरिंसु ?

३५. गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा, एवं चेव अट्ठ भंगा भाणियव्वा ।

३६. एवं सव्वत्थ अट्ठभंगा जाव अणागारोवउत्तत्ति ।

३७. एवं जाव वेमाणियाणं । एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ ।

३८. एवं जाव अंतराइएणं,

३९. एवं एए जीवादीया वेमाणियपज्जवसाणा नव दंडगा भवंति । (श. २८।३)

४०. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ । (श. २८।४)

४१. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया पावं कम्मं कहिं समज्जिणिंसु ? कहिं समायरिंसु ?

४२. गोयमा ! सव्वे वि ताव तिरिक्खजोणिएसु होज्जा, एवं एत्थ वि अट्ठभंगा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. एवं अणंतरोववन्नगा, नारकी आदि देई ।
जेह विषे जे बोल छै, लेश्यादिक जेही ।।
४४. अनाकार उपयुक्त जे, पर्यंत पिछाण ।
ते सहु इण भजना करी, कहिवा सुविधान ।।
वा०—इहां भजनाइं कह्यो ते अथवा शब्द करिकै आठ भांगा कहिवा ।
४५. यावत वैमानिक विषे, भणवो सुविचार ।
इम जे णवरं विशेष, ते कहियै अधिकार ।।
४६. धुर समय नां नारकादिक विषे, जे परिहरवा योग ।
मिश्रदृष्टि मन वचन ही, इत्यादिक प्रयोग ।।
४७. असंभव माटै न पूछवा, जिम बंधी शतकेह ।
आख्या तिमज इहां अपि, एह विशेष कहेह ।।

सोरठा

४८. प्रथम भंगके सोय, सहु तिर्यंच थी ऊपनां ।
तिणसूं ए भंग जोय, केम संभवै छै इहां ।।
४९. आनतादि सुर नैंज, फुन तीर्थंकर आदि दे ।
मनुष्य विशेषपणैंज, तिर्यंच मरि नहीं ऊपजै ।।
५०. इम द्वितीयादिक जान, भंग विषे पिण जाणजूं ।
इम पूछ्ये सुविधान, उत्तर तास कहीजियै ।।
५१. सत्य बात ए सोय, पिण बहुलपणां नें आश्रयी ।
ए भंग ग्रहिवा जोय, फुन ए वृद्ध वचने करी ।।

वा०—इहां शिष्य पूछै—प्रथम भंगके कह्यूं सगला तिर्यंच नैं विषे कर्म ग्रह्या उपार्ज्या ते किम संभवै ? आनतादिक देव नैं अनैं तीर्थंकरादिक मनुष्य विशेष नैं ते तिर्यंच थकी आय नैं न ऊपजवा थकी । एतलै आनतादिक सुर नैं विषे अनैं तीर्थंकरादिक मनुष्य नैं विषे तिर्यंच मरी न ऊपजै ते माटै सर्व तिर्यंच नैं विषे कर्म उपार्ज्या ए प्रथम भांगो किम संभवै ? इम द्वितीयादिक भंग नैं विषे पिण किम संभवै ? जद गुरु कहै—ए बात सत्य, किंतु बहुलपणां आश्रयी ए भांगा ग्रहिवा ए वृद्ध वचन करिकै ।

५२. *इम ज्ञानावरणी संघात ही, दंडक कहिवाय ।
इम जाव अंतराय साथ ही, सहु कहिवूं ताय ।।
५३. ए पिण नव दंडके करी, संगृहीत उद्देश ।
कहिवो रूड़ी रीत सूं, सेवं भंते ! जिनेश ।।

अष्टाविंशतितमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।२८।२।।

५४. इम इण अनुक्रमे करी, जिमहीज विचारी ।
बंधी शतक विषे कही, उद्देशक परिवाड़ी ।।
५५. तिमज इहां पिण जाणवी, अष्ट भांगा विषेह ।
णवरं विशेष जाणवो, कहियै छै तेह ।।
५६. जेह बोल जेहनैं अछै, तसु ते बोल कहेस ।
जाव अचरम उद्देशा लगै, सहु पिण ग्यार उद्देश ।।

* लय : वीरमती कहै चंद नै

४३. एवं अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाईणं जस्स जं अत्थि लेसादीयं
४४. अणागारोवओगपज्जवसाणं तं सव्वं एयाए भयणाए भाणियव्वं
४५. जाव वेमाणियाणं, नवरं—
४६,४७. अणंतरेसु जे परिहरियव्वा ते जहा बंधिसए तहा इहं पि ।
अनन्तरोपपन्ननारकादिषु यानि सम्यग्मिथ्यात्वमनोयोगवाग्योगादीनि पदानि 'परिहरियव्व' त्ति असम्भवान्न प्रच्छनीयानि तानि यथा बन्धिशते तथेहापीति । (वृ. प. ९४०)
४८. ननु प्रथमभङ्गके सर्वे तिर्यग्भ्य उत्पन्नाः कथं संभवन्ति, (वृ. प. ९४०)
४९. आनतादिदेवानां तीर्थङ्करादिमनुष्यविशेषाणां च तेभ्य आगतानामनुत्पत्तेः ?, (वृ. प. ९४०)
५०. एवं द्वितीयादिभङ्गकेष्वपि भावनीयं (वृ. प. ९४०)
५१. सत्यं, किन्तु बाहुल्यमाश्रित्यैते भङ्गा ग्राह्याः, इदं च वृद्धवचनेन दर्शयिष्यामः । (वृ. प. ९४०)
५२. एवं नाणावरणिज्जेण वि दंडओ । एवं जाव अंतराइएणं निरवसेसं ।
५३. एसो वि नवदंडगसंगहिओ उद्देसओ भाणियव्वो । (श. २८/५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २८/६)
५४. एवं एएणं कमेणं जहेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी
५५. तहेव इहं पि अट्ठसु भंगेसु नेयव्वा, नवरं—जाणियव्वं
५६. जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं जाव अचरिमुद्देसो सव्वे वि एए एक्कारस उद्देसगा । (श. २८/७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. सेवं भंते ! स्वामजी, यावत विचरंत ।
कर्म समर्जित अर्थ ते, प्रतिपादक हुंत ।
ए शत अठवीसम अर्थ थी ।।

५७. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श. २९/८)
'कम्मसमज्जणणसयं' ति कर्मसमर्जनलक्षणार्थप्रतिपादकं शतं कर्म्मसमर्जनशतम् । (वृ. प. ९४०)

५८. कही च्यार सय ऊपरै, तीन सीत्तरमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल ।।

अष्टाविंशतितमशते तृतीयादारभ्य एकादशोद्देशकार्थः ।।२८।३-११।।

गीतक छंद

१. अठवीसमां शत रूप मंदिर महाअर्थ संचय सही ।
फुन तेह अनघ अपापनिक गणधरे गूंथ्या सूत्र ही ।।
२. वर जोड़ अर्थज वचन रचना रूप जे कूची करी ।
उद्घाटितं म्है पिण पवर सद्गुरु प्रसादे चित धरी ।।

१,२. इति चूर्णिवचनरचना-
कुञ्चिकयोद्घाटितं मयाप्येतत् ।
अष्टाविंशतितमशत-
मन्दिरमनघं महार्घचयम् ।।
(वृ. प. ९४०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनत्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकोनत्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४७४

दूहा

१. अठवीसम शत पापकर्म-प्रमुख वार्ता ख्यात ।
अथ क्रम तिणज प्रकार विधि, गुणतीसम आयात ।।

१. व्याख्यातं पापकर्मादिवक्तव्यताऽनुगतमष्टाविंशं शतम्, अथ क्रमायातं तथाविधमेवैकोनत्रिंशं व्याख्यायते,
(वृ. प. ९४०)

२. ए गुणतीसम शतक पिण, तिमज उद्देश इग्यार ।
तास आदि जे अर्थ नों, कहियै छै अधिकार ।।

२. तत्र च तथैवैकादशोद्देशका भवन्ति, तेषु चाद्योद्देशकस्येदमादिसूत्रम्— (वृ. प. ९४०)

हिवै बहुवचन जीव अनै २४ दंडक अतीत काल में कर्म समकाले वेदवा मांड्या अनै समकाले निठाड्या इत्यादिक प्रश्नोत्तर । तिणमें प्रथम बहुवचने जीव नों अतीत काल आश्री प्रश्न गोतम पूछै छै—

पापकर्म : प्रारम्भ और अन्त

३. जीव बहु भगवंत ! स्यूं, पाप कर्म समकाल ।
प्रथमपणें जे वेदवा, थया प्रारंभता भाल ।।

३. जीवा णं भंते ! पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु 'समायं' ति समकं बहवो जीवा युगपदित्यर्थः 'पट्ठविंसु' त्ति प्रस्थापितवन्तः—प्रथमतया वेदयितुमारब्धवन्तः, (वृ. प. ९४०)

४. तिमहिज समकाले जिके, पाप कर्म प्रति जोय ।
नीठाड़ताज हुवै जिके ? प्रथम प्रश्न ए होय ।।

४. समायं निट्ठविंसु ?
तथा समकमेव 'निट्ठविंसु' त्ति 'निष्ठापितवन्तः' निष्ठां नीतवन्त इत्येकः, (वृ. प. ९४०)

५. अथवा समकाले जिके, प्रारंभ्याज अतीव ।
विषमपणेंज नीठाड़ता, हुवै जिके बहु जीव ।।

५. समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?
तथा समकं प्रस्थापितवन्तः 'विसम' त्ति विषमं यथा भवति विषमतयेत्यर्थः निष्ठापितवन्त इति द्वितीयः,
(वृ. प. ९४०)

६. अथवा विषमपणें जिके, थया आरंभता आम ।
समकाले नीठाड़ता, थया जीव बहु ताम ।।

६. विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु ?

७. तथा विषम काले हुआ, आरंभता पहिछाण ।
विषम काल में जीव जे, नीठाड़ता हुआ जाण ।।

७. विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ?

८. जिन भाखै केइ जीवड़ा, आरंभता समकाल ।
समकाले नीठाड़ता, थया अतीतज काल ।।

८. गोयमा ! अत्थेगतिया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु

९. जाव केइक विषम अद्धा, प्रारंभता हुआ पेख ।
विषम काल में जीव बहु, नीठाड़ता सुविशेख ।।

९. जाव अत्थेगतिया विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु । (श. २९/१)

१०. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यूं ?,
केइक जीव समकाल ।
प्रारंभता नीठाड़ता ? तिमज प्रश्न चिहुं न्हाल ।।

१०. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगतिया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु, तं चेव ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*ए गुणतीसम शतक नों, अर्थ अनोपम सुणियै ।। (ध्रुपदं)

११. जिन कहै जीवा चउविधा, तिहां केयक पहिछाणी ।
समाउया समोववन्नगा, धुर भंग ए जाणी ।।

११. गोयमा ! जीवा चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—
अत्थेगतिया समाउया समोववन्नगा,

सोरठा

१२. समआउखावंत, उदय तणींज अपेक्षया ।
समकालेइज हुंत, आऊखा नों उदय तसु ।।

१२. 'समाउय' त्ति समायुषः उदयापेक्षया समकालायुष्कोदया इत्यर्थः । (वृ. प. ९४१)

१३. समोववन्नगा जाण, पूर्व भव स्थिति क्षय करी ।
समकालेज पिछाण, अन्य भवे जे ऊपनां ।।

१३. 'समोववन्नग' । त्ति विवक्षितायुषः क्षये समकमेव भवान्तरे उपपन्नाः समोपपन्नकाः, (वृ. प. ९४१)

१४. *जीव केतलाइक जिके, समआउखावंत ।
विसमोववन्नगा जाणवा, द्वितीय भंग ए हुंत ।।

१४. अत्थेगतिया समाउया विसमोववन्नगा,

सोरठा

१५. के सदृश-आयुवंत, पूर्व आयु नैं क्षये ।
विषमपणें उपजंत, आगल पाछिल ऊपनां ।।

१६. *जीव केतलाइक वली, विषम-आउखावंत ।
समोत्पन्न साथै ऊपनां, तृतीय भंग ए हुंत ।।

१६. अत्थेगतिया विसमाउया समोववन्नगा,

सोरठा

१७. केइ विषम-आउखावंत, पूर्व आयु नें क्षये ।
समकाले उपजंत, तृतीय भंग इम जाणवूं ।।

१८. *जीव केतलाइक जिके, विषम-आउखावंत ।
विषमपणें बलि ऊपनां, तुर्य भंग ए मंत ।।

१८. अत्थेगतिया विसमाउया विसमोववन्नगा ।

सोरठा

१९. केइ विषम-आउखावंत, अल्प बहु आयु नां धणी ।
विषमपणें उपजंत, आगल पाछिल ऊपनां ।।

वा०—केतला एक जीव समाउया ते सरीखे आयुखे—उदय नीं अपेक्षाये समकाले आउखा नां उदयवंत इत्यर्थः । समोववन्नगा ते विवक्षित आउखा नैं क्षये समकालेज भवांतर नैं विषे ऊपनां ते समोपपन्नका १। केतलाइक जीव सरीखा आउखावंत पूर्व आउखा नैं क्षये आगल पाछिल ऊपना २। केतलाएक जीव विषम आउखावंत एतलै थोड़ा घणां आउखा नां क्षय थकी समकाले ऊपनां ३। केतलाएक जीव विषम आउखावंत विषमपणें ऊपनां आगल पाछिल ऊपनां ४। तिहां समआयुष उदय अपेक्षा करिकै समकाल आउखा नों उदय वांछित आउखा नैं क्षये समकाले हीज भवांतर नैं विषे ऊपनां ते समाउया समोववन्नगा।

जे एहवा छै ते समकाले हीज भोगवणा प्रारंभ्या समकाले हीज नीठाड़ता हुआ।

इहां शिष्य पूछै—आउखा कर्म नैं हीज आश्रयी नैं अंगीकार नुं करिवुं हुवै, पिण पाप कर्म नीं अपेक्षा न हुवै ते पाप कर्म बिना आउखा नां उदय नीं अपेक्षा

वा.—ये चैवंविधास्ते समकमेव प्रस्थापितवन्तः समकमेव च निष्ठापितवन्तः,
नन्वायुःकर्मैवाश्रित्यैवमुपपन्नं भवति न तु पापं कर्म्म, तद्धि नायुष्कोदयापेक्षं प्रस्थाप्यते निष्ठाप्यते चेति,

***लय : प्रणमूं प्रथम जिनेंद्र नैं**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतै प्रस्थापियै अनैं नीठाड़ियैं इम हुवै । जद गुरु कहै—इम न हुवै, जे कारण थकी भव नीं अपेक्षा कर्म नों उदय वांछियै । उक्तं च—'उदयखयखओवसमेत्यादि जीव नैं कर्म नों उदय क्षय क्षयोपशम द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव अनैं भव आश्रयी हुवै । इण कारण थकीज आगल एहवूं पाठ कहियै छै—तत्थ णं जे ते समाउया समोववण्णया ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविसु समायं निट्ठविसुत्ति ए प्रथम भंग हुवै, तेहनीं जोड़ कहै छै—

२०. *तिहां सम-आउखावंत जे, परभव में ताहि ।
समकाले हिज ऊपनां, जीव जिके जग मांहि ।।

२१. ते जीवा पाप कर्म नैं, समकाले कहाया ।
भोगविवा मांड्या तिणे, समकाल नीठाया ।।

२२. तिहां सम-आउखावंत जे, परभव में पेख ।
पहिला पछै जे ऊपनां, विषमपणैं ए देख ।।

२३. मरण काल नां विषम थकी, पाप कर्म कहाया ।
समकाले भोगवणा प्रारंभ्या, विसमकाले नीठाया ।।

वा०—तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगत्ति—समकाल आउखा नां उदयवंत विषमपणैं परभव नैं विषे ऊपनां मरणकाल नां विषमपणां थकी । ते समायं पट्ठविसुत्ति ते समकाले भोगवणा मांड्या आयु विशेष उदय पामवा थी पाप कर्म वेदन विशेष नैं । विसमायं निट्ठविसुत्ति तिके विषमपणैं नीठाड़ता हुआ मरण नैं विषमपणैं करी पाप कर्म वेदन विशेष नैं विषमपणैं करी नीठाड़वा नां संभव थकी ।

२४. तिहां विषम-आउखावंत जे, अल्प बहु आयुवंत ।
परभव में ते जीवड़ा, समकाले उपजंत ।।

२५. ते जीवा पाप कर्म नैं, विषम काले कहाया ।
भोगविवा मांड्या जिणे, समकाल नीठाया ।।

वा०—विसमाउया समोववन्नगत्ति—विषम काल आयु उदयवंत समकाले भवांतर नैं विषे ऊपनां । ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविसुत्ति समायं निट्ठविसुत्ति तेणे विषमपणैं करी भोगवणा मांड्या समकाले नीठाड़ता हुआ ।

२६. तिहां विषम-आउखावंत जे, अल्प बहु उदयवंत ।
विषमपणैं परभव विषे, आगै पाछै उपजंत ।।

२७. ते जीवा पाप कर्म नैं, विषम काले कहाया ।
भोगवणा मांड्या जिणे, विषमपणैं नीठाया ।।

२८. तिण अर्थे करि गोयमा ! तं चेव पिछाणी ।
पूर्व च्यार प्रश्न तणों, उत्तर इम जाणी ।।

२९. प्रभु ! सलेशी जीवड़ा, पाप कर्म प्रतेह ।
प्रारंभ्या समकाल ही, एवं चेव कहेह ।।

३०. इम सहु स्थानक नैं विषे, यावत अनाकार ।
इणहिज वक्तव्यता करी, ते सहु पद अवधार ।।

नवं, यतो भवापेक्षः कर्म्मणामुदयः क्षयश्चेष्यते, उक्तञ्च—'उदयक्खयक्खओवसमेत्यादि, अत एवाह—'तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नया ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु' त्ति प्रथमः, (वृ. प. ९४१)

२०. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा

२१. ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु ।

२२. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा

२३. ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ।

वा.—तथा 'तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नग' त्ति समकालायुष्कोदया विषमतया परभवोत्पन्ना मरणकालवैषम्यात् 'ते समायं पट्ठविंसु' त्ति आयुष्कविशेषोदयसम्पाद्यत्वात्पापकर्म्मवेदनविशेषस्य 'विसमायं निट्ठविंसु' त्ति मरणवैषम्येण पापकर्मवेदनविशेषस्य विषमतया निष्ठासम्भवादिति द्वितीयः, (वृ. प. ९४१)

२४. तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा

२५. ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु ।

वा.—तथा 'विसमाउया समोववन्नग' त्ति विषमकालायुष्कोदयाः समकालभवान्तरोत्पत्तयः 'ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु' त्ति तृतीयः, (वृ. प. ९४१)

२६. तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा

२७. ते णं पावं कम्मं विसमायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ।

२८. से तेणट्ठेणं गोयमा ! तं चेव । (श. २९/२)

२९. सलेस्सा णं भंते ! जीवा पावं कम्मं ? एवं चेव,

३०. एवं सव्वट्ठाणेसु वि जाव अणागारोवउत्ता । एए सव्वे वि पया एयाए वत्तव्वयाए भाणियव्वा । (श. २९/३)

---

*लय: प्रणमूं प्रथम जिनेंद्र नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३१. प्रभु ! नारकि स्यूं पाप कर्म नैं प्रारंभ्या समकाल ?
समकालेज नीठाड़िया ? प्रश्न इत्यादिक न्हाल ।।
३२. जिन भाखै केइ नारकी, प्रारंभ्या समकाल ।
इम जिम आख्यो जीव नैं, तिमहिज कहिवो न्हाल ।।
३३. इम यावत अनाकार ही, इम यावत वैमानीक ।
जेहनैं जेह छै ते इहां, अनुक्रम कथीक ।।
३४. जिम पाप कर्मे करी दंडक कह्यूं, इम इण अनुक्रमेह ।
आठूंइ कर्म प्रकृति तणां, अष्ट दंडक कहेह ।।
३५. जीव आदि देई करी, वैमानिक पर्यंत ।
नव दंडक संगृहीत ए, प्रथम उद्देशक हुंत ।।
३६. सेवं भंते ! स्वामीजी, अर्थ थकी सुविशेष ।
ए गुणतीसम शतक नों, आख्यो प्रथम उद्देश ।।
जय-जय देव जिनेंद्र नां वचनामृत वारू ।।

एकोनत्रिंशत्तमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।२९।१।।

३१. नेरइया णं भंते ! पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु—पुच्छा ।
३२. गोयमा ! अत्थेगतिया समायं पट्ठविंसु, एवं जहेव जीवाणं तहेव भाणियव्वं
३३. जाव अणागारोवउत्ता । एवं जाव वेमाणियाणं जस्स जं अत्थि तं एएणं चेव कमेणं भाणियव्वं ।
३४. जहा पावेण दंडओ । एएणं कमेणं अट्ठसु वि कम्मप्पगडीसु अट्ठ दंडगा भाणियव्वा
३५. जीवादीया वेमाणियपज्जवसाणा । एसो नवदंडगसंगहिओ पढमो उद्देसो भाणियव्वो । (श. २९/४)
३६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. २९/५)

दूहा

३७. प्रथम समय नां नारकी, पाप कर्म प्रतेह ।
स्यूं प्रारंभ्या समकाल ही ? प्रश्न इत्यादि पूछेह ।।
३८. जिन कहै केइक नारकी, प्रारंभ्या समकाल ।
समकाले नीठाड़िया, प्रथम भंग ए न्हाल ।।
३९. वलि किताइक नारकी, प्रारंभ्या समकाल ।
विसमकाले नीठाड़िया, द्वितीय भंग ए भाल ।।
४०. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यो, केइयक सम काल ।
प्रारंभ्या नैं नीठाड़िया ? कहिवूं तिमज नीहाल ।।
४१. जिन भाखै धुर समय नां, नारकि द्विविध न्हाल ।
के सम-आयुवंत जे, उपनां पिण समकाल ।।

३७. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया पावं कम्मं किं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु—पुच्छा ।
३८. गोयमा ! अत्थेगतिया समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु,
३९. अत्थेगतिया समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु । (श. २९/६)
४०. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगतिया समायं पट्ठविंसु, तं चेव ?
४१. गोयमा ! अणंतरोववन्नगा नेरइया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थेगतिया समाउया समोववन्नगा,

सोरठा

४२. अनंतरोत्पन्न जेह, समहिज आयु उदय ह्वै ।
आयु विषमपणेह, अनंतरोत्पन्न नहींज ह्वै ।।
४३. तेहनैं आयु विमास, प्रथम समयवर्त्ती थको ।
अनंतरोत्पन्न तास, समहिज आयु उदय ह्वै ।।
४४. समोववन्नगा तेह, तास अर्थ हिव आखियै ।
मरण अनंतर जेह, परभव उत्पत्ति आश्रयी ।।
४५. ते फुन मरण कालेह, भूतपूर्व जे गति करी ।
आवी ऊपनां जेह, तेह अनंतरोत्पन्नका ।।

वा०—समाउया समोववन्नगत्ति अनंतरोत्पन्न नैं समहीज आयु उदय ह्वै, आयु विषमपणां विषे अनंतरोत्पन्न नहींज ह्वै । आयु प्रथम समयवर्त्तीपणां थकी तेहनैं समोववण्णगत्ति मरण अनंतर परभव उत्पत्ति आश्रयी । वलि ते मरण काले भूतपूर्व गति करिकै अनंतरोत्पन्नका कहियै ।

४२,४३. 'समाउया समोववन्नग' त्ति अनन्तरोपपन्नानां सम एवायुरुदयो भवति तद्वैषम्येऽनन्तरोपपन्नत्वमेव न स्यादायुःप्रथमसमयवर्तित्वात्तेषां (वृ. प. ९४१)
४४. 'समोववन्नग' त्ति मरणानन्तरं परभवोत्पत्तिमाश्रित्य (वृ. प. ९४२)
४५. ते च मरणकाले भूतपूर्वगत्याऽनन्तरोपपन्नका उच्यन्ते (वृ. प. ९४२)

४६. *के धुर समय नां नारकी, सम-आउखावंत ।
विषमपणैं जे ऊपनां, मरण विषम थकी मंत ।।

४६. अत्थेगतिया समाउया विसमोववन्नगा ।

*लय : प्रणमूं प्रथम जिनेंद्र नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४७. तृतीय तुर्य भंग बेह, अनतरोत्पन्न नैं विषे ।
नथी संभवै जेह, अनंतरोत्पन्नपणां थकी ।।

४७. तृतीयचतुर्थभङ्गावनन्तरोपपन्नेषु न संभवतः, अनन्तरोपपन्नत्वादेवेति (वृ. प. ९४२)

४८. * तिहां समाउया समोववन्नगा, पाप कर्म कहाया ।।
प्रारंभ्या समकाल ही, समकाल नीठाया ।।

४८. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु समायं निट्ठविंसु ।

४९. जे समाउया विसमोववन्नगा, पाप कर्म समकाल ।
प्रारंभ्या भोगविवा भणी, विषम नीठाया न्हाल ।।

४९. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं पावं कम्मं समायं पट्ठविंसु विसमायं निट्ठविंसु ।

५०. तिण अर्थो करि गोयमा ! कहिवो तिमहीज ।
अनंतरोत्पन्न नारके, धुर बे भंग लहीज ।।

५०. से तेणट्ठेणं तं चेव । (श. २९/७)

५१. प्रभु ! सलेशी नारकी, धुर समय नां धार ।
पाप कर्म एवं चेव जे, यावत अनाकार ।।

५१. सलेस्सा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया पावं ? एवं चेव, एवं जाव अणागारोवउत्ता ।

५२. एवं असुरकुमार ही, इम यावत वैमानीक ।
णवरं जेहनैं जेह छै, ते बोल कथीक ।।

५२. एवं असुरकुमारा वि । एवं जाव वेमाणिया, नवरं जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं ।

५३. ज्ञानावरणी संघात ही, दंडक इमहीज ।
समस्तपणैं इम जाव ही, अंतराय कहीज ।।

५३. एव नाणावरणिज्जेण वि दंडओ । एवं निरवसेसं जाव अंतराइएणं । (श. २९/८)

५४. सेवं भंते ! स्वामजी यावत विचरंत ।
ए गुणतीसम अर्थ थी, द्वितीय उद्देशक हुंत ।

५४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! ति जाव विहरइ । (श. २९।९)

एकोनत्रिंशत्तमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।२९।२।।

५५. इम इण अनुक्रमे करी, जेहिज बंधी शतेह ।
परिपाटी उद्देशक तणीं, ते सहु इहां कहेह ।।

५५. एवं एएणं गमएणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगपरिवाडी सच्चेव इह वि भाणियव्वा

५६. कहिवो जाव अचरम लगै, अनंतरोद्देश देख ।
च्यारूं तणीं इक वारता, शेष सात नीं एक ।।

५६. जाव अचरिमो त्ति । अणंतरउद्देसगाणं चउण्ह वि एक्का वत्तव्वया, सेसाणं सत्तण्हं एक्का । (श. २९।१०)

सोरठा

५७. अनंतरोत्पन्न धार, अनंतरावगाढा द्वितीय ।
तृतीय अनंतर आहार, अनंतर पर्याप्त तुर्य ।।

५८. एक सरीखी होय, वक्तव्यता ए चिहुं तणीं ।
शेष सात नीं सोय, एक सरीखी वारता ।

५७,५८ 'अणंतरोद्देसगाणं चउण्हवि' त्ति अनन्तरोपपन्नानन्तरावगाढानन्तराहारकानन्तरपर्याप्तकोद्देशकानाम् । (वृ. प. ९४२)

दूहा

५९. कर्म प्रस्थापन आदि ही, प्रतिपादन अर्थ ताम ।
तिणसुं नाम ए शतक नों, कर्म प्रस्थापन नाम ।।

५९. 'कम्मपट्ठवणसयं' ति कर्म्मप्रस्थापनाद्यर्थप्रतिपादनपरं शतं कर्म्मप्रस्थापनशतम् । (वृ. प. ९४२)

एकोनत्रिंशत्तमशते तृतीयादारभ्य एकादशोद्देशकार्थः ।।२९।३-११।।

६०. चिहुं सय चीमोतरमीं कही, वारू ढाल विशालं ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जश-जश' मंगलमालं ।।

गीतक छंद

१. गुणतीसमा ए शतक नीं मतिवंत नीं पर मन धरी ।
रचि जोड़ रचना समय न्याय रु वृत्ति मारग अनुसरी ।।
२. अप्रकट पाटव पिण मनुज पटुगमपथे परिवर्तता ।
लहै शीघ्र पटुता नाश कटुता कर्म दूर थयां छतां ।

१,२. अनुसृत्य मया टीकां टीकेयं टिप्पिता प्रपटुनेव ।
अप्रकटपाटवोऽपि हि पटूयते पटुगमेनाटन् ।। (वृ. प. ९४२)

*लय : प्रणमूं प्रथम जिनेंद्र नें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४७५

दूहा

१. ए गुणतीसम शतक में, कर्म प्रस्थापन आद।
तेह आश्रयी जीव जे, विचारिया विधिवाद।।

२. इहां तीसमा शतक में, कर्म-बंध नां हेतु।
वस्तुवाद प्रति आश्रयी, जीव विचार कथेतु।।

३. इण संबंध करि एहनां, एकादश उद्देश।
आदि उद्देशक अर्थ जे, कहियै छै सुविशेष।।

समवसरण पद

४. समोसरण प्रभु! केतला? भाखै तब भगवान।
च्यार प्रकार परूपिया, कहियै तसु अभिधान।।

५. क्रियावादी प्रथम जे, अक्रियावादी जान।
अनाणवादी तृतीय फुन, विनयवादी मान।।

यतनी

६. बहु जीव नाना परिणाम, किणहि प्रकारे तुल्यपणें ताम।
समवसरै जे मत रै मांय, ते समोसरण कहिवाय।।

वा.—समवसरै—प्रवेश करै नाना परिणाम जीव किणहि प्रकारे तुल्यपणें करी जे मत नें विषे, ते समवसरण।

यतनी

७. क्रिया कर्त्ता बिण संभव नांहि,
तिका आत्मसमवायिनी ताहि।
इसो कहै तेहिज जसु शील, ते क्रियावादी समील।।

८. कहै अन्य आचार्य वाय, क्रिया कहितां जीवादिक ताय।
अस्ति आदिक वदवा नों शील, ते क्रियाबादी समील।।

९. जे क्रिया न मानै ताय, ते अक्रियावादी कहाय।
अज्ञानवादी भलो कहै अज्ञान,
विनयवादी कहै विनय प्रधान।।

१०. ए समोसरण कह्या च्यार, तिणमें धुर समदृष्टि सार।
ते पिण विशिष्ट सम्यक्त्व मांय,
तिणरो आगल कहिसै न्याय।।

---

१. प्राक्तनशते कर्म्मप्रस्थापनाद्याश्रित्य जीवा विचारिताः (वृ. प. ९४२)

२. इह तु कर्म्मबन्धादिहेतुभूतवस्तुवादमाश्रित्य त एव विचार्यन्ते (वृ. प. ९४२)

३. इत्येवंसम्बद्धस्यास्यैकादशोद्देशकात्मकस्येदं प्रथमोद्देशकादिसूत्रम्— (वृ. प. ९४२)

४. कइ णं भंते! समोसरणा पण्णत्ता?
गोयमा! चत्तारि समोसरणा पण्णत्ता, तं जहा—

५. किरियावादी, अकिरियावादी, अण्णाणियवादी, वेणइयवादी। (श. ३०।१)

६. 'समोसरण' त्ति समवसरन्ति नानापरिणामा जीवाः कथञ्चित्तुल्यतया येषु मतेषु तानि समवसरणानि, (वृ. प. ९४४)

७. 'किरियावाइ' त्ति क्रिया कर्त्तारं विना न संभवति सा चात्मसमवायिनीति वदन्ति तच्छीलाश्च ये ते क्रियावादिनः, (वृ. प. ९४४)

८. अन्ये तु व्याख्यान्ति—क्रियां जीवादिपदार्थोऽस्तीत्यादिकां वदितुं शीलं येषां ते क्रियावादिनः। (वृ. प. ९४४)

९. 'अकिरियावाइ' त्ति अक्रियां—क्रियाया अभावं······ ये वदन्ति तेऽक्रियावादिनः, (वृ. प. ९४४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. वली मिश्रदृष्टि नें सोय, कह्या अज्ञानवादी जोय ।
वली विनयवादी अवधार,
तिणरो आगल कहिस्यै विचार ।।

जीव की क्रियावादिता आदि

*सुगुण जन हो, समवसरण अर्थ सांभलो ।।

१२. प्रभु ! जीवा स्यूं क्रियावादी अछै ?
कै अक्रियावादी जोय ? सुगुण जन हो ।
कै अज्ञानवादी कहीजियै ?
कै विनयवादी अवलोय ? सुगुण जन हो ।

१३. जिन कहै क्रियावादी अछै, अक्रियावादी पिण जोय ।
अनाणवादी पिण अछै, विनयवादी पिण होय ।।

१४. सलेशी प्रभु ! जीवड़ा, स्यूं क्रियावादी कहाय ?
अक्रियावादी आदि नों, प्रश्न पूछ्यो ताय ।।

१५. जिन भाखै सुण गोयमा ! क्रियावादी पिण होय ।
जाव विनयवादी हुवै, इम जाव शुक्ललेशी जोय ।।

१६. अलेशी तणीं पूछा कियां, तब भाखै जिनराय ।
क्रियावादीज हुवै अछै, शेष तीनूं नहिं थाय ।।

सोरठा

१७. अलेशी सलहीज, अजोगी वा सिद्ध छै ।
तेह क्रियावादीज, समवसरण अन्य त्रिण नथी ।।

१८. क्रियावादि नों जाण, हेतुभूत जे जिम रह्यूं ।
द्रव्य पर्याय पिछाण, परिच्छेद करि युक्त थी ।

१९. *कृष्णपाक्षिक हे भगवंतजी ! स्यूं क्रियावादी कहाय ।
कै अक्रियावादी कहीजियै ? इत्यादिक पूछा ताय ।।

२०. जिन कहै क्रियावादी नहीं, अक्रियावादी होय ।
अनाणवादी पिण अछै, विनयवादी पिण सोय ।।

२१. सलेशी जिम शुक्लपाक्षिका, समदृष्टि सुखदाय ।
अलेशी जिम जाणवा, इक क्रियावादी कहिवाय ।।

२२. मिथ्यादृष्टि जीवड़ा, कृष्णपाक्षिक जिम तेह ।
क्रियावादी कहियै नथी, शेष तीनूंई पावेह ।।

२३. मिश्रदृष्टि नीं पूछा कियां, जिन कहै बे धुर नांय ।
अनाणवादी हुवै अछै, विनयवादी पिण थाय ।।

सोरठा

२४. सम्यक मिथ्यादृष्ट, साधारण परिणाम थी ।
आस्तिक भाव न इष्ट, वलि नहिं नास्तिक भाव पिण ।।

*लय : श्री जिनधर्म जिन आगन्या दीयां

१२. जीवा णं भंते ! किं किरियावादी ? अकिरियावादी ? अण्णाणियवादी ? वेणइयवादी ?

१३. गोयमा ! जीवा किरियावादी वि, अकिरियावादी वि, अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि ।
(श. ३०।२)

१४. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किं किरियावादी—पुच्छा ।

१५. गोयमा ! किरियावादी वि, अकिरियावादी वि, अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि । एवं जाव सुक्कलेस्सा । (श. ३०।३)

१६. अलेस्सा णं भंते ! जीवा—पुच्छा ।
गोयमा ! किरियावादी, नो अकिरियावादी, नो अण्णाणियवादी, नो वेणइयवादी । (श. ३०।४)

१७. 'अलेस्सा ण' मित्यादि, 'अलेश्याः' अयोगिनः सिद्धाश्च ते च क्रियावादिन एव (वृ. प. ९४४)

१८. क्रियावादहेतुभूतयथाऽवस्थितद्रव्यपर्यायरूपार्थपरिच्छेदयुक्तत्वात्, (वृ. प. ९४४)

१९. कण्हपक्खिया णं भंते ! जीवा किं किरियावादी—पुच्छा ।

२०. गोयमा ! नो किरियावादी, अकिरियावादी, अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि ।

२१. सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा । सम्मदिट्ठी जहा अलेस्सा ।

२२. मिच्छादिट्ठी जहा कण्हपक्खिया । (श. ३०।५)

२३. सम्मामिच्छादिट्ठी णं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो किरियावादी, नो अकिरियावादी, अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि ।

२४,२५. 'सम्मामिच्छादिट्ठी ण' मित्यादि, सम्यग्मिथ्यादृष्टयो हि साधारणपरिणामत्वान्नो आस्तिका नापि नास्तिकाः किन्तु अज्ञानविनयवादिन एव स्युरिति ।
(वृ. प. ९४४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. फुन ते मिश्रपणेह, अनाणवादी छै तिके ।
विनयवादी पिण जेह, समवसरण इण न्याय बे ।।
२६. समुच्चय ज्ञानी यावत वलि, केवलज्ञानी जोय ।
अलेशी जेम कहीजियै, क्रियावादी इक होय ।।
२७. समुच्चय अज्ञानी यावत वलि, विभंग अज्ञानी ताय ।
कृष्णपाक्षिक जिम जाणवो, धुर विण तीन कहाय ।।
२८. आहारसंज्ञाउपयुक्त जे, जाव परिग्रहसंज्ञाउपयुक्त ।
सलेशो जेम कहीजियै, समवसरण चिहुं उक्त ।।
२९. नोसण्णोवउत्ता छै तिके, अलेशी जेम कहाय ।
एक क्रियावादी हीज छै, शेष तीन नहिं पाय ।।
३०. सवेदी जाव नपुंसका, सलेशी जिम चिहुं पाय ।
अवेदी अलेशी नीं परै, क्रियावादी इक थाय ।।
३१. सकषाई यावत वली, लोभकषाई पेख ।
सलेशी जिम चिहुं जाणवूं, अकसाई अलेशी जिम एक ।।
३२. सजोगी नें यावत वली, कायजोगी चिहुं तेम ।
सलेशी जेम कहीजियै, अजोगी अलेशी जेम ।।
३३. सागारोवउत्ता नें वली, अनाकार-उपयुक्त ।
कहिवा सलेशी तणीं परै, समवसरण चिहुं उक्त ।।

२६. नाणी जाव केवलनाणी जहा अलेस्से ।

२७. अण्णाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया ।

२८. आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता जहा सलेस्सा ।

२९. नोसण्णोवउत्ता जहा अलेस्सा ।

३०. सवेदगा जाव नपुंसगवेदगा जहा सलेस्सा । अवेदगा जहा अलेस्सा ।

३१. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा । अकसायी जहा अलेस्सा ।

३२. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा । अजोगी जहा अलेस्सा ।

३३. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता जहा सलेस्सा ।
(श. ३०।६)

हिवे नारको आदि चउवीस दंडके जे बोल नें विषे समवसरण पावै ते कहै छै—

२४ दंडकों में क्रियावादिता आदि

३४. नेरइया हे भगवंतजी ! स्यूं क्रियावादी कहिवाय ?
इत्यादिक पूछा कियां, जिन कहै च्यारूं पाय ।।

३५. सलेशी नारकि हे प्रभु ! क्रियावादी स्यूं तेह ?
इमहिज समवसरण चिहुं, इम जाव कापोत लगेह ।।
३६. कृष्णपाक्षिक जे नारकी, क्रियावादी न कहेह ।
समवसरण शेष त्रिण हुवै, इम इण अनुक्रम करेह ।।
३७. जेहिज वक्तव्यता कही जीव नीं,
तेहिज नारकी नीं सहु जाण ।
यावत अनाकारवउत्ता लगै, णवरं विशेष पिछाण ।।
३८. जे नारकि में बोल पावै अछै, तेहिज बोल कहेह ।
शेष बोल कहिवा नथी, बोल न पावै जेह ।।
३९. जेम कह्या छै नारकी, इम यावत थणियकुमार ।
पृथ्वीकायिक हे प्रभु ! स्यूं क्रियावादी प्रश्न सार ।।
४०. जिन कहै क्रियावादी नहीं, अक्रियावादी तेह ।
अनाणवादी पिण हुवै, विनयवादी नहीं जेह ।।

सोरठा

४१. क्रियावादी नांय, मिथ्यादृष्टिपणां थकी ।
अक्रियवादी पाय, अज्ञानवादी पिण हुवै ।।

३४. नेरइया णं भंते ! किं किरियावादी—पुच्छा ।
गोयमा ! किरियावादी वि जाव वेणइयवादी वि ।
(श. ३०।७)

३५. सलेस्सा णं भंते ! नेरइया किं किरियावादी ? एवं चेव । एवं जाव काउलेस्सा ।

३६. कण्हपक्खिया किरियाविवज्जिया । एवं एएणं कमेणं

३७. जच्चेव जीवाणं वत्तव्वया सच्चेव नेरइयाण वि जाव अणागारोवउत्ता, नवरं—

३८. जं अत्थि तं भाणियव्वं, सेसं न भण्णति ।

३९. जहा नेरइया एवं जाव थणियकुमारा । (श. ३०।८)
पुढविकाइया णं भंते । किं किरियावादी—पुच्छा ।

४०. गोयमा ! नो किरियावादी, अकिरियावादी वि, अण्णाणियवादी वि, नो वेणइयवादी ।

४१. 'नो किरियावाई' त्ति मिथ्यादृष्टित्वात्तेषामक्रियावादिनोऽज्ञानिकवादिनश्च ते भवन्ति, (वृ. प. ९४४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. तेहनें वाद अभाव, तो पिण वादज जोग्य जे ।
जीव परिणाम सद्भाव, तेह थकी बिचला बिहुं ।।

४२. वादाभावेऽपि तद्वादयोग्यजीवपरिणामसद्भावात्, (वृ. प. ९४४)

४३. विनयवादी नहिं होय, तथाविध परिणाम नां-
अभाव थी अवलोय, वृत्ति थकी ए आखियो ।।

४३. वैनयिकवादिनस्तु ते न भवन्ति तथाविधपरिणामादिति, (वृ. प. ९४४,९४५)

४४. * इम पृथ्वीकायिक नें जे बोल छै,
ते सर्व बोल रै मांहि ।
ए समवसरण बिचला बिहुं, जाव अनाकार लग ताहि ।।

४४. एवं पुढविकाइयाणं जं अत्थि तत्थ सव्वत्थ वि एयाइं दो मज्झिल्लाइं समोसरणाइं जाव अणागारोवउत्ता वि ।

४५. इम यावत चउरिंद्रिय लगै, सर्व स्थानक नें विषेह ।
एहिज निश्चै करी हुवै, समवसरण बिचला बेह ।।

४५. एवं जाव चउरिंदियाणं । सव्वट्ठाणेसु एयाइं चेव मज्झिल्लगाइं दो समोसरणाइं ।

वा०—जे बेइंद्रियादिक में सास्वादन भाव करिकै सम्यक्त्व अनैं ज्ञान वांछियै तेहनैं विषे क्रियावादीपणुं युक्त तेहनां स्वभावपणां थकी, इसी आशंका टालवा नैं अर्थे कहै छै—

वा०—ननु द्वीन्द्रियादीनां सासादनभावेन सम्यक्त्वं ज्ञानं चेष्यते तत्र क्रियावादित्वं युक्तं तत्स्वभावत्वादित्याशङ्क्याह— (वृ. प. ९४५)

४६. सम्यक्त्व ज्ञान विषे अपि, एहिज बिचला दोय ।
समवसरण पावै अछै, विकलेंद्रिय में जोय ।।

४६. सम्मत्तनाणेहि वि एयाणि चेव मज्झिल्लगाइं दो समोसरणाइं ।

सोरठा

४७. बेइंद्रियादिक मांय, सास्वादन भावे करी ।
सम्यक्त्व ज्ञानज पाय, तो क्रियावादी किम नथी ।।

४८. क्रियावादी जोय, विशिष्ट जे सम्यक्त्व नां ।
परिणामें हिज होय, पिण सास्वादन में नथी ।।

४९. विनयवादी पिण ताम, मिश्र-मिथ्या-दृष्टि तणां ।
विशिष्ट जे परिणाम, तेह विषेज हुवै अछै ।।

४८,४९. क्रियावादविनयवादौ हि विशिष्टतरे सम्यक्त्वादिपरिणामे स्यातां न सासादनरूपे इति भावः, (वृ. प. ९४५)

५०. ते माटै अवलोय, बेइंद्रियादिक नैं विषे ।
क्रियावादी नहिं होय, विनयवादी पिण नहिं हुवै ।।

५१. * पंचेंद्रिय तिर्यंच में, जीव तणीं पर जाण ।
णवरं बोल पावै जिके, कहिवा तेह पिछाण ।।

५१. पंचिदियतिरिक्खजोणिया जहा जीवा, नवरं—जं अत्थि तं भाणियव्वं ।

सोरठा

५२. तिरि पंचेंद्रिय तास, अलेशी अकषायि जे ।
प्रमुख बोल सुविमास, असंभव थी नहिं पूछवा ।।

५२. पञ्चेन्द्रियतिरश्चामलेश्याकषायित्वादि न प्रष्टव्यमसम्भवादिति भावः । (वृ. प. ९४५)

५३. *मनुष्य ते जीव तणीं परै, तिमज विशेष रहीत ।
व्यंतर ज्योतिषी वैमानिका, जिम असुरकुमार संगीत ।।

५३. मणुस्सा जहा जीवा तहेव निरवसेसं । वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा । (श. ३०।९)

***लय : श्री जिनधर्म जिन आगन्या दीयां**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पूर्वे समुच्चय जीव अनें चौबीस दण्डके जे बोल अनें समवसरण कह्या, तेहिज यन्त्र थकी कहियै है—

समुच्चय जीव में बोल पावै ४७

१. समुच्चय जीव
२. सलेशी
३. कृष्णलेशी
४. नीललेशी
५. कापोतलेशी
६. तेजुलेशी
७. पद्मलेशी
८. शुक्ललेशी
९. अलेशी
१०. कृष्णपाक्षिक
११. शुक्लपाक्षिक
१२. सम्यकदृष्टि
१३. मिथ्यादृष्टि
१४. मिश्रदृष्टि
१५. सनाणी
१६. मतिनाणी
१७. श्रुतनाणी
१८. अवधिनाणी
१९. मनपर्यवनाणी
२०. केवलनाणी
२१. अनाणी
२२. मतिअनाणी
२३. श्रुतअनाणी
२४. विभंगअनाणी
२५. आहारसण्णोवउत्ता
२६. भयसण्णोवउत्ता
२७. मैथुनसण्णोवउत्ता
२८. परिग्रहसण्णोवउत्ता
२९. नोसण्णोवउत्ता
३०. सवेदी
३१. स्त्रीवेदी
३२. पुरुषवेदी
३३. नपुंसकवेदी
३४. अवेदी
३५. सकषायी
३६. क्रोधकषायी
३७. मानकषायी
३८. मायाकषायी
३९. लोभकषायी
४०. अकषायी
४१. सजोगी
४२. मनजोगी
४३. वचनजोगी
४४. कायजोगी
४५. अजोगी
४६. सागारोवउत्ता
४७. अनागारोवउत्ता

नारकी में बोल पावै ३५

१. समुच्चय नारकी
२. सलेशी
३. कृष्णलेशी
४. नीललेशी
५. कापोतलेशी
६. कृष्णपाक्षिक
७. शुक्लपाक्षिक
८. सम्यकदृष्टि
९. मिथ्यादृष्टि
१०. मिश्रदृष्टि
११. समुच्चय ज्ञानी
१२. मतिज्ञानी
१३. श्रुतज्ञानी
१४. अवधिज्ञानी
१५. समुच्चय अज्ञानी
१६. मतिअज्ञानी
१७. श्रुतअज्ञानी
१८. विभंगअज्ञानी
१९. आहारसण्णोवउत्ता
२०. भयसण्णोवउत्ता
२१. मैथुनसण्णोवउत्ता
२२. परिग्रहसण्णोवउत्ता
२३. सवेदी
२४. नपुंसकवेदी
२५. सकषायी
२६. क्रोधकषायी
२७. मानकषायी
२८. मायाकषायी
२९. लोभकषायी
३०. सजोगी
३१. मनजोगी
३२. वचनजोगी
३३. कायजोगी
३४. सागारोवउत्ता
३५. अणागारोवउत्ता

बोल नथी पावै

१. तेजुलेशी
२. पद्मलेशी
३. शुक्ललेशी
४. अलेशी
५. मनपर्यवज्ञानी
६. केवलज्ञानी
७. नोसण्णोवउत्ता
८. स्त्रीवेदी
९. पुरुषवेदी
१०. अवेदी
११. अकषायी
१२. अजोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असुरकुमार आदि १० भवनपति में बोल पावै ३७

१. समुच्चय असुरकुमार
२. सलेशी
३. कृष्णलेशी
४. नीललेशी
५. कापोतलेशी
६. तेजुलेशी
७. कृष्णपाक्षिक
८. शुक्लपाक्षिक
९. सम्यकदृष्टि
१०. मिथ्यादृष्टि
११. मिश्रदृष्टि
१२. समुच्चय ज्ञानी
१३. मतिज्ञानी
१४. श्रुतज्ञानी
१५. अवधिज्ञानी
१६. समुच्चय अज्ञानी
१७. मतिअज्ञानी
१८. श्रुतअज्ञानी
१९. विभंग अज्ञानी
२०. आहारसण्णोवउत्ता
२१. भयसण्णोवउत्ता
२२. मैथुनसण्णोवउत्ता
२३. परिग्रहसण्णोवउत्ता
२४. सवेदी
२५. स्त्रीवेदी
२६. पुरुषवेदी
२७. सकषायी
२८. क्रोधकषायी
२९. मानकषायी
३०. मायाकषायी
३१. लोभकषायी
३२. सजोगी
३३. मनजोगी
३४. वचनजोगी
३५. कायजोगी
३६. सागारोवउत्ता
३७. अणागारोवउत्ता

बोल नथी पावे

१. पद्मलेशी
२. शुक्ललेशी
३. अलेशी
४. मनपर्यवज्ञानी
५. केवलज्ञानी
६. नोसण्णोवउत्ता
७. नपुंसकवेदी
८. अवेदी
९. अकषायी
१०. अजोगी

पृथ्वी, पानी, वनस्पति में बोल पावै २७

१. समुच्चय पृथ्वी
२. सलेशी
३. कृष्णलेशी
४. नीललेशी
५. कापोतलेशी
६. तेजुलेशी
७. कृष्णपाक्षिक
८. शुक्लपाक्षिक
९. मिथ्यादृष्टि
१०. अनाणी
११. मतिअनाणी
१२. श्रुतअनाणी
१३. आहारसण्णोवउत्ता
१४. भयसण्णोवउत्ता
१५. मैथुनसण्णोवउत्ता
१६. परिग्रहसण्णोवउत्ता
१७. सवेदी
१८. नपुंसकवेदी
१९. सकषायी
२०. क्रोधकषायी
२१. मानकषायी
२२. मायाकषायी
२३. लोभकषायी
२४. सजोगी
२५. कायजोगी
२६. सागारोवउत्ता
२७. अणागारोवउत्ता

बोल नथी पावे

१. पद्मलेशी
२. शुक्ललेशी
३. अलेशी
४. सम्यकदृष्टि
५. मिश्रदृष्टि
६. सनाणी
७. मतिज्ञानी
८. श्रुतज्ञानी
९. अवधिज्ञानी
१०. मनपर्यवज्ञानी
११. केवलज्ञानी
१२. विभंगअनाणी
१३. नोसण्णोवउत्ता
१४. स्त्रीवेदी
१५. पुरुषवेदी
१६. अवेदी
१७. अकषायी
१८. मनजोगी
१९. वचनजोगी
२०. अजोगी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेऊ, वाऊ में बोल पावै २६।

पृथ्वी, पानी, वनस्पति में २७ बोल पावै। त्यां मांहिलो एक तेजुलेशी नथी।

तीन विकलेंद्रिय में बोल पावै ३१।

२६ बोल तो तेऊ, वाऊ में बोल पावै तिके अनै १. समदृष्टि, २. सनाणी, ३. मतिनाणी, ४. श्रुतनाणी, ५. वचनजोगी—ए ५ बोल बध्या।

तिर्यंच पंचेंद्रिय में बोल पावै ४०।

१. अलेशी, २. मनपर्यवज्ञानी, ३. केवलज्ञानी, ४. नोसण्णोवउत्ता, ५. अवेदी ६. अकषायी, ७. अजोगी—ए ७ बोल नथी पावै।

मनुष्य में बोल पावै ४७।

समुच्चय जीववत।

व्यंतर में बोल पावै ३७। असुरकुमारवत।

ज्योतिषी में बोल पावै ३४		**बोल नथी पावै**
१. समुच्चय ज्योतिषी	१८. भयसण्णोवउत्ता	१. कृष्णलेशी
२. सलेशी	१९. मैथुनसण्णोवउत्ता	२. नीललेशी
३. तेजुलेशी	२०. परिग्रहसण्णोवउत्ता	३. कापोतलेशी
४. कृष्णपाक्षिक	२१. सवेदी	४. पद्मलेशी
५. शुक्लपाक्षिक	२२. स्त्रीवेदी	५. शुक्ललेशी
६. सम्यकदृष्टि	२३. पुरुषवेदी	६. अलेशी
७. मिथ्यादृष्टि	२४. सकषायी	७. मनपर्यवज्ञानी
८. मिश्रदृष्टि	२५. क्रोधकषायी	८. केवलज्ञानी
९. सज्ञानी	२६. मानकषायी	९. नोसण्णोवउत्ता
१०. मतिज्ञानी	२७. मायाकषायी	१०. नपुंसकवेदी
११. श्रुतज्ञानी	२८. लोभकषायी	११. अवेदी
१२. अवधिज्ञानी	२९. सजोगी	१२. अकषायी
१३. अनाणी	३०. मनजोगी	१३. अजोगी।
१४. मतिअनाणी	३१. वचनजोगी	
१५. श्रुतअनाणी	३२. कायजोगी	
१६. विभंगअनाणी	३३. सागारोवउत्ता	
१७. आहारसण्णोवउत्ता	३४. अणागारोवउत्ता	

पहिला, दूजा देवलोक में बोल पावै ३४

ज्योतिषीवत।

तीजै, चौथे, पंचमें देवलोक में बोल पावै ३३

ज्योतिषीवत १. इहां तेजुलेश्या न कहिणी, पद्मलेश्या पावै। ३४ बोलां मांहिलो एक स्त्रीवेदी टल्यो।

छठा देवलोक सूं लेई बारमां देवलोक तांई बोल पावै ३३

तीजै, चौथे, पंचमां देवलोकवत। इहां पद्मलेश्या न कहिणी, शुक्ललेश्या कहिणी।

नव ग्रैवेयक में बोल पावै ३२

एक मिश्रदृष्टि नथी पावै।

पांच अनुत्तर विमान में बोल पावै २६		बोल नथी पावै
१. समुच्चय अनुत्तर विमान	१४. सवेदी	१. कृष्णलेशी
२. सलेशी	१५. पुरुषवेदी	२. नीललेशी
३. शुक्ललेशी	१६. सकषायी	३. कापोतलेशी
४. शुक्लपाक्षिक	१७. क्रोधकषायी	४. तेजुलेशी
५. समदृष्टि	१८. मानकषायी	५. पद्मलेशी
६. सज्ञानी	१९. मायाकषायी	६. अलेशी
७. मतिज्ञानी	२०. लोभकषायी	७. कृष्णपाक्षिक
८. श्रुतज्ञानी	२१. सजोगी	८. मिथ्यादृष्टि
९. अवधिज्ञानी	२२. मनजोगी	९. मिश्रदृष्टि
१०. आहारसण्णोवउत्ता	२३. वचनजोगी	१०. मनपर्यवज्ञानी
११. भयसण्णोवउत्ता	२४. कायजोगी	११. केवलज्ञानी
१२. मैथुनसण्णोवउत्ता	२५. सागारोवउत्ता	१२. अनाणी
१३. परिग्रहसण्णोवउत्ता	२६. अणागारोवउत्ता	१३. मतिअनाणी
		१४. श्रुतअनाणी
		१५. विभंग अनाणी
		१६. नोसण्णोवउत्ता
		१७. स्त्रीवेदी
		१८. नपुंसकवेदी
		१९. अवेदी
		२०. अकषायी
		२१. अजोगी ।

छप्पय

५४. नरक बोल पैंतीस, भवन व्यंतर सैंतीसा ।
ज्योतिषी धुर बे कल्प, बोल लाभै चउतीसा ।
तृतीय कल्प थी जाव, अच्युत कल्पे तेतीसा ।
ग्रैवेयक बत्तीस, अनुत्तर सुरे छब्बीसा ।
सत्तवीस पृथ्वी अप वनस्पति, षटवीस तेजु वायु मही ।
इकतीस विकल असन्नी विषे, सन्नी तिरि चालीस ही ।।

सोरठा

५५. समुच्चय जीव जगीस, मनुष्य विषे लाभै वली ।
बोल सप्त चालीस, पंडित लेखो कीजियै ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिव समुच्चय जीव अनैं चउबीस दंडके जे बोल पावै, तेहमें समवसरण पावै ते कहियै छै।

समुच्चय जीव में ४७ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समवसरण	१ क्रियावादी	२ अक्रियावादी	३ अज्ञानवादी	४ विनयवादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६. विभंग अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. अलेशी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१०. मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१३. मनपर्यवज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१४. केवलज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१५. नोसण्णोवउत्ता में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१६. अवेदी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१७. अकषायी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१८. अजोगी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१९. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
२०-४७. शेष २८ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

नारकी में ३५ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समवसरण	१ क्रियावादी	२ अक्रियावादी	३ अज्ञानवादी	४ विनयवादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६. विभंगअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९. मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१० श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
१३-३५. शेष २३ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवनपति अनें वाणव्यंतर में ३७ बोल पाव। तिण मांहो समवसरण—

	समवसरण	क्रियावादी	अक्रियावादी	अज्ञानवादी	विनयवादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६. विभंगअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९. मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१०. श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
१३-३७. शेष २५ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

पृथ्वी, पानी, वनस्पति में बोल २७। तेऊ, वायु में बोल २६। तीन विकलेन्द्रिय में ३१ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

आपणै-आपणै ठिकाणैं जेतला बोल पावै, ते मांही समवसरण २ पावै—अक्रियावादी, अज्ञानवादो।

तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ४० बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समवसरण	क्रियावादी	अक्रियावादी	अज्ञानवादी	विनयवादी
१. कृष्णपाक्षिक में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६ विभंगअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९ मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१०. श्रुतज्ञानी में	१	पाव	नहीं	नहीं	नहीं
११. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
१३-४०. शेष २८ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य में ४७ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समव सरण	क्रिया वादी	अक्रिया वादी	अज्ञान वादी	विनय वादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पाव	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पाव	पावै	पावै
६. विभंग अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. अलेशी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१०. मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१३, मनपर्यवज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१४. केवलज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१५. नोसण्णोवउत्ता में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१६. अवेदी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१७. अजोगी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१८. अकषायी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१९. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
२०-४७. शेष २८ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

व्यंतर में ३७ बोल पावै। तिण मांही समवसरण भवनपतिवत।

ज्योतिषी तथा पहला दूजां देवलोक में ३४ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समव सरण	क्रिया वादी	अक्रिया वादी	अज्ञान वादी	विनय वादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६. विभंगअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९. मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१०. श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
१३-३४. शेष २२ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीसरे से बारहवें देवलोक में ३३ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समवसरण	क्रियावादी	अक्रियावादी	अज्ञानवादी	विनयवादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६. विभंगअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
९. मतिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१०. श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२. मिश्रदृष्टि में	२	नहीं	नहीं	पावै	पावै
१३-३३. शेष २१ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

नव ग्रैवेयक में ३२ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

	समवसरण	क्रियावादी	अक्रियावादी	अज्ञानवादी	विनयवादी
१. कृष्णपक्षी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
२. मिथ्यादृष्टि में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
३. अज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
४. मतिअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
५. श्रुतअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
६. विभंगअज्ञानी में	३	नहीं	पावै	पावै	पावै
७. सम्यकदृष्टि में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
८. सज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नही
९. मतिज्ञानी में	१	पावै	नही	नहीं	नहीं
१०. श्रुतज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
११. अवधिज्ञानी में	१	पावै	नहीं	नहीं	नहीं
१२-३२. शेष २१ बोलों में	४	पावै	पावै	पावै	पावै

पांच अनुत्तर विमान में २६ बोल पावै। तिण मांही समवसरण—

सभी बोलों में समवसरण १ क्रियावादी पावै।

सोरठा

५६. जीवादिक पणवीस, पद नें विषेज आखिया।
समवसरण सुजगीस, तसु आयुबंध हिव कहै।।

५७. *शत तीसम नुं देश ए, चिहुं सौ पचितरमीं ढाल।
भिक्षु भारीमल ऋषिराय थी, 'जय-जश' मंगलमाल।

५६. जीवादिषु पञ्चविंशतौ पदेषु यद्यत्र समवसरणमस्ति तत्तत्रोक्तम्, अथ तेष्वेवायुबंधनिरूपणायाह—
(वृ. प. ९४५)

*लय : श्री जिनधर्म जिन आगन्या दीया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४७६

समवसरणगत जीवों का आयुष्यबन्ध

दूहा

१. प्रभु ! क्रियावादी जीवड़ा, स्यूं नरकायु पकरंत ?
तिरि मनु सुर नों आउखो, पकरै ते बांधंत ?

२. जिन कहै नारकी तिरि तणुं, आयु पकरै नांहि।
मनुष्य देव नों आउखो, बांधै पकरै ताहि ।।

वा०— क्रियावादी नारकी, देवता तिके मनुष्य नों आउखो बांधै अनैं क्रियावादी मनुष्य, तिर्यंच एक वैमानिक रो आउखो बांधै।

१. किरियावादी णं भंते ! जीवा किं नेरइयाउयं पकरेंति ? तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति ? मणुस्साउयं पकरेंति ? देवाउयं पकरेंति ?

२. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति देवाउयं पि पकरेंति। (श. ३०।१०)

सोरठा

३. नारकि वा सुर जाण, क्रियावादी छै तिके।
मनुष्य तणों पहिछाण, आउखो बांधै जिके ।।

४. मनुष्य अनैं तिर्यंच क्रियावादी छै तिके।
सुरवर नों शुभ संच, आउखो बांधै जिके ।।

३. तत्र ये देवा नारका वा क्रियावादिनस्ते मनुष्यायुः प्रकुर्वन्ति। (वृ. प. ९४५)

४. ये तु मनुष्याः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चो वा ते देवायुरिति। (वृ. प. ९४५)

दूहा

५. जो सुर नों आयू करै, तो भवणपती नों तेह।
यावत वैमानिक तणों, आयु पकरै जेह ?

६. जिन कहै भवनपती तणुं, आयु नहिं बांधेह।
व्यंतर ज्योतिषी नों वलि, आयु नहिं पकरेह ।।

७. वैमानिक सुर नुं तिको, आयु बांधै ताय।
मनु तिर्यंच पंचेंद्रिय, आश्रयी ए वाय ।।

८. अक्रियावादी जीवड़ा, नारक आयु स्वाम !
बांधै छै इत्यादि जे, पूछचो प्रश्न तमाम ।।

९. जिन कहै नारक आउखो, बांधै पकरै जेह।
जावत देव तणुं अपि, आयु बांधै तेह ।।

१०. अनाणवादी पिण इमज, विनयवादी पिण एम।
च्यारूं गति नों आउखो, बांधै पकरै तेम ।।

५. जइ देवाउयं पकरेंति किं भवणवासिदेवाउयं पकरेंति जाव वेमाणियदेवाउयं पकरेंति ?

६. गोयमा ! नो भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, नो वाणमंतरदेवाउयं पकरेंति, नो जोइसियदेवाउयं पकरेंति,

७. वेमाणियदेवाउयं पकरेंति। (श. ३०।११)

८. अकिरियावादी णं भंते ! जीवा किं नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं— पुच्छा।

९. गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति जाव देवाउयं पि पकरेंति।

१०. एवं अण्णाणियवादी वि वेणइयवादी वि। (श. ३०।१२)

*च्यारूं समवसरण जिन भाखिया रे लाल ।। (ध्रुपदं)

११. किरियावादी सलेशी जीवड़ा रे लाल,
स्यूं नारक आयु पकरेह हो ? सुगुण जन।
तिर्यंच मनुष्य नै देव नों रे लाल,
बांधै आउखो जेह हो ? सुगुण जन।

११. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरइयाउयं पकरेंति— पुच्छा।

---

*लय : पुन्य नीपजै शुभ जोग सूं रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. जिन कहै न बांधै नारक आउखो रे लाल,
इम जिम जीव कह्या तिमहीज हो । सु०।
तिमज सलेशी जाणवा रे लाल,
समवसरण च्यारूं ही कहीज हो ।। सु० ।

१२. गोयमा ! नो नेरइयाउयं, एवं जहेव जीवा तहेव सलेस्सा वि चउहि वि समोसरणेहिं भाणियव्वा ।
(श. ३०।१३)

१३. कृष्णलेशी क्रियावादी जीवड़ा रे लाल,
स्यूं नारक आयु स्वाम हो । सु० ।
पकरै इत्यादिक पूछियां रे लाल,
भाखै जिन गुणधाम हो ।। सु० ।

१३. कण्हलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरइयाउयं पकरेंति—पुच्छा ।
गोयमा !

१४. नहीं बांधै नारक नों आउखो रे लाल,
आयु तिर्यंच नों न बांधंत हो । सु० ।
बांधै मनुष्य नों आउखो रे लाल,
देवायु नहीं पकरंत हो ।। सु० ।

१४. नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति ।

सोरठा

१५. मनुष्य आयु अवधार, बांधै आख्यो छै इहां ।
ते नरक असुरकुमार, प्रमुख आश्रयी जाणवूं ।।
१६. क्रियावादी जाण, पंचेंद्रिय तिर्यंच मनु ।
भाव कृष्ण वर्त्तमान, आउखो बांधै नथी ।।
१७. शुभ लेश्या रै मांहि, समदृष्टि मनु पं. तिरि ।
वैमानिक नुं ताहि, आयु बांधै ते भणी ।।
१८. नारक नैं असुरादि, द्रव्यलेश कृष्णादि में ।
मनुष्य तणों संवादि, आऊखो बांधै तिके ।।
१९. ते द्रव्यलेश पेक्षाय, मनुष्यायु बांधै कह्यं ।
पिण भावलेश शुभ थाय, तेहनों कथन इहां नथी ।।

१५. 'मणुस्साउयं पकरेंति' त्ति यदुक्तं तन्नारकासुरकुमारादीनाश्रित्यावसेयं, (वृ. प. ९४५)
१६,१७. यतो ये सम्यग्दृष्टयो मनुष्याः पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चश्च ते मनुष्यायुर्न बध्नन्त्येव वैमानिकायुर्बन्धकत्वात्तेषामिति । (वृ. प. ९४५)

२०. *कृष्णलेशी अक्रियावादी जीवड़ा रे लाल,
अनाणवादी जेह हो । सु० ।
कृष्णलेशी विनयवादी पिण तिके रे लाल,
चिहुं गति नों पिण आउखो बांधेह हो ।। सु० ।

२०. अकिरियावादी अण्णाणियवादी वेणइयवादी य चत्तारि वि आउयाइं पकरेंति ।

समीक्षा अशुभलेश्या में आयुबन्ध की

सोरठा

२१. 'अक्रियावादी आदि, कृष्णलेशी तिर्यंच मनु ।
तसु आयुबंध लाधि, भवनपती व्यंतर तणुं ।।
२२. द्रव्यलेश्या छै एह, तिण में सुर आयु बंधै ।
अशुभ भाव-लेशेह, देवायु बांधै नथी ।।
२३. सूत्र भगवती मांहि, तृतीय शतक में आखियो ।
तुर्य उद्देशे ताहि, एहवो पाठ कह्यो अछै ।।
२४. जे लेश्या नां जाण, द्रव्य प्रतै जे ग्रहण करि ।
काल करै तज प्राण, ते लेश्या में ऊपजै ।।
२५. असुर विषे इण न्याय, उपजै जे तिर्यंच मनु ।
तो छेहड़ै तसु पाय, कृष्णादिक चिहुं मांहिली ।।

२३,२४. गोयमा ! जल्लेसाइं दव्वाइं परियाइत्ता कालं करेइ, तल्लेसेसु उववज्जइ ।
(भगवई श. ३।१८३-१८५)

*लय : पुन्य नीपजै शुभ जोग सूं रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२६. द्रव्यलेश अवदात, आख्यो हिव कहूं भाव नुं।
उत्तराध्ययने ख्यात, अध्येन चउतीसम विषे।।

२७. धुर त्रिहुं अधर्म लेश, ते अधर्म लेश्या करी।
दुर्गति विषे प्रवेश, भावलेश ए जाणवी।।

२८. छेहली त्रिहुं धर्म लेश, तेह धर्मलेश्या करी।
सुगति विषेज प्रवेश, ए पिण लेश्या भाव छै।।

२९. तिरि मनु असुर विषेह, उपजै तेहनें अंत द्रव्य।
कृष्णादिक ग्रहणेह, पिण भावे शुद्ध लेश्या तदा।।

३०. असुर विषेज ताय, जघन्य स्थितिक तिरि ऊपजै।
प्रशस्त अध्यवसाय, आख्या शत चउवीसमें।।

३१. एकेंद्रिय रै मांहि, सौधर्म सुर चवि ऊपजै।
द्रव्य तेजु सुर मांहि, भाव अशुद्ध लेश्या तदा।।

३२. कृष्णादिक नरकेह, द्रव्यलेश अशुद्ध त्यां।
लहिसै नर भव जेह, भावे शुक्ल लेश्या करी।।

३३. नारकि नें सुर मांहि, भावे षट लेश्या कही।
उत्तराध्यने ताहि, अध्येन चउतीसम वृत्तौ।।

३४. इण न्याये अवलोय, द्रव्य कृष्णलेशी नर तिरि।
अक्रियावादी सोय, शुद्ध भावलेश करि असुर ह्वै।।

३५. असन्नी नरके जाय, भावलेश जो अशुभ तसु।
तो असन्नी सुर थाय, तसु भावलेश शुभ किम न ह्वै।।

३६. प्रशस्त अध्यवसाय, असन्नी सुर हुवै तेहनां।
धुर त्रिहुं लेश्या ताय, ए द्रव्यलेश्या आश्रयी।।

३७. अपसत्थ अध्यवसाय, एकेंद्रिय हुवै सोहम सुर।
तेजु लेश तिहां पाय, ए पिण द्रव्यलेश्या अछै।।

३८. नारक मरी जिन थाय, प्रशस्त अध्यवसाय में।
अशुभ लेश द्रव्य ताय, तिम ए असन्नी जाणवो।।

३९. एकेंद्रिय मरि ताय, प्रशस्त अध्यवसाय में।
पूर्व कोड़ मनु थाय, द्रव्यलेश कृष्णादि तसु।।

४०. एकेंद्रिया रै ताय, मनु पुव्व कोटचायु बंधै।
स्यूं धर्मलेश्या तसु थाय, कह्यु धर्मलेश्या में सुगति बंध।।

४१. दशवैकालिक मांय, संजम नें तप धर्म बे।
कायकलेश कहाय, तप धर्म एकेंद्रिय विषे।।

४२. प्रशस्त अध्यवसाय, एकेंद्रिय रै जिन कह्या।
भावलेश शुभ ताय, ते पिण जाणै केवली'।। (ज० स०)

४३. *इम नील कापोत पिण जाणवी रे लाल,
क्रियावादी तेजुलेशी जीव हो। सु०।
स्यूं बांधै नारकी नों आउखो रे लाल ?,
इत्यादि प्रश्न कहीव हो।। स०।

*लय : पुन्य नीपजै शुभ जोग सूं रे

२७. किण्हा नीला काऊ, तिन्नि वि एयाओ अहम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, दुग्गइं उववज्जई बहुसो।।
(उत्तर. ३४।५६)

२८. तेऊ पम्हा सुक्का, तिन्नि वि एयाओ धम्मलेसाओ।
एयाहि तिहि वि जीवो, सुग्गइं उववज्जई बहुसो।।
(उत्तर. ३४।५७)

३०. ते णं भंते ! ......जाहे अप्पणा जहन्नकालट्ठितीओ भवति ताहे अज्झवसाणा पसत्था,
(भगवई २४।१३३)

३३. देवाण नारयाण य दव्वलेसा भवंति एयाओ।
भावपरावत्तीए सुरनेरइयाण छल्लेसा।।
(उत्तर. वृ. प. ६५९)

३६. ....अज्झवसाणा पसत्था नो अपसत्था....
(भगवती २४।११८)

३९. अज्झवसाणा....ततियगमए पसत्था।
(भगवती २४।२९९)

४१. धम्मो मंगलमुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो।
(दसवे. १।१)

४२. (भगवती २४।१६७)

४३. एवं नीललेस्सा वि, काउलेस्सा वि।
(श. ३०।१४)

तेउलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरइयाउयं पकरेंति—पुच्छा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. जिन कहै नारक तिरि तणों रे लाल,
आउखो बांधै नांहि हो । सु० ।
मनुष्य अनें वलि देव नों रे लाल,
बांधै आउखो ताहि हो ।। सु० ।

४५. जो बांधै आउखो देव नों रे लाल,
स्यूं भवनपति इत्यादि हो । सु० ।
तिमहिज वैमानिक तणों रे लाल,
बंधै मनुष्य तिर्यंच संवादि हो ।। सु० ।

४६. तेजुलेशी भगवंतजी! रे लाल,
अक्रियावादी जीव हो । सु० ।
स्यूं बांधै नारकि नों आउखो रे लाल ?,
इत्यादि प्रश्न कहीव हो ।। सु० ।

४७. जिन कहै न बांधै नारक आउखो रे लाल,
आयु तिर्यंच नों बांधेह हो । सु० ।
बांधै मनुष्य तणों पिण आउखो रे लाल,
देवायु पिण पकरेह हो ।। सु० ।

४८. एवं अज्ञानवादी अछै रे लाल,
कहिवा विनयवादी पिण एम हो । सु० ।
तेजुलेशी जिम आखिया रे लाल,
पद्म-शुक्ल-लेशी पिण तेम हो ।। सु० ।

वा०—१. अक्रियावादी २. अनाणवादी ३. विनयवादी तेजु-पद्म-शुक्ल-लेशी देवता मनुष्य अनें तिर्यंच रो आउखो बांधै । अनें ए तीन लेश्यावंत तीन समवसरण वाला मनुष्य, तिर्यंच छै तिके देवता नों आउखो बांधै ।।

४९. अलेशी प्रभु ! जीवड़ा रे लाल,
क्रियावादी छै जेह हो । सु० ।
स्यूं बांधै नारक नों आउखो रे लाल ?
इत्यादि प्रश्न पूछेह हो ।। सु० ।

५०. जिन कहै अलेशी तणें रे लाल,
च्यारूं गति रो आउखो बांधै नांय हो । सु० ।
अलेशी तो अजोगी तथा सिद्ध छै रे लाल,
त्यांरै आउखो नहिं बंधाय हो ।। सु० ।

५१. कृष्णपक्षी प्रभु ! जीवड़ा रे लाल,
अक्रियावादी जेह हो । सु० ।
स्यूं बांधै नारक नों आउखो रे लाल,
इत्यादि प्रश्न पूछेह हो ।। सु० ।

५२. जिन कहै च्यारूं ही गति तणों रे लाल,
आउखो तेह बांधंत हो । स० ।
इम अज्ञानवादी पिण जाणवा रे लाल,
विनयवादी पिण इम हुंत हो ।। स० ।

४४. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्ख-जोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

४५. जइ देवाउयं पकरेंति तहेव । (श. ३०।१५)

४६. तेउलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावादी किं नेरइयाउयं—पुच्छा ।

४७. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

४८. एवं अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि । जहा तेउलेस्सा एवं पम्हलेस्सा वि सुक्कलेस्सा वि नायव्वा । (श. ३०।१६)

वा०—तेउलेस्साणं भंते ! जीवा अकिरियावादी किं नेरइयाउयं—पुच्छा ।
गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति । एवं अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि । जहा तेउलेस्सा एवं पम्हलेस्सा पि सुक्कलेस्सा वि नायव्वा । (भगवती ३०।१६)

४९. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरइया-उयं—पुच्छा ।

५०. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्ख-जोणियाउयं पकरेंति, नो मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति । (श. ३०।१७)
अलेश्याः—सिद्धा अयोगिनश्च, ते चतुर्विधमप्यायुर्न बध्नन्तीति, (वृ. प. ९४५)

५१. कण्हपक्खिया णं भंते ! जीवा अकिरियावादी किं नेरइयाउयं—पुच्छा ।

५२. गोयमा ! नेरइयाउयं पि पकरेंति, एवं चउविहं पि । एवं अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. शुक्लपाक्षिका जीवड़ा रे लाल,
सलेशी जिम कहिवाय हो । सु० ।
क्रियावादी समदृष्टि प्रभु ! जीवड़ा रे लाल,
स्यूं नारकायु पूछाय हो ।। सु० ।

५३. सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा । (श. ३०।१८)
सम्मदिट्ठीणं भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरइयाउयं—पुच्छा ।

५४. जिन कहै नारकि तिर्यंच नों रे लाल,
आयु न बांधै जेह हो । सु० ।
मनुष्य अनै वलि देव नों रे लाल,
बांधै आउखो तेह हो ।। सु० ।

५४. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

वा०—समदृष्टि क्रियावादी मनुष्य, तिर्यंच तो देवता रोआउखो बांधै । देवतां नै विषे पिण वैमानिक नों बांधै । अनैं समदृष्टि क्रियावादी नारकी, देवता एक मनुष्य नों हीज आउखो बांधै ।

वा.—सम्यदिट्ठीणं भंते ! जीवा किरियावादी किं नेरइयाउयं - पुच्छा…।
जइ देवाउयं पकरेंति… (भगवती ३०।१९।११)

५५. मिथ्यादृष्टि कृष्णपाक्षिक नीं परै रे लाल,
प्रभु ! समामिथ्यादृष्टि जीव हो । सु० ।
अज्ञानवादी छै तिके रे लाल,
स्यूं नारक आयु पूछीव हो ।। सु० ।

५५. मिच्छादिट्ठी जहा कण्हपक्खिया । (श. ३०।१९)
सम्मामिच्छादिट्ठी णं भंते ! जीवा अण्णाणियवादी किं नेरइयाउयं ?

५६. कहिवा अलेशी नीं परै रे लाल,
विनयवादी पिण एम हो । सु० ।
मिश्रदृष्टि रै च्यारूं गति तणों रे लाल,
आयु न बांधै तेम हो ।। सु० ।

५६. जहा अलेस्सा । एवं वेणइयवादी वि ।
सम्यग्मिथ्यादृष्टिपदे 'जहा अलेस्स' त्ति समस्तायूंषि न बध्नन्तीत्यर्थः । (वृ. प. ९४५)

५७. समुच्चय ज्ञानी मति-श्रुत-ज्ञानो वली रे लाल,
अवधिज्ञानी अधिकार हो । सु० ।
कहिवा समदृष्टि नीं परै रे लाल,
बांधै मनुष्य देवायु सार हो ।। सु० ।

५७. नाणी आभिणिबोहियनाणी य सुयनाणी य ओहिनाणी य जहा सम्मदिट्ठी । (श. ३०।२०)

वा०—समुच्चय ज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी मनुष्य, तिर्यंच छै तिके एक देवता में वैमानिक नों आउखो बांधै । अनै नारकी, देवता छै तिके मनुष्य नों आउखो बांधै ।

५८. प्रभु ! मनपज्जव तणीं पृच्छा रे लाल,
भाखै जिन गुणगेह हो । स० ।
धुर त्रिण गति आयु नहिं बांधै रे लाल,
देवायु पकरेह हो ।। सु० ।

५८. मणपज्जवनाणी णं भंते !—पुच्छा ।
गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, नो मणुस्साउयं पकरेंति, देवाउयं पकरेंति । (श. ३०।२१)

५९. जो बांधै आउखो देव नों रे लाल,
तो स्यूं भवनपति नों बांधंत हो ? सु० ।
इत्यादि पूछा कियां रे लाल,
भाखै तब भगवंत हो ।। सु० ।

५९. जइ देवाउयं पकरेंति किं भवणवासि—पुच्छा ।
गोयमा !

६०. भवनपत्यायु बांधै नहीं रे लाल,
व्यंतरायु बांधै नांय हो । सु० ।
न बांधै आउखो ज्योतिषी तणों रे लाल,
वैमानिक नुं बंधाय हो ।। सु० ।

६०. नो भवणवासिदेवाउयं पकरेंति, नो वाणमंतरदेवाउयं पकरेंति, नो जोइसियदेवाउयं पकरेंति, वेमाणियदेवाउयं पकरेंति ।

६१. केवलज्ञानी अलेशी तणीं परै रे लाल,
अज्ञानी यावत जाण हो । स० ।
विभंगअज्ञानी तिके वली रे लाल,
कृष्णपाक्षिक जिम आण हो ।। स० ।

६१. केवलनाणी जहा अलेस्सा । अण्णाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६२. च्यारूं ही संज्ञा विषे रे लाल, सलेशी जिम सोय हो । सु० ।
नोसण्णोवउत्ता जिके रे लाल, मनपज्जव जिम जोय हो ।।सु० ।

६२. सण्णासु चउसु वि जहा सलेस्सा। नोसण्णोवउत्ता जहा मणपज्जवनाणी ।

६३. सवेदक यावत वली रे लाल, वेद नपुंसक न्हाल हो । सु० ।
सलेशी नीं परै जाणवा रे लाल,
अवेदी अलेशी जिम भाल हो ।। सु० ।

६३ सवेदगा जाव नपुंसगवेदगा जहा सलेस्सा। अवेदगा जहा अलेस्सा।

६४. सकषाई यावत वली रे लाल,
लोभकषाई ताय हो । सु० ।
कहिवा सलेशी तणीं परै रे लाल,
अकषाई अलेशी जिम थाय हो ।। सु० ।

६४. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा। अकसायी जहा अलेस्सा।

६५. सजोगी यावत वली रे लाल, कायजोगी कहिवाय हो।सु०।
सलेशी नीं परै ए सही रे लाल,
अजोगी अलेशी जिम आय हो ।। सु० ।

६५. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा। अजोगी जहा अलेस्सा।

६६. सागारोवउत्ता जिके वली रे लाल,
अनाकार उपयुक्त हो । सु० ।
कहिवा सलेशी तणीं परै रे लाल,
ए बोल सैंतालीस उक्त हो ।। सु० ।

६६. सागारोवउत्ता य अणागारोवउत्ता य जहा सलेस्सा। (श. ३०।२२)

६७. शत तीसम देश प्रथम तणुं रे लाल,
च्यारसौ नें छीहंतरमी ढाल हो । सु० ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे लाल,
'जय-जश' मंगलमाल हो ।। सु० ।

ढाल : ४७७

समवसरणगत २४ दंडकों का आयुबन्ध

दूहा

१. हिव दंडक चउवीस जे, क्रियावादी आदि।
किण गति नों आयू तिके, बांधै प्रश्न संवादि ।।

*चतुर नर ! समवसरण जिन ख्यात ।। (ध्रुपदं)

२. क्रियावादी नेरइया रे, स्यूं नारकि आयु बांधंत।
कै तिरि मनु सुर नों आउखो रे, बांधै हे भगवंत ?

२. किरियावादी णं भंते ! नेरइया किं नेरइयाउयं— पुच्छा।

३. जिन कहै नारकि तिरि तणुं रे, आयू बांधै नांय।
मनुष्यायु बांधै तिको रे, सुर आयु न बंधाय ।।

३. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्ख-जोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति। (श. ३०।२३)

सोरठा

४. तिहां नारकी तेह, नारकि सुर नों आउखो।
बिहुं नहिं बांधै जेह, ते भव नां अनुभाव थी ।।

४. यन्नैरयिकायुर्देवायुश्च न प्रकुर्वन्ति क्रियावादि-नारकास्तन्नारकभवानुभावादेव, (वृ. प. ९४६)

***लय : पहिलां थी म्है सांभली रे**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. तिर्यंच तणूंज तास, आऊखो बांध नथी ।
क्रियावादी विमास, तेह तणां अनुभाव थी ॥

५. यच्च तिर्यगायुर्न प्रकुर्व्वन्ति तत्क्रियावादानुभावा-
दित्यवसेयं, (वृ. प. ९४६,९४७)

६. *प्रभु ! अक्रियावादी नारकी रे,
स्यूं नारकि आयु बांधंत ?
इत्यादिक पूछा कियां रे, उत्तर दै अरिहंत ॥

६. अकिरियावादी णं भंते ! नेरइया—पुच्छा ।
गोयमा !

७. नारकि आयु बांधै नहीं रे, तिर्यंच आयु पकरंत ।
बांधै मनुष्य नों आउखो रे, देवायु नहीं बांधंत ॥
८. एवं अनाणवादी कह्या रे, इम विनयवादी पिण मंत ।
न बांधै नारकि सुर आउखो रे,
तिरि मनुष्यायु बांधंत ॥

७. नो नेरइयाउयं, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति,
मणुस्साउयं पि पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति ।
८. एवं अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि ।
(श. ३०।२४)

९. सलेशी प्रभु ! नेरइया रे, क्रियावादी जेह ।
स्यूं बांधै नारकि नों आउखो रे ? इत्यादिक पूछेह ॥
१०. इम सगला पिण नारकी रे, क्रियावादी जेह ।
ते बांधै मनुष्य नों आउखो रे,त्रिहुं गति नों न बांधेह ॥
११. जे अक्रियावादी नारकी रे, अज्ञानवादी जोय ।
विनयवादी पिण नारकी रे, ए तीनूं अवलोय ॥
१२. ते सहु पद स्थानक विषे रे, नारकायु न बांधेह ।
बांधै तिरि मनु आउखो रे, देवायु नहि पकरेह ॥

९. सलेस्सा णं भंते ! नेरइया किरियावादी किं
नेरइयाउयं ?
१०. एवं सव्वे वि नेरइया जे किरियावादी ते मणुस्साउयं
एगं पकरेंति,
११. जे अकिरियावादी अण्णाणियवादी वेणइयवादी
१२. ते सव्वट्ठाणेसु वि नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्ख-
जोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति,
नो देवाउयं पकरेंति,

१३. णवरं मिश्रदृष्टि नारकी रे,
तिणमें समवसरण छेहला दोय ।
ते च्यारूं ही गति तणुं रे, आयु न बांधै कोय ॥
१४. मिश्र गुणस्थान स्वभाव थी रे, समवसरण जे बेह ।
किणही गति रो आउखो बांधै नथी रे,
जिम भाख्यो जीव पदेह ॥

१३. नवरं—सम्मामिच्छत्ते उवरिल्लेहिं दोहिं वि समो-
सरणेहिं न किंचि वि पकरेंति
१४. जहेव जीवपदे ।
सम्यग्मिथ्यादृष्टिनारकाणां द्वे एवान्तिमे समवसरणे
स्तः, तेषां चायुर्बन्धो नास्त्येव गुणस्थानकस्वभावादतस्ते
तयोर्न किञ्चिदप्यायुः प्रकुर्वन्तीति । (वृ. प. ९४७)

१५. एवं यावत जाणवा रे, थणियकुमार पर्यंत ।
जिमज नारकि नें आखियो रे, कहिवूं तिमज उदंत ॥
१६. अक्रियावादी भदंतजी ! रे, पृथ्वीकायिक जीव ।
बांधै नारकी नों आउखो रे, इत्यादि प्रश्न कहीव ॥
१७. जिन कहै नारकि सुर तणों रे, आयु बांधै नांय ।
तिर्यंच मनु आयु बंधै रे, इम अज्ञानवादी कहाय ॥

१५. एवं जाव थणियकुमारा जहेव नेरइया ।
(श. ३०।२५)
१६. अकिरियावादी णं भंते ! पुढविक्काइया—
पुच्छा ।
१७. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्ख-
जोणियाउयं पकरेंति, मणुस्साउयं पकरेंति, नो
देवाउयं पकरेंति । एवं अण्णाणियवादी वि ।
(श. ३०।२६)

१८. सलेशी पृथ्वीकाइया रे, इत्यादि प्रश्न करेह ।
उत्तर श्री जिनवर दियै रे, सांभलजो गुणगेह ॥
१९. इम जे-जे पद छै जिहां रे, पृथ्वीकायिक मांहि ।
तिहां-तिहा बिचला बिहुं रे, समवसरण में ताहि ॥
२०. इमहिज तिर्यंच मनुष्य नों रे, आयु बांधै तेह ।
णवरं तेजु लेश्या विषे रे,
किणहि गति नुं आयु न बांधेह ॥

१८,१९. सलेस्सा णं भंते ! एवं जं जं पदं अत्थि
पुढविकाइयाणं तहिं तहिं मज्झिमेसु दोसु
समोसरणेसु
२०. एवं चेव दुविहं आउयं पकरेंति, नवरं—तेउलेस्साए
न किं पि पकरेंति ।

*लय : पहिलां थी म्है सांभलो रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२१. तेजू लेश्या तेह, अपर्याप्तक पृथ्वी विषे ।
विगम थयां थी जेह, आयु बंध हुवै अछै ।।

२१. 'तेउलेस्साए न किंपि पकरेंति' त्ति अपर्याप्तकावस्थायामेव पृथिवीकायिकानां तद्भावात्तद्विगम एव चायुषो बन्धादिति, (वृ. प. ९४७)

२२. *अपकायिक पिण इमज ही रे, वनस्पती पिण एम ।
विस्तार कह्यो पृथ्वी तणों रे, कहिवूं सगलूं तेम ।।

२२. एवं आउक्काइयाण वि, वणस्सइकाइयाण वि ।

२३. तेउ-वाउकाइया रे, सर्व स्थानक नें विषेह ।
समवसरण विचला बिहुं रे, तेह विषे इम लेह ।।

२३ तेउकाइआ वाउकाइआ सव्वट्ठाणेसु मज्झिमेसु दोसु समोसरणेसु

२४. नारकायु बांधै नथी रे, तिर्यंच आयु बांधेह ।
मनुष्यायु बांधै नहीं रे, देवायु नहीं पकरेह ।।

२४. नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पकरेंति, नो मणुस्साउयं पकरेंति, नो देवाउयं पकरेंति ।

२५. बे. ते. चउरिंद्रिय जीवड़ा रे, पृथ्वी जिम कहिवाय ।
णवरं सम्यक्त्व ज्ञान में रे,
इक पिण आयु न बंधाय ।।

२५. बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदियाणं जहा पुढविकाइयाणं, नवरं—सम्मत्त-नाणेसु न एक्कं पि आउयं पकरेंति । (श. ३०।२७)

सोरठा

२६. विकलेंद्रिय नें जाण, सम्यक्त्व ज्ञानज काल नां ।
नाश थकी पहिछाण, आयु बंध हुवै अछै ।।

२७. सम्यक्त्व ज्ञान तणांज, अल्प काल नां भाव थी ।
ते बिहुं विषे समाज, इक पिण आयु नहिं बंधै ।।

२६,२७. 'सम्मत्तनाणेसु न एक्कंपि आउयं पकरेंति' त्ति, द्वीन्द्रियादीनां सम्यक्त्वज्ञानकालात्यय एवायुर्बन्धो भवत्यल्पत्वात्तत्कालस्येति नैकमप्यायुर्बध्नन्ति तयोस्ते इति । (वृ. प. ९४७)

२८. *क्रियावादी भगवंतजी ! रे, पंचेंद्रिय तिर्यंच ।
स्यूं बांधै नारकि नों आउखो रे ?
इत्यादि प्रश्न सुसंच ।।

२८. किरियावादी णं भंते ! पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नेरइयाउयं पकरेंति—पुच्छा ।

२९. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे, जिम मनपर्यव ज्ञान ।
इक वैमानिक देव नों रे, तसु आयु बंध जाण ।।

२९. गोयमा ! जहा मणपज्जवनाणी ।

३०. अक्रियावादी आदि दे रे, समवसरण जे तीन ।
चिहुं गति नों पिण आउखो रे, तेहनों बंध कथीन ।।

३०. अकिरियावादी अण्णाणियवादी वेणइयवादी य चउव्विहं पि पकरेंति ।

३१. जेम ओघिक आखिया रे, सलेशी पिण तेम ।
क्रियावादी आदि नों रे, कहिवो पूरव जेम ।।

३१. जहा ओहिया तहा सलेस्सा वि । (श. ३०।२८)

३२. कृष्णलेशी भगवंतजी ! रे, क्रियावादी तेह ।
पंचेंद्रिय तिरियोनिया रे, स्यूं नारकायु पूछेह ?

३२. कण्हलेस्सा णं भंते ! किरियावादी पंचिंदियतिरिक्खजोणिया किं नेरइयाउयं—पुच्छा ।

३३. जिन कहै च्यारूं गति तणों रे, आयुबंध न थाय ।
जेह कृष्ण लेश्या विषे रे,
समदृष्टि रै आयु न बंधाय ।।

३३. गोयमा! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्खजोणियाउयं, नो मणुस्साउयं, नो देवाउयं पकरेंति। यदा पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चः सम्यग्दृष्टयः कृष्णलेश्यादिपरिणता भवन्ति तदाऽऽयुरेकमपि न बध्नन्ति, (वृ. प. ९४७)

सोरठा

३४. समदृष्टि तिर्यंच, तसु बंध वैमानिक तणूं ।
तेजु आदिज संच, तेह विषे आयु बंधै ।।

३४. सम्यग्दृशां वैमानिकायुर्बन्धकत्वेन तेजोलेश्यादित्रयबन्धनादिति । (वृ. प. ९४७)

३५. *अक्रियावादी आदि दे रे, समवसरण त्रिण मांय ।
चिहुं गति नों पिण आउखो रे, तास बंध कहिवाय ।।

३५. अकिरियावादी अण्णाणियवादी वेणइयवादी चउव्विहं पि पकरेंति ।

*लय : पहिलां थी म्हे सांभली रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—अक्रियावादी तिर्यंच पंचेंद्रिय कृष्णलेशी रै देवायु नों बंध कह्यूं । ते द्रव्य कृष्णलेश्या नैं विषे देवायु बंधै अनैं भाव कृष्णलेश्या नैं विषे देवता नों आउखो बंधै नहीं। ते माटै द्रव्य कृष्णलेशी तिर्यंच रै देवायु बंधै तो ते पिण भवनपति व्यंतर नं बंधै । ते भवनपति व्यंतर में द्रव्य कृष्णादिक ४ लेश्या छै ते माटै ।

३६. कृष्णलेशी जिम आखिया रे, नीललेशी पिण एम ।
कापोतलेशी पं. तिरि रे, कहिवा कृष्णज जेम ।।

३६ जहा कण्हलेस्सा एवं नीललेस्सा वि, काउलेस्सा वि ।

३७. तेजुलेशी पं. तिरि रे, सलेशी जिम कहिवाय ।
णवरं इतरो विशेष छै रे, सांभलजो चित ल्याय ।।

३७ तेउलेस्सा जहा सलेस्सा, नवरं—

३८. अक्रियावादी आदि दे रे, समवसरण त्रिण ताय ।
नारकायु बांधै नहीं रे,
शेष त्रिण गति आयु बंधाय ।।

३८. अकिरियावादी, अण्णाणियवादी, वेणइयवादी य नो नेरइयाउयं पकरेंति, तिरिक्खजोणियाउयं पि पकरेंति, मणुस्साउयं पि पकरेंति, देवाउयं पि पकरेंति ।

सोरठा

३९. तेजुलेशी जास, पंचेंद्रिय तिर्यंच जे ।
क्रियावादी तास, वैमानिक नुं आयु-बंध ।।

३९. 'तेउलेसा जहा सलेस' त्ति, अनेन च क्रियावादिनो वैमानिकायुरेव, (वृ. प. ९४७)

वा०—'अक्रियावादी, अनाणवादी, वेणइयवादी तेजुलेशी नारकि नों आउखो न बांधै, नारकि में द्रव्य तेजुलेश्या नथी ते माटै । अनैं अक्रियावादी आदि में भावे तेजुलेश्या में पिण नारकी नों आउखो न बांधै । अनैं तिर्यंच नों आउखो द्रव्य तेजुलेश्या रै विषे कोड़ पूर्व स्थितिक तिर्यंच नों आउखो बंधतो संभवै, पिण भाव तेजुलेशी में बंधतो न संभवै । अनैं मनुष्य नुं शुभ आउखो अनैं देवता नों आउखो ए भावे तेजुलेश्या नैं विषे बंधतो संभवै । (ज. स.)

४०. *पद्म लेश्या पिण इहविधे रे,
शुक्ललेशी पिण एम ।
तेजुलेशी नीं परै रे, आयु-बंधज तेम ।।

४०. एवं पम्हलेस्सा वि । एवं सुक्कलेस्सा वि भाणियव्वा ।

४१. कृष्णपाक्षिक जे पं. तिरि रे,
त्रिण समवसरण करेह ।
च्यारूं गति नां पिण तिके रे, आऊखो बांधेह ।।

४१. कण्हपक्खिया तिहिं समोसरणेहिं चउव्विहं पि आउयं पकरेंति ।

४२. शुक्लपाक्षिक पं. तिरि रे, सलेशी जिम कहिवाय ।
समदृष्टि मनपज्जव नीं परै रे,
तिम वैमानिकायु बंधाय ।।

४२. सुक्कपक्खिया जहा सलेस्सा । सम्मदिट्ठी जहा मणपज्जवनाणी तहेव वेमाणियाउयं पकरेंति ।

४३ मिथ्यादृष्टि पं. तिरि रे, कृष्णपाक्षिक जिम ख्यात ।
समवसरण तीनूं विषे रे, तिमहिज तसु अवदात ।।

४३. मिच्छादिट्ठी जहा कण्हपक्खिया ।

४४. मिश्रदृष्टि किणही गति तणों रे,
आयू बांधै नांहि ।
जेम नारकि तिम अंत नां रे,
समवसरण बे मांहि ।।

४४. सम्मामिच्छादिट्ठी ण य एक्कं पि पकरेंति जहेव नेरइया ।

४५. ज्ञानी जावत जाणवा रे, अवधिज्ञानी तिर्यंच ।
जिम समदृष्टि आखिया रे, कहिवूं तेम सुसंच ।।

४५. नाणी जाव ओहिनाणी जहा सम्मद्दिट्ठी ।

*लय : पहिलां थी म्है सांभली रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४६. अज्ञानी नें आदि दे रे, यावत विभंग लगेह।
कृष्णपाक्षिक जिम आखिया रे,
कहिवा तिमहिज एह ।।
४७. शेष सर्व जे पद रह्या रे, यावत ही अनाकार।
जेम सलेशी आखिया रे, कहिवा तिमज विचार ।।

४६. अण्णाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

४७. सेसा जाव अणागारोवउत्ता सव्वे जहा सलेस्सा तहा चेव भाणियव्वा।

हिवै मनुष्य नुं अधिकार कहै छै—

४८. जेम पंचेंद्रिय तिरि तणीं रे, व्यक्तव्यता कही जाण।
इमहिज मनुष्य तणीं सहु रे, कहिवी एह पिछाण ।।
४९. णवरं मनपज्जव वली रे, नोसण्णोवउत्ता ताय।
जिम समदृष्टि पं. तिरि कह्या रे,
तिमहिज ए कहिवाय ।।
५०. अलेशी केवलधरा रे, अवेदक अकषाय।
अजोगी ए पंच ही रे, इक पिण आयु न बंधाय ।।
५१. जिम ओघिक जीवा कह्या रे,
कहिवा तिम ए पंच।
शेष तिमज कहिवा सहु रे,
पंचेंद्रिय तिरि जिम संच ।।

४८. जहा पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं वत्तव्वया भणिया एवं मणुस्साण वि भाणियव्वा,
४९. नवरं—मणपज्जवनाणी नोसण्णोवउत्ता य जहा सम्मद्दिट्ठी तिरिक्खजोणिया तहेव भाणियव्वा।

५०. अलेस्सा केवलनाणी अवेदगा अकसायी अजोगी य एए न एगं पि आउयं पकरेंति।
५१. जहा ओहिया जीवा सेसं तहेव।

हिवै व्यंतरादिक नुं अधिकार कहै छै—

५२. वाणव्यंतर नें ज्योतिषी रे, वैमानिक अवधार।
जेम असुर नें आखिया रे, कहिवा तेम विचार ।।
५३. शत तीसम देश प्रथम तणों रे,
च्यारसौ सितंतरमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे,
'जय-जश' मंगलमाल ।।

५२. वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा।
(श. ३०।२९)

ढाल : ४७८

समवसरणगत जीवों का भव्यत्व-अभव्यत्व

दूहा

१. क्रियावादी हे प्रभु! जीवा स्यूं अवलोय।
तेह अछै भवसिद्धिया? कै अभवसिद्धिका होय?
२. जिन कहै छै भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया नांय।
अक्रियावादी जीव नीं, पूछचां कहै जिनराय ।।

१. किरियावादी णं भंते! जीवा किं भवसिद्धीया? अभवसिद्धीया?
२. गोयमा! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।
(श. ३०।३०)
अकिरियावादी णं भंते! जीवा किं भवसिद्धीया—पुच्छा।
गोयमा!

३. भवसिद्धिका पिण तिके, अभवसिद्धिक पिण तेम।
अज्ञानवादी पिण इमज, विनयवादी पिण एम ।।

३. भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि। एवं अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि। (श. ३०।३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*सुगुण जन ! सांभलो, जिन समवसरण कह्या च्यार ।। (ध्रुपदं)

४. सलेशी हे प्रभु ! जीवड़ा जी, क्रियावादी जेह।
स्यूं छै ते भवसिद्धिया ? कै अभवसिद्धिया कहेह ?

५. जिन भाखै सुण गोयमा ! जी, भवसिद्धिया ते होय।
अभवसिद्धिया हुवै नहीं जी, ए समदृष्टी सोय ।।

६. जीव सलेशी हे प्रभु ! जी, अक्रियावादी जोय।
स्यूं छै ते भवसिद्धिया ? कै अभवसिद्धिका होय ?

७. जिन कहै भवसिद्धिया अपि जी,
अभवसिद्धिक पिण होय।
इम अज्ञानवादी पिण अछै जी, विनयवादी पिण जोय ।।

८. जेम सलेशी आखिया जी, इम कहिवा जाव शुक्ल लेश।
क्रियावादी तो भव्य छै जी, अनैं भव्य अभव्य त्रिहुं शेष ।।

९. अलेशी हे प्रभु ! जीवड़ा जी, क्रियावादो तेह।
स्यूं छै ते भवसिद्धिया ? कै अभवसिद्धिया जेह ?

१०. जिन भाखै सुण गोयमा ! जी, ते भवसिद्धिया थाय।
अभवसिद्धिया ते नहीं जी, इहां सिद्ध गिणिया नांय ।।

सोरठा

११. सिद्ध अलेशी होय, भव्य अभव्य बिहुं नहीं।
ते माटै ए जोय, अलेशी चवदम गुणे ।।

१२. *इम इण आलावे करी, कृष्णपाक्षिक जे जीव।
समवसरण त्रिहुं नैं विषे, भव्य अभव्य भजनाइं कहीव ।।

वा०—कृष्णपाक्षिक नैं क्रियावादी न कहिवा।

१३. शुक्लपाक्षिक जीव छै तिके, चिहुं समवसरण नैं विषेह।
तेह अछै भवसिद्धिया जी, अभवसिद्धिक नहीं जेह ।।

१४. समदृष्टि अलेशी नीं परं जी, भवसिद्धिया छै तेह।
मिच्छदिट्ठि जिम कृष्णपाक्षिका जी,
भव्य अभव्य बिहुं जेह ।।

१५. समामिथ्यादृष्टि तिके, छेहला समवसरण बे मांहि।
कहिवा अलेशी तणीं परै जी, भव्य पिण अभव्य नांहि ।।

१६. समुच्चय ज्ञानी यावत वली जी, केवलज्ञानी जेह।
भवसिद्धिक हीज ते हुवै जी, अभवसिद्धिक नहीं तेह ।।

सोरठा

१७. ज्ञानी यावत जेह, केवलज्ञानी पद छहूं।
क्रियावादी एह, भव्यहीज कहियै तसु ।।

१८. *अज्ञानी जाव विभंग विषे जी,
कृष्णपाक्षिक जिम न्हाल।
समवसरण त्रिहुं नैं विषे जी, भव्य अभव्य बिहुं भाल ।।

*लय : अभड भड रावणो

४. सलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं भवसिद्धीया पुच्छा।

५. गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।
(श. ३०।३२)

६. सलेस्सा णं भंते ! जीवा अकिरियावादी किं भवसिद्धीया—पुच्छा।

७. गोयमा ! भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि। एवं अण्णाणियवादी वि, वेणइयवादी वि।

८. जहा सलेस्सा। एवं जाव सुक्कलेस्सा।
(श. ३०।३३)

९. अलेस्सा णं भंते ! जीवा किरियावादी किं भवसिद्धीया—पुच्छा।

१०. गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

१२. एवं एएणं अभिलावेणं कण्हपक्खिया तिसु वि समोसरणेसु भयणाए।

१३. सुक्कपक्खिया चउसु वि समोसरणेसु भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

१४. सम्मदिट्ठी जहा अलेस्सा। मिच्छादिट्ठी जहा कण्हपक्खिया।

१५. सम्मामिच्छादिट्ठी दोसु वि समोसरणेसु जहा अलेस्सा।

१६. नाणी जाव केवलनाणी भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया।

१८. अण्णाणी जाव विभंगनाणी जहा कण्हपक्खिया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. च्यारूं संज्ञावंत जीवड़ा, चिहुं समवसरण नैं विषेह।
कहिवा सलेशी नीं परै जी, न्याय विचारी लेह।।

१९. सण्णासु चउसु वि जहा सलेस्सा।

वा०—च्यार संज्ञावंत क्रियावादी तो भव्य, शेष तीन समवसरण भव्य पिण अभव्य पिण जाणवा।

२०. नोसण्णोवउत्ता जीवड़ा, इक क्रियावादी नैं विषेह।
भवसिद्धियाज कहीजियै जी, समदृष्टि जिम एह।।

२०. नोसण्णोवउत्ता जहा सम्मदिट्ठी।

२१. सवेदी जाव नपुंसका जी, सलेशी जिम लेख।
क्रियावादी तो भव्य छै जी, भव्य अभव्य त्रिण शेख।।

२१. सवेदगा जाव नपुंसगवेदगा जहा सलेस्सा।

२२. अवेदगा जे जीवड़ा जी, समदृष्टि जिम ताहि।
इक क्रियावादी नैं विषे जी, भव्य पिण अभव्य नांहि।।

२२. अवेदगा जहा सम्मदिट्ठी।

२३. सकषाई जावत वली जी, लोभकषाई जाण।
कहिवा सलेशी नीं परै जी, न्याय हिया में आण।।

२३. सकसायी जाव लोभकसायी जहा सलेस्सा।

वा०—सकषाई जाव लोभकषाई क्रियावादी तो भव्य, शेष तीन समवसरणे भव्य पिण अभव्य पिण कहिवा।

२४. अकषाई जे जीवड़ा जी, समदृष्टि जिम कहिवाय।
इक क्रियावादी नैं विषे जी, भव्य पिण अभव्य नांय।।

२४. अकसायी जहा सम्मदिट्ठी।

२५. सजोगी नैं यावत वली जी, कायजोगी छै जेह।
कहिवा सलेशी नीं परै जी, न्याय पूर्ववत लेह।।

२५. सजोगी जाव कायजोगी जहा सलेस्सा।

वा.—सजोगी जाव कायजोगी क्रियावादी तो भव्य, शेष तीन समवसरणे भव्य पिण अभव्य पिण कहिवा।

२६. अजोगी जे जीवड़ा जी, समदृष्टि जिम जाण।
इक क्रियावादी विषे भव्य छै जी, ए चवदम गुणठाण।।

२६. अजोगी जहा सम्मदिट्ठी।

२७. साकारोवउत्ता नैं वली जी, अनाकार उपयुक्त।
कहिवा सलेशी नीं परै जी, न्याय पूर्व जे उक्त।।

२७. सागारोवउत्ता अणागारोवउत्ता जहा सलेस्सा।

वा०—साकारोवउत्ता अनाकारोवउत्ता क्रियावादी तो भव्य, शेष तीन समवसरणे भव्य पिण अभव्य पिण कहिवा।

समवसरणगत २४ दंडकों में भव्यत्व-अभव्यत्व

२८. कहिवा इमहिज नारकी जी, णवरं विशेषज जाण।
कहिवूं जेहनैं जे अछै, दश भवनपति इम माण।।

२८. एवं नेरइया वि भाणियव्वा, नवरं—नायव्वं जं अत्थि। एवं असुरकुमारा वि जाव थणियकुमारा।

२९. पृथ्वीकायिक सहु स्थानके, बिचला समवसरण बे मांय।
भवसिद्धिक पिण छै तिके जी, अभवसिद्धिक पिण थाय।।

२९. पुढविक्काइया सव्वट्ठाणेसु वि मज्झिल्लेसु दोसु वि समोसरणेसु भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि।

३०. इम जाव वनस्पति लगै जी, बे. ते. चउरिंद्री मांय।
एवं चेव कहीजियै जी, णवरं विशेष कहाय।।

३०. एवं जाव वणस्सइकाइया। बेइंदिय-तेइंदिय-चउरिंदिया एवं चेव, नवरं—

३१. सम्यक्त्व समुच्चय ज्ञान में जी, मति श्रुत ज्ञान रै मांहि।
बिचला बे समवसरण विषे जी,
भव्य पिण अभव्य नांहि।।

३१. सम्मत्ते ओहिनाणे आभिणिबोहियनाणे सुयनाणे-एएसु चेव दोसु मज्झिमेसु समोसरणेसु भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया, सेसं तं चेव।

वा०—इहां विकलेंद्रिय समदृष्टि ज्ञानी नैं सास्वादन सम्यक्त्व तो छै पिण मिथ्यात्व रै सन्मुख छै। वमती सम्यक्त्व माटै क्रियावादी न कह्या। क्रियावादी तो विशिष्ट सम्यक्त्ववंत नैं हुवै।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. पंचेंद्रिय तिरिखयोनिया जी, नारकि जिम कहिवाय ।
णवरं जेहनैं जे बोल छै जी, ते तसु कहिवा ताय ।।
३३. मनुष्य ओघिक जीव नीं परै जी, व्यंतर ज्योतिषी ताम ।
वैमानिक असुर तणीं परै जी, सेवं भंते ! स्वाम ।।

३४. शत तीसम धुर उद्देशो कह्यो,
च्यारसौ अठंतरमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी जी,
'जय-जश' मंगलमाल ।।

त्रिशत्तमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।३०।१।।

३२. पंचिंदियतिरिक्खजोणिया जहा नेरइया, नवरं—नायव्वं जं अत्थि ।

३३. मणुस्सा जहा ओहिया जीवा । वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया जहा असुरकुमारा ।
(श. ३०।३४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३०।३५)

ढाल : ४७९

अनन्तरोत्पन्न २४ दंडकों में क्रियावादिता आदि

दूहा

१. प्रथम उदेशक नैं विषे, जीव नारकी आदि ।
द्वितीय अनंतरोत्पन्नका, नारकादि संवादि ।।

*गोतम ! समवसरण अर्थ सांभलो ।। (ध्रुपदं)

२. अनंतरोत्पन्न नारकी,
स्यूं क्रियावादी पूछेह हो ? प्रभुजी !
जिन कहै क्रियावादी अपि,
जाव विनयवादी पिण तेह हो गोतम ! ।।
३. सलेशी धुर समय नां, नारकि जे अवलोय हो ।
स्यूं क्रियावादी पृच्छा ? एवं चेव सुजोय हो ।।
४. जिमहिज प्रथम उद्देशके, नारक नीं विख्यात हो ।
कहिवी तिमज इहां अपि, वक्तव्यता अवदात हो ।।
५. णवरं जेहनें जे अछै, अनंतरोत्पन्न ताय हो ।
नारकि नें जे बोल छै, ते तेहनें कहिवाय हो ।।
६. इम सगला ही जीव नें, जाव जिहां लग पेख हो ।
वैमानिक जे देव नें, णवरं इतरो विशेख हो ।।
७. प्रथम समय उत्पन्न तणें, जेह जिहां छै बोल हो ।
तेह तिहां कहिवूं सही, बुद्धि सूं जिन वच तोल हो ।।
८. क्रियावादी धुर समय नां, नेरइया नें संवादि हो ।
स्यूं नारकी नों आउखो बांधै ? प्रश्न इत्यादि हो ।।
९. जिन भाखै चिहुं गति तणों, आयु न बांधै कोय हो ।
एम अक्रिया अनाण ही, विनयवादी पिण जोय हो ।।

२. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किं किरियावादी—पुच्छा ।
गोयमा ! किरियावादी वि जाव वेणइयवादी वि ।
(श. ३०।३६)
३. सलेस्सा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं किरियावादी ? एवं चेव ।
४. एवं जहेव पढमुद्देसे नेरइयाणं वत्तव्वया तहेव इह वि भाणियव्वा,
५. नवरं—जं जं अत्थि अणंतरोववन्नगाणं नेरइयाणं तं तं भाणियव्वं ।
६. एवं सव्वजीवाणं जाव वेमाणियाणं, नवरं—
७. अणंतरोववन्नगाणं जं जहिं अत्थि तं तहिं भाणियव्वं ।
(श. ३०।३७)
८. किरियावादी णं भंते ! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति—पुच्छा ।
९. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति, नो तिरिक्ख-जोणियाउयं, नो मणुस्साउयं, नो देवाउयं पकरेंति । एवं अकिरियावादी वि अण्णाणियवादी वि वेणइय-वादी वि । (श. ३०।३८)

*लय : स्वामी म्हारा राजा नें धर्म

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. सलेशी प्रभु ! नारकी, धुर समय क्रियावादी जेह हो ।
स्यूं नारकी नों आउखो बांधै ? प्रश्न पूछेह हो ।।
११. जिन कहै च्यारूं गति तणों, आऊखो न बंधाय हो ।
एवं जाव वेमाणिया, धुर समय आयु बंधै नांय हो ।।
१२. एवं सर्व स्थानक विषे, नारक धुर समयोत्पन्न हो ।
कोइ पिण आयु बांधै नथी, इम जाव अनाकार जन्न हो ।।
१३. एवं जाव वेमानिया, णवरं इतरो विशेख हो ।
जेह बोल छै जेहनें, ते तसु कहिवो संपेख हो ।।
१४. क्रियावादी नारकी, प्रथम समय उत्पन्न हो ।
स्यं भवसिद्धिका तेह छै? कै अभवसिद्धिया जन्न हो ?
१५. जिन कहै ते भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया नांय हो ।
समदृष्टि तिण कारणें, एक भव्यहिज थाय हो ।।
१६. अक्रियावादी नीं पृच्छा ? जिन कहै बिहुं पिण होय हो ।
एम अज्ञानवादी अपि, विनयवादी पिण जोय हो ।।

१७. सलेशी प्रभु ! नारकी, क्रियावादी जान हो ।
प्रथम समय नां ऊपनां, भव्य अभव्य पहिछान हो ।।
१८. जिन भाखै भवसिद्धिया, अभवसिद्धिया नांय हो ।
ए चौथे गुणस्थानके, तिणसूं अभव्य न थाय हो ।।
१९. इम इण आलावे करी, प्रथम उदेशा मांय हो ।
कही नारकि नीं वारता, इहां पिण तिमज कहिवाय हो ।।
२०. जाव अनाकारवउत्त ही, इम जाव वेमानिक तोल हो ।
णवरं जेहनें जेह छै, ते तसु कहिवा बोल हो ।।
२१. ए लक्षण भव्य अभव्य नों, क्रियावादी जेह हो ।
शुक्लपक्षि मिश्रदृष्टि ते, ए सहु भव्य अभव्य न एह हो ।।

२२. शेष सर्व भव्य पिण अछै, अभव्य पिण अवधार हो ।
सेवं भंते ! स्वाम जी, तुझ वच तिमज उदार हो ।।

सोरठा

२३. वृत्ति विषे इम वाय, अलेशी नें समदृष्टि ।
ज्ञानी अवेदी ताय, अकषाई अयोग फुन ।।
२४. ए सहु नें सुविचार, भव्यपणोंज प्रसिद्ध छै ।
ते माटै अवधार, सूत्र विषे आख्यो नथी ।।

त्रिंशत्तमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।३०।२।।

१०. सलेस्सा णं भंते ! किरियावादी अणंतरोववन्नगा नेरइया किं नेरइयाउयं पकरेंति — पुच्छा ।

११. गोयमा ! नो नेरइयाउयं पकरेंति जाव नो देवाउयं पकरेंति । एवं जाव वेमाणिया ।

१२. एवं सव्वट्ठाणेसु वि अणंतरोववन्नगा नेरइया न किंचि वि आउयं पकरेंति जाव अणागारोवउत्तत्ति ।

१३. एवं जाव वेमाणिया, नवरं — जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं । (श. ३०/३९)

१४. किरियावादी णं भंते! अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया ? अभवसिद्धीया ?

१५. गोयमा ! भवसिद्धीया नो अभवसिद्धीया । (श. ३०/४०)

१६. अकिरियावादी णं — पुच्छा ।
गोयमा ! भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि । एवं अण्णाणियवादी वि वेणइयवादी वि । (श. ३०/४१)

१७. सलेस्सा णं भंते ! किरियावादी अणंतरोववन्नगा नेरइया किं भवसिद्धीया ? अभवसिद्धीया ?

१८. गोयमा ! भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया ।

१९. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिए उद्देसए नेरइयाणं वत्तव्वया भणिया तहेव इह वि भाणियव्वा

२०. जाव अणागारोवउत्तत्ति । एवं जाव वेमाणियाणं, नवरं — जं जस्स अत्थि तं तस्स भाणियव्वं ।

२१. इमं से लक्खणं—जे किरियावादी सुक्कपक्खिया सम्मामिच्छदिट्ठीया एए सव्वे भवसिद्धीया, नो अभवसिद्धीया ।

२२. सेसा सव्वे भवसिद्धीया वि, अभवसिद्धीया वि । (श. ३०/४२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३०/४३)

२३,२४. अलेश्यसम्यग्दृष्टिज्ञान्यवेदाकषायायोगिनां भव्यत्वं प्रसिद्धमेवेति नोक्तमिति। (वृ.प. ९४८)

परम्परोत्पन्न २४ दंडकों में क्रियावादिता आदि

२५. परंपरोत्पन्न नारकी, स्यूं क्रियावादी होय हो ?
इम जिम प्रथम उद्देशके, आख्यो ते अवलोय हो ।।
२६. तिमज परंपरोत्पन्नके, कहिवो विधि सूं जेम हो ।
नारकि आदि देई करी, कहिवो समस्तज तेम हो ।।
२७. तिमहिज दंडक तीन जे, नारकादि पद मांय हो ।
क्रियावादी आदि नीं, परूपणा धुर आय हो ।।

२५. परंपरोववन्नगा णं भंते ! नेरइया किरियावादी ? एवं जहेव ओहिओ उद्देसओ

२६. तहेव परंपरोववन्नएसु वि नेरइयादीओ तहेव निरवसेसं भाणियव्वं,

२७. तहेव तियदंडगसंगहिओ । (श. ३०/४४)
'तियदंडगसंगहिओ' त्ति, इह दण्डकत्रयं नैरयिकादिपदेषु क्रियावाद्यादिप्ररूपणादण्डकः १ (वृ. प. ९४८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. आयु बंधक छै तिको, दूजो दंडक कहेह हो।
भवसिद्धिक अभवसिद्धिका, दंडक तृतीय सुलेह हो।।
२९. ए तीनूं दंडक करी, संग्रहीत कहिवाय हो।
सेवं भंते ! इम कही, यावत विचरै ताय हो।।
३०. इम इण अनुक्रमे करी, बंधी शतक विषेह हो।
जेहिज उद्देशक तणीं, परिपाटी कही तेह हो।।
३१. तेहिज इहां पिण आखवी, जाव अचरम उद्देश हो।
तिहां लगै कहिवो सही, णवरं इतरो विशेष हो।।
३२. च्यारूं ही अनंतर तणां, गमा एक सरीष हो।
चिहुं गमा परंपर तणां, एक सरीषा ईश हो।।

२८. आयुर्बन्धदण्डको २ भव्याभव्यदण्डक ३ श्चेत्येवमिति (वृ. प. ९४८)

२९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ। (श. ३०/४५)

३०. एवं एएणं कमेणं जच्चेव बंधिसए उद्देसगाणं परिवाडी

३१. सच्चेव इहं पि जाव अचरिमो उद्देसो, नवरं—

३२. अणंतरा चत्तारि वि एक्कगमगा, परंपरा चत्तारि वि एक्कगमएणं।

वा०—अणंतरोववन्नगा १, अनंतरोवगाढा २, अनंतरआहारगा ३, अनंतर पर्याप्तका ४—ए च्यारूं ही अनंतर उद्देशा एक सरीखा। परंपरोववन्नगा १, परंपरोवगाढा २, परंपर आहारगा ३, परंपरपर्याप्तका ४—ए च्यारूं ही परंपर उद्देशा एक सरीखा, एवं ८। अनैं एक प्रथम उद्देशो समुच्चय, एवं ९। अनैं चरम-अचरम बे उद्देशा कहै छै—

३३. एम चरम पिण जाणवूं, अचरम पिण इमहीज हो।
णवरं अचरम नैं विषे, एह विशेष कहीज हो।।
३४. अलेशी नैं केवली, अजोगी पिण जाण हो।
ए तीनूं भणवा नथी, असंभव थी पहिछाण हो।।

३३. एवं चरिमा वि, अचरिमा वि एवं चेव, नवरं—

३४. अलेस्सो केवली अजोगी न भण्णंति,
'अलेस्सो केवली अजोगी य न भण्णति' त्ति, अचरमाणामलेश्यत्वादीनामसम्भवादिति। (वृ. प.९४८)

३५. शेष तिमज कहिवो सहु, सेवं भंते ! स्वाम हो।
ए इग्यारै उद्देशका, समवसरण शत नाम हो।।

३५. सेसं तहेव। (श. ३०/४६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। एए एक्कारस वि उद्देसगा। (श. ३०/४७)

३६. तीसम शत ए अर्थ थी, उगणीसे चउवीस हो। गुणिजन।
दीपमालिका वर दिने, सुजाणगढ सुजगीस हो।।गुणिजन।।
३७. ढाल च्यार सय ऊपरै, गुणयासिमीं न्हाल हो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' मंगलमाल हो।।

गीतक छंद

१. जे वच सुमेरू मथन करिकै, शास्त्र रूप समुद्र थी।
वर सार भाव सुअर्थ रत्नज, उच्छल्या जे तेहथी।।
२. मुझ दृष्टि पिण ते रत्न आया, सुगुरु-पद सेवा करी।
जय-जय हुओ ते गुरू तणीं, जिह मेटिया मिथ्या अरी।।

१,२. यद्वाङ्महामन्दरमन्थनेन,
शास्त्रार्णवादुच्छलितान्यतुच्छम्।
भावार्थरत्नानि ममापि दृष्टौ,
यातानि ते वृत्तिकृतो जयन्ति।।
(वृ. प. ९४८)

त्रिंशत्तमशते तृतीयादारभ्य एकादशोद्देशकार्थः ।।३०।३-११।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकत्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४८०

दूहा

१. शतक तीसमा में कह्या, समवसरण ए च्यार।
चिहुं संख्या साधर्म्य थी, हिव चिहुं युग्म उदार ॥
२. एकतीसमा शतक में, अष्टवीस उद्देश।
आदि अर्थ कहियै हिवै, गोयम प्रश्न अशेष ॥

१,२ त्रिंशत्तमशते चत्वारि समवसरणान्युक्तानीति चतुष्टयसाधर्म्याच्चतुर्युग्मवक्तव्यतानुगतमष्टाविंशत्युद्देशकयुक्तमेकत्रिंशं शतं व्याख्यायते, (वृ. प. ९४८)

क्षुल्लक युग्म के प्रकार

३. नगर राजगृह नें विषे, जाव वदै इम वाय।
हे प्रभुजी ! कह्या केतला, क्षुल्लक युग्म जग मांय ?
४. क्षुल्लक युग्म ते राशि नां, विशेष कहिस्यै एह।
महायुग्म पिण तेह छै, तिणसूं क्षुल्लक कहेह ॥

३. रायगिहे जाव एवं वयासी—कति णं भंते ! खुड्डा जुम्मा पण्णत्ता ?
४. 'खुड्डा जुम्म' त्ति युग्मानि—वक्ष्यमाणा राशिविशेषास्ते च महान्तोऽपि सन्त्यत: क्षुल्लकशब्देन विशेषिता:, (वृ. प. ९५०)

५. जिन भाखै सुण गोयमा ! क्षुल्लक युग्म जे च्यार।
परूपिया कहियै तिके, धुर कृतयुग्म प्रकार ॥
६. तेओगे ते त्र्योज है, द्वापरयुग्म कहाय।
कलियोगे कल्योज ए, युग्म च्यार इम थाय ॥
७. किण अर्थे प्रभु ! एहवुं, कहियै वचन सुसोझ।
क्षुल्लक युग्म चिहुं भाखिया, कडजुम्म जाव कल्योज ॥

५. गोयमा ! चत्तारि खुड्डा जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे,
६. तेयोए, दावरजुम्मे, कलियोगे। (श. ३१/१)
७. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—चत्तारि खुड्डा जुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

८.*जिन कहै जेह राशि प्रते, चिहुं अपहारज करिकै लेह।
सुण गोयमा रे।
अपहरतां रहै छेहड़ै च्यार, तेह क्षुल्लक कृतयुग्म प्रकार ॥
सुण गोयमा रे ॥

८. गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए सेत्तं खुड्डागकडजुम्मे।

सोरठा

९. धुर जे च्यार विमास, अठ द्वादश इत्यादि जे।
संख्यावानज राश, कहियै खुडाग कडजुम्मे ॥

९. तत्र चत्वारोऽष्टौ द्वादशेत्यादिसंख्यावान् राशि: क्षुल्लक: कृतयुग्मोऽभिधीयते, (वृ. प. ९५०)

१०.*वलि जे राशि प्रतै पहिछाण,
चिहुं अपहार करिनें जाण।
अपहरतां रहै छेहड़ै तीन, तेह क्षुल्लक तेयोग कथीन ॥

१०. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए सेत्तं खुड्डागतेयोगे।

सोरठा

११. धुर जे तीन विमास, सप्त ग्यारै इत्यादि जे।
संख्यावानज राश, कहियै क्षुल्लक तेयोग जे ॥

११. एवं त्रिसप्तैकादशादिको क्षुल्लकत्र्योज:, (वृ. प. ९५०)

---

*लय : खिण गई रे मेरी खिण गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१२. *वली जे राशि प्रतै सुविचार,
चिहुं अपहार करी अवधार ।
अपहरतां रहै छेहड़ै दोय,
तेह क्षुल्लक द्वापरयुग्म होय ।।

१२. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए सेत्तं खुड्डागदावरजुम्मे ।

सोरठा

१३. धुर जे दोय विमास, षट अरु दश इत्यादि जे ।
संख्यावानज राश, खुडाग द्वापरयुग्म जे ।।

१३. द्विषट्प्रभृतिकः क्षुल्लकद्वापरः, (वृ. प. ९५०)

१४. *वलि जे राशि प्रतै अवलोय, चिहुं अपहार करीनें सोय ।
अपहरतां रहै छेहड़ै एक, तेह क्षुल्लक कलिओग संपेख ।।

१४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए सेत्तं खुड्डागकलियोगे

सोरठा

१५. धुर जे एक विमास, पंच अनें नव प्रमुख जे ।
संख्यावानज राश, कहियै क्षुल्लक कल्योज ते ।।

१५. एकपञ्चकप्रभृतिकस्तु क्षुल्लककल्योज इति । (वृ. प. ९५०)

१६. *ते तिण अर्थ करीनें जान,
हे गोतम ! कहियै इम वान ।
जाव क्षुल्लक कलिओग उदंत,
वलि गोतम पूछै धर खंत ।।

१६. से तेणट्ठेणं जाव कलियोगे । (श. ३१/२)

क्षुल्लक युग्म नैरयिकों का उपपात

१७. क्षुल्लक कडजुम्म नारकि भगवान !
किहां थकी उपजै छै आन ?
स्यूं नारकि थी ऊपजवूं हुंत ?
कै तिरिख मनुष्य सुर थी उपजंत ?

१७. खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति—किं नेरइएहिंतो उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएहिंतो—पुच्छा ।

१८. जिन कहै नारकि थी नहिं थात,
इम जे नारकि नीं उपपात ।
जिम पन्नवण पद छठा मांय,
आख्यो तेम इहां कहिवाय ।।

१८. गोयमा ! नो नेरइएहिंतो उववज्जंति । एवं नेरइयाणं उववाओ जहावक्कंतीए (प० ६।७०-८०) तहा भाणियव्वो । (श. ३१/३)
'जहा वक्कंतीए' त्ति प्रज्ञापनाषष्ठपदे, (वृ.प. ९५०)

सोरठा

१९. अर्थ थकी इम जाण, पंचेंद्रिय तिर्यंच थी ।
सन्नी मनुष्य थी आण, नारकि विषेज ऊपजै ।।

वा०—विशेष थकी असन्नी पहिली नरक नें विषे ऊपजै इत्यादिक आगल कहिस्यै ।

१९. अर्थतश्चैवं—पञ्चेन्द्रियतिर्यग्भ्यो गर्भजमनुष्येभ्यश्च नारका उत्पद्यन्त इति, (वृ. प. ९५०)

२०. विशेष थी इम होय, धुर नरके असन्नी गमन ।
इत्यादिक अवलोय, गाथा करिकै जाणवूं ।।

२०. विशेषस्तु 'अस्सन्नी खलु पढम' मित्यादिगाथाभ्यामवसेयः, (वृ. प. ९५०)

२१. *एक समय में ते प्रभु ! जीव,
केतला आवी ऊपजै अतीव ?
जिन कहै च्यार आठ वा बार,
सौलै संख असंख विचार ।।

२१. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ? गोयमा ! चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा सोलस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति । (श. ३१/४)

---

*लय : खिण गई रे मेरी खिण गई

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. ते प्रभु ! जीवा किसै प्रकार,
उपजै नारकि में अवधार ?
जिन कहै यथादृष्टांत जेह, कूदणहारो कूदतो तेह ।।

२२. ते णं भंते ! जीवा कहं उववज्जंति ?
गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे

२३. अध्यवसाय निर्वत्तित जाण,
करण उपाये करि पहिछाण ।
इम जिम पणवीसम शत मांय,
अष्टमुद्देश विषे कहिवाय ।।

२३. अज्झवसाणनिव्वत्तिएणं करणोवाएणं, एवं जहा पंचविसतिमे सए (सू. २५।६२०) अट्ठमुद्देसए

२४. नारकि वक्तव्यता तिहां ख्यात,
तिमज इहां पिण कहिवी बात ।
जाव आत्म-प्रयोग करेह,
पिण पर-प्रयोगे नहिं उपजेह ।।

२४. नेरइयाणं वत्तव्वया तहेव इह वि भाणियव्वा जाव आयप्पओगेणं उववज्जंति नो परप्पयोगेणं उववज्जंति।
(श. ३१/५)

२५. रत्नप्रभा पृथ्वी भगवान !
क्षुल्लक कडजुम्म नारकि पहिछान ।
किहां थकी उपजै छै आय ?
जिन भाखै सांभल चित ल्याय ।।

२५. रयणप्पभापुढविखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

२६. इम जिम ओघिक नारकि तेह,
वक्तव्यता तसु कही पूर्वेह ।
तेहिज वक्तव्यता अवदात,
रत्नप्रभा विषे कहिवी बात ।।

२६. एवं जहा ओहियनेरइयाणं वत्तव्वया सच्चेव रयणप्पभाए वि भाणियव्वा

२७. यावत पर नें प्रयोग करेह, उपजै नांहि इहां लग लेह ।
सक्कर विषे पिण कहिवूं एम,
इम जाव सप्तमी विषेज तेम ।।

२७. जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति। एवं सक्करप्पभाए वि एवं जाव अहेसत्तमाए ।

२८. इम उपपातज पन्नवणा मांय,
जिम छठे पद तिम कहिवाय ।
असन्नी निश्चै पहिली जाय,
भुजपर बीजी लग कहिवाय ।।

२८. एवं उववाओ जहा वक्कंतीए । (प. ६/८०)
अस्सण्णी खलु पढमं, दोच्चं व सरीसवा

२९. तिमहिज पंखी तीजी मांहि,
इत्यादिक गाथा करि ताहि ।
इहविधि उपजाविवूं अशेख,
शेष तिमज कहिवूं संपेख ।।

२९. तइय पक्खी गाहा एवं उववाएयव्वा। (सं. पा.)
सेसं तहेव। (श. ३१/६)

३०. क्षुल्लक तेयोग नारकि भगवान !
किहां थको उपजै छै आन ?
स्यूं नारकि थी उपजै ताम ?
इत्यादिक पूछ्यां कहै स्वाम ।।

३०. खुड्डागतेयोगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति— किं नेरइएहिंतो ?

३१. उपजवूं जिम पन्नवण मांहि,
छठा पद में भाख्यो ताहि ।
तेम इहां पिण कहिवूं ताम,
वलि पूछै गोयम शिर नाम ।।

३१. उववाओ जहा वक्कंतीए (प० ६।७०-८०)
(श. ३१/७)

३२. ते प्रभु ! एक समय रै मांय,
जीव केतला उपजै आय ?
जिन कहै त्रिण वा सप्त इग्यार,
पनरै संख असंख विचार ।।

३२. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?
गोयमा ! तिण्णि वा सत्त वा एक्कारस वा पण्णरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३. शेष कह्यो कडजुम्म नें जेम,
तिमज इहां करिवो धर पेम ।
इम यावत कहिवो अवधार,
अधोसप्तमी लगै विचार ।।

३३. सेसं जहा कडजुम्मस्स । एवं जाव अहेसत्तमाए ।
(श. ३१/८)

३४. क्षुल्लक द्वापरजुम्म नारकि भंत !
किहां थकी आवी उपजंत ?
इम जिमहीज क्षुल्लक कडजुम्म,
तेह् विषे कह्यूं तिम अवगम्म ।।

३४. खुड्डागदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे,

३५. णवरं तसु परिमाणज एह,
बे अथवा षट वा दश लेह ।
अथवा चउदश संख असंख,
एक समय उपजै दुख अंक ।।

३५. नवरं—परिमाणं दो वा छ वा दस वा चोद्दस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा,

३६. शेष तिमज कहिवोज समग्ग,
एवं जाव तमतमा लग्ग ।
क्षुल्लक कल्योज नारकि भगवंत !
किहां थकी आवी उपजंत ।।

३६. सेसं तं चेव जाव अहेसत्तमाए । (श. ३१/९)
खुड्डागकलिओगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

३७. इम जिमहीज क्षुल्लक कडजुम्म,
णवरं परिमाणे इम गम्म ।
एक पंच नव अथवा तेर, संख असंख ऊपजै हेर ।।

३७. एवं जहेव खुड्डागकडजुम्मे, नवरं—परिमाणं एक्को वा पंच वा नव वा तेरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति,

३८. शेष तिमज कहिवूं सुविचार,
इम यावत तल सप्तमी धार ।
सेवं भंते ! जाव विचरेह,
इकतीस मधुर उद्देश एह ।।

३८. सेसं तं चेव । एवं जाव अहेसत्तमाए । (श. ३१/१०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ ।
(श. ३१/११)

३९. ढाल च्यार सौ ऊपर जाण, प्रवर असीमों एह पिछाण ।
[स्वामी शोभता रे ।]
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद,
'जय-जश' संपति नित अह्लाद ।।
[स्वामी शोभता रे ।।]

एकत्रिंशत्तमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।३१।१।।

ढाल : ४८१

दूहा

१. द्वितीय उद्देश विषे हिव, लेश्या कृष्ण संबंध ।
कहिवो तेहिज आश्रयी, खुडागयुग्म प्रबंध ।।

१. द्वितीयस्तु कृष्णलेश्याश्रयः, (वृ. प. ९५०)

२. तिका कृष्ण लेश्या हुवै, नरक पंचमीं मांय ।
छठी नें फुन सातमीं, पृथ्वी विषेज पाय ।।
३. एम करीनें तेहनों, सामान्य दंडक जोय ।
धूमप्रभादिक दंडक त्रिण, एह विषे ह्वै सोय ।।

२,३. सा च पञ्चमीषष्ठीसप्तमीष्वेव पृथिवीषु भवतीति कृत्वा सामान्यदण्डकस्तद्दण्डकत्रयं चात्र भवतीति (वृ. प. ९५०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्षुल्लक युग्म कृष्णलेश्यी नैरयिकों का उपपात

*क्षुल्लक युग्म अर्थ सांभलो ।। (ध्रुपदं)

४. हे प्रभुजी ! कृष्णलेश ही, क्षुल्लक कडयुग्म छै जेहो जी ।
नारकि किहां थकी ऊपजै ? हिव जिन उत्तर देहो जी ।।

५. इम जिम ओघिक गम विषे, आख्यो तिम कहिवायो जी ।
यावत पर प्रयोगे करी, ऊपजवूं नहिं थायो जी ।।

६. णवरं तसु उपपात जे, जेम पन्नवणा मांह्यो जी ।
व्युत्क्रांतिक छठे पदे, तेम इहां कहिवायो जी ।।

७. धूमप्रभा मही नारकी, किहां थकी उपजंतो जी ?
इत्यादि पन्नवण जिम इहां, शेष तिमज वृतंतो जी ।।

वा०—'धूमप्पहपुढवीनेरइयाणमिति'—इहां कृष्णलेश्या प्रक्रांत वली तिका कृष्णलेश्या धूमप्रभा नैं विषे हुवै इति, ते धूमप्रभा नैं विषे जे जीव ऊपजै तेहनों-ईज उत्पाद कहिवो । वली ते असन्नी १, सरीसृप २, पक्षी ३, सिंह ४ वर्जी नैं एतलै असन्नी तिर्यंच पहिली नारकि में ऊपजै १ । सरिसृप ते भुजपर दूजी में ऊपजै । पक्षी तीजी में ऊपजै ३ । सिंह चउथी में ऊपजै, ४ पिण आगल न ऊपजै । ते माटै असन्नी प्रमुख नों उत्पाद वर्ज्यो शेष तिमज ।

८. धूमप्रभा पृथ्वी तणां, कृष्णलेशी छै तेहो जी ।
खुडाग कडजुम्म नारकी,
प्रभु ! किहां थकी उपजेहो जी ?

९. इमहिज ते कहिवो सहु, तमा विषे पिण एमो जी ।
एम अधोसप्तमी विषे, पूर्व भाख्यो तेमो जी ।।

१०. णवरं तसु उपपात जे, सर्व विषे पहिछाणी जी ।
जिम पन्नवण छठे पदे, दाख्यो तिमहिज जाणी जी ।।

११. हे प्रभुजी ! कृष्ण लेश ही, क्षुल्लक तेयोग छै तेहो जी ।
नारकी किहां थकी ऊपजै ? एवं चेव कहेहो जी ।।

१२. णवरं त्रिण सप्त ग्यार हो, पनर संखेज असंखो जी ।
शेष तिमज कहिवो सहु,
इम जाव सप्तमी पिण अंको जी ।।

१३. हे प्रभुजी ! कृष्णलेश ही,
क्षुल्लक दावरजुम्म जेहो जी ।
नारकि किहां थकी ऊपजै ? एवं चेव कहेहो जी ।।

१४. णवरं बे षट दश तथा, चवदै शेष तिमहीजो जी ।
इम धूमप्रभा विषे अपि,
जाव अधोसप्तमी पिण लीजो जी ।।

१५. हे प्रभुजी ! कृष्णलेश ही, क्षुल्लक कल्योज छै जेहो जी ।
नारकि किहां थकी ऊपजै ? एवं चेव कहेहो जी ।।

१६ णवरं इक पंच नव तथा, तेरै संख असंखो जी ।
शेष तिमज कहिवो सहु, इम धूमप्रभा पिण अंको जी ।।

४. कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

५. एवं चेव जहा ओहियगमो जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति,

६. नवरं—उववाओ जहा वक्कंतीए (प. ६।७७)

७. धूमप्पभापुढविनेरइयाणं, सेसं तं चेव । (श. ३१/१२)

वा.—'उववाओ जहा वक्कंतीए धूमप्पभापुढविनेरइयाणं' ति, इह कृष्णलेश्या प्रक्रांता सा च धूमप्रभायां भवतीति तत्र ये जीवा उत्पद्यन्ते तेषामेवोत्पादो वाच्यः, ते चासञ्ज्ञिसरीसृपपक्षिसिंहवर्जा इति । (वृ. प. ९५०)

८. धूमप्पभापुढविकण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

९ एवं चेव निरवसेसं । एवं तमाए वि, अहेसत्तमाए वि,

१०. नवरं—उववाओ सव्वत्थ जहा वक्कंतीए (प. ६।७७-८०) । (श. ३१।१३)

११. कण्हलेस्सखुड्डागतेओगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव,

१२. नवरं—तिण्णि वा सत्त वा एक्कारस वा पन्नरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा, सेसं तं चेव । एवं जाव अहेसत्तमाए वि । (श. ३१।१४)

१३. कण्हलेस्सखुड्डागदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव,

१४. नवरं—दो वा छ वा दस वा चोद्दस वा, सेसं तं चेव । एवं धूमप्पभाए वि जाव अहेसत्तमाए । (श. ३१।१५)

१५. कण्हलेस्सखुड्डागकलियोगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव,

१६. नवरं—एक्को वा पंच वा नव वा तेरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा, सेसं तं चेव । एवं धूमप्पभाए वि,

*लय : खुसालांजी मन चिंतवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. तमा विषे पिण इमज ही, इमज सप्तमी विषेहो जी।
सेवं भंते ! इकतीसमें, द्वितीय उद्देशके एहो जी ।।

एकत्रिंशत्तमशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।३१।२।।

१७. तमाए वि, अहेसत्तमाए वि। (श. ३१।१६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३१।१७)

दूहा

१८. तृतीय उद्देश विषे हुवै, लेश्या नील संबंध।
कहिवो तेहिज आश्रयी, खुडाग युग्म प्रबंध ।।

१८. तृतीयस्तु नीललेश्याश्रयः, (वृ. प. ९५०)

१९. तिका नील लेश्या हुवै, वालुकप्रभाज मांय।
चउथी नें वलि पांचमीं, पृथ्वी विषेज पाय ।।
२०. एम करीनें तेहनों, सामान्य दंडक जोय।
त्रिण दंडक वालुक प्रमुख, एह विषे ह्वै सोय ।।

१९,२०. सा च तृतीयाचतुर्थीपञ्चमीष्वेव पृथिवीषु भवतीतिकृत्वा सामान्यदण्डकस्तद्दण्डकत्रयं चात्र भवतीति 'उववाओ जो वालुयप्पभाए' त्ति, (वृ. प. ९५०)

क्षुल्लक युग्म नीललेश्यी नैरयिकों का उपपात

२१. *हे प्रभुजी ! नीललेश ही,
क्षुल्लक कडजुम्म छै जेहो जी।
नारकी किहां थकी ऊपजै ?
हिव जिन उत्तर देहो जी ।।

२१. नीललेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जति ?

२२. इम जिमहिज कृष्णलेश जे,
क्षुल्लक कडजुम्मज आख्यो जी।
तिम कहिवूं णवरं इहां, विशेष इतरो दाख्यो जी ।।

२२. एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मा, नवरं—

२३. इहां नील लेश्या अधिकार में,
तिका वालुप्रभा विषे होयो जी।
जीव तिहां जे ऊपजै, उपपात तेहिज जोयो जी ।।

२३. उववाओ जो वालुयप्पभाए,
इह नीललेश्या प्रक्रान्ता सा च वालुकाप्रभायां भवतीति तत्र ये जीवा उत्पद्यन्ते तेषामेवोत्पादो वाच्यः, (वृ. प. ९५०)

२४. असन्नी तिर्यंच पंचेंद्रिय, वली सरीसृप पहिछाणी जी।
ए बिहुं वर्जी ऊपजै, शेष तिमहिज सुजाणी जी ।।

२४. सेस तं चेव।
ते चासञ्ज्ञिसरीसृपवर्जा इति। (वृ. प. ९५०)

वा०—असन्नी पहिली जाय अनैं सरीसृप दूजी जाय। ते माटै वालुकप्रभा नैं विषे असन्नी सरीसृप वर्जी अनेरा ऊपजै। एहवूं पन्नवणा छठे पदे (सू. ८०) कह्यूं, ते समुच्चय नीललेशी नारकि नैं विषे ऊपजवूं कह्यूं।

२५. वालुकप्रभा मही तीसरी,
नीललेशी क्षुल्लक कडजुम्मो जी।
नारकि नैं विषे ऊपजै, इत्यादिक अवगम्मो जी ।।

२५. वालुयप्पभापुढविनीललेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया एवं चेव।

२६. पंकप्रभा नैं विषे अपि, कहिवो ते इमहीजो जी।
धूमप्रभा नैं विषे अपि, इणहिज रीत कहीजो जी ।।

२६. एवं पंकप्पभाए वि, एवं धूमप्पभाए वि।

वा०—जे पूर्वे उपपात पन्नवणा ६।७५-७७ नैं भलायो तेहिज इहां पंकप्रभा नैं विषे अपि। धूमप्रभा नैं विषे ऊपजवो पन्नवणा छठा पद नैं विषे कह्यो तिम कहिवो। ते पन्नवणा नैं विषे इम कह्यूं छै—वालुकप्रभा नीं पृच्छा—जिम सक्करप्रभा नां नारकी कह्या तिम कहिवा। णवरं भुजपर ऊपजवा रो निषेध करिवो।

पंकप्रभा पृथ्वी नां नारकी नीं पृच्छा—जिम वालुकप्रभा पृथ्वी नां नेरइया कह्या तिमज ए पिण कहिवा। णवरं खेचर ऊपजवा रो निषेध करिवो।

---

*लय : खुसालांजी मन चिंतवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धूमप्रभा पृथ्वी नां नारकी नीं पूछा—जिम पंकप्रभा पृथ्वी नां नेरइया कह्या तिमज ए पिण कहिवा। णवरं चउप्पद थकी ऊपजवा रो निषेध करिवो।

२७. इम चिहुं पिण जुम्म नें विषे, णवरं इतरो विशेखो जी।
परिमाण तेहनुं जाणवूं, कहियै तसुं करि लेखो जी।।

२८. जिम कृष्णलेश उद्देशके, भाख्यो छै परिमाणो जी।
तिमहिज कहिवो छै सहु, शेष तिमज पहिछाणो जी।।

२९. सेवं भंते! स्वामजी, शत इकतीसम मांह्यो जी।
तृतीय उद्देशक नें विषे, वारू अर्थ बतायो जी।।

एकत्रिंशत्तमशते तृतीयोद्देशकार्थः ।।३१।३।।

२७. एवं चउसु वि जुम्मेसु, नवरं—परिमाणं जाणियव्वं।

२८. परिमाणं जहा कण्हलेस्सउद्देसए। सेसं तहेव। (श. ३१।१८)

२९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३१।१९)

दूहा

३०. तुर्य उद्देश विषे बली, कापोत आश्रयी जाण।
तिका रत्न सक्कर विषे, वालुक विषेज आण।।

३१. एम करीनें तेहनों, सामान्य दंडक जोय।
रत्नप्रभादिक दंडक त्रिण, एह विषे ह्वै सोय।।

३०,३१. चतुर्थस्तु कापोतलेश्याश्रयः, सा च प्रथमाद्वितीयातृतीयास्वेव पृथिवीष्वितिकृत्वा सामान्यदण्डको रत्नप्रभादिदण्डकत्रयं चात्र भवतीति। (वृ. प. ९५०)

क्षुल्लक युग्म कापोतलेश्यी नैरयिकों का उपपात

३२. *कापोतलेशी नारकी, क्षुल्लक कडजुम्म भदंतो जी!
किहां थकी आवी ऊपजै? इत्यादि प्रश्न पूछंतो जी।।

३३. इम जिम कृष्णलेशी तिको, खुडाग कडजुम्म जेहो जी।
तेह विषे जे आखियो, तिमहिज इहां कहेहो जी।।

३४. णवरं तसु उपपात जे, रत्नप्रभा नें विषेहो जी।
आख्यूं तिम कहिवूं इहां, शेष तिमहीज कहेहो जी।।

३५. रत्नप्रभा पृथ्वी तणां, कापोतलेशी तेहो जी।
खुडाग कडजुम्म नारकी,
प्रभु! किहां थकी उपजेहो जी?

३६. एवं चेव कहीजियै, इम सक्कर विषे जाणी जी।
वालुक विषे पिण इमज ही, कहिवूं सर्व पिछाणी जी।।

३७. इम चिहुं पिण जुम्म नें विषे,
णवरं इतरो विशेखो जी।
परिमाण तेहनुं जाणवुं, कहियै तेह संपेखो जी।।

३८. जिम कृष्णलेश उद्देशके, आख्यो छै परिमाणो जी।
तिमहिज कहिवो छै सहु, शेष तिमज पहिछाणो जी।।

३९. सेवं भंते! स्वामजी, शत इकतीसम चारू जी।
तुर्य उद्देशक अर्थ ए, आख्या अधिक उदारू जी।।

एकत्रिंशत्तमशते चतुर्थोद्देशकार्थः ।।३१।४।।

३२. काउलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति?

३३. एवं जहेव कण्हलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया,

३४. नवरं—उववाओ जो रयणप्पभाए, सेसं तं चेव। (श ३१।२०)

३५. रयणप्पभापुढविकाउलेस्सखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति?

३६. एवं चेव। एवं सक्करप्पभाए वि, एवं वालुयप्पभाए वि।

३७. एवं चउसु वि जुम्मेसु, नवरं—परिमाणं जाणियव्वं

३८. जहा कण्हलेस्सउद्देसए, सेसं तं चेव। (श. ३१।२१)

३९. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३१।२२)

क्षुल्लक युग्म भवसिद्धिक आदि नैरयिकों का उपपात

४०. भवसिद्धिक प्रभु! नारकी, कडजुम्म छै जेहो जी।
किहां थकी आवी ऊपजै?
स्यूं नारकी थी उपजेहो जी।।

४०. भवसिद्धीयखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जति—किं नेरइएहिंतो?

*लय : खुसालांजी मन चिंतवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४१. इम जिमहिज ओघिक कह्यो,
तिमहिज सहु कहिवायो जी ।
यावत पर प्रयोगे करी, ऊपजवूं नहिं थायो जी ।।
४२. रत्नप्रभा पृथ्वी तणां, भवसिद्धिक छै तेहो जी ।
क्षुल्लक कडजुम्म नारकी,
प्रभु ! किहां थकी उपजेहो जी ?
४३. इमहिज कहिवो ते सहु, इम जाव सप्तमी जाणी जी ।
नीचै सातमी पृथ्वी लगै, कहिवो ते पहिछाणी जी ।।
४४. इम भवसिद्धिक नारकी, क्षुल्लक त्र्योज पिण लेहो जी ।
इम यावत कलिओग ही, णवरं विशेषज एहो जी ।।
४५. परिमाण तेहनुं जाणवूं, जिम प्रथम उद्देश विषेहो जी ।
परिमाण पूर्वे आखियो, तिणहिज रीत कहेहो जी ।।
४६. सेवं भंते ! स्वामजी, शत इकतीसम सारो जी ।
पंचमुद्देशक अर्थ ए, आख्यो अधिक उदारो जी ।।

४१. एवं जहेव ओहिओ गमओ तहेव निरवसेसं जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति । (श. ३१।२३)

४२. रयणप्पभपुढविभवसिद्धीयखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! ?

४३. एवं चेव निरवसेसं । एवं जाव अहेसत्तमाए ।

४४. एवं भवसिद्धीयखुड्डागतेयोगनेरइया वि । एवं जाव कलियोगत्ति, नवरं—

४५. परिमाणं जाणियव्वं, परिमाणं पुव्वभणियं जहा पढमुद्देसए । (श. ३१।२४)

४६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३१।२५)

एकत्रिंशत्तमशते पंचमोद्देशकार्थः ।।३१।५।।

४७. कृष्णलेशी भवसिद्धियो, क्षुल्लक कड़जुम्म छै जेहो जी ।
नारकि हे भगवंत जी ! किहां थकी उपजेहो जी ?
४८. इम जिमहिज ओघिक जे, कृष्णलेश उद्देशो जी ।
आख्यो तिम कहिवो सहु, चिहुं जुम्म विषे अशेषो जी ।।
४९. जाव अधोसप्तमी मही, कृष्णलेशी छै तेहो जी ।
खुडाग कलिओग नारकी प्रभु ! किहां थकी उपजेहो जी ?

५०. तिमहिज कहिवो ते सहु, सेवं भंते ! सेवं भंतो ! जी ।
शत इकतीसम अर्थ थी, षष्ठमुद्देसक तंतो जी ।।

४७. कण्हलेस्सभवसिद्धीयखुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

४८. एवं जहेव ओहिओ कण्हलेस्सउद्देसओ तहेव निरवसेसं चउसु वि जुम्मेसु भाणियव्वो

४९. जाव— (श. ३१।२६)
अहेसत्तमपुढविकण्हलेस्सखुड्डागकलियोगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

५०. तहेव (श. ३१।२७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३१।२८)

एकत्रिंशत्तमशते षष्ठोद्देशकार्थः ।।३१।६।।

५१. नीललेशी भवसिद्धिको, च्यारूं ही युग्म विषेहो जी ।
तिमहिज कहिवो छै इहां, वारू विधि सूं जेहो जी ।।
५२. जिम ओघिक नीललेशी तणां, उद्देशक विषे आमो जी ।
आख्यो तिम कहिवो सहु, सेवं भंते ! स्वामो जी ।।
५३. यावत विचरै गुणनिधि, शत इकतीसम सोयो जी ।
सप्तमुद्देशक नों भलो, अर्थ अनोपम जोयो जी ।।

५१. नीललेस्सभवसिद्धीया चउसु वि जुम्मेसु तहेव भाणियव्वा

५२. जहा ओहिए नीललेस्सउद्देसए । (श. ३१।२९)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

५३. जाव विहरइ । (श. ३१।३०)

एकत्रिंशत्तमशते सप्तमोद्देशकार्थः ।।३१।७।।

५४. काउलेशी भवसिद्धियो, चिहुं युग्म विषे कहायो जी ।
तिणहिज विधि उपजायवो, वारू बुद्धि करि न्यायो जी ।।
५५. जिमहिज ओघिक आखियो, कापोतलेश उद्देशे जी ।
उपजायो तिण रीत सूं, वारू विध सुविशेषे जी ।।
५६. सेवं भंते ! स्वामजी, जाव गोयम विचरंतो जी ।
अर्थ इकतीसम शतक नों, अष्टमुद्देशक तंतो जी ।।

५४. काउलेस्सभवसिद्धीया चउसु वि जुम्मेसु तहेव उववाएयव्वा

५५. जहेव ओहिए काउलेस्सउद्देसए । (श. ३१।३१)

५६. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ ।
(श. ३१।३२)

एकत्रिंशत्तमशते अष्टमोद्देशकार्थः ।।३१।८।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५७. जिम भवसिद्धिक संघात ही,
कह्या च्यार उद्देशक सारो जी ।
इम अभव्यसिद्धिक संघात ही,
भणवा उद्देशक च्यारो जी ।।

५७. जहा भवसिद्धीएहिं चत्तारि उद्देसगा भणिया एवं अभवसिद्धीएहि वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा

५८. जाव कापोतलेशी उद्देशको, कहिवो इतरा लगेहो जी ।
सेवं भंते ! स्वामजी, बारमुद्देशक एहो जी ।।

५८. जाव काउलेस्सउद्देसओ त्ति । (श. ३१।३३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३१।३४)

एकत्रिंशत्तमशते नवमादारभ्य द्वादशपर्यंतोद्देशकार्थः ।।३१।९-१२।।

५९. इम समदृष्टि संघात ही, लेश्या संयुक्तज करिकै जी ।
करिवा है च्यार उद्देशका, णवरं विशेष उच्चरिकै जी ।।

५९. एवं सम्मदिट्ठीहि वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवरं—

६०. सम्यकदृष्टि छै तिको, प्रथम द्वितीय कहिवाई जी ।
ए बिहुं पिण उद्देशक विषे,
सातमी में उपजायवो नांही जी ।।

६०. सम्मदिट्ठी पढमबितिएसु दोसु वि उद्देसगेसु अहेसत्तम-पुढवीए न उववाएयव्वो,

वा०—समदृष्टि सलेशी संघाते च्यार उद्देशा। तिहां प्रथम उद्देशो ते ओघिक उद्देशो जाणवूं । ते समदृष्टि सलेशी सातमी नरक विषे न ऊपजै । अनैं द्वितीयो उद्देशो ते समदृष्टि कृष्णलेशी ते पिण सातमी नैं विषे न ऊपजै । सातमी नैं विषे समदृष्टि सहित नहीं ऊपजै अनैं समदृष्टि सातमी थी नीकलै पिण नथी । अनैं सातमी में ऊपनां पछै केइक जीव समदृष्टि पामै छै ते पिण नीकलती वेला समदृष्टि गमाय पछै नीकलै छै, एहवी सातमी नारकी नीं रीत छै । ते माटै समदृष्टि सलेशी ए प्रथम उद्देशक नैं विषे, समदृष्टि कृष्णलेशी ए बीजा उद्देशक नैं विषे सातमी में ऊपजायवो नथी । णवरं पाठ में एतलो विशेष कह्यो ।

६१ शेष तिमज कहिवो सहु, सेवं भंते ! स्वामी जी ।
अर्थ इकतीसम शतक नों, सोलमुद्देशक धामी जी ।।

६१. सेसं तं चेव । (श. ३१।३५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३१।३६)

एकत्रिंशत्तमशते त्रयोदशादारभ्य षोडशपर्यन्तोद्देशकार्थः ।।३१।१३-१६।।

६२. मिथ्यादृष्टि संघात ही, च्यार उद्देशक करिवा जी ।
जिम भव्यसिद्धिक नां कह्या,
तिणहीज रीत उच्चरिवा जी ।।

६२. मिच्छादिट्ठीहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहा भवसिद्धीयाणं । (श. ३१।३७)

६३. सेवं भंते ! स्वामजी, शत इकतीसम चोखो जी ।
बीसमुद्देशक नां भला अर्थ कह्या निर्दोखो जी ।।

६३. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३१।३८)

एकत्रिंशत्तमशते सप्तदशादारभ्य विंशोद्देशकार्थः ।३१।१७-२०।।

६४. इम कृष्णपाक्षिक साथ ही,
लेश्या संयुक्त विख्यातो जी ।
करिवा च्यार उद्देशका,
जिम कह्या भव्य संघातो जी ।।

६४. एवं कण्हपक्खिएहिं वि लेस्सासंजुत्तेहिं चत्तारि उद्देसगा कायव्वा जहेव भवसिद्धीएहिं । (श. ३१।३९)

६५. सेवं भंते ! स्वामजी, शत इकतीसम शुद्धो जी ।
ए चउवीसमुद्देश नां, अर्थ कह्या अविरुद्धो जी ।।

६५. सेवं भंते ! सेवं भंते! त्ति । (श. ३१।४०)

६६. शुक्लपाक्षिक संघात ही,
इमहिज च्यार उद्देशा जी ।
भणवा तेह किहां लगै,
हिवै चरम बोल सुविशेषा जी ।।

६६. सुक्कपक्खिएहिं एवं चेव चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. यावत वालुकप्रभा मही,
काउलेश शुक्लपाक्षिक तेहो जी ।
खुडागकलियोग नारकी,
प्रभु ! किहां थकी उपजेहो जी ?

६७. जाव वालुयप्पभपुढविकाउलेस्ससुक्कपक्खियखुड्डाग-कलिओगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

६८. तिमहिज यावत जाणवूं,
पर प्रयोगे नहीं उपजंतो जी ।
एतला लगै कहीजियै, सेवं भंते ! सेवं भंतो ! जी ।।

६८. तहेव जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति ।(श.३१।४१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

एकत्रिंशत्तमशते एकविंशादारभ्य अष्टाविंशोद्देशकार्थः ३१।२१-२८।।

६९. ए सगलाई आखिया, उद्देशका अठवीसो जी ।
उपपात शतक इकतीसमूं,
थयो समाप्ति जगीसो जी ।।

६९. सव्वे वि एए अट्ठावीसं उद्देसगा । (श.३१।४२)

७०. जे उपपात शब्दे करी, उपलक्षित छै तेहो जी ।
कहियै शत उपपात ए, जोड़ रूप छै जेहो जी ।।

७१. च्यारसौ इक्यासीमी भली, आखी ढाल अमंदो जी ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जय' परमानंदो जी ।।

गीतकछंद

१. इकतीसमे शत अर्थ वर, भगवती वाणी चित धरी ।
मुझ भावितं निर्विघ्न करिकै, सद्गुरू अनुग्रह करी ।।

२. उत्पाद नों विरतंत आख्यो, च्यार युग्म सुलेखियै ।
तसु न्याय निर्णय विधि करी वच, जाणवूं सुविशेखियै ।।

१. शतमेतद्भगवत्या भगवत्या भावितं मया वाण्याः ।
यदनुग्रहेण निरवग्रहेण सदनुग्रहेण तथा ।।१।।
(वृ. प. ९५१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वात्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वात्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४८२

दूहा

१. इकतीसम शत नें विषे, नारकि नों उपपात ।
हिवै बतीसम नारकी, उद्वर्त्तन अवदात ।।
२. इण संबंध करि एहनां, अष्टवीस उद्देश ।
प्रथम उद्देशक आदि हिव, कहियै अर्थ विशेष ।।

१. एकत्रिंशे शते नारकाणामुत्पादोऽभिहितो द्वात्रिंशे तु तेषामेवोद्वर्त्तनोच्यते (वृ. प. ९५१)
२. इत्येवं सम्बन्धमष्टाविंशत्युद्देशकमानमिदं व्याख्यायते, (वृ. प. ९५१)

क्षुल्लकयुग्म नैरयिकों का उद्वर्तन

*अर्थ आखिया रे शतक उद्वर्त्तन नें विषे रे ।। (ध्रुपदं)

३. खुडागकडजुम्म नारकी रे, हे जगनाथ ! भदंतो जी ।
अंतर रहितज नीकली रे, किहां तिके उपजंतो जी ।
४. स्यूं नारकी नें विषे ऊपजै रे ? कैतिर्यंच विषेहो रे ?
प्रश्न इत्यादि पूछियां रे, श्री जिन उत्तर देहो रे ।।
५. पन्नवण छठा पद विषे रे, उद्वर्त्तना अवलोई रे ।
नारकी नीं आखी तिहां रे, तिम इहां कहिवुं सोई रे ।।
६. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ा रे, एक समय रै मांह्यो रे ।
नरक थकी किता नीकलै रे ?
जिन कहै सुण चित ल्यायो रे ।।
७. च्यार तथा अठ नीकलै रे, द्वादश सोल अतीवा रे ।
अथवा संख असंख ही रे, नीकलै छै ते जीवा रे ।।
८. ते जीव प्रभु ! किम नीकलै रे ?
जिन कहै जिम दृष्टंतो रे ।
कूदणहारो कूदतो रे, इत्यादिकज वृतंतो रे ।
९. इम तिमहिज पूर्वली परै रे, इम तेहिज गमो यांही रे ।
जाव आत्म प्रयोगे नीकलै रे, पर प्रयोगे नीकलै नांही रे ।।
१०. रत्नप्रभा मही नारकी रे, क्षुल्लककडजुम्म इत्यादो रे ।
इम रत्नप्रभा नें विषे अपि रे, इम जाव सप्तमी वादो रे ।।
११. इम क्षुल्लक त्र्योज गमा विषे रे, खुडाग द्वापरजुम्मो रे ।
खुडाग कलियोगे वली रे, अर्थ इमज अवगम्मो रे ।।
१२, णवरं परिमाण जाणवो रे, शेष तिमज कहिवायो रे ।
सेवं भंते ! स्वामजी रे, प्रथम उद्देशक पायो रे ।।

द्वात्रिंशत्तमशते प्रथमोद्देशकार्थः ।।३२।१।।

१३. कृष्णलेशी कडजुम्म जिके रे, नारकि हे भगवंतो रे !
इत्यादिक जे पूछियां रे, इम इण अनुक्रम मंतो रे ।।

३. खुड्डागकडजुम्मनेरइया णं भंते ! अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छंति ? कहिं उववज्जंति—
४. किं नेरइएसु उववज्जंति ? तिरिक्खजोणिएसु उववज्जंति ?
५. उव्वट्टणा जहा वक्कंतीए (६।९९,१००) । (श. ३२।१)
६. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उव्वट्टंति ? गोयमा !
७. चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा सोलस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उव्वट्टंति । (श. ३२।२)
८. ते णं भंते ! जीवा कहं उव्वट्टंति ? गोयमा ! से जहानामए पवए,
९. एवं तहेव । एवं सो चेव गमओ जाव आयप्पयोगेणं उव्वट्टंति, नो परप्पयोगेणं उव्वट्टंति । (श. ३२।३)
१०. रयणप्पभापुढविखुड्डागकडजुम्म ? एवं रयणप्पभाए वि । एवं जाव अहेसत्तमाए ।
११. एवं खुड्डागतेयोग-खुड्डागदावरजुम्म-खुड्डगकलियोगा,
१२. नवरं—परिमाणं जाणियव्वं, सेसं तं चेव । (श. ३२।४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३२।५)
१३. कण्हलेस्सकडजुम्मनेरइया ? एवं एएणं कमेणं

---

*लय : राज पामियो रे करकंडु कंचनपुर तणों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१४. जिमज उपपात शते कह्या रे, अष्टवीस उद्देशा रे।
तिमज उवट्टणा शते अपि रे, अठवीस उद्देश अशेषा रे।।

१५. णवरं उवट्टंति नीकलै रे, कहिवुं आलावे नामो रे।
शेष तिमज कहिवुं सहु रे, सेवं भंते ! स्वामो रे।।

१६. यावत गोतम विचरता रे, शत बतीसम दाख्यो रे।
उवट्टणा नामे भलो रे, अर्थ थकी ए आख्यो रे।।

१७. च्यारसौ बंयासिमी भली रे, ढाल कही सुखदाई रे।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे,
'जय-जय' हरष सदाई रे।।

द्वात्रिंशत्तमशते द्वितीयोद्देशकार्थः।।३२।२।।

१४. जहेव उववायसए अट्ठावीसं उद्देसगा भणिया तहेव उव्वट्टणासए वि अट्ठावीसं उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा,

१५. नवरं—उव्वट्टंति त्ति अभिलावो भाणियव्वो, सेसं तं चेव। (श. ३२।६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति

१६. जाव विहरइ। (श. ३२।७)

गीतक छंद

१. बत्तीसमे शत उवट्टणा ते, नारकादिक नीं कही।
इकतीसमा उत्पाद शत जिम, फेर ते सूत्रे लही।।

२. इक स्थान उदके चंद्र मंडल देखवै करि जाणवूं।
अन्य स्थान पिण जल विषे चंद्रज
पेखिया पहिछाणवुं।।

१.२. व्याख्याते प्राक्शते व्याख्या, कृतैवास्य समत्वतः।
एकत्र तोयचन्द्रे हि, दृष्टे दृष्टाः परेऽपि ते।।१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयस्त्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

त्रयस्त्रिशत्तम शतक

ढाल : ४८३

दूहा

१. शत बत्तीसम नैं विषे, नारकी थकी विख्यात ।
नीकलवो उद्वर्त्तना, आख्यो तसु अवदात ।।
२. फुन ते नारकि नीकल्या, एकेंद्रियादि जात ।
तेह विषे नहिं ऊपजै, वलि ते कवण विख्यात ?
३. इसी आशंका नैं विषे, एकेंद्रियादिक जीव ।
हुवै परूपण योग्य ए, विवरा शुद्ध अतीव ।।
४. तेह विषे एकेंद्रिया, पहिलां परूपीवाज ।
तिणसूं एकेंद्रिय शतक, तेतीसमूं समाज ।।
५. एकेंद्रिय जीवां तणीं, परूपणा रूपेह ।
बार अवांतर शत सहित, बखाणियै छै एह ।।

१. द्वात्रिंशे शते नारकोद्वर्त्तनोक्ता, (वृ. प. ९५१)

२. नारकाश्चोद्वृत्ता एकेन्द्रियादिषु नोत्पद्यन्ते, के च ते? (वृ. प. ९५१)

३. इत्यस्यामाशङ्कायां ते प्ररूपयितव्या भवन्ति, (वृ. प. ९५१)

४. तेषु चैकेन्द्रियास्तावत्प्ररूपणीया इत्येकेन्द्रियप्ररूपणपरं त्रयस्त्रिंशं शतं (वृ. प. ९५१)

५. द्वादशावान्तरशतोपेतं व्याख्यायते, (वृ. प. ९५१)

एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार

*हो जिन नां वच म्हांनै प्यारा लागै हो लाल,
श्रद्धयां थी भव दुख भागै हो लाल ।
सुण्यां थी संवेग जागै हो लाल ।। (ध्रुपदं)

६. कतिविध प्रभु ! एकेन्द्रिया जी ?
जिन कहै पंच प्रकार ।
पृथ्वीकायिक जाणवा जी, जाव वणस्सइ धार ।।
७. प्रभु ! पृथ्वीकाइया कतिविधा जी ?
जिन कहै दोय प्रकार ।
सूक्ष्म पृथ्वीकाइया जी, बादर पृथ्वी धार ।।
८. प्रभु ! सूक्ष्म पृथ्वी कतिविधा जी ?
जिन कहै द्विविध तेह ।
पर्याप्त सूक्ष्म मही जी, अपजत्त सूक्ष्म तेह ।।
९. बादर पृथ्वीकाइया जी, कतिविध हे जिनराय ?
एवं चेव कहीजियै जी, अपजत्त पजत्तज थाय ।।
१०. इम अपकायिक पिण वली जी, चिहुं भेद करेह ।
भणवा पूर्वली परै जी, इम जाव वनस्पति लेह ।।

६. कतिविहा णं भंते ! एगिंदिया पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—
पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया ।
७. पुढविक्काइया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुम-
पुढविक्काइया य, बादरपुढविक्काइया य ।
(श. ३३।२)
८. सुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तासुहुम-
पुढविक्काइया य, अप्पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइया य ।
(श. ३३।३)
९. बादरपुढविक्काइया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?
एवं चेव ।
१०. एवं आउक्काइया वि चउक्कएणं भेदेणं भाणियव्वा
एवं जाव वणस्सइकाइया । (श. ३३।४)

*लय : हो बाईजी रा वीरा रात रा अमलां में होको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति

११. अपज्जत्त सूक्ष्म मही तणैं जी,
कर्मप्रकृति किती नाथ ?
जिन भाखै अठ कर्म नीं जी, प्रकृति तास आख्यात ।।

११. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१२. ज्ञानावरणी धुर कह्यं जी, यावत ही अंतराय ।
अपज्जत्त सूक्ष्म मही तणैं जी, ए अठ कर्म कहाय ।।

१२. नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं । (श. ३३।५)

१३. अपजत्त बादर मही तणैं प्रभु !
कर्म प्रकृति किती ख्यात ?
जिन भाखै सुण गोयमा जी ! एवं चेव आख्यात ।।

१३. अपज्जत्ताबादरपुढविक्काइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ? एवं चेव । (श. ३३।७)

१४. इम इण अनुक्रमे करी जी, यावत ही पहिछाण ।
बादर वणस्सइकाय नां जी, पर्याप्ता लग जाण ।।[1]

१४. एवं एएणं कमेणं जाव बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं ति । (श ३३।८)

१५. अपज्जत्त सूक्ष्म मही प्रभु !
किती कर्म प्रकृति बांधंत ?
जिन कहै सत्तविध बंधका जी, अठविध बंधक हुंत ।।

१५. अप्पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ बंधंति ?
गोयमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि ।

१६. सात प्रकारे बांधता जी, आयु कर्म विण जेह ।
सप्त कर्मप्रकृति प्रतै जी, बांधै पृथ्वी तेह ।।

१६ सत्त बंधमाणा आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधति,

१७. अष्ट प्रकारे बांधता जी, प्रतिपूर्ण पहिछाण ।
आठ कर्मप्रकृति प्रतै जी, बांधै तेह अयाण ।।

१७. अट्ठ बधमाणा पडिपुण्णाओ अट्ठ कम्मप्पगडीओ बंधंति । (श. ३३।९)

१८. अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी प्रभु !
किती कर्म प्रकृति बांधेह ?
इमहिज सत अठ बंधका जी, इम सगलाइ कहेह ।।

१९. जाव पर्याप्त हे प्रभुजी ! बादर वणस्सइकाय ।
कर्म प्रकृति बांधै केतली जी ?
जिन कहै इमज बंधाय ।।

२०. अपज्जत्त सूक्ष्म मही प्रभु! किती कर्मप्रकृति वेदंत ?
जिन कहै प्रकृति कर्म नीं जी, चउदश वेदवूं हुंत ।।

२०. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?
गोयमा ! चोद्दस कम्मप्पगडीओ वेदेंति, तं जहा—

२१. ज्ञानावरणी आदि दे जी, जाव अंतराय पेख ।
श्रोतेंद्रिय-वध्य तेहनैं जी, ए मति ज्ञानावरणी विशेख।।

२१. नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं, सोइंदियवज्झं,

वा.—श्रोतेंद्रिय-वध्य ते श्रोतेंद्रिय हणवा योग्य एतलै श्रोतेंद्रिय नों आवरण । श्रोतेंद्रिय आवा न दै एहवूं कर्म छै जेहनैं ते श्रोतेंद्रिय-वध्य कहियै ए मतिज्ञानावरण विशेष ।

वा०—'सोइंदियवज्झं' ति श्रोत्रेन्द्रियं वध्यं—हननीयं यस्य तत्तथा मतिज्ञानावरणविशेष इत्यर्थः,
((वृ. प. ९५४)

२२. चक्षुइंद्रिय-वध्य वली जी, जेह कर्म नैं प्रताप ।
चक्षु आवा दै नहीं, ए चक्षुदर्शणावरण स्थाप ।।

२२. चक्खिदियवज्झं,

२३. इम घ्राणेंद्रिय-वध्य वली जी, जिभ्येंद्रिय-वध्य तास ।
अचक्षुदर्शण तणों जी, आवरण एह विमास ।।

२३. घाणिदियवज्झं, जिब्भिदियवज्झं,

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ शतक ३३ के सूत्र ६, ८, १० और ११ की जोड़ नहीं है । संभवतः जयाचार्य को प्राप्त आदर्श में उक्त पाठ नहीं था । १४ वीं गाथा में ८ वें सूत्र के अन्तिम भाग की जोड़ है । १० और ११ वें सूत्र में पज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी यावत् पज्जत्त बादर वनस्पतिकाय के जीवों के होने वाली कर्मप्रकृति का उल्लेख है। जोड़ में पुनः अपज्जत्त पृथ्वी यावत् ... पाठ की जोड़ है । इसलिए १८ वीं और १९ वीं गाथा के सामने पाठ नहीं दिया गया ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२४. फर्शेंद्रिय-वध्य नांहि, फर्शेंद्रिय नां वध्य थकी ।
एकेन्द्रियपणुं ताहि, तसु हानि तणांज प्रसंग थी ।।

वा०—स्पर्शनेंद्रिय-वध्य तो नहीं । तेहनैं अभावे एकेंद्रियपणां नीं हानि नां प्रसंग थकी ।

२४. स्पर्शनेन्द्रियवध्यं तु तेषां नास्ति, तद्भावे एकेन्द्रियत्वहानिप्रसङ्गादिति । (वृ. प. ९५४)

२५. *इत्थीवेद-वध्य जाणवूं जी,
जे उदय थी स्त्री नहिं होय ।
ते इत्थीवेदज-वध्य कह्यूं,
इम पुरुषवेद-वध्य जोय ।।

२५. इत्थिवेदवज्झं, पुरिसवेदवज्झं ।
'इत्थिवेयवज्झं' ति यदुदयात्स्त्रीवेदो न लभ्यते तत्स्त्रीवेदवध्यम् एवं पंवेदवध्यमपि, (वृ. प. ९५४)

सोरठा

२६. नपुंसवेद-वध्य नांहि, अपज्जत्त सूक्ष्म मही तिका ।
वेद नपुंसक मांहि, वर्त्तै छै ते कारणें ।।

२६. नपुंसकवेदवध्यं तु तेषां नास्ति नपुंसकवेदवर्त्तित्वादिति । (वृ. प. ९५४)

२७. *एम चिहुं भेदे करी जी, जाव पर्याप्त जेह ।
बादर वणस्सइकाइया, किती कर्मप्रकृति वेदेह ?

२७. एवं चउक्कएणं भेदेणं जाव— (श. ३३।१२)
पज्जत्ताबादरवणस्सइकाइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?

२८. एवं चेव चवदै जिके जी, कर्मप्रकृति वेदंत ।
सेवं भंते ! तेतीसमें जी, प्रथम उद्देशक तंत ।।

२८. गोयमा ! एवं चेव चोद्दस कम्मप्पगडीओ वेदेंति । (श. ३३।१३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३३।१४)

।।इति ३३।१।१।।

अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार

२९. हे प्रभु ! कितरा प्रकार नां जी,
प्रथम समय उत्पन्न ।
एकेन्द्रिया परूपिया, ए अणंतरोत्पन्न जन्न ?

२९. कतिविहा णं भंते । अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता ?

३०. जिन भाखै सुण गोयमा जी ! पंच प्रकार विख्यात ।
प्रथम समय नां ऊपनां जी, एगिंदिया आख्यात ।।

३०. गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—

३१. पृथ्वीकायिक आदि दे जी, जाव वनस्पतिकाय ।
अणंतरोववन्नगा जी, धुर समयोत्पन्न ताय ।।

३१. पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया । (श. ३३।१५)

३२. प्रथम समय नां ऊपनां जी,
प्रभु ! कतिविध पृथ्वीकाय ?
जिन भाखै सुण गोयमा जी ! दोय प्रकारे कहाय ।।

३२. अणंतरोववन्नगा णं भंते ! पुढविक्काइया कतिविहा पण्णता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

३३. सूक्ष्म पृथ्वीकाइया जी, बादर पुढवी ताय ।
इम द्विपद भेदे करी जी, जाव वनस्पतिकाय ।।

३३. सुहुमपुढविक्काइया य, बादरपुढविक्काइया य । एवं दुपएणं भेदेणं जाव वणस्सइकाइया । (श. ३३।१६)

सोरठा

३४. अनंतरोत्पन्न व्याप्त, एकेन्द्रिय छै जेहनैं ।
पर्याप्त अपर्याप्त, ए बे भेद अभाव करि ।।
३५. चतुर्विध जे भेद, तास असंभव थी इहां ।
द्वि पद भेद करि वेद, कहिवूं इह विधि आखियुं ।।

३४,३५. अनन्तरोपपन्नकानामेकेन्द्रियाणां पर्याप्तकापर्याप्तकभेदयोरभावेन चतुर्विधभेदस्यासम्भवाद् द्विपदेन भेदेनेत्युक्तम् । (वृ. प. ९५४)

*लय : हो बाई जी रा वीरा रात रा अमलां में होको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. धुर समयोत्पन्न जोय, सूक्ष्म बादर मही जिका ।
अपर्याप्तकज होय, पिण पर्याप्त हुवै नथी ।।
३७. तिण सूं मही नां ख्यात, सूक्ष्म बादर भेद बे ।
पिण अपज्जत्त पर्याप्त, ए बे भेद कह्या नथी ।।
३८. अपर्याप्ताज जोय, प्रथम समय नां ऊपनां।
पर्याप्ता न होय, तसु नहिं ह्वै बे भेद ए ।।
३९. ते माटै अवलोय, सूक्ष्म बादर मही प्रमुख ।
द्वि पद भेदे जोय, कहिवो इम आख्यो इहां ।।

अनन्तरोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों के कर्मप्रकृति

४०.*प्रथम समय नां ऊपनां जी, सूक्ष्म पृथ्वीकाय ।
हे भगवंत जी ! तेहनैं, किती कर्मप्रकृति कहिवाय ?
४१. जिन भाखै सुण गोयमा ! अठ कर्मप्रकृति छै ताय ।
ज्ञानावरणी आदि दे जी, यावत ही अंतराय ।।
४२. प्रथम समय नां ऊपनां प्रभु ! बादर पृथ्वीकाय ।
कर्मप्रकृति किती तेहनैं जी ? एवं चेव कहाय ।।

४०. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?
४१. गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं । (श. ३३।१७)
४२. अणंतरोववन्नगबादरपुढविक्काइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?
गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं ।

४३. एवं यावत जाणवूं जी, पढम समय उत्पन्न ।
बादर वणस्सइकाइया नैं, कर्मप्रकृति अठ मन्न ।।
४४. प्रथम समय नां ऊपनां जी, सूक्ष्म पृथ्वी जंत ।
हे प्रभुजी ! ते केतली जी, कर्मप्रकृति बांधंत ?
४५. जिन कहै आयु वर्ज नैं, सप्त कर्मप्रकृति बांधंत ।
धुर समयोत्पन्न काल में, आयु बंध नहिं हुंत ।।
४६. एवं यावत जाणवूं जी, प्रथम समय उत्पन्न ।
बादर वणस्सइकाइया जी, इहां लग पाठ सुजन्न ।।
४७. प्रथम समय नां ऊपनां जी, सूक्ष्म पृथ्वी जंत ।
हे प्रभुजी ! ते जीवड़ा, किती कर्मप्रकृति वेदंत ?
४८. जिन भाखै सुण गोयमा ! चउदै कर्मप्रकृति वेदंत ।
ज्ञानावरणी तिमहिज इहां, जाव पुरुषवेद-वध्य मंत ।।
४९. एवं यावत जाणवूं जी, प्रथम समय उत्पन्न ।
बादर वणस्सइकाइया जी, इहां लग पाठ सुजन्न ।।
५०. सेवं भंते ! स्वाम जी, शत तेतीसम सोय ।
द्वितीय उद्देशक नां कह्या जी, अर्थ अनोपम जोय ।।

।।इति ३३।१।२।।

४३. एवं जाव अणंतरोववन्नगबादरवणस्सइकाइयाणं ति । (श. ३३।१८)
४४. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ बंधंति ?
४५. गोयमा ! आउयवज्जाओ सत्त कम्मप्पगडीओ बंधंति ।
४६. एवं जाव अणंतरोववन्नगबादरवणस्सइकाइय त्ति । (श. ३३।१९)
४७. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?
४८. गोयमा ! चोद्दस कम्मप्पगडीओ वेदेंति, तं जहा—नाणावरणिज्जं, तहेव जाव पुरिसवेदवज्झं ।
४९. एवं जाव अणंतरोववन्नगबादरवणस्सइकाइयत्ति । (श. ३३।२०)
५०. सेवं भंते ! सेव भंते त्ति । (श. ३३।२१)

परम्परोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार

५१. हे भगवंतजी ! कतिविधा, बे आदि समय उत्पन्न ।
एकेंद्रिया परूपिया, ए परंपरोत्पन्न जन्न ?
५२. जिन भाखै सुण गोयमा जी ! पंच प्रकार विख्यात ।
बे आदि समय नां ऊपनां जी, एगिंदिया आख्यात ।।

५१. कतिविहा णं भंते ! परंपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता ?
५२. गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता तं जहा—

*लय : हो बाईजी रा वीरा रात रा अमलां में होको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. पृथ्वीकायिक आदि दे जी, एवं च्यारज भेद।
जिम ओघिक उद्देशके जी, आख्यो तिम संवेद ।।

वा०—पृथ्वी जाव वनस्पतिकाय बे भेदे सूक्ष्म, बादर। सूक्ष्म नां बे प्रकार अपर्याप्ता, पर्याप्ता। इम बादर का ही बे भेद, अपर्याप्ता, पर्याप्ता, इम च्यार भेद। ए बे आदि समय नां ऊपनां छै ते माटै ४ भेद हुवै।

५३. पुढविक्काइया एवं चउक्कओ भेदो जहा ओहि-उद्देसए। (श. ३३।२२)

परम्परोपपन्न एकेन्द्रिय जीवों की कर्मप्रकृति

५४. प्रभु ! परंपरोववन्नगा जी, अपर्याप्ता नें ताय।
सूक्ष्म पृथ्वीकाय नें, किती कर्मप्रकृति कहिवाय ?

५५. इम इण आलावे करी जी, जिम ओघिक उद्देश।
आख्यो तिणहिज रीत सूं जी, कहिवो सर्व अशेष ।।

५६. जाव चउद कर्मप्रकृति जी, वेदै इहां लग हुंत।
सेवं भंते ! स्वाम जी, तृतीय उद्देशक तंत ।।

।।इति ३३।१।३।।

५४. परंपरोववन्नगअपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

५५. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिउद्देसए तहेव निरवसेसं भाणियव्वं

५६. जाव चोद्दस वेदेंति। (श. ३३।२३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३३।२४)

अनन्तरावगाढ आदि एकेन्द्रिय जीवों की कर्म प्रकृति

५७. अनंतरोगाढक तणों जी, तुर्य उद्देशक ताय।
जिम अनंतरोववन्नगा जी, आख्या तिम कहिवाय ।।

वा०—प्रथम समय आकाशास्तिकाय नां प्रदेश अवगाह्या तेहनैं अणंतरावगाढा कहियै।

।।इति ३३।१।४।।

५७. अणंतरोगाढा जहा अणंतरोववन्नगा। (श. ३३।२५)

५८. परंपरोगाढा तणों जी, पंचमुद्देशक पेख।
जेम परंपरोववन्नगा जी, आख्या तिम ए लेख ।।

वा०—आकाशास्तिकाय नां प्रदेश अवगाह्या नैं बे आदि समय थया ते माटै परंपरावगाढा कहियै।

।।इति ३३।१।५।।

५८. परंपरोगाढा जहा परंपरोववन्नगा। (श. ४३।२६)

५९. अनंतर-आहारक तणों जी, छठो उद्देशो जाण।
जिम अनंतरोववन्नगा जी, तिम कहिवो पहिछाण ।।

वा०—पहिलै समय आहार लियो, तेहनैं अनंतर-आहारका ते प्रथम समय ऊपनां नीं परै कहिवा।

।।इति ३३।१।६।।

५९. अणंतराहारगा जहा अणंतरोववन्नगा। (श. ३३।२७)

६०. परंपर-आहारक तणों जी, सप्तमुद्देशक सोय।
जिम परंपरोववन्नगा जी, तिम कहिवो अवलोय ।।

वा०—आहार लियां नैं बे आदि समय थया, ते परंपर-आहारका परंपरोववन्नगा नीं परै कहिवा।

।।इति ३३।१।७।।

६०. परंपराहारगा जहा परंपरोववन्नगा। (श. ३३।२८)

६१. अनंतर-पर्याप्त तणों जी, अष्टमुद्देशक आम।
जिम अनंतरोववन्नगा जी, आख्या तिम ए ताम ।।

वा०—पर्याय बांध्यां नैं एक समय थयो, ते अनंतर-पर्याप्तका अनंतरोववन्नगा नीं परै कहिवा।

।।इति ३३।१।८।।

६१. अणंतरपज्जत्तगा जहा अणंतरोववन्नगा। (श. ३३।२९)

६२. परंपर-पर्याप्तक नों जी, नवम उद्देशक न्हाल।
जिम परंपरोववन्नगा जी, भाख्यो तिम ए भाल ।।

६२. परंपरपज्जत्तगा जहा परंपरोववन्नगा। (श. ३३।३०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—पर्याय बांध्या नैं बे आदि समय थया, ते परंपर-पर्याप्तका परंपरोववन्नगा नीं परै कहिवा।

॥इति ३३।१।९॥

६३. दशम उद्देशक चरम नैं पिण, परंपरोत्पन्न जेम।
एकादशम उद्देशके जी, अचरिमा पिण एम॥

॥इति ३३।१।१०,११॥

६३. चरिमा वि जहा परंपरोववन्नगा तहेव। (श.३३।३१)
एवं अचरिमा वि।

६४. इम ए ग्यार उद्देशका जी, ए पहिलूं पहिछाण।
शतक एकेंद्रिय नों कह्यो जी, सेवं भंते ! जाण॥

६४. एवं एए एक्कारस उद्देसगा। (श. ३३।३२)
सेवं भंते ! सेवं भंते !

६५. इम कही गोतम जाव विचरता, शत तेतीसम मांहि।
अंतर शत एकेंद्रिय तणों जी, थयो संपूर्ण ताहि॥

६५. त्ति जाव विहरइ। (श. ३३।३३)

६६. ढाल च्यार सौ ऊपरै जी, तीन असीमी देख।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी जी,
'जय-जश' हरष विशेख॥

ढाल : ४८४

कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार

दूहा

१. कृष्णलेशी एकेंद्रिय, कतिविध कह्या जिनेश ?
जिन कहै पंचविधा कह्या, एगिंदिया कण्हलेश॥

१. कतिविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—

२. पृथ्वीकायिक आदि दे, जाव वनस्पतिकाय।
कृष्णलेशी एकेंद्रिया, ए पांचूं कहिवाय॥

२. पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया। (श. ३३।३४)

३. कृष्णलेशी महीकायिका, कतिविध हे जिनराय ?
जिन कहै द्विविध सूक्ष्म मही, फुन बादर महीकाय॥

३. कण्हलेस्सा णं भंते ! पुढविक्काइया कतिविहा पण्णत्ता ?
गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा – सुहुमपुढविक्काइया य, बादरपुढविक्काइया य। (श. ३३।३५)

४. कृष्णलेशी भगवंतजी ! सूक्ष्म पृथ्वीकाय।
कितै प्रकार परूपिया ? इत्यादिक कहिवाय॥

४. कण्हलेस्सा णं भंते ! सुहुमपुढविक्काइया कतिविहा पण्णत्ता ?

५. इम इण आलावे करी, च्यार भेद कहिवाय।
जिम ओघिक उद्देशके, आख्यो तिम कहिवाय॥

५. एवं एएणं अभिलावेणं चउक्कओ भेदो जहेव ओहिउद्देसए। (श. ३३।३६)

कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के कर्म प्रकृति

६. कृष्णलेशी अपज्जत्त प्रभु ! सूक्ष्म पृथ्वी नैं जाण।
कर्मप्रकृति है केतली ? गोयम प्रश्न पिछाण॥

६. कण्हलेस्सअपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

७. इम इण आलावे करी, जिमहिज आख्यो जेह॥
ओघिक उद्देशक विषे, पूर्वे प्रगटपणेह॥

७. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. तिमहिज परूपणा दंडक, तिमहिज बंध प्रकार।
तिमहिज वेदै ए त्रिहुं, दंडक कहिवा धार ।।
९. सेवं भंते ! स्वाम जी, शत तेतीसम मांय।
द्वितीय एकेंद्रिय शतक नों, प्रथम उद्देशक आय ।।

।।इति ३३।२।१।।

८. तहेव पण्णत्ताओ, तहेव बंधंति, तहेव वेदेंति। (श. ३३।३७)
९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३३।३८)

अनन्तरोपपन्न कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के कर्मप्रकृति

१०. *कतिविध हे भगवंतजी ? रे हां,
अनंतरोत्पन्न ताम।जिन वच सुंदरू।
कृष्णलेशी एगिंदिया रे हां, आप परूप्या स्वाम ? जिन वच सुंदरू।
११. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे हां,
धुर समयोत्पन्न धार।
कृष्णलेशी एगिंदिया रे हां, आख्या पांच प्रकार ।।
१२. इम इण आलावे करी रे हां, तिमहिज द्विपद भेद।
यावत वनस्पति लगै रे हां, कहिवो आण उमेद ।।

१० कतिविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगकण्हलेस्स-एगिंदिया पण्णत्ता ?

११. गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया।

१२. एवं एएणं अभिलावेणं तहेव दुयओ भेदो जाव वणस्सइकाइयत्ति। (श. ३३।३९)

सोरठा

१३. अपज्जत्त पज्जत्त सुजोय, दोय भेद वर्जित जिके।
सूक्ष्म बादर सोय, कहिवा बे पद भेद करि ।।
१४. *धुर समयोत्पन्न छै तिके रे हां,
कृष्णलेशी जे भगवंत !
सूक्ष्म पृथ्वीकाय नैं रे हां, केतली कर्मप्रकृति हुंत ?
१५. इम इण आलावे करी रे हां, जिम ओघिक छै जेह।
अनंतरोत्पन्न उद्देशके रे हां, आख्यो तिमज कहेह ।।
१६. यावत वेदै इहां लगै रे हां, सेवं भंते ! स्वाम।
द्वितीय एकेंद्रिय शतक नों रे हां,
द्वितीय उद्देशक आम ।।

।।इति ३३।२।२।।

१४. अणंतरोववन्नगकण्हलेस्ससुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

१५. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिओ अणतरोववन्नगाणं उद्देसओ तहेव।
१६. जाव वेदेंति। (श. ३३।४०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ! (श. ३३।४१)

परम्परोपपन्न कृष्णलेश्यी एकेन्द्रिय जीवों के कर्मप्रकृति

१७. केतलै भेदे आखिया रे हां, परंपरोत्पन्न धार।
कृष्णलेशी एकेंद्रिया रे हां ? कहियै हे जगतार !
१८. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे हां, परंपरोत्पन्न जेह।
कृष्णलेशी एकेंद्रिया रे हां, आख्या पंचविधेह ।।
१९. पुढवीकायिक आदि दे रे हां, इम इण आलावेह।
चउक्क भेद करि जाव ही रे हां,
वणस्सइकाय लगेह ।।
२०. परंपरोत्पन्न छै तिके रे हां, कृष्णलेशी भगवंत !
अपज्जत्त सूक्ष्म मही तणैं रे हां,
केतली कर्मप्रकृति हुंत ?

१७. कतिविहा णं भंते ! परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता ?
१८. गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्नगा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—
१९. पुढविक्काइया, एवं एएणं अभिलावेणं तहेव चउक्कओ भेदो जाव वणस्सइकाइयत्ति। (श. ३३।४२)

२०. परंपरोववन्नगकण्हलेस्सअपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

*लय : केदारो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२१. इम इण अभिलापे करी रे हां,
जिमहिज ओघिक जेह ।
परंपरोत्पन्न उद्देशके रे हां, तिमहिज जाव वेदेह ।।
२२. इम इण आलावे करी रे हां,
जिमहिज ओघिक जाण ।
एकेंद्रिय शतके कह्या रे हां, ग्यार उद्देश पिछाण ।।
२३. तिमहिज कहिवा छै इहां रे हां, कृष्णलेशी शतकेह ।
यावत अचरिम जाणवा रे हां,
कृष्णलेशी एकेंद्रिय एह ।।
।।इति ३३।२।३-११।।

२१. एवं एएणं ओभिलावेणं जहेव ओहिओ परंपरोववन्नग-उद्देसओ तहेव जाव वेदेंति ।

२२. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिएगिंदियसए एक्कारस उद्देसगा भणिया ।

२३. तहेव कण्हलेस्ससते वि भाणियव्वा जाव अचरिम-चरिमकण्हलेस्सा एगिंदिया । (श. ३३।४३)

नीललेश्यी एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति

२४. जिम कृष्णलेश्या संघाते शत कह्यो रे हां,
इम नीललेश्या संघात ।
कहिवूं शतकज तीसरो रे हां, सेवं भंते ! नाथ ।।
।।इति ३३।३।।

२४. जहा कण्हलेस्सेहिं भणियं एवं नीललेस्सेहि वि सयं भाणियव्वं । (श. ३३।४४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३३।४५)

कापोतलेश्यी एकेन्द्रिय के कर्म प्रकृति

२५. इम कापोतलेश्या संघात ही रे हां,
भणिवूं शत संलाप ।
णवरं कापोतलेश्या इसो रे हां,
कहिवूं नाम अभिलाप ।।
।।इति ३३।४।।

२५. एवं काउलेस्सेहि वि सयं भाणियव्वं, नवरं—काउलेस्से त्ति अभिलावो भाणियव्वो । (श. ३६।४६)

भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के प्रकार

२६. कतिविध हे भगवंतजी ! रे हां, भवसिद्धिक छै जेह ।
एकेंद्रिया परूपिया रे हां ? हिव जिन उत्तर देह ।।
२७. भवसिद्धिक एकेंद्रिया रे हां, दाख्या पंच प्रकार ।
पृथ्वीकायिक आदि दे रे हां, जाव वनस्पति धार ।।
२८. सूक्ष्म बादर जाणवा रे हां, पर्याप्त अपर्याप्त ।
भेद च्यार ए जेहनां रे हां, जाव वनस्पति आप्त ।।

२६. कतिविहा णं भंते ! भवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता ? गोयमा !
२७. पंचविहा भवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया,
२८. भेदो चउक्कओ जाव वणस्सइकाइयत्ति ।

भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति

२९. भवसिद्धिक भगवंतजी ! रे हां, अपर्याप्त छै जेह ।
सूक्ष्म पृथ्वीकायिका रे हां,
कति कर्मप्रकृति तसु लेह ?
३०. इम इण अभिलापे करी रे हां,
जिमहिज प्रथम पिछाण ।
एकेंद्रिय शत आखिया रे हां,
तिम भवसिद्धि शत पिण जाण ।।
३१. परिपाटी उद्देशा तणीं रे हां, तिमहिज कहिवी ताम ।
यावत अचरिम लग सहु रे हां, सेवं भंते ! स्वाम ।।

।।इति ३३।५।।

२९. भवसिद्धीयअपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

३०. एवं एएण अभिलावेण जहेव पढमिल्लगं एगिंदियसयं तहेव भवसिद्धीयसयं पि भाणियव्वं ।

३१. उद्देसगपरिवाडी तहेव जाव अचरिमो त्ति । (श. ३३।४८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३३।४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक के प्रकार

३२. कतिविध हे भगवंतजी ! रे हां, कृष्णलेशी छै जेह।
भवसिद्धिक एकेंद्रिया रे हां, दाख्या जिन गुणगेह ?

३३. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे हां, पंच प्रकार विख्यात।
कृष्णलेशी भवसिद्धिका रे हां, एगिंदिया आख्यात ।।

३४. तेह पंच कहियै अछै रे हां, पृथ्वीकायिक पेख।
जाव वनस्पतिकायिका रे हां, ए जिन वच सुविशेख ।।

३५. कृष्णलेशी भवसिद्धिका रे हां, पृथ्वीकायिक स्वाम।
कितै प्रकार परूपिया रे हां ? आप कहो गुणधाम !

३६. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे हां, दो प्रकार कहाय।
सूक्ष्म पृथ्वीकायिका रे हां, बादर पृथ्वीकाय ।।

३७. कृष्णलेशी भवसिद्धिका रे हां, सूक्ष्म पृथ्वीकाय।
कितै प्रकार परूपिया रे हां ? भाखो जी जिनराय !

३८. जिन भाखै सुण गोयमा ! रे हां, दोय प्रकारे ख्यात।
पर्याप्ता अपर्याप्ता रे हां, इम बादर पिण आत ।।

३९. इम इण अभिलापे करो रे हां, तिमहिज चिहुं भेदेह।
कहिवा पूर्वली परै रे हां, वारू विधि सूं जेह ।।

३२. कतिविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता ?

३३. गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—

३४. पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया। (श. ३३।५०)

३५. कण्हलेस्सभवसिद्धीयपुढविक्काइया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

३६. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविक्काइया य, बादरपुढविक्काइया य। (श. ३३।५१)

३७. कण्हलेस्सभवसिद्धीयसुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

३८. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—पज्जत्तगा य, अपज्जत्तगा य। एवं बादरा वि।

३९. एएणं अभिलावेणं तहेव चउक्कओ भेदो भाणियव्वो। (श. ३३।५२)

कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति

४०. कृष्णलेशी भवसिद्धिया रे हां, हे भगवंत ! अपज्जत्त।
सूक्ष्म पृथ्वीकाय नैं रे हां, केतली कर्मप्रकृत्त ?

४१. इम इण अभिलापे करी रे हां, जिम ओघिक उद्देश।
आख्यो तिम कहिवो इहां रे हां, यावत वेदै एस ।।

४२. कतिविध हे भगवंतजी ! रे हां, अनंतरोत्पन्न जात।
कृष्णलेशी भवसिद्धिका रे हां, एगिंदिया आख्यात ?

४३. जिन भाखै पंचविध कह्या रे हां, अनंतरोत्पन्न ताय।
जाव वणस्सइकाइया रे हां, इहां लगै कहिवाय ।।

४०. कण्हलेस्सभवसिद्धीयअपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

४१. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसए तहेव जाव वेदेंति। (श. ३३।५३)

४२. कतिविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा कण्हलेस्सा भवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता ?

४३ गोयमा ! पंचविहा अणंतरोववन्नगा जाव वणस्सइकाइया। (श. ३३।५४)

अनंतरोपपन्न कृष्णलेश्यी भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति

४४. अनंतरोत्पन्न छै तिके रे हां, कृष्णलेशी विख्यात।
भवसिद्धिक महीकायिका रे हां,
प्रभु ! कतिविध आख्यात ?

४५. जिन भाखै द्विविध कह्या रे हां, सूक्ष्म पृथ्वी जेह।
बादर पृथ्वीकायिका रे हां, इम द्विपद भेदेह ।।

४६. अनंतरोत्पन्न छै तिके रे हां, कृष्णलेशी भगवंत !
भवसिद्धि सूक्ष्म मही तणैं रे हां,
केतली कर्मप्रकृति हुंत ?

४७. इम इण अभिलापे करी रे हां, जिमहिज ओघिक जेह।
उद्देशो अनंतरोत्पन्न कह्यूं रे हां, तिमज जाव वेदेह ।।

४८. इम इण अभिलापे करो रे हां, एकादश पिण जान।
उद्देशक विधि रीत सूं रे हां, तिमहिज कहिवा मान ।।

४४. अणंतरोववन्नगकण्हलेस्सभवसिद्धीयपुढविक्काइया णं भंते ! कतिविहा पण्णत्ता ?

४५. गोयमा ! दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुहुमपुढविक्काइया, एवं दुयओ भेदो। (श. ३३।५५)

४६. अणंतरोववन्नगकण्हलेस्सभवसिद्धीयसुहुमपुढविक्काइयाणं भंते ! कइ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

४७. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ अणंतरोववन्नउद्देसओ तहेव जाव वेदेंति।

४८. एवं एएणं अभिलावेणं एक्कारस वि उद्देसगा तहेव भाणियव्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४९. जिम ओघिक शत नीं परै रे हां, यावत अचरिम जोय।
छट्ठो एकेंद्रिय तणुं रे हां, शतक संपूर्ण होय।।
।।इति ३३।६।।

४९. जहा ओहियसए जाव अचरिमो त्ति। (श. ३३।५६)

नीललेश्यी आदि भवसिद्धिक एकेन्द्रिय के कर्मप्रकृति

५०. जिम कृष्णलेशी भवसिद्धिक नें रे हां,
संघाते शत ख्यात।
इम नीललेशी भवसिद्धिक नें रे हां,
संघाते शतक विख्यात।।
।।इति ३३।७।।

५०. जहा कण्हलेस्सभवसिद्धीएहिं सयं भणियं एवं नील-लेस्सभवसिद्धीएहि वि सतं भाणियव्वं।(श. ३३।५७)

५१. इम कापोतलेशी जिको रे हां भवसिद्धिक संघात।
ते पिण शत कहिवो वलि रे हां,
अष्टम शत आख्यात।।
।।इति ३३।८।।

५१. एवं काउलेस्सभवसिद्धीएहि वि सतं।
(श. ३३।५८)

५२. कतिविध हे भगवंतजी! रे हां, अभवसिद्धिया ताय।
एगिंदिया जे आखिया रे हां? दाखो श्री जिनराय!
५३. जिन भाखै पंचविध कह्या रे हां,
अभव्य एकेंद्रिया ताय।
पृथ्वीकायिक आदि दे रे हां, जाव वनस्पतिकाय।।
५४. एवं जिमहिज आखियो रे हां,
शत भवसिद्धिक अशेष।
तिमहिज कहिवूं ए सहु रे हां, णवरं नव उद्देश।।
५५. चरम अनें अचरम तणां रे हां, वर्जी उद्देशा दोय।
शेष तिमज कहिवो सहु रे हां, तास न्याय इम होय।।

५२. कइविहा णं भंते! अभवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता?
५३. गोयमा! पंचविहा अभवसिद्धीया एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया।
५४. एवं जहेव भवसिद्धीयसतं भणियं, नवरं—नव उद्देसगा।
५५. चरिमअचरिमउद्देसगवज्जं, सेसं तहेव।
(श. ३३।५९)

सोरठा

५६. अभव्यसिद्धिक नें जोय, अचरमपणैंज आखिया।
ते माटै अवलोय, अचरिम चरिम विभाग नहीं।।
।।इति ३३।९।।
५७. *इम कृष्णलेशी अभवसिद्धियो रे हां,
एकेंद्रिय शत पिण आम।
दशम एकेंद्रिय शत इहां रे हां, थयो संपूर्ण ताम।।
।।इति ३३।१०।।

५६. 'चरमअचरमउद्देसगवज्जं' ति अभवसिद्धिकानामचरम-त्वेन चरमाचरमविभागो नास्तीतिकृत्वेति।
(वृ. प. ९५४)
५७. एवं कण्हलेस्सअभवसिद्धीयएगिंदियसतं पि।
(श. ३३।६०)

५८. इम नीललेशी अभवसिद्धिको रे हां,
एकेंद्रिय शत आय।
शत ग्यारम एकेंद्रिय इहां रे हां, थयो संपूर्ण ताय।।
।।इति ३३।११।।

५८. नीललेस्सअभवसिद्धीयएगिंदिएहि वि सतं।
(श. ३३।६१)

---

*लय : केदारो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५९. कापोतलेशी अभवसिद्धिक नों रे हां,
शतक बारमों सोय ।
इम चिहुं शत अभवसिद्धिक नां रे हां,
नव-नव उद्देशा होय ।।

इति ।।३३।१२।।

६०. इम ए द्वादश पिण इहां रे हां, एकेंद्रिय शत होय ।
शत तेतीसम नैं विषे रे हां, अंतर ए अवलोय ।।

ए बारै शतक अवांतर तेतीसम शतकार्थ तिण में प्रथम आठ अवांतर शतक नां ग्यारै-ग्यारै उद्देशा । इम ए ८८ अनैं छेहला ४ अवांतर शतक अभव्यसिद्धिक, तेहनां नव-नव उद्देशा । इम ए ३६ । ए तेतीसम शतक नां सर्व १२४ उद्देशा रूप तेतीसम शतकार्थ संपूर्ण ।।३३।।

६१. ढाल च्यार सौ ऊपरै रे हां, चार असीमीं एह ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे हां,
'जय-जश' गण गुणगेह ।।

५९. काउलेस्सअभवसिद्धीयसतं । एवं चत्तारि वि अभवसिद्धीयसताणि नव-नव उद्देसगा भवंति ।

६०. एवं एयाणि बारस एगिंदियसताणि भवंति ।
(श. ३३।६२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुस्त्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चतुस्त्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४८५

दूहा

१. तेतीसम शत नैं विषे, एकेंद्रिय आख्यात ।
चउतीसम तेहीज हिव, भंगांतर करि आत ।।
२. इम संबंध करि एहनां, बार अवांतर जेह ।
शतक सहित तसु धुर अर्थ, आगल कहियै एह ।।

एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति (क)

३. कतिविध हे भगवंतजी ! एकेंद्रिय आख्यात ?
जिन कहै पंच प्रकार जे, एकेंद्रिय अवदात ।।
४. पृथ्वी जाव वनस्पति, एवं ए पिण च्यार ।
भेद करी भणिवा इहां, जाव वनस्पति धार ।।

*श्रेणी शत चउतीसम सांभलो रे ।। (ध्रुपदं)

५. अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाइया रे,
आ रत्नप्रभा नां जेह ।
पूर्व नां चरिमंत विषे भगवंतजी रे !
समुद्घात करि तेह ।
६. आ रत्नप्रभा मही नैं पश्चिम तणैं रे,
चरिमांतेज प्रयोग ।
अपज्जत्त सूक्ष्म जे पुढवीपणैं रे, जे ऊपजवा जोग ।।
७. हे प्रभु ! तेह केतला समय नैं रे,
विग्रह करि उपजंत ?
जिन कहै एक दु ति समय विग्रह करी रे,
ऊपजवूं तसु हुंत ।।

वा०—इहां लोकनाड़ी नैं आलंकी नैं जाणवो । एक समयो जेहनैं विषे छै तिका एकसमयिका कहियै, ते एक समय करी । हिवै विग्गहेणं पाठ नों अर्थ कहै छै—विग्रह कहितां वक्र गति नैं विषे ते वक्र नों संभव थकी गतिहीज विग्रह तेह विग्रह गति करी ऊपजै । अथवा विग्रह कहितां विशिष्ट ग्रहै—विशिष्ट स्थान प्राप्ति हेतुभूत गति विग्रह तेणे करी तिहां ऊपजै ।

१. त्रयस्त्रिंशशते एकेन्द्रियाः प्ररूपिताश्चतुस्त्रिंशच्छतेऽपि भङ्गचन्तरेण त एव प्ररूप्यन्ते (वृ. प. ९५४)
२. इत्येवं संबन्धेनायातस्य च द्वादशशतोपेतस्यास्येदमादि-सूत्रम्— (वृ. प. ९५४)

३. कइविहा णं भंते ! एगिंदिया पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—
४. पुढविक्काइया जाव वणस्सइकाइया । एवमेते चउक्कएणं भेदेणं भाणियव्वा जाव वणस्सइकाइया । (श. ३४।१)

५. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
६. जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
७. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?
गोयमा ! एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा । (श. ३४।२)

वा०—इदं च लोकनाडीं प्रस्तीर्य भावनीयं, 'एगसमइएण व' त्ति एकः समयो यत्रास्त्यसावेक-सामयिकस्तेन 'विग्गहेणं' ति विग्रहे—वक्रगतौ च तस्य सम्भवाद् गतिरेव विग्रहः, विशिष्टो वा ग्रहो—विशिष्टस्थानप्राप्तिहेतुभूता गतिर्विग्रहस्तेन, (वृ. प. ९५६)

---

*लय : कार्य सुधारै हो चतुर हुवै जिको जी

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

८. किण अर्थ प्रभुजी ! इम आखियो रे,
एक समय करि जेह ।
दोय समये करिनें यावत वली रे,
विग्रह करि उपजेह ?

८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—एगसमइएण वा दुसमइएण वा जाव उववज्जेज्जा ।

९. जिन कहै इम निश्चै करि गोयमा ! रे,
श्रेणि परूपी सात ।
उजु-आयता सेढी धुर कही रे, एगओवंका ख्यात ।।

९. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उज्जुयायता सेढी, एगओवंका,

१०. दुहओवंका नें एगओखहा रे, दुहओखहा जाण ।
चक्रवाल नें अधचक्रवाल ही रे,
ए सप्त श्रेणि पहिछाण ।।

१०. दुहओवंका, एगओखहा, दुहओखहा, चक्कवाला, अद्धचक्कवाला ।

सोरठा

११. मरण स्थान अपेक्षाय, उत्पत्ति स्थानक नें विषे ।
समश्रेणि हुवै ताय, ते ऋजु-आयता श्रेणि तब ।।
१२. तिण करि जातो जेह, ते एक समय नीं गति हुवै ।
तिणसूं एम कहेह, एक समय करि ऊपजै ।।

११,१२. उज्जुआयताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमएण विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
तत्र 'उज्जुआययाए' त्ति यदा मरणस्थानापेक्षयोत्पत्तिस्थानं समश्रेण्यां भवति तदा ऋज्वायता श्रेणिर्भवति, (वृ. प. ९५६)

वा०—उज्जु जिवारै मरणस्थान अपेक्षाये उत्पत्तिस्थान सम श्रेणि करी हुवै तिवारै उज्जु-आयता श्रेणि हुवै । तिण करिकै जातां एक समय नीं गति हुवै ते उज्जु-आयता कहियै ।

सोरठा

१३. तथा जिवारे जेह, मरण-स्थान छै तेहथी ।
उत्पत्ति-स्थान विषेह, एक प्रतरे विश्रेणि ह्वै ।।
१४. तिका एक थी जोय, वक्र श्रेणि कहियै अछै ।
दोय समय थी सोय, उत्पत्ति स्थानक ऊपजै ।।

१३,१४. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
यदा पुनर्मरणस्थानादुत्पत्तिस्थानमेकप्रतरे विश्रेण्यां वर्त्तते तदैकतोवक्रा श्रेणिः स्यात् समयद्वयेन चोत्पत्तिस्थानप्राप्तिः स्यादित्यत उच्यते—'एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणमित्यादि, (वृ. प. ९५६,९५७)

वा०—तथा जिवारे मरण-स्थानक थकी उत्पत्ति स्थानक एक प्रतर विश्रेणि में वर्त्तै छै, ते एक थी वक्र श्रेणि हुवै । समय बिहुं करी उत्पत्ति-स्थानक प्रतै पामवो हुवै, एतला माटै एगओवंका कहियै ।

१५. मरण-स्थान थी जान, उत्पत्ति-स्थानक अधस्तन ।
अथवा उपरितन मान, प्रतर विषे विश्रेणि ह्वै ।।
१६. वक्र श्रेणि तब बेह, समय तीन करिनें तिको ।
उत्पत्ति-स्थानक लेह, दुहओवंका ते कही ।।

१५,१६. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
यदा तु मरणस्थानादुत्पत्तिस्थानमधस्तने उपरितने वा प्रतरे विश्रेण्यां स्यात्तदा द्विवक्राश्रेणिः स्यात् समयत्रयेण चोत्पत्तिस्थानावाप्तिः स्यादित्यत उच्यते—'दुहओवंकाए' इत्यादि, (वृ. प. ९५७)

वा०—जिवारै वली मरणस्थान थकी उत्पत्तिस्थान अधस्तन अथवा उपरितन प्रतर नें विषे विश्रेणि हुवै तिवारै, दोय वक्र श्रेणि हुवै । एतला माटै दुहओवंका कहियै ।

१७. एक पास नभ तास, एक थकी खहा तिका ।
बिहुं पास आकाश, ते दुहओखहा कही ।।

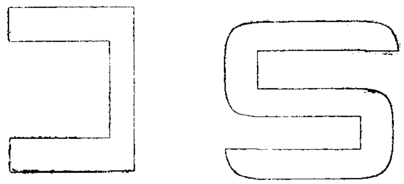

एगओखहा दुहओखहा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१८. चक्र आकार विचार, चक्रवाल छठी कही।
अर्द्ध चक्र आकार, अद्ध-चक्कवाला सप्तमी ।।

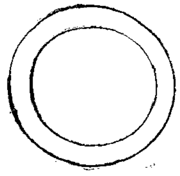

चक्कवाल

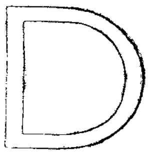

अद्धचक्कवाल

१९. *ऋजु-आयता श्रेणि हुवै यदा रे, मरण-स्थान थी जेण।
उत्पत्ति-स्थानक सम श्रेणि हुवै रे,
ते ऋजु-आयत दीर्घ श्रेण ।।

२०. ते ऋजु-आयत श्रेणि करि जावतो रे,
एक समय नीं जाण।
विग्रह गति करिनें जे ऊपजै रे, ते ऋजु-आयत पहिछाण ।।

उज्जुआयता

२१. मरण-स्थानक थी उत्पत्ति-स्थानके रे,
वर्त्ते इक प्रतरे विश्रेण।
ते इक पासे वक्र श्रेणि हुवै रे, ते एगओवंका कहेण ।।

२२. ते इक पासे वक्र श्रेणि करी रे, ऊपजतो थको जीव।
दोय समय विग्रह करि ऊपजै रे, ते एगओवंका कहीव ।।

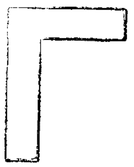

एगओवंका

२३. मरण-स्थान थी उत्पत्ति-स्थान ही रे,
तल तथा ऊपर लेह।
प्रतर विषे जे विश्रेणि करी रे, जीव ऊपजै तेह ।।

२४. ए बिहुं वक्रज गति श्रेणि करी रे, ऊपजतो थको जह।
तीन समय विग्रह करि ऊपजै रे, ए दुहओवंका कहेह ।।

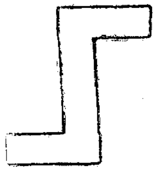

दुहओवंका

२५. ते तिण अर्थे करि हे गोयमा ! रे, जाव ऊपजै जीव।
इक बे तीन समय विग्रह करी रे, उत्पत्ति एम कहीव ।।

२५. से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव उववज्जेज्जा।
(श. ३४।३)

२६. अपज्जत्त सूक्ष्म ए पृथ्वी हे प्रभु ! रे,
रत्नप्रभा पृथ्वी नैं विषेह।
पूर्व नां चरिमंत विषे जिको रे, समुद्घात करि जेह ।।

२६. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता

२७. आ रत्नप्रभा पृथ्वी तेहनें विषे रे, पश्चिम नैं चरिमंत।
पज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकपणें रे, ऊपजवा जोग्य जंत ।।

२७. जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

२८. हे प्रभु ! तेह केतला समय नैं रे, विग्रह करि उपजेह ?
जिन कहै एक समय विग्रह करी रे,
तथा दोय समय विग्रेह ।।

२८. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?
गोयमा ! एगसमइएण वा

२९. शेष तिमज कहिवो यावत जिको रे, तिण अर्थे करि ताम।
यावत विग्रह करिनैं ऊपजै रे, द्वितीय आलावो आम ।।

२९. सेसं तं चेव जाव से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—एगसमइएणं वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

*लय : कार्य सुधारै हो चतुर हुवै जिको जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३०. इम अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाइयो रे,
पूर्व नैं चरिमंत।
समुद्घात मारणांति कराय नैं रे,
आयु पूरो करि जंत ।।

३०. एवं अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइओ पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहणावेत्ता

३१. पश्चिम नां चरिमंत विषे तिको रे,
बादर पृथ्वीकाय।
तसु अपजत्त नैं विषे उपजाविवो रे,
ए तृतीय आलावो ताय ।।

३१. पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते बादरपुढविकाइएसु अपज्जत्तएसु उववाएयव्वो,

३२. तेहिज अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी रे, पूर्व नैं चरिमंत।
समुद्घात मारणांति कराय नैं रे,
आयु पूरो करि जंत ।।

३३. पश्चिम नां चरिमंत विषे तिको रे,
बादर पृथ्वीकाय।
तसु पर्याप्ता विषे उपजाविवो रे,
ए तुर्य आलावो ताय ।।

३२,३३. ताहे तेसु चेव पज्जत्तएसु।

३४. इम अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय नैं रे,
सूक्ष्म जे अपकाय।
अपर्याप्त नैं विषे उपजाविवो रे,
प्रथम आलावे आय ।।

३५. इम अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय नैं रें,
सूक्ष्म जे अपकाय।
पर्याप्त नैं विषे उपजाविवो रे,
द्वितीय आलावो कहाय ।।

३६. इम अपजत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय नैं रे,
बादर जे अपकाय।
अपर्याप्त नैं विषे उपजाविवो रे,
ए तृतीय आलावो ताय ।।

३७. इम अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाय नं रे,
बादर जे अपकाय।
पर्याप्त नैं विषे उपजाविवो रे, तुर्य आलावो ताय ।।

३८. च्यार आलावा इम अपकाय में रे, पृथ्वी उपजै तास।
पूर्व कह्या तेहिज संक्षेप थी रे, कहियै छै सुविमास ।।

३४-३८. एवं आउक्काइएसु चत्तारि आलावगा सुहुमेहिं अपज्जत्तएहिं, ताहे पज्जत्तएहिं, बादरेहिं अपज्जत्तएहिं, ताहे पज्जत्तएहिं उववाएयव्वो।

सोरठा

३९. सूक्ष्म अपज्जत्त जेह, सूक्ष्म अपज्जत्त नैं विषे।
सूक्ष्म अपज्जत्त तेह, सूक्ष्म पर्याप्तक विषे ।।

४०. सूक्ष्म अपज्जत्त जेह, बादर अपर्याप्त विषे।
सूक्ष्म अपज्जत्त तेह, बादर पर्याप्तक विषे ।।

४१. *इमहिज सूक्ष्म पृथ्वीकाइयो रे, सूक्ष्म तेउ संघात।
अपज्जत्त अनैं पर्याप्त नैं विषे रे,
उपजाविवो विख्यात ।।

४१. एवं चेव सुहुमतेउकाइएहि वि अपज्जत्तएहिं ताहे पज्जत्तएहिं उववाएयव्वो। (श. ३४।४)

*लय : कार्य सुधारै हो चतुर हुवै जिको जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

४२. सूक्ष्म मही अपज्जत्त, सूक्ष्म तेऊकाय नां।
अपज्जत्तपणें उपत्त, प्रथम आलावो ए कह्यो ॥
४३. सूक्ष्म मही अपजत्त, सूक्ष्म तेऊकाय नां।
पज्जत्तपणें उपपत्त, द्वितीय आलावो जाणवो ॥

हिवै तृतीय चतुर्थ आलावो—

वा०—सूक्ष्म पृथ्वीकाय नों अपर्याप्तो बादर तेउकाय नां अपर्याप्ता नें विषे ऊपजै, ए तीजो आलावो। अनैं सूक्ष्म पृथ्वीकाय नों अपर्याप्तो बादर तेऊकाय नां पर्याप्ता नें विषे पिण ऊपजै, ए चउत्थो आलावो—ए बिहुं आलावा कहै छै—

४४. *अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाइयो रे,
मही रत्नप्रभा नें विषेह।
पूर्व नां चरिमंत विषे तिको रे,
समुद्घात करि जेह ॥

४४. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता

४५. मनुष्यक्षेत्र में जे अपर्याप्तो रे, बादर तेऊकाय।
तेहपणें ऊपजवा योग्य छै रे,
अन्य स्थान बादर तेऊ नांय ॥

४५. जे भविए मणुस्सखेत्ते अपज्जत्ताबादरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

४६. हे प्रभु ! तेह केतला समय नें रे,
विग्रह करी उपजंत ?
शेष तिमज पूर्व जे भाखिया रे, तेहनीं पर विरतंत ॥

४६. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? सेसं तं चेव।

४७. इम अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाइयो रे,
पज्जत्त बादर तेऊकाय।
तेहपणें उपजाविवो विधि करी रे,
ए तुर्य आलावो ताय ॥

४७. एवं पज्जत्ताबादरतेउक्काइयत्ताए उववाएयव्वो।

४८. वाउकाय सूक्ष्म बादर विषे रे,
जिम अपकाय विषेह।
उपजाव्यो तिमहिज उपजाविवो रे,
चिहुं आलाव करेह ॥

४८. वाउक्काइएसु सुहुमबादरेसु जहा आउक्काइएसु उववाइओ तहा उववाएयव्वो।

४९. एम वनस्पतिकाय विषे अपि रे,
चिहुं आलाव जगीस।
अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी नां थया रे,
एह आलावा बीस ॥

४९. एवं वणस्सइकाइएसु वि। (श. ३४।५)

सोरठा

५०. ए बीस आलावा ताहि, अपज्जत्त सूक्ष्म मही जिको।
पंच स्थावर रै मांहि, उपजै तेहनां आखिया ॥
५१. पज्जत्त सूक्ष्म महीकाय, बीस स्थानक में ऊपजै।
पंच स्थावर रै मांय, कहियै ते आगल हिवै ॥

५२. *पज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिक प्रभु रे !
ए रत्नप्रभा मही नै विषेह ?
इत्यादिक पूर्ववत जाणवा रे, प्रश्नोत्तर छै जेह ॥

५२. पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए ?

*लय : कार्य सुधारै हो चतुर हुवै जिको जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५३. एम पज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी अपि रे, पूर्व चरिमंत विषेह।
समुद्घात मारणांति कराय नें रे, इम इण अनुक्रमेह।।
५४. एहिज बीस स्थानक तेहनैं विषे रे, उपजाविवो विचार।
तेवीस स्थानक कहियै छै जुजूआ रे, सांभलजो धर प्यार।।

५३. एवं पज्जत्तासुहुमपुढविक्काइओ वि पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहणावेत्ता एएणं चेव कमेणं
५४. एएसु चेव वीससु ठाणेसु उववाएयव्वो

सोरठा

५५. मही अप तेऊकाय, वाउ वनस्पति वली।
सूक्ष्म बादर ताय, बिहुं भेदे करि दश हुवै।।
५६. ए दश नां पहिछाण, पज्जत्तापज्जत्त द्वि भेद करि।
बीस हुवै इम जाण, ए बीस विषे उपजाविवो।।

५५. 'वीससु ठाणेसु' त्ति, पृथिव्यादयः पञ्च सूक्ष्मबादर-भेदाद् द्विधेति दश, (वृ. प. ९५७)
५६. ते च प्रत्येकं पर्याप्तकापर्याप्तकभेदाद्विंशतिरिति। (वृ. प. ९५७)

५७. *यावत बादर वणस्सइकाय नैं रे, पज्जत्त विषे उपपात।
चरम आलावो एह पिछाणवो रे,
ए चालीस आलावा ख्यात।।
५८. इम अपज्जत्त बादर पृथ्वी अपि रे, बीस स्थानक नै विषेह।
उपजाविवै करीनें जाणवा रे, बीस आलावा जेह।
५९. एम पज्जत्त बादर पृथ्वी अपि रे, बीस स्थान नैं विषेह।
उपजाविवै करिनैं जाणवा रे, बीस आलावा जेह।।
६०. इम अपकाय विषे पिण जाणवा रे, चिहुं पिण गमा विषेह।
पूर्वला चरिमंत विषे जिका रे, समुद्घात करि जेह।।
६१. इत्यादिक जे वक्तव्यता कही रे,
एहिज बीस स्थानक नैं विषेह।
उपजाविवो पूर्वे कह्यो तिण विधे रे, असी आलावा एह।।

५७. जाव बादरवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु वि।
५८. एवं अपज्जत्ताबादरपुढविकाइओ वि।
५९. एवं पज्जत्ताबादरपुढविकाइओ वि।
६०. एवं आउकाइओ वि चउसु वि गमएसु पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए
६१. एयाए चेव वत्तव्वयाए एएसु चेव वीसइठाणेसु उववाएयव्वो।

वा०—ए पृथ्वी नां ८० अलावा अनैं अपकायिक नां पिण ८० आलावा—एवं १६०। सूक्ष्म तेऊ अपज्जत्त वा पज्जत्त ऊपजै, तेहनां बीस-बीस आलावा कहै छै—

६२. सूक्ष्म तेऊकायिक पिण वली रे, अपज्जत्त तथा पज्जत्त।
एहिज बीस स्थानक तेहनैं विषे रे, उपजाविवोज तत्थ।।

६२. सुहुमतेउकाइओ वि अपज्जत्तओ पज्जत्तओ य एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो। (श. ३४।६)

वा०—ए तेउकायिक सूक्ष्म अपर्याप्ता नां २० अनैं सूक्ष्म पर्याप्त नां २० ए बे भेद जीवस्थानक नां ४० आलावा थया। एवं सर्व २०० आलावा थया। हिवै अपज्जत्त बादर तेऊ ए मनुष्यक्षेत्र में समुद्घात करी ए रत्नप्रभा पृथ्वी नां पश्चिम चरिमंते पृथ्वीपणैं ऊपजै ते।

६३. अपज्जत्त बादर तेऊकायिको रे, हे भगवंतजो ! तेह।
मनुष्यक्षेत्र छै ए तेहनैं विषे रे, समुद्घात करि जेह।।
६४. ए रत्नप्रभा पृथ्वी तेहनैं विषे रे, पश्चिम नैं चरिमंत।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीकायिकपणें रे, ऊपजवा योग्य हुंत।।

६५. हे प्रभु ! तेह केतला समय नैं रे, विग्रह करि उपजंत ?
शेष तिमज पूर्ववत जाव ही रे, तिण अर्थे इम हुंत।।
६६. इम पृथ्वी च्यारेइ नैं विषे रे, उपजाविवो पिछाण।
इम अप नां चिहुं भेद विषे वली रे, उपजाविवो सुजाण।।

६३. अपज्जत्ताबादरतेउक्काइए णं भंते ! मणुस्सखेत्ते समोहए, समोहणित्ता
६४. जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयत्ताए उववज्जित्तए,
६५. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? सेसं तहेव जाव से तेणट्ठेणं।
६६. एवं पुढविक्काइएसु चउविहेसु वि उववाएयव्वो एवं आउकाइएसु चउविहेसु वि,

*लय : कार्य सुधारैं हो चतुर हुवै जिको जी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६७. तेऊकायिक अपज्जत्त नें विषे रे, पर्याप्तक विषेह।
इमहिज पूर्ववत उपजाविवो रे, वारू विधि करि जेह ।।

६७. तेउकाइएसु सुहुमेसु अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य एवं चेव उववाएयव्वो। (श. ३४।७)

वा०—हिवै अपज्जत्त बादर तेऊ मनुष्यक्षेत्र में समुद्घात करी मनुष्यक्षेत्रे अपज्जत्त बादर तेऊपणें ऊपजै ते।

६८. अपज्जत्त बादर तेऊकायिको रे, हे भगवंतजी! तेह।
मनुष्यक्षेत्र छैए तेहनें विषे रे, समुद्घात करि जेह ।।

६८. अपज्जत्ताबादरतेउक्काइए णं भंते! मणुस्सखेत्ते समोहए, समोहणित्ता

६९. मनुष्यक्षेत्र नें विषेज तें वली रे, अपज्जत्त बादर जाण ।।
तेऊकायपणें ते जीवड़ो रे, ऊपजवा योग्य पिछाण ।।

६९. जे भविए मणुस्सखेत्ते अपज्जत्ताबादरतेउक्काइयत्ताए उववज्जित्तए,

७०. हे प्रभु! तेह केतला समय नें रे, शेष तिमज कहिवाय।
एम पज्जत्त बादर तेऊपणें रे, उपजाविवोज ताय ।।

७०. से णं भंते! कतिसमइएणं? सेसं तं चेव। एवं पज्जत्ताबादरतेउक्काइयत्ताए वि उववाएयव्वो।

७१. वायुकायपणें वणस्सइपणं रे, जिम महीकाय विषेह।
आख्यो तिमज चिहुं भेदे करी रे, उपजाविवो विधेह ।।

७१. वाउकाइयत्ताए य वणस्सइकाइयत्ताए य जहा पुढविकाइएसु तहेव चउक्कएणं भेदेणं उववाएयव्वो।

वा०—हिवै पर्याप्त बादर तेउ नां २० आलावा।

७२. एम पज्जत्त बादर तेऊ अपि रे, समयक्षेत्र समुद्घात।
तेह करावी बीस स्थानक विषे रे, उपजाविवो विख्यात ।।

७२. एवं पज्जत्ताबादरतेउकाइयो वि समयखेत्ते समोहणावेत्ता एएसु चेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो।

७३. जिमहिज बादर अपज्जत्त तेऊ नों रे, उपजायो छै जान।
इम सर्वत्र बादर तेऊ तणां रे, अपज्जत्त पज्जत्त पिछान ।।

७३. जहेव अपज्जत्तओ उववाइओ एवं सव्वत्थ वि बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा य पज्जत्तगा य

७४ समयक्षेत्र विषे उपजाविवो रे, कराविवो समुद्घात।
ए चालीस आलावा जाणवा रे, सर्व दोयसौ चालीस ख्यात ।।

७४. समयखेत्ते उववाएयव्वा समोहणावेयव्वा वि।

७५. असी आलावा वाऊकाय नां रे, एवं सर्वज ताय।
तीनसौ बीस आलावा जाणवा रे, हिव वनस्पति नां आय ।।

७६. असी आलावा वनस्पति तणां रे, पृथ्वीकायिक जेम।
तिमज भेद चिहुं करी उपजाविवा रे,
तसु चरम आलावो एम ।।

७५,७६. वाउक्काइया वणस्सइकाइया य जहा पुढविक्काइया तहेव चउक्कएणं भेदेणं उववाएयव्वा

७७. जाव पर्याप्त बादर वणस्सइ रे, हे भगवंतजी! तेह।
ए रत्नप्रभा नें पूर्व चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि जेह ।।

७७. जाव— (श. ३४।८)
पज्जत्ताबादरवणस्सइकाइए णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता

७८. आ रत्नप्रभा पृथ्वी छै तेहनें रे, पश्चिम नें चरिमंत।
पज्जत्तक बादर वनस्पति तणां रे, ऊपजवा योग्य जंत ।।

७८. जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पज्जत्ताबादरवणस्सइकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

७९. हे प्रभु! तेह केतला समय नें रे, विग्रह करि उपजेह?
शेष तिमज कहिवो पूर्व परै रे, यावत तिण अर्थेह ।।

७९. से णं भंते! कतिसमएणं? सेसं तहेव जाव से तेणट्ठेणं। (श. ३४।९)

वा०—ए च्यारसौ आलावा पूर्व नां चरिमंत नैं विषे अनैं समयक्षेत्र में समुद्घात करी पश्चिम नैं चरिमंते अनैं समयक्षेत्रे ऊपजै, तेहनां कह्या। हिवै पश्चिम नैं चरिमंते समुद्घात करी पूर्व नैं चरिमंते ऊपजै ते कहै छै—

८०. अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीकाइयो रे, मही रत्नप्रभा नैं विषेह।
पश्चिम नां चरिमंत विषे प्रभु! रे, समुद्घात करि जेह ।।

८०. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता

८१. ए रत्नप्रभा पृथ्वी छै तेहनें रे, पूर्वे नैं चरिमंत।
अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीपणैं रे, ऊपजवा योग्य हुंत ।।

८१. जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. हे प्रभु ! तेह केतला समय नें रे, विग्रह करि उपजंत।
शेष तिमज हि समस्तपणें करी रै, कहिवो सर्व उदंत ।।
८३. इम जिमहिज पूर्व चरिमंत विषे रे, सर्व पदे समुद्घात।
पश्चिम चरिमंत अनैं समयक्षेत्र में रे,
वलि उपजाविवो अवदात ।।
८४. समुद्घात जे समयक्षेत्रे करी रे, पश्चिम चरिमंत विषेह।
बलि समयक्षेत्र मांहै उपजाविवो रे,
तिणज आलावा करेह ।।
८५. इम ए दक्षिण नां चरिमंत विषे रे,
वलि समयखेत समुद्घात।
उत्तर चरिमंत वले समयक्षेत्र में रे, कहिवूं तसु उपपात ।।
वा०—इहां पिण ४०० आलावा।
८६. इमहिज उत्तर नां चरिमंत विषे रे,
वलि समयखेते समुद्घात।
दक्षिण चरिमंत अनैं समयक्षेत्र में रे,
तिणहिज आलावे करि उपपात ।।
वा०—इहां पिण ४०० आलावा। एवं सर्व १६००।
८७. शत चउतीसम देश प्रथम तणों रे,
च्यार सय पिच्यासीमीं ढाल।
भिक्षु भारीमल ऋषिराय प्रसाद थी रे,
'जय-जश' मंगलमाल ।।

८२. से णं भंते ! कइसमइएणं ? सेसं तहेव निरवसेसं।

८३. एवं जहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमंते सव्वपदेसु वि समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाइया,
८४. जे य समयखेत्ते समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाइया, एवं एएणं चेव कमेणं पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य समोहया पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाएयव्वा तेणेव गमएण।
८५. एवं एएणं गमएणं दाहिणिल्ले चरिमंते समोहयाणं उत्तरिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाओ।

८६. एवं चेव उत्तरिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य समोहया दाहिणिल्ले चरिमंते समयखेत्ते य उववाएयव्वा तेणेव गमएणं। (श. ३४।१०)

ढाल : ४८६

एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति (ख)

दूहा

१. प्रभु ! अपज्जत सूक्ष्म पृथ्वी, सक्करप्रभा मही जेह।
पूर्व नां चरिमंत विषे, समुद्घात करी तेह ।।
२. सक्करप्रभा पृथ्वी तणां, पश्चिम चरिमंतेह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें, योग्य ऊपजवा जेह ।।
३. जिमहिज रत्नप्रभा विषे, आख्यो उदंत जेह।
तिमहिज कहिवो छै इहां, यावत तिण अर्थेह ।।
४. इम इण अनुक्रमे करी, जाव पर्याप्त जेह।
सूक्ष्म तेऊ नें विषे, ऊपजै त्यां लग लेह ।।

१. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
२. जे भविए सक्करप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए ?
३. एवं जहेव रयणप्पभाए जाव से तेणट्ठेणं

४. एवं एएणं कमेणं जाव पज्जत्तएसु सुहुमतेउकाइएसु। (श. ३४।११)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५. अपज्जत्त सूक्ष्म मही प्रभु ! सक्करप्रभा नां जेह ।
पूर्व नां चरिमंत विषे, समुद्‌घात करि तेह ।।
६. जेह समयक्षेत्रज विषे, अपज्जत्त बादर जेह ।
तेऊकायपणें जिको, योग्य ऊपजवा तेह ।।
७. प्रभु ! तेह केतला समय नें, विग्रह करि उपजंत ?
एम प्रश्न पूछयां थकां, भाखै श्री भगवंत ।।
८. दोय समय करिकै तथा, तीन समय करि ताम ।
विग्रह करिनें ऊपजै, उत्तर ए अभिराम ।।
९. इहां सक्करप्रभा तणां, पूर्व चरिमंत थकीज ।
ऊपजतां मनुक्षेत्र में, तसु समश्रेणी नहींज ।।
१०. ते माटै इक समय करि, नहीं तेहनूं उपपात ।
विग्रह बे त्रिण समय करि, उपजवूं आख्यात ।।
११. दोय समय विग्रह तसु, वक्र समय इक जोय ।
तीन समय विग्रह तसु, वक्र समय बे होय ।।

५. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! सक्करप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
६. जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्ताबादरतेउक्काइयत्ताए उववज्जित्तए,
७. से णं भंते ! कतिसमइएणं—पुच्छा ।
गोयमा !
८. दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा ।
(श. ३४।१२)
९. इह शर्कराप्रभापूर्वचरमान्तान्मनुष्यक्षेत्रे उत्पद्यमानस्य समश्रेणिर्नास्तीति । (वृ. प. ९५७)
१०,११. 'एगसमइएण' मितीह नोक्तं, 'दुसमइएण' मित्यादि त्वेकवक्रस्य द्वयोर्वा सम्भवादुक्तमिति ।
(वृ. प. ९५७)

*जिनेश्वर ! धन्य-धन्य तुम्ह ज्ञान,
संसय तिमर निवारवा जी, जाणक ऊगो भान ।
जिनेश्वर धन्य-धन्य तुम्ह ज्ञान ।। (ध्रुपदं)

१२. किण अर्थे इम आखियै जी ? तब भाखै जगनाथ ।
इम निश्चै करि गोयमा ! म्है श्रेणि परूपी सात ।।

१२. से केणट्ठेणं ?
एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—

१३. उज्जु-आयता आदि दे जी, जाव अर्द्धचक्रवाल ।
इतरा लगै कहीजियै जी, पूर्वली पर न्हाल ।।

१३. उज्जुयायता जाव अद्धचक्कवाला ।

१४. एक वक्र श्रेणी करी जी, जीव उपजतो जान ।
दोय समय विग्रह करी जी, उपजै तेह पिछान ।।
१५. दोय वक्र श्रेणी करी जी, उपजतो थको जेह ।
तीन समय विग्रह करी जी, उपजै जंतु तेह ।
१६. तिण अर्थे इम आखियै जी, इम पज्जत्त बादर तेऊ मांय ।
अपर्याप्त सूक्ष्म मही जी, तसु उपजवूं थाय ।।

१४. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
१५. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
१६. से तेणट्ठेणं । एवं पज्जत्तएसु वि बादरतेउक्काइएसु ।

१७. शेष विस्तारज एहनों जी, जिम रत्नप्रभा नें विषेह ।
आख्यो तिम कहिवो इहां जी, वारू विधि करि लेह ।।

१७. सेसं जहा रयणप्पभाए ।

१८. वलि जिके पिण जाणवा जी, बादर तेऊ विख्यात ।
अपज्जत्त फुन पर्याप्ता जी, करि समयक्षेत्रे समुद्‌घात ।।
१९. जे दूजी पृथ्वी तणें जी, पश्चिम चरिमंत विषेह ।
पृथ्वीकायिक नां जिके जी, चिहुं भेद विषे उपजेह ।।
२०. आऊकायिक नां वली जी, च्यारूं भेद विषेह ।
तेजस्कायिक नां इहां जी, बे भेद विषे उपजेह ।।
२१. वायुकायिक नां वली जी, च्यारूं भेद विषेह ।
वनस्पतिकायिक तणां जी, चिहुं भेद विषे उपजेह ।।
२२. ते पिण इमहिज जाणवा जी, दोय समय विग्रहेण ।
तथा तीन समय विग्रह करी जी, उपजाविवा कहेण ।।

१८. जे वि बादरतेउकाइया अपज्जत्तगा य पज्जत्तगा य समयखेत्ते समोहणित्ता
१९. दोच्चाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते पुढविकाइएसु चउव्विहेसु,
२०. आउक्काइएसु चउव्विहेसु तेउकाइएसु दुविहेसु,
२१. वाउकाइएसु चउव्विहेसु, वणस्सइकाइएसु चउव्विहेसु उववज्जंति,
२२. ते वि एवं चेव दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं उववाएयव्वा ।

*लय : धीरज जीव धरे नहीं रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. बादर तेऊ अपज्जत्ता जी, वलि पज्जत्तगा तेह।
जद बादर तेऊ अपज्जत्त विषे जी,
वा पज्जत्त विषे उपजेह ।।
२४. तद जेहिज रत्नप्रभा विषे जी, तिमहिज समयो एक।
बे समय तीन समये करी जी, विग्रह भणिवो पेख ।।
२५. शेष जिम रत्नप्रभा विषे जी, आख्यो छै अधिकार।
तिमज समस्तपणें करी जी, कहिवूं सहु विस्तार ।।
२६. जिम सक्करप्रभा पृथ्वी विषे जी, वक्तव्यता आख्यात।
इम यावत तल सप्तमी जी, पृथ्वी लग अवदात ।।

दूहा

२७. अथ सामान्य करी वली, अधःक्षेत्र अथवाज।
उर्द्ध क्षेत्र नें आश्रयी, करै प्रश्न ऋषिराज ।।
२८. *प्रभु ! अपज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वी जी, अधोलोक क्षेत्र ख्यात।
त्रसनाड़ी नां बाहिरला जी, क्षेत्र विषे समुद्घात ।।

वा०—अहोलोयखेत्तनालीएत्ति—अधोलोक लक्षण क्षेत्र नैं विषे जिका नाड़ी तिका अधोलोक क्षेत्रनाड़ी तेहनां बाहिर नां क्षेत्र विषे मारणांतिक समुद्घात करै, करी नैं।

२९. ऊर्द्धलोक खित्तनाड़ी नां जी, बाहिर क्षेत्र विषेह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें जी, योग्य उपजवा जेह ।।

वा०—उड्ढलोयखेत्तनालीएत्ति—उर्द्धलोक लक्षण क्षेत्र नैं विषे जिका नाड़ी तिका उर्द्धलोक क्षेत्रनाड़ी, तेहनां बाहिर नां क्षेत्र नैं विषे अपर्याप्त सूक्ष्म पृथ्वीकायिकपणैं जे ऊपजवा योग्य छै ते।

३०. हे प्रभुजी ! ते केतला जी, समय तणैं सुविचार।
विग्रह करीनें ऊपजै जी ? गोयम प्रश्न उदार ।।
३१. जिन भाखै त्रिण समय नें जी, तथा च्यार समयेण।
विग्रह करिनें ऊपजै जी, आगल न्याय कहेण ।।
३२. प्रभु ! किण अर्थे इम आखियै जी, तीन समय विग्रहेण।
तथा च्यार समय विग्रह करी जी, ऊपजै इम प्रश्नेण ?
३३. जिन भाखै अपर्याप्ता जी, सूक्ष्म पृथ्वी जेह।
अधोलोक खित्तनाड़ी नां जी, बाहिर क्षेत्र विषेह ।।
३४. तिहां समुद्घात करिनें मरी जी, उर्द्धलोक क्षेत्र मांय।
त्रस नाड़ी नां बाहिरला जी, क्षेत्र विषे कहिवाय ।।
३५. अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें जी, एक प्रतर अनुश्रेण।
तिहां उपजवा योग्य छै जी, ते उपजै तीन समय विग्रहेण ।।

सोरठा

३६. सूक्ष्म मही अपज्जत्त, अधोलोक खित्तनाड़ी थी।
बाहिर पासे तत्थ, पूर्वादिक दिशि में मरी ।।

२३. बादरतेउक्काइया अपज्जत्तगा य पज्जत्तगा य जाहे तेसु चेव उववज्जति

२४. ताहे जहेव रयणप्पभाए तहेव एगसमइय-दुसमइय-तिसमइयविग्गहा भाणियव्वा,

२५. सेसं जहेव रयणप्पभाए तहेव निरवसेसं।

२६. जहा सक्करप्पभाए वत्तव्वया भणिया एवं जाव अहेसत्तमाए भाणियव्वा। (श. ३४।१३)

२७. अथ सामान्येनाधःक्षेत्रमूर्ध्वक्षेत्रं चाश्रित्याह—
(वृ. प. ९५७)

२८. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! अहेलोयखेत्त-नालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए, समोहणित्ता

वा०—'अहोलोयखेत्तनालीए' त्ति अधोलोकलक्षणे क्षेत्रे या नाडी—त्रसनाडी साऽधोलोकक्षेत्रनाडी तस्याः, (वृ. प. ९६०)

२९. जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

वा०—एवमूर्ध्वलोकक्षेत्रनाड्यपीति, (वृ. प. ९६०)

३०. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

३१. गोयमा ! तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा। (श. ३४।१४)

३२. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ?

३३. गोयमा ! अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं अहेलोय-खेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते

३४. समोहए, समोहणित्ता जे भविए उड्ढलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते

३५. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए एगपयरंसि अणुसेढि उववज्जित्तए, से णं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।

३६-३९. 'तिसमइएण व' त्ति, अधोलोकक्षेत्रे नाड्या बहिः पूर्वादिदिशि मृत्वैकेन नाडीमध्ये प्रविष्टो द्वितीये समये ऊर्द्ध्वं गतस्तत एकप्रतरे पूर्वस्यां पश्चिमायां वा

---

*लय : धीरज जीव धरं नहीं रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. एक समय करि जेह, पेठो नाड़ी नें विषे ।
बीजा समय विषेह, ऊंचो गयो तठा पछै ।।
३८. एक प्रतर में तेह, जे पूर्व दिशि नें विषे ।
अथवा पश्चिम विषेह, तसु ऊपजवूं ह्वै यदा ।।
३९. तब करिनें अनुश्रेण, तृतीय समय जइ ऊपजे ।
इह विधि त्रिण समयेण, विग्रह करिनें ऊपजै ।।

यदोत्पत्तिर्भवति तदाऽनुश्रेण्यां गत्वा तृतीयसमये उत्पद्यत इति, (वृ. प. ९६०)

४०. *जे भविक विश्रेणि उपजवा जी, च्यार समय नें तेह ।
विग्रह करिनें ऊपजै जी, तिण अर्थे वच एह ।।
४१. तिण अर्थे करि गोयमा ! जी, यावत उपजै तेह ।
विग्रह च्यार समय तणीं जी, भाखी इम सूत्रेह ।।

४०. जे भविए विसेढि उववज्जित्तए, से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
४१. से तेणट्ठेणं जाव उववज्जेज्जा ।

वा०—जे अधोलोक त्रस नाड़ि थी बाहिर मरी ऊर्द्धलोक त्रस नाड़ि बाहिर विश्रेणि ते विदिशि में ऊपजै ते च्यार समय की विग्रह गति जाणवी । अत्र वृत्तिकार कह्यूं— जे भविक जिवारै नाड़ि थी बाहिर वायव्यादि दिशि नें विषे मूओ तिवारै एक समये करी पश्चिम दिशि नें विषे तथा उत्तर दिशि नें विषे गयो, बीजे समये नाड़ि नें विषे पेठो, त्रीजे समये ऊंचो गयो, चउथे समये अनुश्रेणि जाई नें पूर्व दिशि मे ऊपजै । इहां वृत्ति में चउथे समये अनुश्रेणि ऊपजै, इम कह्यूं । अनें सूत्रे चउथे समये विश्रेणि ऊपजवूं कह्यूं । इण न्याय ए वृत्ति नीं वारता किम मिलै ?

इहां कोई पूछै— जो सप्तम पृथ्वी विदिशि नें विषे मरी ब्रह्मलोके विदिशि नें विषे ऊपजै ते पंच समय नीं गति करिकै ऊपजै । ते पंच समय नीं विग्रह गति किम न कही ? इति प्रश्न । एहनों उत्तर—उत्पात नां अभाव थकी सूत्रे पंच समया न कह्या, एहवूं न्याय दीसै छै । वलि कोई अनेरो न्याय हुसी तो ते पिण बहुश्रुत जाणै । जो पंच समय नीं विग्रह गति स्थापै तो बिचला तीन समय अनाहारक हुवै ।

वा०—'चउसमइएण व' त्ति यदा नाड्या बहिर्वाय-व्यादिविदिशि मृतस्तदैकेन समयेन पश्चिमायामुत्तरस्यां वा गतो द्वितीयेन नाड्या प्रविष्टस्तृतीये ऊर्द्ध्वं गतश्चतुर्थेऽनुश्रेण्यां गत्वा पूर्वादिदिश्युत्पद्यत इति, इदं च प्रायोवृत्तिमङ्गीकृत्योक्तं, अन्यथा पञ्चसामयिक्यपि गतिः सम्भवति, यदाऽधोलोककोणादूर्ध्वलोककोण एवोत्पत्तव्यं भवतीति, भवन्ति चात्र गाथाः—
'सुत्त चउसमयाओ नत्थि गई उ परा विणिद्दिट्ठा ।
जुज्जइ य पंचसमया जीवस्स इमा गई लोए ।।१।।
जो तमतमविदिसाए समोहओ बंभलोगविदिसाए ।
उववज्जइ गईए सो नियमा पंचसमयाए ।।२।।'
(वृ. प. ९६०, ९६१)

अनें पन्नवणा पद १८ में छद्मस्थ जीव उत्कृष्ट बे समय अनाहारक कह्या । बे समय अनाहारक तो च्यार समय नीं विग्रह गति नें विषे बिचले बे समय हुवै । ते माटै पंच समय नीं विग्रह गति किम मिलै ? अनें तीन समय अनाहारक पिण किम हुवै ? अथवा तीन समय नीं विग्रह गति नें विषे तीजे समय ऊपजै । तिहां प्रथम, द्वितीय. समय अनाहारक हुवै । तीजे समय आहारक हुवै । इम अनाहारकपणें उत्कृष्ट बे समय रहै ।

छउमत्थअणाहारए णं भंते ! छउमत्थअणाहारए त्ति कालओ केवचिरं होइ ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दो समया ।
(पण्णवणा १८।९८)

४२. इम पज्जत्त सूक्ष्म पृथ्वीपणें जी, एवं यावत ताय ।
पज्जत्त सूक्ष्म तेऊपणें जी, ऊपजवूं कहिवाय ।।

४२. एवं पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए वि, एवं जाव पज्जत्तासुहुमतेउकाइयत्ताए । (श. ३४।१५)

४३. अपज्जत्त सूक्ष्म मही प्रभुजी ! अधोलोक रै मांहि ।
इत्यादिक यावत तिको जी, समुद्घात करि ताहि ।।

४३. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! अहेलोग जाव (स.पा.) समोहणित्ता

४४. समयक्षेत्र नें विषे जिको जी, अपज्जत्त बादर जाण ।
तेऊकायपणें तिको जी, ऊपजवा योग्य माण ।।

४४. जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्ताबादरतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

४५. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ो जी, किता समय नें जाण ।
विग्रह करिनें ऊपजै जी ? हिव भाखै जगभाण ।।

४५. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा !

४६. दोय समय विग्रह करी जी, तथा तीन समयेह ।
विग्रह करिनें ऊपजै जी, किण अर्थे प्रभु ! तेह ?

४६. दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा । (श. ३४।१६)

से केणट्ठेणं ?

*लय : धीरज जीव धरै नहीं रे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. जिन कहै इम निश्चै करी जी, म्है श्रेणि परूपी सात।
ऋजुआयत यावत कही जी, अधचक्कवाल विख्यात ।।
४८. एक वक्र श्रेणि करी जी, ऊपजतो अवधार।
दोय समय विग्रह करी जी, ऊपजै तेह तिवार ।।
४९. दोय वक्र श्रेणी करी जी, ऊपजतो थको जीव।
त्रिण समय विग्रह करि ऊपज जी, तिण अर्थेज कहीव ।।
५०. एम पज्जत्त बादर तिको जी, तेउ विषे पिण ताहि।
पूर्व विधि उपजाविवो जी, समयक्षेत्र रै मांहि ।।
५१. वायू वनस्पतिपणैं जी, चउक्क भेद करि छाण।
उपजाव्यो जिम अपपणैं जी, तिम उपजाविवो जाण ।।
५२. इम अपज्जत्त सूक्ष्म मही तणों जी, जेम गमो आख्यात।
इम पज्जत्त सूक्ष्म मही नों अपि जी, कहिवो छै अवदात ।।

५३. तिमज बीस स्थानक विषे जी, उपजाविवो जगीस।
ए अपज्जत्त पज्जत्त पृथ्वी तणां जी,
कह्या आलावा चालीस ।।
५४. अधोलोक क्षेत्र नाड़ि नैं जी, बाहिरला क्षेत्र विषेह।
समुद्घात मारणांतिकी जी, कियो अंत समयेह ।।
५५. इम बादर मही नैं विषे अपि जी, अपज्जत्त नैं अवधार।
अथवा पर्याप्तक नैं जी, कहिवो सर्व विचार ।।
५६. इम अप चउविध नैं अपि जी, भणिवो छै तिमहीज।
सूक्ष्म तेऊकाय नैं जी, द्विविध नैं इमहीज ।।

५७. पर्याप्त वलि जाणवो जी, बादर तेऊकाय।
समयक्षेत्र विषे तिको जी, समुद्घात करि ताय ।।
५८. ऊर्द्धलोक क्षेत्र नाड़ि नैं जो, बाहिरला क्षेत्र विषेह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणैं जी, जोग्य ऊपजवा जेह ।।
५९. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ो जी, किता समय नैं जाण।
विग्रह करिनैं ऊपजै जी ? तब भाखै जगभाण ।।
६०. दोय समय विग्रह करी जी, वा विग्रह त्रिण समयेह।
वा च्यार समय विग्रह करी जी, उपजै जंतू जेह ।।
६१. प्रभु ! किण अर्थे आखियै जी, अर्थ इत्यादिक ख्यात।
जिम रत्नप्रभा नैं विषे कह्यं जी,
तिम कहिवी श्रेणिज सात[1] ।।
६२. इम यावत[2] अपज्जत्त प्रभुजी ! बादर तेउकाय।
समयक्षेत्र विषे तिको जी, समुद्घात करि ताय ।।
६३. ऊर्द्धलोक क्षेत्र नाड़ि नैं जी, बाहिर क्षेत्र विषेह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणैं जी, योग्य ऊपजवा जेह ।।

४७. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उज्जुयायता जाव अद्धचक्कवाला।
४८. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,
४९. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा, से तेणट्ठेणं।
५०. एवं पज्जत्तएसु वि बादरतेउकाइएसु वि उववाएयव्वो।
५१. वाउक्काइय-वणस्सइकाइयत्ताए चउक्कएणं भेदेणं जहा आउक्काइयत्ताए तहेव उववाएयव्वो।
५२. एवं जहा अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइयस्स गमओ भणिओ एवं पज्जत्तासुहुमपुढविकाइयस्स वि भाणियव्वो,
५३. तहेव वीसाए ठाणेसु उववाएयव्वो। (श. ३४।१७)

५४. अहेलोयखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए ?

५५. एवं बादरपुढविकाइयस्स वि अपज्जत्तगस्स पज्जत्तगस्स य भाणियव्वं।
५६. एवं आउक्काइयस्स चउव्विहस्स वि भाणियव्वं। सुहुमतेउक्काइयस्स दुविहस्स वि एवं चेव।
(श. ३४।१८)

६२. अपज्जत्ताबादरतेउक्काइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता
६३. जे भविए उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

१. ढाल ४८६ गाथा ५७ से ६१ तक की जोड़ का संवादी पाठ अंगसुत्ताणि भाग २ में नहीं है।
२. 'एवं जाव' यह पाठ अंगसुत्ताणि भाग २ में नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६४. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ो जी, किता समय नैं जाण।
विग्रह करिनैं ऊपजै जी ? तब भाखै जगभाण ।।
६५. दोय समय विग्रह करी जी, वा विग्रह त्रिण समयेह।
वा च्यार समय विग्रह करी जी, उपजै जंतू जेह ।।
६६. प्रभु ! किण अर्थे इम आखियै जी ?
अर्थ इत्यादिक ख्यात।
जिम रत्नप्रभा नैं विषे कह्यूं जी,
तिम कहिवी श्रेणिज सात ।।
६७. इम यावत अपज्जत्त प्रभु जी ! बादर तेऊकाय।
समयक्षेत्र विषे तिको जी, समुद्घात करि ताय।

६८. ऊर्द्धलोक क्षेत्र नाड़ि नें जी, बाहिरलै क्षेत्रेह।
अपज्जत्त[1] सूक्ष्म तेऊपणें जी, योग्य उपजवा जेह ।।
६९. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ो जी, किता समय नें ताय।
विग्रह करिनैं ऊपजै जी ? शेष तिमज कहिवाय ।।
७०. हे प्रभुजी ! अपर्याप्तो जी, बादर तेऊकाय।
समयक्षेत्र विषे तिको जी, समुद्घात करि ताय ।।
७१. समयक्षेत्र विषे तिको जी, अपज्जत्त बादर जाण।
तेऊकायपणें तिको जी, योग्य उपजवा जाण ।।
७२. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ो जी, किता समय नें ताय।
विग्रह करिनैं ऊपजै जी ? तब भाखै जिनराय ।।
७३. एक समय विग्रह करी जी, वा दोय समय विग्रहेण।
वा तीन समय विग्रह करी जी, ऊपजवूंज कहेण ।।
७४. प्रभु ! किण अर्थे इम आखियै जी, अर्थ इत्यादिक ख्यात।
जिमहिज रत्नप्रभा विषे जी, तिम कहिवी श्रेणिज सात ।।
७५. इणहिज रीते जाणवो जी, पर्याप्त बादर जेह।
तेऊकायपणें अपि जी, पूर्वली पर लेह ।।
७६. वायू वनस्पति विषे जी, जिम महिकाय विषेह।
उपजाव्यो तिम उपजाविवो जी, चिहुं भेदे करि एह ।।

७७. एम पज्जत्त बादर तिको जी, तेउकाय पिण ताम।
एहिज स्थानक नें विषे जी, उपजाविवोज आम ।।
७८. वायू वनस्पति वली जी, जिम पृथ्वी नों जीव।
पूर्वे उपजाव्यो तिको जी, तिणहिज रीत कहीव ।।
७९. प्रभु ! अपज्जत्त सूक्ष्म मही जी,
इहां पिण लोक क्षेत्र त्रस नाड़।
तसु बाहिरला क्षेत्र में जी, करि समुद्घात तिण वार ।।
८०. अधोक्षेत्र जे नाड़ि नें जी, बाहिरला क्षेत्र विषेह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें जी, योग्य उपजवा जेह ।।
८१. हे प्रभु ! ते कति समय नें जी, विग्रह करि उपजंत ?
इत्यादिक सहु वारता जी, जाण लेणी मतिमंत ।।

६४. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा !

६५. दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा। (श. ३४।१९)

६६. से केणट्ठेणं ? अट्ठो जहेव रयणप्पभाए तहेव सत्त सेढीओ।

६७. एवं जाव--- (श. ३४।२०)
अपज्जत्ताबादरतेउकाइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता

६८. जे भविए उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते पज्जत्तासुहुमतेउकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

६९. से णं भंते ! सेसं तं चेव। (श. ३४।२१)

७०. अपज्जत्ताबादरतेउक्काइए णं भंते ! समयखेत्ते समोहए, समोहणित्ता

७१. जे भविए समयखेत्ते अपज्जत्ताबादरतेउक्काइयत्ताए उववज्जित्तए,

७२. से ण भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा !

७३. एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा विग्गहेण उववज्जेज्जा। (श ३४।२२)

७४. से केणट्ठेणं ?
अट्ठो जहेव रयणप्पभाए तहेव सत्त सेढीओ।

७५. एवं पज्जत्ताबादरतेउकाइयत्ताए वि।

७६. वाउकाइएसु वणस्सइकाइएसु य जहा पुढविक्काइएसु उववाइओ तहेव चउक्कएणं भेदेणं उववाएयव्वो।

७७. एवं पज्जत्ताबादरतेउकाइओ वि एएसु चेव ठाणेसु उववाएयव्वो।

७८. वाउक्काइय-वणस्सइकाइयाणं जहेव पुढविकाइयत्ते उववाओ तहेव भाणियव्वो। (श. ३४।२३)

७९. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते ! उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहए, समोहणित्ता

८०. जे भविए अहेलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

८१. से णं भंते ! कइसमइएणं ?

---

१. अंगसुत्ताणि भाग २ में प्रस्तुत पाठ 'पज्जत्त' है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८२. इम उर्द्धलोक क्षेत्र नाड़ि नें जी, बाहिरला क्षेत्र विषेह ।
मारणांतिक समुद्घात नें जी, कीधां छतांज जेह ।।
८३. अधोलोक क्षेत्र नाड़ि नें जी, बाहिरला क्षेत्र विषेह ।
ऊपजतां तेहिज गमो जी, कहिवो समस्तपणेह ।।
८४. जाव बादर वनस्पतिकाइयो जी, पर्याप्तक पिछाण ।
बादर वणस्सइ पज्जत्त विषे जो, उपजाविवो सुविहाण ।।
८५. देश चउतीसम धुर तणों जी,
चिहुं सय छियासीमीं ढाल ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी जी,
'जय-जश' मंगलमाल ।।

८२. एवं उड्ढलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते समोहयाणं

८३. अहेलोगखेत्तनालीए बाहिरिल्ले खेत्ते उववज्जंताणं सो चेव गमओ निरवसेसो भाणियव्वो

८४. जाव बादरवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ बादर-वणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु उववाइओ ।
(श. ३४।२४)

ढाल : ४८७

लोक के चरमान्त की अपेक्षा से एकेन्द्रिय जीवों की विग्रह गति

दूहा

१. अपर्याप्तक सूक्ष्म मही, प्रभु ! लोक नां तेह ।
पूर्व नां चरिमंत विषे, समुद्घात करि जेह ।।
२. जेह जीव फुन लोक नां, पुव्व चरिमंत विषेह ।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणैं, योग्य उपजवा जेह ।।
३. ते प्रभु! कितला समय नें जी, विग्रह करि उपजंत ?
एम प्रश्न पूछयां छतां, उत्तर दै अरिहंत ।।
४. एक समय विग्रह करी, तथा दोय समयेह ।
तथा तीन वा चिहुं समय, विग्रह करि उपजेह ।।

५. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यूं, एक समय विग्रहेह ।
यावत उपजै जीवड़ो, हिव जिन उत्तर देह ।।
६. इम निश्चै म्है गोयमा ! श्रेणि परूपी सात ।
ऋजुआयता जाव फुन, अधचक्कवाल विख्यात ।।
७. ऋजुआयता श्रेणि करि, ऊपजतां नें आम ।
एक समय विग्रह करी, तेह ऊपजै ताम ।।
८. एक थकी वक्र श्रेणि करि, ऊपजतां नें ताय ।
दोय समय विग्रह करी, उपजै इम कहिवाय ।।
९. बिहुं भेदे वक्र श्रेणि करि, उपजतां नें तेह ।
अनुश्रेणि इक प्रतर में, योग्य उपजवा जेह ।।
१०. तेह जीव त्रिण समय नें, विग्रह करि उपजंत ।
अथ कहियै चिहुं समय नें, विग्रह करि जे हुंत ।।

१. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता

२. जे भविए लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,

३. से णं भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा !

४. एगसमइएण वा दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।
(श. ३४।२५)

५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—एगसमइएण वा जाव उववज्जेज्जा ?

६. एवं खलु गोयमा ! मए सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उज्जुआयता जाव अद्धचक्कवाला ।

७. उज्जुआयताए सेढीए उववज्जमाणे एगसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।

८. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।

९. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे जे भविए एग-पयरंसि अणुसेढिं उववज्जित्तए,

१०. से णं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. जे भविक विश्रेणि ऊपजै, च्यार समय नैं तेह।
विग्रह करिनैं ऊपजै, तिण अर्थे वच एह।।
*जिन वच सांभलो रे।। (ध्रुपदं)

११. जे भविए विसेढिं उववज्जित्तए, से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा से तेणट्ठेणं जाव उववज्जेज्जा।

१२. इम अपज्जत्त सूक्ष्म मही रे, लोक तणां पहिछाण।
पूर्व नां चरिमंत विषे रे, करि समुद्घात तज प्राण कै।।
१३. तेह जीव जे लोक नां रे, पूर्व नैंज चरिमंत।
अपज्जत्त पज्जत्त विषे वली रे, सूक्ष्म मही विषे मंत कै।।
१४. सूक्ष्म अप अपज्जत्त विषे रे, पर्याप्ता नैं विषेह।
सूक्ष्म तेउ अपज्जत्त विषे रे, पज्जत्त विषे फुन लेह कै।।
१५. सूक्ष्म वाउ अपज्जत्त विषे रे, पज्जत्त विषे सुविचार।
बादर वाउ अपज्जत्त विषे रे, पज्जत्त विषे अवधार कै।।
१६. सूक्ष्म वणस्सइ अपज्जत्त विषे रे, पज्जत्त विषे उपजेह।
ए बारै ही स्थानक विषे रे, कहिवा इण अनुक्रमेह कै।।

१२. एवं अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइओ लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
१३. लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमंते अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु सुहुमपुढविकाइएसु
१४. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु सुहुमआउकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु सुहुमतेउक्काइएसु,
१५. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु सुहुमवाउकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु बादरवाउकाइएसु,
१६. अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु सुहुमवणस्सइकाइएसु, अपज्जत्तएसु पज्जत्तएसु य बारससु वि ठाणेसु एएणं चेव कमेणं भाणियव्वो।

१७. सूक्ष्म पृथ्वीकाइयो रे, पर्याप्तक छै जेह।
इमज समस्तपणें उपजाविवो रे,
बारै ही स्थान विषेह कै।।
१८. इम इण आलावे करी रे, जाव सूक्ष्म वणस्सइ पज्जत्त।
सूक्ष्म वणस्सइ पर्याप्ता विषे रे, कहिवूं ऊपजवूं तत्थ कै।।

१७. सुहुमपुढविकाइओ पज्जत्तओ एवं चेव निरवसेसो बारससु वि ठाणेसु उववाएयव्वो।

१८. एवं एएणं गमएणं जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव भाणियव्वो। (श. ३४।२६)

वा०—इहां लोक नैं चरिमांते बादर पृथ्वीकायिक १ अपकायिक २ तेजस्कायिक ३ वनस्पतिकायिक ४ नहीं छै। अनैं सूक्ष्म तो पांचेइ पिण छै। वले बादर वायुकायिक छै। ए षट नों पर्याप्तक १ अपर्याप्तक २ बिहुं भेदे करि एवं १२ स्थानक अनुसरवा इति।

इहां लोक नां पूर्व चरिमांत थकी पूर्व चरिमांत नैं विषे ऊपजता थकां नैं एक समयादि चतुः समय पर्यंत गति संभवै, अनुश्रेणि विश्रेणि नां संभव थकी।

वा.—इह च लोकचरमान्ते बादराः पृथ्वीकायिकाप्कायिकतेजोवनस्पतयो न सन्ति सूक्ष्मास्तु पञ्चापि सन्ति बादरवायुकायिकाश्चेति पर्याप्तापर्याप्तभेदेन द्वादश स्थानान्यनुसर्तव्यानीति,

इह च लोकस्य पूर्वचरमान्तात्पूर्वचरमान्ते उत्पद्यमानस्यैकसमयादिका चतुःसमयान्ता गतिः संभवति, अनुश्रेणिविश्रेणिसम्भवात्, (वृ. प. ९६१)

१९. अपर्याप्तक सूक्ष्म मही रे, हे प्रभु! लोक नां तेह।
पूर्व नां चरिमांत विषे रे, समुद्घात करी जेह कै।।
२०. जेह जीव वलि लोक नैं रे, दक्षिण नैं चरिमंत।
अपज्जत्त सूक्ष्म मही विषे रे, योग्य उपजवा हुंत कै।।
२१. हे प्रभुजी! ते जीवड़ो रे, किता समय नैं जाण।
विग्रह करिनै ऊपजै रे? भाखै तब जगभाण कै।।
२२. बे समय नैं विग्रह करी रे, वा विग्रह त्रिण समयेह।
वा चिहुं समये विग्रह करि ऊपजै रे,
प्रभु! किण अर्थे वच एह कै?
२३. जिन कहै इम निश्चै करी रे, म्है श्रेणि परूपी सात।।
ऋजुआयता जाव ही रे, अधचक्कवाल विख्यात कै।।
२४. तिहां एक थी वक्र श्रेणि करी रे, ऊपजतो थको जीव।
बे समय विग्रह करि ऊपजै रे, अर्थ अनूप अतीव कै।।

१९. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
२०. जे भविए लोगस्स दाहिणिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइएसु उववज्जित्तए,
२१. से णं भंते! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा? गोयमा!
२२. दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा। (श. ३४।२७)
से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ?
२३. एवं खलु गोयमा! मए सत्त सेढीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—उज्जुयायता जाव अद्धचक्कवाला।
२४. एगओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे दुसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा,

---

***लय : सीता सुंदरी रे**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२५. बिहुं थी वक्रश्रेणि करी रे, ऊपजतो थको मंत।
जे भविक एक प्रतर विषे रे, अनुश्रेणि उपजंत कै ।।
२६. तेह जीव त्रिण समय नें रे, विग्रह करि उपजेह।
अथ च्यार समय करि ऊपजै रे, कहियै छै हिव तेह कै ।।
२७. जे योग्य विश्रेणि ऊपजवा रे, च्यार समय नैं ताय।
विग्रह करीनैं ऊपजै रे, तिण अर्थे इम वाय कै ।।

वा०—पूर्व नां चरिमांत थकी वलि दक्षिण नां चरिमांत नैं विषे ऊपजता थका नैं द्वयादि सामयिकी हीज गति, अनुश्रेणि नां अभाव थकीज। इम अन्यत्र पिण विश्रेणि गमन इति।

२८. इम इण आलावे करी रे, मूओ पूर्व चरिमंत।
दक्षिण चरिमंत उपजाविवो रे, जाव चरम पाठ हिव हुंत कै ।।
२९. सूक्ष्म वणस्सइकाइयो रे, पर्याप्तो छै जेह।
सूक्ष्म वणस्सइकाय नां रे, पज्जत्त विषे उपजेह कै ।।
३०. ए सर्व विषे बे समयिको रे, त्रिण सामयिक अवधार।
अथवा वलि चिहुं समय नों रे, विग्रह भणिवो विचार कै ।।
३१. अपर्याप्तक सूक्ष्म मही रे, हे प्रभु ! लोक नां जोय।
पूर्व नां चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि सोय कै ।।
३२. लोक तणां वलि जाणवा रे, पश्चिम चरिमंत विषह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें रे, योग्य उपजवा जेह कै ।।
३३. हे प्रभु ! केतला समय नें रे, विग्रह करि उपजंत ?
जिन भाखै इक समय नैं रे, विग्रह करिनैं हुंत कै ।।
३४. तथा दोय समय विग्रह करी रे, तथा विग्रह त्रिण समयेह।
तथा चिहुं समय विग्रह करि ऊपजे रे, किण अर्थे वच एह कै?

३५. इम जिमज पूर्व चरिमांत विषे रे, समुद्घात करि ताम।
फुन निश्चै पूर्व चरिमांत में रे, उपजाव्यो छै आम कै ।।
३६. तिमज पूर्व चरिमांत विषे रे, समुद्घात करि सोय।
पश्चिम नां चरिमांत विषे र, उपजाविवो सहु जोय कै ।।

वा०—इहां पूर्व दिशि नैं विषे तो मूओ अनैं पश्चिम दिशि नैं विषे ऊपनों। तिहां एक समय नीं विग्रह पिण कही ते समश्रेणि माटै। अनै दक्षिण तथा उत्तरे ऊपजै, तिहां एक समय नीं विग्रह न हुवै ते वक्रपणां माटै।

३७. अपर्याप्तक सूक्ष्म मही रे, हे प्रभु ! लोक नां तेह।
पूर्व नां चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि जेह कै ।।
३८. जे वलि लोक तणां जिके रे, उत्तर चरिमंत विषेह।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें रे, योग्य उपजवा जेह कै ।।
३९. ते प्रभु ! केतला समय नैं रे, विग्रह करि उपजंत ?
एम प्रश्न पूछ्यां थकां, भाखै तब भगवंत कै ।।
४०. इम जिम पूर्व चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि जीव।
दक्षिण नैं चरिमांत विषे रे, उपजाव्यो छै अतीव कै ।।
४१. तिम पूर्व नें चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि ताम।
उत्तर नां चरिमंत विषे रे, उपजाविवो छै आम कै ।।

२५. दुहओवंकाए सेढीए उववज्जमाणे जे भविए एगपयरंसि अणुसेढि उववज्जित्तए,
२६. से णं तिसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।
२७. जे भविए विसेढि उववज्जित्तए, से णं चउसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा।
से तेणट्ठेणं गोयमा !

वा०—पूर्वचरमान्तात्पुनर्दक्षिणचरमान्ते उत्पद्यमानस्य द्व्यादिसामयिक्येव गतिरनुश्रेणेरभावात्, एवमन्यत्रापि विश्रेणिगमन इति। (वृ. प. ९६१)

२८. एवं एएणं गमएणं पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए दाहिणिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो जाव
२९. सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव।
३०. सव्वेसिं दुसमइओ तिसमइओ चउसमइओ विग्गहो भाणियव्वा। (श. ३४।२८)
३१. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
३२. जे भविए लोगस्स पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
३३. से ण भंते ! कइसमइएणं विग्गहेणं उववज्जेज्जा ? गोयमा ! एगसमइएण वा
३४. दुसमइएण वा तिसमइएण वा चउसमइएण वा विग्गहेणं उववज्जेज्जा। (श. ३४।२९)
से केणट्ठेणं ?
३५. एवं जहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहया पुरत्थिमिल्ले चेव चरिमंते उववाइया
३६. तहेव पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहया पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते उववाएयव्वा सव्वे। (श. ३४।३०)

३७. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! लोगस्स पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
३८. जे भविए लोगस्स उत्तरिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए,
३९. से णं भंते !
४०. एवं जहा पुरत्थिमिल्ले चरिमंते समोहयओ दाहिणिल्ले चरिमंते उववाइओ
४१. तहा पुरत्थिमिल्ले समोहयओ उत्तरिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो। (श. ३४।३१)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दक्षिण नां चरिमत विषे मरो च्यारूं दिशि नैं विषे ऊपजै तेहनों अधिकार कहै छै

४२. अपर्याप्तक सूक्ष्म मही रे, हे प्रभु ! लोंक नां जेह ।
दक्षिण नां चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि तेह कै ।।
४३. लोक तणां वलि जाणवा रे, दक्षिण नैं चरिमंत ।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणें रे, योग्य उपजवा हुंत कै ?
४४. इम जिम पूर्व चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि ताम ।
फुन पूर्व नैंज चरिमंत में रे, उपजाव्यो छै आम कै ।।
४५. तिमज दक्षिण चरिमंत विषे रे, समुद्घात सलहीज ।
फुन दक्षिण नैंज चरिमंत में रे, सहु उपजाविवो तिमहीज कै ।।
४६. जाव सूक्ष्म वणस्सइ पर्याप्तो रे,
सूक्ष्म वणस्सइ पज्जत्त विषेह ।
दक्षिण नां चरिमंत विषे रे, उपजाविवो चित देह कै ।।
४७. इम दक्षिण नां चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि सोय ।
पश्चिम नां चरिमंत विषे रे, उपजाविवो अवलोय कै ।।
४८. णवरं बे समय नें जाणवो रे, फुन त्रिण समय नै ताय ।
च्यार समय विग्रह वली रे, शेष तिमज कहिवाय कै ।।
४९. दक्षिण नां चरिमंत विषे रे, समुद्घात करि ताम ।
उत्तर नां चरिमंत विषे रे, उपजाविवो छै आम कै ।।
५०. कह्यो जिमहिज स्वस्थानक विषे रे,
तिमज विग्रह समयो एक ।
बे त्रिण च्यार समय तणों रे, विग्रह कहिवो विशेख कै ।।
५१. जे पूर्व चरिमंत ऊपजै रे, जिम उपजै पश्चिम विषेह ।
तिमहिज बे समये तथा, त्रिण वा चउ समयेह कै ।।

वा०—इहां दक्षिण नैं चरिमंत मरी पूर्व चरिमाते ऊपजै । ते जिम दक्षिण चरिमंते मरी पश्चिम चरिमते उपजाव्यो तिम दक्षिण चरिमंते मरी पूर्व चरिमते उपजाववो । तिमहिज कहिवै बे त्रिण च्यार समय नीं विग्रह संभवै ।

हिवै पश्चिम चरिमंते मरो च्यारूं दिशि नैं विषे ऊपजै तेहनों अधिकार कहै छै

५२. पश्चिम चरिमंत विषे मरी रे, फुन पश्चिम चरिमंतेह ।
ऊपजता नैं जाणवूं रे, जिम स्वस्थान विषेह कै ।।

वा०—जिम पूर्व नैं चरिमते मरी पूर्व चरिमते ऊपजै ते स्वस्थाने एक बे तीन च्यार समय नीं विग्रह कही, तिम इहां पिण पश्चिम चरिमाते ऊपजै । ते एहनां स्व स्थानक विषे पिण एक, बे, तीन च्यार समय नीं विग्रह कहिवी ।

५३. उत्तर नां चरिमांत विषे रे, ऊपजतां नैं ख्यात ।
एक समय नों विग्रह नथी, शेष तिमज अवदात ।।

वा०— इहां पश्चिम चरिमते मरी उत्तर चरिमंते ऊपजतां एक समय नीं विग्रह नथी शेष तिमहिज ।

५४. पूर्व नां चरिमंत विषे रे, ऊपजतां अवलोय ।
जिम स्वस्थानक आखियो रे, तिमहिज कहिवो सोय ।।

४२. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! लोगस्स दाहिणिल्ले चरिमंते समोहए, समोहणित्ता
४३. जे भविए लोगस्स दाहिणिल्ले चेव चरिमंते अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए ?
४४. एवं जहा पुरत्थिमिल्ले समोहयओ पुरत्थिमिल्ले चेव उववाइओ
४५. तहेव दाहिणिल्ले समोहए दाहिणिल्ले चेव उववाए-यव्वो, तहेव निरवसेसं
४६. जाव सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइ-काइएसु चेव पज्जत्तएसु दाहिणिल्ले चरिमंते उववाइओ,
४७. एवं दाहिणिल्ले समोहयओ पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो,
४८. नवरं—दुसमइय-तिसमइय-चउसमइयविग्गहो, सेसं तहेव ।
४९. एवं दाहिणिल्ले समोहयओ उत्तरिल्ले चरिमंते उववाएयव्वो
५०. जहेव सट्ठाणे तहेव । एगसमइय-दुसमइय-तिसमइय-चउसमइयविग्गहो ।
५१. पुरत्थिमिल्ले जहा पच्चत्थिमिल्ले, तहेव दुसमइय-तिसमइय-चउसमइयविग्गहो ।
५२. पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते समोहयाणं पच्चत्थिमिल्ले चेव उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे ।
५३. उत्तरिल्ले उववज्जमाणाणं एगसमइओ विग्गहो नत्थि, सेसं तहेव ।
५४. पुरत्थिमिल्ले जहा सट्ठाणे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—इहां पश्चिम चरिमंते मरी पूर्व चरिमांते ऊपजतां समश्रेणि माटै एक समय नीं पिण विग्रह कही।

५५. दक्षिण नां चरिमंत विषे रे, ऊपजतां नै ताय।
एक समय विग्रह नथी रे, शेष तिमज कहिवाय।।

५५. दाहिणिल्ले एगसमइओ विग्गहो नत्थि, सेसं तं चेव।

वा०—इहां पश्चिम चरिमंते मरी दक्षिण चरिमंते ऊपजतां एक समय नीं विग्रह नथी शेष तिमज।

उत्तर नैं चरिमांते मरी च्यारूं दिशि नैं विषे ऊपजै, तेहनों अधिकार कहै छै—

५६. उत्तर नां चरिमांत विषे रे, समुद्घात करि तेह।
उत्तर विषे उपजतां थकां रे, जिम स्वस्थान विषेह।।

५६. उत्तरिल्ले समोहयाणं उत्तरिल्ले चेव उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे।

वा०—इहां स्वस्थान माटै एकादि समय नीं विग्रह पिण हुवै।

५७. उत्तर नैं चरिमंत में रे, समुद्घात करि सोय।
पूर्व ऊपजतां थकां रे, इमहिज कहिवो जोय कै।

५७. उत्तरिल्ले समोहयाणं पुरत्थिमिल्ले उववज्जमाणाणं एवं चेव,

५८. णवरं इतरो विशेष छै रे, एक समय नों जाण।
विग्रह तेहनें छै नथी रे, बुद्धि स्यूं कीजो पिछाण कै।।

५८. नवरं—एगसमइओ विग्गहो नत्थि।

५९. उत्तर नां चरिमांत विषे रे, समुद्घात करी जेह।।
दक्षिण ऊपजतां थकां रे, जिम स्वस्थान विषेह कै।।

५९. उत्तरिल्ले समोहयाणं दाहिणिल्ले उववज्जमाणाणं जहा सट्ठाणे,

वा०—इहां समश्रेणि माटै जिम स्वस्थान विषे कह्यो, तिम एकादि समय नीं विग्रह कहिवी।

६०. उत्तर नैं चरिमांत विषे रे, समुद्घात करि ताय।
पश्चिम नां चरिमांत विषे रे, ऊपजतां नैं कहाय कै।।

६०. उत्तरिल्ले समोहयाणं पच्चत्थिमिल्ले उववज्जमाणाणं

६१. एक समय नों तेहनें रे, विग्रह कहियै नांय।
शेष तिमज कहिवो सहु रे, जाव चरम पाठ हिव आय कै।।

६१. एगसमइओ विग्गहो नत्थि, सेसं तहेव जाव

६२. सूक्ष्म वणस्सइकाइयो रे, पर्याप्तक पहिछाण।
सूक्ष्म वणस्सइ पज्जत्त विषे रे, कहिवूं पूर्ववत जाण कै।।

६२. सुहुमवणस्सइकाइओ पज्जत्तओ सुहुमवणस्सइकाइएसु पज्जत्तएसु चेव। (श. ३४।३२)

६३. चउनीसम देश धुर तणों रे, च्यार सय नैं सित्यासीमीं ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी रे, 'जय-जश' मंगलमाल कै।।

ढाल : ४८८

दूहा

१. इम उत्पादपणें करी, एकेंद्रिय आख्यात।
ते एकेंद्रिय नैं ज हिव, स्थानादिक अवदात।।

१. एवमुत्पादमधिकृत्यैकेन्द्रियप्ररूपणा कृता, अथ तेषामेव स्थानादिप्ररूपणायाह— (वृ. प. ९६१)

एकेन्द्रिय जोवों के स्थान

२. बादर पृथ्वीकाय नां, पर्याप्ता नां स्थान।
किहां परूप्या हे प्रभु! भाखै तब भगवान।।

२. कहि णं भंते! बादरपुढविक्काइयाणं पज्जत्तगाणं ठाणा पण्णत्ता? गोयमा!

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. जिहां बादर पृथ्वी रहै, ते पोता नों स्थान।
स्वस्थानक कहियै तसु, एह आश्रयी जान।।

४. आठूं पृथ्वी नें विषे, जेम पन्नवणा मांय।
स्थान पद बीजा विषे, आख्यूं जिम कहिवाय।।

५. रत्नप्रभा नें आदि दे, यावत सूक्षम जाण।
वनस्पति नां छै जिके, पज्जत्त अपज्जत्त पिछाण।।

६. ते सगला ही एकविध, ओघ थकी कहिवाय।
प्रकृत स्वस्थानादि जे, विचार करिकै ताय।।

७. अविशेष कहितां जिके, विशेष रहितज जोय।
जेम तास पर्याप्ता, अपज्जत्त पिण जिम जोय।।

८. नानात्व भेद रहित ते, तेह आधारजभूत।
जेह आकाश प्रदेश में, पर्याप्ता छै सूत।।

९. तिणहिज गगन प्रदेश में, अपर्याप्ता पिण ख्यात।
अनाणत्ता नों अर्थ ए, वृत्ति विषे विख्यात।।

१०. धुर उपपात करी वलि, समुद्घात करि जेह।
स्वस्थानक करि नें जिके, सर्व लोक वर्त्तेह।।

११. ऊपजवा सन्मुख प्रति, कहियै छै उपपात।
मारणांतिकी आदि प्रति, कहियै छै समुदघात।।

१२. अर्थ वले स्वस्थान नुं, जिहां रहै ते स्थान।
समणाउसो अर्थ तसु, हे श्रमण आयुष्मन ! जाण।।

एकेन्द्रिय जीवों के कर्मप्रकृति का बन्ध और वेदन

*हो प्रभु ! देवदयाल जी,
म्हांनें भिन्न-भिन्न भेद बताय हो लाल।
हो प्रभु ! ज्ञान दिवाकरू,
थांरा वचनामृत सुखदाय हो लाल।। (ध्रुपदं)

१३. हे भगवंत ! अपर्याप्ता काइ, सूक्ष्म पृथ्वीकाय हो लाल।
कर्मप्रकृति तसु केतली कांइ, आप कही जिनराय हो लाल ?

१४. जिन भाखै सुण गोयमा !
अष्ट कर्मप्रकृति कही ताय हो लाल।
ज्ञानावरणी आदि दे कांइ, यावत ही अंतराय हो लाल।।

१५. एम चउक्क भेदे करी, जिम एकेंद्रिय शत मांय हो लाल।
यावत बादर वणस्सइ कांइ,
पज्जत्त भणी कहिवाय हो लाल।।

१६. अपर्याप्ता सूक्ष्म मही, कितो कर्मप्रकृति बांधंत हो लाल ?
जिन कहै सतविधबंधका,
अष्टविधबंधक पिण हुंत हो लाल।।

*लय : घूमघूमारो घघारो म्हांरी

३. सट्ठाणेणं
'सट्ठाणेणं' ति स्वस्थानं यत्रास्ते बादरपृथिवीकायिकस्तेन स्वस्थानेन स्वस्थानमाश्रित्येत्यर्थः
(वृ. प. ९६१)

४. अट्ठसु पुढवीसु जहा ठाणपदे
'जहा ठाणपदे' त्ति स्थानपदं च प्रज्ञापनाया द्वितीयं पदं (वृ. प. ९६१)

५. जाव सुहुमवणस्सइकाइया जे य पज्जत्तगा जे य अपज्जत्तगा

६. ते सव्वे एगविहा
'एगविह' त्ति एकप्रकारा एव प्रकृतस्वस्थानादिविचारमधिकृत्यौघतः (वृ. प. ९६१)

७-९. अविसेसमणाणत्ता
'अविसेसमणाणत्त' त्ति अविशेषाः—विशेषरहिता यथा पर्याप्तकास्तथैवेतरेऽपि 'अणाणत्त' त्ति अनानात्वाः—नानात्ववर्जिताः येष्वेवाधारभूताकाशप्रदेशेष्वेके तेष्वेवेतरेऽपीत्यर्थः (वृ. प. ९६१)

१०-१२. सव्वलोगपरियावन्ना पण्णत्ता समणाउसो !
(श. ३४।३३)
'सव्वलोयपरियावन्न' त्ति उपपातसमुद्घातस्वस्थानैः सर्वलोके वर्त्तन्त इति भावना, तत्रोपपात—उपपाताभिमुख्यं समुद्घात इह मारणान्तिकादि स्वस्थानं तु यत्र ते आसते। (वृ. प. ९८१)

१३. अपज्जत्तासुहुमपुढविकाइयाणं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ ?

१४. गोयमा ! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नाणावरणिज्जं जाव अंतराइयं।

१५. एवं चउक्कएणं भेदेणं जहेव एगिंदियसएसु जाव बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं।
(श. ३४।३४)

१६. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ बंधंति ?
गायमा ! सत्तविहबंधगा वि, अट्ठविहबंधगा वि;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१७. जेम एकेंद्रिय शतक में कांइ, आख्यूं तिम कहिवाय हो लाल ।
जाव पज्जत्त बादर वणस्सइ कांइ,
कहिवूं इहां लग ताय हो लाल ।।
१८. अपर्याप्ता सूक्ष्म मही, किती कर्मप्रकृति वेदेह हो लाल ।
जिन भाखै सुण गोयमा !,
चवदै कर्मप्रकृति वेदै तेह हो लाल ।।

१९. ज्ञानावरणी आदि दे, जिम एकेंद्रिय विषे उक्त हो लाल ।
जाव पुरिसवेद-वध्य लगै,
इम बादर वनस्पति पज्जत्त हो लाल ।

एकेंद्रिय में उपपात

२०. एकेंद्रिय भगवंत जी ! कांइ, किहां थकी उपजंत हो लाल ?
स्यूं नारकि थी ऊपजै ?,
जिम पन्नवण पद व्युत्क्रांत हो लाल ।।
२१. छठा पद में आखियो कांइ, पृथ्वी नों उत्पात हो लाल ।
तेम इहां पिण आखवूं कांइ,
वर जिन वचन विख्यात हो लाल ।।

एकेंद्रिय में समुद्घात

२२. हे प्रभुजी ! एकेंद्रिय तणै कांइ,
किती कही समुद्घात हो लाल ?
जिन कहै चिहुं धुर वेदना, जाव वैक्रिय चोथी ख्यात हो ।।

सोरठा

२३. एकेंद्रिय रै मांय, समुद्घात वैक्रिय कही ।
वाउकाय पेक्षाय, तसु बादर पर्याप्तके ।।
२४. एकेन्द्रिय नैं हीज, अन्य भंग करिनैं हिवै ।
परूपतोज कहीज, चित्त लगाई सांभलो ।।

एकेन्द्रिय जीवों के कर्मबन्ध का अल्पबहुत्व

२५. *हे भगवंत ! एकेंद्रिया, स्यूं तुल्यस्थितिका जेह हो लाल ।
तुल्य विशेष अधिक जिको कांइ, कर्मप्रकृति बांधेह हो लाल ?

सोरठा

२६. तुल्यस्थितिका सोय, मांहोमांहि अपेक्षया ।
समान आयू होय, इतरै आयू तुल्य तसु ।।
२७. तुल्य मांहोमांहि अपेक्षाय, पूर्वकाल बद्ध कर्म नीं ।
अपेक्षाय करि ताय, बांधै विशेषाधिक कर्म ।।

वा०—तुल्लठितीया कहितां मांहोमांहि नीं अपेक्षाये सरीखा आउखावंत छै जिके 'तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति' एहनों अर्थ—तुल्य कहितां परस्पर अपेक्षाये तुल्य सरीखो अनैं विशेषाधिक ते असंख्येय भागादिके करो अधिक पूर्व-काल बद्ध कर्म अपेक्षाये अधिकतर ते तुल्य विशेषाधिक कर्म ज्ञानावरणादि

*लय : घूमघूमालो घाघरो म्हांरी

१७. जहा एगिंदियसएसु जाव पज्जत्ताबादरवणस्सइ-काइया । (श. ३४।३५)

१८. अपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइया णं भंते ! कति कम्मप्पगडीओ वेदेंति ?
गोयमा ! चोद्दस कम्मप्पगडीओ वेदेंति, तं जहा—

१९. नाणावरणिज्जं, जहा एगिंदियसएसु जाव पुरिसवेद-वज्झं । एवं जाव बादरवणस्सइकाइयाणं पज्जत्तगाणं । (श. ३४।३६)

२०. एगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति—किं नेरइए-हिंतो उववज्जंति ?
जहा वक्कंतीए (प. ६।८२)

२१. पुढविक्काइयाणं उववाओ । (श. ३४।३७)

२२. एगिंदियाणं भंते ! कइ समुग्घाया पण्णत्ता ?
गोयमा ! चत्तारि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेदणासमुग्घाए जाव वेउव्वियसमुग्घाए ।
(श. ३४।३८)

२३. समुद्घातसूत्रे 'वेउव्वियसमुग्घाए' त्ति यदुक्तं तद्वायु-कायिकानाश्रित्येति । (वृ. प. ९६१)

२४. एकेन्द्रियानेव भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादयन्नाह—
(वृ. प. ९६१)

२५. एगिंदिया णं भंते ! किं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसे-साहियं कम्मं पकरेंति ?

वा०—'एगिंदिया ण' मित्यादि, 'तुल्लट्ठिइय' त्ति तुल्यस्थितिकाः परस्परापेक्षया समानायुष्का इत्यर्थः 'तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति' त्ति परस्परापेक्षया तुल्यत्वेन विशेषेण—असंख्येयभागा-दिनाऽधिकं—पूर्वकालबद्धकर्मापेक्षयाऽधिकतरं तुल्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पकरेंति—बांधै । एतलै तुल्य आउखावंत एकेंद्रिय छै तिके परस्पर नी अपेक्षाय करिकै तो तुल्य अनै पूर्व काल नां बंध्या कर्म नीं अपेक्षाये विशेष अधिक ते अतिही अधिक कर्म बांधै, एहवूं संभवै छै । ए प्रथम भंग १ ।

विशेषाधिकं 'कर्म' ज्ञानावरणादि 'प्रकुर्वन्ति' बध्नन्ति । (वृ. प. ९६१)

२८. तथा तुल्य आउखावंत जिके कांइ, एकेंद्रिया छै जेह हो लाल ।
वेमात्र विशेष अधिक जिके, इसा कर्म प्रतै बांधेह हो लाल ।

२८. तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

सोरठा

२९. तुल्यस्थितिका जेह, वेमात्र विशेषाधिक जिके ।
कर्म प्रतै बांधेह, वेमात्र विशेषाधिक कवण ?
३०. वेमात्र एह पिछाण, अन्योअन्य अपेक्षया ।
विषम अछै परिमाण, ते आगल ओलखावियै ।।
३१. केहनों पिण अवलोय, असंख्येय भाग रूप जे ।
अन्य तणों वलि होय, संख्येयज भाग रूप जे ।।
३२. जे विशेष कहिवाय, तेणे करी अधिक जे ।
पूर्वकाल बद्ध ताय, कर्म अपेक्षा करि जिको ।।

२९. तथा तुल्यस्थितय: 'वेमायविसेसाहियं' ति (वृ. प. ९६१)
३०. विमात्र:—अन्योऽन्यापेक्षया विषमपरिमाण: (वृ. प. ९६१)
३१. कस्याप्यसंख्येयभागरूपोऽन्यस्य संख्येयभागरूपो (वृ. प. ९६१)
३२. यो विशेषस्तेनाधिकं पूर्वकालबद्धकर्मापेक्षया यत्तत्तथा २ (वृ. प. ९६१)

वा०—इहां ए परमार्थ—तुल्य आउखावंत छै जिके परस्पर नीं अपेक्षाये वेमात्र अनै पूर्वकाल बद्ध कर्म नीं अपेक्षाये विशेषाधिक ते अतिही अधिक कर्म प्रतै बांधै, एहवूं जणाय छै । ए द्वितीय भंग २ ।

३३. *अथवा विमात्रज स्थितिका कांइ,
जीव एकेंद्रिया जेह हो लाल ।
तुल्य विशेष अधिक जिके कांइ, कर्म प्रतै बांधेह हो लाल ?

३३. वेमायट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

सोरठा

३४. विषम मात्र जे होय, स्थिति आउखो जेहनों ।
विमात्र स्थिति ते जोय, विषम आउखावंत ते ।।

३५. तुल्य मांहोमांहि अपेक्षाय, पूर्वकाल बद्ध कर्म नीं ।
अपेक्षाय करि ताय, विशेषाधिक बांधै कर्म ।।

३४. तथा 'वेमायट्ठिइय' त्ति विमात्रा—विषममात्रा स्थिति:—आयुर्येषां ते विमात्रस्थितयो विषमायुष्का इत्यर्थ: (वृ. प. ९६१)
३५. 'तुल्लविसेसाहिय' त्ति तथैव, (वृ. प. ९६१)

वा०—इहां ए परमार्थ—परस्पर बरोबर आउखो नहीं ते विमात्र आउखावत छता परस्पर नीं अपेक्षाये तुल्य अनै पूर्वकाल बद्ध कर्म नीं अपेक्षाये जे विशेषाधिक कर्म बांधै । ए तृतीय भंग ३ ।

३६. *अथ वेमात्रजस्थितिका कांइ, विषम आउखावंत हो लाल ।
विमात्र विशेषाधिक जिके कांइ, कर्म प्रतै बांधंत हो लाल ?

३६. वेमायट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

सोरठा

३७. विषम आउखावंत, मांहोमांहि अपेक्षया ।
सम आयु नहि हुंत, तेह विमात्रज स्थितिका ।।
३८. ए विषम आउखावंत, अन्योअन्य अपेक्षया ।
वेमात्राये मंत, बांधै कर्म तिके वही ।।

---

*लय : घूमघूमालो घाघरो म्हांरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. पूर्वकाल नां जाण, बद्ध कर्म तास अपेक्षया।
विशेष अधिक पिछाण, बांधै कर्म जे जीवड़ा ।।
(ए चतुर्थ भंग)

४०. *जिन कहै केतला एक जे कांइ,
तुल्य स्थितिका जेह हो लाल।
तुल्य विशेषाधिक जिके कांइ, कर्म प्रतै बांधेह हो लाल ।।

४०. गोयमा ! अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,

४१. जीव केतलाइक वली कांइ, तुल्यस्थितिका जेह हो लाल।
विषम मात्र विशेषाधिक जिके कांइ,
कर्म प्रतै बांधेह हो लाल ।।

४१. अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,

४२. केतलाइक जे जीवड़ा, विषम मात्र आयुवंत हो लाल।
तुल्य विशेषाधिक जिकै कांइ, कर्म प्रतै बांधंत हो लाल ।।

४२. अत्थेगइया वेमायट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति,

४३. जीव केतलाइक वली कांइ, विषम मात्र आयुवंत हो लाल।
विमात्र विशेषाधिक जिके कांइ, कर्म प्रतै पकरंत हो लाल ।।

४३. अत्थेगइया वेमायट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति। (श. ३४।३९)

४४. ते किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यूं,
केई तुल्यस्थितिका जोव हो लाल।
जाव विमात्र विशेष अधिक जिके,
कांइ बांधै कर्म अतीव हो लाल ।।

४४. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया जाव वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति ?

४५. जिन भाखै एकेन्द्रिया कांई, आख्या चिहुंविध जन्न हो लाल।
केई समआउखावंत जे, अनैं समकाले ही उत्पन्न हो लाल ।।

४६. जाव केतलाइक वली कांइ, विषम आउखावंत हो लाल।
अनैं विषम काले ते ऊपनां कांइ, एतला लगै कहंत हो लाल ।।

४५,४६. गोयमा ! एगिंदिया चउव्विहा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया विसमाउया विसमोववन्नगा।

४७. तिहां समआउखावंत हो, सम काले ऊपनां जेह हो लाल।
ते तुल्यस्थितिका जाणवा,
तुल्य विशेषाधिक कर्म बांधेह हो लाल ।।

४७. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

सोरठा

४८. सम-आउखावंत, समकाले हिज ऊपनां।
ए तुल्यस्थितिका हुंत, समान आयु ते भणी ।।

४९. समान उत्पन्न करेह, मांहोमांहि अपेक्षया।
समान योगपणेह, कर्म समानज ते करै ।।

४८,४९. 'समाउया समोववन्नग' त्ति समस्थितयः समकमेवोत्पन्ना इत्यर्थः, एते च तुल्यस्थितयः समोत्पन्नत्वेन परस्परेण समानयोगत्वात्समानमेव कर्म्म कुर्वन्ति, (वृ. प. ९६१)

५०. फुन पूर्व कर्म अपेक्षाय, सम अथवा जे हीन प्रति।
तथा अधिक जे ताय, करै कर्म प्रति जीवड़ा।

५०. ते च पूर्वकर्म्मापेक्षया समं वा हीनं वाऽधिकं वा कर्म्म कुर्वन्ति, (वृ. प. ९६१)

५१. जो अधिक कर्म पकरेह, तदा विशेषाधिक अपि।
मांहोमांहि करि तेह, तुल्य विशेषाधिक कह्या ।।

५१. यद्यधिकं तदा विशेषाधिकमपि तच्च परस्परतस्तुल्यविशेषाधिकं (वृ. प. ९६१,९६२)

५२. पिण विशेषाधिक न कहाय, इण कारण थी इम कह्यो।
तुल्य विशेष अधिकाय, कर्म प्रतै बांधै तिको।

५२. न तु विशेषाधिकमेवेत्यत उच्यते तुल्यविशेषाधिकमिति, (वृ. प. ९६२)

५३. *तिहां सम आउखावंत ही, विषम काले ऊपनां जेह हो लाल।
ते तुल्यस्थितिका जाणवा,
विमात्र विशेषाधिक कर्म बांधेह हो लाल ।।

५३. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

*लय : घूमघूमालो घाघरो म्हांरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

५४. जे समआउखावंत, विषम काल करि ऊपनां।
ते तुल्यस्थितिका हुंत, समान आयु जे भणी ॥
५५. ते विषमोत्पन्न करेह, योग विषम नां भाव थी।
करै एकेंद्रिय जेह, विमात्र विशेषाधिक कर्म ॥

५४,५५. तथा ये समायुषो विषमोपपन्नकास्ते तुल्यस्थितयः विषमोपपन्नत्वेन च योगवैषम्याद्विमात्रविशेषाधिकं कर्म्मं कुर्वन्तीति २, (वृ. प. ९६२)

५६. *तिहां विषम आउखावंत ही, समकाले ऊपनां जेह हो लाल।
विमात्रस्थितिका जाणवा,
तुल्य विशेषाधिक कर्म बांधेह हो लाल ॥

५६. तत्थ णं जे ते विसमाउया समोववन्नगा ते णं वेमायट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

सोरठा

५७. जे विषम आउखावंत, समकाले करि ऊपनां।
विमात्रस्थितिका हुंत, विषम आउ छै ते भणी।
५८. ते सम उत्पन्न करेह, समान योगपणां थकी।
करै एकेंद्रिय जेह, तुल्य विशेषाधिक कर्म।

५७,५८. तथा ये विषमायुषः समोपपन्नकास्ते विमात्रस्थितयः समोत्पन्नत्वेन च समानयोगत्वात् तुल्यविशेषाधिकं कर्म्मं कुर्वन्तीति ३, (वृ. प. ९६२)

५९. *तिहां विषम आउखावंत जे कांइ,
ऊपनां विषम कालेह हो लाल।
ते विमात्रस्थितिका जाणवा,
विमात्र विशेषाधिक कर्म करेह हो लाल ॥

५९. तत्थ णं जे ते विसमाउया विसमोववन्नगा ते णं वेमायट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

सोरठा

६०. जे विषम आयुखावंत, विषम काल करि ऊपनां।
ते विमात्रस्थितिका हुंत, विषम आयु छै ते भणी।
६१. ते विषमोत्पन्न करेह, जोग विषम नां भाव थी।
करै एकेंद्रिय जेह, विमात्र विशेषाधिक कर्म ॥

६०,६१. तथा ये विषमायुषो विषमोपपन्नकास्ते विमात्रस्थितयो विषमोत्पन्नत्वाच्च योगवैषम्येण विमात्रविशेषाधिकं कर्म्मं कुर्वन्तीति। (वृ. प. ९६२)

६२. *तिण अर्थे यावत कर, विमात्र विशेषाधिक कर्म हो लाल।
सेवं भंते ! स्वामजी, जाव विचरै गोतम धर्म हो लाल ॥

६२. से तेणट्ठेणं गोयमा ! जाव वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति। (श. ३३।४०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति।
(श. ३४।४१)

६३. शत चउतीसम धुर आखियो,
इग्यारसौ नें अठयासीमीं ढाल हो लाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
सुख 'जय-जश' हरष विशाल हो लाल ॥

इति ३४।१।१

---

*लय : घूमघूमालो घाघरो म्हांरी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४८९

दूहा

१. प्रथम उद्देशे अर्थ थी, आख्यो अति अधिकार।
अथ क्रम द्वितीय उद्देश ते, अनंतरोत्पन्न धार।।

अनंतरोपपन्नक एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार, स्थान आदि

२. कतिविध हे भगवंतजी ! अनंतरोत्पन्न धार।
एकेंद्रिया परूपिया ? जिन कहै पंच प्रकार।।

२. कइविहा णं भंते ! अणंतरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा अणतरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—

३. पृथ्वीकायिक आदि दे, द्विपद भेद करि ताय।
जिम एकेंद्रिय शत विषे, जाव बादर तरुकाय।।

वा०—अनंतरोपपन्न एकेन्द्रिय नां अधिकार थकी अनंतरोपपन्नक नैं पर्याप्तकपणां नां अभाव थकी अपर्याप्ता थका नैं सूक्ष्म अनैं बादर ए दोनूंइ पद नों भेद जिम एकेंद्रिय शतक नैं विषे यावत बादर वनस्पतिकायिक कह्या एतला लगै कहिवो।

३. पुढविक्काइया, दुयाभेदो जहा एगिंदियसएसु जाव बादरवणस्सइकाइया य। (श. ३४।४२)

वा०—'दुयाभेदो' त्ति, अनन्तरोपपन्नैकेन्द्रियाधिकारादनन्तरोपपन्नानां च पर्याप्तकत्वाभावादपर्याप्तकानां सतां सूक्ष्मा बादराश्चेति द्विपदो भेदः, (वृ. प. ९६३)

*जोयजो रे ज्ञान जिनेंद्र नों।। (ध्रुपदं)

४. हे भगवंत ! किहां कह्या, अनंतरोत्पन्न ताह्यो रे।
बादर पृथ्वीकाय नां, स्थानक तेह बतायो रे ?

४. कहि णं भंते ! अणंतरोववन्नगाणं बादरपुढविक्काइयाणं ठाणा पण्णत्ता ?

५. जिन कहै स्व स्थानक करी, पृथ्वी आठ विषेहो रे।
रत्नप्रभा नैं आदि दे, तिम ठाण पदे कह्यूं तेहो रे।।

५. गोयमा ! सट्ठाणेण अट्ठसु पुढवीसु, तं जहा—रयणप्पभाए जहा ठाणपदे (प. २।१)

६. जिम पन्नवण नैं बीजे पदे, आख्यो तिम कहिवायो रे।
जिम यावत द्वीप समुद्र विषे, पाठ इहां लग आयो रे।।

६. जाव दीवेसु समुद्देसु,

७. इहां अनंतरोपपन्न छै जिके, बादर पृथ्वीकायो रे।
तेहनां स्थानक आखिया, इम भाखै जिनरायो रे।।

७. एत्थ णं अणंतरोववन्नगाणं बादरपुढविकाइयाणं ठाणा पण्णत्ता,

८. उपपाते करिनैं जिके, सर्व लोक नैं मांह्यो रे।
वाटे वहितां पामियै, मध्यवर्त्ती गति करि जायो रे।।

८. उववाएणं सव्वलोए।

वा०—उपपाते करी सर्व लोक नैं विषे किम तत्रोत्तरं—उपपात सन्मुख करी अपांतराल गति प्रवृत्ति थकी इत्यर्थः।

वा०—'उववाएणं सव्वलोए समुग्घाएणं सव्वलोए' त्ति, कथम् ?, 'उपपातेन' उपपाताभिमुख्येनापान्तरालगतिवृत्त्येत्यर्थः : (वृ. प. ९६३)

९. तथा मारणांतिक समुद्घात करि, सर्व लोक रै मांह्यो रे।
पूठला भव नीं अपेक्षया, वृत्ति विषे इम वायो रे।।

९. समुग्घाएणं सव्वलोए।

वा०—तथा समुद्घात एतलै—मारणांतिक समुद्घाते करी सर्व लोक नैं विषे उपपात अनैं मारणांतिक समुद्घात—ए बिहुं करी अतिबहुपणां थकी सर्व लोक नैं विषे व्यापी नैं रहै। इहां इसी स्थापनाये करीनैं भावना करवी—

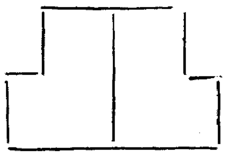

वा०—समुद्घातेन—मारणान्तिकेनेति, ते हि ताभ्यामतिबहुत्वात्सर्वलोकमपि व्याप्य वर्त्तन्ते, इह चैवंभूतया स्थापनया भावना कार्या—

*लय : इन्द्र कहै नमिराय नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इहां पहिलो एक वक्र जइ जिवारै हीज संहरै तिवारै हीज ते वक्र देश प्रतै अनेरा पूरै। इम द्वितीय वक्र संहरण विषे पिण कहिवूं। अनै अवक्र ते ऋजुगति करिकै ऊपनां छता पिण प्रवाह थकी भावना करवी। अनंतरोत्पन्नकपणों वलि इहां भावी भव प्रतै अपेक्षी नैं ग्रहिवो, अपांतराले अनंतरोत्पणां नां साक्षात अभाव थकी अनैं मारणांतिक समुद्घात पिण पूठला भव नीं अपेक्षाये कहिवो, अनंतरोत्पन्नक अवस्था नैं विषे ते समुद्घात नां अभाव थकी।

अत्र च प्रथमवक्रं यदैवैके संहरन्ति तदैव तद्वक्रदेशमन्ये पूरयन्ति, एवं द्वितीयवक्रसंहरणेऽपि अवक्रोत्पत्तावपि प्रवाहतो भावनीयम्, अनंतरोपपन्नकत्वं चेह भाविभवापेक्षं ग्राह्यमपांतराले तस्य साक्षादभावात्, मारणांतिकसमुद्घातश्च प्राक्तनभवापेक्षयाऽनन्तरोपपन्नकावस्थायां तस्यासम्भवादिति।
(वृ. प. ९६३, ९६४)

१०. स्व स्थानक करि लोक नैं, असंख्यातमें भागो रे।
न्याय कहूं छूं तेहनों, सुणजो चतुर सुभागो रे।।

१०. सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे।

सोरठा

११. रत्नप्रभादिक भाग, फुन विमान जे लोक नैं।
असंख्यातमें भाग, बादर मही स्व स्थान थी।।

११. 'सट्ठाणेणं लोगस्स असंखेज्जइभागे' त्ति, रत्नप्रभादिपृथिवीनां विमानानां च लोकस्यासंख्येयभागवर्त्तित्वात्। (वृ. प. ९६४)

१२. *अनंतरोत्पन्न छै तिके, सूक्ष्म पृथ्वीकायो रे।
एक प्रकारज तेहनों, विशेष रहित कहायो रे।।
१३. नानात्व भेद रहित ते, वर्त्तै सर्व लोक रै मांह्यो रे।
हे श्रमण आउखावंत! सुणो, इम भाखै जिनरायो रे।।

१२,१३. अणंतरोववन्नगसुहुमपुढविक्काइया एगविहा अविसेसमणाणत्ता सव्वलोए परियावन्ना पण्णत्ता समणाउओ!

१४. इम इण अनुक्रमे करी, सर्व एगिंदिया भणवा रे।
स्व स्थानक करि सर्व नैं,
जिम ठाण पदे तिम थुणवा रे।।

१४. एवं एएणं कमेणं सव्वे एगिंदिया भाणियव्वा, सट्ठाणाइं सव्वेसिं जहा ठाणपदे।

१५. ए पृथ्वीकायिक आदि दे, पर्याप्तक पहिछाणी रे।
बादर नों ए आखियो, वारू रीत बखाणी रे।।

सोरठा

१६. बादर मही नां स्थान, रत्नप्रभादिक नैं विषे।
बादर अप नां जान, सप्त घनोदधि प्रमुख में।।

१५,१६. तेसिं पज्जत्तगाणं बादराणं।
इह तेषामिति पृथिवीकायिकादीनां, स्वस्थानानि चैवं बादरपृथिवीकायिकानां 'अट्ठसु पुढवीसु तंजहा—रयणप्पभाए' इत्यादि, बादराप्कायिकानां तु 'सत्तसु घणोदहीसु' इत्यादि। (वृ. प. ९६४)

१७. बादर तेउ नां ताम, अंतो मानुष्यक्षेत्र में।
बादर वाउ नां आम, सत्त घनवाय वलियादि में।।

१७. बादरतेजस्कायिकानां तु 'अंतोमणुस्सखेत्ते' इत्यादि, बादरवायुकायिकानां पुनः 'सत्तसु घणवायवलएसु' इत्यादि। (वृ. प. ९६४)

१८. बादर वणस्सइकाय, सप्त घनोदधि आदि में।
ए पृथ्व्यादिक ताय, पज्जत्त बादर नों स्थान स्व।।

१८. बादरवनस्पतीनां तु 'सत्तसु घणोदहीसु' इत्यादि।
(वृ. प. ९६४)

१९. *ऊपजवो समुद्घात ही, स्व स्थानक फुन जेमो रे।
तसु पर्याप्त तणां कह्या, अपज्जत्त बादर नां तेमो रे।।

१९. उववाय-समुग्घाय-सट्ठाणाणि जहा तेसिं चेव अपज्जत्तगाणं बादराणं।

२०. अथवा सूक्ष्म सर्व नैं, जिम मही नैं कहिवायो रे।
तिमहिज कहिवा जाव ही, वनस्पति लग ताह्यो रे।।

२०. सुहुमाणं सव्वेसिं जहा पुढविकाइयाणं भणिया तहेव भाणियव्वा जाव वणस्सइकाइयत्ति।
(श. ३४।४३)

२१. अनंतरोत्पन्न छै जिके, सूक्ष्म मही नैं स्वामो रे।
कर्मप्रकृति कही केतली? जिन कहै अष्ट तमामो रे।।

२१. अणंतरोववन्नगाणं सुहुमपुढविक्काइयाणं भंते! कइ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ?
गोयमा! अट्ठ कम्मप्पगडीओ पण्णत्ताओ।

---

*लय: इन्द्र कहै नमिराय नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. इम जिम एकेंद्रिय शते, अणंतरोववण्ण उद्देशे रे।
भाख्यो तिणहिज रीत सूं, कहिवूं एह अशेषे रे।।

२२. एवं जहा एगिंदियसएसु अणंतरोववन्नगउद्देसए तहेव (३३।१७-२०) पण्णत्ताओ।

२३. तिमहिज बांधै कर्म नैं, तिमहिज वेदै ताह्यो रे।
जाव अणंतरोववण्णगा, बादर वणस्सइकायो रे।।

२३. तहेव बंधंति, तहेव वेदेंति जाव अणंतरोववन्नगा बादरवणस्सइकाइया। (श. ३४।४४)

२४. अनंतरोत्पन्न एकेंद्रिया,
प्रभु! किहां थकी उपजेहो रे।
जिम कह्यूं ओघिक उद्देशके,
तिमहिज कहिवूं एहो रे।।

२४. अणंतरोववन्नगएगिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति? जहेव ओहिए उद्देसओ (३४।३७) भणिओ तहेव। (श. ३४।४५)

२५. अनंतरोववन्न एकेंद्रिया,
प्रभु! तसु किती समुद्घातो रे?
जिन कहै बे समुद्घात छै,
वेदनी कषाय विख्यातो रे।।

२५. अणंतरोववन्नगएगिंदियाणं भंते! कति समुग्घाया पण्णत्ता?
गोयमा! दोन्नि समुग्घाया पण्णत्ता, तं जहा—वेदणासमुग्घाए य कसायसमुग्घाए य। (श. ३४।४६)

सोरठा

२६. अनंतरोत्पन्न मांय, मारणांतिक आदि दे।
समुद्घात नहिं पाय, ते माटे धुर बे कही।।

२६. समुद्घातसूत्रे—'दोन्नि समुग्घाय' त्ति, अनन्तरोपपन्नत्वेन मारणांतिकादिसमुद्घातानामसम्भवादिति। (वृ, प. ९६४)

२७. *अणंतरोववण्ण एगिंदिया,
स्यूं तुल्यठितीया भदंतो! रे।
करै तुल्य विशेषाधिक कर्म, तिमहिज प्रश्न पूछंतो रे।।

२७. अणंतरोववन्नगएगिंदिया णं भंते! किं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति—पुच्छा तहेव।

२८. जिन कहै केइ तुल्यस्थितिका,
तुल्यविशेषाधिक कर्म बांधंतो रे।
तथा केतलाइक तुल्यस्थितिका,
विमात्रविशेषाधिक कर्म करंतो रे।।

२८. गोयमा! अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति, अत्थेगइया तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति। (श. ३४।४७)

२९. किण अर्थे भगवंत जी! यावत ही पहिछाणी रे।
विमात्र विशेषाधिक कर्म, पकरै तेह अयाणी रे?

२९. से केणट्ठेणं जाव वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति?

३०. जिन कहै अणंतरोववण्णगा, एगिंदिया छै तेहो रे।
दोय प्रकार परूपिया, आगल तेह कहेहो रे।।

३०. गोयमा! अणंतरोववन्नगा एगिंदिया दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—

३१. केई सरीखै आउखै, ते समकाले उपन्ना रे।
केई सरीखै आउखै, विषम अद्धा उववन्ना रे।।

३१. अत्थेगइया समाउया समोववन्नगा, अत्थेगइया समाउया विसमोववन्नगा।

३२. तिहां सम आउखावंत जिके, ऊपनां सम कालेहो रे।
ते तुल्यस्थितिका जाणवा,
तुल्यविशेषाधिक कर्म करेहो रे।।

३२. तत्थ णं जे ते समाउया समोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया तुल्लविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

सोरठा

३३. धुर समयोत्पन्न जास, पर्याय जे आश्रयी।
समय मात्र स्थिति तास, अनंतरोत्पन्न ते भणी।।

३३. ये समायुषः अनन्तरोपपन्नकत्वपर्यायमाश्रित्य समयमात्रस्थितिकाः (वृ. प. ९६४)

३४. एक समय उपरंत, परंपरोत्पन्न जे हुवै।
अनंतरोत्पन्न मंत, सम आयु इक समय स्थिति।।

३५. सम काले उपपन्न, एकहीज समया विषे।
उत्पत्ति स्थान प्रपन्न, ते माटै ए तुल्य स्थितिक।।

३४,३५. तत्परतः परम्परोपपन्नकव्यपदेशात् समोपपन्नकाः एकत्रैव समये उत्पत्तिस्थानं प्राप्तास्ते तुल्यस्थितयः (वृ. प. ९६४)

---

*लय : इन्द्र कहै नमिराय नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. सम उपपन्नपणेह, जे सम जोग थकी जिके।
तुल्य विशेष अधिकेह, कर्म प्रतै बांधै तिके ।।

वा०—इहां अनंतरोत्पन्नकपणं एक समय स्थितिक माटै सम आयु सम स्थितिक माटै तुल्यस्थितिका कह्या। अनैं समकाले ऊपनां ते मांहोमांहि नीं अपेक्षाये समजोगपणां थकी तुल्य कर्म बांधै। अनैं पूर्व काल बद्ध कर्म नीं अपेक्षया विशेषाधिक कर्म बांधै, ते माटै ए प्रथम भांगे तुल्य विशेषाधिक कर्म बांधै एहवूं कह्यूं। तुल्य विशेषाधिक कर्म बांधै तेहनों न्याय एहवूं जणाय छै।

३६. समोपपन्नकत्वेन समयोगत्वात् तुल्यविशेषाधिकं कर्म प्रकुर्वन्ति (वृ. प. ९६४)

३७. *तिहां सम आउखावंत जिके,
ऊपनां विषम कालेहो रे।
ते तुल्यस्थितिका जाणवा,
विमात्र विशेषाधिक कर्म करेहो रे ।।

३७. तत्थ णं जे ते समाउया विसमोववन्नगा ते णं तुल्लट्ठितीया वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति।

सोरठा

३८. तिमज समायुवंत, विषम काल करि ऊपनां।
विग्रह गति करि जंत, समयादिक भेदे करी ।।
३९. इम पाम्या उत्पत्ति स्थान,
तुल्यस्थितिक पिण जीव ते।
आयु उदय पिछान, विषम काल करि ऊपनां ।।
४०. अद्धा विषमपणेह, वली विग्रह पिण तिके।
बंधकपणां थी जेह, बांधै विमात्र विशेषाधिक कर्म ।।

वा०—विषमस्थितिका समकाले ऊपनां ए तीजो भांगो अनैं विषम स्थितिका विषम कालपणें करी ऊपनां ए चउथो भांगो। ए अंतिम बे भांगा अनंतरोत्पन्न ते प्रथम समय नां ऊपनां नैं न संभवै, अनंतरोत्पन्नकपणां नैं विषे विषम स्थिति नां अभाव थकी। वलि ए बे भांगा जाणवा मात्र हीज इति।

३८-४०. ये तु समायुषस्तथैव विषमोपपन्नका विग्रहगत्या समयादिभेदेनोत्पत्तिस्थानं प्राप्तास्ते तुल्यस्थितयः आयुष्कोदयवैषम्येणोत्पत्तिस्थानप्राप्तिकालवैषम्यात् विग्रहेऽपि च बन्धकत्वाद् विमात्रविशेषाधिकं कर्म्म प्रकुर्वन्ति, (वृ. प. ९६४)

वा०—विषमस्थितिकसम्बन्धि त्वन्तिमभङ्गद्वय-मनन्तरोपपन्नकानां न संभवत्यनन्तरोपपन्नकत्वे विषमस्थितेरभावात्, एतच्च गमनिकामात्रमेवेति, (वृ. प. ९६४)

४१. *तिण अर्थे करि इम कह्यो,
जाव विमात्र विशेषाधिक जाणी रे।
कर्म बांधै ते जीवड़ा, सेवं भंते! सेवं भंते! माणी रे ।।

॥इति ३४।१।२॥

४१. से तेणट्ठेणं जाव वेमायविसेसाहियं कम्मं पकरेंति। (श. ३४।४८)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३४।४९)

सोरठा

४२. द्वितीय उद्देशे अर्थ, अनंतरोत्पन्न आखिया।
तृतीय उद्देश तदर्थ, परंपरोत्पन्न हिव कहै ।।

परंपरोपत्पन्नक एकेन्द्रिय जीवों के प्रकार, स्थान आदि

४३. *कतिविध हे भगवंतजी! परंपरोत्पन्न जेहो रे।
एगिंदिया जे आखिया? जिन कहै पंच विधेहो रे ।।

४३. कइविहा णं भंते! परंपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता?
गोयमा! पंचविहा परंपरोववन्नगा एगिंदिया पण्णत्ता, तं जहा—

***लय : इन्द्र कहै नमिराय नैं**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४४. पृथ्वीकायिक आदि दे,
जाव चउक्क भेद करि कहिवा रे।
जाव वनस्पतिकायिका, एतला लगैज लहिवा रे ।।
४५. परंपरोत्पन्न अपज्जत्ता, प्रभु ! सूक्ष्म पृथ्वी जंतो रे।
ए रत्नप्रभा पृथ्वी तणां, पूर्व नैं चरिमंतो रे ।।
४६. समुद्घात मारणांतिकी, करै करीनैं जेहो रे।
जेह भविक जे जीवड़ा, योग्य ऊपजवा तेहा रे ।।
४७. रत्नप्रभा पृथ्वी तणां, जाव पश्चिम चरिमंतो रे।
अपज्जत्त सूक्ष्म महीपणैं, जेह ऊपजै जंतो रे ।।
४८. इम इण अभिलापे करी, जिम कह्यो प्रथम उद्देशो रे।
जाव लोक चरिमांत ही, इहां लगै सुअशेषो रे ।।

४९. हे भगवंत ! किहां कह्या, परंपरोत्पन्न जानो रे।
पर्याप्तक बादर जिके, पृथ्वीकाय नां स्थानो रे ?
५०. जिन कहै स्व स्थाने करी, पृथ्वी अष्ट विषेहो रे।
इत्यादिक पूर्वे कह्यूं, तिमहिज कहिवूं तेहो रे ।।
५१. इम इण अभिलापे करी, जिम प्रथम उद्देशे सारो रे।
जाव तुल्यस्थितिका प्रमुख जे, सेवं भंते ! बे वारो रे ।।

।।इति ३४।१।३।।

५२. इम शेष पिण अष्ट उद्देशका, जाव अचरम लगेहो रे।
णवरं इतरो विशेष छै, सांभलजो चित देहो रे ।।
५३. अनंतर नां उद्देशका, अनंतर सरीखा कहिवा रे।
परंपर नां उद्देशका, परंपर सरीखा लहिवा रे ।।
५४. चरम अनें अचरम अपि, एवं चेव कहेहो रे।
इम ए ग्यार उद्देशका,
प्रथम एकेंद्रि श्रेणि शतकेहो रे ।।
५५. चउतीसम अंतर शत प्रथम,
च्यार सय नैं नय्यासीमीं ढालो रे।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' मंगलमालो रे ।।

।।इति ३४।१।४-११।।

४४. पुढविक्काइया, भेदो चउक्कओ जाव वणस्सइ-काइयत्ति। (श. ३४।५०)

४५. परंपरोववन्नगअपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले चरिमंते

४६,४७. समोहए, समोहणित्ता जे भविए इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पच्चत्थिमिल्ले चरिमंते अपज्जत्तासुहुम-पुढविकाइयत्ताए उववज्जित्तए ?

४८. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव पढमो उद्देसओ (३४।२-३२) जाव लोगचरिमंतो त्ति। (श. ३४।५१)

४९. कहि णं भंते ! परंपरोववन्नगबादरपुढविक्काइयाणं ठाणा पण्णत्ता ?

५०. गोयमा ! सट्ठाणेणं अट्ठसु पुढवीसु।

५१. एवं एएणं अभिलावेणं जहा पढमे उद्देसए (३४।३३-४१) जाव तुल्लट्ठितीयत्ति। (श. ३४।५२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३४।५३)

५२. एवं सेसा वि अट्ठ उद्देसगा जाव अचरिमो त्ति, नवरं—

५३. अणंतरा अणंतरसरिसा, परंपरा परंपरसरिसा,

५४. चरिमा य अचरिमा य एवं चेव। एवं एते एक्कारस उद्देसगा। (श. ३४।५४)

*लय : इन्द्र कहै नमिराय नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४९०

कृष्णलेश्यी आदि एकेन्द्रिय के प्रकार, स्थान आदि

दूहा

१. कृष्णलेशी एकेंद्रिया, कतिविध हे भगवंत ?
जिन कहै पंचविधे कह्या, कृष्णलेशी एकेंद्रिय जंत ।।
२. भेद चउक्क करिनें जिके, कृष्णलेशी एकेंद्री शत मांय ।
जेम कह्यूं तिम आखवूं, जाव वनस्पतिकाय ।।
३. कृष्णलेशी अपर्याप्ता, सूक्ष्म मही भदंत !
आ रत्नप्रभा पृथ्वी तणां, पूर्व नें चरिमंत ।।
४. इम इण अभिलापे करो, जिम ओघ उद्देशक जेह ।
जाव लोक चरिमांत इम, कहिवूं सगलूं तेह ।।
५. सगलै ही उपजाविवो, लेश्या कृष्ण विषेह ।
वारू वर उपयोग सूं, न्याय करीनें जेह ।।

*जय-जय ज्ञान जिनेंद्र नों ।। (ध्रुपदं)

६. हे भगवंत ! किहां जिके, कृष्णलेशी ताम ।
अपज्जत्त बादर मही तणां, स्थान परूप्या स्वाम ?
७. इम इण अभिलापे करी, जिम ओघिक उद्देश ।
जाव तुल्यस्थितिका लगै, सेवं भंते ! जिनेश ।।

८. इम इण अभिलापे करी, प्रथम श्रेणि शत जेम ।
तिमहिज ग्यार उद्देशका, ते भणवा धर प्रेम ।।

।।इति ३४।२।१-११।।

९. इम नील लेश्या संघात ही, तृतीय शतक कहिवाय ।
इमज कापोत संघात ही, तुर्य शतक ए थाय ।।
१०. भवसिद्धिक एकेंद्रिय, संघाते सुविचार ।
पंचम शतक कहोजियै, श्री जिन वचन उदार ।।

।।इति ३४।३-५।।

११. प्रभु ! कतिविध कृष्णलेशी जिके,
भव्य एकेंद्रिय ताय ।
इम जिम ओघिक उद्देशके, आख्यो तिम कहिवाय ।।
१२. कतिविध हे भगवंतजी ! अनंतरोत्पन्न जात ।
कृष्णलेशी भवसिद्धिया, एगिंदिया आख्यात ?
१३. जिमज अनंतरोत्पन्न तणों, ओघिक जेह उद्देश ।
आख्यो तिणहिज रीत सूं, कहिवो सुविशेष ।।
१४. कतिविध हे भगवंतजी ! परंपरोत्पन्न जात ।
कृष्णलेशी भवसिद्धिया, एगिंदिया आख्यात ?

---

१. कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता ?
गोयमा ! पंचविहा कण्हलेस्सा एगिंदिया पण्णत्ता,
२. भेदो चउक्कओ जहा कण्हलेस्सएगिंदियसए जाव वणस्सइकाइयत्ति । (श. ३४।५५)
३. कण्हलेस्सअपज्जत्तासुहुमपुढविक्काइए णं भंते ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पुरत्थिमिल्ले ?
४. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिउद्देसओ (३४।२-३२) जाव लोगचरिमंते त्ति ।
५. सव्वत्थ कण्हलेस्सु चेव उववाएयव्वो । (श. ३४।५६)

६. कहि णं भंते ! कण्हलेस्सअपज्जत्ताबादरपुढविक्काइयाणं ठाणा पण्णत्ता ?
७. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहिउद्देसओ (३४।३३-४१) जाव तुल्लट्ठिइय त्ति । (श. ३४।५७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३४।५८)
८. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव पढमं सेढिसयं (३४।४२-४९) तहेव एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा । (श. ३४।५९)

९. एवं नीललेस्सेहि वि सतं । काउलेस्सेहि वि सतं एवं चेव ।
१०. भवसिद्धियएगिंदिएहिं सतं । (श. ३४।६०)

११. कइविहा णं भंते ! कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पण्णत्ता ? जहेव ओहिउद्देसओ (३४।१-४१) (श. ३४।६१)
१२. कइविहा णं भंते ! अणंतरोववन्ना कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पण्णत्ता ?
१३. जहेव अणंतरोववन्नाउद्देसओ ओहिओ (३४।४२-४९) तहेव । (श. ३४।६२)
१४ कइविहा णं भंते ! परंपरोववन्ना कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पण्णत्ता ?

---

*लय : वैरागे मन वाली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. जिन कहै पंच प्रकार ही, परंपरोत्पन्न पेख।
कृष्णलेशी भवसिद्धिया, एगिंदिया सुविशेख ।।

१६. ओघिक नीं पर एहनां, कहिवा जे चिहुं भेद।
जाव वनस्पतिकायिका, इहां लगै संवेद ।।

१७. परंपरोत्पन्नका प्रभु ! कृष्णलेशी ताय।
भवसिद्धिक अपर्याप्ता, सूक्ष्म पृथ्वीकाय ।।

१८. आ रत्नप्रभा पृथ्वी तणां, इत्यादिक अवधार।
इम इण अभिलापे करी, कहिवो सुविचार ।।

१९. जिमज ओघिक उद्देशको, आख्यो तिम कहिवाय।
जाव लोक चरिमंत त्ति, अर्थ इहां लग आय ।।

२०. सगलै ही कृष्णलेशी जिके, भवसिद्धिका विषेह।
उपजाविवो विध रीत सूं, पूर्वली पर जेह ।।

२१. प्रभु ! किहां परंपरोववन्नगा, कृष्णलेशी जान।
भवसिद्धिक पर्याप्तका, बादर पृथ्वी नां स्थान ?

२२. इम इण अभिलापे करी, जिमज ओघिक उद्देश।
जाव तुल्यस्थितिका लगै, कहिवो सर्व अशेष ।।

२३. इम इण अभिलापे करी, कृष्णलेशी जेह।
भवसिद्धिक एकेंद्रिया, एह विषे पिण लेह ।।

२४. तिमज इग्यार उद्देशका, संयुक्त शत जोय।
षष्ठम शत ए आखियो, सप्तम हिव अवलोय ।।

।।इति ३४।६।।

२५. नीललेशी भवसिद्धिया, एकेंद्रिय नें विषेह।
शतक सप्तमूं जाणवूं, अर्थ थकी कह्यूं एह ।।

२६. इम काउलेशी भवसिद्धिय, एकेंद्रिय संघात।
कहिवो शतकज आठमों, ए अष्टम शत ख्यात ।।

२७. जिम भवसिद्धिक संघात ही, भणिया शतक ए च्यार।
इम अभवसिद्धिक संघाते अपि,
भणिवा चिहुं शत धार ।।

२८. णवरं चरम अचरम ही, वर्जी विहुं आलाव।
कहिवा नव उद्देशका, शेष तिमज सहु भाव ।।

२९. एकेंद्रिय श्रेणि शत भला, इम ए आख्या बार।
सेवं भंते ! स्वामजी, यावत विचरै उदार ।।

इति एकेंद्रिय श्रेणि शतानि एतलै बारै अंतर शतक सहित चउतीसम शतक संपूर्ण ।।

।।इति ३४।।७-१२।।

३०. ढाल च्यारसौ ऊपरै, सखर नेऊमीं न्हाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष विशाल ।।

१५. गोयमा ! पंचविहा परंपरोववन्ना कण्हलेस्सा भवसिद्धिया एगिंदिया पण्णत्ता,

१६. भेदो चउक्कओ (३४।५१-५४) जाव वणस्सइकाइयत्ति। (श. ३४।६३)

१७. परंपरोववन्नाकण्हलेस्सभवसिद्धियअपज्जत्तासुहुमपुढविकाइए णं भंते !

१८. इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए ? एवं एएणं अभिलावेणं

१९. जहेव ओहिओ उद्देसओ (३४।५१) जाव लोयचरिमंते त्ति।

२०. सव्वत्थ कण्हलेस्सेसु भवसिद्धिएसु उववाएयव्वो। (श. ३४।६४)

२१. कहि णं भंते ! परंपरोववन्नाकण्हलेस्सभवसिद्धियपज्जत्ताबादरपुढविकाइयाणं ठाणा पण्णत्ता ?

२२. एवं एएणं अभिलावेणं जहेव ओहिओ उद्देसओ (३४।५२) जाव तुल्लट्ठिइयत्ति।

२३. एवं एएणं अभिलावेणं कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि।

२४. तहेव एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं छट्ठं सतं। (श. ३४।६५)

२५. नीललेस्सभवसिद्धियएगिंदिएसु सतं।

२६. एवं काउलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सतं।

२७. जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सयाणि एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि सयाणि भाणियव्वाणि,

२८. नवरं—चरिमअचरिमवज्जा नव उद्देसगा भाणियव्वा, सेसं तं चेव।

२९. एवं एयाइं बारस एगिंदियसेढीसताइं। (श. ३४।६६)

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ। (श. ३४।६७)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कलश-छंद

१. जसु वाणि दीपशिखा समो
चित भ्रान्ति ध्वान्त निवारणी,
गंभीर गृह सम ग्रन्थ अर्थ विषे प्रकाश विशारणी।
फुन बुद्धि बल करि देव गुरु प्रतिभा प्रभा दूरी हरी,
एहवा जु सुगुरु प्रताप थी वर जोड़ रचना शुभ करी ।।

१. यद्गीर्दीपशिखेव खण्डिततमा गम्भीरगेहोपम-
ग्रन्थार्थप्रचयप्रकाशनपरा सद्दृष्टिमोदावहा।
तेषां ज्ञप्तिविनिर्जितामरगुरुप्रज्ञाश्रियां श्रेयसां,
सूरीणामनुभावतः शतमिदं व्याख्यातमेवं मया ।।१।।
(वृ. प. ९६४)

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चत्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चत्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४९१

दूहा

१. चउतीसम एकेंद्रिया, श्रेणि प्रक्रम करेह ।
प्राये बहुलपणें करी, परूपिया छै एह ।।

२. पंचतीसमें तेहिज फुन, राशि प्रक्रम करेह ।
परूपियै ते सांभलो, आदि अर्थ तसु एह ।।

१. चतुस्त्रिशशते एकेन्द्रियाः श्रेणीप्रक्रमेण प्रायः प्ररूपिताः, (वृ. प. ९६४)

२. पञ्चत्रिंशे तु त एव राशिप्रक्रमेण प्ररूप्यन्ते इत्येवंसम्बन्धस्यास्य द्वादशावान्तरशतस्येदमादिसूत्रम्— (वृ. प. ९६४)

महायुग्म के प्रकार

३. हे भगवंतजी ! केतला, महायुग्म आख्यात ?
जिन भाखै सोलै कह्या, महायुग्म अवदात ।।

४. इहां युग्म शब्दे करी, राशि युग्म कहिवाय ।
ते फुन क्षुलका पिण हुवै, पूर्व कह्यं छै ताय ।।

५ ए कारण थी तेहनों, व्यवच्छेदन नें काज ।
एह विशेषण आखियो, महायुग्म ए साज ।।

६. मोटा फुन ते युग्म छै, महायुग्म ते जान ।
एह विशेषण आखियो, ते षोडश अभिधान ।।

७. *महायुग्म सोलै कह्या, धुर कडजुम्मकडजुम्मे,
कांइ कडजुम्मतेओगे हो लाल ।
कडयुग्मद्वापरयुग्म ही, वली चतुर्थो कहियै,
कांइ कडजुम्म नें कलिओगे हो लाल ।।

३. कइ णं भंते ! महाजुम्मा पण्णत्ता ?
गोयमा ! सोलस महाजुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—

४. इह युग्मशब्देन राशिविशेषा उच्यन्ते ते च क्षुल्लका अपि भवन्ति यथा प्राक् प्ररूपिताः (वृ. प. ९६५)

५. अतस्तद्व्यवच्छेदाय विशेषणमुच्यते (वृ. प. ९६५)

६. महान्ति च तानि युग्मानि च महायुग्मानि, (वृ. प. ९६५)

७. १. कडजुम्मकडजुम्मे, २. कडजुम्मतेओगे, ३. कडजुम्मदावरजुम्मे, ४. कडजुम्मकलियोगे,

हिवै कडजुम्म-कडजुम्मे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि सामयिक चतुष्क ते च्यार द्रव्य अपहारे करी अपहरतां थकां च्यार छेहड़ै हुवै अनैं तेह राशि नां अपहार समय नैं पिण चतुष्क ते च्यार अपहारे करी चतुःपर्यवसित हीज हुवै एह राशि कृतयुग्म-कृतयुग्म इसो कहियै । एतलै द्रव्य अपहार नीं अपेक्षाये चोकड़ा थावै । तथा समय पिण चतुष्क अपहरतां पिण चोकड़ा थावै एतलै द्रव्य पिण कृतयुग्म, समया पिण कृतयुग्म । ते भणी कडजुम्म-कडजुम्म कहियै । ते निश्चय जघन्य थी सोलै रूप हुवै । ए सोलै मांहै समय-समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहार थकी चतुरग्रपणां थकी छेहड़ै च्यार हुवै । तेहनां भाव थकी अनैं समय नैं पिण चतुर संख्यपणां थकी कडजुम्म-कडजुम्म कहियै । (१)

वा०—'कडजुम्मकड जुम्मे' त्ति यो राशिः सामयिकेन चतुष्कापहारेणापह्रियमाणश्चतुष्पर्यवसितो भवति अपहारसमया अपि चतुष्कापहारेण चतुष्पर्यवसिता एव असौ राशिः कृतयुग्मकृतयुग्म इत्यभिधीयते, अपह्रियमाणद्रव्यापेक्षया तत्समयापेक्षया चेति द्विधा कृतयुग्मत्वात्, एवमन्यत्रापि शब्दार्थो योजनीयः, स च किल जघन्यतः षोडशात्मकः, एषां हि चतुष्कापहारतश्चतुरग्रत्वात्, समयानां च चतुःसङ्ख्यत्वादिति १,

हिवै कडजुम्म-तेओगे नों अर्थ कहै छै—

कडजुम्मतेउयत्ति जेह राशि प्रतिसमये च्यार-च्यार अपहारे करी अपहरतां

'कडजुम्मतेओए' त्ति, यो राशिः प्रतिसमयं चतुष्कापहारेणापह्रिमाणस्त्रिपर्यवसानो भवति

---

*लय : पातक छानो नहीं रहे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थकां तीन छेहड़ै हुवै। तेहनां समया च्यार शेषहीज एह अपहरतां थकां नी अपेक्षाये त्र्योज। अपहार समय नीं अपेक्षाये तो कृतयुग्म हीज इति कृतयुग्म-त्र्योज कहियै। तेह जघन्य थकी उगणीस। तिहां च्यार नैं अपहारै तीन रहै, तेहनां समय च्यारहीज। इमहिज राशि भेद नां सूत्र तेह विवरण सूत्र थकी जाणवो।

इहां सगलेई अपहार समय नीं अपेक्षाये आद्य पद जाणवो। अनैं अपह्रियमाण द्रव्य अपेक्षा तो बीजो पद इति। (२)

हिवै कडजुम्म-दावरजुम्मे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै दोय द्रव्य हुवै ए द्वापरयुग्म। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै च्यार समय हुवै ए समय कृतयुग्म हीज इति ए कृतयुग्म-द्वापरयुग्म कहियै। ते जघन्य थकी अठारै। ते अठारै द्रव्य नैं समय-समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरवै शेष २ हुवै। तेहनां समय च्यार हीज। इहां अपहार समया च्यार छै ते भणी समया नैं कृतयुग्म कहियै। अनैं राशि नां द्रव्य नैं च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै बे द्रव्य रह्या ते भणी ए राशि नैं द्वापरयुग्म कहियै। ते माटै एहनं नाम कृत-युग्म-द्वापरयुग्म छै। (३)

हिवै कडजुम्म-कलिओगे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै एक द्रव्य हुवै ए कलिओग। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै च्यार समय हुवै ए समय कृतयुग्म हीज इति ए कृतयुग्म-कलिओग कहियै। तेह जघन्य थकी सतरै। ते सतरै द्रव्य नैं समय-समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरै छेहड़ै १ हुवै। तेहनां समय च्यार हीज। इहां अपहार समया च्यार छै ते भणी समया नैं कृतयुग्म कहियै। अनैं राशि नां द्रव्य नैं च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै एक द्रव्य रह्यो ते भणी ए राशि नैं कलियोग कहियै। ते माटै एहनुं नाम कृत-युग्म-कलिओग छै। (४) ए कडजुम्म समय पदे करी ४ रूप कह्या।

हिवै तेओग समये पदे करी ४ रूप कहै छै—

८. तेओगकडजुम्मे कह्या, वलि तेओगतेओगे
छठो रूपज जाणी हो लाल।
तेओगद्वापरयुग्म ही, वलि त्र्योजकलियोग
कांइ रूप आठमों माणी हो लाल।।

हिवै तेओग-कडजुम्म नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै च्यार द्रव्य हुवै ए राशि कडजुम्म। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै तीन समय हुवै ए समय तेयोग हीज इति ए तेओग-कडजुम्म कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी बारै। ते बारै द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार द्रव्य अपहरै, द्वितीय समय च्यार द्रव्य अपहरै, तृतीय समय च्यार द्रव्य अपहरै—ए अपहार समया तीन तेहनैं तेओग कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थकी बारै। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै च्यार द्रव्य रहै ते माटै द्रव्य नीं राशि नैं कडजुम्म कहियै। ते माटै एहनुं नाम तेओग-कडजुम्म छै। (५)

हिवै तेओग-तेओग नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै तीन द्रव्य

तत्समयाश्चतुष्पर्यवसिता एवासावपह्रियमाणापेक्षया त्र्योजः, अपहारसमयापेक्षया तु कृतयुग्म एवेति कृतयुग्मत्र्योज इत्युच्यते, तच्च जघन्यत एकोनविंशतिः, तत्र हि चतुष्कापहारे त्रयोऽवशिष्यन्ते तत्समयाश्चत्वार एवेति २,

एवं राशिभेदसूत्राणि तद्विवरणसूत्रेभ्योऽवसेयानि इह च सर्वत्राप्यपहारकसमयापेक्षं, माद्यं पदं अपह्रियमाणद्रव्यापेक्षं तु द्वितीयमिति,

(वृ. ९६५,९६६)

वा०—कृतयुग्मद्वापरे राशावष्टादशादयः,

(वृ. प. ९६६)

वा०—कृतयुग्मकल्योजे सप्तदशादयः

(वृ. प. ९६६)

८. ५. तेओगकडजुम्मे, ६. तेओगतेओगे, ७. तेओग-दावरजुम्मे, ८. तेओगकलिओगे,

वा०—त्र्योजःकृतयुग्मे द्वादशादयः, एषां हि चतुष्कापहारे चतुरग्रत्वात्तत्समयानां च त्रित्वादिति,

वा०—त्र्योजत्र्योजराशौ तु पञ्चदशादयः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुवै ए राशि तेओग। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै तीन समय हुवै ए समय तेओग हीज इति ए तेओग-तेओग कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी पनरै। ते पनरै द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार द्रव्य अपहरै, द्वितीय समय च्यार द्रव्य अपहरै, तृतीय समय च्यार द्रव्य अपहरै, ए अपहार समया तीन तेहनैं तेओग कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थकी पनरै। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै तीन द्रव्य हुवै तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं तेओग कहियै। ते माटै एहनुं नाम तेओग-तेओग छै। (६)

हिव तेओगदावरजुम्मे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै दोय द्रव्य हुवै ए राशि दावरजुम्म। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै तीन समय हुवै ए समय तेओग हीज इति ए तेओगदावरजुम्म कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी चवदै। ते चवदै द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार द्रव्य अपहरै, द्वितीय समय च्यार द्रव्य अपहरै, तृतीय समय च्यार द्रव्य अपहरै—ए अपहार समया तीन, तेहनैं तेओग कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थकी चवदै। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै दोय द्रव्य हुवै तिणसूं द्रव्य नी राशि नैं दावरजुम्म कहियै। ते माटै एहनुं नाम तेओग-दावरजुम्म छै। (७)

वा०—त्र्योजद्वापरे तु चतुर्दशादयः

हिवै तेओगकलियोगे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै १ द्रव्य हुवै ए राशि कलिओग। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै तीन समय हुवै ए समय तेओग हीज इति ए तेओग-कलिओग कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी तेरै। ते तेरै द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार अपहरै, द्वितीय समय च्यार अपहरै, तृतीय समय च्यार अपहरै—ए अपहार समया तीन, तेहनैं तेओग कहियै। अन्य द्रव्य जघन्य थकी १३। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै एक द्रव्य हुवै तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं कलिओग कहियै। ते माटै एहनुं नाम तेओग-कलियोग छै। (८)

वा०—त्र्योजकल्योजे त्रयोदशादयः
(वृ. प. ९६६)

९. द्वापरयुग्मकडजुम्म ही, द्वापरयुग्मतेओगे
कांइ दशम रूप अवलोई हो लाल।
द्वापरयुग्मद्वापरयुग्म ही, दावरजुम्मकलिओगे
ए रूप बारमो जोई हो लाल॥

९. ९. दावरजुम्मकडजुम्मे, १०. दावरजुम्मतेओगे, ११. दावरजुम्मदावरजुम्मे, १२. दावरजुम्म-कलियोगे,

हिवै द्वापरयुग्म समय पदे करी ४ रूप कहै छै दावरजुम्म-कडजुम्मे नों अर्थ—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै च्यार द्रव्य हुवै ए राशि कडजुम्म। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै २ समय हुवै ए समय द्वापरयुग्म हीज इति ए द्वापरयुग्म-कडजुम्म कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी ८। ते ८ द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार द्रव्य अपहरै, द्वितीय समय च्यार द्रव्य अपहरै—ए अपहार समया दो, तेहनैं द्वापरयुग्म कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थकी ८। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै च्यार द्रव्य हुवै तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं कडजुम्म कहियै ते माटै एहनुं नाम द्वापरयुग्मकडजुम्म छै। (९)

वा०—द्वापरकृतयुग्मेऽष्टादयः (वृ. प. ९६६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिवै द्वापरयुग्म-तेओगे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै तीन द्रव्य हुवै, ए राशि तेओग। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै २ समय हुवै, ए समय द्वापरयुग्म हीज इति ए द्वापरयुग्म-तेओग कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी ११। ते ११ द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार द्रव्य अपहरै, द्वितीय समय च्यार द्रव्य अपहरै—ए अपहार समया २, तेहनैं दावरजुम्म कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थकी ११। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै तीन द्रव्य हुवै तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं तेओग कहियै। ते माटै एहनुं नाम द्वापरयुग्म-तेओग छै। (१०)

वा०—द्वापरत्र्योजराशावेकादशादयः (वृ. प. ९६६)

हिवै दावरजुम्म-दावरजुम्मे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै २ द्रव्य हुवै, ए राशि दावरजुम्म। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै २ समय हुवै, ए समय द्वापरयुग्म हीज इति ए द्वापरयुग्म-द्वापरयुग्म कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थकी १०। ते १० द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार द्रव्य अपहरै, द्वितीय समय च्यार द्रव्य अपहरै—ए अपहार समया २, तेहनैं द्वापरयुग्म कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थकी १०। तेहनैं च्यार-च्यार अपहरवै छेहड़ै २ द्रव्य हुवै, तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं दावरजुम्म कहियै। ते माटै एहनुं नाम द्वापरयुग्म-द्वापरयुग्म छै। (११)

वा०—द्वापरद्वापरे दशादयः (वृ. प. ९६६)

हिवै दावरजुम्म-कलिओगे नों अर्थ—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै १ द्रव्य हुवै, ए राशि कलिओग। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै २ समथ हुवै, ए समय द्वापरयुग्म हीज इति ए द्वापरयुग्म-कलिओग कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थी ९। ते ९ द्रव्य नैं प्रथम समय च्यार अपहरै, द्वितीय समय च्यार अपहरै—ए अपहार समया २, तेहनैं द्वापरयुग्म कहियै। अनैं द्रव्य जघन्य थी ९। तेहनैं च्यार-च्यार द्रव्य अपहरवै छेहड़ै १ द्रव्य हुवै, तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं कलिओग कहियै। ते माटै एहनुं नाम द्वापरयुग्म-कलिओग छै। (१२)

वा०—द्वापरकल्योजे नवादयः (वृ. प. ९६६)

१०. कलिओगकडजुम्म तेरमों, फुन कलिओगतेओग
कांइ बोल चवदमों कहियै हो लाल।
कलिओगद्वापरयुग्म ही, वलि कलियोगकल्योजे
ए रूप सोलमों लहियै हो लाल॥

१०. १३. कलिओगकडजुम्मे, १४. कलियोगतेओगे,
१५. कलियोगदावरजुम्मे, १६. कलियोगकलिओगे।
(श. ३५।१)

हिवै कलिओग-कडजुम्मे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नै समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै ४ द्रव्य हुवै, ए राशि कडजुम्म अनैं। अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै १ समय हुवै, ए समय कलिओग हीज इति ए कलिओग-कडजुम्म कहियै। तेह द्रव्य जघन्य थी ४। ते ४ द्रव्य नै १ समय में अपहरियै ते अपहार समयो १ माटै ते समय नैं कलिओग कहियै। अनैं द्रव्य ४ छै तिणसूं ते ४ द्रव्य नैं कडजुम्म कहियै। ते माटै एहनुं नाम कलिओग-कडजुम्म छै। (१३)

वा०—कल्योजकृतयुग्मे चतुरादयः (वृ. प. ९६६)

हिवै कलिओग-तेओगे नों अर्थ कहै छै—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै तीन द्रव्य हुवै ते राशि नैं तेओग कहियै। अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां

वा०—कल्योजत्र्योजराशौ सप्तादयः (वृ. प. ९६६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छेहड़ै १ समय हुवै, ए समय कलिओग हीज इति ए कलिओग-तेओग कहियै । ते द्रव्य जघन्य थी ७ । ते ७ द्रव्य नैं एक समय में च्यार अपहरियै ते अपहार समयो १ माटै ते समय नैं कलिओग कहियै । अनैं द्रव्य जघन्य थी ७ । तेहनैं एक समय में च्यार अपहरतां छेहड़ै तीन द्रव्य हुवै, तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं तेओग कहियै । ते माटै एहनुं नाम कलिओग-तेओग छै । (१४)

हिवै कलिओग दावरजुम्मे नों अर्थ—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै दो द्रव्य हुवै, ए राशि दावरजुम्म । अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै एक समय हुवै, ए समय कलिओग हीज इति ए कलिओग-द्वापरयुग्म कहियै । ते द्रव्य जघन्य थी ६ । ते ६ द्रव्य नैं एक समय में च्यार अपहरतां ते अपहार समयो एक माटै, ते समय नैं कलिओग कहियै । अनैं द्रव्य जघन्य थी ६ । तेहनैं एक समय में च्यार अपहरतां छेहड़ै दो द्रव्य हुवै, तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं दावरजुम्म कहियै । ते माटै एहनुं नाम कलिओग-दावरजुम्म छै । (१५)

वा०—कल्योजद्वापरे षडादयः (वृ. प. ९६६)

हिवै कलिओग-कलिओगे नों अर्थ—

जे राशि नैं समय-समय प्रति च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छेहड़ै एक द्रव्य हुवै, ए राशि कलिओग । अनैं अपहार समय नैं पिण च्यार-च्यार अपहरतां छेहड़ै एक समय हुवै, ए समय कलिओग हीज इति ए कलिओग-कलिओग कहियै । ते द्रव्य जघन्य थी ५ । ते ५ द्रव्य तेहनैं एक समय में च्यार अपहरतां एक समय माटै कलियोग कहियै । अनैं द्रव्य जघन्य थी ५ । तेहनैं एक समय में च्यार अपहरतां छेहड़ै एक द्रव्य हुवै, तिणसूं द्रव्य नीं राशि नैं कलिओग कहियै । ते माटै एहनुं नाम कलिओग-कलिओग छै । (१६)

वा०—कल्योजकल्योजे तु पञ्चादय इति । (वृ. प. ९६६)

ए सोलै रूप नैं विषे जघन्य द्रव्य नां उदाहरण कह्या ।

हिवै मध्यम द्रव्य नां उदाहरण कहै छै—

बत्तीस द्रव्य नैं कडजुम्म-कडजुम्म कहियै, ते किम ? बत्तीस द्रव्य नैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां आठ समया लागै । ते आठ समय नां दो चोकड़ा में छेहड़ै च्यार माटै ए समय नैं प्रथम पद कडजुम्म कहियै । अनैं बत्तीस द्रव्य नां आठ चोकड़ा हुवै । तिणमें छेहड़ै च्यार द्रव्य माटै ए द्रव्य द्वितीय पदे कडजुम्म कहियै । इम आठ अपहार समया पिण कडजुम्म अनैं बत्तीस द्रव्य पिण कडजुम्म, ते भणी ए प्रथम रूप कडजुम्म-कडजुम्म हुवै । (१)

अनैं कडजुम्म-तेओग नैं विषे ३५ द्रव्य ते किम ? ३५ द्रव्य नैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां आठ समया लागै । ते आठ समय नां दोय चोकड़ा में छेहड़ै च्यार माटै प्रथम पद कडजुम्म कहियै । अनैं ३५ द्रव्य नां आठ चोकड़ा हुवै । छेहड़ै तीन द्रव्य रहै तिणसूं ए राशि नैं द्वितीय पदे तेओग कहियै । ते माटै ए द्वितीय रूप कडजुम्म-तेओग हुवै । (२)

अनैं कडजुम्म-द्वापरयुग्म नैं विषे ३४ द्रव्य हुवै, ते किम ? ३४ द्रव्य नैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां आठ समया लागै । ए अपहार आठ समय नां दो चोकड़ा में छेहड़ै च्यार माटै प्रथम पद कडजुम्म कहियै । अनैं ३४ द्रव्य नां ८ चोकड़ा हुवै, छेहड़ै दो द्रव्य रहै । तिणसूं ए राशि नैं द्वितीय पदे द्वापरयुग्म कहियै । ते माटै तृतीय रूप कडजुम्म-द्वापरयुग्म हुवै । (३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनं कडजुम्म-कलियोग नैं विषे ३३ द्रव्य हुवै, ते किम ? ३३ द्रव्य नैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां आठ समया लागै। ए आठ समय नां दोय चोकड़ा में छेहड़ै च्यार माटै प्रथम पद कडजुम्म कहियै। अनैं तेतीस द्रव्य नां आठ चोकड़ा हुवै। छेहड़ै एक द्रव्य रहै, तिणसूं ते द्रव्य नैं द्वितीय पदे कलियोग कहियै। ते माटै ए चतुर्थो रूप कडजुम्म-कलिओग हुवै। (४)

तेओग-कडजुम्म नैं विषे अठावीस द्रव्य हुवै। तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां सात समया लागै। ए अपहार सात समय नों एक चोकड़ो। छेहड़ै तीन समय माटै ए समय नैं प्रथम पदे तेओग कहियै। अनैं २८ द्रव्य नां सात चोकड़ा में छेहड़ै च्यार द्रव्य हुवै। ते भणी ए राशि नैं द्वितीय पदे कडजुम्म कहियै। तिणसूं ए तेओग-कडजुम्म पांचमो रूप जाणवो। (५)

तेयोग-तेयोग नैं विषे ३१ द्रव्य हुवै। तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां सात समया लगै। ए अपहार सात समय नों एक चोकड़ा में छेहड़ै तीन समय माटै ए समय नैं प्रथम पद तेओग कहियै। अनैं ३१ द्रव्य नां पिण सात चोकड़ा हुवै। छेहड़ै तीन रहै ते भणी ए द्रव्य नी राशि नैं द्वितीय पदे तेओग कहियै। तिणसूं ए तेओग-तेओग छठो रूप जाणवो। (६)

अनैं तेओग-द्वापरयुग्म नैं विषे ३० द्रव्य हुवै। तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां सात समया लागै। ए अपहार सात समय नां एक चोकड़ा में छेहड़ै तीन समय माटै ए समय नैं प्रथम पद तेओग कहियै। अनैं ३० द्रव्य नां पिण सात चोकड़ा हुवै छेहड़ै दो रहै ते भणी ए द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे द्वापरयुग्म कहियै। तिणसूं ए तेओग-द्वापरयुग्म सातमो रूप जाणवो। (७)

अनैं तेओग-कलिओग नैं विषे २९ द्रव्य हुवै, तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां सात समया लागै। ए अपहार सात समय नों एक चोकड़ो। छेहड़ै तीन समय माटै ए समय प्रथम पद तेयोग कहियै। अनैं २९ द्रव्य नां सात चोकड़ा हुवै, छेहड़ै एक द्रव्य रहै। ते भणी द्रव्य नी राशि नैं द्वितीय पदे कलिओग कहियै। तिणसूं तेयोग-कलिओग आठमो रूप जाणवो। (८)

द्वापरयुग्म-कडजुम्म नैं विषे २४ द्रव्य हुवै। तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छह समया लागै। ए अपहार छह समय नों एक चोकड़ो। छेहड़ै दोय समय माटै ए समय नैं प्रथम पद द्वापरयुग्म कहियै। अनैं २४ द्रव्य नां छह चोकड़ा हुवै, छेहड़ै च्यार द्रव्य माटै ए द्रव्य नीं राशि नैं ए द्वितीय पद कडजुम्म कहियै। तिणसूं द्वापरयुग्म-कडजुम्म ए नवमो रूप जाणवो। (९)

अनैं द्वापरजुम्म-तेओग नैं विषे २७ द्रव्य हुवै। तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छह समया लागै। ए अपहार छह समय नों एक चोकड़ो। छेहड़ै दो समय माटै ए समय नैं प्रथम पद द्वापरयुग्म कहियै। अनैं २७ द्रव्य नां छह चोकड़ा हुवै, छेहड़ै तीन द्रव्य माटै द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे तेओग कहियै। तिणसूं द्वापरयुग्म-तेओग ए दशमो रूप जाणवो। (१०)

अनैं द्वापरयुग्म-द्वापरयुग्म नैं विषे २६ द्रव्य हुवै। तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छह समया लागै। ए अपहार छह समय नों एक चोकड़ो। छेहड़ै दो समय माटै ते समय नैं प्रथम पद द्वापरयुग्म कहियै। अनैं २६ द्रव्य नां छह चोकड़ा हुवै। छेहड़ै दोय द्रव्य माटै ए द्रव्य नीं राशि नैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय पदे द्वापरयुग्म कहियै । तिणसूं ए इग्यारमो रूप द्वापरयुग्म-द्वापरयुग्म जाणवो । (११)

अनैं द्वापरयुग्म-कलिओग नैं विषे २५ द्रव्य हुवै । तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां छह समया लागै । ए अपहार छह समय नों एक चोकड़ो । छेहड़ै दो समया माटै ते समय नैं प्रथम पद द्वापरयुग्म कहियै । अनैं २५ द्रव्य नां छह चोकड़ा हुवै । छेहड़ै एक द्रव्य माटै ए द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे कलियोग कहियै । तिणसूं ए बारमो रूप द्वापरयुग्म-कलियोग जाणवो । (१२)

अनैं कलियोग-कडजुम्म विषे २० द्रव्य हुवै । तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां पांच समया लागै । ए अपहार समय नों एक चोकड़ो । छेहड़ै एक समय माटै ते समय नैं प्रथम पद कलिओग कहियै । अनैं २० द्रव्य नां पांच चोकड़ा में छेहड़ै च्यार द्रव्य माटै ए द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे कडजुम्म कहियै । तिणसूं ए तेरमो रूप कलिओग-कडजुम्म जाणवो । (१३)

अनैं कलिओग-तेओग नैं विषे २३ द्रव्य हुवै । तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां पांच समया लागै । छेहड़ै एक समय माटै ए अपहार समय नों एक चोकड़ो । छेहड़ै एक समय माटै ते समय नैं प्रथम पद कलिओग कहियै । अनैं २३ द्रव्य नां पांच चोकड़ा हुवै । छेहड़ै तीन द्रव्य माटै ते द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे तेओग कहियै । तिणसूं ए चवदमो रूप कलियोग-तेयोग जाणवो । (१४)

अनैं कलियोग-द्वापरयुग्म नैं विषे २२ द्रव्य हुवै । तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां पांच समया लागै । पांच समय नों एक चोकड़ो । छेहड़ै एक समय माटै ते समय नैं प्रथम पद कलिओग कहियै । अनैं २२ द्रव्य नां पांच चोकड़ा हुवै । छेहड़ै बे द्रव्य माटै ते द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे द्वापरयुग्म कहियै । तिणसूं ए पनरमो रूप कलियोग-द्वापरयुग्म जाणवो । (१५)

अनैं कलियोग-कलियोग नैं विषे २१ द्रव्य हुवै । तेहनैं इक-इक समय च्यार-च्यार द्रव्य अपहरतां पांच समया लागै । ते पांच समय नों एक चोकड़ो । छेहड़ै एक समय माटै ते समय नैं प्रथम पद कलिओग-कलिओग कहियै । अनैं २१ द्रव्य नां पांच चोकड़ा हुवै । छेहड़ै एक द्रव्य माटै ते द्रव्य नीं राशि नैं द्वितीय पदे कलिओग कहियै । तिणसूं ए सोलमो रूप कलियोग-कलियोग जाणवो । (१६)

इम आगल पिण कहिवो तेहनीं आमना यंत्र थकी जाणवी—

१. समय १२	समय १६	समय २०	समय २४	
४८	६४	८०	९६	कडजुम्म-कडजुम्म
२. समय १२	समय १६	समय २०	समय २४	
५१	६७	८३	९९	कडजुम्म-तेओग
३. समय १२	समय १६	समय २०	समय २४	
५०	६६	८२	९८	कडजुम्म-द्वापरयुग्म
४. समय १२	समय १६	समय २०	समय २४	
४९	६५	८१	९७	कडजुम्म-कलिओग
५ समय ११	समय १५	समय १९	समय २३	
४४	६०	७६	९२	तेयोग-कडजुम्म

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

६.	समय ११	समय १५	समय १९	समय २३
	४७	६३	७९	९५ तेयोग-तेयोग
७.	समय ११	समय १५	समय १९	समय २३
	४६	६२	७८	९४ तेयोग-द्वापरयुग्म
८.	समय ११	समय १५	समय १९	समय २३
	४५	६१	७७	९३ तेयोग-कलिओग
९.	समय १०	समय १४	समय १८	समय २२
	४०	५६	७२	८८ द्वापरयुग्म-कडजुम्म
१०.	समय १०	समय १४	समय १८	समय २२
	४३	५९	७५	९१ द्वापरयुग्म तेओग
११.	समय १०	समय १४	समय १८	समय२२
	४२	५८	७४	९० द्वापरयुग्म-द्वापरयुग्म
१२.	समय १०	समय १४	समय १८	समय २२
	४१	५७	७३	८९ द्वापरयुग्म-कलियोग
१३.	समय ९	समय १३	समय १७	समय २१
	३६	५२	६८	८४ कलियोग-कडजुम्म
१४.	समय ९	समय १३	समय १७	समय २१
	३९	५५	७१	८७ कलियोग-तेओग
१५.	समय ९	समय १३	समय १७	समय २१
	३८	५४	७०	८६ कलियोग-द्वापरयुग्म
१६.	समय ९	समय १३	समय १७	समय २१
	३७	५३	६९	८५ कलियोग-कलियोग

११. किण अर्थे प्रभु ! इम कह्यं, सोलस जे महाजुम्मा
कांइ आप परूप्या स्वामी हो लाल ।
कडजुम्म-कडजुम्मे प्रथम यावत ही कलियोगे
कांइ भाखो अंतरजामी हो लाल ?

१२. जिन कहै जेह राशि प्रतै चिहुं अपहार करीनें
कांइ अपहरतां थकां अवगम्म हो लाल ।
च्यार छेहड़ै हुवै जेहनें वलि ते राशि तणां जे
अपहार समय पिण कडजुम्म हो लाल ।।
से तं कडजुम्म-कडजुम्मे ।।१।।

१३. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै तीन सुजाणी हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां, कडजुम्म ह्वै तसु कहियै
कडजुम्म-त्र्योज पिछाणी हो लाल ।।
से तं कडजुम्म-तेओगे ।।२।।

१४. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
छेहड़ै दोय सुगम्मं हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां, कडजुम्म ह्वै तसु कहियै
कडजुम्म-दावरजुम्मं हो लाल ।।
से तं कडजुम्म-दावरजुम्मे ।।३।।

११. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सोलस महाजुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मकडजुम्मे जाव कलियोग-कलियोगे ?

१२. गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया ते वि कडजुम्मा, सेत्तं कडजुम्म-कडजुम्मे १ ।

१३. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, सेत्तं कडजुम्मतेयोए २ ।

१४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, सेत्तं कडजुम्मदावरजुम्मे ३ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१५. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
काइं छेहड़ै एक सुयोगे हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां कडजुम्म ह्वै तसु कहियै
कांइ कडजुम्म नें कलियोगे हो लाल ।।
से तं कडजुम्म-कलिओगे ।।४।।

१५. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एग-पज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कडजुम्मा, सेत्तं कडजुम्मकलियोगे ४ ।

१६. जे राशि प्रति चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै च्यार सुहोई हो ।
अपहार समय ते राशि नां तीन हुवै तसु कहियै
कांइ तेओग-कडजुम्म जोई हो लाल ।।
से तं तेओग-कडजुम्मे ।।५।।

१६. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउ-पज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेयोगा, सेत्तं तेओगकडजुम्मे ५ ।

१७. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै तीन सुधारी हो लाल ।
अपहार समय पिण राशि नां, तीन हुवै तसु कहियै
कांइ तेओग-त्र्योज विचारी हो लाल ।।
से तं तेओग-तेओगे ।।६।।

१७. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेओगा, सेत्तं तेओगतेओगे ६ ।

१८. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै दोय विमासं हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां, तीन हुवै तसु कहियै
कांइ त्र्योज-दावरजुम्म तासं हो लाल ।।
से तं तेओग-दावरजुम्मे ।।७।।

१८. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दोपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेयोगा, सेत्तं तेओगदावरजुम्मे ७ ।

१९. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै एक प्रकाशं हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां, तीन हुवै तसु कहियै
त्र्योज-कल्योज विमासं हो लाल ।।
से तं तेओगे-कलिओगे ।।८।।

१९. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया तेओगा, सेत्तं तेओगकलियोगे ८ ।

२०. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै च्यार सुगम्मे हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां, दोय हुवै तसु कहियै
दावरजुम्म-कडजुम्मे हो लाल ।।
से तं दावरजुम्म-कडजुम्मे ।।९।।

२०. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, सेत्तं दावरजुम्मकडजुम्मे ९ ।

२१. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करी अपहरतां
छेहड़ै तीन सुयोगे हो लाल ।
अपहार समय ते राशि नां, दोय हुवै तसु कहियै
दावरजुम्म-तेयोगे हो लाल ।।
से तं दावरजुम्म-तेओगे ।।१०।।

२१. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, सेत्तं दावरजुम्मतेयोए १० ।

२२. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै दोय सुगम्मं हो लाल ।
अपहार समय पिण राशि नां, दोय हुवै तसु कहियै
कांइ दावरजुम्म-द्वापरजुम्मं हो लाल ।।
से तं दावरजुम्म-दावरजुम्मे ।।११।।

२२. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, सेत्तं दावरजुम्मदावरजुम्मे ११ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
काइ छेहड़ै एक प्रयोगे हो लाल।
अपहार समय ते राशि नां, दोय हुवै तसु कहियै
काइ दावरजुम्म-कलिओगे हो लाल।।
से तं दावरजुम्म-कलिओगे ।।१२।।

२३. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया दावरजुम्मा, सेत्तं दावरजुम्मकलियोए १२।

२४. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै च्यार सुगम्मे हो।
अपहार समय ते राशि नां, एक हुवै तसु कहियै
कांइ कलियोगे-कडजुम्मे हो लाल।।
से तं कलिओग-कडजुम्मे ।।१३।।

२४. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, सेत्तं कलिओगकडजुम्मे १३।

२५. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै तीन सुयोगे हो लाल।
अपहार समय ते राशि नां, एक हुवै तसु कहियै
कांइ कलिओगे-तेओगे हो लाल।।
से तं कलिओग-तेओगे ।।१४।।

२५. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे तिपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, सेत्तं कलियोगतेयोए १४।

२६. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
छेहड़ै दोय सुगम्मं हो लाल।
अपहार समय ते राशि नां, एक हुवै तसु कहियै
कांइ कलिओग-द्वापरजुम्मं हो लाल।।
से तं कलिओग-दावरजुम्मे ।।१५।।

२६. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे दुपज्जवसिए, जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, सेत्तं कलियोगदावरजुम्मे १५।

२७. जे राशि प्रतै चउक्के करी, अपहारे करि अपहरतां
कांइ छेहड़ै एक सुयोगे हो लाल।
अपहार समय पिण राशि नां, एक हुवै तसु कहियै
कांइ कलिओग-कलिओगे हो लाल।।
से तं कलिओग-कलिओगे ।।१६।।

२७. जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे एगपज्जवसिए जे णं तस्स रासिस्स अवहारसमया कलियोगा, सेत्तं कलियोगकलिओगे १६।

२८. तिण अर्थे करि गोयमा ! यावत ही कलियोगज-
कलिओग लगै कहिवाई हो लाल।
हिव एकेंद्रिय आश्री पूछै गोयम गणधर
कांइ सांभलजो चित ल्याई हो लाल।।

२८. से तेणट्ठेणं जाव कलिओगकलिओगे।
(श. ३५।२)

(क) एकेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

२९. कडजुम्म-कडजुम्म एकेंद्रिया, प्रभु ! किहां थकी ऊपजै छै
स्यूं नारकी थी आख्यातं हो लाल ?
जिम उत्पल उद्देशके ग्यारम प्रथम उद्देशे
कांइ आख्यूं तिम उपपातं हो लाल।।

२९. कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति—किं नेरइएहिंतो ? जहा उप्पलुद्देसए (११।२) तहा उववाओ। (श. ३५।३)

३०. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ा एक समय करि कितरा,
कांइ ऊपजै छै ते प्राणी हो लाल ?
जिन भाखै सोलै तथा कांइ संख तथा असंख्याता,
वा अनंत ऊपजै आणी हो लाल।।

३०. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?
गोयमा ! सोलस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति। (श. ३५।४)

३१. हे भगवंत ! ते जीवड़ा समय-समय अपहरतां,
कांइ कितै काल अपहरियै हो लाल ?
एह प्रशन पूछ्यां छतां जिन भाखै सुण गोयम !
तसु उत्तर इम उच्चरियै हो लाल।।

३१. ते णं भंते ! जीवा समए समए—पुच्छा।
गोयमा !

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३२. तेह अनंता जीवड़ा समय-समय अपहरतां,
काइ अपहरतांज कहाई हो लाल ।
अनंत अव-उत्सर्प्पिणी लगै अपहरियै तो निश्चै,
कांइ अपहरिया नहिं जाई हो लाल ।।

वा०—जहा उप्पलुद्देसए त्ति—उत्पल उद्देशके एकादशमशतके प्रथमउद्देशके जिम कह्यो तिम कहिवूं । वलि इहां किहांइक जे पद नैं विषे उत्पल उद्देशक थकी अतिदेश कीजियै तेहीज जाणवो ।

३२. ते णं अणंता समए समए अवहीरमाणा-अवहीरमाणा अणंताहिं ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीहिं अवहरंति, णो चेव णं अवहिया सिया ।

वा०—'जहा उप्पलुद्देसए' त्ति उत्पलोद्देशकः—एकादशशते प्रथमः, इह च यत्र क्वचित्पदे उत्पलोद्देशकातिदेशः क्रियते तत्तत एवावधार्यं, (वृ. प. ९६७)

३३. ऊंचपणों जिम ग्यारमा शतक तणों जे जाणी,
कांइ उत्पल प्रथम उद्देशं हो लाल ।
तेह विषे जे दाखियो तिमज इहां पिण कहिवूं,
कांइ वारू रीत अशेषं हो लाल ।।

३३. उच्चत्तं जहा उप्पलुद्देसए । (श. ३५।५)

३४. हे भगवंत ! ते जोवड़ा ज्ञानावरणी कर्म नां स्यूं,
तेह बंधगा थाई हो लाल ।
अथवा तेह अबंधगा ? जिन कहै तेह,
बंधगा पिण अबंधगा छै नांही हो लाल ।।

३४. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स कम्मस्स किं बंधगा ? अबंधगा ?
गोयमा ! बंधगा, नो अबंधगा ।

३५. इम सहु कर्म आयु वर्जी आयु तणां बंधगा,
ते बंधकाल में कहियै हो लाल ।
अथवा तेह अबंधगा बंधकाल विण तेहिज,
कांइ अबंधगा जे लहियै हो लाल ।।

३५. एवं सव्वेसिं आउयवज्जाणं । आउयस्स बंधगा वा अबंधगा वा । (श. ३५।६)

३६. हे प्रभुजी ! ते जीवड़ा ज्ञानावरणी केरा,
कांइ वेदक प्रमुखज भणियै हो लाल ?
जिन कहै गोयम ! वेदगा पिण अवेदगा ते नहीं छै,
इम सर्व कर्म नैं थुणियै हो लाल ।।

३६. ते णं भंते ! जीवा नाणावरणिज्जस्स—पुच्छा ।
गोयमा ! वेदगा, नो अवेदगा । एवं सव्वेसिं ।
(श. ३५।७)

३७. हे भगवंत ! ते जीवड़ा स्यूं सातावेदक छै,
दुःख असाता वेदे हो लाल ?
जिन कहै सातावेदगा तथा असाता वेदै,
इम कहियै ते बिहुं भेदे हो लाल ।।

३७. ते णं भंते ! जीवा किं सातावेदगा ? असातावेदगा ?
गोयमा ! सातावेदगा वा असातावेदगा वा ।

३८. इम निश्चै उत्पल उद्देशक तणी अनुक्रमे परिपाटी,
कांइ कहिवी सर्व पिछाणी हो लाल ।
सर्व कर्म नों उदय छै पिण अणउदय नहीं छै,
एकेंद्रिय माटै जाणी हो लाल ।।

३८. एवं उप्पलुद्देसगपरिवाडी । सव्वेसिं कम्माणं उदई, नो अणुदई ।

३९. कर्म छहूं नां उदीरगा कडजुम्म-कडजुम्म एकेंद्रिय,
अणउदीरक नांही हो लाल ।
वेदनी आयु बे कर्म नां हुवै उदीरक अथवा,
अणउदीरगा पिण थाई हो लाल ।।

३९. छण्हं कम्माणं उदीरगा, नो अणुदीरगा । वेदणिज्जाउयाणं उदीरगा वा अणुदीरगा वा ।
(श. ३५।८)

४०. हे भगवंत ! ते जीवड़ा कृष्णलेशी स्यूं कहियै ?
इत्यादिक प्रश्न उच्चरियै हो लाल ।
जिन कहै कृष्णलेशी तथा नील तथा कापोतज,
तेजुलेशी कहियै हो लाल ।।

४०. ते णं भंते ! जीवा किं कण्हलेस्सा—पुच्छा ।
गोयमा ! कण्हलेस्सा वा, नीललेस्सा वा, काउलेस्सा वा, तेउलेस्सा वा ।

४१. समदृष्टि पिण ते नहीं मिश्रदृष्टि पिण नाहीं,
कांइ मिथ्यादृष्टि कहियै हो लाल ।
ज्ञानी नहीं अज्ञानी हुवै निश्चै दोय अज्ञानी,
मति श्रुत अज्ञानज लहियै हो लाल ।।

४१. नो सम्मदिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी ।
नो नाणी, अण्णाणी—नियमं दुअण्णाणी, तं जहा—मइअण्णाणी य सुयअण्णाणी य ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. मनजोगी पिण ते नहीं वचनजोगी पिण नांही,
इक कायजोगी कहिवाई हो लाल ।
सागरोवउत्ता ह्वै तथा अनाकार-उपयुक्तज ते,
जीव एकेंद्रिय थाई हो लाल ।।

४३. हे प्रभुजी ! ते जीव नां शरीर केतलै वर्णे ?
कांइ जिम उत्पल-उद्देशे हो लाल ।
शत ग्यारम उद्देशके आख्यो तिमहिज कहिवूं,
सहु स्थाने प्रश्न अशेषे हो लाल ।।

४४. जिन भाखै सुण गोयमा ! जिम उत्पल-उद्देशे,
कांइ आख्यो तिम वर्णादि हो लाल ।
उस्सासवंत वा निःस्वासगा अथवा नहीं उस्सासज,
कांइ नहिं निःस्वास संवादि हो लाल ।।

४५. आहारक वा अनाहारका विरती तेह नहीं छै,
कांइ जेह अविरती जाणी हो लाल ।
विरताविरति नहीं तथा क्रिया-सहित कहीजै,
पिण क्रिया-रहित न ठाणी हो लाल ।।

४६. आयु वर्जी सप्तविध-बंधगा तथा अष्टविध-बंधक,
ते आयु-बंध नें कालं हो लाल ।
आहारसन्नावउत्ता तथा जाव परिग्रहसंज्ञा-
उपयुक्त वीर वच न्हालं हो लाल ।।

४७. क्रोधकषाई ते हुवै यावत लोभकषाई,
कांइ इत्थि वेद न पावै हो लाल ।
पुरुषवेदगा पिण नथी हुवै नपुंसवेदगा,
श्री जिनवर इम फुरमावै हो लाल ।।

४८. इत्थिवेद-बंधका तथा पुरिस-वेदगा बांधै,
वा वेद नपुंस-बंधगा हो लाल ।
सन्नी नहीं असन्नी अछै तेह सइंदिया कहियै,
कांइ अणिंदिया न संधगा हो लाल ।।

४९. कडजुम्म-कडजुम्म एगिंदिया हे प्रभु ! काल थकी जे,
कांइ कितो काल ते होई हो लाल ?
जिन भाखै सुण गोयमा ! जघन्य थकी तसु अद्धा,
कांइ एक समय अवलोई हो लाल ।।

५०. उत्कृष्ट काल अनंत ही जेह अनंती कहियै,
कांइ अवसर्प्पिणी लग लहियै हो लाल ।
अनंती वली उत्सर्प्पिणी वनस्पति नों अद्धा,
कांइ काल एतलो रहियै हो लाल ।।

५१. संवेध तसु भणवो नथी जे उत्पल-उद्देशे,
उत्पल नें संवेध आख्यो हो लाल ।
ते संवेध इहां नथी तास न्याय वृत्तिकारे,
कांइ वृत्ति विषे इम दाख्यो हो लाल ।।

४२. नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी । सागारोव-उत्ता वा, अणागारोवउत्ता वा । (श. ५३।९)

४३. तेसि णं भंते ! जीवाणं सरीरगा कतिवण्णा ? जहां उप्पलुद्देसए (११।१७-२८) सव्वत्थ—पुच्छा ।

४४. गोयमा ! जहा उप्पलुद्देसए ऊसासगा वा, नीसासगा वा, नो उस्सासनीसासगा वा ।

४५. आहारगा वा अणाहारगा वा । नो विरया, अविरया, नो विरयारया । सकिरिया, नो अकिरिया ।

४६. सत्तविहबंधगा वा अट्ठविहबंधगा वा । आहारसण्णो-वउत्ता वा जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता वा ।

४७. कोहकसायी वा जाव लोभकसायी वा । नो इत्थि-वेदगा, नो पुरिसवेदगा, नपुंसगवेदगा ।

४८. इत्थिवेदबंधगा वा पुरिसवेदबंधगा वा नपुंसगवेद-बंधगा वा । नो सण्णी, असण्णी । सइंदिया, नो अणिंदिया । (श. ३५।१०)

४९. ते णं भंते ! कडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया कालओ केव-च्चिरं होंति ?
गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं,

५०. उक्कोसेणं अणंतं कालं—अणंता ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ, वणस्सइकाइयकालो ।

५१. संवेहो न भण्णइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वा०—संवेहो न भण्णति इति । संवेध न भणवो उत्पल उद्देशक नैं विषे उत्पल जीव नों उत्पाद विचारचो । वली तेहनैं विषे पृथ्वीकायादि अन्य काय नों अपेक्षा करिकै संवेध संभवै । अनैं इहां एकेंद्रिय नैं कडजुम्म-कडजुम्म विशेषण नैं उत्पाद अधिकार वली ते परमार्थ थी अनंताहीज ऊपजै वली ते अनंता नीकलवा नां असंभव थकी संवेध न संभवै । अनैं जे सोलस बत्तीसादि एकेंद्रिय नैं विषे उत्पाद कह्यो ए त्रसकाय थकी जे तेहनैं विषे ऊपजै तेहनों अपेक्षा करिकै हीज इति वलि नहीं पारमार्थिक, अनंता नों समय-समय तेहनैं विषे उत्पाद थकी ।

वा०—'संवेहो न भन्नइ' त्ति, उत्पलोद्देशके (११।२९) उत्पलजीवस्योत्पादो विवक्षितस्तत्र च पृथिवीकायिकादिकायान्तरापेक्षया संवेधः संभवति इह त्वेकेन्द्रियाणां कृतयुग्मकृतयुग्मविशेषणानामुत्पादोऽधिकृतस्ते च वस्तुतोऽनन्ता एवोत्पद्यन्ते तेषां चोद्वृत्तेरसम्भवात्संवेधो न संभवति, यश्च षोडशादीनामेकेन्द्रियेषूत्पादोऽभिहितोऽसौ त्रसकायिकेभ्यो ये तेषूत्पद्यन्ते तदपेक्ष एव न पुनः पारमार्थिकः, अनन्तानां प्रतिसमयं तेषूत्पादादिति ।
(वृ. प. ९६७)

५२. आहार उत्पल-उद्देशके आख्यो छै जिम कहिवो,
कांइ णवरं इतो विशेखज हो लाल ।
निरव्याघात करी इहां षट दिशि तणोंज कहिवो,
ए लोक मध्य संपेखज हो लाल ।।

५२. आहारो जहा उप्पलुद्देसए (११।३५) नवरं—निव्वाघाएणं छद्दिसिं,

५३. व्याघात आश्रयी नैं वलि कदाचित त्रिण दिशि नों,
कांइ आहार पूर्ववत लेही हो लाल ।
कदाचित चिहुं दिशि तणों कदाचित पंच दिशि नों,
कांइ शेष तिमज कहिवेही हो लाल ।।

५३. वाघायं पडुच्च सिय तिदिसिं, सिय चउदिसिं, सिय पंचदिसिं, सेसं तहेव ।

५४. स्थिति जघन्य इक समय नीं उत्कृष्ट सहस्र बावीसज,
कांइ वर्ष तणीं ए आखी हो लाल ।
समुद्घात चिहुं आदि नीं तेजस आहारक केवल,
कांइ ए तीनूं नहीं दाखी हो लाल ।।

५४. ठिती जहण्णेणं अंतोमुहुत्तं, उक्कोसेणं बावीसं वाससहस्साइं । समुग्घाया आदिल्ला चत्तारि ।

५५. मारणांतिक समुद्घाते करी समोहया पिण मरणे,
कांइ तेह मरै छै जीवा हो लाल ।
असमोहया पिण ते मरै उद्वर्त्तन जिम उत्पल-
उद्देशे जेम कहीवा हो लाल ।।

५५. मारणंतियसमुग्घातेणं समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति । उव्वट्टणा जहा उप्पलुद्देसए (११।३९) । (श. ३५।११)

५६. अथ सहु प्राणा हे प्रभु ! यावत सगला सत्वा,
कडजुम्म-कृतयुग्म तिवारै हो लाल ।
एकेंद्रियपणैं पूर्व ऊपनां ? हंता गोयम ! बहुवारे,
अथवाज अनंती वारे हो लाल ।।

५६. अह भंते ! सव्वपाणा जाव सव्वसत्ता कडजुम्मकडजुम्मएगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?
हंता गोयमा ! असइं अदुवा अणंतखुत्तो ।
(श. ३५।१२)

५७. कडजुम्म-तेओग एकेंदिया हे भगवंत ! किहां थी,
कांइ उपजै छै ते प्राणो हो लाल ।
ऊपजवो उपपात ते तिमहिज सगलो कहिवो,
कांइ पूर्ववत पहिछाणी हो लाल ।।

५७. कडजुम्मतेओयएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? उववाओ तहेव (३५।३) । (श. ३५।१३)

५८. प्रभु ! एक समय किता ऊपजै ? जिन कहै एगुणवीसा,
कांइ संख असंख अनंता हो लाल ।
शेष कडजुम्म-कडजुम्म जिम जाव अनंती वारे,
कांइ ऊपनों पूर्व मंता हो लाल ।।

५८. ते णं भंते ! जीवा एगसमए—पुच्छा ।
गोयमा ! एकूणवीसा वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति, सेसं जहा कडजुम्मकडजुम्माणं जाव अणंतखुत्तो । (श. ३५।१४)

५९. कडजुम्म-दावरजुम्म एगिंदिया हे भगवंत ! किहां थी,
कांइ उपजै छै ते आणी हो लाल ?
उपपात जिम पूर्वे कह्यूं तिमहिज सगलो कहिवो,
कांइ विधि सेती सहु जाणी हो लाल ।।

५९. कडजुम्मदावरजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? उववाओ तहेव । (श. ३५।१५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. इक समय प्रभु ! ते किता ऊपजै ? जिन भाखै अष्टादश,
वा संख असंख अनंता हो लाल ।
शेष तिमज कहिवो सहु जाव अनंती वारज,
कांइ पूर्व उप्पन्न भ्रंता हो लाल ।।

६०. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं—पुच्छा ।
गोयमा ! अट्ठारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति, सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो।
(श. ३५।१६)

६१. कडजुम्म-कल्योज एगिंदिया प्रभु ! किहां थकी उपजै छै ?
इत्यादिक प्रश्न संपेखो हो लाल ।
उपपात जिम पूर्वे कह्यूं तिमहिज सगलो कहिवो,
कांइ विधि सेती सुविशेखो हो लाल ।।

६१. कडजुम्मकलियोगएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? उववाओ तहेव ।

६२. परिमाण तसु इम जाणवूं सतरै वा संख्याता,
अथवाज असंख अनंता हो लाल ।
शेष तिमज कहिवो सहु जाव अनंती वारज,
पूर्व काले उपजंता हो लाल ।।

६२. परिमाणं सत्तरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो ।
(श. ३५।१७)

६३. तेओग-कडजुम्म एगिंदिया प्रभु ! किहां थकी ऊपजै छै ?
इत्यादिक प्रश्न विचारो हो लाल ।
उपपात जिम पूर्वे कह्यूं तिमहिज सगलो कहिवो,
कांइ विधि सेती अवधारो हो लाल ।।

६३. तेयोगकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति उववाओ तहेव ।

६४. तास परिमाणज इह विधे द्वादश वा संख्याता,
अथवाज असंख अनंता हो लाल ।
शेष तिमज कहिवो सहु जाव अनंती वारज,
पूर्व काले उपजंता हो लाल ।।

६४. परिमाणं बारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति, सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो ।
(श. ३५।१८)

६५. तेओग-त्र्योज एगिंदिया प्रभु ! किहां थकी ऊपजै छै ?
इत्यादिक प्रश्न पूछंता हो लाल ।
उपपात जिम पूर्वे कह्यूं तिमहिज सगलो कहिवूं,
कांइ विध सेती बुद्धिवंता हो लाल ।।

६५. तेयोयतेयोयएगिंदिया णं भंते ! कओहिंतो उववज्जंति ? उववाओ तहेव ।

६६. तास परिमाणज इह विधे पनर तथा संख्याता,
अथवाज असंख अनंता हो लाल ।
शेष तिमज कहिवो सहु जाव अनंती वारज,
पूर्व काले उपजंता हो लाल ।।

६६. परिमाणं पन्नरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा, सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो ।

६७. इम निश्चै सोले महाजुम्म विषे एक गमो जाणेवो,
णवरं परिमाण मझारी हो लाल ।
नानापणुं कहिवूं अछै आगल ते कहियै छै,
कांइ सांभलजो नर नारी हो लाल ।।

६७. एवं एएसु सोलससु महाजुम्मेसु एक्को गमओ, नवरं—परिमाणे नाणत्तं—

६८. तेओग-दावरजुम्म विषे परिमाणं चउदश वा,
कांइ संख्याता जे जीवा हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
कांइ सप्तम जुम्मे अतीवा हो लाल ।।

६८. तेयोयदावरजुम्मेसु परिमाणं चोद्दस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

६९. तेओग-कलिओग नें विषे परिमाणं तेरस वा,
कांइ संख्याता जे प्राणी हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
अष्टम जुम्मे बखाणी हो लाल ।।

६९. तेयोगकलियोगेसु तेरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७०. दावरजुम्म-कडजुम्म विषे परिमाणं अठ अथवा,
कांइ संख्याता सुविचारी हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
कांइ नवम जुम्मे दिलधारी हो लाल ।।

७०. दावरजुम्मकडजुम्मेसु अट्ठ वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

७१. दावरजुम्म-त्र्योज नैं विषे परिमाणं एकादश,
अथवा संख्याता कहियै हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
कांइ दशम जुम्मे इम लहियै हो लाल ।।

७१. दावरजुम्मतेयोगेसु एक्कारस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

७२. दावरजुम्म-दावरजुम्म विषे परिमाणं दश अथवा,
कांइ संख्याता अवलोई हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
एकादशम जुम्मे जोई हो लाल ।।

७२. दावरजुम्मदावरजुम्मेसु दस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

७३. दावरजुम्मकलिओग में परिमाणं नव अथवा,
कांइ संख्याता कहिवाई हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
कांइ द्वादशमा जुम्म मांही हो लाल ।।

७३. दावरजुम्मकलियोगेसु नव वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

७४. कलिओग-कडजुम्म नैं विषे परिमाणं चिहुं अथवा,
कांइ संख्याता सुविचारी हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
कांइ तेरसमें जुम्म धारी हो लाल ।।

७४. कलियोगकडजुम्मे चत्तारि वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

७५. कलियोग-त्र्योज विषे वली परिमाणं सत्त अथवा,
कांइ संख्याता पहिछाणी हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
कांइ जुम्म चउदशमें जाणी हो लाल ।।

७५. कलियोगतेयोगेसु सत्त वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति ।

७६. कलिओग-दावरजुम्म विषे परिमाणं षट अथवा,
कांइ संख्याता ते सलहियै हो लाल ।
अथवा असंख्याता ऊपजै तथा अनंता उपजै,
पनरसमें जुम्म कहियै हो लाल ।।

७६. कलियोगदावरजुम्मेसु छ वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति । (श. ३५।१९)

७७. कलिओग-कल्योज एगिंदिया हे भगवंत ! किहां थी,
कांइ उपजै छै ते जीवा हो लाल ।
उपपात जिम पूर्वे कह्यो तिमहिज सगलो कहिवो,
कांइ वर जिन वचन सदीवा हो लाल ।।

७७. कलियोगकलियोगएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? उववाओ तहेव ।

७८. परिमाणं तेहनुं इहविधे पंच तथा संख्याता,
अथवाज असंख अनंता हो लाल ।
शेष तिमज कहिवो सहु जाव अनंती वारे,
कांइ उपनों भ्रमण करंता हो लाल ।।

७८. परिमाणं पंच वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो ।
(श. ३५।२०)

७९. सेवं भंते ! स्वामजी शत पणतीसम केरो,
कांइ प्रथम उद्देशक वारू हो लाल ।
ढाल च्यार सौ एकाणुमी कही भिक्षु भारीमाल ऋषिराय,
कांइ 'जय-जश' संपति चारू हो लाल ।।

७९. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।२१)

।।इति ३५।१।१।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४९२

(ख) एकेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

दूहा

१. द्वितीय उद्देशक हिव कहै, प्रथम समय भगवंत !
कडजुम्म-कडजुम्म एकेंद्रिया, किहां थकी ऊपजंत ?

वा०—एकेंद्रियपणैं करी उत्पत्ति नैं विषे पहिलो समय छै जेहनैं ते प्रथम समय, तेहीज कृतयुग्म-कृतयुग्म ते प्रथम समय कृतयुग्म-कृतयुग्म, एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इति प्रश्न ।

१. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'पढमसमयकडजुम्म-कडजुम्मएगिंदिय' त्ति, एकेन्द्रियत्वेनोत्पत्तौ प्रथमः समयो येषां ते तथा ते च ते कृतयुग्मकृतयुग्माश्चेति प्रथमसमयकृतयुग्मकृत-युग्मास्ते च ते एकेन्द्रियाश्चेति समासोऽतस्ते ।
(वृ, प. ९६८)

२. जिन भाखै तिमहीज जे, इम जिमहीज विचार ।
प्रथम उद्देशक नैं विषे, आख्या अर्थ उदार ।।
३. तिमहिज सोलै वार जे, कहिवूं द्वितीय उद्देश ।
तिमज सहु पूर्वोक्त जे, सोल राशि करि एस ।।
४. णवरं ए दश णाणत्ता, अवगाहना सुमाग ।
जघन्योत्कृष्ट आंगुल तणों, असंख्यातमें भाग ।।

वा०—ते उद्देशक नैं विषे बादर वनस्पति नीं अपेक्षा अवगाहना मोटी कही । अनैं इहां प्रथम समय उत्पन्नपणैं करी अवगाहना अल्प कही, ए नाना-पणों । इम अन्य पिण स्व बुद्धि करी विचारी कहिवूं १ ।

२. गोयमा ! तहेव, एवं जहेव पढमो उद्देसओ (३५।३-२०)
३. तहेव सोलसखुत्तो बितिओ भाणियव्वो, तहेव सव्वं,
४. नवरं—इमाणि दस नाणत्ताणि—१. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेण वि अंगुलस्स असंखेज्जइभागं ।

वा०—तत्रावगाहनाद्योद्देशके बादरवनस्पत्यपेक्षया महत्युक्ताऽभूत् इह तु प्रथमसमयोत्पन्नत्वेन साऽल्पेति नानात्वम्, एवमन्यान्यपि स्वधियोह्यानीति ।
(वृ. प. ९६८)

५. प्रथम समय छै ते भणी, आयु कर्म नां जाण ।
तेह बंधगा छै नथी, अबंधगा पहिछाण ।।
६. आयु कर्म तणां जिके, उदीरगा छै नांहि ।
अनुदीरका छै तिके, तृतीय णाणत्तो ताहि ।।
७. नहीं उस्सासका जिके, नहिं निःस्वासजवंत ।
उस्सास-निःसासगा नहिं, तुर्य णाणत्ते मंत ।।
८. आयु वर्जी सप्त-विध-बंधग ते कहिवाय ।
अष्ट कर्म नां बंधगा, तेह नहीं छै ताय ।।
९. हे भगवंत ! प्रथम समय, कडजुम्म-कडजुम्म सोय ।
एकेंद्रियाज काल थी, काल केतलो होय ?
१०. जिन भाखै सुण गोयमा ! एक समय संपेख ।
स्थिति विषे पिण इमज ही, कहिवो समयो एक ।।
११. समुद्घात बे आदि नां, समोहया सुविचार ।
तेह प्रतै नहिं पूछवा, असंभव थी अवधार ।।
१२. उद्वर्त्तना न पूछवा, प्रथम समय रै मांय ।
नीकलवो नहिं ते भणी, उद्वर्त्तन नहिं थाय ।।

५. २. आउयकम्मस्स नो बंधगा, अबंधगा ।
६. ३. आउयस्स नो उदीरगा, अणुदीरगा ।
७. ४. नो उस्सासगा, नो निस्सासगा, नो उस्सास-निस्सासगा ।
८. ५. सत्तविहबंधगा, नो अट्ठविहबंधगा ।
(श. ३५।२२)
९. ते णं भंते ! पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदियत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?
१०. गोयमा ! ६. एक्कं समयं । ७. एवं ठिती वि ।
११. ८. समुग्घाया आदिल्ला दोन्नि । ९. समोहया न पुच्छिज्जंति ।
१२. १०. उव्वट्टणा न पुच्छिज्जइ,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. शेष तिमज कहिवो सहु, विशेष रहित विचार।
सोलै ही गमक विषे, जाव अनंती वार ।।
१४. सेवं भंते ! स्वाम जी, शत पणतीसम पेख।
द्वितीय उद्देशक अर्थ ए, दाख्या जिन वच देख ।।
।।इति ३५।१।२।।

१३. सेसं तहेव सव्वं निरवसेसं सोलससु वि गमएसु जाव अणंतखुत्तो। (श. ३५।२३)
१४. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३५।२४)

*सूरीजन सांभलियै महाजुम्मा ।। (ध्रुपदं)
१५. अप्रथम समय कडजुम्म-
कडजुम्मज एगिंदिया भगवंत !
किहां थकी उपजै छै आवी ?
इम पूछै गुणवंत रे ।।

वा०—इहां अप्रथम कहितां प्रथम समय वर्जं नैं समय जेहनैं एकेंद्रियपणैं ऊपनां नैं दोय आदि समय तेहीज कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इत्यादि।

१५. अपढमसमयकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'अपढमसमयकडजुम्म-कडजुम्मएगिंदिय' त्ति, इहाप्रथमः समयो येषामेकेन्द्रियत्वेनोत्पन्नानां द्व्यादयः समयाः, (वृ. प. ९६८)

१६. जिन कहै ए सामान्य करी नैं, एकेंद्रिय आख्यात।
प्रथम उद्देशे सोलै महाजुम्मा,
तिमहिज कहिवो विख्यात रे ।।
१७. जाव कलियोग-कलियोग लगै, जे जाव अनंती वार।
ऊपनों सेवं भंते ! स्वामी, ए तृतीय उद्देश उदार रे ।।
।।३५।१।३।।

१६. एसो जहा पढमुद्देसो सोलसहि वि जुम्मेसु तहेव नेयव्वो
१७. जाव कलियोगकलियोगत्ताए जाव अणंतखुत्तो। (श. ३५।२५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३५।२६)

१८. चरम समय कडजुम्म-कडजुम्मज, एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी उपजै छै आवी ? गोयम प्रश्न सुतंत रे ।।

वा०—इहां चरम समय शब्दे करी एकेंद्रिय नैं मरण समय विचारचो। तेह परभव नां आउखा थकी पहिला हीज समय नैं विषे वर्त्तमान ते चरम समय संख्याये करी। एतलै चरिम समय ते मरिवा नुं समय वांछचो। ते मरण समय माटै परभव नुं प्रथम समय जाणवूं। कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ?

१८. चरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'चरमसमयकडजुम्म-कडजुम्मएगिंदिय' त्ति, इह चरमसमयशब्देनैकेन्द्रियाणां मरणसमयो विवक्षितः स च परभवायुषः प्रथमसमय एव तत्र च वर्त्तमानाश्चरमसमयाः सङ्ख्यया च कृतयुग्मकृतयुग्मा ये एकेन्द्रियास्ते तथा (वृ. प. ९६९)

१९. इम जिम प्रथम समय एकेंद्रिय उद्देशक आख्यात।
तिम चरम समय एकेंद्रियोद्देशक,
कहिवो ए अवदात ।।

वा०—तिहां ओघिक उद्देशक अपेक्षाये दस नानात्व कह्या। इहां पिण तेह तिमज कहिवा प्रथम समय अनैं चरम समय नैं समान स्वरूपपणां थकी।

१९. एवं जहेव पढमसमयउद्देसओ,

वा०—तत्र हि औघिकोद्देशकापेक्षया दश नानात्वान्युक्तानि इहापि तानि तथैव समानस्वरूपत्वात्, (वृ. प. ९६९)

२०. णवरं देवा ऊपजै नांही, चरम समय एकेंद्रिय मांय।
तेजोलेश्या न संभवै ते माटै,
तेजोलेशी एकेंद्रिय न पूछाय ।।
२१. शेष तिमज कहिवो सगलोही, सेवं भंते ! स्वाम।
पणतीसम शत तुर्य उद्देशक, अर्थ अनोपम आम ।।
।।३५।१।४।।

२०. नवरं—देवा न उववज्जंति, तेउलेस्सा न पुच्छिज्जंति,
२१. सेसं तहेव। (श. ३५।२७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३५।२८)

---

*लय : आधाकर्मी थानक मांहि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२२. अचरम समय कडजुम्म-कडजुम्म, एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुवृतंत ।।

वा०—अचरम कहितां नहीं छै चरम समय उत्तर लक्षण जेहनैं ते अचरम एतलै भव नां छेहला समय विना जे समया ते अचरिम समया इहां वांछ्या। तेहिज कृतयुग्म-कृतयुग्म संख्या विशेष एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इत्यादि ।

२२. अचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'अचरमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति न विद्यते चरमसमय उक्तलक्षणो येषां तेऽचरम-समयास्ते च ते कृतयुग्मकृतयुग्मैकेन्द्रियाश्चेति समासः।
(वृ. प. ९६९)

२३. जिम अपढम उद्देशके आख्यो,
विशेष रहित तिम कहिवो ।
सेवं भंते ! पंचमुद्देशक, अर्थ अनोपम लहिवो ।।

वा०—अप्रथम समय उद्देशो ते तीजा उद्देशा नों नाम छै। तीजा उद्देशा नैं पहिला ओघ उद्देशा नीं भलावण छै ते माटै पहिलो ओघ उद्देशो, तीजो अनैं पांचमो—ए तीनूं उद्देशा एक सरीखा छै। ते भणी ए तीनूं नैं विषे १० णाणत्ता नथी ।

२३. जहा अपढमसमयउद्देसो तहेव निरवसेसो भाणितव्वो।
(श. ३५।२९)

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।३०)

।।३५।१।५।।

२४. प्रथम समय कडजुम्म-कडजुम्म, एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? जिन भाखै सुण संत ।।

वा०—पढम-पढम समय कहितां एकेंद्रिय उत्पाद नैं विषे प्रथम समय जोग थकी प्रथम। वली प्रथम समय कृतयुग्म-कृतयुग्मत्व अनुभूति जे एकेंद्रिय नैं ते प्रथम-प्रथम समय कृतयुग्म एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इत्यादि ।

२४. पढमपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'पढमपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति, एकेन्द्रियोत्पादस्य प्रथमसमययोगाद्ये प्रथमाः प्रथमश्च समयः कृतयुग्मकृतयुग्मत्वानुभूतेर्येषामेकेन्द्रि-याणां ते प्रथमप्रथमसमयकृतयुग्मकृतयुग्मैकेन्द्रियाः।
(वृ. प. ९६९)

२५. जिम प्रथम समय उद्देशके आख्यो,
कहिवो तिमज विशेष रहीत ।
सेवं भंते ! यावत विचरै, षष्ठमुद्देश संगीत ।।

।।३५।१।६।।

२५. जहा पढमसमयउद्देसओ तहेव निरवसेसं।
(श. ३५।३१)

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श. ३५।३२)

२६. पढम-अपढम समय कडजुम्म-
कडजुम्म एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? उत्तर दै अरिहंत ।।

वा०—पढम कहितां एकेंद्रिय उत्पाद नैं प्रथम समय जोग थकी प्रथम कहियै वली जे अपढम कहितां अप्रथम समय कृतयुग्म-कृतयुग्मत्व अनुभूति जेह एकेंद्रिय नैं ते प्रथम-अप्रथम समय कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिया कहिवा। इहां एकेंद्रियपणैं उत्पाद प्रथम समयवर्त्तीपणां नैं विषे जेहनैं जेह विवक्षित संख्यानुभूति नैं अप्रथम समयवर्त्तीपणुं तेह प्राग्भव संबंधी नां तेह प्रतै आश्रयी जाणवो। एतलै एकेंद्रिय उत्पाद नैं प्रथम समयवर्त्तीपणैं छते ते एकेंद्रिय नैं जे कृतयुग्म-कृतयुग्म रूप संख्यानुभूति नों अप्रथम समयवर्त्तीपणों ते प्रथम-अप्रथम समय एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इत्यादि ।

२६. पढमअपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'पढमअपढमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति, प्रथमास्तथैव येऽप्रथमश्च समयः कृतयुग्मकृत-युग्मत्वानुभूतेर्येषामेकेन्द्रियाणां ते प्रथमाप्रथमसमय-कृतयुग्मकृतयुग्मैकेन्द्रियाः, इह चैकेन्द्रियत्वोत्पादप्रथम-समयवर्त्तित्वे तेषां यद्विवक्षितसङ्ख्यानुभूतेरप्रथमसमय वर्त्तित्वं तत्प्राग्भवसम्बन्धिनीं तामाश्रित्येत्यवसेयम्,
(वृ. प. ९६९)

२७. जिम प्रथम समय उद्देशके आख्यो,
तिमहिज कहिवो ताम ।
सेवं भंते ! अर्थ अनोपम, सप्तमुद्देशक आम ।।

।।३५।१।७।।

२७. जहा पढमसमयउद्देसो तहेव भाणियव्वो।
(श. ३५।३३)

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।३४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२८. प्रथम चरिम समय कडजुम्म-
कडजुम्म एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? जिन भाखै सुण संत ।।

वा०—पढम चरिम समय कहितां प्रथम ते विवक्षित संख्यानुभूति नैं प्रथम समयवर्त्तीपणां थकी अनैं चरम समया ते मरण समयवर्त्ती परिशाटस्था। एतलै कृतयुग्मादि संख्या विशेष नों तो प्रथम समय अनैं एकेंद्रिय नां भव नुं चरिम समय। इहां चरिम शब्दे मरण समय वांछ्यूं ते माटै परभव नां आउखा नूं ए प्रथम समय जाणवूं। इति प्रथम चरम समया तेहिज कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ?

२९. चरम उद्देश विषे जिम आख्यो,
तिमहिज विशेष रहीतं ।
कहिवो सेवं भंते ! स्वामी, अष्टमुद्देश प्रतीतं ।।
।।३५।१।८।।

३०. पढम अचरिम समय कडजम्म-
कडजुम्म एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? स्वाम कहै सुण संत ।।

वा०—प्रथम अचरिम समय कहितां प्रथम तिमहिज अचरिम समय तो एकेंद्रिय उत्पाद अपेक्षाये प्रथम समयवर्त्ती इहां विवक्षित चरमत्व निषेध नैं ते प्रथम समयवर्त्ती नैं विषे विद्यमानपणां थकी। एतलै इहां अचरिम शब्दे एकेंद्रिय ऊपजवा नों प्रथम समय वांछ्यो ते एक नैं चरमपणों न हुवै ते भणी प्रथम समय नैं अचरिम समय कह्यूं। अनैं इहां अचरिम शब्दे छेहला समय विना अन्य सर्व समय नैं अचरिम कहै तो बीजे उद्देशे अवगाहनादिक १० णाणत्ता कह्या। तेहनैं समपणुं कह्युं ते न हुव ते भणी। अचरिम समय शब्दे इहां प्रथम एक समय जाणवूं। ते प्रथम अचरिम समय कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंदिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ?

३१. प्रथम उद्देश विषे जिम आख्यो, तिमज विशेष रहीत।
सेवं भंते ! यावत विचरै, नवम उद्देश वदीत ।।
।।३५।१।९।।

३२. चरिम-चरिम समय कडजुम्म-
कडजुम्म एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? जिन भाखै सुण संत ।।

वा०—चरिम-चरिम समय कहितां चरिम ते विवक्षित संख्यानुभूति नैं चरम समयवर्त्तीपणां थकी। अनैं चरम समय ते पूर्वोक्त स्वरूप ते परभव नुं चरम समयवर्त्ती इति। चरम-चरम समय कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इत्यादि।

३३. चोथे उद्देश विषे जिम आख्यो, तिमहिज कहिवो एह।
सेवं भंते ! अर्थ अनोपम, दशम उद्देशक लेह ।।
।।३५।१।१०।।

२८. पढमचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'पढमचरमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति, प्रथमाश्च ते विवक्षितसङ्ख्यानुभूतेः प्रथमसमयवर्त्तित्वात् चरमसमयाश्च—मरणसमयवर्त्तिनः परिशाटस्था इति प्रथमचरमसमयास्ते च ते कृतयुग्मकृतयुग्मैकेन्द्रियाश्चेति विग्रहः। (वृ. प. ९६९)

२९. जहा चरिमुद्देसओ तहेव निरवसेसं। (श. ३५।३५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३५।३६)

३०. पढमअचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'पढमअचरमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति, प्रथमास्तथैव अचरमसमयास्त्वेकेन्द्रियोत्पादापेक्षया प्रथमसमयवर्तिन इह विवक्षिताश्चरमत्वनिषेधस्य तेषु विद्यमानत्वात्, अन्यथा हि द्वितीयोद्देशकोक्तानामवगाहनादीनां यदिह समत्वमुक्तं तन्न स्यात् (वृ. प. ९६९)

३१. जहा बीओ उद्देसओ[1] तहेव निरवसेसं। (श. ३५।३७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ।
(श. ३५।३८)

३२. चरिमचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'चरमचरमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति, चरमाश्च ते विवक्षितसङ्ख्यानुभूतेश्चरमसमयवर्त्तित्वात् चरमसमयाश्च प्रागुक्तस्वरूपा इति चरमचरमसमयाः शेषं प्राग्वत् (वृ. प. ९६९)

३३. जहा चउत्थो उद्देसओ तहेव निरवसेसं। (श. ३५।३९)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३५।४०)

१. जोड़ में 'प्रथम उद्देशक विषे जिम आख्यो' के सामने जहा बीओ उद्देसओ पाठ की संगति नहीं बैठती। पर अंगसुत्ताणि में 'पढम उद्देसओ' पाठान्तर में रखा है। इसलिए यहां मूल का पाठ लिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. चरिम-अचरिम समय कडजुम्म-
कडजुम्म एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? उत्तर दै अरिहंत ।।

वा०—चरिम तिमहीज अचरिम समय ते पूर्वोक्त युक्ति थकी एकेंद्रिय उत्पाद अपेक्षाये प्रथम समयवर्ती जेह । एतलै इहां पिण अचरिम शब्दे एक प्रथम समय वांछ्यो ते चरिम-अचरिम तेहीज कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिय हे भगवन ! किहां थकी ऊपजै ? इत्यादि ।

३४. चरिमअचरिमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

वा०—'चरमअचरमसमयकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिय' त्ति, चरमास्तथैव अचरमसमयाश्च प्रागुक्तयुक्तेरेकेन्द्रियोत्पादापेक्षया प्रथमसमयवर्त्तिनो ये ते चरमाचरमसमयास्ते च ते कृतयुग्मकृतयुग्मैकेन्द्रियाश्चेति विग्रहः, (वृ. प. ९६९)

३५. जिम प्रथम उद्देश कह्यो तिम कहिवो,
निरविशेषपणैं एह ।
सेवं भंते ! यावत विचरै, ग्यारमुद्देशक जेह ।।
।।३५।१।११।।

३५. जहा पढमसमयउद्देसओ तहेव निरवसेसं ।
(श. ३५।४१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरति ।
(श. ३५।४२)

३६. इम एणे अनुक्रम करी नैं, कह्या उद्देश इग्यार ।
ते उद्देशक नों स्वरूप-निर्धारण, अर्थे कहियै सार ।।

३६. एवं एए एक्कारस उद्देसगा ।
उद्देशकानां स्वरूपनिर्धारणायाह— (वृ. प. ९६९)

३७. पहिलो तीजो पंचमो गमो, तीनूं सरीखा थाय ।
अवगाहनादिक जे दश णाणत्ता,
ए तीनूं उद्देशा में नांय ।।

३७. पढमो ततिओ पंचमो य सरिसगमा,
'पढमो तइओ पंचमो य सरिसगमय' त्ति, कथम् ? यतः प्रथमापेक्षया द्वितीये यानि नानात्वान्यवगाहनादीनि दश भवन्ति न तान्येतेष्विति,
(वृ. प. ९६९)

३८. द्वितीय तुर्य षष्ठम इत्यादिक, शेष ए अष्ट उद्देश ।
ए आठूंई एक सरीखा, णवरं इतरो विशेष ।।

३८. सेसा अट्ठ सरिसगमा, नवरं—
'सेसा अट्ठ सरिसगमग' त्ति, द्वितीयचतुर्थषष्ठादयः परस्परेण सदृशगमाः पूर्वोक्तेभ्यो विलक्षणगमाद्वितीयसमानगमा इत्यर्थः, विशेषं त्वाह—
(वृ. प. ९६९)

३९. चउथे आठमें दशमें उद्देशे, सुर उपजवो नांहि ।
ते माटै नहीं तेजुलेश्या, ए प्रथम शतक कह्यूं ताहि ।।

वा०—चोथा उद्देशा नैं विषे चरिम समय कडजुम्म-कडजुम्म एकेंद्रिया कह्या, ते चरिम शब्दे मरण समय कह्यूं ते परभव नों प्रथम समय जाणवूं । अनैं आठमें उद्देशे पढम चरिम समय कह्युं । इहां पढम समय ते कडजुम्म-कडजुम्मादि राशि नों प्रथम समय अनैं चरिम समय कहितां मरण समय ते परभव नुं प्रथम समय जाणवूं । अनैं दशम उद्देशे चरिम-चरिम समय कह्युं ते चरिम कहितां कडजुम्म-कडजुम्म आदि राशि नुं चरम समय । अनैं दूजे चरम समय शब्द मरण समय ते परभव नुं प्रथम समय । ए तीनूं उद्देशा नैं विषे देवता न ऊपजै, ए पाठ नुं अर्थ वृत्ति अनुसारे कह्यो ।

३९. चउत्थे अट्ठमे दसमे य देवा न उववज्जंति । तेउलेस्सा नत्थि । (श. ३५।४३)

।।इति पंचत्रिंशशते प्रथमं अन्तरशतम्।।

४०. कृष्णलेशी कडजुम्म-कडजुम्मज एकेंद्रिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? गोयम प्रश्न सुतंत ।।

४०. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

४१. जिन भाखै उपजवो तिमहिज,
इम जिम ओघिक उद्देश ।
आख्यो तिम कहिवूं णवरं ए, नानात्व भेद विशेष ।।

४१. गोयमा ! उववाओ तहेव, एवं जहा ओहिउद्देसए, (३५।३-२०) नवरं इमं नाणत्तं । (श. ३५।४४)

४२. ते प्रभु ! जीवा कृष्णलेशी छै ? तब भाखै जिनराय ।
हंता गोतम ! कृष्णलेशी छै, वलि शिष्य पूछै ताय ।।

४२. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?
हंता कण्हलेस्सा । (श. ३५।४५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४३. ते कृष्णलेशी कडजुम्म-कडजुम्म
प्रभु ! एगिंदिया इम जोय ।
काल थकी रहै काल केतलो ? गोयम प्रश्न ए होय ।।
४४. जिन कहै जघन्य थकी इक समयो, अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ।
स्थिति विषे पिण इमज जाणवो,
हिव तसु न्याय सुइष्ट ।।

वा०—इहां कृष्णलेशी कडजुम्म-कडजुम्म एगिंदिया जघन्य थकी एक समयो रहै । अनैं एक समय पछी कृतयुग्म-कृतयुग्म मेटी कृतयुग्म-तेओगादिक अनेरी संख्या हुवै ते माटै । जघन्य एक समय कृष्णलेशी कृतयुग्म-कृतयुग्म एकेंद्रिया हुवै । इमज उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त काल थकी रहै । अनैं कृष्ण लेश्यावंत नीं स्थिति पिण कृष्णलेश्या नों काल कह्यो तिम जाणवो ।

४५. शेष तिमज जाव वार अनंती,
इम सोलै ही जुम्मा जाण ।
सेवं भंते ! द्वितीय अंतर शत, प्रथम उद्देशक माण ।।

४६. हे भगवंतजी ! प्रथम समय जे,
कृष्णलेशी कडजुम्म-कडजुम्म ।
एगिंदिया किहां थकी ऊपजै ?
हिव जिन कहै अवगम्म ।।
४७. प्रथम उद्देश विषे जिम आख्यो, तिमहिज कहिवो ताय ।
णवरं इतरो विशेष अछै ते, सांभलजो चित ल्याय ।।
४८. हे प्रभुजी ! ते कृष्णलेशी छै ? तब भाखै जिनराय ।
हंता कृष्णलेशी शेष तिमहिज,
सेवं भंते ! सेवं भंते ! ताय ।।
४९. इम जिम पूर्वे जे आख्यो छै, ओघिक शतक विषेह ।
एकादश उद्देशा भणिया, वारू विधि सूं जेह ।।

५०. पहिलो तीजो नैं पंचमुद्देशक, गमा सरीखा तीन ।
शेष आठूंही गमा सरीखा, णवरं विशेष सुचीन ।।
५१. चउथो अष्टम नैं दशम विषे, जे सुर नों नहिं उपपात ।
सेवं भंते ! शत पणतीसम, द्वितीय अंतर शत ख्यात ।।
पणतीसमसए बितीयं एगिंदियमहाजुम्मं सय समत्तं ।

५२. इम नीललेशी संघाते पिण शतकज,
शत कृष्णलेशी नैं सरीष ।
ग्यार उद्देशा तिमहिज कहिवा, सेवं भंते ! जगदीश ।।
पणतीसमसए ततीयं एगिंदियमहाजुम्मं सयं समत्तं ।

५३. इम काउलेशी संघाते पिण शतकज,
शत कृष्णलेशी नैं सरीष ।
सेवं भंते ! शत पणतीसम, शत अंतर तुर्य जगीस ।।
पणतीसमसए चउत्थं एगिंदियमहाजुम्मं सयं समत्तं ।

४३. ते णं भंते ! कण्हलेससकडजुम्मकडजुम्मएगिंदियत्ति कालओ केवच्चिरं होइ ?

४४. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं अंतोमुहुत्तं । एवं ठिती वि ।

वा० – जहन्नेणं एक्कं समयं' त्ति जघन्यत एकसमयानन्तरं सङ्ख्यान्तरं भवतीत्यत एकं समयं कृष्णलेश्यकृतयुग्मकृतयुग्मैकेन्द्रिया भवन्तीति । 'एवं ठिईवि' त्ति कृष्णलेश्यावतां स्थितिः कृष्णलेश्याकालवदवसेयेत्यर्थ इति । (वृ. प. ९७०)

४५. सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो । एवं सोलस वि जुम्मा भाणियव्वा । (श. ३५।४६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।४७)

४६. पढमसमयकण्हलेससकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

४७. जहा पढमसमयउद्देसओ, नवरं— (श. ३५।४८)

४८. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?
हंता कण्हलेस्सा, सेसं तहेव । (श. ३५।४९)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।५०)

४९. एवं जहा ओहियसए (३५।२२-४३) एक्कारस उद्देसगा भणिया तहा कण्हलेस्ससए वि एक्कारस उद्देसगा भाणियव्वा ।
५०. पढमो तइओ पंचमो य सरिसगमा, सेसा अट्ठ वि सरिसगमा, नवरं—
५१. चउत्थ-अट्ठम-दसमेसु उववाओ नत्थि देवस्स । (श. ३५।५१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।५२)

५२. एवं नीललेस्सेहि वि सतं कण्हलेस्ससतसरिसं, एक्कारस उद्देसगा तहेव । (श. ३५।५३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।५४)

५३. एवं काउलेस्सेहि वि सतं कण्हलेस्ससतसरिसं । (श. ३५।५५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।५६)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. भवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्मज, एगिंदिया भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुउदंत ।।
५५. ओघिक शतक विषे जिम आख्यं,
तिमहिज कहिवूं ताय ।
णवरं इग्यार उद्देश विषे जे, पूछवूं ते कहिवाय ।।
५६. अथ प्रभु ! सघला प्राणी यावत, सर्व सत्व छै जेह ।
भवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्मज,
पूर्व ऊपनां एकेंद्रीपणेह ?
५७. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, शेष तिमज अवगम्म ।
सेवं भंते ! एह पंचमो, एगिंदिय शत महाजुम्म ।।

वा०—सर्व जीव में अभव्य पिण आया ते अभव्य छै तिके भवसिद्धिक एकेंद्रियपणैं पूर्वे ऊपनां नहीं, तिणसूं नो इणट्ठे समट्ठे कह्यो ।

पणतीसमसए पंचमं एगिंदियमहाजुम्मं सयं समत्तं ।

५४. भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

५५. जहा ओहियसतं तहेव, नवरं—एक्कारससु वि उद्देसएसु । (श. ३५।५७)

५६. अह भंते ! सव्वे पाणा जाव सव्वे सत्ता भवसिद्धिय-कडजुम्मकडजुम्मएगिंदियत्ताए उववन्नपुव्वा ?

५७. गोयमा ! णो इणट्ठे समट्ठे, सेसं तहेव । (श. ३५।५८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।५९)

५८. कृष्णलेशी भवसिद्धिक कडजम्म-
कडजम्म एगिंदिया भगवंत ।
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुउदंत ।।
५९. एवं कृष्णलेशी भवसिद्धिक, एकेंद्रिय शत ही संघात ।
कृष्णलेशी द्वितीय शत सदृश,
कहिवूं सेवं भंते ! जगनाथ ।।

पणतीसमसए छट्ठं एगिंदियमहाजुम्मं सयं समत्तं ।

५८. कण्हलेस्सभवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मएगिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

५९. एवं कण्हलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सतं बितिय-सतकण्हलेस्ससरिसं भाणियव्वं । (श. ३५।६०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।६१)

६०. एवं नीललेशी भवसिद्धिक, एगिंदिएहिं संघात ।
शतक जाणवूं सेवं भंते ! सप्तम अंतर शत ख्यात ।।

पणतीसमसए सत्तमं एगिंदियमहाजुम्मं सयं समत्तं ।

६१. इम कापोतलेशी भवसिद्धिक, एगिंदिएहिं संघात ।
तिमहिज एकादश उद्देशा, संयुक्त शत विख्यात ।।
६२. इम ए चिहुं भवसिद्धिक शत कह्या,
च्यारूं ही शतक विषेह ।
सर्व प्राणी जाव पूर्व उपनां, इम पूछ्यो गुणगेह ।।
६३. जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, सेवं भंते ! स्वाम !
अंतर शत ए अष्टज आख्या, शत पणतीसम आम ।।

पणतीसमसए अट्ठमं एगिंदियमहाजुम्मं सयं समत्तं ।

६०. एवं नीललेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि सतं । (श. ३५।६२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।६३)

६१. एवं काउलेस्सभवसिद्धियएगिंदिएहि वि तहेव एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं सतं ।

६२. एवं एयाणि चत्तारि भवसिद्धिएसु सताणि । चउसु वि सएसु सव्वे पाणा जाव उववन्नपुव्वा ?

६३. नो इणट्ठे समट्ठे । (श. ३५।६४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।६५)

६४. जिम भवसिद्धिक संघाते चिहुं शत,
एह कह्या छे ताय ।
इम अभवसिद्धिक संघाते पिण चिहुं शत,
लेश्या सहित कहिवाय ।।
६५. सर्व प्राण ऊपनां नों प्रश्नज, तिमहिज करिवो तेह ।
श्री जिन तेहनों उत्तर आख्यो, अर्थ समर्थ न एह ।।

पणतीसमसए नवमाओ बारसपज्जंतं एगिंदियमहाजुम्माइं सयाइं समत्ताइं ।

६४. जहा भवसिद्धिएहिं चत्तारि सताइं भणियाइं एवं अभवसिद्धिएहि वि चत्तारि सताणि लेस्सासंजुत्ताणि भाणियव्वाणि ।

६५. सव्वे पाणा तहेव नो इणट्ठे समट्ठे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६६. इम ए द्वादश एकेंद्रिय नां, महायुग्म शत होय ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! गोयम वचन सुजोय ।।
इति पैंतीसमो शतक बारै अंतर शतक सहित अर्थ थकी संपूर्ण ।

६७. शत पैंतीस ढाल च्यार सौ बाणूमी पहिछाणं ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे,
'जय-जश' हरष कल्याणं ।।

६६. एवं एयाइं बारस एगिंदियमहाजुम्मसताइं भवंति ।
(श. ३५।६७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ३५।६७)

गीतक-छन्द

१. महाजुम्म शय पैंतीसमां नीं जोड़ अति रलियामणी ।
गुरुदेव नीं शुभ दृष्टि अरु सिद्धान्त नय अनुसारणी ।।
२. अति चतुर नर पिण नयन-
युगल पखे[1] न वस्तु विलोकियं ।
गुरु-कृपा आगम-नयन रूपज दृष्टि युग उपढौकियं ।।

।।पंचत्रिंशत्तमशते द्वादशान्तरशतकार्थः।।

१,२. व्याख्या शतस्यास्य कृता सकष्टं
टीकाऽल्पिका येन न चास्ति चूर्णिः ।
मन्दैकनेत्रो बत पश्यताद्वा
दृश्यान्यकष्टं कथमुद्यतोऽपि ।।

१. बिना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्त्रिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

षट्त्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४९३

दूहा

१. शत पैंतीसम महायुग्म, एकेंद्रिय आख्यात।
छत्तीसम महायुग्म करि, बेइंद्रिय अवदात ।।

१. पञ्चत्रिंशे शते सङ्ख्यापदैरेकेन्द्रियाः प्ररूपिताः, षट्त्रिंशे तु तैरेव द्वीन्द्रियाः प्ररूप्यन्ते
(वृ. प. ९७०)

द्वीन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

२. कडजुम्म-कडजुम्म बेइंदिया, किहां थकी भगवान!
उपजै ? प्रश्न इत्यादि जे, कहिवो सर्व पिछान ।।

२. कडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

३. ऊपजवूं जिम पन्नवणा, षष्टम पद व्युत्क्रंत।
तेह विषे जिम आखियो, कहिवूं तेम उदंत ।।

३. उववाओ जहा वक्कंतीए (प. ६।८६)

४. तसु परिमाणज सोल वा, संख्याता वा सोय।
असंख्यात वा ऊपजै, त्रस माटे अवलोय ।।

४. परिमाणं सोलस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति।

५. उत्पल-उद्देशक विषे, जिम आख्यो अपहार।
तिमहिज कहिवूं छै इहां, वारू अर्थ विचार ।।

५. अवहारो जहा उप्पलुद्देसए (११।४)

*गुणिजन ! अर्थ छतीसम शतक नां ।। (ध्रुपदं)

६. अवगाहना जघन्य थो, आंगुल नों अवधार हो।
असंख्यातमों भाग छै, उत्कृष्ट योजन बार हो ।।

६. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं बारस जोयणाइं।

७. एवं जिम एकेंद्रिय, महायुग्म नां जेह हो।
प्रथम उद्देश विषे कह्यूं, तिमहिज कहिवूं तेह हो ।।

७. एवं जहा एगिंदियमहाजुम्माणं पढमुद्देसए (३५।६-१०) तहेव,

८. नवरं इतरो विशेष छै, धुर लेश्या त्रिण जोय हो।
अनें देव नहिं ऊपजै, सम्यक्दृष्टी होय हो ।।

८. नवरं—तिण्णि लेस्साओ, देवा न उववज्जंति। सम्मदिट्ठी वा

९. अथवा मिथ्यादृष्टि हुवै, मिश्रदृष्टि हुवै नांय हो।
ज्ञानी हुवै अथवा वली, अज्ञानी कहिवाय हो ।।

९. मिच्छदिट्ठी वा, नो सम्मामिच्छादिट्ठी। नाणी वा अण्णाणी वा।

१०. मनजोगी कहियै नहीं, वचजोगी हुवै सोय हो।
अथवा कायजोगी हुवै, बेंद्रि में जोग दोय हो ।।

१०. नो मणजोगी, वइजोगी वा कायजोगी वा।
(श. ३६।१)

११. ते प्रभु ! कडजुम्म-कडजुम्म,
जीव बेइंद्रिय जाण हो।
कितो काल रहै काल थी ?
भाखो श्री जगभाण हो ।।

११. ते णं भंते ! कडजुम्मकडजुम्मबेंदिया कालओ केवच्चिरं होंति ?

१२. श्री जिन भाखै जघन्य थी,
एक समय अवलोय हो।
उत्कृष्टो इम आखियै, संख्यातो काल सोय हो ।।

१२. गोयमा ! जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं संखेज्जं कालं।

---

*लय : सीता ओलखावै सोकां भणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

१३. समयो एक जघन्न, एक समय पाछै तिको।
तेओगादि प्रपन्न, अन्य संख्या नां भाव थी।।

१३. 'जहन्नेणं एक्कं समयं' ति समयानन्तरं संख्यान्तर-भावात्, (वृ. प. ९७२)

१४ *स्थिति जघन्य थी जेहनीं, एक समय नीं लेह हो।
उत्कृष्ट द्वादश वर्ष नीं, न्याय विचारी कहेह हो।।

१४. ठिती जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं बारस संवच्छराइं।

१५. षट दिशि नों आहार नियम थी,
त्रस नाड़ी में होय हो।
समुद्घात त्रिण आदि नीं,
शेष तिमज अवलोय हो।।

१५. आहारो नियमं छद्दिसिं। तिण्णि समुग्घाया, सेसं तहेव

१६. जाव अनंती वार ही, पूर्व ऊपनों पेख हो।
इम सोलै ही जुम्मा विषे,
कहिवो जिन वच देख हो।।

१६. जाव अणंतखुत्तो। एवं सोलससु वि जुम्मेसु। (श. ३६।२)

१७. बेइंदिय महायुग्म जे, शतक विषे अभिराम हो।
प्रथम उद्देशक अर्थ थी, सेवं भंते! स्वाम हो।।

१७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३६।३)

॥इति ३६।१।१॥

१८. प्रथम समय भगवंतजी!
कडजुम्म-कडजुम्म जान हो।
बेंदिया किहां थी ऊपजै?
प्रश्न इत्यादि पिछान हो।।

१८. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति?

१९. एवं जिम एकेंद्रिय, महायुग्म अवदात हो।
प्रथम समय उद्देशके, नाणत्ता दश आख्यात हो।।

१९. एवं जहा एगिंदियमहाजुम्माणं पढमसमयउद्देसए। दस नाणत्ताइं

२०. तेहिज दश फुन नाणत्ता, कथन इहां पिण ताय हो।
एकादशमों नाणत्तो, आगल ए कहिवाय हो।।

२०. ताइं चेव दस इह वि। एक्कारसमं इमं नाणत्तं—

२१. मनजोगी नहिं छै तिके, वचजोगी पिण नांय हो।
कायजोगी कहियै तसु, ए इग्यारमों थाय हो।।

२१. नो मणजोगी, नो वइजोगी, कायजोगी।

२२. शेष जेम बेइंद्रिय तणं, प्रथम उद्देश विषेह हो।
आख्यू तिम कहिवूंज छै, सेवं भंते! कहेह हो।।

२२. सेसं जहा बेंदियाणं चेव पढमुद्देसए। (श. ३६।४)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३६।५)

२३. इम ए पिण जिम एकेंद्रिय, महायुग्म नैं विषेह हो।
ग्यार उद्देशा आखिया, तिमहिज कहिवा एह हो।।

२३. एवं एए वि जहा एगिंदियमहाजुम्मेसु एक्कारस उद्देसगा तहेव भाणियव्वा,

२४. णवरं तुर्य उद्देशके, अष्टम दशम विषेह हो।
सम्यक्त्व नैं वलि ज्ञान नैं, कहिवा नहीं छै जेह हो।।

२४,२५. नवरं—चउत्थ-अट्ठम-दसमेसु सम्मत्त-नाणाणि न भण्णंति।

२५. जिमहिज एकेंद्रिय विषे,सम्यक्त्व ज्ञान न होय हो।
तिम बेइंद्रिय त्रिहुं उद्देशके,
सम्यक्त्व ज्ञान न कोय हो।।

२६ पहिलो तीजो पंचमो, गमा एक सरीस हो।
शेष अष्ट गमा जिके, एक सरीसा जगीस हो।।

२६. जहेव एगिंदिएसु पढमो तइओ पंचमो य एक्कगमा, सेसा अट्ठ एक्कगमा। (श. ३६।६)

इति प्रथम अन्तर शतक।

॥इति ३६।१।२-११॥

*लय : सीता ओलखावै सोकां भणी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७. कृष्णलेशी भगवंतजी !
कडजुम्म-कडजुम्म तेह हो।
बेइंदिया किहां थकी, उपजै इत्यादि जेह हो ?

२७. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

२८. इमहिज जे निश्चै करी, कृष्णलेशी नैं विषेह हो।
ग्यार उद्देश संयुक्त ही, कहिवूं शतक सुलेह हो ।।

२८. एवं चेव। कण्हलेस्सेसु वि एक्कारसउद्देसगसंजुत्तं सतं,

२९. णवरं लेश्या संचिट्ठणा, स्थिति[1] जिम आख्यात हो।
एकेंद्री कृष्णलेशी शते, कहिवूं ते अवदात हो ।।

२९. नवरं—लेस्सा, संचिट्ठणा जहा एगिंदियकण्हलेस्साणं। (श. ३६।७)

वा०—लेश्या १, संचिट्ठण-रहिवो २, स्थिति ३-जिम एकेंद्रिय कृष्णलेशी शतक नैं विषे कह्या तिम कहिवूं।

इति द्वितीय अंतर शतक।

।।इति ३६।२।।

३०. इम नील लेश्या संघात ही,
ग्यार उद्देश संयुक्त हो।
कहिवो शतकज तीसरो, अर्थ थकी ए उक्त हो ।।

३०. एवं नीललेस्सेहि वि सतं। (श. ३६।८)

इति तृतीय अंतर शतक।

।।इति ३६।३।।

३१. इम कापोत लेश संघात ही,
ग्यार उद्देश संयुक्त हो।
कहिवो शतकज चतुर्थो, अर्थ अनोपम उक्त हो ।।

३१. एवं काउलेस्सेहि वि। (श. ३६।९)

इति चतुर्थ अंतर शतक।

।।इति ३६।४।।

३२. भवसिद्धिक कडजम्म-कडजुम्म,
बेइंद्रिया भगवंत हो !
किहां थकी आवी ऊपजै ? प्रमुख पूर्ववत मंत हो ।।

३२. भवसिद्धियकडजुम्मकडजुम्मबेंदिया णं भंते !

३३. एवं भवसिद्धिया अपि, च्यार उद्देशा विचार हो।
तिणहिज पूर्व गमे करी,
अर्थ जाणवा सार हो ।।

३३. एवं भवसिद्धियसता वि चत्तारि तेणेव पुव्वगमएणं नेयव्वा,

३४. णवरं सघला ही प्राणिया,
पूर्व ऊपनां ताहि हो।
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं,
सहु भव्यपणैं हुआ नांहि हो ।।

३४. नवरं—सव्वे पाणा ? णो तिणट्ठे समट्ठे।

३५. शेष तिमज जे आखिया,
ओघिक शतकज च्यार हो।
तिमहिज कहिवा छै इहां, सेवं भंते ! सार हो ।।

३५. सेसं तहेव ओहियसताणि चत्तारि। (श. ३६।१०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३६।११)

इति पंचम से अष्टम अंतर शत।

।।इति ३६।५-८।।

---

1. अंगसुत्ताणि में 'ठिती' को पाठान्तर में लिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३६. जिम भवसिद्धिक जीव नां,
च्यार शतक आख्यात हो।
एवं अभवसिद्धिक तणां,
चिहुं शत भणवा विख्यात हो ।।
३७. णवरं इतरो विशेष छै, सम्यक्त्व अथवा ज्ञान हो।
नथी सर्वथा अभव्य में, शेष तिमज पहिछान हो ।।
३८. इम ए बेइंद्रिय महाजुम्म, बारै अंतर-शत होय हो।
सेवं भंते ! ए बेंद्रिय, महायुग्म शत जोय हो ।।
इति नवम से द्वादश अन्तर शतक।
इति बेंद्रिय महायुग्म शता समाप्ता।
ए छत्तीसमों शतक अर्थ थकी संपूर्ण ।।
।।इति ३६।९-१२।।
३९. ढाल च्यार सय ऊपरै, इग्याणमी कहिवाय हो।
भिक्ष भारीमाल ऋषिराय थी,
'जय-जश' हरष सवाय हो ।।

गीतक छन्द

१. षट्त्रिंशमो द्वींद्रिय महाजुम्मा करी शत शोभतो।
वर बार अंतरशतक नां परिवार परिवरियो छतो ।।
२. इम सप्तत्रिंशम अष्टत्रिंश एकोनचत्वारिंशमा।
त्रि-चतुर-सन्निपंचेंद्रि महाजुम्म
तिमज अंतर शत गमा ।।
।।षट्त्रिंशत्तमशते द्वादशान्तरशतकार्थः।।

३६. जहा भवसिद्धियसताणि चत्तारि एवं अभवसिद्धिय-सताणि चत्तारि भाणियव्वाणि,

३७. नवरं—सम्मत्त-नाणाणि सव्वेहिं नत्थि, सेसं तं चेव।

३८. एवं एयाणि बारस बेंदियमहाजुम्मसताणि भवंति।
(श. ३६।१२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३६।१३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तत्रिंशत्तम शतक

अष्टत्रिंशत्तम शतक

एकोनचत्वारिंशत्तम शतक

चत्वारिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सप्तत्रिंशत्तम शतक

ढाल : ४९४

त्रीन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

दूहा

१. कडजुम्म-कडजुम्म तेइंदिया, किहां थकी भगवंत !
उपजै छै आवी करी, इत्यादिक सउदंत ?
२. इम तेइंद्रिय नैं विषे, करिवा शतकज बार।
शतक बेंद्रिय सारिखा, णवरं विशेष धार ।।
३. अवगाहना जघन्य थी, आंगुल तणोंज चीन।
असंख्यातमों भाग है, उत्कृष्ट गाऊ तीन ।।
४. स्थिति जघन्य थी इक समय, उत्कृष्टी अवधार।
एगुणपचास निशि दिवस, शेष तिमज सुविचार ।।
५. सेवं भंते ! स्वाम जी, तेइंद्रिय महाजुम्म।
द्वादश अंतर शत सहित, अर्थ थकी अवगम्म ।।
इति तेंद्रिय महायुग्म शता समाप्ता।
बारै अंतर शत सहित सप्ततीसम शत संपूर्ण ।।
।।इति ३७।१-१२।।

१. कडजुम्मकडजुम्मतेंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?
२. एवं तेंदिएसु वि बारस सता कायव्वा बेंदियसत-सरिसा, नवरं—
३. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्को-सेणं तिण्णि गाउयाइं।
४. ठिती जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं एकूणवण्ण राइंदियाइं, सेसं तहेव। (श. ३७।१)
५. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ३७।२)

अष्टत्रिंशत्तम शतक

चतुरिन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

*अबै नहिं वीसरूं।

म्हारै हृदय वस्या हो जिन वैन, अबै नहिं वीसरूं।
एतो श्री जिन साचा सैन, अबै नहिं वीसरूं।
एतो प्रभु-वच अंतर-नैन, अबै नहिं वीसरूं।
तिणसूं चित मांहै पामै चैन, अबै नहिं वीसरूं ।।(ध्रुपदं)
६. चउरिंद्रिय संघात ही, इम शत करिवा बार।
णवरं इतो विशेष छै, सांभलजो धर प्यार ।।

६. चउरिंदिएहि वि एवं चेव बारस सता कायव्वा, नवरं—

*लय : अबै नहिं वीसरूं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. अवगाहना जघन्य थी, आंगुल तणोंज धार।
असंख्यातमों भाग ही, उत्कृष्ट गाऊ च्यार।।
८. स्थिति जघन्य थो इक समय, समय अनंतर तास।
अन्य संख्या त्र्योजादि हुवै, उत्कृष्टी षट मास।।
९. शेष जेम बेइंद्रिय नें, आख्यो तिम कहिवाय।
सेवं भंते! चउरिंद्रिय, महायुग्म शत थाय।।

इति चउरिंद्रिय महायुग्म शता समाप्ता।
बारै अंतर शत संयुक्त अर्थ थी अडतीसम शतकार्थ संपूर्ण।।
।। ति ३८।१-१२।।

७. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं चत्तारि गाउयाइं।
८. ठिति जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं छम्मासा।

९. सेसं जहा बेंदियाणं। (श. ३८।१)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३८।२)

एकोनचत्वारिंशत्तम शतक

असन्नी पंचेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

१०. कृतयुग्म-कृतयुग्म जे, असन्नी पंचेंद्रिय भंत!
किहां थकी ए ऊपजै? इत्यादिक सुवृतंत।।
११. जिम बेइंद्रिय नें कह्यूं, असन्नी विषे पिण तेम।
करिवा द्वादश शतक ही, णवरं विशेष एम।।
१२. अवगाहना जघन्य थी, आंगुल नों अवधार।
असंख्यातमों भाग है, उत्कृष्ट योजन हजार।।
१३. संचिट्ठणा जघन्य थी, एक समय लग जोड़।
उत्कृष्ट थकीज एतली, पृथक पूर्व कोड़।।
१४. स्थिति जघन्य थो इक समय, पूर्व कोड़ उत्कृष्ट।
शेष जेम बेइंद्रिय, आख्यो तिमहिज इष्ट।।
१५. सेवं भंते! स्वामजी, असन्नी पंचेंद्रीय।
महायुग्म द्वादश शता, गुणचालीसम कहीय।।

इति असन्नी पंचेंद्रिय महाजुम्म शता समाप्ता।
इति बारै अंतर शत संयुक्त गुणचालीसम शतकार्थ संपूर्ण।।
।।इति ३९।१-१२।।

१०. कडजुम्मकडजुम्मअसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति?
११. जहा बेंदियाणं तहेव असण्णिसु वि बारस सता कातव्वा, नवरं—
१२. ओगाहणा जहण्णेणं अंगुलस्स असंखेज्जइभागं, उक्कोसेणं जोयणसहस्सं।
१३. संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं पुव्वकोडीपुहत्तं।
१४. ठिती जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं पुव्वकोडी, सेसं जहा बेंदियाणं। (श. ३९।१)
१५. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ३९।२)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चत्त्वारिंशत्तम शतक

सन्नी पंचेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

१६. कृतयुग्म-कृतयुग्म जे, सन्नी पंचेंद्रिय भंत !
किहां थकी ए ऊपजै ? उत्तर दे अरिहंत ।।
१७. ऊपजवो चिहुं गति थकी, जे चिहुं गति रै मांहि ।
संख वर्षायु छै जिके, असंख वर्षायु ताहि ।।
१८. पर्याप्ता अपर्याप्ता, सन्नी पंचेंद्रिय मांय ।
ए च्यारूं ही ऊपजै, कोई निषेध नहिं थाय ।।
१९. जाव अनुत्तरविमान थी, सन्नी पंचेंद्रिय मांय ।
आवी नें जे ऊपजै, इहां लगै कहिवाय ।।

वा०—सन्नी पंचेंद्रिय नैं विषे च्यारूं गति नां आवी ऊपजै । च्यारूं गति नैं विषे जे संख्यात वर्षायुष छै, ते मरी ऊपजै । अनैं असंख्यात वर्षायुष्क पिण मरी ऊपजै । पर्याप्ता काल करी पिण ऊपजै । अपर्याप्ता पिण मरी ऊपजै । सन्नी पंचेंद्रिय नैं विषे सर्व ऊपजै । किहांई थकी पिण मरी ऊपजवा रो निषेध नहीं छै जाव अनुत्तरविमान थकी ।

१६. कडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

१७. उववाओ चउसु वि गईसु । संखेज्जवासाउय-असंखेज्जवासाउय-

१८. पज्जत्ता-अपज्जत्तएसु य न कओ वि पडिसेहो

१९. जाव अणुत्तरविमाणत्ति ।

२०. परिमाण अनैं अपहार जे, अवगाहन अवधार ।
असन्नी पंचेंद्रिय, आख्यूं तिमज विचार ।।
२१. वेदनीय वर्जी करी, सप्त कर्म प्रकृत ।
तेह तणां ते बंधगा, अथवा अबंधगा कथित ।।

वा०—इहां वेदनीय नैं बंध विधि प्रतै विशेषे करी कहिस्यै इम करी वेदनीय वर्ज्यो । इम तिहां उपशांत मोहादि सात कर्म नीं अबंधक हीज छै । शेष तो वली यथासंभव बंधगा हुवै इति ।

२०. परिमाणं अवहारो ओगाहणा य जहा असण्णि-पंचिंदियाणं ।

२१. वेयणिज्जवज्जाणं सत्तण्हं पगडीणं बंधगा वा अबंधगा वा,

वा०—'वेयणिज्जवज्जाणं सत्तण्हं पगडीणं बन्धगा वा अबन्धगा व'त्ति, इह वेदनीयस्य बन्धविधि विशेषेण वक्ष्यतीतिकृत्वा वेदनीयवर्जानामित्युक्तं, तत्र चोपशान्तमोहादयः सप्तानामबन्धका एव शेषास्तु यथासम्भवं बन्धका भवन्तीति । (वृ. प. ९७३)

२२. वेदनीय नां बंधगा, अबंधगा ते नांय ।
बारम गुणठाणा लगै, सन्नी पंचेंद्री कहाय ।।

वा०—तेरमें चवदमें गुणठाणे सन्नी पंचेंद्रिय न कहियै । ते तो नोसन्नी-नोअसन्नी छै, अणिंदिया छै । अनैं तेह थकी उलीकानी बारमा गुणठाणा लगै सन्नी पंचेंद्रिय छै, ते सर्व वेदनीय नां बंधक हीज छै, पिण अबंधक नथी ।

'इहां तेरमें, चवदमें गुणठाणे सन्नी पंचेंद्रिय नथी कह्या । अनैं व्यवहार नय करी केवली में जीव रो भेद एक चवदमों कहै छै । ते पूर्व सन्नी पंचेंद्रियपणां नीं अपेक्षा करी कहै छै । जिम यथाख्यात चारित्र नों साहरण कह्यो । अप्रमादी रो साहरण तो हुवै नथी, पिण प्रमादी नों साहरण कियां पछै यथाख्यात चारित्र पायो, तिणरी अपेक्षाय यथाख्यात नों साहरण कह्यो । तथा पुलाक नियंठा नों धणी काल करै तो उत्कृष्ट आठमें देवलोक जाय, एहवं कह्यं । पिण पुलाक में तो मरै नथी । पुलाक लब्धि फोड़ी ते वेला पुलाक नियंठो हुंतो । ते अनेरै नियंठै आवी तत्काल मूओ । ते पूर्वं पुलाक अनुभव्यो, तेहनीं अपेक्षाय पुलाक में काल

२२. वेयणिज्जस्स बंधगा, नो अबंधगा ।

वा०—'वेयणिज्जस्स बन्धगा नो अबन्धग' त्ति, केवलित्वादारात्सर्वेऽपि सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियास्ते च वेदनीयस्य बन्धका एव नाबन्धकाः । (वृ. प. ९७३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करिवो कह्यो। तिम सन्नीपणुं अनैं पंचेंद्रियपणुं पूर्व नीं अपेक्षाय केवली में चवदमो जीव रो भेद उपचारे करी कहियै।

तथा अनुयोगद्वारे (सू. १६,१७) आवश्यक जाणवा वाला नां शरीर नैं जाणकशरीर द्रव्य आवश्यक कह्यो। आवश्यक नों जाण हुस्यै तेह भविकशरीर द्रव्य आवश्यक कह्यो। जिम ए घृत नों घड़ो मधु नों घड़ो हुंतो तथा घृत नों घड़ो मधु नों घड़ो हुस्यै तिम सन्नीपणुं भाव पंचेंद्रियपणुं पूर्व हुंतो ते माटै जीव नों भेद चवदमों केवली में कहियै। तथा वाटे वहितां नैं तथा प्रथम समय नां ऊपनां अपर्याप्ता नैं भावे इंद्रिय छै पिण द्रव्य इंद्रिय नथी। तिणसूं तिणनैं अणिंदियो कहियै। तिम केवली रैं चवदमो जीव रो भेद सन्नी १, पंचेंद्रिय २, पर्याप्तक ३—ए तीन भेद में सन्नीपणुं प्रथम भेद तो नथी। पिण इंद्रिय द्रव्य रूप तो छै अनैं पर्याप्तापणुं पिण छै। तिणसूं चवदमो भेद कहियै। जिम हस्ती नों कान प्रमुख एक देश नों नाश थयुं तो पिण तेहनैं हस्तीज कहियै। तिम केवली रैं सन्नीपणुं नथी पिण द्रव्येंद्रियपणुं अनैं पर्याप्तकपणुं छै। ते माटै केवली में चवदमों जीव रो भेद परंपराइं कहै छै, एहवूं न्याय पिण संभवै।' (ज. स.)

२३. मोहनीय नां वेदगा, अवेदगा वा जेह।
वेदै दशमा गुण लगै, ग्यारम बारम न वेदेह।।

वा०—सूक्ष्मसंपराय तांइ वेदक, आगले गुणठाणे अवेदक। ते माटै कह्यूं वेदक पिण अवेदक पिण।

२४. शेष सातूंइ कर्म नां, वेदग ते कहिवाय।
पिण अवेदगा नहिं हुवै, निमल विचारो न्याय।।

वा०—शेष सातूं कर्म नां वेदग हुवै पिण अवेदग नथी। जे निश्चै इग्यारमें, बारमें गुणठाणे सन्नी पंचेंद्रिय छै ते मोहणी विना सातूंई कर्म नां वेदग छै, तिणसूं शेष सातूंई कर्म नां वेदग कह्या। अनैं केवली हीज च्यार कर्मप्रकृति नां वेदक हुवै। तेह भावे इंद्रिय नां व्यापार रहितपणैं थकी पंचेंद्रिय नथी।

२५. छै सातावेदगा तथा, असातावेदगा होय।
सन्नी पंचेंद्रिय तणां, स्वरूपपणां थी जोय।।

२६. मोहनीय नां उदयि हुवै, दशमा गुण० लग थाय।
अथवा अणउदयी हुवै, ग्यारम बारम उदयी नांय।।

२७. शेष सातूंई कर्म नां, उदयी ते कहिवाय।
पिण अणउदयी छै नथी, निसुणो एहनों न्याय।।

वा०—मोहनीय विना शेष सात कर्म नां उदयी पिण अणउदयी नथी। पूर्वे वेदगा कह्या, इहां उदयी कह्या। ते वेदगा में अनैं उदयि में स्यूं फेर? तेहनों उत्तर—वेदकपणों अनुक्रम करिकै अथवा उदीरणा करणे करी उदय पाम्यां नों भोगविवूं। अनैं उदय ते अनुक्रम उदय आयां नों भोगविवूं, ए एक बोल हीज हुवैं, पिण उदीरणा करणे करी भोगविवं एहनैं विषे नथी।

२८. नाम गोत्र नां उदीरका, अणउदीरका नांय।
शेष छह कर्म उदीरका, अणउदीरका वा कहाय।।

वा०—नाम, गोत्र नां उदीरक, पिण अनुदीरक नहीं। नाम, गोत्र अकषाय पर्यंत। संज्ञी पंचेंद्रिय सगलाहीज पिण उदीरक हुवै, पिण अनुदीरक

२३. मोहणिज्जस्स वेदगा वा अवेदगा वा,

वा०—'मोहणिज्जस्स वेयगा वा अवेयगा व' त्ति मोहनीयस्य वेदकाः सूक्ष्मसम्परायान्ताः, अवेदकास्तूपशान्तमोहादयः, (वृ. प. ९७३)

२४. सेसाणं सत्तण्ह वि वेदगा, नो अवेदगा।

वा०—'सेसाणं सत्तण्हवि वेयगा नो अवेयग' त्ति ये किलोपशान्तमोहादयः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियास्ते सप्तानामपि वेदगा नो अवेदकाः, केवलिन एव चतसृणां वेदका भवन्ति ते चेन्द्रियव्यापारातीतत्वेन न पञ्चेन्द्रिया इति। (वृ. प. ९७३)

२५. सायावेदगा वा असायावेदगा वा।
'सायावेयगा वा असायावेयगा व' त्ति, सञ्ज्ञिपंचेन्द्रियाणामेवंस्वरूपत्वात् (वृ. प. ९७३)

२६. मोहणिज्जस्स उदई वा अणुदई वा,
'मोहणिज्जस्स उदई वा अणुदई व' त्ति, तत्र सूक्ष्मसम्परायान्ता मोहनीयस्योदयिनः उपशान्तमोहादयस्त्वनुदयिनः (वृ. प. ९७३)

२७. सेसाणं सत्तण्ह वि उदई, नो अणुदई।

वा०—'सेसाणं सत्तण्हवी' त्यादि, प्राग्वत्, नवरं वेदकत्वमनुक्रमेणोदीरणाकरणेन चोदयागतानामनुभवनम् उदयस्त्वनुक्रमागतानामिति। (व. प. ९७३)

२८. नामस्स गोयस्स य उदीरगा, नो अणुदीरगा, सेसाणं छण्ह वि उदीरगा वा अणुदीरगा वा।

वा०—'नामगोयस्स उदीरगा नो अणुदीरग' त्ति, नामगोत्रयोरकषायान्ताः सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाः सर्वेऽप्यु-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं। शेष छह कर्म नां उदीरका पिण हुवै, अनुदीरका पिण हुवै। ते शेष छह नों यथासंभव उदीरक अनुदीरक जिम जे भणी ए उदीरणाविधि छै तिम कहै छै--छठा गुणठाणा लगै सामान्य करिकै समुच्चय आठ कर्म उदीरै अनै आउखा नीं शेष आवलिका छतै आउखा वर्जी सात कर्म उदीरै। अनै अप्रमत्तादि आगले च्यार गुणठाणे वेदनी, आउखो वर्जी नै छह कर्म ते उदीरै। तथा सूक्ष्मसंपराय छेहली आवलि पोता नां काल नां शेष थका मोहनीय, वेदनीय, आउखो वर्जी पंच कर्म उदीरै। अनै उपशांतमोहे पिण एह पंच नै उदीरै। क्षीणमोह कषाय शेष आवलि पोता नां काल नां शेष थका नाम-गोत्र उदीरै। तेरमें सजोगी पिण नाम-गोत्र नै उदीरै। अजोगी अनुदीरक हीज हुवै इति।

२९. कृष्णलेश्याइं ह्वै तथा, जाव शुक्ललेश्याइं होय।
समदृष्टि वा मिच्छदिट्ठी, तथा मिश्रदृष्टि सोय।।
३०. ज्ञानी वा अज्ञानी हुवै, मनजोगी ह्वै सोय।।
अथवा वचजोगी हुवै, वा कायजोगी पिण होय।।
३१. उपयोग नैं वर्णादिक, उस्सासवंतज ताय।
आहारगा बोल एतला, एकेंद्रि जिम कहिवाय।।
३२. विरति वा ह्वै अविरती, वा विरताविरती होय।
किरिया सहित ते हुवै, क्रिया रहित नहि कोय।।
३३. हे प्रभुजी! ते जीवड़ा, स्यूं सात कर्म बांधंत?
कै अठ वा षटविधबंधगा, वा इकविधबंधगा हुंत?
३४. जिन कहै सात प्रकार नां, तेह बंधगा थाय।
यावत इकविधबंधगा, कर्म एक बंधाय।।
३५. हे भगवंत! ते जीवड़ा, स्यूं आहार-संज्ञा-उपयुक्त।
जाव परिग्रह-संज्ञा-उपयुक्त छै, कै नोसन्नोवउत्ता उक्त?
३६. जिन भाखै सुण गोयमा! आहारसन्नोवउत्ताय।
जाव नोसंज्ञा-उपयुक्त छै, हिव सर्व पूछा कहिवी ताय।।
३७. क्रोधकषाई जाव ते, लोभकषाई धार।
अथवा अकषाई हुवै, लीजो न्याय विचार।।
३८. इत्थिवेदगा ते हुवै, वा पुरिसवेदगा होय।
अथवा नपुंसवेदगा, अवेदगा वा जोय।।
३९. इत्थिवेद-बंधगा तथा, वा पुरिसवेद बांधंत।
वा नपुंसवेद-बंधगा हुवै, अथवा अबंधगा हुंत।।
४०. सन्नी तेह हुवै अछै, पिण असन्नी नहि होय।
इंद्रिय सहित हुवै तिके, अणिंदिया नहि कोय।।
४१. संचिट्ठणा जघन्य थी, एक समय अवलोय।
उत्कृष्ट पृथकसौ उदधि, जाझेरी ते जोय।।

वा०--कृतयुग्म-कृतयुग्म सन्नी पंचेंद्रिय नैं अवस्थिति जघन्य थकी एक समय। समय पछै तेओगा नीं अन्य संख्या नां सद्भाव थी। उत्कृष्ट थकी सागरोपम सत पृथक्त्व जाझेरी। जेह भणी एह थकी आगल संज्ञी पंचेंद्रिय न हुवै।

दीरकाः, 'सेसाणं छण्हवि उदीरगा वा अणुदीरगा व' त्ति शेषाणां षण्णामपि यथासम्भवमुदीरकाश्चानुदीरकाश्च यतोऽयमुदीरणाविधिः प्रमत्तानां सामान्येनाष्टानां, आवलिकावशेषायुष्कास्तु त एवायुर्वर्जसप्तानामुदीरकाः, अप्रमत्तादयस्तु चत्वारो वेदनीयायुर्वर्जानां षण्णां, तथा सूक्ष्मसम्परायाः आवलिकायां स्वाद्धायाः शेषायां मोहनीयवेदनीयायुर्वर्जानां पञ्चानामपि, उपशान्तमोहास्तूक्तरूपाणां पञ्चानामेव क्षीणकषायाः पुनः स्वाद्धाया आवलिकायां शेषायां नामगोत्रयोरेव सयोगिनोऽप्येतयोरेव अयोगिनस्त्वनुदीरका एवेति।
(वृ. प. ९७३)

२९. कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा। सम्मदिट्ठी वा मिच्छादिट्ठी वा सम्मामिच्छादिट्ठी वा।
३०. नाणी वा अण्णाणी वा। मणजोगी वइजोगी कायजोगी।
३१. उवओगो, वण्णमादी, उस्सासगा वा नीसासगा वा, आहारगा य जहा एगिंदियाणं।
३२. विरया य अविरया य विरयाविरया य। सकिरिया, नो अकिरिया। (श. ४०।१)
३३. ते णं भंते! जीवा किं सत्तविहबंधगा? अट्ठविहबंधगा? छव्विहबंधगा? एगविहबंधगा वा?
३४. गोयमा! सत्तविहबंधगा वा जाव एगविहबंधगा वा। (श. ४०।२)
३५. ते णं भंते! जीवा किं आहारसण्णोवउत्ता जाव परिग्गहसण्णोवउत्ता? नोसण्णोवउत्ता?
३६. गोयमा! आहारसण्णोवउत्ता जाव नोसण्णोवउत्ता वा। सव्वत्थ पुच्छा भाणियव्वा
३७. कोहकसायी वा जाव लोभकसायी वा, अकसायी वा।
३८. इत्थीवेदगा वा पुरिसवेदगा वा नपुंसगवेदगा वा अवेदगा वा।
३९. इत्थिवेदबंधगा वा पुरिसवेदबंधगा वा नपुंसगवेदबंधगा वा अबंधगा वा।
४०. सण्णी, नो असण्णी। सइंदिया, नो अणिंदिया।
४१. संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहत्तं सातिरेगं।

वा०--'संचिट्ठणा जहन्नेणं एक्कं समयं' ति, कृतयुग्मकृतयुग्मसञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणां जघन्येनावस्थितिरेकं समयं समयानन्तरं सङ्ख्यान्तरसद्भावात्, 'उक्कोसेणं सागरोवमसयपुहुत्तं साइरेगं' ति यत इतः परं सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रिया न भवन्त्येवेति,
(वृ. प. ९७३)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४२. आहार तिमहिज जाणवो, जाव नियम थी ताहि।
षट दिशि तणों लियै तिको, ह्वै तस नाड़ी मांही ।।
४३. स्थिति जघन्य थी जेहनीं, समयो एक कहीस।
पछै तेओगादिक हुवै, उत्कृष्ट उदधि तेतीस ।।
४४. समुद्घात षट आदि नीं, सप्तम केवल नांहि।
तेह केवली में हुवै, सन्नी न कहियै ताहि ।।

४५. मारणांतिक समुद्घाते करी, समोहत थका मरंत।
असमोहया पिण मरै, भाखै इम भगवंत ।।
४६. जिम उपपातज आखियो, उव्वट्टणा तिम जान।
निषेध किहांई छै नथी, जाव अनुत्तरविमान ।।
४७. अथ सहु प्राणी हे प्रभु! जाव अनंती वार।
पूर्व ऊपनां जीवड़ा, कडजुम्म-कडजुम्म मझार ।।
४८. इम सोलै ही जुम्म विषे, कहिवूं अर्थ संपेख।
जाव अनंत वार ऊपनां, णवरं इतरो विशेख ।।
४९. परिमाण बेइंद्रिय नों कह्यो, तिम कहिवो सेवं भंत!
शत चालीसम अर्थ थी, प्रथम उद्देशक तंत ।।

४२. आहारो तहेव जाव नियमं छद्दिसिं।

४३. ठिती जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं।

४४. छ समुग्घाया आदिल्लगा।
'छ समुग्घाया आइल्लग' त्ति सञ्ज्ञिपञ्चेन्द्रियाणामाद्याः षडेव समुद्घाता भवन्ति सप्तमस्तु केवलिनामेव ते चानिन्द्रिया इति। (वृ. प. ९७३)
४५. मारणंतियसमुग्घाएणं समोहया वि मरंति, असमोहया वि मरंति।
४६. उव्वट्टणा जहेव उववाओ, न कत्थइ पडिसेहो जाव अणुत्तरविमाणत्ति। (श. ४०।३)
४७. अह भंते! सव्वे पाणा जाव अणंतखुत्तो।

४८. एवं सोलससु वि जुम्मेसु भाणियव्वं जाव अणंतखुत्तो, नवरं—
४९ परिमाणं जहा बेइंदियाणं, सेसं तहेव। (श. ४०।४)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।५)

प्रथम अन्तरशते प्रथमोद्देशकार्थ ।।४०।१।१।।

५०. प्रथम समय कडजुम्म फुन, कडजुम्म हे भगवंत!
सन्नी पंचेंद्रिय तिके, किहां थकी उपजंत?
५१. ऊपजवो परिमाण फुन, आहार तास सुविचार।
जिम एहनों हिज आखियो, प्रथम उद्देश मझार ।।
५२. अवगाहना नैं बंध फुन, वेद वेदना जान।
उदयी अनैं उदीरगा, ए षट बोल पिछान ।।
५३. जिम बेइंद्रिय जीव नां, प्रथम समयिका तेह।
आख्यो तिम कहिवो इहां, वारू विधि करि जेह ।।
५४. कृष्णलेशी वा जाव ते, शुक्ललेश वा होय।
शेष जेम बेइंद्रिया, प्रथम समय नैं जोय ।।
५५. जाव अनंत वार ऊपनां, णवरं इतरो विशेख।
स्त्री अथवा पुं-वेदगा, वा नपुंस-वेदगा पेख ।।
५६. सन्नी ते असन्नी न ह्वैं, शेष तिमज सहु आय।
इम सोलै ही जुम्म विषे, परिमाण तिमहिज ताय ।।
५७. सेवं भंते! स्वामजी, शत चालीसम सोय।
द्वितीय उद्देशक अर्थ थी, आख्यो ए अवलोय ।।

५०. पढमसमयकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति?
५१. उववाओ, परिमाणं आहारो जहा एएसिं चेव पढमोद्देसए।
५२. ओगाहणा बंधो वेदो वेदणा उदयी उदीरगा य

५३. जहा बेंदियाणं पढमसमइयाणं,

५४. तहेव कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा। सेसं जहा बेंदियाणं पढमसमइयाणं
५५. जाव अणंतखुत्तो, नवरं—इत्थिवेदगा वा पुरिसवेदगा वा नपुंसगवेदगा वा,
५६. सण्णिणो नो असण्णिणो, सेसं तहेव। एवं सोलससु वि जुम्मेसु परिमाणं तहेव सव्वं।
५७. सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।७)

प्रथम अन्तरशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।। ४०।१।२ ।।

५८. एम इहां पिण जाणवा, तिमहिज ग्यार उद्देश।
प्रथम तृतीय पंचम गमा, एक सरीखा कहेस ।।
५९. शेष आठ उद्देश गम, एक सरीष कहेस।
चउत्थ अठम दशमा विषे, न करवो कोइ विशेष ।।

५८. एवं एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा तहेव, पढमो तइयो पंचमो य सरिसगमा,
५९. सेसा अट्ठ वि सरिसगमा। चउत्थ-अट्ठम-दसमेसु नत्थि विसेसो कायव्वो। (श. ४०।८)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०. सेवं भंते ! स्वामजी, पंचेंद्रिय महाजुम्म।
प्रथम अंतर शत आखियो, चालीसम अवगम्म ।।

प्रथम अन्तरशते तृतीयादि उद्देशकार्थः ।।४०।१।३-११।।

चत्वारिंशत्तमशते प्रथम अन्तरशतकार्थः ।

६१. ढाल च्यार सय ऊपरै, चौराणूमी कहिवाय।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय थी, 'जय-जश' हरष सवाय ।।

६०. सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४०।९)

ढाल : ४९५

कृष्णलेश्यी आदि सन्नीपंचेन्द्रिय महायुग्मों में उपपात आदि की प्ररूपणा

दूहा

१. कृष्णलेश कडजुम्म-कडजुम्म सन्नी पंचेंद्रिय स्वाम।
किहां थकी ए ऊपजै ? तिमहिज कहिवो ताम।।
२. जिमहिज प्रथम उद्देश में, सन्नी नै आख्यात।
तिमहिज ए कहिवो अछै, णवरं विशेष ख्यात।।
३. बंध वेदवो उदयी फुन, उदीरणा नै लेश।
बंधक संज्ञा कषाय वलि, वेद बंधगा एस।।
४. ए जिम बेंद्रिय नैं कह्या, तिमहिज कहिवा सोय।
कृष्णलेशी नैं वेद त्रिण, वेद रहित नहिं होय।।
५. संचिट्ठणा जघन्य थी, एक समय कहिवाय।
उत्कृष्ट उदधि तेतीस नीं, अंतर्मूहूर्त्त अधिकाय।।

वा०—इहां उत्कृष्ट थकी तेतीस सागरोपम अंतर्मूहूर्त्त अधिक अवस्थान। सातवीं पृथ्वी नैं विषे उत्कृष्ट स्थिति ३३ सागर छै। अनैं अंतर्मूहूर्त्त अधिक ते पाछला भव नों।

६. एवं स्थित पिण जाणवी, णवरं स्थिति विषेह।
अंतर्मूहूर्त्त अधिक जे, नहिं कहिवी छै तेह।।

वा०—स्थिति नैं विषे पूर्व भव संबंधी अंतर्मूहूर्त्त अधिक न कह्यो।

७. शेष जेम एहनांज नैं, प्रथम उद्देश मझार।
आख्यो तिम कहिवो इहां, जाव अनंती वार।।
८. इम सोलै ही जुम्म विषे, सेवं भंते ! स्वाम।
द्वितीय अंतर शत नों प्रथम उद्देशक अभिराम।।
*रे भवियण ! महायुग्म अधिकारी।
रे भवियण ! जिन वच महाजयकारी,
रे भवियण ! चालीसमो शत भारी।।

१,२. कण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? तहेव पढमुद्देसओ सण्णीणं, नवरं—

३. बंध-वेद-उदइ-उदीरण-लेस्स-बंधग-सण्ण-कसाय-वेदबंधगा य

४. एयाणि जहा बेंदियाणं। कण्हलेस्साणं वेदो तिविहो, अवेदगा नत्थि।

५. संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं।

वा०—'उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं' त्ति, इदं कृष्णलेश्याऽवस्थानं सप्तमपृथिव्युत्कृष्टस्थिति पूर्वभवपर्यन्तवर्त्तिनं च कृष्णलेश्यापरिणाममाश्रित्येति। (वृ. प. ९७५)

६. एवं ठिती वि, नवरं—ठितीए अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं न भण्णंति।

७. सेसं जहा एएसिं चेव पढमे उद्देसए जाव अणंतखुत्तो।

८. एवं सोलससु वि जुम्मेसु। (श. ४०।१०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४०।११)

---

*लय : रे भवियण ! जिण आज्ञा सुखकारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

९. पढम समय कृष्णलेशी कडजुम्म-कडजुम्म,
सन्नी पंचेंद्रिया भदंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुवृतंत ।।

९. पढमसमयकण्हलेस्सकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

१०. जिम प्रथम समय उद्देशक आख्यू,
कहिवूं तिमज विशेष रहीत ।
णवरं प्रभु ! कृष्णलेशी यावत ? जिन कहै हुंता प्रतीत ।।

१०. जहा सण्णिपंचिंदियपढमसमयउद्देसए तहेव निरवसेसं,
नवरं— (श. ४०।१२)
ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?
हंता कण्हलेस्सा,

११. शेष तिमज कहिवूं सगलोई, इम सोलै ही युग्म विषेह ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! ए द्वितीय उद्देशक कहेह ।।

११. सेसं तं चेव । एवं सोलससु वि जुम्मेसु ।
(श. ४०।१३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।१४)

१२. इम ए पिण इग्यारै ही उद्देशा, कृष्णलेशी शतक नैं विषेह ।
पहिलो तीजो नैं वलि पंचमो, ए सरीषा गमा कहेह ।।

१२. एवं एए वि एक्कारस उद्देसगा कण्हलेस्ससए । पढम-ततिय-पंचमा सरिसगमा,

१३. शेष अष्ट पिण गमा सरीषा, सेवं भंते ! सेवं भंत !
शत चालीसम द्वितीय अंतर शत, कृष्णलेशी नों ए हुंत ।।

१३. सेसा अट्ठ वि सरिसगमा । (श. ४०।१५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।१६)

चत्वारिंशत्तमशते द्वितीय अंतरशतकार्थः ।

१४. इम नीललेश्या विषे पिण शत कहिवो,
णवरं इतरो विशेख ।
संचिट्ठणा अवस्थान जघन्य थी, समयो एक संपेख ।।

१४. एवं नीललेस्सेसु वि सतं, नवरं—संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं,

१५. उत्कृष्ट थी दश सागर कहियै, पल्य तणों सुविचार ।
असंख्यातमों भाग अधिक फुन, इम स्थिति विषे पिण धार ।।

वा० - संचिट्ठणा कहितां अवस्थान जघन्य थकी एक समय, उत्कृष्ट थकी १० सागरोपम पल्योपम नों असंख्यातमों भाग अधिक ते किम ? पंचमी पृथ्वी नैं ऊपरलै पाथड़े दश सागरोपम पल्योपम असंख्येय भाग अधिक आउखो संभवै । तिहां नील लेश्या हुवै ते माटै उत्कृष्ट थकी इसो कहवूं । जेह इहां पूर्व भव नों छेहलो अन्तर्मुहूर्त्त ते पल्योपम असंख्येय भाग नैं विषे पेठो ते माटै भेदे करी न कह्यो । इम अनेरै स्थानके पिण कहिवो इति ।

१५. उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं । एवं ठिती वि ।

वा०—'उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं' ति, पञ्चमपृथिव्या उपरितनप्रस्तटे दश सागरोपमाणि पल्योपमासंख्येयभागाधिकान्यायुः संभवन्ति, नीललेश्या च तत्र स्यादत उक्तम्—'उक्कोसेण' मित्यादि, यच्चेह प्राक्तनभवान्तिमान्तर्मुहूर्त्तं तत्पल्योपमासंख्येयभागे प्रविष्टमिति न भेदेनोक्तं, एवमन्यत्रापि,
(वृ. प. ९७५)

१६. इम प्रथम तृतीय पंचम तीनूं उद्देशे, शेष तिमज सेवं भंत !
शत चालीसम तृतीय अंतर शत,
नीललेशी नों ए हुंत ।।

१६. एवं तिसु उद्देसएसु, सेसं तं चेव । (श. ४०।१७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।१८)

चत्वारिंशत्तमशते तृतीय अंतरशतकार्थः ।

१७. इम कापोतलेश शतक पिण कहिवो, णवरं इतरो विशेख ।
संचिट्ठणा अवस्थान जघन्य थी, समय एक संपेख ।।

१७. एवं काउलेस्ससतं पि, नवरं—संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं,

१८. उत्कृष्ट थी त्रिण सागर कहियै, पल्य तणों वलि जेह ।
असंख्यातमों भाग अधिक फुन,
वालुकप्रभा ऊपरलै पत्थडेह ।।

१८. उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं ।
'उक्कोसेणं तिन्नि सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइभागमब्भहियाइं' ति यदुक्तं तत्तृतीयपृथिव्या उपरितनप्रस्तटस्थितिमाश्रित्येति ।
(वृ. प. ९७५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. स्थिति विषे पिण इमहिज कहिवो,
प्रथम तृतीय पंचम उद्देशेह ।
ए तीन उद्देशा विषे इम कहिवो,
शेष तिमज सेवं भंते ! लेह ।।

चत्वारिंशत्तमशते चतुर्थ अंतरशतकार्थः ।
।।इति ४०।४।।

१९. एवं ठितीवि । एवं तिसु वि उद्देसएसु, सेसं तं चेव । (श. ४०।१९)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।२०)

२०. इम तेजोलेश्या विषे पिण शत कहिवो,
णवरं इतरो विशेख ।
संचिट्ठणा अवस्थान जघन्य थी, समयो एक संपेख ।।
२१. उत्कृष्ट थकी बे सागर कहियै, पल्य तणों वलि इष्ट ।
असंख्यातमों भाग अधिक ते, द्वितीय कल्प सुरायु उत्कृष्ट ।।

२०. एवं तेउलेस्सेसु वि सतं, नवरं—संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं,

२१. उक्कोसेणं दो सागरोवमाइं पलिओवमस्स असंखेज्जइ-भागमब्भहियाइं ।
'दो सागरोवमाइं' त्यादि यदुक्तं तदीशानदेवपरमायु-राश्रित्येत्यवसेयं, (वृ. प. ९७५)

२२. स्थिति विषे पिण इमहिज णवरं,
नोसन्नोवउत्ता साधु नीं पेक्षाय ।
प्रथम तृतीय पंचम तीनूं गमा विषे,
शेष तिमज सेवं भंते ! ताय ।।

२२. एवं ठितीवि, नवरं—नोसण्णोवउत्ता वा । एवं तिसु वि उद्देसएसु, सेसं तं चेव । (श. ४०।२१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।२२)

चत्वारिंशत्तमशते पंचम अंतरशतकार्थः ।

२३. जिम तेजुलेश्या नों शतक कह्यो छै,
पद्मलेश्या शतक पिण तेम ।
णवरं इतरो विशेष कह्यो छै, सांभलजो धर प्रेम ।।

२३. जहा तेउलेस्ससतं तहा पम्हलेस्ससतं पि, नवरं—

२४. संचिट्ठणा अवस्थान जघन्य थी, एक समय कहिवाय ।
उत्कृष्टी दश सागरोपम नीं, अंतर्मुहूर्त्त अधिकाय ।।

वा०—इहां उत्कृष्ट थकी दश सागरोपम अंतर्मुहूर्त्त अधिक ते किम ? पंचमा ब्रह्म नामा देवलोक नां देवतां नां आउखा प्रतै आश्रयी नैं कह्यूं । तिहां पदम लेश्याये एतलोज आउखो हुवै अंतर्मुहूर्त्त ते पूर्व भव अंतिमवर्त्ती ।

२४. संचिट्ठणा जहण्णेणं एक्कं समयं, उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

वा०—'उक्कोसेणं दस सागरोवमाइं' इत्यादि तु यदुक्तं तद्ब्रह्मलोकदेवायुराश्रित्येति मन्तव्यं, तत्र हि पद्मलेश्यैतावच्चायुर्भवति, अन्तर्मुहूर्त्तं च प्राक्तनभवावसानवर्त्तीति, (वृ. प. ९७५)

२५. स्थिति विषे पिण इमहिज कहिवूं, णवरं इतरो विशेख ।
पूर्व भव नों अंतर्मुहूर्त्त न भणवो, शेष तिमज संपेख ।।
२६. इम ए पांचूंई शतक विषे जे,
जिम कृष्णलेश्या शतक विषे मंत ।
गमो कह्यो तिमहिज जाणवो,
जाव अणंतखुत्तो सेवं भंत !

२५. एवं ठितीवि नवरं—अंतोमुहुत्तं न भण्णति, सेसं तं चेव ।
२६. एवं एएसु पंचसु सतेसु जहा कण्हलेस्ससते गमओ तहा नेयव्वो जाव अणंतखुत्तो । (श. ४०।२३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।२४)

चत्वारिंशत्तमशते षष्ठ अंतरशतकार्थः ।

२७. शुक्ललेशी शतक जिम ओघिक शत,
तिम णवरं संचिट्ठणा स्थित ।
जिम कृष्णलेशी शतक विषे कही तिम,
कहिवो एह उचित ।।

वा०—शुक्ल लेश्या शतक नैं विषे संचिट्ठणा अनैं स्थिति जिम कृष्णलेशी शतक नैं विषे कही तिम कहिवी । एतलै तेतीस सागरोपम अंतर्मुहूर्त्त अधिक

२७. सुक्कलेस्ससतं जहा ओहियसतं, नवरं—संचिट्ठणा ठिती य जहा कण्हलेस्ससते,

वा०—शुक्ललेश्याशते—'संचिट्ठणा ठिई य जहा कण्हलेस्सए' ति त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सान्तर्मुहूर्त्तानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इत्यर्थः। शुक्ल लेश्या नों अवस्थान ए पूर्व भव नों छेहलो अंतर्मुहूर्त्त अनैं अनुत्तरायु आश्रयी नैं जाणवो अनैं स्थिति तेतीस सागरोपम नीं जाणवी।

शुक्ललेश्याऽवस्थानमित्यर्थः, एतच्च पूर्वभवान्त्यान्तर्मुहूर्त्तमनुत्तरायुश्चाश्रित्येत्यवसेयं, स्थितिस्तु त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणीति, (वृ. प. ९७५)

२८. शेष तिमज जाव अनंतखुत्तो, सेवं भंते! सेवं भंत!
चालीसम शत विषे अर्थ थी, सप्तम अंतर शत तंत।।

२८. सेसं तहेव जाव अणंतखुत्तो। (श. ४०।२५)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।२६)

चत्वारिंशत्तमशते सप्तम अन्तरशतकार्थः।

इति चालीसमा रो सप्तम अंतर शत ए प्रथम शतक समुच्चय अनैं ६ लेश्या संघाते ६ शतक एवं ७ शतक कह्या।

हिवै भवसिद्धिक नां ७ शतक कहै छै। तिहां प्रथम शत भवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म, कृष्णलेशी भवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म जाव शुक्ललेशी भवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म ए सातमों शतक कहै छै—

२९. भवसिद्धिक जे कडजुम्म-कडजुम्म, सन्नी पंचेंद्रिय भंत!
किहां थकी ऊपजै छै आवी? इत्यादिक सुवृतंत।।

२९. भवसिद्धीयकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति?

३०. जिम पहिलो सन्नी शत आख्यो, जाणवो तिम संपेख।
भवसिद्धिक आलावे करी नैं, णवरं इतरो विशेख।।

३०. जहा पढमं सण्णिसत्तं तहा नेयव्वं भवसिद्धीयाभिलावेणं, नवरं— (श. ४०।२७)

३१. प्राण सर्व प्रभु! उपनां पूर्वे? अर्थ समर्थ न एह।
शेष तिमज कहिवो सेवं भंते!, अष्टम अंतर शत लेह।।

३१. सव्वे पाणा? नो तिणट्ठे समट्ठे, सेसं तं चेव। (श. ४०।२८)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।२९)

चत्वारिंशतम शते अष्टम अंतरशतकार्थः।

३२. कृष्णलेशी भवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म,
सन्नी पंचेंद्रिय भंत!
किहां थकी ऊपजै छै आवी? कहियै तास उदंत।।

३२. कण्हलेस्सभवसिद्धीयकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति?

३३. इम एणे अभिलाप करी जिम,
ओघिक कृष्णलेशी शत ख्यात।
तिमहिज कहिवो सेवं भंते! नवम अंतर शतक समाप्त।।

३३. एवं एएणं अभिलावेणं जहा ओहियकण्हलेस्ससतं। (श. ४०।३०)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।३१)

चत्वारिंशत्तमशते नवम अन्तर शतकार्थः।

३४. इम नीललेशी भवसिद्धिक विषे पिण, कहिवो शतक सुजोय।
सेवं भंते! सेवं भंते! दशम अंतर शत होय।।

३४ एवं नीललेस्सभवसिद्धीए वि सतं। (श. ४०।३२)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।३३)

चत्वारिंशत्तमशते दशम अंतरशतकार्थः।

३५. इम जिम ओघिक सन्नी पंचेंद्री नां, सप्त शतक आख्यात।
इम भवसिद्धिक संघाते पिण जे, कहिवा शतकज सात।।

३५. एवं जहा ओहियाणि सण्णिपंचिंदियाणं सत्त सताणि भणियाणि, एवं भवसिद्धीएहि वि सत्त सताणि कायव्वाणि,

३६. णवरं सातूंई शतक विषे पिण, पूर्व उपनां सहु प्राण?
जिन कहै अर्थ समर्थ नहीं ए, शेष तिमज सेवं भंते! जाण।।

३६. नवरं—सत्तसु वि सतेसु सव्वे पाणा जाव नो तिणट्ठे समट्ठे, सेसं तं चेव। (श. ४०।३४)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४०।३५)

इति सप्त भवसिद्धिक संपूर्ण। इति चालीसम शते चतुर्दश अंतर शतक अर्थ थकी संपूर्ण।।४०।११-१४।।

चत्वारिंशत्तमशते एकादशादि शतकार्थः।

३७. अभवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म जे, सन्नी पंचेंद्रिय भंत!
किहां थकी ऊपजै छै आवी? गोयम प्रश्न सुतंत।।

३७. अभवसिद्धीयकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते! कओ उववज्जंति?

३८. ऊपजवो तिमहिज कहिवो छै, वर्जी अनुत्तरविमान।
नवग्रोवेयक तांइ अभवसिद्धिक, तेहथी ऊपजै आन।।

३८. उववाओ तहेव अणुत्तरविमाणवज्जो।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३९. परिमाण आहार नें ऊंचपणों बंध, वेदवूं वेदना जाण ।
उदय उदीरणा जिम कृष्णलेशी, शतक विषे तिम आण ।।

४०. कृष्णलेशी जाव शुक्ललेशी वा, सम्यकदृष्टि न होय ।
मिथ्यादृष्टि अभव्य हुवै छै, मिश्रदृष्टि नहिं कोय ।।

४१. ज्ञानी नहीं नें अज्ञानी ह्वै, एवं जिम अधिकार ।
कृष्णलेशी शत विषे कह्यूं जे, कहिवूं तिम सुविचार ।।

४२. णवरं इतरो विशेष अभव्य ते, विरतिवंत नहिं होय ।
निश्चै अविरती अभव्य हुवै छै, विरताविरति नहिं कोय ।।

४३. संचिट्ठणा रहिवो फुन स्थिति, जिम ओघिक उद्देश ।
ओघिक आख्यो तिम कहिवूं विधि सेती,
जिन वच न्याय अशेष ।।

४४. समुद्घात पंच आदि तणां ह्वै, उवट्टणा तिमहीज ।
पंच अनुत्तरविमान वर्जी नें, ग्रैवेयके उत्पत्ति हीज ।।

४५. सर्व प्राण प्रभु ! पूर्वे ऊपनां ? अर्थ समर्थ न एह ।
शेष जेम कृष्णलेशी शतक विषे, आख्यो तिमज कहेह ।।

४६. जाव अनंती वार ऊपनों, इम सोलै ही युग्म विषेह ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! प्रथम उद्देशो एह ।।

इति चालीसम शत अभवसिद्धिक नों १५ मों अंतरशत तेहनों प्रथमोद्देशकार्थः ।।४०।१५।१।।

४७. पढम समय अभवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म,
सन्नी पंचेंद्रिय भंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? उत्तर तास कहंत ।।

४८. जिम सन्नी प्रथम समय नें उद्देशे, आख्यो तिमज उदंत ।
णवरं एतलो विशेष कह्यो छै, सांभलजो धर खंत ।।

४९. सम्यक्त्व मिश्रदृष्टि नें ज्ञान, फुन सर्व ठिकाणै नांही ।
शेष तिमज कहिवो सेवं भंते !, ए द्वितीय उद्देश कहाई रे ।।

इति पनरमअंतरशते द्वितीयोद्देशकार्थः ।।४०।१५।२।।

५०. इम इहां पिण ग्यार उद्देशा करिवा,
प्रथम तृतीय पंचक गम एक ।
शेष आठूंही एक सरीषा, गमा जाणवा उवेख ।।

इति प्रथम अभवसिद्धिक महायुग्म शत संपूर्ण । इति पनरमों अंतर शतक संपूर्ण ।

चत्वारिंशत्तमशते पञ्चदश अन्तरशतकार्थः ।

५१. कृष्णलेशी अभवसिद्धिक कडजुम्म-कडजुम्म,
सन्नी पंचेंद्रिय भंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुवृतंत ।।

५२. जिम एहनैंज ओघिक शतके कह्यूं,
कृष्णलेशी शतक पिण तेम ।
णवरं इतरो विशेष अछै ते, सांभलजो धर प्रेम ।।

५३. हे प्रभु ! कृष्णलेशी ते जीवा ? तब भाखै जिनराय ।
हां गोतम ! ते कृष्णलेशी छै, हिवै स्थिति संचिट्ठण आय ।।

---

३९. परिमाणं अवहारो उच्चत्तं बंधो वेदो वेदणं उदओ उदीरणा य जहा कण्हलेस्ससते ।

४०. कण्हलेस्सा वा जाव सुक्कलेस्सा वा । नो सम्मदिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, नो सम्मामिच्छादिट्ठी ।

४१. नो नाणी, अण्णाणी, एवं जहा कण्हलेस्ससते,

४२. नवरं—नो विरया, अविरया, नो विरयाविरया ।

४३. संचिट्ठणा ठिती य जहा ओहिउद्देसए ।

४४. समुग्घाया आदिल्लगा पंच । उव्वट्टणा तहेव अणुत्तरविमाणवज्जं ।

४५. सव्वे पाणा ? नो तिणट्ठे समट्ठे, सेसं जहा कण्हलेस्ससते

४६. जाव अणंतखुत्तो । एवं सोलससु वि जुम्मेसु ।
(श. ४०।३६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।३७)

४७. पढमसमयअभवसिद्धीयकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

४८. जहा सण्णीणं पढमसमयउद्देसए तहेव, नवरं—

४९. सम्मत्तं सम्मामिच्छत्तं नाणं च सव्वत्थ नत्थि, सेसं तहेव । (श. ४०।३८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।३९)

५०. एवं एत्थ वि एक्कारस उद्देसगा कायव्वा पढमतइय-पंचमा एक्कगमा, सेसा अट्ठ वि एक्कगमा ।
(श. ४०।४०)

५१. कण्हलेस्सअभवसिद्धीयकडजुम्मकडजुम्मसण्णिपंचिंदिया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

५२. जहा एएसिं चेव ओहियसतं तहा कण्हलेस्ससयं पि, नवरं— (श. ४०।४२)

५३. ते णं भंते ! जीवा कण्हलेस्सा ?
हंता कण्हलेस्सा । ठिती, संचिट्ठणा य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५४. जिम कृष्णलेशी शतक विषे कह्यूं तिम,
स्थिति संचिट्ठणा तेम ।
शेष तिमज सेवं भंते ! स्वामी, सोलम अंतर शत एम ।।

इति द्वितीय महायुग्म शतकार्थ संपूर्ण। इति चालीसम शते सोलमो अंतर शतकार्थ ।

चत्वारिंशत्तमशते षोडश अन्तरशतकार्थः ।

५५. इम षट लेश्या संघाते षट शत, करिवा विधि सूं लेख ।
जिम कृष्णलेशी शत विषे कह्यो तिम,
णवरं इतरो विशेख ।।
५६. संचिट्ठणा नैं स्थिति दोनूंई, जिमज ओघिक शतकेह ।
आख्यो तिमहिज कहिवो णवरं, इतरो विशेष कहेह ।।
५७. शुक्ललेश्या नैं विषे उत्कृष्टज, इकतीस सागर जाण ।
अंतर्मुहूर्त्त अधिक कहीजै, न्याय सहित जिन वाण ।।

वा० — उत्कृष्ट थकी इकतीस सागरोपम अंतर्मुहूर्त्त अधिक नवमों ग्रैवेयक आश्रयी नैं कह्यूं । जिहां देव नों एतलोज आउखो अनैं शुक्ललेश्या पिण हुवै । अभव्य उत्कृष्ट थकी तिहांज ऊपजै । देवपणैं अंतर्मुहूर्त्त ते पूर्वभव अन्त्य जाणवो ।

५८. इमहिज स्थिति कहिवी पिण णवरं,
अंतर्मुहूर्त्त कहिवो नांय ।
इकतीस सागर नवम ग्रैवेयक,
जघन्य स्थिति तिमज कहिवाय ।।
५९. सगलैई सम्यक्त्व ज्ञान नहीं छै,
विरति विरताविरती नांही ।
अनुत्तरविमाणे ऊपजवो नहीं छै,
अभवसिद्धिक नैं त्यांही ।।
६०. सगलाई प्राणी पूर्वे ऊपनां ? अर्थ समर्थ न एह ।
सेवं भंते ! सेवं भंते !, तहत्ति सत्य वच जेह ।।
६१. इम ए सप्त अभवसिद्धिक शत, महायुग्म शतक होय ।
ए इकवीस सन्नी महायुग्मज, शतक थया इम सोय ।।

चत्वारिंशत्तमशते सप्तदशादि अन्तर शतकार्थः ।

६२. सगलाइ इक्यासी महायुग्म शत, थया संपूर्ण सोय ।
एह चालीसम शतक कह्यो छै, अर्थ थकी अवलोय ।।

वा० — पैंतीसमां शतक नैं विषे एकेंद्रिय महायुग्म नां १२ अन्तर शतक । छतीसमां शतक नैं विषे बेंद्रिय महायुग्म नां १२ अन्तर शतक — एवं २४ । सैंतीसमां शतक नैं विषे तेंद्रिया नां १२ अन्तर शतक — एवं ३६ । अड़तीसमां शतक नैं विषे चउरिंद्रिय महायुग्म नां १२ अन्तर शतक — एवं ४८ । गुणचालीसमां शतक नैं विषे असन्नी पंचेंद्रिय महायुग्म नां १२ अन्तर शतक — एवं

५४. जहा कण्हलेस्ससते, सेसं तं चेव । (श. ४०।४३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।४४)

५५. एवं छहि वि लेस्साहिं छ सता कायव्वा जहा कण्हलेस्ससतं, नवरं—

५६. संचिट्ठणा ठिती य जहेव ओहियसते तहेव भाणियव्वा, नवरं—

५७. सुक्कलेस्साए उक्कोसेणं इक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं ।

वा० — सुक्कलेस्साए उक्कोसेणं एक्कतीसं सागरोवमाइं अंतोमुहुत्तमब्भहियाइं' ति यदुक्तं तदुपरितनग्रैवेयकमाश्रित्येति मन्तव्यं, तत्र हि देवानामेतावदेवायुः शुक्ललेश्या च भवति, अभव्याश्चोत्कर्षतस्तत्रैव देवतयोत्पद्यन्ते न तु परतोऽपि, अन्तर्मुहूर्त्तं च पूर्वभवावसानसम्बन्धीति । (वृ. प. ९७५)

५८. ठिती एवं चेव, नवरं—अंतोमुहुत्तं नत्थि जहण्णगं, तहेव

५९. सव्वत्थ सम्मत्त-नाणाणि नत्थि । विरई विरयाविरई अणुत्तरविमाणोववत्ति—एयाणि नत्थि ।

६०. सव्वे पाणा ? नो तिणट्ठे समट्ठे । (श. ४०।४५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।४६)
६१. एवं एयाणि सत्त अभवसिद्धीयमहाजुम्मसताइं भवंति । (श. ४०।४७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४०।४८)
एवं एयाणि एक्कवीसं सण्णिमहाजुम्मसताणि ।

६२. सव्वाणि वि एकासीतिमहाजुम्मसताइं । (श. ४०।४९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६०। चालीसमा शतक नैं विषे सन्नी पंचेंद्रिय महायुग्म नां २१ अन्तर शतक—
एवं ८१। इम सर्व महायुग्म नां ८१ अन्तर शतक जाणवा।

६३. च्यार सय नें पिच्याणूमी ए आखी, महायुग्म शत ढाल।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' मंगलमाल।।

चालीसमों शतक अर्थ थकी संपूर्ण ।।४०।।

गीतक छन्द

१. संज्ञी जु पंचेंद्रिय विषे महायुग्म वर्णन युक्त ही।
इकवीस अन्तर शतक युत चालीसमों शत व्यक्त ही।।
२. तसु जोड़ धर मन कोड़ अति सारल्य युत रचना करी।
कविता रु वनिता सरलता संयुक्त ह्वै सहु मन हरी।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकचत्त्वारिंशत्तम शतक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एकचत्वारिंशत्तम शतक

ढाल : ४९६

दूहा

१. चालीसम शत आखियो, महायुग्म अधिकार।
अथ शत इकतालीस में, राशीजुम्म उदार।।

राशियुग्म के प्रकार

२. राशियुग्म प्रभु ! केतला ? जिन कहै च्यार सुजोग।
राशीजुम्मा दाखिया, कडजुम्म जाव कलियोग।।

३. युगल वाचक छै जुम्म रव, पिण इहां नहीं छै एह।
राशि रव करी विशेषियै, राशि रूप जुम्म एह।।

४. राशि रूप छै युग्म ए, पिण द्वितीय रूप इहां नांहि।
तिण कारण थी आखिया, राशीजुम्मा ताहि।।

वा०—युग्म शब्द युगल वाचक पिण छै। इह कारण थकी एह इहां राशि शब्दे करी विशेषियै। तिवारै राशि रूप युग्म, पिण द्वितीय रूप युग्म नहीं इति राशियुग्म।

२. कति णं भंते ! रासीजुम्मा पण्णत्ता ? गोयमा ! चत्तारि रासीजुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे जाव कलियोगे। (श. ४१।१)

वा०—'रासीजुम्म' त्ति युग्मशब्दो युगलवाचकोऽप्यस्त्यतोऽसाविह राशिशब्देन विशेष्यते ततो राशिरूपाणि युग्मानि न तु द्वितयरूपाणीति राशियुग्मानि, (वृ. प. ९७८)

५. किण अर्थे प्रभु ! आखिया, रासीजुम्मा च्यार।
यावत कलियोगे लगै, आखो जी जगतार ?
*रासीयुग्म शतक जिन आखियो।। (ध्रुपदं)

५. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—चत्तारि रासीजुम्मा पण्णत्ता, तं जहा—कडजुम्मे जाव कलियोगे ?

६. जिन कहै जेह राशि छै तेहनें,
चिहुं अपहारे करि अवगम्मो जी।
अपहरतां थकां च्यार छेहड़ै हुवै, ते राशियुग्मकडजुम्मो जी।।

६. गोयमा ! जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं अवहीरमाणे चउपज्जवसिए, सेत्तं रासीजुम्मकडजुम्मे।

७. इम यावत जेह राशि छै तेहनें,
चिहुं अपहारे करि सुप्रयोगो जी।
अपहरतां थकां एक छेहड़ै हुवै, ते राशियुग्मकलियोगो जी।।

७. एवं जाव जे णं रासी चउक्कएणं अवहारेणं एगपज्जवसिए, सेत्तं रासीजुम्मकलियोगे।

८. ते तिण अर्थे करि हे गोयमा ! जाव कल्योज कहीजै जी।
नारकि आदि तणीं पूछा हिवै, वारू अर्थ लहीजै जी।।

८. से तेणट्ठेणं जाव कलियोगे। (श. ४१।२)

राशियुग्मकृतयुग्मज २४ दण्डकों में उपपात आदि की प्ररूपणा

९. राशियुग्मकृतयुग्मज नारकी,
प्रभु ! किहां थकी उपजंतो जी ?
ऊपजवो जिम पन्नवण नें विषे, छठै पद व्युत्क्रंतो जी।।

९. रासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति? उववाओ जहा वक्कंतीए। (प. ६।७०-८०)। (श. ४१।३)

* लय : केकई रे कुकला केलवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१०. ते प्रभु ! जोवा एक समय विषे, किता ऊपजै एहो जी ?
जिन कहै चिहुं अठ द्वादश सोल वा,
संख असंख उपजेहो जी ।।

११. हे भगवंतजी ! ते प्रभु! जीवड़ा, अंतर-सहित उपजंतो जी ?
अथवा अंतर-रहितज ऊपजै, तेह निरन्तर हुंतो जी ?

१२. श्री जिन भाखै गोयम ! ऊपजै, अंतर-सहित पिण जेहो जी ।
तथा निरंतर पिण ते ऊपजै, ते अंतर-रहित कहेहो जी ।।

१३. अंतर-सहितज ऊपजता थका, जघन्य थकी इम जोयो जी ।
एक समय नों अंतर जाणवो, पछै ऊपजै सोयो जी ।।

१४. वलि उत्कृष्टो जो अंतर हुवै, असंख समया जाणी जी ।
अंतर करिनै उपजै छै तिके, वारू जिनवर वाणी जी ।।

१५. वलि निरंतर ऊपजतां थकां, जघन्य थकी इम जोयो जी ।
दोय समय लग उपजै छै तिके, पछै न ऊपजै कोयो जी ।।

१६. उत्कृष्ट थकी जे असंख समय लगै, अनुसमय अवलोयो जी ।
विरह-रहित निरंतर ऊपजै, त्रिण पद एकार्थ होयो जी ।।

वा०—अनुसमय १. अविरहिय २. निरंतर ३.—ए तीनूं पद नूं एक अर्थ जाणवूं ।

१७. ते प्रभु ! जीवा हे भगवंतजी, जेह समय कडजुम्मो जी ।
तेह समय में तेओगा हुवै ? वलि पूछै अवगम्मो जी ।।

१८. जेह समय मे तेओगा हुवै, ते समय कडजुम्मा होयो जी ?
जिन कहै एह अर्थ समर्थ नहीं, न्याय विचारी जोयो जी ।।

१९. जेह समय में कडजुम्मा हुवै, ते समय दावरजुम्म होयो जी ।
जेह समय द्वापरजुम्मा हुवै, ते समय कडजुम्मा जोयो जी ?
जिन कहै एह अर्थ समर्थ नहीं ।।

२०. जेह समय में कडजुम्मा हुवै, ते समय कल्योज कहायो जी ।
जेह समय में कलिओगा हुवै, ते समय कडजुम्म थायो जी ?
जिन कहै एह अर्थ समर्थ नहीं ।।

२१. हे प्रभु ! जीवा ते किम ऊपजै ? जिन कहै दे दृष्टंतो जी ।
प्लवक कूदणहारो जीव ते, प्लवमान कूदंतो जी ।।

२२. इम जिम उपपात शतक में आखियो,
तिमहिज कहिवो तेहो जी ।
यावत पर प्रयोग करी जिको, नत्थि ऊपजै जेहो जी ।।

२३. ते प्रभु ! जीवा स्यूं आतम यशे करी, उपजै छै अवधारो जी ?
तथा आत्मना अयश करी तिको,
ऊपजै नरक मझारो जी ?

१०. ते णं भंते ! जीवा एगसमएणं केवइया उववज्जंति ?
गोयमा ! चत्तारि वा अट्ठ वा बारस वा सोलस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति ।
(श. ४१।४)

११. ते णं भंते ! जीवा किं संतरं उववज्जंति ? निरंतरं उववज्जंति ?

१२. गोयमा ! संतरं पि उववज्जंति, निरंतरं पि उववज्जंति ।

१३. संतरं उववज्जमाणा जहण्णेणं एक्कं समयं,

१४. उक्कोसेणं असंखेज्जे समए अंतरं कट्टु उववज्जंति ।

१५ निरंतरं उववज्जमाणा जहण्णेणं दो समया,

१६. उक्कोसेणं असंखेज्जा समया अणुसमयं अविरहियं निरंतरं उववज्जंति । (श. ४१।५)
'अणुसमय' मित्यादि, पदत्रयमेकार्थम् ।
(वृ. प. ९७८)

१७. ते णं भंते ! जीवा जं समयं कडजुम्मा तं समयं तेयोगा ?

१८. जं समयं तेयोगा तं समयं कडजुम्मा ?
नो तिणट्ठे समट्ठे । (श. ४१।६)

१९. जं समयं कडजुम्मा तं समयं दावरजुम्मा ? जं समयं दावरजुम्मा तं समयं कडजुम्मा ?
नो तिणट्ठे समट्ठे । (श. ४१।७)

२०. जं समयं कडजुम्मा तं समयं कलियोगा ? जं समयं कलियोगा तं समयं कडजुम्मा ? नो तिणट्ठे समट्ठे ।
(श. ४१।८)

२१. ते णं भंते ! जीवा कहिं उववज्जंति ?
गोयमा ! से जहानामए पवए पवमाणे,

२२. एवं जहा उववायसते (३१।५) जाव नो परप्पयोगेणं उववज्जंति । (श. ४१।९)

२३. ते णं भंते ! जीवा किं आयजसेणं उववज्जंति ?
आयअजसेणं उववज्जंति ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सोरठा

२४. जश हेतू जश जाण, संजम तिण करि ऊपजै।
तथा असंजम माण, अयश तणों हेतू तिको ।।

वा० —आयजसेणंति—आत्मसंबंधि यश—जशहेतुपणां थकी । जश— संयम आत्मजश तेणे आत्मयशे करी ।

वा०—'आयजसेणं' ति आत्मनः सम्बन्धि यशो यशोहेतुत्वाद्यशः—संयमः आत्मयशस्तेन, (वृ. प. ९७८)

२५. *जिन कहै आत्मयश—संजम करी, नहिं ऊपजै छै जेहो जी ।
आत्मअयश—असंयम करि तिको, ऊपजै नरक विषेहो जी ।।

२५. गोयमा ! नो आयजसेणं उववज्जंति, आयअजसेणं उववज्जंति । (श. ४१।१०)

२६. जो आत्मअयश करी नें ऊपजै,
तो स्यूं निजजश करि उपजीवै जी ?
कै उपजीवै रे आत्मअयश करी ? ए गोयम प्रश्न कहीवै जी ।।

वा०—आत्म-यश ते आत्म-संजम प्रति उपजीवै—आश्रय धारण करै कै आत्म-अयश ते आत्म-असंयम प्रति उपजीवै—आश्रय धारण करै ?

२६. जइ आयअजसेणं उववज्जंति—किं आयजसं उवजीवंति ? आयअजसं उवजीवंति ?

वा०—'आयजसं उवजीवंति' त्ति 'आत्मयशः' आत्मसंयमम् 'उपजीवन्ति' आश्रयन्ति विदधतीत्यर्थः, (वृ. प. ९७८,९७९)

२७. जिन कहै आत्मयश -संजम प्रतै, ते उपजीवै नांही जी ।
आत्मअयश—असंजम प्रति तिको, उपजीवै छै त्यांही जी ।।

२७. गोयमा ! नो आयजसं उवजीवंति, आयअजसं उवजीवंति । (श. ४१।११)

वा०—इहां सर्व नैं हीज आत्मअयश तेहिज उत्पत्ति । ते उत्पत्ति नैं विषे सर्व नैं पिण अविरतपणां थकी ।

वा०—इह च सर्वेषामेवात्मायशसैवोत्पत्तिः उत्पत्तौ सर्वेषामप्यविरतत्वादिति । (वृ. प. ९७९)

२८. जो उपजीवै आत्म-अयश करी, तो स्यूं जीवा तेहो जी ।
सलेशी कै अलेशी अछै ? इम गोयम पूछेहो जी ।।

२८. जइ आयअजसं उवजीवंति—किं सलेस्सा ? अलेस्सा ?

२९. श्री जिन भाखै गोयम ! सांभले, सलेशी ते होयो जी ।
पिण अलेशी जेह हुवै नहीं, ए जिन उत्तर जोयो जी ।।

२९. गोयमा ! सलेस्सा, नो अलेस्सा । (श. ४१।१२)

३०. जो सलेशी हुवै ते जीवड़ा, तो स्यूं किरिया-सहीतो जी ?
कै क्रिया-रहित हुवै ते जीवड़ा ? गोयम प्रश्न वदीतो जी ।।

३०. जइ सलेस्सा किं सकिरिया ? अकिरिया ?

३१. श्री जिन भाखै क्रिया-सहित ते,
पिण क्रियारहित न होयो जी ।
एम सुणी नें गोयम जाणता, वलि पूछै अवलोयो जी ।।

३१. गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया । (श. ४१।१३)

३२. जो क्रिया-सहित छै तो तिणहिज भवे, सीझै बूझै जेहो जी ।
यावत अंत करै सहु दुख तणों, अर्थ समर्थ न एहो जी ।।

३२. जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ? नो तिणट्ठे समट्ठे । (श. ४१।१४)

३३. राशिजुम्मकडजुम्म असुर प्रभु ! किहां थकी उपजेहो जी ?
जिमज नारकी आख्या तिमज ए, निरवशेषपणें कहेहो जी ।।

३३. रासीजुम्मकडजुम्मअसुरकुमारा णं भंते ! कओ उववज्जंति ? जहेव नेरतिया तहेव निरवसेसं ।

३४. एवं जाव तिर्यंच-पंचेंद्रिया, णवरं वणस्सइकायो जी ।
जाव असंख अनंत वा ऊपजै, शेष तिमज कहिवायो जी ।।

३४. एवं जाव पंचिंदियतिरिक्खजोणिया, नवरं—वणस्सइकाइया जाव असंखेज्जा वा अणंता वा उववज्जंति, सेसं एवं चेव ।

३५. मनुष्य तिके पिण इमहिज जाणवा, जाव इहां लग हुंतो जी ।
आत्म-जशे करि नें ऊपजै नहीं, निज अजश करी उपजंतो जी ।।

३५. मणुस्सा वि एवं चेव जाव नो आयजसेणं उववज्जंति, आयअजसेणं उववज्जंति । (श. ४१।१५)

३६. जो आत्म-अयश करी ते ऊपजै,
तो स्यूं आत्म-अयश प्रति तेहो जी ।
उपजीवै आश्रय धारण करै, कै उपजीवै निज अयशेहो जी ।।

३६. जइ आयअजसेणं उववज्जंति—किं आयजसं उवजीवंति ? आयअजसं उवजीवंति ?

*लय : केकई रे कुकला केलवै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३७. जिन कहै आत्मयश प्रति पिण तिके, उपजीवै मनु प्राणी जी।
आत्मअयश प्रति पिण उपजीवता,
अमल न्याय चित आणी जी ।।

वा०—इहां मनुष्य आत्म-जश ते संजम प्रति पिण उपजीवै ते आश्रय धारण करै। अनै आत्म-अयश प्रति पिण उपजीवै ते असंयम प्रति धारण करै। एतलै मनुष्य संजम रूप आश्रय प्रति पिण धारण करै ते असंजम प्रति पिण अंगीकार करी रहै।

३८. जो आत्म-यश प्रति उपजीवै अछै, तो स्यूं सलेशी होयो जी ?
तथा अलेशी हुवै ते मानवी ? जिन कहै बिहुं ही होयो जी ।।
३९. जो अलेशी हुवै ते मानवी, तो स्यूं किरिया-सहीतो जी।
अथवा क्रिया-रहित हुवै तिके ? गोयम प्रश्न पुनीतो जी ।।
४०. जिन कहै क्रिया-सहित हुवै नहीं, क्रिया-रहित ते होई जी।
चवदम गुणठाणे इरियावही, क्रिया न लागै कोई जी ।।
४१. किरिया-रहित हुवै जो ते मनु, तो तिणहीज भव सीझंता जी।
यावत अंत करै सहु दुख तणों ? जिन कहै अंत करंता जी ।।

४२. जो सलेशी हुवै ते मानवी,
तो क्रिया-सहित कै क्रिया-रहीतो जी ?
जिन कहै क्रिया-रहित हुवै नहीं,
हुवै छै क्रिया-सहीतो जी ।।
४३. क्रिया-सहित हुवै जो ते मनु, तो तिणहिज भव सीझंता जी।
यावत अंत करै सहु दुख तणों ? गोयम प्रश्न पूछंता जी ।।
४४. जिन कहै केइक सीझै तिण भवे, जाव करै अंत त्यांही जी।
केइक तिण भव करि सीझै नहीं, जाव करै अंत नांही जी ।।

४५. जो आत्म-अजश प्रति उपजीवै,
तो स्यूं सलेशी कै अलेशी जी ?
श्री जिन भाखै अलेशी नहीं, ह्वै छै तेह सलेशी जी ।।
४६. जो सलेशी तो स्यूं क्रिया-सहित छै,
कै क्रियारहित कहायो जी ?
श्री जिन भाखै क्रिया-सहित ह्वै,
क्रिया-रहित न थायो जी ।।
४७. जो क्रिया-सहित तो सीझै तिणहिज भवे,
जाव करै दुख अंतो जी ?
जिन कहै एह अर्थ समर्थ नहीं, विरति विना न सीझंतो जी ।।
४८. व्यंतर ज्योतिषी नैं वैमानिका, कहिवा नारकि जेमो जी।
सेवं भंते ! शत इकताल में, प्रथम उद्देशक एमो जी ।।
।। इति ४१।१ ।।
४९. ढाल च्यार सय ऊपर जाणवी, छिन्नूमी पहछाणो जी।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसाद थी,
'जय-जश' हरष कल्याणो जी ।।

३७. गोयमा ! आयजसं पि उवजीवंति, आयअजसं पि उवजीवंति। (श. ४१।१६)

३८. जइ आयजसं उवजीवंति किं सल्लेसा ? अलेस्सा ?
गोयमा ! सलेस्सा वि अलेस्सा वि। (श. ४१।१७)
३९. जइ अलेस्सा किं सकिरिया ? अकिरिया ?

४०. गोयमा ! नो सकिरिया, अकिरिया। (श. ४१।१८)
४१. जइ अकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ? हंता सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति। (श. ४१।१९)
४२. जइ सलेस्सा किं सकिरिया ? अकिरिया ?
गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया। (श. ४१।२०)

४३. जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ?
४४. गोयमा ! अत्थेगइया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति, अत्थेगइया नो तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति। (श. ४१।२१)
४५. जइ आयअजसं उवजीवंति किं सलेस्सा ? अलेस्सा ?
गोयमा ! सलेस्सा, नो अलेस्सा। (श. ४१।२२)

४६. जइ सलेस्सा किं सकिरिया ? अकिरिया ?
गोयमा ! सकिरिया, नो अकिरिया। (श. ४१।२३)

४७. जइ सकिरिया तेणेव भगग्गहणेणं सिज्झंति जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति ? नो इणट्ठे समट्ठे।

४८. वाणमंतर जोइसियवेमाणिया जहा नेरइया। (श. ४१।२४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।२५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४९७

राशीयुग्म त्र्योज राशिवाले २४ दण्डकों में उपपात आदि की प्ररूपणा

दूहा

१. राशियुग्म-तेओग ते, नारकि हे भगवंत !
किहां थकी जे ऊपजै ? इत्यादिक सुवृतंत ।।
२. कहिवो इमज उद्देशको, णवरं परिणामेह ।
त्रिण वा सत ग्यारै पनर, वा संख असंख उपजेह ।।

३. इमहिज अंतर-सहित जे, कहिवो पूर्व जेम ।
वलि गोयम श्री वीर नैं, प्रश्न करै धर प्रेम ।।
४. *ते जीव प्रभु ! जेह समय तेओगा,
तेह समय कडजुम्मा कहेह ?
जेह समय कडजुम्मा हुवै छै, तेह समय तेओगा लेह ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही ।।
५. जेह समय में हुवै तेओगा, तेह समय दावरजुम्मा होय ?
जेह समय हुवै दावरजुम्मा, तेह समय तेओगा जोय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही ।।
६. एवं कल्योज साथ पिण कहिवो,
शेष तिमज भणवो सुविचार ।
जाव वेमाणिया लगै जाणवूं, णवरं विशेष इतो अवधार ।
राशियुग्म शत अर्थ अनोपम ।।
७. उपपात सर्व विषे जिम आख्यो, पन्नवण छठे पदे कह्यो तेम ।
सेवं भंते ! शत एक चालीसम,
द्वितीय उद्देश अर्थ कह्यूं एम ।।

।। इति ४१।२ ।।

राशियुग्म-द्वापरयुग्म राशि वाले २४ दंडकों में उपपात आदि की प्ररूपणा

८. राशियुग्म-द्वापरयुग्म नेरइया, किहां थकी उपजै भगवान ?
एवं चेव उद्देशक कहिवो, णवरं विशेष इतो पहिछान ।।
९. परिमाणं दोय तथा षट वा दश,
अथवा संख्याता तथा असंख्यात ।
तिर्यंच मनुष्य थी आय ऊपजै, कहिवो संवेध विचारी बात ।।
१०. ते प्रभु ! जीवा जे समय द्वापरजुम्म,
तेह समय कडजुम्मा होय ?
जेह समय कडजुम्मा हुवै छै, तेह समय दावरजुम्मा जोय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही ।।

*लय : आ अनुकम्मा जिन आज्ञा में

---

१. रासीजुम्मतेओयनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?
२. एवं चेव उद्देसओ भाणियव्वो, नवरं—परिमाणं तिण्णि वा सत्त वा एक्कारस वा पन्नरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जति ।
३. संतरं तहेव । (श. ४१।२६)

४. ते णं भंते ! जीवा जं समयं तेयोगा तं समयं कडजुम्मा ? जं समयं कडजुम्मा तं समयं तेयोगा ?
नो इणट्ठे समट्ठे । (श. ४१।२७)

५. जं समयं तेयोया तं समयं दावरजुम्मा ? जं समयं दावरजुम्मा तं समयं तेयोया ?
नो इणट्ठे समट्ठे ।
६. एवं कलियोगेण वि समं, सेसं तं चेव जाव वेमाणिया नवरं—

७. उववाओ सव्वेसिं जहा वक्कंतीए (प. ६।७०-९८) ।
(श. ४१।२८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।२९)

८. रासीजुम्मदावरजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव उद्देसओ, नवरं—
९. परिमाणं दो वा छ वा दस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा वा उववज्जंति, संवेहो ।

१०. ते णं भंते ! जीवा जं समयं दावरजुम्मा तं समयं कडजुम्मा ? जं समयं कडजुम्मा तं समयं दावरजुम्मा ?
णो इणट्ठे समट्ठे ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. एवं तेयोग संघात ही कहिवो, इम कल्योज साथ पिण मंत ।
शेष कह्यो जिम प्रथम उद्देशे, जाव वैमानिक सेवं भंत !

॥इति ४१।३॥

राशियुग्म-कल्योज राशि वाले २४ दंडकों में उपपात आदि की प्ररूपणा

१२. राशियुग्म-कलियोग नारकी, किहां थकी उपजै भगवान ?
इमहिज एह उद्देशो जाणवूं, णवरं विशेष इतो पहिछान ॥
१३. परिमाण एक वा पंच तथा नव, तेर वा संख तथा असंख्यात ।
नारकी नें विषे आवी ऊपजै, संवेध कहिवो विचारी सुबात ॥

१४. ते प्रभु ! जीवा जे समय कलिओगा,
तेह समय कडजुम्मा होय ?
जेह समय कडजुम्मा हुवै छै, तेह समय कलिओगा जोय ?
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नांही ॥
१५. एवं त्र्योज संघाते पिण कहिवा,
इम द्वापरजुम्मा संघाते पिण हुंत ।
शेष कह्यो जिम प्रथम उद्देशे, जाव विमाणिया सेवं भंत !

॥ इति ४१।४ ॥

कृष्णलेश्यी आदि राशियुग्म-कृतयुग्मज २४ दंडकों में उपपात आदि की प्ररूपणा

१६. कृष्णलेशी राशिजुम्म-कडजुम्म नारकी,
किहां थकी उपजै भगवंत ?
ऊपजवूं जिम धूमप्रभा में, आख्यो तिम कहिवूं विरतंत ॥
१७. शेष विस्तारज प्रथम उद्देशे, असुर नें कह्यूं तेम कहिवाय ।
एवं यावत वाणव्यंतर नें, वारू जिन वच नां लही न्याय ॥
१८. मनुष्य नें पिण कहिवो नारकि नीं पर,
आत्म-अयश प्रति उपजीवेह ।
अलेशी अक्रिया तिण भव सीझै,
इम नहिं भणवो कृष्णलेशी तेह ॥

सोरठा

१९. 'इहां मनुष्य अवदात, आत्म-असंजम करि तिको ।
उपजीवै आख्यात, आश्रय प्रति धारण करै ॥
२०. असंजम अविरति जाण, तेह प्रतै धारण करै ।
धुर च्यारूं गुणठाण, देश अविरती पंचमो ॥
२१. छठै अविरति नांय, हिंसादिक पांचूं तणीं ।
सर्वविरति सुखदाय, कृष्णलेश त्यां पिण अछै ॥
२२. संजम उपजीवेह, इम न कह्यो किण कारणे ।
कृष्णादिक लेशेह, अविरति रूप नहीं तिहां ॥

११. एवं तेयोएण वि समं, एवं कलियोगेण वि समं, सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया । (श. ४१।३१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।३२)

१२. रासीजुम्मकलिओगनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव, नवरं—
१३. परिमाणं एक्को वा पंच वा नव वा तेरस वा संखेज्जा वा असंखेज्जा उववज्जंति, संवेहो । (श. ४१।३३)
१४. ते णं भंते ! जीवा जं समयं कलियोगा तं समयं कडजुम्मा ? जं समयं कडजुम्मा तं समयं कलियोगा ?
नो इणट्ठे समट्ठे ।
१५. एवं तेयोएण वि समं, एवं दावरजुम्मेण वि समं, सेसं जहा पढमुद्देसए जाव वेमाणिया । (श. ४१।३४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।३५)

१६. कण्हलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? उववाओ जहा धूमप्पभाए,
१७. सेसं जहा पढमुद्देसए । असुरकुमाराणं तहेव, एवं जाव वाणमंतराणं ।
१८. मणुस्साण वि जहेव नेरइयाणं आयअजसं उवजीवंति । अलेस्सा, अकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति एवं न भाणियव्वं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. कृष्ण नील कापोत, भावे लेश्या प्रमत्त में।
अशुभ जोग ए होत, पिण नहिं अविरति रूप ए।।
२४. तथा छठे कृष्णादि, ते तो संजम छै नथी।
सर्वविरति संवादि, ते संजम छट्ठे गुणे।।
२५. धुर बे चारित्र मांहि, वलि कषायकुशील में।
लेश्या षट कही ताहि, पणवीसम शत भगवती।।
२६. धुर त्रिहुं लेश्या मांहि, च्यार ज्ञान जिन दाखिया।
सतरम पद में ताहि, ततिय उद्देशे पन्नवणा ।।

२७. कृष्ण लेश नां ताहि, अध्यवसाय असंख है।
मनपज्जव रै मांहि, मंद अध्यवसाय कह्या वृत्तौ ।।

२८. इण कारण अवलोय, भाव लेश ए जाणवी।
क्रिया आरंभी सोय, छट्ठे गुणठाणे वलि।।
२९. आत्मारंभी जोय, वलि पर-आरंभी कह्या।
उभयारंभी सोय, असुभ जोग नैं आश्रयी।।
३०. ए छट्ठे गुणठाण, धुर शत प्रथम उद्देशके।
ते माटै पहिछाण, भावे माठी लेश ए।
३१. आहारक तनु निपजाय, प्रमाद आश्रयी अधिकरण।
सोलम शतके वाय, प्रथम उद्देशे जिन कह्यो।।
३२. अशुभ वचन रहनेम, बोल्यो राजमती भणी।
सीहो रोयो तेम, वलि मुनि वैक्रिय रूप करि।।

३३. अयमुत्ते जल मांहि, प्रत्यक्ष तिराई पातरी।
नागसिरी नैं ताहि, धर्मघोष नां मुनि निंदी।।
३४. प्रभु ! छद्मस्थपणेह, शीतल तेजू फोड़वी।
नशीत सूत्र विषेह, हस्तकर्मादिक कार्य बहु।।
३५. इत्यादिक अवलोय, आज्ञा विण कार्य अशुभ।
अशुभ जोग ए जोय, लेश्या पिण ए अशुभ है।।
३६. तिणसूं प्रमत्त विषेह, अशुभ ध्यान लेश्या असुभ।
असुभ जोग आवेह, प्रायश्चित छै तेहनों।।

वा०—इहां सूत्रे कृष्णलेशी मनुष्य आत्म-अयश ते असंजम प्रति उपजीवै कहितां आश्रय धारण करै इम कह्यू । अशुभ जोग, अशुभ ध्यान, अशुभ लेश्या छठे गुणठाणे आवै ते तो दोष छै। ते अशुभ लेश्या संयम नहीं ते माटै माठी लेश्या संजम धारण न करै। अथवा जिम अप्रमत्त नैं मनपर्यवज्ञान उपजै, पछै प्रमत्त हुव तो तेहनैं विषे पिण मनपर्यवज्ञान पावै। तिम संजम लेती वेलां भली लेश्या ईज हुवै पिण कृष्णादिक माठी लेश्या न हुवै। ते भणी कृष्णादिक माठी लेश्या वरतै ते वेला संजम प्रति धारण न करै, अंगीकार न करै। अनै संजम आदरियां पछै कृष्णादिक माठी लेश्या आवै तेहनों दंड छै। इण न्याय कृष्णलेशी

२५. (भगवती २५।५०२,३७६)

२६. कण्हलेस्से णं भंते ! जीवे कतिसु णाणेसु होज्जा ? गोयमा ! दोसु वा तिसु वा चउसु वा नाणेसु होज्जा। (पण्णवणा १७।११२)

२७. ननु मनःपर्यवज्ञानमतिविशुद्धस्योपजायते, कृष्णलेश्या संक्लिष्टाध्वसायरूपा ततः कथं कृष्णलेश्याकस्य मनःपर्यवज्ञानसंभवः ? उच्यते, इह लेश्यानां प्रत्येकासंख्येयलोकाकाशप्रदेशप्रमाणान्यध्यवसायस्थानानि, तत्र कानिचित् मन्दानुभावान्यध्यवसायस्थानानि प्रमत्तसंयतस्यापि लभ्यन्ते। (पण्णवणा वृ. प. ३५७)

२९. (भगवती १।३४)

३०. (भगवती १।३४)

३१. (भगवती १६।२३,२४)

३२. (उत्तरज्झयणाणि २२।३७,३८)
(भगवती १५।१४८)
(भगवती ३।१८६-२४२)

३३. (भगवती ५।८०)
(णाया. १।१६।२६)

३४. (निसीहज्झयणं १५।६५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य संजम प्रति अंगीकार न करै, कृष्णलेश्या वर्त्तै ते वेलां घर छोड़ दीक्षा न लेवै। दीक्षा लेवै तिण वेलां तो सातमों गुणठाणो फर्शै छै, ते सातमें गुणठाणे कृष्णादिक तीन माठी लेश्या नथी। तिण वेला तो शुभ जोग, शुभ ध्यान, शुभ लेश्या ईज हुवै। अनै दीक्षा लियां पछै छठा गुणठाणा नीं स्थिति देश ऊणी कोड़ पूर्व री छै। तिण में अशुभ जोग, अशुभ लेश्या अनेक वार आवै छै, तेहनों दंड छै।' (ज. स.)

३७. शेष कह्यो जिम प्रथम उद्देशे, तिमहिज कहिवो सेवं भंत !
एक चालीसम शतक अर्थ थी, पंचमुद्देशक में विरतंत ।।
।। इति ४१।५ ।।

३७. सेसं जहा पढमुद्देसए। (श. ४१।३६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।३७)

३८. कृष्णलेशी तेयोगा संघाते पिण, इमहिज उद्देशक अवलोय।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! षष्ठमुद्देशक अर्थ सुजोय ।।
।। इति ४१।६ ।।

३८. कण्हलेस्सतेयोएहि वि एवं चेव उद्देसओ। (श. ४१।३८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।३९)

३९. कृष्णलेशी द्वापरयुग्म साथ पिण, इमहिज उद्देशक कहिवाय।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! सप्तमुद्देशक अर्थ सोभाय ।।
।। इति ४१।७ ।।

३९. कण्हलेस्सदावरजुम्मेहिं एवं चेव उद्देसओ। (श. ४१।४०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।४१)

४०. कृष्णलेशी कलियोग साथ पिण, इमहिज उद्देशक सुवृतंत।
परिमाण संवेध जिम ओघिक उद्देशे,
आख्यो तिम कहिवो सेवं भंत !

४०. कण्हलेस्सकलिओएहि वि एवं चेव उद्देसओ। परिमाणं संवेहो य जहा ओहिएसु उद्देसएसु। (श. ४१।४२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।४३)

४१. जिम कृष्णलेशी साथे च्यार उद्देशा,
इम नील लेश संघात पिण च्यार।
निरवशेष उद्देशक भणवा, णवरं विशेष इतो अवधार।
।। इति ४१।८ ।।

४१. जहा कण्हलेस्सेहिं एवं नीललेस्सेहिं वि चत्तारि उद्देसगा भाणियव्वा निरवसेसा, नवरं—

४२. नारकी नों उपपात जेम ए, वालुकप्रभा विषे कहिवाय।
शेष तिमज सेवं भंते ! स्वामी, द्वादश एह उद्देशक आय ।।
।। इति ४१।९-१२ ।।

४२. नेरइयाणं उववाओ जहा वालुयप्पभाए, सेसं तं चेव। (श. ४१।४४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।४५)

४३. इम च्यार उद्देश कापोत साथ पिण,
करिवा णवरं नारकि उपपात।
जिम रत्नप्रभा नें विषे कह्यु तिम छै,
शेष तिमज सेवं भंते ! विख्यात ।।
।। इति ४१।१३-१६ ।।

४३. काउलेस्सेहि वि एवं चेव चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवरं—नेरइयाणं उववाओ जहा रयणप्पभाए, सेसं तं चेव। (श. ४१।४६)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।४७)

४४. तेजुलेशी राशियुग्म-कडयुग्मज, असुरकुमारा हे भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादि इमहिज कहिवो उदंत ।।
४५. णवरं जेहनैं विषे तेजुलेश्या छै, तेहनैं विषे कहिवूं धर खंत।
इम ए पिण कृष्णलेश सरीखा,
च्यार उद्देशा करिवा सेवं भंत !
।। इति ४१।१७-२० ।।

४४. तेउलेस्सरासीजुम्मकडजुम्मअसुरकुमारा णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव,
४५. नवरं—जेसु तेउलेस्सा अत्थि तेसु भाणियव्वा। एवं एए वि कण्हलेस्सासरिसा चत्तारि उद्देसगा कायव्वा। (श. ४१।४८)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति। (श. ४१।४९)

४६. इम पद्म लेश्या संघाते पिण करिवा,
प्रवर उद्देशा च्यार उदार।
पिण तीन दंडक विषे पद्म लेश्या छै,
ते किसा-किसा दंडक अवधार ।।

४६. एवं पम्हलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४७. पंचेंद्रिय तिर्यंच मनुष्य वैमानिक,
एह विषे पद्म लेश्या कहाय ।
शेष दंडक पद्म लेश्या नहीं छै,
सेवं भंते ! सेवं भंते ! ताय ।।

।। इति ४१।२१-२४ ।।

४८. जिम पद्म लेश्या नां कह्या च्यार उद्देशा,
इम शुक्ल नां करिवा उद्देशा च्यार ।
णवरं मनुष्य नों गमो जिम ओघिक उद्देशे,
शेष तिमज कहिवूं अवधार ।।

४९. इम छहुं लेश्या विषे चउवीस उद्देशा,
अनैं ओघिक उद्देशा च्यार ।
ते सर्व अठावीस हुवै उद्देशा, सेवं भंते ! सेवं भंते ! सार ।।

।। इति ४१।२५-२८ ।।

हिवै भवसिद्धिक २८ उद्देशा कहै छै—

भवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मज २४ दंडकों में

५०. भवसिद्धिक राशियुग्म-कडजुम्म नारकि,
किहां थकी ऊपजै भगवान ?
जिम ओघिक पहिला च्यार उद्देशा, आख्या छै पूर्वे जे जान ।।

५१. तिमज विशेष रहितपणें सहु, कहिवा एह उद्देशा च्यार ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! इम कहि गोतम करै अंगीकार ।।

।। इति ४१।२९-३२ ।।

५२. कृष्णलेशी भवसिद्धिक राशिजुम्म-
कडजुम्म नारकि हे भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक गोयम प्रश्न सुतंत ।।

५३. जिम कृष्णलेशी विषे हुवै च्यार उद्देशा,
तिम ए पिण कृष्णलेशी भवसिद्धिक संघात ।
च्यार उद्देशा करिवा विधि सूं,
श्री जिन वचन विमल अवदात ।।

।। इति ४१।३३-३६ ।।

५४. इम नीललेशी भवसिद्धिक संघाते,
करिवा च्यार उद्देशा सोय ।
इम कापोतलेशी भवसिद्धिक संघात ही,
च्यार उद्देशा करिवा जोय ।।

।। इति ४१।३७-४४ ।।

५५. तेजुलेशी भवसिद्धिक संघात ही,
च्यार उद्देशा ओघिक सरीस ।
पद्मलेशी संघात हि च्यार उद्देशा,
श्री जिन वयण सुविश्वावीस ।।

।। इति ४१।४५-५२ ।।

४७. पंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मणुस्साणं वेमाणियाण य एएसिं पम्हलेस्सा, सेसाणं नत्थि । (श. ४१।५०)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।५१)

४८. जहा पम्हलेस्साए एवं सुक्कलेस्साए वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा, नवरं—मणुस्साणं गमओ जहा ओहिउद्देसएसु, सेसं तं चेव ।

४९. एवं एए छसु लेस्सासु चउवीसं उद्देसगा, ओहिया चत्तारि, सव्वे ते अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति । (श. ४१।५२)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।५३)

५०. भवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? जहा ओहिया पढमगा चत्तारि उद्देसगा

५१. तहेव निरवसेसं, एए चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।५४)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।५५)

५२. कण्हलेस्सभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

५३. जहा कण्हलेस्साए चत्तारि उद्देसगा भवंति तहा इमे वि भवसिद्धियकण्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा । (श. ४१।५६)

५४. एवं नीललेस्सभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा कायव्वा । (श. ४१।५७)
एवं काउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।५८)

५५. तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा । (श. ४१।५९)
पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।६०)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

५६. शुक्ल लेश्या संघाते पिण च्यारज,
ओघिक सरीषा उद्देशा हुंत ।
इम ए पिण भवसिद्धिक संघाते, अष्टवीस उद्देशा सेवं भंत !

५६. सुक्कलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा ओहियसरिसा ।
एवं एए वि भवसिद्धिएहि वि अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति । (श. ४१।६१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।६२)

।। इति ४१।५३-५६ ।।

हिवै अभवसिद्धिक नां २८ उद्देशा कहै छै—

अभवसिद्धिक राशियुग्म-कृतयुग्मज २४ दंडकों में

५७. अभवसिद्धिक रासीजुम्म-कडजुम्म नारकि,
किहां थकी ऊपजै भगवंत ?
जेम प्रथम उद्देशो कह्यो तिम कहिवो,
णवरं विशेष इतो इहां हुंत ।।

५७. अभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? जहा पढमो उद्देसगो, नवरं—

५८. मनुष्य नें नारकि सरीषा जाणवा,
शेष तिमज सेवं भंते ! स्वाम ।
इम ए च्यारूं ही युग्म विषे जे, च्यार उद्देशक कहिवा आम ।।

५८. मणुस्सा नेरइया य सरिसा भाणियव्वा, सेसं तहेव । (श. ४१।६३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।६४)
एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।६५)

।। इति ४१।५७-६० ।।

५९. कृष्णलेशी अभवसिद्धिक राशियुग्म-
कडजुम्म नारकि हे भगवंत !
किहां थकी ऊपजै छै इत्यादिक ? इमहिज च्यार उद्देशा हुंत ।।

५९. कण्हलेस्सअभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं चेव चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।६६)

।। इति ४१।६१-६४ ।।

६०. इम नीललेशी अभवसिद्धिक साथ पिण,
च्यार उद्देशा कहिवा विचार ।
एवं कापोत लेश्या संघाते पिण, च्यार उद्देशा ते अवधार ।।

६०. एवं नीललेस्सअभवसिद्धियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइयाणं चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।६७)
काउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।६८)

।। इति ४१।६५-७२ ।।

६१. एवं तेजुलेश्या नें संघाते पिण, च्यार उद्देशा करिवा चारू ।
एवं पद्म लेश्या संघाते पिण, करिवा च्यार उद्देशा वारू ।।

६१. तेउलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।६९)
पम्हलेस्सेहि वि चत्तारि उद्देसगा । (श. ४१।७०)

।। इति ४१।७३-८०।।

६२. शुक्ललेशी अभवसिद्धिक संघाते,
इम च्यार उद्देशा कहिवा जगीस ।
धुर च्यार उद्देशा तो अभव ओघिक नां,
षट लेश्या नां चिहुं-चिहुं इम अठवीस ।।

६२. सुक्कलेस्सअभवसिद्धिएहि वि चत्तारि उद्देसगा ।

६३. ए अठवीसूं ही अभवसिद्धिक नां, उद्देशक नें विषेज कहेसा ।
मनुष्य नारकी नें गमे करि सेवं भंते !
इम ए पिण अठवीस उद्देशा ।।

६३. एवं एएसु अट्ठावीसाए वि अभवसिद्धियउद्देसएसु मणुस्सा नेरइयगमेणं नेयव्वा । (श. ४१।७१)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।७२)

।। इति ४१।८१-८४ ।।

६४. च्यार सौ नै सत्ताणूमी ढाल कही ए,
ओघिक नें भव अभव उद्देश ।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे,
'जय-जश' संपति हरष विशेष ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ४९८

दूहा

१. अठवीस उद्देश ओघिक तणां, भवसिद्धिक अठवीस।
अठावीस अभव्य तणां, कह्या चोरासी जगीस ।।

२. हिव समदृष्टी आदि नां, अष्टवीस अठवीस।
कहियै छै उद्देसगा, आख्या जे जगदीश ।।

सम्यक्दृष्टि राशियुग्मकृतयुग्मज २४ दंडकों में

*राशियुग्म शत श्री जिन भाख्यो ।। [ध्रुपदं]

३. सम्यकदृष्टि राशिजुम्म-कडजुम्म प्रभु ! नेरइया जेह कहेसो ।
किहां थकी ऊपजै छै आवो, आख्यो इम जिम प्रथम उद्देशो ।।

४. इम च्यारूं ही युग्म विषे जे, च्यार उद्देशा तंतो ।
भवसिद्धिक नें सरिषा करिवा, सेवं भंते ! सेवं भंतो ! ।।

५. कृष्णलेशी समदृष्टि राशिजुम्म-कडजुम्म नारकि भंतो !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुवृतंतो ।।

६. ए पिण कृष्णलेशी नें सरीषा, च्यार उद्देशा करिवा ।
समदृष्टी नां आठ उद्देशा, इण रीते उच्चरिवा ।।

७. इम समदृष्टि विषे पिण भवसिद्धि सरीषा,
करिवा अठवीस उद्देशं ।
सेवं भंते ! सेवं भंते ! यावत विचरै गणेशं ।।

।। इति ४१।८५-११२ ।।

हिवै मिथ्यादृष्टि नां २८ उद्देशा कहै छै—

मिथ्यादृष्टि राशियुग्मकृतयुग्मज २४ दंडकों में

८. मिथ्यादृष्टि राशिजुम्म-कडजुम्म, नेरइया हे भगवंतो !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इम इहां पिण सुवृतंतो ।।

९. मिथ्यादृष्टि अभिलापे करि, अभव्यसिद्धिक सरीषं ।
अठावीस उद्देशा करिवा, सेवं भंते ! जगदीशं ।।

।। २८, एवं सर्व १४० ।।

।। इति ४१।११३-१४० ।।

हिवै कृष्णपाक्षिक नां २८ उद्देशा कहै छै—

कृष्णपाक्षिक राशियुग्मकृतयुग्मज २४ दंडकों में

१०. कृष्णपाक्षिक राशिजुम्म-कडजुम्म, नेरइया हे भगवंतो !
किहां थकी ऊपजै छै आवी ? इत्यादिक सुवृतंतो ।।

---

३. सम्मदिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं जहा पढमो उद्देसओ ।

४. एवं चउसु वि जुम्मेसु चत्तारि उद्देसगा भवसिद्धिय-सरिसा कायव्वा । (श. ४१।७३)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।७४)

५. कण्हलेस्ससम्मदिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ?

६. एए वि कण्हलेस्ससरिसा चत्तारि वि उद्देसगा कायव्वा ।

७. एवं सम्मदिट्ठीसु वि भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा । (श ४१।७५)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति जाव विहरइ । (श. ४१।७६)

८. मिच्छादिट्ठीरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते ! कओ उववज्जंति ? एवं एत्थ वि

९. मिच्छादिट्ठीअभिलावेणं अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा । (श. ४१।७७)
सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति । (श. ४१।७८)

१०. कण्हपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइयाणं भंते ! कओ उववज्जंति ?

---

*लय : पर नारी नों संग न कीजै

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. इम अभवसिद्धिक नें सरीषा, करिवा उद्देशा अठवीसं।
सेवं भंते! सेवं भंते! जिन वच परम जगीसं।।

।। २८, एवं सर्व १६८ ।।

।। इति ४१।१४१-१६८।।

हिवै शुक्लपाक्षिक नां २८ उद्देशा कहै छै—

१२. शुक्लपाक्षिक राशिजुम्म-कडजुम्म, नेरइया हे भगवंत!
किहां थकी ऊपजै छै आवी? इम इहां पिण हुंत।।

१३. भवसिद्धिक नें सरीषा ह्वै ए, अठावीस उद्देशा एहो।
सर्व एकसौ छिन्नूं उद्देशा ह्वै, इम राशियुग्म शतकेहो।।

।।२८, एवं सर्व १९६ उद्देशा ।।

।। इति ४१-१६९-१९६ ।।

हिवै छेहला उद्देशा नों छेहलो बोल कहै छै—

१४. जाव शुक्ललेशी शुक्लपाक्षिक,
राशिजुम्म-कलियोग वैमानीको।
यावत जो क्रिया सहित हुवै ते,
तो तिण भव सीझै तहतीको।।

१५. यावत अन्त करै सहु दुक्ख नों, तिणहिज भव में भदंतो!
जिन कहै अर्थ समर्थ ए नाहीं, सेवं भंते! सेवं भंतो।।

१६. ढाल च्यारसौ अष्टनेऊमी, प्रश्नोत्तर सुखदायो।
भिक्षु भारीमाल ऋषिराय प्रसादे, 'जय-जश' हरष सवायो।।

११. एवं एत्थ वि अभवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा कायव्वा। (श. ४१।७९)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४१।८०)

१२. सुक्कपक्खियरासीजुम्मकडजुम्मनेरइया णं भंते! कओ उववज्जंति? एवं एत्थ वि।

१३. भवसिद्धियसरिसा अट्ठावीसं उद्देसगा भवंति। एवं एए सव्वे वि छन्नउयं उद्देसगसयं भवति रासीजुम्मसयं

१४. जाव सुक्कलेस्ससुक्कपक्खियरासीजुम्मकलियोगवेमाणिया जाव—जइ सकिरिया तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति। (श. ४१।८१)

१५. जाव सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति? नो इणट्ठे समट्ठे। (श. ४१।८२)
सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति। (श. ४१।८३)

ढाल : ४९९

दूहा

१. ए जिन-वच उत्तर सुणी, श्री गोयम गणधार।
विनय सहित श्री वीर नों, वचन करै अंगीकार।।

अर्हत्-वाणी की अपूर्वता

*ए तो जयकारी जिनचंद्र, जास उत्तम करणी।। (ध्रुपदं)

२. भगवंत गोतम ताम, श्रमण भगवंत भणी।
महावीर प्रति आम, तास जग कीर्त्ति घणी।
कीर्त्ति घणी जी चिहुं तीर्थ धणी,
तसु तीन वार प्रदक्षिण थुणी।

२. भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं

***लय : धन-धन भिक्खु स्वाम**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. दक्षिण पासा थीज, प्रदक्षिण त्रिण वारं।
गोयम हरष धरीज, करै होय हुसियारं ।।
हुसियारं जी अति सुखकारं, वंदै वच स्तुति करि सारं।
ए तो जयकारी जिनचंद्र, पंथ शिव नेतारं ।।

४. नमस्कार शिर नाम, वदै इहविध वानी।
इमहिज हे जिन स्वाम ! तिमज मुझ वच जानी।
वच जानी जी मुझ मन मानी,
सत्य वाणी तुम्हारी गुणखाणी ।।
ए तो जयकारी जिनचंद्र, प्रभू पूरणज्ञानी ।।

५. एह संदेह रहीत, प्रभूजी ! तुझ वाचा।
वांछी म्हैं धर प्रीत, अहो जिनजी ! जाचा ।
जिनजी जाचा जी, वच सहु साचा,
वलि विशेष करि वांछया आछा।
ए तो जयकारी जिनचंद्र, सुधामृत तुझ वाचा ।।

६. इच्छित प्रतिच्छित छेह, अहो भगवंत ! वही।
अर्थ कहो तुम्ह एह, तेह साचा सब ही।
साचा सब ही जी, इम गोयम कही,
अपूर्व वचनवंता जिनही।
ए तो जयकारी जिनचंद्र, अरिहंत भगवंत सही ।।

७. श्रमण प्रवर भगवंत, वीर प्रति चित धामी।
वच स्तुति वांदंत, वली शिर नैं नामी।
शिर नैं नामी जी, आनंद पामी,
इम विनय करी गोयम स्वामी।
ए तो जयकारी जिनचंद्र तणां शिष्य शिवगामी ।।

८. संजम तप करि सार, आतम प्रति भावंता।
श्री गोयम गणधार, इसी विधि विचरंता।
विचरंता जी कांइ धर खंता,
परलोक तणीं अधिकी चिंता।
ए तो जयकारी जिनचंद्र तणां शिष्य जयवंता ।।

९ शत राशिजुम्म श्रिष्ठ, समाप्त थयो भारी।
ढाल च्यार सय नव-नेऊमी हितकारी।
हितकारी जी भिक्षू भारी, भारीमाल राय गणि नेतारी।
ए तो जयकारी गणिराज, 'सुजय-जश' वृद्धिकारी ।।

गीतक छंद

१. शत एकचत्वारिंशमा में राशियुग्म विवर्णनं।
तसु भाव भेद विवेद कीधो सुगमरीत्योद्धर्णनं ।।

२. गुरु भिक्षु भारीमाल अरु ऋषिराय कृपया संमुदा।
गुरु-अनुग्रहे गुणज्ञान गौरव पामियै शिष्य सर्वदा ।।

३. तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदति

४. नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते !

५. असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते !

६. इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! सच्चे णं एसमट्ठे, जे णं तुब्भे वदह त्ति कट्टु अपुव्ववयणा खलु अरहंता भगवंतो,

७. समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता

८. संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।
(श. ४१।८४)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ५००

भगवती सूत्र का स्वरूप

दूहा

१. सुण्या भगवती में भला, सर्व शतक सुविचार।
इकसौ नं अडतीस जे, अर्थ उदग्ग उदार[1] ॥

२. प्रथम बतीसज शतक में, अंतर शतक न कोय।
ते माटे इक-एक हिज, शतक तिके अवलोय ॥

३. तेतीसम थी सात शत, तेह विषे अवलोय।
बारै-बारै अंतर शतक, ए चोरासी होय ॥

४. फुन चालीसम शतक में, अंतर शत इकवीस।
इकतालीसम एकहिज, सहु इकसौ अड़तीस ॥

५. इकसौ अड़ती शतक नां, सर्व उद्देशा देख।
उगणीसौ पणवीस जे, कहिवा सिद्धंत देख ॥

६. हिवै भगवती सूत्र नों, कहियै छै परिमाण।
श्रोता चित दै सांभलो, वर वचनामृत जाण ॥
* सुगुण जन सुणियै जी, कै स्थिर चित शुणियै जी।
हो जी म्हारा जयवंता जिनराज तणां वच वारू जी।
चमत्कृत चारू जी ॥ (ध्रुपदं)

७. लक्ष चोरासी पद भला कांइ, पद नों मान पिछाण।
विशिष्ट संप्रदाइं करो कांइ, परंपरा करि जाण ॥

८. प्रवर प्रधानज ज्ञान छै कांई, तिणे करीनें जेह।
देखे छै जे केवली, पद तिणे परूप्या एह ॥

९. सूत्र स्वरूपज दाखियो, हिव कहियै अर्थ स्वरूप।
भाव अभाव अनंत ही कांइ, आख्या अधिक अनूप ॥

१०. जीवादिक नव जाणवा कांइ, जेह पदार्थ भाव।
तेहिज अन्य अपेक्षया कांइ, अभाव तास कहाय ॥

११. अथवा करिवो कार्य नों कांइ, कहियै तेहनों भाव।
कार्य जेह निषेधवो कांइ, अभाव तेह कहाव ॥

१२. अथवा भावाभाव जे कांइ, विषयभूत पहिछाण।
तिणे करीनें जाणवा कांइ, जे अनंत परिमाण ॥

---

१. सव्वाए भगवईए अट्ठतीसं सतं सयाणं (१३८)

२. आद्यानि द्वात्रिंशच्छतान्यविद्यमानावान्तरशतानि ३२। (वृ. प. ९७९)

३. त्रयस्त्रिंशादिषु तु सप्तसु प्रत्येकमवान्तरशतानि द्वादश ८४। (वृ. प. ९७९)

४. चत्वारिंशे त्वेकविंशतिः २१, एकचत्वारिंशे तु नास्त्यवान्तरशतम् १, एतेषां च सर्वेषां मीलनेऽष्टत्रिंशदधिकं शतानां शतं भवति। (वृ. प. ९७९)

५. उद्देसगाणं एगूणविंशतिसताणी पंचविंसइअहियाणी (१९२५)।

६. अथ भगवत्या व्याख्याप्रज्ञप्त्याः परिमाणाभिधित्सया गाथामाह— (वृ. प. ९७९)

७,८. चुलसीइ सयसहस्सा, पदाण पवरवरनाणदंसीहिं।
'चुलसी' त्यादि, चतुरशीतिः शतसहस्राणि पदानामत्राङ्गे इति सम्बन्धः, पदानि च विशिष्टसम्प्रदायगम्यानि, प्रवराणां वरं यज्ज्ञानं तेन पश्यन्तीत्येवंशीला ये ते प्रवरज्ञानदर्शिनस्तैः केवलिभिरित्यर्थः प्रज्ञप्तानीति योगः, (वृ. प. ९७९)

९. इदमस्य सूत्रस्य स्वरूपमुक्तमथार्थस्वरूपमाह— (वृ. प. ९७९)
भावाभावमणंता, पण्णत्ता एत्थमंगम्मि ॥१॥

१०. 'भावाभावमणंत' त्ति 'भावा—जीवादयः पदार्थाः अभावाश्च'—त एवान्यापेक्षया भावाभावाः, (वृ. प. ९७९)

११. अथवा भावा—विधयोऽभावा—निषेधाः (वृ. प. ९७९)

१२. अथवा भावाभावैर्विषयभूतैरनन्तानि भावाभावानन्तानि (वृ. प. ९७९)

---

१. भगवती जोड़ की ढाल ५०० एवं ५०१ के सामने जो पाठ उद्धृत किया है, वह भगवती का मूल अंश नहीं है। परिशिष्ट के रूप में है इसलिए इसमें सूत्र संख्या का क्रम नहीं है। यह पाठ अंगसुत्ताणि भाग २ पृष्ठ १०४७,१०४८ पर उपलब्ध है।

***लय : पायल वाली पदमणी**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. चउरासी शत सहस्र पद कांइ, तास परूप्या ताम।
ए प्रत्यक्ष पंचम अंग विषे कांइ, वारू गुण नां धाम।।

१४. अंग ते प्रवचन रूप जे कांइ, परम पुरुष नां दक्ष।
अवयव छै तेहनें विषे कांइ, पद चोरासी लक्ष।।

१५. प्रवचन रूपज जाणवो कांइ, परम पुरुष प्रत्यक्ष।
तेहनां अवयव अंग विषे कांइ पद चोरासी लक्ष।।

१३. चतुरशीतिः शतसहस्राणि प्रज्ञप्तानि 'अत्र' प्रत्यक्षे पञ्चमे इत्यर्थः। (वृ. प. ९७९)

१४. 'अङ्गे प्रवचनपरमपुरुषावयव इति' (वृ. प. ९७९)

आगमपुरुष

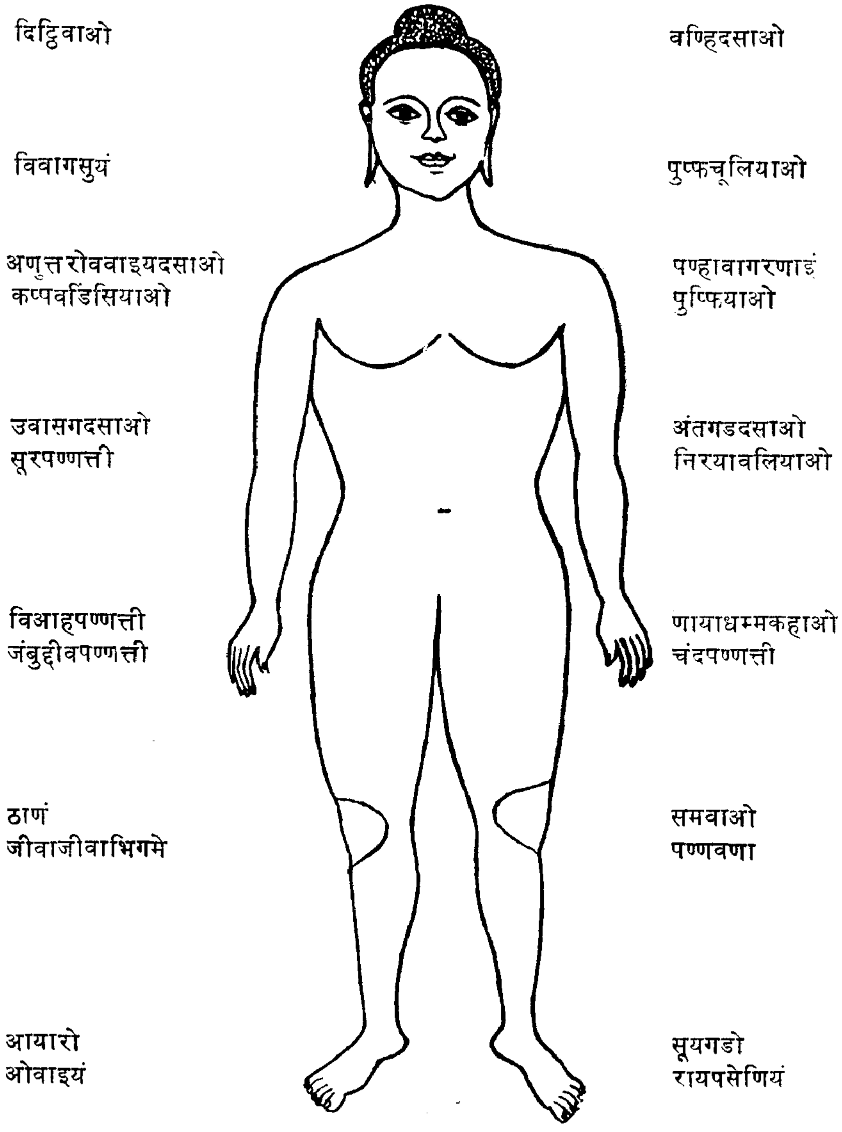

आगम पुरुष की परिकल्पना

वा०—द्वादश अंग प्रवचन रूप तो परम पुरुष। अनैं तेहनां अंग अवयव भगवती। तेहनैं विषे चोरासी लक्ष पद। श्री आचारांग अंग, उववाई उपंग जीमणो पग। श्री सूयगडांग अंग, रायप्रश्रेणि उपंग डावो पग। श्री ठाणांग अंग, जीवाभिगम उपंग जीमणी जंघा। श्री समवायंग अंग, पन्नवणा उपंग डावी जंघा। भगवती अंग, जंबूद्वीपपन्नत्ती उपंग साथल जीमणी। श्री ज्ञाता अंग,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चंदपन्नत्ती उपंग डावी साथल। श्री उपासगदशा अंग, सूरपन्नत्ती उपंग जीमणो कटि प्रदेश। श्री अंतगड अंग, निरावलिया उपंग डावो कटि प्रदेश। श्री अनुत्तरोववाई अंग, कप्पवडिंसिया उपंग जीमणी भुजा। श्री प्रश्नव्याकरण अंग, पुप्फिया उपंग डावी भुजा। श्री विपाक अंग, पुप्फचूलिया उपंग कंठ नैं स्थानक छै। श्री दृष्टिवाद अंग, वण्हिदशा उपंग मस्तक नैं स्थानक छै।

संघ की स्तुति

१६. तप बारै भेदे कह्यो कांइ, नियम अभिग्रह सार।
अभ्युत्थानज आदि दे कांइ, प्रवर विनय अवधार।।
१७. पूर्वे भाख्या एतला, ते संघ-समुद्र नीं वेल।
जल वृद्धि अर्थज एहनों कांइ, एह अनोपम खेल।।
१८. विजैवंत जे सर्वदा कांइ, ज्ञान रूपियो जेह।
विमल विस्तीर्ण उदक छै कांइ, संघ-समुद्र विषेह।।
१९. हेतु कहितां अर्थ नें कांइ, साधण अर्थे भूर।
बहु कारण नां शत तिके कांइ, वेग कल्लोलज पूर।।
२०. एहवो श्री संघ रूपियो कांइ, समुद्र अधिक रसाल।
गांभीर्यादिक गुण करी कांइ, विस्तीरण सुविशाल।।

वा०—तवनियमविणयवेलो—तप, नियम, विनय हीज वेल जल वायु वृद्धि अवसर नैं विषे प्रवृत्ति नां सरीखापणां थकी ते तथा। जयति सया णाणविमल-विपुलजलो—जीतवा योग्य जीपवैं करीनैं विशेष जय पामैं सदाकाल ज्ञान ईज विमल ते निर्मल विपुल ते विस्तीर्ण जल छै जे संघ-समुद्र नैं तिण प्रकार करिकै ते निर्मलता नां सरीषापणां थकी तथा। हेतुसयविपुलवेगो—हेतु नां सैंकडां इष्ट अर्थ साधन नैं विषे अनैं अनिष्ट अर्थ निराकरण नैं विषे लिंग ते चिह्न सैंकडां तिके हीज विपुल ते मोटो वेग ते कल्लोल आवर्त्तादिक पाणी जे संघ-समुद्र नैं वांछित अर्थ जे प्रश्न तेहनां साधन सरीषापणां थकी ते संघ-समुद्र। संघसमुद्दोगुण विसालो—संघ समुद्र ते जिन वचन रूप समुद्र गंभीरपणां नां सरीषापणां थकी अथवा साधर्म्यपणों साख्यात ईज कहै छै—गंभीरपणांदिक गुणे करी विशाल विस्तीर्ण थकी ते गुण नां बहुलपणां थकी जे ते संघ-समुद्र इति गाथार्थः।

२१. विरति आदि जे गुण अछै कांइ, संघ कहीजैं तास।
अव्रत आज्ञा बाहिरै कांइ, संघ न कहियै जास।।
२२. एह भगवती अर्थ थी कांइ, पंचम अंग समाप्त।
ढाल पांचसयमी कही कांइ, आख्या वच ए आप्त।।

१६,१७. तवनियमविणयवेलो,

१८. जयति सदा नाणविमलविपुलजलो।

१९. हेतुसतविपुलवेगो,

२०. संघसमुद्दो गुणविसालो ।।२।।

वा०—'तवे' त्यादि गाथा, तपोनियमविनया एव वेला—जलवृत्तिरवसरवृद्धिसाधर्म्याद्यस्य स तथा 'जयति' जेतव्यजयेन विजयते 'सदा' सर्वदा ज्ञानमेव विमलं—निर्मलं विपुलं—विस्तीर्णं जलं यस्य स तथा अस्तित्वसाधर्म्यात्स तथा हेतुशतानि—इष्टानिष्टार्थ-साधननिराकरणयोर्लिङ्गशतानि तान्येव विपुलो—महान् वेगः— कल्लोलावर्त्तादिरयो यस्य विवक्षितार्थ-क्षेपसाधनसाधर्म्यात्स तथा 'संघसमुद्रः' जिनप्रवचनो-दधिर्गाम्भीर्यसाधर्म्यात्, अथवा साधर्म्यं साक्षादेवाह—गुणैः गाम्भीर्यादिभिर्विशालोविस्तीर्णस्तद्बहुत्वाद्यः स तथेति गाथार्थः। (वृ. प. ९७९)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ढाल : ५०१

दूहा

१. वृत्तिकार इहविध कह्यं, पुस्तक लेखक पेख।
नमस्कार कीधो तिको, कहियै हिवै विशेख ॥

पुस्तकलिपिकार का नमस्कार

२. नमो गोतमादिक प्रतै, गणधर जे गुणगेह।
नमो भगवती भावश्रुत, विवाहपन्नत्ती एह ॥

३. द्वादश अंग प्रतै नमो, अंग गणिपिटक रीत।
गणपति नीं पेटी तिके, ते गणि चरण-सहीत ॥

४. ज्ञानवती ए भगवती, प्रवचन रूप शोभाय।
परम पुरुष नां पद तणों, वर्णक हिव कहिवाय ॥

*गुणिजन नमो स्वाम सुखदाया,
नमो वर्धमान जिनराया।
तास वचन सुध मन थी सरध्यां, जयानंद सुख पाया ॥ (ध्रुपदं)

५. मनहर कुर्म जिसा अभिरामज, पद रूड़ै संस्थानं।
अमलित कोरंट बिंट सरीषा, वारू तास बखानं।

६. भगवई श्रुतदेवता एहवी, मुझ मति नों पहिछानं।
तिमर रूप आवरण तणों जे, नाश करो सुविधानं ॥

भगवती की उद्देश-विधि

७. प्रज्ञप्ती नैं विषेज धुर नां, आठ शतक नां देखं।
दोय-दोय उद्देश करीजै, णवरं इतो विशेखं।

८. चउथा शतक विषे धुर दिवसे, आठ उद्देश करेसं।
बीजे दिवसे दोय उद्देशा, कीजै तास उद्देशं ॥

९. नवमा शतक थकी मांडी नैं, जितलुं जितो प्रवेयं।
तितलो एक दिवस में विधि सूं, तेह उद्देश करेयं ॥

१०. उत्कृष्ट थकी शतक इक दिवसे, मझम शत बे दिन्नं।
जघन्य थकी शत तीने दिवसे, कीजै उद्देश जन्नं ॥

११. एवं यावत वीसम शत लग, णवरं इतो विशेषं।
गोसालो जे एक दिवस करि, कीजै उद्देश देखं ॥

१२. जेहनें विषे रह्यो इक दिवसे, कीधो जो उद्देशं।
तो एक हिज आंबिल करिनें, ते करै अनुज्ञा एषं ॥

१३. जो इक दिन नीं स्थिति करी सकै नहीं,
इक दिन में वांच्यो नांयं।
ते बे अंबिल करी अनुज्ञा, कीजै तास सझायं ॥

१४. इकवीसम बावीसम नैं, तेवीसम शतक प्रतेहं।
एक-एक दिवसे करीनैं, ते कीजै उद्देश जेहं ॥

१५. च्यारवीसमां शतक प्रतै फुन, बिहुं दिवसे करि जाणं।
तेहनां प्रवर उद्देशा षट-षट, कीजै उद्देश माणं ॥

---

१. 'णमो गोयमाईणं गणहराण' मित्यादयः पुस्तकलेखककृता नमस्काराः। (वृ. प. ९८०)

२. णमो गोयमाईणं गणहराणं, णमो भगवईए विवाहपण्णत्तीए,

३. णमो दुवालसंगस्स गणिपिडगस्स।

५. कुम्मसुसंठियचलणा, अमलियकोरेंटबेंटसंकासा।

६. सुयदेवया भगवई, मम मतितिमिरं पणासेउ ॥१॥

७. पण्णत्तीए आइमाणं अट्ठण्हं सयाणं दो दो उद्देसगा उद्दिसिज्जंति, नवरं—

८. चउत्थे सए पढमदिवसे अट्ठ, बितियदिवसे दो उद्देसगा उद्दिसिज्जंति।

९ नवमाओ सताओ आरद्धं जावइयं-जावइयं ठवेति तावतियं-तावतियं उद्दिसिज्जंति,

१०. उक्कोसेणं सतं पि एगदिवसेणं, मज्झिमेणं दोहिं दिवसेहिं सतं, जहण्णेणं तिहिं दिवसेहिं सतं।

११. एवं जाव वीसतिमं सतं, नवरं—गोसालो एगदिवसेणं उद्दिसिज्जति,

१२. जदि ठियो एगेण चेव आयंबिलेणं अणुण्णवति।

१३. अहण्णं ठिनो आयंबिलेणं छट्ठेणं अणुण्णवति।

१४. एक्कवीस-बावीस-तेवीसतिमाइं सताइं एक्केक्कदिवसेणं उद्दिसिज्जंति।

१५. चउवीसतिमं सतं दोहिं दिवसेहिं छ-छ उद्देसगा।

---

*लय : बीस विहरमाण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. पंचवीसमां शतक प्रतै जे, बिहुं दिवसे करि देखं।
तास उद्देशा षट-षट विधि सूं, कीजै उद्देश पेखं।
१७. बंधी शत षटवीसम आदिक, अष्ट शतक अदधारं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, वारू न्याय विचारं।।
१८. सेढी शतक तणां अंतर शत, द्वादश जे कहिवायं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, ए चउतीसम तायं।।
१९. एकेंद्रिय महायुग्म शतक नां, अंतर शत जे बारं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, ए पैंतीसम सारं।।
२०. इम बेइंद्रिय शत नां आख्या, अंतर शत जे बारं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, ए छत्तीसम सारं।।
२१. इम तेइंद्रिय शत नां आख्या, अंतर शत जे बारं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, ए सैंतीसम सारं।।
२२. इम चउरिंद्रिय शतक विषे जे, अंतर शत जे बारं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, ए अड़तीसम सारं।।
२३. इम असण्णि-पंचेंद्रिय शतके, अंतर शत जे बारं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, ए गुणचालीसम सारं।।
२४. सन्नीपंचेंद्रिय महाजुम्म शतके, अंतर शत इकवीसं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, चालीसम सुजगीसं।।
२५. शत इकतालीसम राशिजुम्म, अंतर शत नहिं तासं।
इक दिन करी उद्देश करीजै, अर्थ अनोपम जासं।।
२६. विकसित कमल अछै तसु हाथे, नाश कियो अंधकारं।
एहवी जे श्रुत-अधिपति देवी, मुझ नें द्यो बुद्धि सारं।।
२७. बुध पंडित अरु विबुध देव नित्य, कियो तसु नमस्कारं।
श्रुतदेवता गणधरवाणी, करूं प्रणाम उदारं।।
२८. जेह प्रसादे ज्ञानज सीख्यूं, प्रवचनदेवी अन्नं।
शांति तणीं कारक तसु प्रणमूं, ए लेखक तणो वचन्नं।।

भगवती सूत्र के शतक और उद्देशक

दूहा

२९. शत इकसौ अड़तीस ए, तास उद्देशा सार।
उगणीसौ पणवीस वर, कहियै तसु अधिकार।।
३०. *प्रथम शतक थी अष्टम शत लग, दश-दश कह्या उद्देशं।
नवम दशम शत चउतिस-चउतिस, सखर उद्देश विशेषं।।
३१. ग्यारम शतके बार उद्देशा, बारम शतके जाणं।
तेरम शत अरु चवदम शतके, दश-दश उद्देश माणं।।
३२. एकसरो गोसाल पनरमों, सोलम चउद उद्देशा।
सतरम शतके सतर उद्देशा, जिन वच हरष हमेशा।।
३३. शत अठारम फुन उगणीसम, वीसम शते वदीतं।
प्रवर उद्देशा दश-दश कहियै, श्री जिन वचन प्रतीतं।।

---

*लय : बीस विहरमाण सदा

१६. पंचवीसतिमं दोहिं दिवसेहिं छ-छ उद्देसगा।

१७. बंधिसयाइं अट्ठसयाइं एगेणं दिवसेणं,

१८. सेढिसयाइं बारश एगेणं,

१९. एगिंदियमहाजुम्मसयाइं बारस एगेणं,

२०. एवं बेंदियाणं बारस,

२१ तेंदियाणं बारस,

२२. चउरिंदियाणं बारस एगेण,

२३. असण्णिपंचिंदियाणं बारस,

२४. सण्णिपंचिंदियमहाजुम्मसयाइं एक्कवीसं एगदिवसेणं उद्दिसिज्जंति,

२५. रासीजुम्मसतं एगदिवसेणं उद्दिसिज्जति।

२६,२७. वियसियअरविंदकरा,
नासियतिमिरा सुयाहिया देवी।
मज्झं पि देउ मेहं,
बुहविबुहणमंसिया णिच्चं।।१।।

२८. सुयदेवयाए पणमिमो,
जीए पसाएण सिक्खियं नाणं।
अण्णं पवयणदेविं,
संतिकरिं तं नमंसामि।।२।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३४. शत इकवीसम असी उद्देशा, शत बावीसम साठं।
तेवीसमें पचास उद्दशा, जिन वचने गहघाटं।।

३५. चउवीसम चउवीस उद्देशा, शत पणवीसम बारं।
आगल पांचुं शते उदेशा, कहियै ग्यार-इग्यारं।।

३६. इकतीसम अठवीस उद्देशा, बत्तीसम अठवीसं।
आगल अंतर शतक उद्देशा, कहियै तेह जगीसं।।

३७. तेतीसम अंतर शत द्वादश, इकसौ चउवीस उद्देशा।
इमहिज चउतीसम सेढी शत, वर जिन वचन विशेषा।।

३८. पैंतीसम थी गुणचालीमें शत, अंतर बारस बारं।
एक-एक शत नां उद्देशा, इकसौ बत्ती सारं।।

३९. चालीसम शतके इम कहियै, अंतर शत इकवीसं।
उद्देशा बेसौ इकतीसज, जिन वच विश्वावीसं।।

४०. इकतालीसम अंतर शत नहिं, इकसौ छिन्नूं उद्देशा।
उगणीसौ पणवीस उद्देशा, जिन वच हरष विशेषा।।

४१. प्रथम शतक थी बत्तीसम लग, अंतर शतक न कोई।
इकतालीसम चरम शते फुन, अंतर शत नहिं होई।।

४२. तेतीसम थी गुणचाली लग, ए सप्त शते सुजगीसं।
द्वादश-द्वादश अंतर शतकज, ए सर्व चौरासी दीसं।।

४३. फुन चालीसम शतक विषे जे, अंतर शत इकवीसं।
सर्व एकसौ पंच अनोपम, अंतर शतक कहीसं।।

४४. धुर बत्तीस चरम इक शतकज, ए तेतीसूं जाणी।
अंतर शतक नहीं छै यामें, प्रवर न्याय पहिछाणी।।

४५. तेतीसम थी चालीसम लग, अंतर शत इकसौ पंचं।
इक सय पंच अनें तेतीसज, इक सय अडतीस संचं।।

वा.—प्रथम बत्ती शतक अनैं राशिजुम्म इकतालीसमों शतक—ए तेतीस शत विषे अंतर शतक नहीं। अनैं तेतीसमां थी गुणचालीसमां लगैं—ए सात शतक नैं विषै बारै-बारै अंतर शतक। इम बारै नैं सात गुणा कियां चौरासी अंतर शतक हुवै। अनैं चालीसमा शतक नैं विषै २१ अंतरशतक छै, ते चौरासी में घाल्यां एकसौ पंच अंतर शतक हुवै। अनै एकसौ पंच अंतर शत मिलायां सर्व एकसौ अड़तीस शतक हुवै। इहां तैतीसमां थी चालीसमां लगैं ए आठ शतक नैं विषे १०५ अंतर शत लेखविया, पिण ए मूलगा आठ न लेखविया। ते अंतर शतक नां पेटा में आया, तिणसूं सर्व एकसौ अड़ती शतक जाणवा।

जोड़ समापन मंगल

४६. भिक्षु स्वाम भरत में प्रगटचा, भारीमाल ऋषिराया।
तास प्रसादे जोड़ करंतां, 'जय-जश' हरष सवाया।।

४७. सतरै सै बयांस्यै[1] वर्षे, भिक्षू जन्म विचारं।
संवत अठारै सै वर्षे आठे, द्रव्य दीक्षा दिल धारं।।

---

१. श्रावणादि क्रम से १७८२ और चैत्रादि क्रम से १७८३

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

४८. पनरै साल श्रद्धा शुद्ध पामी, भेषधारचां नें छोड़ी।
संवत अठारै सतरोत्तरे जे, भाव चरण चित जोड़ी।।
४९ जिन आज्ञा में धर्म बताई, सावद्य निरवद्य सोधी।
साठे सप्त पोहर संथारो, भिक्षू जन प्रतिबोधी।।
५०. अठंतरे वर्ष भारिमालजी, अणसण धरि अधिकाया।
उगणीसै आठे वर्ष परभव, रायचंद ऋषिराया।।
५१. तास प्रसादे 'जय-जश' गणपति, सूत्र भगवती केरी।
घणां हर्ष थी जोड़ करी ए, न्याय सूत्र वृत्ति हेरी।।
५२. संवत उगणीसे वर्ष चउवोसे, पोस शुक्ल पक्ष सारं।
तिथि दशम रविवार तणें दिन, बीदासर सुखकारं।।
५३. मुनि इकबीस अज्जा नेऊ वर, च्यार तीर्थ नां थाटं।
जोड़ भगवती नीं संपूरण, अधिक हर्ष गहघाटं।।
५४. सतसठ संत गणी सुखदायक, इक सय पैंसठ अज्जा।
सर्व दोयसौ नैं बत्तीसज, संत-सत्यां वर लज्जा।।
५५. ढाल पंच सय एक अनोपम, सूत्र भगवती जोड़ं।
भिक्षु भारिमाल ऋषिराय प्रसादे,
'जय-जश' आनन्द कोडं।

प्रयुक्त स्रोत निर्देश

दूहा

१. ए जोड़ भगवती नीं रची, सूत्र वृत्ति संपेख।
टबो धर्मसो यंत्र फुन, अवलोकी सुविशेख।
२. अन्य सिद्धांत तणां वली, न्याय मेल्या इण ठाम।
वलि केइक निज बुद्धि थकी, अर्थ कह्या अभिराम।।
३. अर्थ कियो फुन शब्द नों, ते पिण मिलतो जाण।
विस्तारयो किहां अल्प नों, किहां संकोची वाण।।
४. किहां वैराग्य बधायवा, उपदेश्यो अधिकाय।
किहांइक चोज लगाय नैं, व्याख्यानादि कहाय।।
५. किहां कह्यो तुक मेलवा, किहां अनुमाने लेह।
किहां बहुवच त्यां इकवचन, संग्रह वा शब्देह।।
६. किहांइक भांगा बुद्धि थकी, केइक यंत्र बणाय।
सूत्र तणों अनुसार ले, आख्यो छै अधिकाय।।
७. गमा णाणत्ता संजया, वलि नियंठा न्हाल।
सूक्ष्म चरचा में वली, मेल्या न्याय विशाल।
८. इत्यादिक इण जोड़ में, दाख्यो मिलतो जाण।
अणमिलतो जु आयो हुवै, ज्ञानी वदै ते प्रमाण।।
९. वलि कोइक पंडित प्रबल ह्वै, आगम देख उदार।
जे विरुद्ध वचन ह्वै सूत्र थी, ते काढै दीजो बार।।
१०. विण उपयोगे विरुद्ध वच, जे आयो हुवै अजाण।
अहो त्रिलोकीनाथजो, तसु म्हारै नहिं ताण।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११. म्हैं तो म्हारी बुद्धि थकी, आख्यो छै शुद्ध जाण ।
श्रद्धा न्याय सिद्धांत नां, दाख्या शुद्ध पिछाण ।।
१२. पिण छद्मस्थपणां थकी, कहियै बारंबार ।
प्रभु सिकारै अर्थ प्रति, तेहिज छै तंत सार ।।
१३. अणमिलतो जु आयो हुवै, मिश्र आयो ह्वै कोय ।
शंका सहित आयो हुवै तो, मिच्छामिदुक्कडं मोय ।।

शतक-उद्देशक यंत्र

शतक मूल	शतक उत्तर	उद्देशा	शतक मूल	शतक उत्तर	उद्देशा
१	०	१०	२२	०	६०
२	०	१०	२३	०	५०
३	०	१०	२४	०	२४
४	०	१०	२५	०	१२
५	०	१०	२६	०	११
६	०	१०	२७	०	११
७	०	१०	२८	०	११
८	०	१०	२९	०	११
९	०	३४	३०	०	११
१०	०	३४	३१	०	२८
११	०	१२	३२	०	२८
१२	०	१०	३३	१२	१२४
१३	०	१०	३४	१२	१२४
१४	०	१०	३५	१२	१३२
१५	०	१	३६	१२	१३२
१६	०	१४	३७	१२	१३२
१७	०	१७	३८	१२	१३२
१८	०	१०	३९	१२	१३२
१९	०	१०	४०	२१	२३१
२०	०	१०	४१	०	१९६
२१	०	८०			

शतक मूल ४१
शतक उत्तर ९७
उद्देशा १९२५

श्री पंचमांगे ९७ लघु शतक । ३३ मां थी ३९ मां ताइं १२-१२ अंतर शतक जाणवा । अनै ४० मां शतक में २१ अंतर शतक । ते सर्व मिली १०५ थया । पिण तेहमां बृहत शतक भेला गिण्या । बृहत शतक न्यारा करियै, तिवारै १०५ मां थी ८ काढ्यां ९७ अवशेष रह्या, ते लघु शतक जाणवा । अनै बृहत शतक ४१ । ९७ लघु शतक अनै ४१ बृहत शतक—ए सर्व मिली १३८ शतक थया ।

सर्व उद्देशा १९२३ । पनरमां शतक रो १ गिण्यां १९२४ । अनै ३१ वां शतक नां २८ उद्देशा गिण्यां १९२४ उद्देशा हुवै । मतांतरे ३१ वां शतक रा २९ उद्देशा कहै । तेहनों १ उद्देशो बलि गिणै तो १९२५ सर्व उद्देशा हुवै ।

।। इति भगवती नीं जोड़ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

- नियंठा नीं जोड़
- संजया नीं जोड़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नियंठा नीं जोड़[1]

दूहा

१. अनंत चोबीसी हूं नमूं, मस्तक हाथ चढाय।
संजम पालूं निरमलो, ज्यूं विघन सर्व मिट जाय।।
२. नेयठा संजया निरमला, भाख्या भगवंत देव।
सूत्र भगोती सार है, सतक पचीसमें भेव।।
३. राजग्रही नगरी मझे, पूछ्यो गोतम स्वाम।
नेयठा संजया किण विधे, भाखो भगवंत नाम।।
४. नेयठा संजया तेहनां, छतीस-छतीस दुवार।
विवरा सुध परगट करूं, ते सुणज्यो विस्तार।।

ढाल : १

(देशी : डाभ मूंजादिक नीं डोरी)

१. पण्णवण वेद राग कल्प चरण, पडिसेवणा नाण तीर्थ लिंगकरण।
दसमो शरीर खेत्र नें काल, तेरमो गति पदवी थित रसाल।।
२. संयम-थानक री अल्पा-बहुत विचार, पनरमो निकासे पज्जवा दुवार।
योग उपयोग कषाय लेस, बीसमो परिणाम थित कहेस।।
३. कर्म बंधे वेदे उदेरे, उवसंपज्जणा सन्ना आहार भव फेरे।
आगरिस थित अंतर समुद्घात खेत,
फूसणा भाव पूर्व प्रज्या अल्पबहुत समेत।।
४. हिवै नेयठां रा भेद, ते सुणजो आण उमेद।
पुलाग बुकस पडिसेवणा कुसीलकसाय, निग्रंथ स्नातक कह्यो जिणराय।।
५. यां छहूं रै इ महाव्रत पंच, मांहे कर्म तणों छै संच।
खेत-धान ज्यूं कहीजें पुलाग, बुकस खल्हे पड़्यो ज्यूं लाग।।
६. पडिसेवणा ते साल-ढिग कीधो, कषायकुशील ते उफल लीधो।
निग्रंथ नेयठो ते छड़िया चावल जेम, स्नातक धोय उजल कीधो एम।।
७. धान-कण सगलेइ सरीखो, तुस कचरा करनै फीको।
कचरो अलगो कीधां धान चोखो, ते किणविध खाए जोखो।।

---

१. भगवती सूत्र के पचीसवें शतक में 'नियंठा' एवं 'संजया' का प्रकरण है। जयाचार्य ने भगवती की जोड़ का निर्माण करते समय पचीसवें शतक की भी विस्तृत जोड़ की है। जयाचार्य की अन्य रचनाओं में दो स्वतन्त्र रचनाएं हैं— १. नियंठा नीं जोड़, २. संजया नीं जोड़। इनका आधार भी भगवती का पचीसवां शतक ही है। जयाचार्य ने ये दोनों जोड़ें मुनि अवस्था में वि० सं० १८७९ में लिखीं। पचीसवें शतक से सम्बन्धित होने के कारण इन दोनों रचनाओं को परिशिष्ट में दिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. छहूं नियंठा महाव्रत पांच, ते तो कदेय न खाए आंच।
मोहकर्म रूप कचरो छै भारी, सेव उभा रहै अणाचारी।।
९. महाव्रत ऊजलो जीव, तिण सूं लागै मुगत री नींव।
बिगड़ियो जीव दोष लगावै, मोहकर्म वसे गोता खावै।।
१०. जिण-जिण नेयठे कषाय पावै, कषाय वस कर्म लगावै।
जिण नेयठे मोह मरोड़ी, तिहां खपी पाप नीं कोड़ी।।
११. खेतादिक छहूं ठामे धान, कचरा रो जुदो छै मान।
फूस कचरो ते न्यारो कीधो, धान चोखो करे लेखो लीधो।।
११. ज्यूं छहूं नेयठा पांच महाव्रत रूड़ा, ते कदेय न थाए कूड़ा।
कर्म रूप कचरो अलगो होय जाय, जब स्नातक निरमल थाय।।
१३. हिवै पहिलो पण्णवण दुवार, तेहनों सांभलजो विसतार।
पांच-पांच भेद छहूं रा कीजे, सूत्र देख निरणो कर लीजे।।
१४. पुलाग में वेद पावै दोय, पुरुष कृतनपुंसक होय।
बुकस पडिसेवणा में तीन पावै, तिहां स्त्री वेद पिण थावै।।
१५. कषायकुशील में वेद तीन, अवेदी हुवै तो उपसंत खीण।
निग्रंथ उपसम खीणवेदी, सनातक खीणवेदी अवेदी।।
१६. पहला च्यार नियंठा कहीजे सरागी, निग्रंथ उपसंत खीण वीतरागी।
सनातक खीण वीतरागी सूरो, दोनूं गुणठाणा गुण कर पूरो।।
१७. पुलाग में कल्प तीन कहीजे, ठि अट्ठि नै थिवर भणीजे।
ठि-कल्पी पेहला छेहला नै बारे, अट्ठि-कल्पी दोयां रै बिचाले।।
१८. बुकस पडिसेवणा में कल्प च्यार, जिनकल्पी इधक विचार।
कषायकुसील में पांच पावै, कल्पातीत इधको थावै।।
१९. निग्रंथ सनातक में तीन कल्प वदीत, ठि अट्ठि नै कल्पातीत।
ए कह्यो चोथो कल्प दुवार, हिवै आगै सुणो विसतार।।
१०. पुलाक बुकस पडिसेवणा में चारित्र दोय पावै,
समायक छेदोपस्थापनी थावै।
कषायकुसील में चारित च्यार विख्यात, निग्रंथ स्नातक में जथाख्यात।।

—०—

दूहा

१. पडिसेवणा दुवार छठो कह्यो, ते खंध आश्री जाण।
दोष लगावै न लगावै विवरो कह्यो, ते जाणै चतुर सुजाण।।

ढाल : २

(देशी : रे भवियण ! जिण आगन्या सुखकारी)

१. पुलाग नेयठो कह्यो जिणेशर, मूल-उत्तर-गुण दोष लगावै।
ते असुभ जोग आश्री जाणो, पिण लेस्या तो सुध पावै।।
रे भवियण ! राखो जिन परतीत।
भगवंत भाख्यो ते सत जाणो, आप छांदे म करो अनीत।। (ध्रुपदं)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. बुकस उतर-गुण नै दोष लगावै, दस पचखाणां में देखो।
पंच महाव्रत मूल थी नहीं खंडै, भगवंत भाख्यो लेखो।।
३. पडिसेवणाकुसील नेयठो तीजो, मूल-उत्तर-गुण दोष लगावै।
तीनांइ में लेश्या तीन-तीन कही छै, दोष उसुभ जोग आश्री थावै।।
४. कषायकुसील अपडिसेवी कह्यो छै, तिण रो पेटो छै भारी।
दोष नहीं लगावै ते च्यार गुणठाणा, सुभ जोग लेश्या सुखकारी।।
५. छठो गुणठाणो पिण अपडिसेवी, ते सुभ जोग आश्री जाणो।
असुभ जोग रो कथन न दीसै, कूड़ी म करो ताणो।।
६. आयारंभी परारंभी तदुभयारंभी, असुभ जोग आश्री कहीजै।।
प्रमादी साधू नै प्रभु कह्यो छै, न्याय हीया में धरीजै।।
७. बले प्रमादी साधू छठे गुणठाणे, सुभ जोग आश्री साचो।
अणारंभी कह्यो अरिहंते, रह्यो ग्यान ध्यान में राचो।।
८. ए भगोती सूत्र पहले सत खंधे, पहलो उद्देशो जोय लीजे।
सुभ जोग आश्री दोष न लागै, चोथे नेयठे न्याय मेलीजे।।
९. चोथे नेयठे लेश्या छह कही छै, तिण नै वले कह्यो अपडिसेवी।
वले च्यार ग्यान कह्या तिण मांहे, तिण रो न्याय हिरदा में वेवी।।
१०. केइ भेखधारी कहै कषायकुसील नेयठो, अपडिसेवी कह्यो छै ताहि।
छदमस्थ भगवंत कदेय न चूकै, च्यार ग्यान त्यां मांहि।।
११. इम अनेक कपट कर-कर लोकां नै, भूठो बातां धरावै।
प्रश्न पूछयां जाब जथातथ नावै, भाषा बोली-बोली फिर जावै।।
१२. च्यार ग्यान थकां भगवंत नहीं चूकै, किंचत मात्र पाप न लागो।
सूत्र नों नाम ले-ले भूठ बोलै, भेखधारयां बणायो ठागो।।
१३. कदेइ आचारंग रो नाम लेइ नै कहै छै, किंचत मात्र न सेव्यो पाप।
कुपात्र नै बचायां धर्म कहै छै, त्यांरै खोटी सरधा री थाप।।
१४. प्रमाद नै इव्रत साधू आहार कीया में, सरधै छै भेखधारी।
साधू नदी उतरीयां में पाप कहै छै, प्रभु सूधी पूगा दुखकारी।।
१५. भगवंत आहार कीयो छदमस्थपणां में, केवली थका पिण कीधो आहार।
वले नदीयां अनेक उतरीया जेणां सूं, तिणमें पाप कहै भेखधार।।
१६. थे कहता भगवंत पाप न सेव्यो, छदमस्थपणां रै काल।
आहार नदी में पाप कह नै, कांय दीयो शिर आल।।
१७. तिल बताया नै लेश्या सीखाई, वले कह्या नीपनां तिल सात।
तिणनै कह्यां थकां तिण सावज सेव्यो, छदमस्थपणां री छै बात।।
१८. असंयती गोसालो कुपातर, तिण नै लबध फोड़ी नै बचायो।
ते पिण छदमस्थपणां थी जाणो, पिण केवलीयां नहीं सरायो।।
१९. पाप नहीं लागो तिहां पाप बताओ, पाप लागो तिहां कहो नांही।
इसड़ी ऊंधी सरधा मत राखो, विचार करो घट मांही।।
२०. नच्चा कहतां जाणी प्रभु पाप न करता, करावता पिण नांही।
पाप करै तिण नै भलो न जाण्ये, कह्यो आचारंग मांही।।
२१. ए तो आचार छै सर्व साधां रो, भगवंत रो पिण इम जाणो।
किंचित मात्र पाप न लागो कह नैं, कांय बूडो कर-कर ताणो।।
२२. छदमस्थ चूकै छै सात प्रकारे, कह्यो ठाणांग सातमे ठाणे।
लब्धि फोरणी भगोती में वरजी, तिण रो न्याय समदिष्टी पिछाणे।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२३. आहारीक लबध फोरचां जगन तीन जाणो, उतकृष्टी लागे क्रिया पांच ।
पन्नवणा पद छतीस में भाख्यो, खोटी मत करो खांच ।।
२४. विद्या-जंघाचारण लबध फोड़ै, आलोयां आराधक होय ।
सूत्र भगोती रै सतक बीस में, नवमें उद्देशे जोय ।।
२५. सावद्य किरतब में नही जिन आग्या, निरवद्य में आगन्या दीधी ।
आग्या मांहे पाप आग्या बारे धर्म कहे, त्यां खांच गला में लीधी ।।
२६. कषायकुशील नेयठे दोष न थापो, वले चूका कहो गोतम साम ।
त्यांमें पिण कषायकुशील नेयठो, भगवंत ज्यूं कह्या अमाम ।।
२७. चउनाणी नें चोथे नेयठे, गोतम सामी भगवान ।
त्यांनें झूठ लागो नें चूका कहो छो, थांरै लेखे थांमे नहीं ग्यान ।।
२८. भगवंत नें अपडिसेवी कहो छो, तो अपडिसेवी गोतमजी पिण आछा ।
च्यार ग्यान दोयां नें सरीखा, तो यांनें किणविध जाणो थे काचा ।।
२९. चूकै ते तो छदमस्थपणां सूं, वले मोहकर्म उदे जाणो ।
त्यांरै दोष लगावण रो थाप नहीं छै, उतम गुण एम पिछाणो ।।
३०. सुभ जोग आश्री कषायकुशील नेयठो, अपडिसेवी कहीजै ताय ।
भगवंत रा वचन साचा कर लेणा, पहला उदेशा रै न्याय ।।
३१. निग्रंथ सनातक दोनूं अपडिसेवी, मोहकर्म उपसमोयो खपायो ।
पाप रो अंस त्यांरै नहीं लागै, भाख गया जिणरायो ।।
३२. कषायकुशील नेयठो ओलखावण, जोड़ कीधी सहर पीपाड़ ।
समत अठारे गुण्यासीये वरसे, भाद्रवा बिद तीज सोमवार ।।

—०—

दूहा

१. पुलाक बुकस पडिसेवणा, दोय तथा तीन ग्यान ।
कषायकुसील निग्रन्थ में दोय तीन च्यार छै, आगै केवलग्यान प्रधान ।।
२. पुलाक वालो भणै जघन तो, नवमा पूर्व नीं तीजी वत्थु लग ताय ।
उतकष्टो नव पूर्व भणै, भाख गया जिणराय ।।
३. बुकस पडिसेवणा कषायकुसील निग्रंथ, जघन आठ प्रवचन जाण ।
उतकृष्ट ऊला[1] दोय दस पूर्व भणै, दोय[2] चवदै पूर्व पिछाण ।।
४. सनातक सूत्रवतिरित्त छै, त्यांरै भारी केवलनाण ।
आठमो दुवार तीर्थ कह्यो, तिणरी सुणो पिछाण ।।

ढाल : ३

(देशी : आ अणुकंपा जिन आज्ञा में)

१. पेहला तीन नेयठा तीर्थी कह्या जिण, छेहला में तीर्थ पावै च्यार ।
तीर्थी अणतीर्थी प्रत्येकबुद्ध, वले तीर्थंकर देव विचार ।।
यां छहूं नेयठां रो निरणो कीजो ।। (ध्रुपदं)

१. बकुस, प्रतिसेवना
२. कषायकुशील, निग्रंथ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. द्रव्य लिंग आश्री तीन लिंग कह्या जिण, सलिंग अनलिंग ग्रीहीलिंग कहवाय ।
भावलिंग आश्री सलिंगी निश्चै, छहूं नेयठा नैं कह्या जिणराय ।।
३. उदारीक तेजस कारमण शरीर, पुलाक निग्रंथ सनातक में जाणो ।
बुकस पडिसेवणा में वेक्रे रो भजना, कषायकुशील नैं तीन चार पांच पिछाणो ।।
४. पुलाक जनम छता आश्री कर्मभूमी, साहरण तिणरो न कह्यो जिणराय ।
पांच नेयठा जन्म छता आश्री कर्मभूमी, साहरण आश्री अढी द्वीप रै मांय ।।
५. पुलाक जनम आश्री अवसर्पिणी नैं चोथे आरे, छता आश्री तीजे चोथे पंचमे आरे ।
उत्सर्पिणी नैं जनम आश्री बीजे तीजे चोथे, छता आश्री तीजे चोथे कोइ न सहारे ।।
६. बुकस पडिसेवणा कषायकुसील अवसर्पिणी नैं,
जनम छता आश्री तीजे चोथे पांचमे आरे ।
उत्सर्पिणी नैं जन्म बीजे तीजे चोथे छता आश्री तीजे चोथे,
आगे पुलाक नीं परे पिण साहरण सारे ।।
७. पुलाक बुकस पडिसेवणा कषायकुशील, जघन तो पेहले देवलोके जाये ।
उतकष्टो सहसार दोय अच्चू नैं अणुत्तर,
निग्रन्थ अणुत्तर स्नातक मोख सिधाये ।।
८. पुलाक बुकस पडिसेवणा आराधक हुवै तो, च्यांरूंइ पदवी मोटकी पावै ।
इंद्र सामानिक तावतोसग लोकपाल, कषायकुसोल पांच अहमिंद्र इधकी थावै ।।
९. निग्रंथ अहमिंद्र सनातक मोख, ए तो आराधक रो लेखो बतायो ।
विराधक हुआं पेहले देवलोके, पदवो रहित बहु गोता खायो ।।
१०. आउ जघन प्रतक पल च्यार नेयठा, उत्कृष्टो सागर अठारे दोय बावीस नैं तेतीस ।
निग्रंथ जघन उतकष्टो पामै तेती सागर, सनातक सिद्ध हुवै जगदीस ।।
११. च्यार नेयठा थानक असंख्या दोयां रो एक-एक,
सर्व थोड़ा निग्रंथ स्नातक थानक विख्याता ।
पुलाक बुकस पडिसेवणा कषायकुशील, अनुक्रमे असंख्याता-असंख्याता ।।
१२. पुलाक पुलाक मांहोमां छठाणवड़ीया,
पुलाक कषायकुशील सूं पिण छठाणवड़ीया ।
बाकी च्यारां सूं अनंतगुण हीणा, त्यारां पज्जवा अनंतगुण अधिक उघड़ीया ।।
१३. बुकस पुलाक सूं अनंतगुण इधको, बुकस पडिसेवणा कषाय सूं छठाण ।
नियंठो सनातक सूं अनंतगुण हीणो, मोहकर्म अलगो हुआं पज्जवा पिछाण ।।
१४. पडिसेवणा पुलाग सूं अनंतगुण इधका, पडिसेवणा बुकस कषाय सूं छठाण ।
नेयठा सनातक सूं अनंतगुण हीण, त्यां मोहकर्म नीं कीधी हाण ।।
१५. कषाय पुलाक बुकस पडिसेवणा छठाणवड़ीया,
नेयठा सनातक सूं अनंतगुण हीणा ।
नेयठा नैं सनातक मांहोमां तुला, बाकी च्यारां सूं अनंतगुण इधिक प्रवीणा ।।
१६. पुलाक कषायकुसोल चारित रा जघन पज्जवा, मांहोमां तुला सर्व थोड़ा कहंता ।
पुलाक उतकष्टा चारित पज्जवा अनंतगुणा छै,
बुकस पडिसेवणा जघन पज्जवा तुला अनंता ।।
१७. तिणसूं बुकस पडिसेवणा कषायकुशील, अनुक्रमे उतकष्ट अनंतअनंता ।
निग्रंथ सनातक मांहोमां तुला, अनंतगुण पज्जवा इधिक कह्या भगवंता ।।
१८. ए पनरै दुवार कह्या परमेस, सोलमें तीन-तीन छहूं में जोग ।
सनातक सजोगी तथा अजोगी हुवै, सतरमें सगले होय दोय-दोय उपयोग ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१९. तीन नेयठा कषाय संजल नीं चोकड़ो, चोथे च्यार तीन दोय अथवा एक ।
निग्रंथ में उपशंत खीण कह्यो छै, सनातक में खीण सुध विवेक ।।
२०. तीन नेयठा भली तीन लेस्या, कषायकुशील मांहे छहूं पावै ।
तिण रो तो पेटो भारी घणों छै, पांच गुणठाणां तिण मांहे आवै ।।
२१. निग्रंथ सनातक में शुकल-लेश्या, सनातक तथा अलेसी ह्योयो ।
उगणीसमों लेश्या दुवार कह्यो छै, बीसमो परिणाम दुवार जोयो ।।
२२. विरधमान हायमान नैं अवठोया, च्यारूं नेयठा तीनूं परिणाम ।
निग्रंथ सनातक विरधमान अवठोया, तानां रो थित सुणो हिवै ताम ।।
२३. च्यारूं नेयठा जघन एक समा री, उत्कृष्टी अंतरमुहूर्त दोयां री ।
अवठीयां री उत्कृष्टी सात समा री, परिणाम थित ओलख लीजो त्यांरो ।।
२४. निग्रंथ में विरधमान जघन उत्कृष्टी अंतरमुहूर्त अवठीया,
जघन एक समो उतकष्टी अंतरमुहूर्त जोड़ ।
सनातक विरधमान जघन उतकष्टो अंतरमुहूर्त,
अवठीया जघन अंतरमुहूर्त उतकष्टो देश ऊणो पूर्व कोड़ ।।
२५. पुलाक सात कर्म बांधै आऊ वर्जी नैं, बुकस पडिसेवणा बांधै सात आठ ।
कषायकुशील आठ सात षट बांधै, आगै सातावेदनी बंधै पुन थाट ।।
२६. सनातक नैं तथा अबंध कह्यो छै, ए इकवीसमो कह्यो बंध दुवार ।
च्यार नेयठा नियमा आठ वेदै, निग्रंथ सात सनातक च्यार ।।
२७. पुलाक छह कर्म उदीरै वेदनी आऊ वर्जी,
बुकस पडिसेवणा पिण षट तथा आठ सात ।
कषायकुशील एवं तथा पांच उदीरै, वेदनी मोहणी आऊ वर्जी विख्यात ।।
२८. निग्रंथ पांच तथा दोय उदीरे, सनातक नाम गोत्र तथा नहीं उदीरै ।
हिवै उवसंपज्जणा चोवोसमों दुवार, निज गुण छांडी नै और में जाय फेरै ।।
२९. पुलाकपणों छांडी हुवै कषायकुशील असंजमी, बुकसपणो छांडी पडिसेवणा थाय ।
वले कषाय असंजम संजमासंजम में, मोहकर्म वस गोता खाय ।।
३०. पडिसेवणा छांडी बुकस कषायकुसील में, वले असंजम संजमासंजम में जावै ।
कषायकुशीलपणों छांडी पडिसेवणा सहित च्यारां में,
पुलाक निग्रंथ में इधको थावै ।।
३१. निग्रंथपणों छांडी नै सनातक में जावै, वले कषायकुशील असंजम में कहीजै ।
सनातकपणों सिद्ध गति सिधावै, त्यां आत्म कार्य सगलाई सीझै ।।

—०—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

१. पुलाक निग्रंथ सनातक संज्ञा नहीं, और तीनां में भजना धार ।
पांच नेयठा आहारीक छै, सनातक भजना विचार ।।
२. पांच नेयठां जघन भव एक है, पुलाक निग्रंथ तीन भव जाण ।
विचे तीन नेयंठा भव आठ है, सनातक पोंहचे निरवाण ।।

ढाल : ४

(देशी : जगत-गुरु त्रिशला नंदन वीर)

१. पांच नेयठा भव आसरी, जघन आवै एक बार विचार ।
उतकष्टो पुलाक तीन निग्रंथ दोय छै, बिचला तीनूं प्रत्येक सौ-सौ बार ।।
मुनीसर नियंठा मुख धार ।। (ध्रुपदं)
२. सनातक एक भव आसरी, जघन उतकष्टो एक बार ।
पांच नेयठा घणां भवां आसरी आवै, त्यांरो सुणो विस्तार ।।
३. जघन दोय-दोय वेला जाणजो, उतकष्टो पुलाक वेला सात ।
बिचला तीनूं प्रतक सहंस वेला जाणजो, निग्रंथ पांच वेलां विख्यात ।।
४. जघन उतकष्टी थित पुलाग नीं जी, अंतरमुहूर्त जोड़ ।
च्यारां री जघन एक समा तणीं, उतकष्टी देश ऊणी पूर्व कोड़ ।।
५. निग्रंथ री जघन एक समा तणीं, उतकष्टी अंतरमुहूर्त जाण ।
सनातक री जघन अंतरमुहूर्त तणीं, उतकष्टी देश ऊणी पूर्व कोड़ पिछाण ।।
६. घणां पुलाग आसरी थित, जघन एकसमो जाण ।
पेहला रो समो छेहलो रह्यो, दूजा रो पहलो लागो आण ।।
७. उतकष्टी अन्तर्मुहूर्त तणीं, छहूं निग्रंथ आश्री पिण इम जाण ।
च्यार नेयठा सदा काल छै, घणां काल आश्री पिछाण ।।
८. आंतरो पड़ै पांच नेयठा तणों, जघन अन्तरमुहूर्त जोय ।
उत्कष्ट अर्ध पुद्गल तणों, सनातक आंतरो नहीं कोय ।।
मुनीसर एक जीव आसरी जोय ।।
९. घणां पुलागां आसरी, आंतरो जघन समो एक ।
उतकष्टो संख्याता वरसां तणों, घणां जीवां आसरी देख ।।
१०. च्यार नेयठा घणां जीवां आसरी, आंतरो नहीं छै तास ।
निग्रंथ जघन एक समा तणों, उतकष्टो छहू मास ।।
११. पुलाक में समुद्घात तीन छै, वेदनी कषाय मारणंती जोय ।
बुकस पडिसेवणा में पांच छै, वेक्रे तेजस बधी दोय ।।
१२. कषायकुशील में छहू कही, आहारीक बधी साख्यात ।
निग्रंथ में एको नहीं जी, सनातक में केवल-समुदघात ।।
१३. छहूं नेयठा लोक नें असंख्यातमें भागे होय ।
तथा सनातक सर्व लोक में, समुदघात आसरी सोय ।।
१४. छहूं नेयठा लोक नों जी, फर्शे असंख्यातमो भाग ।
सनातक तथा सर्व लोक में जी, फर्शे आकाश प्रदेश लाग ।।
१५. च्यार नेयठा खयोपसम भाव छै, उपशम क्षायक निग्रंथ ।
सनातक क्षायक भाव छै, पछै मुगत सिधावै संत ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१६. छहूं नेयठा वर्तमान प्रज्या आसरी, सिय अत्थि सिय नत्थि जाण ।
होवै तो जघन एक दोय तीन हुवै, उतकष्टा ऊला तीन प्रतक सौ पिछाण ।।
१७. कषायकुसील वाला प्रतक सहंस हुवै, एक सौ बासठ निग्रंथ एन ।
उपसमश्रेणी चोपन कह्या, एक सौ आठ सनातक चैन ।।
१८. पूर्व प्रज्या आश्री जी, पुलाक निग्रंथ दोय ।
सिय अत्थि सिय नत्थि होवै तो, जघन एक दोय तीन होय ।।
१९. उतकष्टा पुलाक प्रतक सहंस जाणजो, निग्रंथ प्रतक सौ भाल ।
सनातक जघन उतकष्टा कह्या जी, प्रतक कोड़ संभाल ।।
२०. बुकस पडिसेवणा जघन उत्कष्ट थी, प्रतक सौ कोड़ विचार ।
कषायकुसील प्रतक सहंस कोड़ है, जघन उतकष्टा धार ।।
२१. सर्व थोड़ा निग्रंथ कह्या जी, तिण सूं पुलाक संख्यात ।
सनातक संख्यातगुणा कह्या, बुकस संख्यातगुणा विख्यात ।।
२२. तिण सूं संखेजगुणा पडिसेवणा रा, संखेजगुणा कषायकुशील रा जाण ।
ए छतीसूं इ दुवार प्रभु कह्या जी, ज्ञानी वचन प्रमाण ।।
२३. भगोती सूत्र शतक पचीसमें जी, छठे उदेशे भाव ।
जोड़ कीधी नेयठा तणीं जी, चतुरां रै चित चाव ।।
२४. समत अठारे गुण्यासीये जी, भाद्रवा बिद छठ गुरुवार ।
भव-जीवां नै समझायवा, जोड़ कोधी सहर पीपाड़ ।।

।। इति नियंठा नीं जोड़ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजया नीं जोड़

दहा

१. संजया भगवंत किणविध कह्या ? भाखो वचन अमोल ।
सुण वच्छ गोतम ! जिण कहै, आछी रीत अडोल ।।
२. पांच संजया परूपीया, समायक छेदोपस्थापनी सूर ।
परिहारविशुद्ध सुखमसंपराय कह्यो, वले जथाख्यात गुणपूर ।।
३. समायक चारित्र रा भेद दोय छै, इत्तरीय नै आव ।
आव ते तो बावीस तीर्थंकर नें, वले महाविदेह चित चाव ।।
४. इत्तर जघन दिन सात नों, मभ्फम कह्यो च्यार मास ।
उत्कष्टो छह मास नों, कारण साढा छह मास विमास ।।
५. छेदोपस्थापनीय नां दोय भेद छै, अतिचार सहित ऋषभ महावीर र वार ।
तेवीसमा रा आवै चोवीसमा मभ्फे, त्यांरै नहीं अतिचार ।।
६. तप करवा पेठो नें तपकर नोकल्यो, ए पडिहारविसुध रा दोय भेद ।
अठारै वरसां लग जाणजो, तप करै आण उमेद ।।
७. संकिलेसमाणे पड़तो उपशम श्रेणी थो, विसुधमाण ए क्षपक श्रेणी चढतोविख्यात ।
ए दोय भेद सुखमसंपराय नां, हिवै आगै सुणो जथाख्यात ।।
८. जथाख्यात नां दोय भेद छै, छद्मस्थ केवली जाण ।
तथा उपसंत नें खीण छै, ए पेहलो पण्णवण-दुवार पिछाण ।।
९. सामायक छेदोपस्थापनी नें वेद तीन छै, तथा अवेदी हुवै तो उपसंत खीण ।
परिहारविशुद्ध में वेद दोय छै, आगै उपसंत-खीण-वेदी प्रवीण ।।

ढाल : १

(देशी : राधा प्यारी हे लेवो नीं झखोलो ठंडा नीर नीं)

१. च्यार संजया सरागी कह्या, जथाख्यात उपसंत नें खीण, जिणंद मोरा हो ।
सुध पालै नें धारै ते ऊधरै, आग्या सहीत पुरुष प्रवीण, जिणंद मोरा हो ।।
भलो ज्ञान बतायो जिणराज नों ।। (ध्रुपदं)
२. द्विकल्पी पहला छेहला तीर्थंकर तणां, अद्विकल्प बावीसां नां जाण ।
जिन थिवरकल्पी नें कल्पातीत छै, समायक में पांचूं कल्प पिछाण ।।
३. छेदोप० परिहारविसुद्ध में, द्वि जिन थिवर कल्प वदीत ।
सुखमसंपराय नें जथाख्यात में, द्वि अद्वि नें कल्पातीत ।।
४ दोय चारित्र में नेयंठा ऊला च्यार छै, दोयां में कषायकुशील होय ।
जथाख्यात चारित मांहे जिन कह्या, निग्रंथ सनातक दोय ।।
५. दोय संजया मूलगुण उत्तरगुण मभ्फे, दोष लगावै छै ताय ।
तीन संजया दोष लगावै नहीं, ए पडिसेवणा छठो दुवार कहवाय ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

६. च्यारूं चारित में च्यार भांगा कह्या, च्यारूंइ ग्यान विचार।
जथाख्यात मांहे इमहीज छै, तथा केवलज्ञान श्रीकार।।
७. च्यार संजया भणै जघन प्रवचन माता तणां, उत्कष्ट चवदै पूर्व तहतीक।
पडिहारविशुद्ध जघन नवमा पूर्व नीं तीजी वत्थू, उतकष्ट देश ऊणो दश पूर्व ठीक।।
८. तथा जथाख्यात सूत्रवतिरित्त छै, हिवै तीनां में तीर्थ पावै च्यार।
तीर्थी अणतीर्थी प्रतेकबुद्ध तीर्थंकर, एक तीर्थी होवै छेदोप० परिहार।।
९. च्यार संजया द्रव्य लिंग आसरी, सलिंग अनलिंग ग्रीहीलिंग विचार।
भावलिंग आश्री सलिंगी कह्या, द्रव्य भाव लिंग आश्री सलिंगी परिहार।।
१०. दोय चारित्र शरीर तीन च्यार पांच छै, आहारीक त्यां वेक्रे शरीर।
छेहला तीन चारित में शरीर तीन छै, हिवै खेत्र दुवार इग्यारमो कहै वीर।।
११. तीन संजया जनम छता आसरी पनरे खेत्रे, साहरण अढी द्वीप मांहि।
छेदोप० एवं पिण दस खेत्र में कह्या, परिहार दस खेत्रे पण साहरण नांहि।।
१२. समायक जनम छता आसरी, अवसर्पणी नें तीजे चोथे पांचमे आरे।
उत्सर्पिणी नें जन्म आश्री बीजे तीजे चोथे कह्यो, छता आश्री तीजे चोथे साहरण सारे।।
१३. छेदोप० जनम छता आश्री, अवसर्पिणी तणै तीजे चोथे पांचमे आरे ताम।
उत्सर्पिणी नें जन्म आश्री बीजे तीजे चोथे कह्यो,
छता आश्री तीजे चोथे साहरण सगले ठाम।।
१४. परिहारविशुद्ध अवसर्पिणी जन्म आसरो तीजे चोथे,
छता आश्रो तीजे चोथे पंचम काल।
उत्सर्पिणी जन्म आश्रो बीजे तीजे चोथे कह्यो, छता आश्री तीजे चोथे भाल।।
१५. सुखमसंपराय जथाख्यात परिहार ज्यूं, पिण छै महाविदेह खेत्र मझार।
साहरण आश्री अढी द्वीप में, बारमो कह्यो काल दुवार।।
१६. पेहला दोय चारितवाला जघन थी, उपजै सुधर्म देवलोक।
उत्कष्ट अनुत्तरविमाण में, पछै वेगा पोंहचै गति मोख।।
१७. जघन सुधर्म उत्कृष्ट आठमें, परिहारविसुद्ध चारित्रीयो जाय।
सुखम जघन उत्कृष्ट अनुत्तरविमाण में,
जथाख्यात जघन सर्वार्थसिद्ध उत्कष्ट मोख मांय।।
१८. समायक छेदोपणी चारित बेहूं, पावै पांच पदवी बखाण।
इन्द्र सामानीक लोकपाल नीं, तावतीसक अहमिंद्र जाण।।
१९. परिहारविशुद्ध च्यार अहमिंद्र विना, सुखम जथाख्यात अहमिंद्र अमोल।
आराधक हुआं ए पदवी लहै, विराधक अनेरे ठामे नहीं तोल।।
२०. तीन संजया जघन थित दोय पल तणीं, उतकष्टो तेती-तेती सागर संजया दोय।
परिहार अठारे सागर तणीं, आगे जघन उत्कृष्ट तेती सागर होय।।
२१. असंख्याता थानक च्यारूं चारित तणां, जथाख्यात रो थानक एक।
सर्व थोड़ो थानक जथाख्यात रो, असंख्यातगुण सुखमसंपराय नां देख।।
२२. असंख्यातगुणां परिहारविसुद्ध नां, सामायक छेदोप० मांहोमां तुला सोय।
परिहारविशुद्ध सूं असंखगुणा, ए संयम-थानक अल्पाबहुत जोय।।
२३. ए चवदै दुवार इम जाणजो, पनरमों निकासे पज्जवा दुवार।
पांच चारित रा पज्जवा अनंत छै, ते सांभलजो विस्तार।।

—०—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूहा

१. सामायक सामायक छठाणवड़ीया, सामायक सूं छेदोप० परिहार छठाण ।
सुखम० जथाख्यात सूं अनंतगुण हीण छै, इम छेदोप० परिहार विशुद्ध सूं पिण जाण ।।
२. सुखमसंपराय सूं सुखम० छठाणवडीया, तीनां सूं अधिक जथाख्यात सूं हीण ।
तुला जथाख्यात जथाख्यात सूं, च्यारां सूं अनंतगुण अधिक प्रवीण ।।
३. जघन सामायक छेदोपणी चारित तणां, पजवा सर्व थोड़ा तुला मांहोमांय ।
जघन परिहारविशुद्ध नां अनंतगुणा, अनंतगुणा उत्कृष्ट परिहार कहवाय ।।
४. उत्कृष्ट सामायक छेदोपणी चारित तणां, मांहो मां तुला अनंतगुण जाण ।
तिण सूं सुखमसंपराय नां जघन अनंतगुणा,
तेहीज उत्कृष्ट पजवा अनंतगुणा बखाण ।।
५. यां सगलां सूं पजवा जथाख्यात नां, जघन उत्कृष्टा कह्या जिणराय ।
अनंतगुणा ए जाणजो, ए कह्यो पनरमो पज्जवा दुवार ।।

ढाल : २

(देशी : विनय रा भाव सुण सुण गूंजे)

१. पांचूं संजया तीन योगी, जथाख्यात तथा अजोगी ।
दोय उपयोग सागार मणागार, सुखमसंपराय एक सागार ।।
२. सामायक छेदोपणी रै मांय, च्यार तीन दोय एक कषाय ।
च्यार हुवै तो संजल नीं जाण, तीन हुवै तो क्रोध नीं हाण ।।
३. दोय हुवै तो मान लोभ पावै, एक हुवै तो लोभ कहावै ।
परिहारविशुद्ध में संजल नीं च्यार, सुखमसंपराय लोभ विचार ।।
४. जथाख्यात अकसाई होय, उपसंत अनैं खीण दोय ।
ए अठारमो कषाय दुवार, हिवै लेस्या रो सुणो विचार ।।
५ दोय संजया छह लेस्या कहीजे, परिहारविशुद्ध भली तीन लीजे ।
सुखम० जथाख्यात शुकल कहेसी, जथाख्यात तथा अलेसी ।।
६. तीन संजया तीन परिणाम, वृध हयमान अवठीया ताम ।
सुखम० वधमान हयमान, जथाख्यात वृधमान अवठोया जाण ।।
७. तीन संजया तीन परिणामां री ताय, थित जघन एक समो कहवाय ।
उत्कृष्टा अंतरमुहूर्त दोयां री आखी, सात समा अवठीयां री भाखी ।।
८. सुखम० वृध हयमान जघन समो एक, उत्कृष्टी अंतरमुहूर्त देख ।
जथाख्यात वृधमान अंतरमुहूर्त्त जोड़,
अवठीया जघन समो उत्कृष्ट देश ऊणो पूर्व कोड़ ।।
९. तीन संजया सात आठ कर्म नों बंध, जथाख्यात सातावेदनी तथा अबंध ।
सुखमसंपराय छह कर्म बंधाय, मोहणी आउखो बर्जी ताय ।।
१०. च्यार संजया आठूं कर्म वेदै, जथाख्यात सात मोह भेदै ।
तथा अघातीया वेदै कर्म च्यार, ए बावीसमों वेद दुवार ।।
११. तीन संजया कर्म सात आठ उदेरै, तथा वेदनी आऊ वर्जी छह खेरै ।
सुखमसंपराय पिण छह उदेरै, तथा मोहणी वर्जी पंच बिखेरै ।।
१२. जथाख्यात पांच इम होय, तथा नाम गोत उदीरै दोय ।
तथा अणउदेरचा तूटै सोय, तेवीसमो दुवार उदेरणा जोय ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१३. सामायकपणों छांडी च्यारां में जाय, छेदोप० सुखम० असंयमी थाय।
तथा संजमासंजम में जावै, छेदोप० एवं पिण परिहार थावै ।।
१४. परिहारपणों छोड़ी पावै दोय, छेदोप० असंयम होय।
सुखमसंपराय छांडी सामायक थाय, छेदोप० जथाख्यात असंयम में जाय ।।
१५. जथाख्यात छांडो पावै तीन, सुखम० असंयम मोक्ष प्रवीण।
तीन संजया सन्नानोसन्नोवउत्ता, आगै नोसन्ना भगवंता ।।
१६. च्यार संजया करै आहार, जथाख्यात भजना विचार।
दोय संजया जघन भव एक, उतकष्टा आठ विशेष ।।
१७. परिहार० सुखम० जथाख्यात, जघन एक भव थात।
उतकष्टा तीन विचारो, ए सतावीसमो भव दुवारो ।।
१८. पाचूं संजया एक भव आश्री जोय, जघन एक बार आवै सोय।
उतकष्टा सामायक प्रतक सौ बार, छेदोप० एक सौ बीस वार विचार ।।
१९. परिहार० तीन सुखम० च्यार, जथाख्यात आवै दोय वार।
घणां भवां आश्री जघन दोय वार, हिवै पांचूं उतकष्टा धार ।।
२०. सामायक बोहींतर सौ वेला आवै, छेदोप० नव सौ साठ वेला थावै।
परिहार० सुखम० सात नव ख्यात, पांच वार आवै जथाख्यात ।।
२१. थित एक जीव आश्री पांचां री, जघन एक समो कही ज्यांरी।
सामायक छेदोप० जथाख्यात नीं उत्कृष्टी, नव वर्ष ऊणी पूर्व कोड़ पुष्टी ।।
२२. गुणतीस वर्ष ऊण कोड़ पूर्व परिहार०, सुखम० अंतरमुहूर्त सार।
घणां जीवां आश्री सामायक जथाख्यात, सदा काल रहै साख्यात ।।
२३. छेदोप० जघन अढी सौ वर्ष होय, उत्कष्टो पचा लाख कोड़ सागर जोय।
जघन देस ऊणो दोय सौ वर्ष परिहार०, उत्कष्टो देश ऊणो दोय पूर्व कोड़ सार ।।
२४. सुखमसंपराय जघन समो एक, उतकष्टो अंतरमुहूर्त देख।
ए घणां जीवां आश्री जाण, गुणतीसमो थित दुवार पिछाण ।।

—०—

दूहा

१. पांच संजया जघन आंतरो, अंतरमुहूर्त मात।
उतकष्टो देश ऊणो अर्द्धपुद्गल तणों, एक जीव आश्री कहात ।।
२. घणां जीवां आश्री आंतरो, सामायक जथाख्यात रो नांहि।
छेदोपस्थापनी नों जघन आंतरो, तेसठ सहंस वर्ष नों त्यांहि ।।

ढाल : ३

(देशी : धीज करै सीता सती रे लाल)

१. आंतरो कह्यो तेसठ सहंस वर्ष नों रे, तो पांचमे आरे आंतरो केम रे, सुगण नर।
जघन तेसठ सहंस सूं ओछो नहीं रे लाल, कोई पूछा करै एम रे, सुगण नर।
झीणो ज्ञान जिनराज नों रे लाल ।। (ध्रुपदं)
२. ते कह्यो दस खेत्रां आसरी रे, छेदोपस्थापनी चारित नों सोय रे।
एक भरत आश्री मत जाणजो रे लाल, ए न्याय धारी लीजो जोय रे ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३. गुण विण भेख में चारित नहीं रे, चारित हुवै पाल्यां रूड़ी रीत रे।
सुध नहीं पाल्यां विरहो पड़ै रे लाल, आ जिण मारग नीं रीत रे।।
४. नामगो सेठ रो रहै पुत्र सूं रे, दास सूं नामगो मत देख रे।
ज्यूं सुध साधां सूं विरहो मत जाणजो रे लाल, असाधां सूं विरहो विशेष रे।।
५. उतकष्टो विरहो अठारै कोड़ाकोड़ सागर तणों, ए छेदोपस्थापन नों संभाल रे।
छह आरा बिचला लीया रे लाल, उतकृष्टो परिहारविसुध इम भाल रे।।
६. जघन परिहार० चोरासी सहंस वर्ष रो रे, सुखम० जघन समो उतकष्टो छ मास रे।
घणां जीवां आश्री कह्यो आंतरो रे लाल, ए तीसमो दुवार विमास रे।।
७. समुद्घात छह समायक छेदोप० में रे, वेदनी कषाय मारणंती परिहार रे।
सुखमसंपराय समुद्घात को नहीं रे लाल, जथाख्यात केवल श्रीकार रे।।
८. च्यार संजया लोक नें असंख्यातमें भाग छै रे,
जथाख्यात असंख्यातमें तथा सर्व लोय रे।
च्यार फर्शै लोक नों भाग असंख्यातमों रे लाल,
जथाख्यात एवं तथा सर्व लोक फर्शै सोय रे।।
९. च्यार संयम में क्षय उपसम भाव छै रे, जथाख्यात उपसम तथा क्षायक भाव रे।
हिवै वर्तमान पूर्व प्रज्या आसरी रे लाल, सुणो पेंतीसमों द्वार चित चाव रे।।
१०. पांच चारित व्रतमान प्रज्या आसरी रे, सिय अत्थि सिय नत्थि सोय रे।
होवै तो एक दोय तीन जघन थी रे लाल, उतकष्टा न्यारा-न्यारा होय रे।।
११. प्रतक सहंस सामायक नैं छेदोप० नीं रे, एक समे प्रतक सौ परिहार रे।
सुखम० जथाख्यात एक सौ बासठ कह्या रे लाल,
उपसम श्रेणि चोपन खपक एक सौ आठ सार रे।।
१२. पूर्व प्रज्या आश्री समायक तणां रे, जघन उतकष्टा प्रतक सहंस कोड़ रे।
जथाख्यात प्रतक कोड़ जाणजो रे लाल,
और तीन चारित सिय अत्थि सिय नत्थी जोड़ रे।।
१३. छेदोप० जघन उतकष्ट प्रतक सौ कोड़ छै रे,
परिहार० जघन उतकष्ट प्रतक हजार रे।
सुखमसंपराय प्रतक सौ जाणजो रे लाल, सुणो छतीसमो अल्पाबहुत दुवार रे।।
१४. सर्व थोड़ा सुखमसंपराय नां रे, परिहारविसुध संखेजगुणां जाण रे।
संखेजगुणां जथाख्यात संखेजगुणां छेदोप० नां रे लाल,
त्या सूं संखेजगुणां सामायक रा बखाण रे।।
१५. संवत अठारे गुण्यासीये रे, भाद्रवा बिद इग्यारस मंगलवार रे।
जोड़ कीधी संजया तणीं रे लाल, मुरधर देश में शहर पीपाड़ रे।।

।। इति संजया नीं जोड़ ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

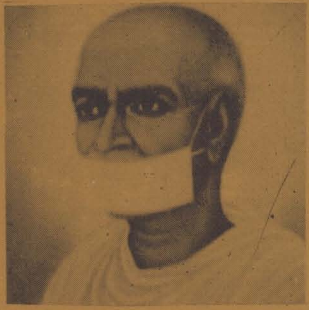

प्रज्ञापुरुष जयाचार्य

छोटा कद, छरहरा बदन, छोटे-छोटे हाथ-पांव, श्यामवर्ण, दीप्त ललाट, ओजस्वी चेहरा— यह था जयाचार्य का बाहरी व्यक्तित्व।

अप्रकंप संकल्प, सुदृढ़ निश्चय, प्रज्ञा के आलोक से आलोकित अंतःकरण, महामनस्वी, कृतज्ञता की प्रतिमूर्ति, इष्ट के प्रति सर्वात्मना समर्पित, स्वयं अनुशासित, अनुशासन के सजग प्रहरी, संघ व्यवस्था में निपुण, प्रबल तर्कबल और मनोबल से संपन्न, सरस्वती के वरदपुत्र, ध्यान के सूक्ष्म रहस्यों के मर्मज्ञ—यह था उनका आंतरिक व्यक्तित्व।

तेरापंथ धर्मसंघ के आद्यप्रवर्तक, आचार्य भिक्षु के वे अनन्य भक्त और उनके कुशल भाष्यकार थे। उनकी ग्रहण-शक्ति और मेधा बहुत प्रबल थी। उन्होंने तेरापंथ की व्यवस्थाओं में परिवर्तन किया और धर्मसंघ को नया रूप देकर उसे दीर्घायु बना दिया।

उन्होंने राजस्थानी भाषा में साढ़े तीन लाख श्लोक प्रमाण साहित्य लिखा। साहित्य की अनेक विधाओं में उनकी लेखनी चली। उन्होंने भगवती जैसे महान् आगम ग्रंथ का राजस्थानी भाषा में पद्यमय अनुवाद प्रस्तुत किया। उसमें ५०१ गीतिका हैं। उसका ग्रंथमान है-साठ हजार पद्य प्रमाण।

- जन्म—१८६० रोयट (पाली मारवाड़)
- दीक्षा—१८६९ जयपुर
- युवाचार्य पद—१८९४ नाथद्वारा
- आचार्य पद—१९०८ बीदासर
- स्वर्गवास—१९३८ जयपुर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

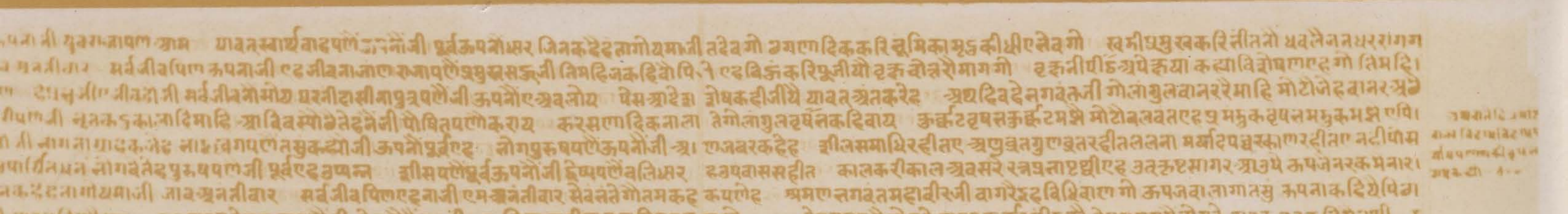

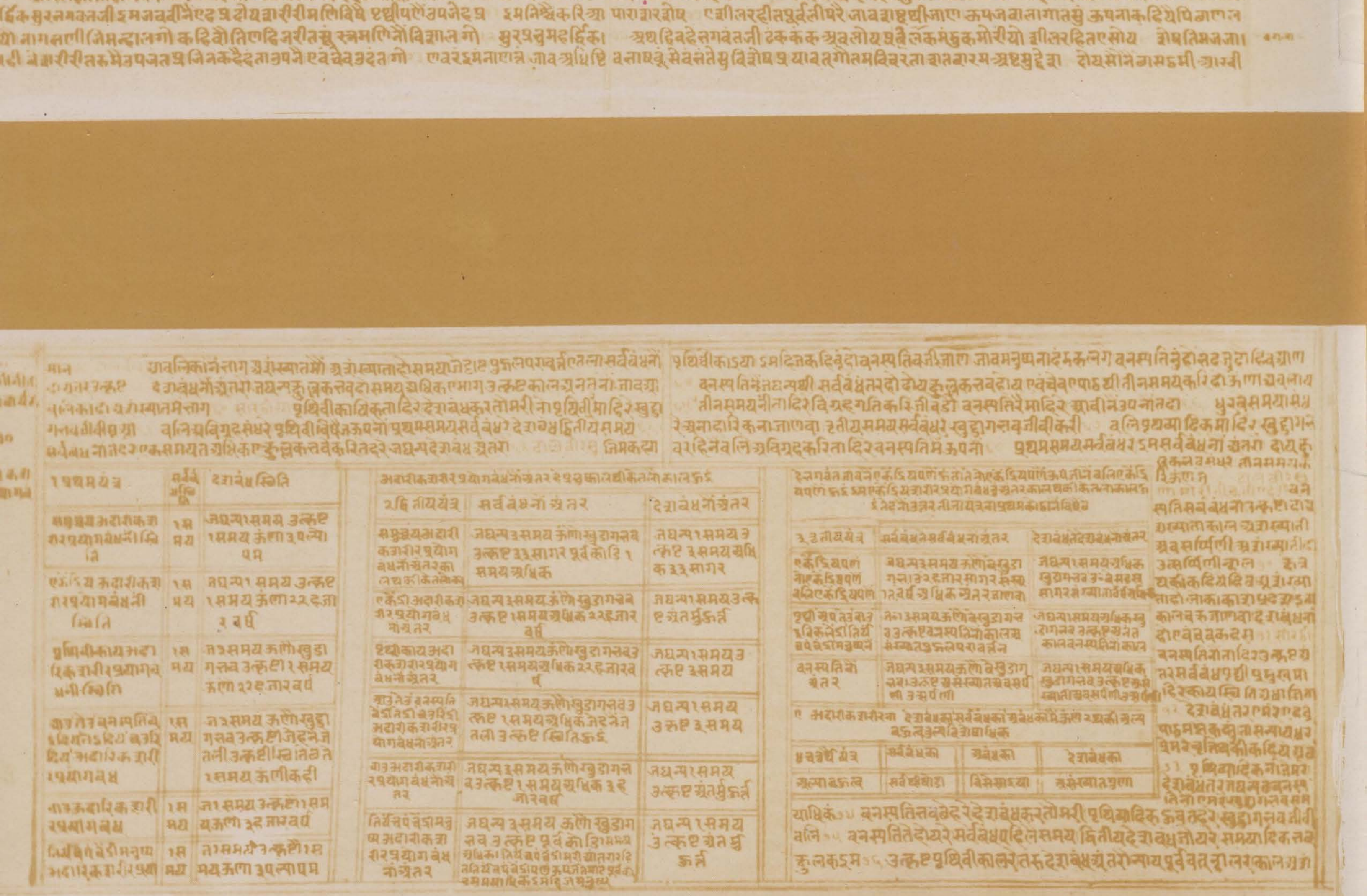

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org